ज्ञानकोश

अर्थात्

अखिल विश्व की कला, विज्ञान तथा साहित्य

का

वृहद्भण्डार

(भाग—१)

अ—अफसर

प्रकाशक—

डा० श्रीधर व्यंकटेश केतकर, एम० ए० पी० एच० डी०, पूना।

भार्गव ब्रदर्स, सुलेमानी प्रेस, बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण १९३४

मुद्रक तथा विक्रेता—

काशी प्रसाद भार्गव,

भार्गव ब्रदर्स, सुलेमानी प्रेस,

बनारस सिटी ।

प्रस्तावना ।

हिन्दी का यह अमूल्य रत्न हिन्दी-संसार के ही अर्पण है। आशा ही नहीं, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि एकबार सुचारू तथा सुव्यस्थित सञ्चालन हो जाने पर यह कार्य केवल चमक ही नहीं उठेगा किन्तु पूर्ण रूप से सार्वजनिक सहयोग भी पाता रहेगा। देश के धुरन्धर विद्वानों द्वारा सम्पादित यह बृहद् ग्रन्थ शिक्षित-समाज में तो आदर पावेगा ही, वरन् भारतीय साहित्य-संसार के असीम गौरव का भी विषय होगा।

पूना
२७-६-३४

श्रीधर व्यंकटेश केतकर

एम० ए०, पी० एच० डी०

दो शब्द !

आजकल ज्ञानभण्डार, कम से कम पुस्तक भण्डारकी वृद्धि इस प्रकार हो रही है कि किसी एक विषयके भी सब ग्रन्थों को कोई पढ़ना चाहे तो समय मिलना असम्भव सा होगा। प्राचीन समयमें जो काम दस बीस सूत्रोंमें होता था उसके लिये अब दस बीस ग्रन्थोंकी आवश्यकता होती है। कारण इसका यह है कि प्राचीन समय गुरुमुख से शिक्षा प्राप्त करना सभी विद्यार्थियोंका परम उद्देश्य होता था; सूत्र केवल सूचकमात्र होते थे। पर अब तो गुरुओं अर्थात् शिक्षकों की संख्या इतनी बढ़ गई है और इतनी दूर दूर फैलती जाती है कि गुरुमुख का दर्शन भी नहीं हो सकता। इससे पुस्तकोंका निर्माण और प्रकाशन आवश्यक हो गया है।

पर जितनी पुस्तकें निकलती हैं उन सबका पढ़ना किसीके लिये सम्भव नहीं है। जब एक विषयके ग्रन्थोंको भी विद्यालोलुप जिज्ञासु नहीं पढ़ सकता तब फिर नाना विषयके ज्ञानसे सर्वदा वंचित रहना पड़ता ही है। इसी आपत्तिको दूर करनेके लिये विश्वकोशों (Encyclopaedia) की रचना होने लगी। हमारे देशमें भी दक्षिणमें (महाराष्ट्री भाषामें) तथा बंगाल में (बंगाली में) विश्वकोश निकले हैं और इनसे जिज्ञासुओंका बड़ा उपकार हुआ है और हो रहा है।

ऐसी अवस्थामें हिन्दीभाषाभाषियों के उपकारार्थ हिन्दीमें एक कोशका निर्माण परम आवश्यक हो गया। निर्माणक तथा प्रकाशकोंका अध्यवसाय तथा उत्साह सराहनीय है। पर कार्य अतीव गुरु और प्रचुरद्रव्यसाध्य है। पर विद्याकी ओर जनताकी अभिरूचि ऐसी बढ़ती जाती है कि यह आशा दुराशा नहीं होगी कि प्रकाशकों का कार्य सर्वदा सफल होगा।

इस कोशका प्रथम भाग पाठकोंके सामने है। अभी तक जितना कार्य हुआ है सन्तोष जनक है। आशा है इस ग्रन्थको जिज्ञासु तथा पण्डितवर्ग भी अपनायेंगे और इसके द्वारा विद्या और ज्ञान के प्रचार के पुण्यभागी होंगे।

प्रयाग, २१।३।२४

निवेदक—
गङ्गानाथ झा महामहोपाध्याय,
एम० ए०, डी० लिट।

प्रारम्भिक सूचना।

विश्वकोश (Encyclopaedia) भारतवर्षमें एक नई चीज़ है। इस देशमें शब्दार्थ सूचक अनेक कोश या अभिधान हैं परन्तु विविध-विषय-वर्णनात्मक कोश कभी प्रस्तुत नहीं किये गये। ये किसी एक व्यक्ति द्वारा बन भी नहीं सकते, क्योंकि इनमें प्रत्येक प्रकारके दर्शन, विज्ञान, विद्या और कलाओंकी व्याख्या और मर्मज्ञता-पूर्ण विवेचन रहता है। कौन ऐसा पुरुष है जो समान भावसे रसायन, पदार्थविज्ञान, ज्योतिष, गणित, वैद्यक, धर्म्मशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानव-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, भाषातत्व, पुरातत्व, इतिहास, भूगोल, दर्शन, काव्य, गायन, नृत्य, स्थापत्य, कृषि, विविध उद्यम, राजनीति, शासनविधि इत्यादि सैकड़ों, नहीं सहस्रों, विषयोंका मर्म जाननेका दावा कर सकता हो? विषयसमूहको जाने दीजिये वर्तमान कालमें एक ही विषयके किसी विशेष अङ्गके अध्ययन करनेमें मनुष्यकी आयुष्य बीत जाती है, तब किस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार ज्ञान का संग्रह किया जा सकता है? यह कार्य केवल सहयोग द्वारा साध्य है। प्राचीन कालमें सहयोग द्वारा रचनाके उदाहरण दिखाई नहीं पड़ते। कदाचित् उस समय ऐसे संग्रहोंकी बड़ी आवश्यकता न थी, परन्तु आधुनिक युगमें ज्ञानका भण्डार इतना बढ़ गया है कि ज्ञान-वर्धक संग्रहोंके बिना काम नहीं चल सकता।

ब्रिटिशराजमें विश्वकोशका जन्म उस वर्ष हुआ था जब विश्व-विजयी सम्राट् नेपोलियनका बड़ा भाई पैदा हुआ था। कालकी गतिसे विश्वविजयी का वंश तो अस्त हो गया परन्तु विश्वकोशका परिवार बढ़ता ही जाता है और बार २ जन्म लेकर मानो भारतीय पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी पुष्टि करता हुआ अपनी उपयोगिताका सारी पृथ्वीपर डंका बजाता चला जाता है। प्रथम आविष्कारकी तिथिसे आजतक कोई १६६ वर्ष व्यतीत हो चुके, तबसे उसके अंग्रेजी वेष में चौदह अवतार हो चुके। वर्तमान शताब्दीके आरंभमें जब उसके विलायतमें दशावतार पूर्ण हो चुके थे तब कहीं उसके भारतीयरूपमें प्रकट होनेकी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई. जिसके फलस्वरूप बंगाली भाषा में "विश्वकोश" नाम ही का संग्रह प्रस्तुत हुआ। भारतवर्षमें इस श्रेणीका यही पहला ग्रन्थ था जो २७ वर्षके अकथ परिश्रमसे अनेक धुरंधर विद्वानों के सहयोग द्वारा पूर्णता को प्राप्त हुआ। उसी समय उसके प्रकाशकों को सूझ पड़ा कि "जिस हिन्दी भाषाका प्रचार और विस्तार भारतमें उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और जिसे राष्ट्र भाषा बनानेका उद्योग हो रहा है उसी भारतकी भावी राष्ट्र भाषामें ऐसे ग्रन्थका न होना बड़े दुःख और लज्जाका विषय है"। इसलिये उन्होंने प्रशंसनीय धैर्यका अवलम्बन कर हिन्दी विश्वकोशकी नींव तुरन्त डाल दी और उसे पूरा करके छोड़ा। इस संग्रहमें विश्वकोश कीशैली कुछ बदल दी है जिससे वह विश्वकोश और अभिधानका मिश्रण बन गया है। जिस समय यह कार्य चल रहा था उसी समय डाक्टर श्रीधर व्यंकटेश केतकर एम. ए. पी. एच. डी. ने एक विश्वकोश मराठी भाषामें रचनेका सिलसिला डाला और प्रायः ४० लेखकोंकी सहायतासे बारह वर्षमें पूरा कर दिया। तत्पश्चात् उनका इसी ज्ञानसंग्रह को मराठीकी पड़ोसिन गुजराती आवरणमें भूषित करनेका उत्साह बढ़ा और कार्यारम्भ भी कर दिया गया, परन्तु साथ ही उनके हृदयमें वही प्रेरणा उत्पन्न हुई जो बंगाली प्रकाशकोंके मनमें बंगाली विश्वकोशके पूरा करने पर उठी थी। इसलिये उन्होंने तुरन्त ही शुद्ध हिन्दी विश्वकोशके रचनाका प्रस्ताव किया जो स्वीकृत सामयिकशैलीके अनुसार हो और जिसके विषय सर्वव्यापी राष्ट्रभाषाके योग्य हों। अद्यपर्यन्त जो नवीन आविष्कार हुए हैं उन सबका समावेश रहे और मराठी गुजराती और बंगाली लेखकों द्वारा जो भारतवर्ष-विषयक सामग्री छान बीनके साथ इकट्ठी की गई है उन सबका सार हिन्दीकोशमें सन्निविष्ट हो जावे प्रान्तिक भाषाके कोशोंमें ठेठ हिन्दी या हिन्दुस्तानी विषयोंका स्वभावतः अभाव है इसकी

पूर्ति करनेका प्रबंध किया गया है। इसके साथ २ यह भी उद्योग किया गया है कि वैज्ञानिक शब्दावली समस्त भारतके लिये एक रूपमें स्थिर हो जाय। विलायती विज्ञानोंके विशेष शब्दों के लिये भारतीय भाषाओंमें नवीन शब्द गढ़ने पड़ते हैं। वे बहुधा संस्कृत शब्दावली ही से लिये जाते हैं, परन्तु संस्कृतमें समानार्थक शब्द अनेक होते हैं। उनमें से जब भिन्न २ भाषाओंमें भिन्न २ शब्द चुन लिये जाते हैं तब भ्रमोत्पादक गड़बड़ मच जाती है। इस अवस्थामें राष्ट्रभाषाके कोशमें किसी विशेष शब्दका वैज्ञानिक अर्थ स्थिर कर देनेसे उसके सर्वग्राह्य हो जानेकी आशा है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ न कुछ त्रुटियां अवश्य रह जायगीं, परन्तु त्रुटिहीन विश्वकोश कभी बन नहीं सकता। समयके हेर फेरसे संसारमें इतने परिवर्त्तन हुआ करते हैं कि जिसको हम कल अकाट्य सिद्धान्त समझते थे आज उसकी हंसी उड़ाई जाती है इस लिये जो कुछ उसके विषयमें कल लिखा गया वह आज मानने योग्य नहीं रह जाता। यही कारण है कि विश्वकोशों की काया पलट होती ही रहती है। ब्रिटिश विश्वकोश, जैसा पहले बतला आये हैं; अपनी काया चौदह बार बदल चुका - इस प्रकार औसत जीवन काल केवल १२ वर्ष ही पड़ता है। मराठी ज्ञानकोशको समाप्त किये अभी केवल पांच वर्ष हुए हैं परन्तु उसका क्रोड़पत्र ग्रन्थ पूर्ण होते ही बनने लगा था। कदाचित् यह स्थिति निराशाजनक समझी जावे, परन्तु इन परिवर्त्तनों और नवीन संस्करणों से लाभ भी अगणित हैं।

हिन्दी ज्ञानकोश की रचनाके लिये सैकड़ों लेखक नियुक्त किये गये हैं जो अपने २ विषयके विशेषज्ञ समझे जाते हैं। इनके लेखोंके सम्पादन करनेके लिये ३३ धुरंधर विद्वानों की समिति नियुक्त की गई है जिनका काम बड़ा ही कठिन है। उनको केवल यही नहीं देखना पड़ेगा कि किसी लेखमें कोई अनर्गल बात तो नहीं घुस गई वरन् यह भी विचार करना होगा कि उसका विस्तार उसके महत्वके अनुसार है अथवा नहीं और वह ग्रन्थके परिमित स्थानमें समा सकता है या नहीं। यदि ये बातें अनुकूल न हुई तो पुनः शोधनमें कितना कष्ट उठाना पड़ेगा यह पाठकवृन्द मन ही मन अनुमान कर सकते हैं। सम्पादकसमितिके अतिरिक्त बारह विद्वानों की एक अलग समिति बनाई गई है जो लेखोंके स्वीकृत होनेके पूर्व उनकी विशेष रूपसे जांच करेगी ताकि जहां तक हो सकता है कोई दूषण न रहने पावें।

यदि इस कष्टसाध्य प्रयत्नको भारतीय जनताने अपनाया और प्रकाशकोंको उत्साहित किया तो आशा है कि हिन्दी विश्वकोशका केवल यही संस्करण न निकलेगा वरन् यथासमय अनेक संस्करण छपते रहेंगे जिनमें प्रत्येक नवीन संस्करणके समय तक जिस विषयकी जितनी वृद्धि होचुकी है उसको ही पूर्त्ति न की जायगी किन्तु पिछले संस्करणों में जो भूलें प्रविष्ट हो गई हों उन सबका परिशोधन कर दिया जाया करेगा। यहांपर यह जतला देना भी अभीष्ट जान पड़ता है कि विश्वकोशमें किसी प्रकारका साम्प्रदायिक आक्षेप नहीं रहेगा। यदि कोई विषय विवादग्रस्त है तो पक्ष विपक्षका कथन दिखला कर वहीं पर छोड़ दिया जायगा। यह पाठक पर निर्भर रहेगा कि वह जी चाहे जिस पक्षको अङ्गीकार या समर्थन करे।

किसी भी नवीन कार्यके आरम्भमें सभी जानते हैं अनेक आपत्तियाँ आ खड़ी होती हैं। वैसा ही इस कार्यके आरम्भमें हुआ, परन्तु उन सबको झेलकर अब सिलसिला ठीक जमा दिया गया है। प्रकाशकोंका विश्वास है कि काम चल उठा है और शीघ्र ही पूरा कर दिया जायगा। जो सज्जन इस प्रथम संस्करणकी त्रुटियां या दूषण और उसे अधिक उपयोगी बनानेके उपाय बतलानेकी कृपा करेंगे उन सब पर यथोचित ध्यान देकर अगले संस्करणोंको अधिक चित्ताकर्षक और उपयोगी बनानेमें कसर न की जायगी।

कटनी
२-५-३४

हीरालाल (रायबहादुर, डाक्टर)
एम० ए० डी० लिट्

निवेदन !

हिन्दी-संसारके निरन्तर प्रयत्न, अदम्य उत्साह, तथा अपूर्व लगनसे भारत ऐसे विशाल देशके कोने कोनेमें भी हिन्दीका डंका बजने लग गया है; और हिन्दीके ही राष्ट्र-भाषा होनेकी पूर्ण सम्भावना होने लगी है। यह भी हमारे विचार-शील महानुभावोंसे छिपा नहीं है कि उन्नति की दौड़में हिन्दी देशकी सम्पूर्ण भाषाओंसे कितनी आगे निकल चुकी है। जो जो त्रुटियाँ तथा अभाव हिन्दी भाषा या साहित्यमें विदित होते जारहे हैं उनकी पूर्तिके लिए कोई न कोई सच्चा सेवक कार्यक्षेत्रमें आ डटता है। निस्सन्देह हिन्दीका भविष्य नितान्त उज्ज्वल है।

डाक्टर श्रीधर व्यङ्कटेश केतकर, एम. ए. पी. एच. डी०, पूना, ने अपने सतत परिश्रमसे मराठी तथा गुजरातीमें ज्ञानकोश प्रकाशित करके उक्त साहित्यों तथा भाषाओंकी अपूर्व सेवा की है। इधर कई वर्षोंसे उक्त महोदय हिन्दीभाषा तथा साहित्यके इस अक्षम्य अभावकी पूर्तिके लिए भी निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे, और इस गुरुतर कार्यके लिए उनको एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो अपने आदर्श स्वार्थत्याग, अपूर्व लगन तथा कठोर परिश्रमके साथ ही साथ जीवनकी सर्वोत्तम शक्तियोंको इसीके लिए समर्पण कर दे। किन्तु, ज्ञानकोश ऐसे महान् कार्यकी सफलताके लिए व्यक्तिगत परिश्रमका कोई विशेष मूल्य नहीं हो सकता। इसके लिए देशके धुरन्धर विद्वानोंका सहयोग तथा परामर्श, अनुभवी महोदयोंको सहायता तथा वयोवृद्धोंके आशीर्वादकी पग पग पर आवश्यकता होती है; इसके लिए जिस गम्भीरता तथा विविध-विषयक ज्ञानको आवश्यकता है, वह एक दो व्यक्तिमें होना असम्भव है। अतः डा० श्रीधर व्यङ्कटेश केतकर द्वारा कार्यका भार सौंपे जानेपर अनेक बाधायें तथा कठिनाइयां उपस्थित होने लगीं। मुझ जैसे अनुभव-शून्य साधारण व्यक्तिके लिए इस महान् कार्यका सुचारु सञ्चालन तथा सम्पादन असम्भव सा देख पड़ने लगा। सतत् परिश्रम भी योग्यता के अभावकी पूर्ति न कर सका और ज्ञानकोशके सच्चा ज्ञानकोश—यथा नाम तथा गुण—होनेमें सन्देह होने लगा। बात भी वास्तवमें ऐसी ही थी। अतः प्रथम भागके प्रकाशित करनेके साथ ही साथ प्रान्त तथा देशके धुरन्धर विद्वानोंसे पत्र व्यवहार तथा आवश्यकता होनेपर मिलकर उचित परामर्श लेना आरम्भ कर दिया। योग्यता न होनेपर भी केवल मेरे साहस तथा उत्साहको देखकर चारों ओरसे मुझे सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त होने लगी। शनैः शनैः विषयानुसार उत्तमोत्तम लेख संग्रह करनेके लिए एक बृहद् लेखक-मण्डलकी नींव पड़ गई। आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओंके धुरन्धर लेखकोंसे भी उनके विषयके लेख लिखा कर अनुवादका प्रबन्ध किया गया है। इतनेपर भी इसके सुचारु सञ्चालन तथा सम्पादनमें सन्देह बना ही रहा। अतः इस मण्डलमें से जो विशेषरूपसे उत्साहित होनेके साथ ही साथ अपने अपने विषयके धुरन्धर विद्वान् हैं तथा जिनकी मुझपर विशेष कृपा रही है उनके सहयोग से एक सम्पादकीय मण्डलका जन्म हुआ। सम्पादकीय सञ्चालनका सम्पूर्ण भार इसी मण्डल पर निर्धारित कर दिया गया है। आवश्यकतानुसार इस मण्डलका विस्तार भी बढ़ता जावेगा। इन दोनों मण्डलोंके अतिरिक्त भी देश तथा प्रान्तमें कुछ ऐसे अनुभवी महोदय हैं जिनका समयाभावसे पूर्ण सहयोग असम्भव होते हुए भी इस गुरुतर कार्यकी पूर्ण सफलताके लिए सामयिक उपदेश तथा आशीर्वाद नितान्त आवश्यक था। ऐसे ही महानुभावोंद्वारा संरक्षक-मण्डलकी योजना की गई।

यद्यपि जो भाग पाठकोंके सम्मुख है उसमें विशेष रूपसे त्रुटियाँ रह गई हैं, और इसका आभास भी मुझे पग पग पर होता रहा है। किन्तु उस समय तक उपरोक्त मण्डलोंका पूर्ण विकास न होने से इस भागका आधार मराठी ज्ञानकोश ही रहा। किन्तु अब इसका दूसरा भाग निम्न लिखित महोदयोंकी सहायता, सहयोग तथा परामर्श से निकल रहा है। सम्पादक मण्डलके जिन महोदयोंने जिन विषयोंके सम्पादनका भार द्वितीय भागके लिये ले लिया है उनके नामके सम्मुख वे विषय भी दे दिये गये हैं।

(१७)	कविराज श्री प्रताप सिंह, हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी	आयुर्वेद
(१८)	श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए० बी० टी०	समाज शास्त्र, गार्हस्थ्य शास्त्र
(१९)	श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए०	,, ,, ,,
(२०)	राय बहादुर पं० तेजशंकर कोचक, बुलन्दशहर	कृषिशास्त्र,
(२१)	राय कृष्ण दास, काशी	कला
(२२)	पं० पूर्णचन्द्र जी त्रिपाठी ज्योतिशाचार्य-तीर्थ डुमराव-	ज्योतिष फलित सामुद्रिक

(२३) रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दर दास, बी० ए०
हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी।
(२४) प्रो० श्रीधर सिंह, एम०, ए० लखनऊ।
(२५) डाक्टर पी० एस वर्मा, हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी।
(२६) प्रो० चन्द्रमौलि शुक्ल ,, ,, ,,
(२७) प्रो० रामकुमार वर्मा इलाहाबाद विश्व-विद्यालय।
(२८) श्रीमती चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए० इलाहाबाद।
(२९) श्रीमती सत्यवती पाठक एम० ए० इलाहाबाद।
(३०) श्रीमान् युधिष्ठिर भार्गव, सम्पादक जायाजी प्रताप, ग्वालियर।
(३१) बाबू बृजरत्न दास, बी० ए० एल० एल० बी०, बनारस।
(३२) पं० राजनाथ पाण्डे एम० ऐ०, इलाहाबाद।
(३३) पं० उमाकान्त पांडेय बी० ऐ०, एल० एल० बी०, बनारस।

उपरोक्त विद्वन्मण्डलका विचार करते हुए इस प्रयासके आगामी भागोंकी सफलता तथा सर्वमान्यतापर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता, इस भागका भी विशेषांक शीघ्रही निकाल कर मुख्य मुख्य त्रुटियोंकी पूर्ति कर दी जावेगी।

ज्ञानकोष क्या है? इसमें क्या रहेगा? अथवा हिन्दी संसारमें इसकी कितनी नितान्त आवश्यकता है? इन विषयों पर महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम. ए. डी. लिट के 'दो शब्द' तथा रायबहादुर डा० हीरालाल, कटनीकी 'प्रारम्भिक सूचना' द्वारा पूर्ण रूप से प्रकाश पड़ चुका है। अतः इसपर फिर कुछ कहनेका प्रयत्न करना व्यर्थ है, किन्तु फिर भी इस ज्ञानकोशकी विशेषताओं तथा ध्येयके विषयमें दो चार शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा।

२००० चित्र तथा नकशों से युक्त १२००० पृष्ठों (३५ भाग) का यह असाधारण ग्रन्थ कदाचित् हिन्दी संसारका ही नहीं, किन्तु देशकी प्रत्येक भाषाका सबसे बृहद्ग्रन्थ होगा, और मराठी इत्यादि ज्ञानकोश की सहायता प्राप्त होनेके साथही साथ धुरन्धर विद्वानों द्वारा सम्पादित होने से इसका प्रत्येक लेख अत्यन्त उपयोगी तथा प्रमाणिक होगा। लेखके अन्तमें सन्दर्भ-ग्रन्थोंकी सूची होनेसे तद्विषयक विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करनेमें अत्यन्त सुविधा होगी। अखिल संसारके सम्पूर्ण प्राचीन तथा अर्वाचीन विषयोंके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय तथा वैदिक संस्कृतिपर विशेष प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि ज्ञान-कोश ऐसे विविध-विषयक प्रयत्नमें किसी विशेष ध्येयको सम्मुख रखना सर्वथा उचित नहीं देख पड़ता किन्तु फिर भी कुछ उद्देश्य ऐसे अवश्य हैं जो अपने विश्वव्यापी होनेके कारण सर्व-प्रिय तथा सर्व-मान्य हैं हीं। इस ज्ञानकोशका सर्व-प्रथम

उद्देश्य तो है अपने देश-वासियों में हिन्दीकी सच्ची लगन अङ्कुरित करनेके साथ ही साथ विद्या तथा ज्ञानकी पिपासाको उत्तेजित करना; फिर इसी ज्ञान-कोशकी अनन्त ज्ञान-धाराओं द्वारा शान्त करना। दूसरे, धर्म, समाज, विज्ञान तथा इतिहासके अनेक विवादग्रस्त विषयों पर असीम उदारता से प्रत्येकपक्षके विचार तथा भावोंका नग्न चित्र खींचकर ही छोड़ दिया गया है—किसी विशेष मतका समर्थन नहीं किया गया है। ऐसी सत्य-पूर्ण तथा निष्पक्ष आलोचनाओं द्वारा सच्चे स्थिति-ज्ञानके कारण देश तथा समाजसे सङ्कुचित भावोंके विनाश तथा परस्पर सहानुभौतिक प्रेम-विस्तार तथा रागात्मक सम्बन्धकी पूर्ण सम्भावनाकी जाती है। इस साहस-पूर्ण प्रयत्नका अन्तिम ध्येय है भविष्यके लिए आधुनिक समयकी सच्ची स्थिति तथा सभ्यताका पूर्ण व्योरा जाननेका अनुपम साधन छोड़ जाना। इस ज्ञान-भण्डारकी सहयतासे आनेवाले युगवालों को केवल इह-कालिक तथा तत्कालीन सभ्यता-विकासकी तुलनामें ही सहायता नहीं मिलेगी, वरन् वे इन अथाह-सञ्चित अनुभवोंसे लाभ उठाकर उन्नति-पथपर अधिक सुगमतासे अग्रसर हो सकेगें।

ज्ञानकोश ऐसे प्रयासमें अपने जीवन की सर्वोत्तम शक्तियोंका बलि-दान करके भी पूर्ण सफलताको आशा करना सरल नहीं है। इसमें जिस विपुल व्ययकी आवश्यकता है तथा अन्य जो बाधायें, आपत्तियाँ तथा कठिनाइयाँ पग-पग पर उपस्थित होती हैं उनका विचार करके व्यक्तिगत परिश्रमसे इसके सुफल होनेकी आशा करना दुराशामात्र है। इस दुस्साध्य प्रयत्नकी पूर्ण सफलता तो सम्पूर्ण हिन्दी-संसार, वरन्, समूचे राष्ट्रकी समुचित तत्परता, सामयिक सहायता तथा सच्ची सहानुभूति पर ही निर्भर है। हिन्दीभाषा तथा साहित्यके सदा खटकनेवाले इस अभावको दूर करनेका कार्य हमने प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु इसकी सफलता तो हिन्दी-संसारके सहयोग तथा सहानुभूति पर हीनिर्भर है।

अभी तक हिन्दी-संसार तथा विद्वन्मण्डलसे जो सहायता तथा सहानुभूति मुझे प्राप्त होती रही है—और जिसके लिये न जाने हृदयसे कितना अनुगृहीत हूँ—उसे देखते हुए तो आशा की जाती है कि अपने ज्ञानप्रकाशसे यह 'ज्ञानकोश' अखिल भारतको शीघ्र आलोकमय कर देगा।

भार्गव ब्रदर्स,
पुलेमानी प्रेस, बनारस।
११—६—३४

विनीत—
विश्वनाथ प्रसाद भार्गव, बी० ए०
सम्पादकीय सञ्चालक

नोटः—इस प्रयास को लिमिटेड कम्पनी का रूप देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

ज्ञान-कोश

अ

अ—अर्थनिश्चय (क)—यह वर्णमालाका पहला अक्षर और साथही ह्रस्व स्वर है। यह अक्षर संस्कृत विशेषणों, विशेष्यों तथा कृदन्तोंके आरम्भमें लगाया जाता है। कभी-कभी इसे शुद्ध हिन्दी शब्दोंमें भी लगाते हैं। इस वर्णका आशय (अर्थ) और मिलावटका रूप नीचे दिया जाता है—(१) अभाव अथवा रहित। जैसे—अपार, अक्षय (२) अपकर्ष, विपर्यास जैसे—अकीर्ति अकर्म, अनादर (३) क्षय, न्यूनता जैसे—अबुद्धि, अपरिपक्व (पूरा न पका हुआ) (४) वृद्धि, श्रेष्ठय जैसे-अमानुषिक, अपौरुषेय, अलौकिक। आगे स्वर आ जानेसे 'अ' का 'अन्' हो जाता है, उदारहणार्थ—अनन्त, अनक्षर, अनध्याय इत्यादि। उपर्युक्त चार अर्थोंमें यह वर्ण पहले अर्थसे ही अधिक व्यवहृत होता है। दूसरा अर्थ पहलेकी तरह बहुत उपयोगमें नहीं लाया जाता। तीसरा या चौथा अर्थ तो शायद ही कभी दृष्टिगोचर होता है। ऊपर दिये गये उदाहरणोंसे अधिक उदारण कठिनतासे ही मिलते हैं। (ख) विष्णु का नाम, ॐकारांतर्गत ओ३म् की प्रथम ध्वनि। (अकारो विष्णुरुदि उकारस्तु महेश्वरः। मकारस्तु स्मृतो ब्रह्मा प्रणवस्तु त्रयात्मकः॥ (ग) शिव, ब्रह्मा, वायु अथवा वैश्वानर।

अक्षराकृति विकाश—अ अक्षरका सबसे प्राचीन स्वरूप अशोकके शिलालेखोंमें दिखाई देता है। अशोकके शासनकालमें अर्थात् ई० पू० तीसरी शताब्दीमें इस शब्दका स्वरूप बिलकुल भिन्न था, इसका इस प्रकार रूपांतर होनेके पश्चात् आधुनिक स्वरूप मिला है। इसका सबसे पहला रूप अशोकके गिरनारके शिलालेखोंमें देखा गया है। दूसरा रूप ई० पू० पहली शताब्दीमें खुदे हुए मथुराके शिलालेखोंमें दिखाई देता है। उसमें 'अ' के बाएँ अंगके निचले भागमें दो कोने बने हुए हैं, उसीसे तीसरे रूपका अर्धचंद्राकार अक्षरभाग तय्यार हुआ दिखायी देता है। तीसरा रूप शिवगन नामक राजाके सन् ७३८ ई० के किलेकी शिलालिपियोंसे लिया गया है। फिर भी यशोधर्मके मंदसोरके लेखोंसे ज्ञात होता है कि इसके सौ वर्ष पूर्व मालवामें 'अ' को उपर्युक्त चौथा रूप प्राप्त हुआ था। इसके बाद इस अक्षरके सिर्फ बायें अंगके ऊपरी हिस्सेमें निचले हिस्सेकी तरह आकार आना बाकी था। कुदारकोट तथा देवल आदि स्थानोंके लेखोंसे पता चलता है कि वह क्रिया, चौथे रूपके बायें भागमें जो खड़ी रेखा है उसे चापके रूपमें बाईं ओर झुकाकर और थोड़ी आगे बढ़ाकर पूरी की गयो होगी।

[मोल्स्वर्थ तथा कैंडी–मराठी-अंग्रेजी कोश। वा०शि० आपटे-संस्कृत-अंग्रेजी कोश। ओझा–भारतीय प्राचीन लिपिमाला]

अइ—आसामकी एक नदी। यह भूटानसे निकली है और खड़काल तथा पूर्वमें गोलपारा जिले से होकर बहती हुई ब्रह्मपुत्रकी सहायक नदी मनास में मिल गयी है। यह नदी अधिकतर जंगलोंसे होकर बहती है। इसकी लम्बाई ९५ मील है, इसमें चार टन वजनकी नावें चलती हैं। (इं० ग० ५-१९०८)

अइजल—आसामके पहाड़ी जिले लुशाईका एक भाग। यह उत्तर अक्षां० २३·१ से २४·१९ तक तथा पूर्व देशां० ९२·१६ से ९३·२६ तक फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल ४७०१ वर्गमील है और जनसंख्या ५३००० है। इसमें १२५ गाँव हैं।

अइजल—एक ग्राम। यह इस विभागका तथा लुशाई जिलेका मुख्य स्थान है। उत्तर अक्षां० २३·४ तथा पूर्व देशा० ९२·४४। यह समुद्रकी सहतसे ३५०० फुट ऊँची एक पहाड़की चोटी पर बसा हुआ है। इसकी जनसंख्या लगभग ढाई हजार है। यहाँ करीब ८० इंच औसत वर्षा होती है। यह परिमाण आसाममें होनेवाली वर्षाके परिमाणसे अधिक नहीं है। हवा ठंढी और स्वास्थ्यप्रद है। यह सेनाका एक केन्द्र है। यहाँ एक दवाखाना और एक कारागार है। पहले यहाँ पानीका बड़ा अभाव था, परन्तु आजकल बहुत रुपये खर्च करके वर्षाका पानी रोक रखनेकी व्यवस्था की गई। (इं० ग० ५-१९०८)।

अर्कॅडमी—अक्याडमी (विद्यापीठ अथवा सरस्वती-मन्दिर)। शब्दकी व्युत्पत्ति बहुतही मनोरंजक है। यह शब्द ग्रीक वीर अर्कॅडीमसके नाम से लगाये हुए बागसे प्रचलित हुआ है। यह बाग एथेन्स शहरसे करीब एक मीलकी दूरीपर है। इस बागमें प्लेटोने अपने अनुयायियों को ५० वर्षों तक तत्वज्ञानकी शिक्षा दी थी, इसलिये अर्कॅडमीका अर्थ विद्यापीठ हो गया है, और लक्षणसे प्लेटोके तत्त्वज्ञानका नाम 'अर्कॅडमिक पंथका तत्त्वज्ञान' पड़ा है। एथेन्समें इस प्रकारके विद्यापीठ नौ सौ वर्षतक उन्नति पर थे।

अर्कॅडमिक पंथ—प्लेटोका तत्त्वज्ञान लगभग ९ शताब्दियों तक यूरोपमें प्रचलित था। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि वह विचार-प्रवाह ९०० वर्ष तक बिना किसी रुकावटके बहता रहा; परन्तु उसमें कई शाखाएँ फूट निकलीं। इतने वर्षों तक इस तत्त्वज्ञानकी विचारधारा एक ही दिशामें बह रही थी, इसी कारण युरोपके तत्वज्ञानके साहित्यमें इसका अधिक महत्व है। प्लेटोके अनुयायियोंमें बड़े-बड़े विद्वान पंडित थे। उन्होंने उसके तत्व और विचार को समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूप दिये। प्रथमतः प्लेटोके अनुयायियोंने उसमें प्रमाण-स्वरूप माने हुये आध्यात्मिक तत्व बिना अधिक विचार किये छोड़ दिये। अनंतर (प्लेटोके) उस तत्वज्ञानमें कार्नेडिजने नास्तिक मतका तथा स्टोइकोंके (सुख दुखोंके विषयमें उदासीन वृत्तिके) मतोंका समावेश हुआ और उसमेंके प्रमाणवादका रूपान्तर संभाष्यवादमें हो गया।

प्लेटोसे लेकर सिसरो तक जो काल माना जाता है, उसके निम्नलिखित चार भाग किये जा सकते हैं।

(१) प्लेटोकी कल्पना-सृष्टिकी उत्पत्तिसे उसके दो शिष्य (जेनोक्रित तथा स्ययुस्टिपस) सहमत नहीं थे। उदाहरणार्थ—उनका मत था कि पदार्थोंके गुणधर्म उन वस्तुओंके अस्तित्वके लिये कारणीभूत नहीं होते।

(२) ये सिद्धान्त अर्सीलाके काल तक माने जाते थे कि सब पदार्थोंमें ऐक्यता है। इसी कारण निश्चित ज्ञान प्राप्त करनेमें उनसे मदद मिलती है। परन्तु पीछे इन सिद्धान्तोंकी यथार्थतामें संदेह उत्पन्न हुआ और उनके अलग कर दिये जाने पर इस पंथमें अज्ञेयवादका आरंभ हुआ।

(३) पश्चात् अकडेमिक तत्वज्ञानमें कार्डेनीज़के नास्तिक मतका—अर्थात् शंकावाद अथवा इंद्रियद्वारा पदार्थोंका अयथार्थ ज्ञान—का समावेश होने लगा।

(४) इसी समय प्लेटोके अनुयायियोंने भिन्न-भिन्न तत्वों, शाखाओं और विचार-धाराओं को एक सूत्रमें बाँधनेका प्रयत्न किया।

अकबर—(१५५६—१६०५) बचपन—मुगल वंशका तीसरा बादशाह। इसका पूरा नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर है। हुमायूँ जब शेरशाह द्वारा भगाया गया, तब १५ अक्तूबर १५४२ ई० को अकबरका जन्म अमरकोटके वीरान जंगलमें हुआ था। जब यह चौदह महीनेका था, तभी माता पितासे इसका विछोह हो गया और यह अपने चाचाके अधिकारमें चला गया। दो वर्ष बाद माता पितासे इसकी भेंट हुई। बचपनमें इसपर अनेक विपत्तियाँ पड़ीं, कई बार इसको कठिन कारावास भी भोगना पड़ा, अनेक बार इसके प्राण संकटमें पड़ गये, किन्तु इन सब विपत्तियोंसे इसका बचाव हो गया। हुमायूँने इसके पढ़ानेके लिये एक शिक्षक नियुक्त किया था, परन्तु उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। हुमायूँ दयालु होनेपर भी चञ्चलचित्त था, इस कारण उसने अपने बेटे की शिक्षाकी ओर अधिक ध्यान न दिया। अकबरने राज्यके लिये होने वाले उलटफेरोंके समय प्रत्यक्ष अनुभवसे मिलनेवाली बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर ली। वह अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धिका था, इस कारण आगे चलकर इस शिक्षाका उसके लिए अच्छा उपयोग हुआ। बैराम खाँ स्वामिभक्त और शूर था। अतः हुमायूँने अकबरको उसके हाथोंमें सौंप दिया। उसने अकबरका अच्छी तरह लालन-पालन किया। हुमायूँकी मृत्युके समय अकबरकी अवस्था केवल तेरह वर्ष तीन महीनेकी थी। इसलिये राज्यका सब कारोबार बैरामखाँ ही देखता था। उस समय सिवा दिल्ली और आगराके देशका और कोई भाग अकबरके अधिकारमें नहीं था; किन्तु अगले ५० वर्षोंमें उत्तर हिन्दुस्तान करीब-करीब अकबरने अपने अधिकारमें कर लिया। उसकी उत्तम राज्यव्यवस्थाके कारण उसकी गणना संसारके विख्यात और महान् राजपुरुषोंमें की जाती है।

राज्य-प्राप्तिके लिये युद्ध—चौदह वर्षकी अल्पावस्थामें ही अकबरको अनेक संकटोंका सामना करना पड़ा। पञ्जाबमें सिकन्दरशाह सूर, पूर्वी प्रान्तोंमें मुहम्मदशाह अदली और हेमू, मध्य हिन्दुस्तानमें राजपूतानेके हिन्दू राजा, पुराने पठान सरदार और अफ़गानिस्तानके शासक और सरदार

आदि सब अकबरके शत्रु थे और उसके साथ लड़ाई करने की तय्यारियोंमें लगे हुए थे। राज्यका प्रबन्ध बैरामखाँके हाथमें होनेपर भी इन सब बातोंमें अच्छी तरह ध्यान लगाकर अकबर खुद मेहनत करता था। पहले उसने सिकंदरशाह को हरानेका कार्य हाथमें लिया, जो उसके बापने उसे सौंपा था। सिकंदर धीरे-धीरे काश्मीरकी तरफ से पीछे हटने लगा। अकबरकी फ़ौजने उसका पीछा करते हुए उसको शिवालिक पर्वत पर मानकोटके किलेमें आश्रय लेनेके लिये बाध्य किया। इस प्रकार जब कि अकबर पञ्जाबमें उलझा हुआ था, हेमूने दिल्लीपर चढ़ाई कर दी। अकबर-के सरदार अलीकुलीखाँ शैबानी (आगे चलकर इसे अकबरने खानजमाँकी पदवी दी थी) को हेमूने हराकर आगरे पर अधिकार कर लिया; और इसके बाद दिल्लीके पास मुगल सरदार तारदी बेगसे लड़कर उसको भगा दिया। यह एक अत्यन्त कठिन प्रसंग था। उस समय कई सरदारों ने विजयके पश्चात् यह सम्मति दी, कि इस समय हेमूसे युद्ध न किया जाय बल्कि काबुल जाकर पहिले उसको हस्तगत करना चाहिए और फिर वहाँ सेनाका अच्छा प्रबन्ध करके तब हेमूसे युद्ध करना चाहिए। परन्तु बैरामखाँकी यह सलाह अकबरको पसंद आई कि हेमूसे इसी वक्त युद्ध करना चाहिये और उसको प्रबल न होने देना चाहिए। उसने हेमूपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया। ५ नवम्बर १५५६ को पानीपतके रणक्षेत्रमें घोर युद्ध हुआ और हेमू तीर खाकर गिर पड़ा। अपने स्वामीका मरा हुआ समझकर उसके साथियोंमें बहुत खलबली मची जिसके कारण अकबरकी जीत हुई और हेमू उसके हाथ कैद होगया। अकबर हेमूँको मार डालना नहीं चाहता था। लेकिन बैरामखाँने उसकी बात न सुनकर अपनी तलवार से हेमूका सर उड़ा दिया।

बैरामखाँका संरक्षण—इसके बाद अकबरने चढ़ाई करके आगरेको कब्जमें कर लिया। १५५७ के मार्चमें पञ्जाबमें सिकंदरने फिर उपद्रव मचाना शुरू किया। तब अकबरने पंजाबमें जाकर मान-कोटके किले पर छः महोन तक घेरा डालकर सिकंदरशाहको शरणमें आनेके लिये बाध्य किया। इसके बाद दो वर्ष (ई० स० १५५८ व १५५९) बैरामखाँने अकबरके अभिभावकके रूपम राज्यका प्रबन्ध चलाया। किन्तु जब अकबर और बैराम दोनोंका एक साथ मिलकर काम करनेका अवसर आया, तब दोनोंका आपसमें मतभेद हाने लगा। अकबर अपने ऊपर की जिम्मेदारी कभी नहीं टालता था और कार्यमें दक्षता दिखानेवाले को इनाम इत्यादि देनेमें सदा तत्पर रहता था। किन्तु बैराम निष्ठुर, हठी और क्रोधी था। अपने अधि-कारके उपयोगमें वह न्याय और अन्याय का कुछ भी ध्यान नहीं रखता था। इससे उसने अनेक लोगोंको मानसिक कष्ट पहुँचाये। वे लोग बैराम के विरोधी हो गए। अकबरकी भी यह इच्छा होने लगी थी कि राजसत्ता स्वयं मेरे हाथमें हो। एक दिन उसने बड़ी खूबीसे अपनी यह इच्छा बैराम के सामने प्रगट की—"हमने अपना राज्य स्वयं चलानेका विचार किया है। इसलिये आप हमारे कल्याणके विचारसे राज्यका सब प्रबंध छोड़ दीजिये। आपके खर्चकी व्यवस्था ठीक रीतिसे हो जायगी।" यह देखकर बैरामने बलवा कर दिया; किंतु अकबरने उसको हरा कर सम्मानपूर्वक दरबारमें बुलाया (दिसम्बर १५६०)। बैरामने बादशाहसे क्षमा याचना की। अकबर उसके उपकार और योग्यता को जानता था। उसने उससे दरबारका काम करनेके लिये कहा; किन्तु बैरामने मक्का जानेकी आज्ञा माँगी। मक्का जाते समय राहमें किसी पठानने उसको मार डाला। (जनवरी १५६१) बैरामके मरनेके बाद अकबरने उसके बाल-बच्चोंकी अच्छी व्यवस्था कर दी। उसके लड़के मिरज़ाखाँको अकबरने उच्च पदपर नियुक्त करके "खानखाना" की पदवीसे विभूषित किया। बैरामखाँकी शूरता और आपत्कालीन धैर्य आदि गुणोंके कारण अकबरको बराबर उसका स्मरण होता था। हुमायूँको बैरामखाँ जैसे वीरका साथ मिलने के कारण ही वह विपत्तियोंको पार कर सका था और इसीसे अकबरको भी समय पाकर अच्छे दिन देखना नसीब हुआ।

अकबरकी विजय—ई० सन् १५६१ में अकबरने राज्यप्रबंध अपने हाथमें ले लिया। उस समय पञ्जाब, वायव्यकोणके प्रांत, ग्वालियर और अज-मेरके पश्चिमी प्रदेश; लखनऊ, इलाहाबाद और जौनपुर तक का देश उसके अधिकारमें था। बना-रस, चुनार, बंगाल, और बिहारके प्रान्त अभी तक सूरवंशके लोगोंके मातहत थे। १५६० ई० से लेकर १५६७ ई० तक अकबरका समय बलवों के दबाने में ही व्यतीत हुआ। तेजीके साथ काम करना, जीते हुए शत्रुको क्षमा करना, उदारताके साथ बर्ताव करना आदि आदि गुणोंकी झलक अकबरमें इसी समयसे दिखाई देने लगी थी। राज्यारोहण के छः वर्ष उपरांत अकबरने मालवा प्रान्त जीत लिया।

१५६२ ई० में जोधपुरके उत्तर-पूर्वमें ७६ मीलपर मेड़ता नामका एक बड़ा शहर अकबरके हाथ लगा। इसी समय अकबरके मालवा प्रान्तके सेनापतिने पश्चिममें चढ़ाई करके बीजागढ़ और बुरहानपुर पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने रावलपिंडी जिलेके ईशान्य भागमें रहने वाले गक्खर लोगोंको तथा काबुलके बलवेको दबाया। इसी समय एक खेदजनक घटना हुई। मालवा प्रान्तमें बाजबहादुर नामक सरदारने जो विद्रोह मचाया था, उसे दबानेके लिये अकबरने अपनी दाईके पुत्र आदमखाँको भेजा। आदमखाँने बाजबहादुरको परास्त किया; परन्तु स्वयं उसने बहुतसे अत्याचार किये। उसने सारी लूट अपने लिये रख ली और साथही साथ बाजबहादुरके ज़नानखानेको भी अपने पास रख लिया। जब अकबरको यह मालूम हुआ तो उसने उसे बरखास्त कर दिया। इसपर आदमखाँने, यह समझकर कि बादशाहका मन्त्री शमसुद्दीन मेरा नाश करना चाहता है, उसे जानसे मार डाला। यह सुनकर अकबरने आदमखाँको छतपर से गिरवाकर उसके प्राण ले लिये। (मई सन् १५६२ ई०)

सन् १५६४ ई० में चुनारका किला जो पूर्वीय प्रान्तोंका प्रवेशद्वार समझा जाता था—आदिलवंश के एक गुलामके कब्जे में था। उसने वह किला अकबरके हाथमें सौंप दिया। चुनार हाथमें आ जानेके कारण मुगलोंने चौरागढ़की रानी को पराजित करके नरसिंहपुर जिला और होशंगाबादका कुछ भाग सरलतासे ले लिया। सन् १५६५ ई० की गरमीमें अकबरने आगरे का किला बाँधना आरंभ किया और ३५ लाख रुपया खर्च करनेके पश्चात् आठ वर्षोंमें वह किला तैयार हुआ। इसी वर्ष वर्षा-ऋतुमें जौनपुरमें उज़बेक सरदारोंने विद्रोह खड़ा किया। अकबरने विद्रोह दबा दिया। इस चढ़ाई में बादशाहके सेनापतियोंने बिहारके रोहतास किले पर अधिकार जमाया तथा बिहारके राजाके वकीलने आकर बादशाहको नज़राने दिये। अकबरके आगेके दो वर्ष विद्रोह दबाकर राज्यमें शांति स्थापित करनेमें ही बीते।

सन् १५६८ ई० में अकबरने राजपुताने पर चढ़ाई करके चित्तौर हस्तगत किया और उसके अगले वर्ष—सन् १५६९ ई० में जयपुरके राजाका रणथम्भोर किला ले लिया। इसी साल उसने फतेहपुरसिकरी शहर बसाया। सन् १५७२ ई० तक करीब-करीब सभी राजपूत राजा अकबरके आधीन हो गये थे।

सन् १५७२ ई० के सितंबर महीनेमें अकबरने गुजरातकी चढ़ाईका काम अपने हाथोंमें लिया। गुजरातमें इस समय बहुत छोटे-छोटे मुसलमान राजा राज्य करते थे। वे बीच-बीचमें अपने राज्यके आसपास भी उपद्रव मचाते थे। अभीतक जब-जब अकबर लड़ाई पर जाता था, तब तब उसे इस बातका हमेशा डर बना रहता था, कि कहीं उसके पीछे उसके सरदार विद्रोह न करें। परन्तु इस चढ़ाईके समय वह बिलकुल निश्चिन्त था। इतना ही नहीं, जयपुरके भगवानदास और मानसिंह दोनों राजपूत सरदार इस लड़ाईमें उसकी ओरसे लड़ रहे थे। गुजरातमें जिन्होंने अकबरसे विरोध किया, उनमें भड़ोच, बड़ौदा और सूरतके राजा मुख्य थे। उन सबको पराजित करके तथा गुजरातके शासन-प्रबन्धके लिये अहमदाबादमें अपना सूबेदार नियुक्त करके सन् १५७३ ई० के जून महीनेमें अकबर आगरे लौट आया। उसी साल जब अकबरने गुजरातमें विद्रोह की खबर सुनी, तो उसे फिर वहां जाना पड़ा।

अकबरके शासनकालके ग्यारहवें वर्षके अंतमें उसके राज्यमें पञ्जाब, काबुलके साथ वायव्य, मध्य तथा पश्चिमी हिन्दुस्तानका भाग आ चुका था। पूर्वमें कर्मनाशा नदी उसके राज्यकी सीमा थी। उस नदीके दूसरी ओर बंगाल तथा बिहार प्रान्त थे। वहाँके अफगान राजाने नाममात्रको अकबरका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था, पर उसने अकबरको कभी कर नहीं दिया। गुजरात की दूसरी चढ़ाईके बाद अकबरने स्वयं पटने पर चढ़ाई करके उसे हस्तगत किया। तत्पश्चात् उसकी सेनाने मुंगेर, भागलपुर गौड़, आदि पर अधिकार जमाकर अफगान सरदार दाऊदको शरणमें आनेके लिये बाध्य किया। इस प्रकार सन् १५७५ ई० में करीब-करीब सारा बंगाल और बिहार प्रांत मुगलोंके अधिकार में आ गया।

अकबरके वशमें न आनेवाला यदि राजपुताने में कोई राजा था, तो वह मेवाड़का राणा-प्रतापसिंह था। अकबरने उसका अधिकांश राज्य अधिकृत कर लिया था, फिर भी राणा जंगलोंमें रहकर अपने विश्वासी अनुयायिओंकी सहायतासे अकबरका विरोध करता ही रहा। उसको पराजित करनेके लिये सन् १५७६ ई० में अकबरने मानसिंहके मातहत सेना भेजी। पीछे उसने स्वयं मेवाड़में प्रवेश किया। मानसिंहने उस वर्षके दिसम्बर महीनेमें हल्दीघाटीकी लड़ाई में प्रतापसिंह को हराया। परन्तु इसके बाद भी

कितने ही वर्षों तक मुगलसेना जंगल-जंगल राणा-प्रतापसिंहका पीछा करती रही। किन्तु प्रताप-सिंहने अंततक मुगलसेनाकी दाल गलने न दी। (प्रतापसिंह देखिये) सन् १५७७ ई० में उड़ीसामें दाऊदखांका विद्रोह दबाया गया। सन् १५७७ और सन् १५७८ ई० में अकबरने अपना सारा समय मेवाड़, बुरहानपुर तथा गुजरातकी राज्य-व्यवस्था सुधारनेमें ही व्यतीत किया। सन् १५८१ ई० की महत्वपूर्ण बात यह है कि इस साल जज़िया कर माफ कर दिया गया तथा राज्यके एक भागसे दूसरे भागमें जानेवाले माल पर जो कर लिया जाता था, वह भी उठा दिया गया।

अकबरकी इच्छा थी कि मेरा राज्य चिरस्थाई तथा प्रजाके लिये सुखकर हो। इस कारण वह पहलेसे ही राजपूतोंको अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता रहा। वह सबके साथ सामान बर्ताव करता था। किसीको किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचने देता था। धार्मिक मामलोंमें किसी पर जुल्म नहीं करता था। उसने इसी नीतिसे चल-कर और लोगोंके साथ प्रेमका व्यवहार करके तमाम हिन्दुस्तानको अपने अधिकारमें करनेका निश्चय कर लिया था। जज़िया कर की तरह हिन्दू-यात्रियोंको एक प्रकारका कर देना पड़ता था, वह भी बन्द कर दिया गया। राजपूतोंसे (जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेरके घराने) विवाह संबंध स्थापित करके तथा उन्हें सेना-विभागमें बड़े-बड़े स्थान देकर उसने उन्हें अपना लिया। उसने सब जातियोंके लोगोंको अपने राज्यमें नौकरियां दी।

सन् १५८२ ई० में अकबरके भाई हकीमने, जो काबुलमें राज्य करता था, पंजाब पर चढ़ाई कर दी। अकबरने हकीम पर चढ़ाई करके खुद काबुलमें उसे पराजित किया। फिर भी उसने काबुल प्रान्त उसीके अधिकारमें रहने दिया। हकीमकी मृत्युके पश्चात् सन १५८५ ई० में अक-बरने कुछ दिनोंके लिये काबुलका शासनप्रबंध मानसिंह को सौंपा था। परन्तु वहां की प्रजाने अकबरसे निवेदन किया कि हमलोगोंको राजपूत सूबेदार नहीं चाहिए। इसपर अकबरने उसी समय वहां एक मुसलमान सूबेदार नियुक्त करके मानसिंहको बंगालका सूबेदार बनाया (सन्१५८७ ई०)। सन् १५८४ ई० में अकबरने बंगालमें शांति स्थापित की तथा गुजरात का विद्रोह दबाकर उसे सदाके लिये अपने राज्यमें मिला लिया।

सन् १५८४ से १५६८ तक लाहौर अकबर की राजधानी थी। अकबरको अपने भाई हकीमकी मृत्युकी खबर अपने शासन-कालके ३१ वें वर्ष के आरंभमें मिली। उसी समय उसने यह भी सुना कि उज़्बेकोंने सीमाप्रान्त–बदकशांपर आक्रमण किया है और वे लोग काबुलपर भी कब्जा करना चाहते हैं। इस कारण वह नवम्बर महीनेमें पंजाब की ओर रवाना हुआ। उसने अटक पहुँच कर एक सेना काश्मीरमें, दूसरी बलूचियोंकी शक्ति कम करनेके लिये और तीसरी सुवात प्रान्तमें भेजी। दूसरी सेना शीघ्रही यशस्वी हुई। परन्तु पहली सेना काश्मीरके राजा द्वारा अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लेनेपर ही संतुष्ट होकर लौट आई। तीसरी सेनाको पीछे अच्छी सहायता मिल जानेके कारण यश मिला किन्तु उसकी बड़ी दुर्दशा हुई और अकबरका कृपापात्र सरदार बीर-बल इस लड़ाईमें काम आया।

सन् १५८७ ई० में काश्मीर में विद्रोह होनेके कारण अकबरकी सेनाको वह प्रांत वहांके मुसल-मान राजाओंसे वापस लेनेमें कठिनाई न पड़ी। सन् १५८८ ई० में अकबरने सिंधप्रान्त अपने राज्यमें मिला लिया। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर सन् १५६२ ई० तक उस प्रांतपर पूर्ण-रूपसे अधिकार नहीं कर सका था। सन् १५६० ई० में गुजरातके सूबेदार ने काठियावाड़ तथा कच्छ-प्रान्त बादशाहके राज्यमें मिलाये और सूबेदार मानसिंहने उड़ीसाप्रान्त पूर्ण रूपसे मुगलशासनके अधीन किया। सन् १५६४ ई० में उसने कंदहार पर अधिकार कर लिया।

अहमदाबाद राज्यमें अशान्ति देखकर अकबर ने अपनी सेना उधर भेजी। वहाँ दक्षिणी तथा परदेशी मुसलमानोंके बीचका झगड़ा बढ़ गया था। चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। अह-मदनगर की सेना चाँदबीबीके अधिकारमें थी। उसने बड़ी वीरताके साथ युद्ध कर मुगलों को नीचा दिखाया। फिर भी अन्तमें उसे संधि करनी पड़ी। मुगलोंको बरार प्रान्त देनेका वादा किया गया (सन् १५६६ ई०); परन्तु कथनानुसार उक्त-प्रान्त मुगलोंके हाथमें न आनेके कारण फिरसे युद्ध आरम्भ हो गया। स्वयं अकबर सन् १५६६ई० में नर्मदा पार करके दक्षिणकी ओर गया। इतने-ही में (जुलाई सन् १६०० ई० में) चाँदबीबीका खून हो गया और अहमदनगरकी शासन-व्यवस्था बिलकुल बिगड़ गयी। निजामशाहीका कोई भी रक्षक न रहा। इस कारण सन् १६०० ई० में अह-

मदनगर शहर अकबरके हाथ आगया। फिर भी वह अहमदनगरका सारा राज्य न ले सका। अनेक राजनीतिज्ञोंने निज़ामशाहीका तख्त दूसरी जगह ले जाकर वहाँ कुछ दिनों तक राज्य किया। तत्पश्चात् अकबरने सारा खानदेश अपने अधिकारमें कर लिया। उसने बरार और खानदेश का शासन-प्रबंध अपने चौथे लड़के दानियालको सौंपा। इसके बाद सन् १६०१ ई० में वह आगरे को लौट आया।

अकबर का अन्तिम काल अत्यन्त कष्टके साथ बीता। उसके संबंधियोंमें से तथा मित्र मंडलीमें से बहुतसे लोग एक-एक करके मर गये, जिससे उसे बहुत दुःख हुआ। सलीमने भी उसे दुःख दिया। वह विद्रोही और क्रोधी था। फैजी सलीमका शिक्षक था, परन्तु उन दोनोंमें बनती न थी। सलीम दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य था। वह अपनी दादीका भी अपमान करता था। इलाहाबादमें सलीमने अपने बापके नियुक्त किये हुए कर्मचारियोंको निकाल कर अपने कृपापात्रों को नियुक्त किया। इसके सिवा वह बिहारप्रान्तकी वसूलीका रुपया अपने पास रख कर वहाँ स्वतंत्र रूपसे शासन करने लगा था। इसके बाद जब अबुलफ़ज़ल दक्षिणकी लड़ाईसे लौट रहा था, उसने ओच्छांके राजासे उसका खून करवा डाला। इस भयंकर अपराधके लिये भी अकबरने सलोमको कठिन सजा न दी। इससे इतिहासवेत्ता अनुमान लगाते हैं कि अकबरका हृदय अत्यन्त दुर्बल होगया था। परन्तु मालिसनका कहना है कि अकबरको अन्त तक यह मालूम न हुआ कि अबुलफ़ज़लके खूनमें सलीमका भी हाथ था।

अकबरको लड़कोंसे कुछ भी सुख न मिला। प्रथमतः उसे दो जोड़वाँ पुत्र हुए, परन्तु वे बचपन ही में मर गये। उसका तीसरा लड़का सलीम, चौथा दानियाल और पांचवाँ मुराद था। इनमेंसे दानियाल बुद्धिमान था, और हिन्दीमें कवितायें भी किया करता था। अपने दो भाइयोंकी तरह वह भी शराबी था। थोड़ेही दिन पहिले दक्षिणकी लड़ाईमें जालनामें मुरादकी मृत्यु हुई। सन् १६०५ ई० में अकबरका प्यारा बेटा दानियाल भी इसी कारण मर गया। इसपर अकबर पागलसा होगया और बुरी तरह बीमार पड़ गया। शीघ्रही १५ अक्तूबर सन् १६०५ ई०को आगरेमें अकबरकी मृत्यु हो गई। जिस समय वह बीमार था, उसी समयसे राजगद्दीके लिये झगड़े होने लगे। किन्तु अन्तमें अकबरने निश्चित किया कि सलीमही गद्दी पर बैठे। अकबर धर्मके संबन्धमें बहुतही उदार था, तथापि मृत्युके समय उसने इस्लाम धर्मकी आज्ञाओं का पालन किया। मौलवीको बुलाकर उससे कलमा पढ़वाया और उसके साथ साथ स्वयं भी पढ़ा।

स्वभाव-वर्णन—अकबरका शरीर मोटा और रंग गोरा था। उसका ललाट चौड़ा तथा चेहरा तेजस्वी था। वह सादगीसे रहता था और प्रत्येक काम नियमपूर्वक करता था। वह सदा किसी न किसी काममें लगा रहता था। वह बहुत कम सोता था। अकबर बाल्यावस्थामें बहुत खाता था, परंतु धीरे धीरे वह बहुतही मिताहारी बन गया। अबुलफ़ज़लका कहना है, कि वह एकही वक्त खाना खाता था और उसका ध्यान पदार्थोंकी ओर नहीं रहता था। आखिर में उसने मांस खाना भी छोड़ दिया। वह बहुधा उपवास भी करता था। कभी कभी वह मद्य, अफीम और गांजेका सेवन भी करता था। अकबर बड़ा सहनशील था और साथ ही उसे सतत परिश्रम करनेकी आदत थी। कहते हैं कि वह घोड़ेपर चौबीस घण्टेमें २४० मीलकी दूरी तय करता था। मर्दाने खेल उसे बहुत अच्छे लगते थे। शिकारमें उसे बड़ा आनन्द मिलता था। उसने अपनी बन्दूकोंके भिन्न भिन्न नाम रक्खे थे और यह निश्चित कर रक्खा था किसका उपयोग कब करना चाहिये। वह बड़ा प्रतिभाशाली था और उसे यांत्रिक कला बहुत अच्छी लगती थी। उसने अपनी बुद्धिसे बहुतसी युक्तियाँ निकाली थीं। वह नये प्रयोग तथा नये नये पदार्थ तैयार करना चाहता था। फिर भी यह बात नहीं है कि उसके सभी प्रयोग बुद्धिमत्तापूर्ण हुआ करते थे। उसने यह बात देखनेके लिये, कि मनुष्यका स्वभाविक धर्म कौनसा है, कुछ नन्हे-नन्हे बच्चोंको एक-साथ बंद कर रक्खा और ऐसी व्यवस्था कर दी कि कोई उनसे बोलने न पावे। जब चार वर्ष बाद बच्चे बाहर निकाले गए तो मालूम हुआ कि वे गूँगे होगये। उसने गंगाके उद्गम का पता लगाया। उसे चित्रकलाका भी शौक था। उसने कलाको बढ़ाया और उसका बहुत कुछ सुधार कराया। अकबर को गाने का भी शौक था। पहले पहल हिन्दुस्तानमें तम्बाकू उसीके समय में आयी। उसने स्वयं भी उसका प्रयोग किया।

उसने हिन्दुओंका प्रसन्न रखनेके लिये बहुत से काम किये। हिन्दुओंकी उन प्रथाओंको जो कि उसे अच्छी नहीं जँचीं उसने बन्द कर दिया। उसने बालविवाह, पशु-यज्ञ आदि बन्द करा दिये

तथा पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा दे दी। उसने यह कानून बनाया कि कोई किसी स्त्रीको जबरदस्ती सती होनेके लिये बाध्य न करे।

अकबर मित्र बनाने में बड़ा कुशल था। यद्यपि वह बहुत पढ़ा लिखा नहीं था, तथापि बड़े बड़े विद्वानोंसे कुशलताके साथ भाषण करता था। साथही परिमित ज्ञान होनेके कारण किसी बातपर उसका विश्वास शीघ्रही बैठ जाता था। कभी-कभी वह किसी बातपर बिना पूर्ण रूपसे विचार कियेही उस काममें हाथ डाल देता था। पहले खलीफा मंचपर खड़े होकर उपदेश किया करते थे। यह सोच कर कि हम भी उसी प्रकार करें अकबर फतेहपुर सीकरीमें उपदेश देनेके लिये खड़ा हुआ, परन्तु कुछ भी बोल न सका और चुपचाप बैठ गया।

शासन-शैली—अकबरमें सबसे बड़ा गुण प्रजा-रंजन था। वह हमेशा चाहा करता था, कि लोगोंको अति शीघ्र न्याय प्राप्त हो। जिस शहरमें वह रहता था, उस शहरके सभी मुकदमों का वह स्वयं निर्णय करता था। सामान्य दर्जेके लोगोंके साथ वह समानताका व्यवहार करता था। परन्तु सरदार तथा बड़े लोगोंपर उसका कटाक्ष रहता था। वह किसीके कहनेमें नहीं आता था। उसके स्वभावमें मृदुता और कठोरताका विलक्षण संमिश्रण हुआ था। फिर भी हम उसे दयालु और मिलनसार कह सकते हैं।

अकबर बलवान तथा निशाना मारनेमें बहुत ही कुशल था। 'संग्राम' नामक उसकी एक प्यारी बन्दूक थी। उस बन्दूकसे उसने हजारों मनुष्यों को यमलोक पहुँचाया था। व्यवहार की बहुतसी बातें वह स्वयं करना जानता था। तोप छोड़ने तथा बंदूक बनाने के कामों की देखभाल वह स्वयं करता था। दंगल, कसरत, जानवरोंकी लड़ाई आदिके देखने का उसे बड़ा शौक था। पोलो खेलना वह खूब पसन्द करता था। उसकी पाचनशक्ति भी बड़ी अच्छी थी। उसे फलोंका भी शौक था। उसने अनेक प्रकारके फलोंके पेड़ दूर-दूरके देशों से मँगवाकर हिन्दुस्तानमें लगवाये। उसे सुगन्धि से बहुत प्रेम था। किसी किसी अवसर पर उसने क्रूरता के व्यवहार भी किये।

अबुलफ़ज़ल ने अकबर की राजनीतिका वर्णन किया है। वह कहता है, कि "लोगोंकी चाल-ढाल सुधारना, खेतीकी उन्नति करना, सेना तथा राज्यके अनेक अंगोंकी उत्तम व्यवस्था करना, उपर्युक्त कार्य करते समय लोगोंको प्रसन्न रखना, कर वसूल करनेकी व्यवस्था ठीक रखकर, किफायत के साथ खर्च करना—आदि बातोंको ध्यानमें रखकर अकबर अपने काम करता था।" अकबर भली भांति जानता था कि हिन्दुस्तानमें राज्य करना हो, तो वहां के राजाओं के साथ मित्रता करना आवश्यक है। इस कारण धर्म तथा राज्य-प्रबंधके संबंध में लोगों के साथ दयालुता का व्यवहार करनेका उसने निश्चय किया। उसके शासनकालके पूर्वार्धमें उसका व्यवहार कट्टर मुसलमानके समान था, परन्तु उत्तरार्धमें—जबसे उसका और अबुलफ़ज़लका साथ हुआ—उसने विधर्मियोंके साथ प्रेम और दयाका व्यवहार करना आरम्भ किया। छोटी-छोटी बातोंके लिये भी उसने सूक्ष्म नियम बना रक्खे थे। हाथियोंको ठीक प्रकारसे चारा आदि मिलता है या नहीं, यह देखनेके लिये उसने हाथियोंके तेरह विभाग किये थे। अकबर किसी भी विषयका पहले वर्गीकरण करके पीछे उसकी व्यवस्था करनेका आदी था। विभिन्न राजघरानों से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़कर उनसे पहुँचने वाली हानिको उसने बिलकुल ही मिटा दिया। उसे मालूम हुआ, कि हिन्दू तथा मुसलमानोंका रक्त-मिश्रण होनेसे बहुत लाभ होगा। परन्तु इस बातको सर्व-साधारण में प्रचलित करनेमें इस्लाम धर्म बाधक होता था। इसलिये उसने अपने धार्मिक विश्वास में परिवर्त्तन किया। राजपूतोंके साथ उसके युद्ध करनेका मुख्य कारण राज्यका विस्तार करना नहीं, था वरन् उनसे मित्रता स्थापित करना था। उसे राजपूतोंकी सहायता मिली थी, इसी कारण अफ़ग़ान और मुग़ल उसके सामने सर न उठा सके।

अकबरका महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने सारे उत्तर-भारतको पूर्ण रूपसे अपने अधिकारमें कर लिया—और उसका सुन्दर बन्दोबस्त कर दिया। उसके राज्यके १६ मुख्य सूबों में १ काबुल, २ लाहौर, ३ मुलतान, ४ सिंध, ५ गुजरात ६ मालवा, ७ अजमेर, ८ दिल्ली, ९ आगरा, १० इलाहाबाद, ११ अयोध्या, १२ बिहार, १३ बंगाल १४ बरार, १५ खानदेश और १६ अहमदनगर थे। (उड़ीसा और काश्मीर बादमें हुए) सन् १५९६ ई०में अकबरके राज्यके बारह सूबे थे और उनमें १०५ 'सरकार' थे। उनसे ९ करोड़ रुपयेकी आमदनी थी। वही धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते १४ करोड़ रुपये तक हो गयी। पीछे वह अधिकसे अधिक १७॥ करोड़से आगे न बढ़ सकी। प्रत्येक सूबेमें एक

सूबेदार रहता था और उसे मुल्की और फौजी दोनों तरहके काम सौंपे गये थे।

हिन्दुस्तानमें सरकारकी आमदनीका मुख्य आधार कृषि-कर होनेके कारण यह बड़ा महत्वपूर्ण था। अलाउद्दीन तथा शेरशाहने इसके सम्बन्धमें बहुतसे नियम बनाये थे। सन् १५८२ ई० में अकबरने समस्त राज्यके बारह सूबे किये और राजा टोडरमल और शाहमनसूरको जमाबंदीके काम पर नियुक्त किया। उसने तीसरी जमाबंदी करवाई। दस वर्षके आंकड़ोंकी औसत लेकर भूकर निश्चित कर दिया गया। अकबरने असामियोंसे नकद रुपये लेनेकी प्रथा आरम्भ की। सारे जमीनकी पैमाइश करनेके पश्चात् किश्त बाँधी गयी। सामान्यत: आमदनी का तृतीयांश लेनेकी प्रथा थी।

मालगुजारीके अतिरिक्त किसानोंके दूसरे कर माफ कर दिये गये। और इजारेसे जमीन देनेकी प्रथा बन्द कर दी गयी। अकबरकी इच्छा थी कि किसान परिश्रम करके अपनी आमदनी बढ़ावें। इसलिये वह उन्हें पेशगीके रूपमें कर्ज दिया करता था। अकाल पड़ने पर सरकारी कर पूरा अथवा अंशतः माफ कर दिया जाता था। उसने ऐसे कानून बनाये, जिनसे कर वसूल करनेवाले कर्मचारी घूस, नज़राने आदि लेकर प्रजाको कष्ट न दें। सरकारी कर्मचारियों द्वारा कानून तोड़े जानेकी शिकायत आने पर वह उन्हें कठिन दंड देता था। खेतीके काममें न लायी जानेवाली जमीनको परती बनानेके लिये अकबरने लोगोंको प्रोत्साहन दिया तथा उनके लिये बहुतसी सुविधाएँ कर दी थीं। प्रत्येक किसानके पास कितनी जमीन है, उसको कितना कर देना पड़ता है आदि बातें बराबर लिख ली जाती थीं।

हिन्दू और मुसलमान दोनोंसे समान कर लिया जाता था। अकबरका मत था, कि हिन्दुओं पर करका अधिक बोझ न पड़े। मालगुजारीके अतिरिक्त तैयार की हुई बहुतसी चीजों पर भी कर देने पड़ते थे। अकबरने जज़िया जैसे बहुत से कर उठा दिये थे फिर भी उसने बहुतसे नये कर लाद दिये थे।

अकबर की सैनिक व्यवस्था बहुत उत्तम थी। उसने राजपूत राजाओं को सेनामें ऊँचे ऊँचे स्थान दिये, जिससे वे खुश थे। फौजी अफसरों को जागीरें न देकर मुशाहरा निर्धारित कर दिया गया था। अकबरके पास दो तरहकी सेनाएँ थीं। एक मुगल सेना और दूसरी राजपूत सेना। मुगल लोग भाड़ेके टट्टुओंकी तरह काम करते थे पर राजपूत पक्के स्वामिभक्त थे। बहुतोंका कहना है कि अकबर औरङ्गजेबसे भी अधिक क्रूर था। हाँ, वह क्रोधके आवेशमें आकर क्रूर कर्म नहीं करता था, इसी कारण वह गरीब और दयालु मालूम पड़ता है। आरम्भमें (उ० चित्तौरके घेरेके बाद) अकबरने क्रूर आचरण भलेही किया हो पर जीवनके अंतिम भागमें उसने प्रजाके हितके लिये बहुतसे काम किये। युद्ध में कैद किये हुए लोगोंको गुलाम बनानेकी प्रथा उसने बन्द कर दी। सारे राज्यकी मर्दुमशुमारी करानेका यह अभिप्राय था, कि करका बोझ सबपर बराबर पड़े। अकबरने लोगों के नैतिक आचरण सुधारने के लिये बहुत प्रयत्न किये। यद्यपि उसने अपनी वासनाओंकी पूर्तिके लिये पराई स्त्रियोंको धर्म-भ्रष्ट किया था, तथापि उसने व्यभिचार बन्द करने के बहुत से उपाय किये। अत्यधिक शराब पीनेवाले को दंड देना निश्चित किया। इसमें शक नहीं कि अकबर एक महान प्रतापी राजपुरुष हो गया है। वह बिलकुल पक्षपात-रहित था। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच वह किसी प्रकारका भेद नहीं मानता था। उसने दोनों धर्मोंकी बुराइयाँ दूर करनेका प्रयत्न किया। वह अत्यन्त परोपकारी था। उसने नये-नये नियम बनाकर—जिनमें नीति तथा उदारता झलकती थी—मुगल साम्राज्यको नींव पक्की जमा दी। उसने भिन्न भिन्न जातियों और धर्मोंके परस्पर विरोधी भावोंको बुद्धिमानीसे दबाकर उन्हें अच्छा रूप दिया।

उसके लड़कपनका सारा समय खेलकूदमें ही व्यतीत हुआ; परन्तु बुद्धिमान लोगोंकी संगतिसे वह ऐसा महापुरुष हो सका। सबके साथ सहानुभूति प्रगट करनेका उसमें एक खास गुण था। वह गुणग्राही और लोकसंग्रही था, इस कारण उसके आस-पास बहुतसे सद्गुणी पुरुषों का जमघट हो गया था। अबुलफज़ल और उसका भाई फैजी-दोनोंही विद्वान तथा चतुर थे। वे दोनों अकबरके यहाँ रहते थे।

फैजी शाहजादा मुराद का गुरु था। अकबर फैजीकी कविताओंको बहुत पसंद करता था इसीलिये आगे चलकर वह 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया गया। फजल सब धर्मोंको समान दृष्टिसे देखता था। वह बड़ा भारी पंडित था। उसने उलेमाओंको परास्त किया। असाधारण बुद्धिमान होनेके कारण बादशाह उसका रोब मानता था। अकबर द्वारा उसने प्रति बृहस्पतिवारको धार्मिक वादविवाद आरंभ करनेका सिलसिला जारी किया। वह लेखक भी था।

उसकी भाषा सीधी-सादी थी। अपने लेखों में वह सबके प्रति प्रेम और आदर व्यक्त करता था। 'अकबर-नामा' ग्रंथ उसीका लिखा हुआ है। इसके तीन भाग हैं। अन्तिम भागको 'आइने अकबरी' कहते हैं। इसमें अकबरकी शासन व्यवस्थाका वर्णन है। तत्कालीन परिस्थितिका अध्ययन करनेमें इस ग्रंथसे अच्छी सहायता मिलती है। आइने अकबरीका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है।

राजा मानसिंह अकबरका एक सेनापति था। बादशाहने उसे 'मिर्जा' की उपाधि दी थी। 'मिर्जा' का अर्थ होता है 'राजकुमार'। इसी मानसिंहके कारण अकबरने बहुतसे रणक्षेत्रोंमें विजय प्राप्त की थी। गुजरातकी चढ़ाईमें अकबरको मानसिंहने घोर संकटसे बचाया था। चित्तौरगढ़को दखल करनेमें भी मानसिंहका बहुत बड़ा हाथ था।

राजा टोडरमलके सुपुर्द जमाबन्दीका काम था। परन्तु कई जगहोंके बलवाइयोंको दबानेका भार उन्हीं पर आ पड़ा। अकबरने कानून बनाकर सब हिसाब-किताब फारसीमें रखवाए। फारसी दरबारी भाषा हुई और हिन्दुओंको मजबूरन उसका अध्ययन करना पड़ा। जो हिंदू फारसीका अच्छा विद्वान होता था उसे फौरन राजकी नौकरी मिल जाती थी। राजा टोडरमल ने जमाबंदीमें बहुतसे सुधार किये। जमाबंदी और सैनिक व्यवस्थामें उस समय उसकी जोड़का दूसरा आदमी नहीं था।

अकबरके दरबारका दूसरा प्रसिद्ध मनुष्य बीरबल था। यह गरीब ब्राह्मण था, परंतु इसकी हाजिर-जवाबीसे खुश होकर अकबरने इसे अपने पास रख लिया। राजपूत राजाओंके दरबारोंमें वह राजप्रतिनिधिका काम करता था। वह राजपूतोंको मुगलोंके साथ सुलह करनेमें सहायता देता था और शाही खानदानके साथ व्याह-शादी तय करनेकी जिम्मेदारी भी उसी पर थी। इसकी बोलचाल बहुतही सीधी पर अर्थयुक्त हुआ करती थी। हिन्दू धर्मकी बहुतसी उत्तम-उत्तम तत्वज्ञानकी बातोंका उसने बादशाहके हृदयमें बीज बो दिया था, इसी लिये बहुतसे मुसलमान सरदार उससे अकारण द्वेष रखते थे।

भारतप्रसिद्ध गायक तानसेन भी अकबरके दरबारका एक रत्न था। पहले पहल उसका गाना सुनतेही बादशाहने उसे दो लाख रुपया इनाम दिया। इसकी बनाई हुई बहुतसी कविताएँ हैं जिनमें हरएकमें अकबरका नाम पाया जाता है।

इन लोगोंके अलावा एक और विद्वान उल्लेख योग्य है। इनका नाम था बदायूनी। यह संगीत, ज्योतिष और इतिहासका प्रेमी था। संस्कृतका अध्ययन कर इसने महाभारत और रामायणका फारसीमें अनुवाद किया। इसने 'मुन्तखाबुत्त-वारीख' नामका एक ग्रंथ लिखा है जिसमें अकबर के शासनकालका पूरा इतिहास है। चूंकि यह कट्टर मुसलमान था, इसलिये अकबरका प्रीति-भाजन न हो सका।

इस तरह दिखायी देगा कि अकबरके दरबारमें बहुतसे विद्वान एकत्रित थे। केवल नौ रत्नही नहीं, हजारों रत्न दरबारकी शोभा बढ़ाते थे। धींगाधींगीके समयमें गुणी और पराक्रमी लोग सामने आ सकते थे। अकबरके समयमें बाहरसे बहुतसे मुसलमान भारतवर्षमें आये। दरबारमें एक दिन भी ऐसा व्यतीत नहीं होता था जिसमें किसी गुणीका आदर न हुआ हो। केवल भारत-वर्षही के नहीं, समस्त संसारके गुणी लोग उस समय दरबारमें आकर अपने गुणोंके कारण उचित आदर पाते थे। इन लोगोंकी अच्छी खातिर होती थी और इनके उत्तम विचारोंकी कद्र की जाती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि मुगलसाम्राज्यकी कीर्ति और यश चारों ओर फैलने लगा।

अकबरने लीलावती, जातक, हरिवंश आदि ग्रंथोंके फारसीमें अनुवाद कराये। अकबरके समयके अनेक इतिहास फारसीमें मिलते हैं।

अपनी बादशाहतको कायम रखनेके इरादेसे अकबरने जो कार्य किये उनमें नवीन धर्मकी स्थापना एक खास बात थी। धार्मिक विषयोंमें अकबर उदार और जरा ढीला था। मुसलमानों का कट्टरपन उसमें न था। 'नवरोज'का त्योहार मुसलमानी त्योहार न होते हुए भी अकबर उसमें शामिल होता था। दरबारमें भिन्न-भिन्न पोशाक परिधान कर वह सप्त-ग्रहों की पूजा करता था। उसी प्रकार अपनी राजपूत-रानियोंके साथ बैठ-कर वह यज्ञ होम आदि भी किया करता था। आरंभमें अवश्यमेव उसका बर्ताव एक कट्टर मुसलमानके जैसा था।

अकबर द्वारा इस्लाम धर्मकी अवलेहना होते देख उलेमा दुखी होते थे। दरबारमें उनकी प्रतिष्ठा थी। महत्वपूण प्रश्नोंका निर्णय बगैर इन लोगोंकी सम्मतिके नहीं होता था। बैरामखाँको हटाकर शासन व्यवस्था अकबरने अपने हाथोंमें ली

थी। उलेमा इसके विरुद्ध थे। वे लोग चाहते थे कि अकबर उन्हींके आदेशानुसार चले। परन्तु अकबर धार्मिक विषयोंमें उदासीन था। वह दूसरेके अधीन रहकर काम करना पसंद नहीं करता था। इसी लिये उलेमाओंसे उसकी कभी बनती न थी। यही कारण था कि प्रजा भी उलेमाओंको अच्छी नज़रोंसे नहीं देखती थी। इनका झूठा घमंड, अधूरी विद्या और सरकारी नौकरी पानेके लिये उनके घृणित प्रयत्न आदिके कारण जनता उनकी खिल्ली उड़ाने लगी और कई बार इनकी शिकायतें बादशाह तक पहुँचीं। 'सबके साथ समानताका व्यवहार' वाला अकबरका सिद्धांत उन्हें पसन्द न था। परन्तु ऐसे मौकों पर अबुलफजल बादशाहको मदद दिया करता था। अबुलफजलकी इच्छा हुई कि संसारके समस्त धर्मोंके प्रधान तत्त्वोंकी छान-बीन की जाय। उसने अकबरको अपने विचारोंसे सहमत किया। यह कह चुके हैं कि अबुलफजल स्वयं गाढ़ा विद्वान था। उलेमा घमंडी और आत्म-प्रशंसक थे। उनमें कोई भी प्रकांड पंडित न था। जो बातें वे न समझते उन्हें वे छिपा रखते। अबुलफजल झूठे ज्ञानका विरोधी था। इसलिये अबुलफजल ने सोचा कि बादशाहके सामने खुले दरबारमें इन उलेमाओंसे तर्क-वितर्क किया जाय ताकि उनके अधूरे ज्ञानका पता सबको लग जाय। अकबरको यह विचार पसंद आया और उसने हुक्म दिया कि सब प्रश्नोंका विचार खुले दरबारमें मेरे सामने हो। १५७६ में अकबरने फतहपूर सीकरीमें एक मंदिर बनवाया जिसे वह 'इबादतखाना' कहता था। यहीं वह सब धर्मोंके जानकार लोगोंको एकत्रित करता था और यहीं बहस-मुबाहसा हुआ करता था। हर बृहस्पतिवारको बहुधा ऐसे वाद-विवाद हुआ करते थे। इनमें जिस विद्वानका भाषण विशेष महत्वपूर्ण होता था उसे बादशाह की ओर से इनाम मिलता था। इन वाद-विवादों का यह असर हुआ कि अकबर सुन्नी-पंथको छोड़ कर शिया-पंथका कायल हो गया। उलेमा सुन्नी-पंथके अनुयायी होनेकी वजहसे वे शिया-पंथियों को नाना प्रकारके कष्ट दिया करते थे। अकबर यह सोचने लगा कि इन उलेमाओंको परास्त कर इनका अधिकार स्वयं अपने हाथोंमें लेना चाहिये और स्वयं धर्मगुरुका पद सुशोभित करना चाहिये। यही विचार उसने सभाके सम्मुख उपस्थित किए। अकबर जानता था कि उलेमाओंमें मतभेद है। इसलिये उसने निर्णय किया कि जिन प्रश्नों पर उलेमाओंमें मतभेद हो उनका निर्णय बादशाह करे। उलेमा बादशाहके नौकर थे। इसलिये उन्हें लाचार होकर इस हुक्मको मानना पड़ा। इतना होने पर धार्मिक अधिकार धीरे-धीरे बादशाहके हाथोंमें आगये और उलेमाओंकी पराजय हुई। अकबरने उलेमाओंके सभापति और प्रधान विचार-पतिको नौकरीसे हटा दिया। अब तक इस्लाम धर्ममें उलेमाओंका स्थान महत्वपूर्ण था। पैगंबर मुहम्मदके फर्मानोंका कड़ाईके साथ पालन कर वे ज़ुलमी बादशाहोंको बहुत कुछ काबूमें रख सकते थे।

इस तरह उलेमाओंको अधिकार-च्युत कर चुकने पर अबुलफज़लने घोषित किया कि "अकबर बारहवाँ इमाम है। संसारकी भलाईके लिये ईश्वरने ही इस अवतारको धारण किया है।" इस घोषणासे सबको ताज्जुब हुआ। अकबरकी यह धारणा दृढ़ होने लगी कि तारतम्य बुद्धि और सामान्य नीतिके तत्वोंकी चलनीसे जो बातें छन जायँ वे तो सच हैं और बाकी सब झूठ हैं। इस्लाम धर्ममें उसकी श्रद्धा ढीली होने लगी और वह दूसरे धर्मोंकी जानकारी हासिल करने लगा। आत्माका जन्मांतर और उसका मूल प्रकृतिमें लय होना उसे युक्तिसंगत जान पड़ा। सूर्य और अग्निको परमात्माका अंश माननेमें उसे हिचकिचाहट न मालूम हुई। ईसाई धर्मकी ओर भी वह कुछ झुका। उसकी जानकारी हासिल करनेके लिये उसने गोआसे कुछ पादरियोंको अपने यहाँ बुलाया और उनसे बाइबिलकी जान-कारी हासिल की। उसने घोषणा की कि राज्यमें जिसकी इच्छा हो वह ईसाई धर्मका अध्ययन करे और खुलेआम उसका पालन करे। परन्तु स्वयं उसने ईसाई धर्मकी दीक्षा ग्रहण न की।

सब धर्मोंके अच्छे-अच्छे तत्वोंका संग्रह कर अकबरने एक नया धर्म स्थापित किया। उसने उसका नाम 'दीन इलाही' रक्खा और वह स्वयं उस धर्मका पैगम्बर बना। सृष्टिका चमत्कार देखकर सृष्टिकर्ता परमेश्वरका जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है...उसीके आधार पर यह धर्म बना और इसमें सब प्रसिद्ध धर्मोंके अच्छे-अच्छे तत्वोंका समावेश किया गया। इस प्रकार अकबरने इस्लाम धर्म छोड़ दिया। उसने दरबारके मुसल-मानी त्योहार बन्द करा दिये। उसने अनेक मसज़िदें तुड़वा कर वहाँ घोड़ोंके अस्तबल बनवाये और जाति-भेद तथा धर्म-भेद तोड़नेका प्रयत्न किया। उसकी इच्छा थी कि लोग उसे ईश्वरीय अंश समझकर उसका भजन करें। उसने सौर

वर्ष चलाया। हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करनेके लिये उसने गोमांस खाना बंद करा दिया। वह अपनी सालगिरहके दिन हिन्दुओंके समान तुला-दान करने लगा। दूसरी ओर वह पारसियोंकी तरह सूर्यकी उपासना करता था, और नवीन अग्नि तैयार करके उसकी पूजा करता था। लोगोंको चमत्कार दिखाना उसे बहुत पसंद था। रोग अच्छा करनेके लिये वह रोगियोंको अपने चरणोंका तीर्थ देता था। बच्चा होनेके लिये अनेक स्त्रियां उसकी मन्नतें मानती थीं। उसका दर्शन करनेके लिये बहुतसे लोग नित्य सबेरे आया करते थे।

उसका मुख्य उद्देश्य सब जातिके लोगोंको एकही शासनके नीचे लाना था। राज्यमें एकता स्थापित करनेके लिये मुसलमानी धर्म उसे अच्छा नहीं मालूम हुआ। अबुलफजलकी यह कल्पना कि-राजा ईश्वरका अंश है—अकबरने मान ली। अकबर स्वयं इस नये धर्मकी दीक्षा दिया करता था। जो कोई दीक्षा लेनेके लिये आता था उसे अकबर एक चिह्न या स्मारक दिया करता था। उसमें 'अल्लाहो अकबर' लिखा रहता था। अकबर शब्दके दो अर्थ (अकबरका अर्थ बड़ा तथा अकबर बादशाहका नाम) होनेके कारण उपरोक्त वाक्यमें दो अर्थ 'ईश्वर महान् है' तथा 'अकबर ही ईश्वर है' हो सकते हैं।

तथापि उसने इस नवीन धर्मके सम्बन्धमें ज्यादती नहीं की। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि उसने इस धर्मको माननेके लिये लोगोंको विवश नहीं किया। उसका मुख्य उद्देश्य यही था कि राज्यका उत्कर्ष हो। स्वयं-स्थापित धर्मके अभिमानकी विवेकबुद्धि को नष्ट करनेवाली प्रबल वायुने उसके शरीरमें प्रवेश नहीं किया था। इसके अतिरिक्त यह भी नहीं दिखाई देता, कि अकबरने अपना धर्म चलानेके लिये सच्चे धर्म-संस्थापकके समान कठिन उद्योग किया हो। यह बात कहने में अतिशयोक्ति न होगी, कि अकबर सच्ची धर्म-स्थापना करने योग्य था ही नहीं। वह राजनीतिज्ञ था और इसी लिये कि संसारके व्यवहार अच्छी तरह चले, उसने ये सब प्रयत्न किये। उसके धार्मिक परिवर्तन कितनेही योग्य क्यों न हों, पर यदि उनसे राज्यके काममें किसी प्रकारकी बाधा पड़नेकी संभावना होती थी तो वह उन्हें स्वीकार नहीं करता था। धर्मके सम्बंधमें उसने किसी पर अत्याचार नहीं किये। उसका विश्वास था, कि प्रत्येक धर्ममें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है। उसकी बुद्धि किसी भी विषय पर स्वतंत्र रूपसे विचार करने योग्य थी; किन्तु वह हठी न था।

आरम्भमें इस्लाम सम्प्रदाय पर उसकी दृढ़ निष्ठा थी; परन्तु जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ने लगा, उसके मनमें सब धर्मोंके प्रति समानता उत्पन्न होती गई। साथ ही पवित्रता तथा नीतिके साथ व्यवहार करनेवाले विभिन्न धर्मोंके हजारों लोगों की सत्संगति होनेके कारण उसे प्रतीत होने लगा कि धर्म तथा नीतिमें परस्पर कुछ भी संम्बन्ध नहीं है। सच पूछा जाय तो अकबरने धर्मके सम्बंधमें कुछ भी नहीं किया। हाँ, उसने पूर्व धर्मकी बहुत सी बातें उड़ा दीं। इस्लाम धर्मको अच्छा न समझकर उसके नाश करनेको उसने प्रयत्न किया; परन्तु नवीन धर्म संस्थापन करनेका काम उससे सध न सका। उसके नवीन धर्मको किसीने भी हृदयसे स्वीकार नहीं किया था; इस लिये वह उसके साथ ही साथ समाप्त हो गया। उसने स्वयं यह देखकर, कि धर्मके कारण राज्य के कामोंमें बाधा पड़ती है, उसका प्रचार कम कर दिया।

(लेनपूल तथा सरदेसाईके 'मुसलमानी रियासत' ग्रंथके आधार पर।)

अकबरपुर—तहसील। संयुक्तप्रांत। कानपुर ज़िलेकी एक तहसील। उत्तर अक्षां० २६°१५' से २६°३३' तक और पूर्व देशां० ७६°५७' से ८०°११' के बीचमें स्थित है। क्षेत्रफल २४५ वर्गमील है। जनसंख्या लगभग एक लाख आठ हजार है। इस तहसीलमें १६६ गाँव हैं और खास अकबरपुर लगभग पाँच हजार जनसंख्याका एक गाँव है। सन् १६०३-४ में कुल आमदनी २५१००० रुपये थी। इस तहसीलकी जमीनमें खारापन आ जाने के कारण बहुतसी जमीन खेतीके कामकी नहीं रह गई है। इस तहसीलको गंगानदीकी लोअर कैनालकी एक शाखा से पानी मिलता है।

अकबरपुर—तहसील। संयुक्तप्रांत। फैजाबाद ज़िलेकी एक तहसील। उत्तर अक्षां० २६°१५' से २६°३५' तक पूर्व देशां० ८२°१३' से ८२°५४' तक। क्षेत्रफल ५३७ वर्गमील। जनसंख्या लगभग तीन लाख पैंतालीस हजार। इसमें अकबरपुर, मजारा तथा सुरहुरपुर तीन परगने हैं। इसमें तीन बड़े गाँव तथा ८५४ छोटे गाँव हैं।

कुल आमदनी ५२४०००। मालगुजारी ४५१००० तथा करकी आय ७३०००। इसमें बहुत-सी जमीन दल-दल और ऊसर है। इस ताल्लुके का मुख्य स्थान अकबरपुर है।

अकबरपुर गाँव—उत्तर अक्षां० २६°२६' तथा पूर्व देशां० ८२°३२' पर स्थित है। यह फजाबाद जिलेके एक ताल्लुकेका गाँव है और अवध रुहेलखण्ड रेलवेका स्टेशन है। जनसंख्या लगभग साढ़े सात हजार है। गाँवमें एक किलेका खंडहर है, जिसमें एक मसजिद प्रेक्षणीय है। नदी पर एक बड़ा पुल बँधा हुआ है। अकबरके शासनकालमें मुहसिनखाँ नामक एक व्यक्ति था, उसीने उपर्युक्त दोनों काम किये थे। यहाँ पर अनाज और खालका अच्छा व्यापार चलता है (इ० ग० ५)।

अकबराबाद—अंतर्वेदीका एक महाल। पहले यह एक सूबा माना जाता था। अबकराबादकी सूबेदारी मल्हारराव होलकर तथा जयापा सिंधिया के मार्फत दिल्लीके बादशाह तथा मराठोंके बीचके इकरारनामोंसे मराठोंको मिली। (रा० खं० ११-४)

शक १६७१ में अकबराबाद आदि प्रांतोंकी सूबेदारी तथा फौजदारी सिंधिया होलकरको दी गई और बालाजी बाजीरावके साथ समझौता हुआ। (रा० खं० ६-२००-३००) आगे सिंधिया होलकरने वहाँ अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये। १६७३ के ज्येष्ठमें सिंधिया होलकरने अकबराबाद आदि दस महालोंके अधिकारी दामोदर महादेव और पुरुषोतम महादेवको नियुक्त किया। (रा० खं० ६-२२६-३२३)।

इसके बाद मराठी कागजोंमें इसके सम्बन्धमें निम्नलिखित उल्लेख है। महाराजा चेतसिंहने फा० ब० ६ शके १७१८ को दौलतराव सिंधियाको भेजे हुए पत्रमें इस प्रकार लिखा कि इन दिनों भी सरकारकी फौज दतियासे अकबराबादको गई। (रा० खं० १०-४४२-३५६) शक १७१८ के एक पत्र में लिखा है कि अकबराबादका किला राजश्री जगन्नाथरामके सुपुर्द किया गया। (रा० खं० १०-४६४-३७०)।

अकंपन—एक राजर्षि होगये हैं। इस बातका कहीं भी पता नहीं चलता कि ये किस समय तथा किस कुलमें उत्पन्न हुए। इन्हें हरि नामक परम पराक्रमी एकही पुत्र था। एक युद्धमें उसकी मृत्यु होगी यह जानकर इन्हें बहुत दुःख हुआ और ये शोक करने लगे। इतनेमें वहाँ नारद ऋषि प्रगट हुए और उन्होंने 'मृत्यु अनिवार्य है' के विषय पर एक कथा सुनाकर इसका समाधान किया। (भार० द्रोण० अ० ५२-५४)।

२—रावणदूत। एक राक्षस। जनस्थानमें रामचन्द्रने खरादि राक्षसोंका वध किया यह-वृतान्त रावणको पहले इसीने और पीछे सूर्पनखाने सुनाया था।(वा०रा०अर०स० ३१) राम-रावण युद्धमें इसने भाग लिया था और हनुमानजी के हाथसे इसकी मृत्यु हुई थी। (वा० रा० युद्ध० स० ५६)।

अकरमासे—(महाराष्ट्रीय) अकरमासे अर्थात् जो पूरे बारहमाशे वजनके नहीं हैं; याने जिनमें किसी भी बातकी कमी हो। आजकल इस शब्द का प्रयोग हर तरहकी जारज संतानके निर्देशमें करते हैं। पहले धनी मराठे शादीके अवसर पर अपने दामादको एक सुन्दर स्त्री नजर किया करते थे। ऐसी स्त्रीसे उत्पन्न हुई संतति 'अकरमासे' कही जाती थी। यह जाति थाना जिला तथा थोड़ी पश्चिम खानदेशमें मिलती है। दूसरे ज़िलोंमें इनकी अलग जाति नहीं मिलती। ये 'कडू' हुए तथा औरस संततिके लिये 'गोड़' संज्ञा हुई। इन्हें शिंदले, लेकावले आदि भी कहते हैं। पहले इनका दर्जा बिलकुल हीन था। इन्हें गुलामोंकी भाँति मेहनत करनी पड़ती थी। इनमें दो दर्जे हैं। पहला असल तथा दूसरा कमसल। ब्राह्मण अथवा मराठा पुरुषसे मराठा स्त्रीकी होनेवाली संतति असल तथा कम दरजे के पुरुषसे उत्पन्न सन्तति कमअसल कहलाती है। (मु० ग० थाना १३ पृ० १४२)। आजकल इनका व्यवसाय दूकानदारी, खेती, बढ़ईगीरी, लोहारी आदि है। ये लोग मराठी बोलते हैं, और साफ-सुथरे रहते हैं; पर स्वभावतः आलसी और शौकीन होते हैं। ये लोग मदिरा और मांसका सेवन करते हैं। इनका पहनावा मराठी ढंगका होता है। ये लोग स्मार्त अथवा भागवत पन्थी होते हैं और ब्राह्मण उपाध्यायोंको पूज्य मानते हैं। ये व्रतों और उपासनाओंका पालन करते हैं। जातिकी पंचायत झगड़ोंका निर्णय करती है। साम्पत्तिक दृष्टिसे इनकी हालत गिरी हुई है। लड़कोंको शिक्षा नहीं दी जाती। विधवा-विवाह हो सकता है। मृत व्यक्तियोंको जलाते अथवा गाड़ते हैं। (अधर्म सन्तति देखिये)

अकराणि (किला)—बम्बई इलाका। पश्चिम खानदेश तलोदे ताल्लुकेके अकराणि परगनेमें एक किला है। यह मजबूत है, परन्तु दीवारें आदि गिर गई हैं। (बं०ग० १२० गवर्नमेन्ट लिस्ट आफ सिविल फोर्ट्स १८६२)।

अकराणि (परगना)—यह परगना पश्चिम खानदेशमें मध्य ताप्ती (तापी) और नर्मदा नदियोंके बीचमें सतपुरा पर्वतका पठार प्रदेश है। इसके उत्तरमें नर्मदा नदी, पूर्वमें बड़वानी राज्य और तुरणमाल, दक्षिणमें सुलतानपुर और कुकुरमुण्ड

ताल्लुका एवं पश्चिममें काठी राज्य है। १८७२ में यहाँकी जनसंख्या लगभग १५ हजार थी। इसमें उपजाऊ भूमि लगभग १५ हजार एकड़ है। इस परगनेमें १७२ गाँव हैं जिनमेंसे सत्रह ऊजड़ हैं। इस परगनेकी सारी जमीन पहाड़ी है और १६०० से लेकर २५०० फिट तककी ऊँचाई पर है, इसमें कुछ गाँव धनी हैं। यहाँ जमीनकी सिंचाईके लिये बहते हुए झरनोंका पानी अधिकतासे मिलता है। मकई तथा अन्यान्य अनाजों की खेती अच्छी होती है। बहुत उँचाई पर स्थित प्रदेशोंमें घने जंगल हैं और उनमें ईंधन योग्य लकड़ियाँ बहुत पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त इन जंगलोंमें अनेक प्रकारकी ओषधियां तथा रंग तयार करने योग्य वनस्पतियाँ मिलती हैं। यहाँकी सृष्टिका सौन्दर्य भी देखने ही योग्य है। गावोंके आसपास अधिकतर आम और महुओंके पेड़ोंकी घनी झाड़ी है। नदी किनारेका प्रदेश हमेशा हराभरा रहता है और बीच-बीच में खजूर आदिके वृक्ष दृष्टिगोचर होते हैं।

इस पहाड़ी प्रदेशमें तुरणमाल सबसे महत्व-पूर्ण पहाड़ है। पूर्वीय भागमें उसकी ऊँचाई ४०० फुट है। इसके अतिरिक्त कोमल, उदद, अग्रम्भ आदि पहाड़ हैं। इस प्रदेशके पत्थरोंमें चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुओंके कण दिखाई देते हैं। पानी भरपूर मिलता है। कूँए, नदियां और झरनों में गरमीमें भी पानी रहता है, परन्तु किसी-किसी स्थानका पानी हानिकारक तथा शीतज्वर उत्पन्न करने वाला है। यहाँकी जमीन कंकरीली होनेके कारण यहाँ गेहूं, चना आदि अनाज उत्पन्न नहीं होते। यह प्रदेश उँचाई पर स्थित है, इस कारण यहाँकी हवा ठंढी रहती है। यहाँ जाड़ेमें सर्दी बहुत पड़ती है और कभी-कभी कूओंका पानी जम जाता है। बरसातमें पानी भी खूब बरसता है। यहांके निवासी मेहनती और उद्योगी हैं तथा जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इसमें मुख्यतः वारली तथा पारवा जातिके लोग हैं। शायद पारवा जाति के लोग राजपूतोंके वंशज हों। इस जातिके लोग खेतीके काममें वारली आदि भीलजातियोंकी अपेक्षा अधिक कुशल हैं। ये स्वभावतः भीरु हैं; पर थोड़ा परिचय हो जाने पर ये बड़े आनन्दसे बातें करने लग जाते हैं। सब लोग खेती करते हैं और बहुत से लोग गाय भैंसोंको भी पालते हैं; बकरियाँ मुर्गियाँ तथा बत्तक भी पाले जाते हैं। भेड़ और सूअर कोई नहीं पालता। ज्वार, बाजरा और नागली यहाँकी मुख्य उपज है।

खानदेशसे अकराणि परगनेको जानेके लिये पांच तंग पहाड़ी मार्ग हैं, उनमें शाहाद्याकी ओर से जाने पर 'नयागांव' घाटी पड़ती है, जिससे होकर बैल, घोड़े आदि बड़ी सरलतासे जा सकते हैं। शेष घाटियोंमें केवल पैदल जाने योग्य मार्ग हैं, जिनमें कुछ तो बहुतही बीहड़ हैं। अकराणि परगने से अनाज, महुएके फूल, शहद, शहदकी मक्खियों का मोम, लाह, गोंद तथा राल आदि चीजें अधिकतासे बाहर भेजी जाती हैं।

इस परगनेका अधिक इतिहास नहीं पाया जाता। धड़गाँव तकका देश खानदेशके मुसलमान राजाओं के आधीन था। उसके उत्तरकी ओर नर्मदा नदी तकका प्रदेश स्थानीय राजाओंके ही अधिकारमें था। सन् १७०० ई० के बाद यह प्रदेश धुशवईके राणाओंके अधिकारमें चला गया। उनमेंसे राणा गुमानसिंहने अकराणि किला तैयार किया। चार राणाओंके शासन-कालके बाद यह घराना निर्वंश हो गया और इस राज्यमें चारों ओर अराजकता फैल गई। आगे मतवारके राणा भाऊ सिंहने इस परगने पर राज्य स्थापित किया और रोशमल किला (जो आंजकल गिर पड़ा है) बनवाया। १८१८ ई० तक राज्य करनेके बाद ब्रिटिश सरकारने इस घरानेको २८६८ रुपयेकी पेन्शन निश्चित करके सारा देश अपने अधिकारमें कर लिया। यह राज-घराना बड़ा प्रतिष्ठित है और बडोदाके गायकवाड़ तथा छोटाउदयपुरके राणाओंके साथ उसके विवाह-संबन्ध हुए हैं।

अकलुज—यह गाँव बंबई प्रान्तमें सोलापुर जिलेके मध्यमें मालशिरके उत्तरपूर्व ६ मील दूर नीरा नदी के तट पर बसा हुआ है। यहाँ एक बड़ा बाजार लगता है। यहाँकी जनसंख्या लगभग पाँच हजार है। पहले यहाँ रुईका बड़ा भारी व्यापार चलता था, इस कारण यह गाँव बड़ी उन्नति पर था। यहाँ एक किलेका खंडहर है। यहाँ डाकखाना है और सोमवारको बाजार लगता है। बीजापुरमें प्लेग होनेके कारण औरङ्गजेबने सन् १६८६ ई० में इस स्थान पर डेरा जमाया और रोग हट जाने पर यहाँसे डेरा हटा लिया। कैप्टन मूरने सन् १७९२ ई० में यहाँका वर्णन करते हुए लिखा है कि यहाँका बाज़ार बहुत बड़ा है और यहाँ पर एक किला तथा कुछ सुन्दर इमारत और कूँए हैं। सन् १८०३ ई० में जब जनरल वेलेस्ली द्वितीय बाजी रावको पुनः गद्दी पर बैठानेके लिये श्रीरंगपट्टमसे पूनेकी ओर जा

रहा था, उस समय वह यहाँ तीन दिन तक अपना डेरा जमाये रहा।

अका (पहाड़ियाँ) पूर्व बंगाल तथा आसाम। दरंग जिलेके उत्तरकी ओर हिमालय पर्वतका एक भाग। इस भागमें जंगल बहुत हैं। यहाँ जंगली लोगोंकी बस्ती होनेके कारण इस भागका अधिकतर पता नहीं लगा है। अका जातिके दो भाग हैं (१) हजारी खोआ (२) कपास चोर। आसामके राजाओंके शासनकालमें ये लोग प्रजाको बहुत कष्ट पहुँचाते थे। अब भी वे प्रजाको थोड़ा बहुत कष्ट देते ही हैं। ये लोग तिबेटो-ब्रह्मी शाखाके हैं और वीर तथा स्वतंत्र विचारके हैं। उनके रहनेको स्थान अति सुरक्षित होनेके कारण अंग्रेज लोग उनके ऊपर चढ़ाई नहीं करते।

अका जाति—इस जातिके लोग तेजपुरके उत्तरकी ओरके पहाड़ी प्रदेशोंमें रहते हैं। उनकी एक छोटी, पर स्वतंत्र जाति है। कर्नल डाल्टनका मत है, कि इन लोगोंका उफ्ला-मीरिस तथा अबोरों से बहुत निकटका सम्बन्ध होगा। परन्तु अका-जातिके लोग उनकी अपेक्षा देखनेमें बिलकुल भिन्न मालूम पड़ते हैं। (इं० ग० मर्दुमशुमारी)

अका कांग्वा—दक्षिण अमेरिकाके चिली देश में एक प्रान्त है। यह प्रान्त बहुत पहाड़ी है। यहाँकी हवा बहुत ही ऊष्ण तथा सूखी है। यहाँ पर अंगूर बहुत अच्छे होते हैं। इसी नामका ज्वालामुखी पर्वत तथा नदी भी यहाँ है। इस प्रान्तकी जनसंख्या लगभग बारह हजार है।

अकाडीया—बम्बई इलाकेके मध्य काठियावाड़ के बाब्र थानेका एक स्वतंत्र कर देने वाला राज्य। यह बाब्रके उत्तरपूर्व लगभग २० मील दूर तथा भाडलीसे उत्तरकी ओर ४ मील केरी नदी के उत्तर तीर पर बसा है। यहाँके गरासिया जमीदार बावड़ राजपूत वंशके हैं और इस द्वीप-समूह में यही एक उनका स्वतंत्र स्थान है। (इं० ग० ५; (बं०, ग० ८, ३५६)।

अकाडी—उत्तर अमेरिकामें ४० से ४६ अक्षांशमें स्थित एक फ्रान्सीसी बस्तीका नाम। यह बस्ती सन् १७०३ ई० में बसाई गयी थी। इसी को नोवास्काशिया कहते हैं।

अकापुलको—अकापुलको शहर मेक्सिको देशके ग्युटो राज्यमें पॅसिफिक् महासागरके किनारे पर स्थित है। यह एक अर्ध चंद्राकार उपसागर पर स्थित है। इस उप-सागरके किनारे यह सबसे अच्छा बन्दरगाह है। इसके आसपासका सृष्टि-सौन्दर्य प्रेक्षणीय है। समुद्रकी ठंढी हवा देशमें लानेके लिये इसके निकटवर्ती पहाड़ोंमें एक सुरंग खोदी गई है।

अकालगढ़—पञ्जाब। गुजरानवाला जिला। तहसील वजीराबाद। नार्थ-वेस्टर्न रेलवेके वजीराबाद-लायलपुर लाइन पर करीब पाँच हजार जन-संख्या का एक गाँव। यह उत्तर अक्षां० ३२°१६ तथा पूर्व देशा० ७३°५० पर स्थित है। सन् १८६७ ई० से यहाँ पर म्युनिसिपॅलिटी है। उसकी आमदनी लगभग छः सात हजार है। व्यापारकी दृष्टि से गाँव प्रसिद्ध नहीं है। सिख-शासनके अन्तमें सावनमल तथा उसका पुत्र मूलराज मुलतानके सूबेदार थे। उनके घरानेके लोग अब भी यहाँ रहते हैं। (इं० ग० ५)।

अकालारेन्शिआ—इस स्त्रीके सबंधमें रोमन लोगोंमें एक दंत-कथा प्रचलित है। यह फास्ट-युलस नामक गड़ेरियेकी स्त्री थी। रोम शहरके संस्थापक रोम्युलस तथा रोमस टाइबर नदी में बहे जा रहे थे; उस समय इस गड़ेरियेने इन दोनोंको बाहर निकालकर इनकी रक्षा की थी। उसने इन लड़कोंको अपनी स्त्रीके हाथ सौंपा और अपने लड़कोंके साथ इनका पालन-पोषण किया। यह स्त्री बदसूरत थी। इसे लोग "भेड़िये की मादा" के नाम से पुकारते थे। उसने रोम्युलस तथा रोमसका पालन-पोषण किया; इसी कारण यह दंत-कथा प्रसिद्ध है कि दोनों लड़कोंका संवर्धन "भेड़िया की मादा" ने किया। दूसरी एक दंत-कथाके अनुसार यह एक सुन्दर लड़कीका नाम है। हक्युलीसने जूएमें जीतकर इस लड़कीको प्राप्त किया था। इस लड़कीने अपनी सारी संपत्ति रोमनोंको दे डाली। इस कारण वे लोग इसके नामसे वार्षिक उत्सव मनाने लगे। कुछ लोगोंका मत है कि यह भूदेवीकी माता थी।

अकाली—यह पंथ मूल सिक्ख पंथ से भिन्न है। नागा अथवा गासाइयोंके सदृश अकाली युद्ध-प्रिय होते हैं। कहते हैं कि सिक्खों के दसवें तथा अंतिम गुरु गुरुगोविंदने (सन् १६७५-१७०८ ई०) इस पंथकी स्थापना की। कोई-कोई "अकाल पुरुष" (अनंतके उपासक) नामसे 'अकाली' (अमर) संज्ञाकी उत्पत्ति लगाते हैं। दूसरे "अकाली" के अमर देव अर्थसे अकालीका अर्थ ईश्वरोपासक समझते हैं। "सत् श्री अकाल" अकालियोंकी रणगर्जनाका शब्द है। अकाली नीली पोशाक पहनते हैं। (कृष्णके बड़े भाई बलराम नीली पोशाक पहनते थे; इसलिये उसे

नीलाम्बर कहते हैं।) ये हाथमें फौलाद का कड़ा पहनते हैं और छोटा सा खंजर, चाकू, एक लोहेकी जंजीर और एक फौलाद का चक्र अपनी नीली रंगकी पगड़ी में छिपा कर रखते हैं।

कुछ अकाली जटा बढ़ाते हैं। जो जटा नहीं बढ़ाते वे केवल 'दूर' और 'लोटा' पानीका व्यवहार करते हैं। ये धूम्रपान करते हैं, परन्तु जटाधारी ऐसा नहीं करते। नीले रंग की पगड़ी के नीचे पीले रंगकी पगड़ी बाँधते हैं।

अकालियोंमें लड़ने का सामर्थ्य होनेके कारण उन्हें 'निहंग' अर्थात् बेफिक्र कहते हैं। सिक्ख इतिहासमें इन्होंने बड़े-बड़े काम किये हैं। सन् १८१८ ई० में मुलतानके घेरेमें इन्होंने बड़ी बहादुरी से किलेका बाहरी हिस्सा कबजे में कर लिया और किला लगभग ले लिया था। फूलसिंहके चरित्रसे इनके गुण तथा दोषोंका अच्छी तरह पता लगेगा। सन् १८०९ ई० में जब अमृतसरमें मेटकाफ पर हमला हुआ उस समय फूलसिंह पहले-पहल इस हमले का नेता प्रसिद्ध हुआ। पश्चात् रणजीतसिंहने उसे सिंधकी घाटियों का मुख्य अधिकारी नियुक्त किया। वहाँ उसने मुसलमानी प्रजाको बहुत कष्ट दिये। बादमें वह काश्मीर भेजा गया। रणजीतसिंह फूलसिंहसे हमेशा डरता था। सन् १८२३ ई०में तेहरीके युद्ध में फूलसिंह तथा उसके अकाली अनुयायियोंने रणजीतसिंहकी ओरसे लड़कर यूसुफज़ईको हराया। परन्तु इस लड़ाईमें अपनी वीरता दिखाते हुए फूलसिंह खेत आया। नौशहरकी उसकी समाधि इस समय हिन्दू-मुसलमानोंका तीर्थ-स्थान हो गया है। फूलसिंहके नेतृत्वमें अथवा उससे भी पहले अकाली अपने शत्रुओं और मित्रों के लिये समान रूपसे कष्टदायी होगये थे। सिक्ख राजा उनसे बहुत डरते थे; क्योंकि अकालियों ने अनेक बार उनसे जबर्दस्ती धन छीन लिया था। सन् १८२३ ई०में स्वयं रणजीतसिंहने उनकी शक्ति कम करनेका प्रयत्न किया और इस कारण इस पंथका महत्व कुछ घट गया।

अमृतसरमें अकालियों की गद्दी अकाल बूंग के नामसे प्रसिद्ध थी। उस स्थानमें अकाली धार्मिक विधियोंका पाठ लेते और गुरुमाताका आवाहन किया करते थे। वे समझते थे कि खालसाका नेतृत्व हमारी ओर है। रणजीतसिंहके समयसे उनकी सच्ची गद्दी आनंदपुरमें है; परन्तु यह कहा जा सकता है, कि उनकी शक्ति बहुत ही घट गई थी।

इस पंथमें ब्रह्मचर्यका पालन करने की आज्ञा है। शिष्य गुरुका जूठन खाता है। अन्य सिक्खोंकी भाँति ये लोग मांस अथवा शराबका व्यवहार नहीं करते परन्तु वे भांग हद से ज्यादा पीते हैं। सिक्खोंके प्रार्थना-मंदिरोंको "गुरुद्वारा" कहते हैं। इन मन्दिरोंकी देखभाल करनेके लिये एक महंथ रहता था। आगे ये महंथ दुराचारी होने लगे और सिक्ख-भक्तोंको कष्ट पहुँचाने लगे। इस पर सन् १९१९-२०ई० में गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी की स्थापना हुई। इस कमिटीके जो स्वयंसेवक हैं, उनकी गणना "अकाली" पंथमें की जाती है। आजकल अकाली लाखोंकी संख्यामें हैं। गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटीने गुरुद्वारोंको अपने अधिकार में कर लिया है। महंथोंके हाथसे गुरुद्वारा अपने कबजेमें लेते समय रक्तपातभी हुआ था। सन् १९२३ ई० में जब नाभाके राजा रिपुदमनसिंह गद्दी से अलग कर दिये गये तो इन लोगों की यह प्रबल धारणा होगई कि इनके साथ सरकार ने घोर अन्याय किया, और इन लोगोंने नाभामें जाकर सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे इनके इस सविनय-शासन-भंग के आन्दोलन की धूम सारे देशमें मच गई। कांग्रेस का इस आन्दोलनमें पूरा-पूरा सहयोग था। इस आन्दोलनमें कांग्रेस की तो बहुत कुछ आर्थिक हानि हुई ही, साथमें अकालियोंको भी इससे बड़ा भारी धक्का लगा। यद्यपि किसी हदतक अकालियोंको सफलता अवश्य प्राप्त हुई किन्तु इस आन्दोलनसे जितनी हानि तथा कष्ट इन्हें उठाने पड़े उनको विचारते हुए सफलता बहुत कम अंशमें प्राप्त हुई।

अकिमिनियन—यह अकिमेनिड अथवा हखामनी नामक एक प्राचीन इरानी राजघराना है। इस घरानेने ईसाके पूर्व ५५८से लेकर सन् ३३०ई० तक ईरान पर शासन कियाथा। इस घरानेके शासन का इतिहास आगे 'ईरान' के अंतर्गत दिया गया है। इस राजघरानेके उपासना-मार्गका महत्व विशेष है, इस कारण उसके धार्मिक अंगोंकी विवेचना विस्तारपूर्वक करेंगे।

इन राजाओंकी धार्मिक कल्पनाओंके सम्बंध में थोड़ी बहुत जानकारी यूनानी उच्चतम साहित्य में; बाबिलोनी, मिसरी, और यूनानी प्राचीन अंकित लेखोंमें; इन राजाओंकी प्राचीन इरानी भाषामें; बाबिलोनी तथा नूतन एलामी अनुवादमें तथा स्वयं उन्हींके अंकित लेखोंमें मिलती है। इस घरानेके जिन राजाओंके सम्बन्धमें यहाँ विचार करना है, वे सायरस, कंबायसिस, पहला

दरायस, पहला ज़्ककर्सीज़ और द्वितीय तथा तृतीय आर्टाज़्ककर्सीज़ हैं।

(१) सायरस दि ग्रेट (नौशेरवाँ)—इस राजा की धार्मिक कल्पनाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जनोफनकी सायरोपीडिया नामक ऐतिहासिक अद्भुत कथा, प्राचीन धार्मिक पुस्तक तथा बैबिलोनके शिला-लेख आदि सामग्री हैं। सायरोपीडियाकी कथाएँ कल्पित हैं। इस कारण उसमें दी हुई बातों का विचार तारतम्य बुद्धिसे करना होगा। इन कथाओंमें कई जगह उल्लेख है कि सायरस राजा जूइस, हीलिआस, जीआ, हेस्टिआ आदि अनेक यूनानी देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये यज्ञ किया करता था। हिरोडोटस और स्ट्रेबोने अपने अपने ग्रंथोंमें इस प्रकार उल्लेख किया है कि इरानी लोग सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु ॲफ्रोडायटि नामक विवाह-देवता, जूइस नामक आकाश देवता आदि की उपासना करते थे। इन दोनों विद्वानोंके विधानोंका मिलान करनेसे विदित होता है, कि जेनोफोन द्वारा उल्लिखित सायरसकी उपासना इरानी संस्कृतिसे मिलती-जुलती एक तरहकी शक्तिकी उपासना ही थी। इस इरानी संस्कृतिका वर्णन 'छोटा अवेस्ता' नामक ग्रंथमें दिया हुआ है। इसके आराध्यदेवतासे अहुर्मज्द, मिथ्र, अतर्ष (अग्नि) और अनहित निस्संदेह भिन्न न थे। इनके अतिरिक्त सायरस जिन कुल-देवताओंकी उपासना करता था, उनके बारेमें कहा गया है कि वे देवता मूलतः मृतलोकोंके प्रेत थे और बादमें वेही फ्रवषी नामके रक्षा करने वाले देवता बन गये। इसके विपरीत सायरोपीडियामें लिखा है कि मरणोन्मुख सायरसने मृत्युके बाद अपने शरीरको दफन करने के लिये कहा था, जो जरतुष्ट्र प्रथाके बिलकुल विरुद्ध है। स्ट्रेबोने सायरसकी कब्रका जो वर्णन किया है, उससे उपरोक्त बातकी पुष्टि होती है। साथ ही पार्सागाड़ोमें पायी गयी सायरसकी कब्र उस वर्णनके अनुकूल ही है। परन्तु हिरोडोटसने लिखा है, कि ईरानी लोग मृत शरीरोंको गिद्ध कुत्ते आदि जानवरोंके सामने डालते हैं और पश्चात् उनपर मोमका लेप करके उन्हें जमीनके अन्दर गाड़ते हैं।

इसके उपरांत बाबिलोनी लेखोंके बारेमें विचार करते समय सायरसकी उपासना-संप्रदायके संबंधमें दो शिलालेखोंमें उल्लेख मिलता है। इन दोनों उल्लेखोंमें कहा गया है, कि बैबिलोन के अन्तिम राजा नबुनाइटने सुमेरू और अक्कड़ नगरोंके मन्दिरोंसे वहाँके देवताओं को उठा कर अपनी राजधानीमें पहुँचा दिया। सायरस मार्डुक देवताका प्रिय भक्त था। इसलिये उसने फिर उसे जहाँका तहाँ रख दिया। ऊपर जिन मार्डुक और उसके पुत्र नबुका जिक्र आया है, सायरसके विश्वासानुसार वे अहुर्मज्द और उसके पुत्र अतर्ष (अग्नि) के ही दूसरे नाम थे; किन्तु कुछ लोगोंके मतानुसार इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। इन तीनों प्रकार की साधन-सामग्रियोंमें यूनानी लेख अधिक विश्वासनीय हैं, और उनके अनुसार सायरसकी उपासना-पद्धति उत्तर अवेस्तामें दृष्टिगोचर होनेवाले धर्मसे बहुत कुछ मिलती जुलती मालूम होती है। तथापि यह कहनेके लिये कि, सायरस ज़रतुष्ट्रके नूतन संप्रदायका अनुयायी था, कुछ भी आधार नहीं है। सायरस शब्द का ठीक उच्चारण कुरुस है।

(२) कंबायसिय—इस राजाके धार्मिक विचारों को प्रगट करनेवाली सामग्री बहुत थोड़ी है। हिरोडोटसने कम्बायसिस राजाके मतका उल्लेख करते हुए कहा है कि आमेसिसका शव दहन करनेसे अग्निकी पवित्रता कम होती है। ईरानमें और अवेस्ताके मूलग्रंथ में शवके द्वारा अग्निको दूषित करना एक अक्षम्य अपराध माना जाता है। यद्यपि सामान्यतः यह समझा जाता है कि कम्बायसिस पागल था, तथापि इसके सुविख्यात देवता 'नेइत' के देवालयके बारेमें कम्बायसिस द्वारा स्वीकृत नीति अत्यंत उदार तथा प्राचीन सायरस राजाके समान ही थी। परन्तु कम्बायसिसने एपिस देवताको प्रसन्न करनेके हेतु छोड़े हुए बैलको मरवा डाला था। उसका यह कृत्य पागलपनकी एक झक थी। उससे उपासना-मार्गका कुछ भी सम्बंध न था।

(३) पहला दरायस-(दारा) इस राजाके धार्मिक विचारोंका ज्ञान प्राप्त करनेके मुख्य साधन बाबिलोनी तथा आधुनिक 'मीलाए' भाषा और इस राजाके पुरानी ईरानी भाषाके शिलालेख हैं। इन शिला लेखोंमें दाराने कहा है कि अहुर्मज़्द नाम के सर्वोत्तम देवताकी कृपासे मुझे राज्य प्राप्त हुआ है और राज्य की सब बातें अनृत (द्रौग) से उत्पन्न हुई हैं। इस मतानुसार दाराको यह शक्ति प्राप्त हुई कि वह अपने को असत्यवादी नहीं समझता था। अवेस्तामें व्यक्त किये हुए द्रुजसे उपर्युक्त द्रौगकी समानता है। सात्विक मनुष्यके अनुसरण करने योग्य पथको सत्य पथ (न्याम

रास्ताम) कहा गया है और इस प्रकारकी कल्पना वेद तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें एवं ईसाइयोंकी प्राचीन धर्म-पुस्तकोंमें दिखाई देती है। 'अर्शता' नामक उपकार करनेवाले देवता तथा 'दुशियारा' नामक दुष्ट देवता जिस प्रकार दाराके लेखोंमें दृष्टिगोचर होते हैं ठीक उसी प्रकार उत्तर अवेस्तामें भी दिखाया गया है। दूसरे धर्म संप्रदायोंके विषयमें उसकी नीति भी सायरस की तरह बहुत उदार थी। सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् राज्यका संगठन करते समय गौतमद्वारा हस्त किये हुए अग्नि ग्रहों को इसने ठीक कराया। फिर भी दारा अहुर्मज्द देवताका अनन्य भक्त था। सारांश, यह नहीं कहा जा सकता कि वह कट्टर एकेश्वर-वादी था।

(४) पहला कज़क्सींज़ः—कज़क्सींज़के धार्मिक विश्वासके विषयमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मुख्य साधन हिरोडोटस का ग्रंथ है। उसने कज़क्सींज़ के सम्बन्ध में कहा है कि यूनान पर चढ़ाई करनेके समय जब वह हेलेस्पांट पहुँचा, तब उसने इलिअम के एंथीनी देवताके सन्मुख हज़ार बैलोंका बलिदान तथा सूर्य्य, व समुद्रके देवताओं को प्रसन्न करने के लिये हविर्दान किया। उसका यह भी कथन है कि 'नव वाटा' स्थान पर कज़क्सींज़ राजाने नौ यूनानी लड़के और लड़कियों का बलिदान किया क्योंकि इस समय ईरानियोंमें जीवित मनुष्यको पृथ्वीमें गाड़कर बलिदान करने की प्रथा प्रचलित थी। इस इतिहास-लेखकके इस मतका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। दूसरे ईरानी पृथ्वी को 'भूदेवता' कहकर पूजते थे। अतः उनके मतानुसार जिन्दा आदमियों को ज़मीनमें गाड़ना देवता को भ्रष्ट करनेके बराबर है। इससे यह स्पष्ट है कि यह प्रथा ईरानियों की धर्मभावनाके विरुद्ध है। इसलिये हिरोडोटसके उपर्युक्त कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। एक स्थानपर हिरोडोटस ने कज़क्सींज़की सेनाके साथ नौ सफेद घोड़ों द्वारा खींचे जानेवाले ज़ुइस देवताके रथका वर्णन किया है। वह लिखता है, कि इस रथका सारथी रथ के साथ पैदल चलता था। यह रथ सेनाके साथ साथ जाकर राजाको विजय प्राप्त करानेवाले इरानी राष्ट्रीय देवता अहुर्मज्द के मंदिरके समान होता था।

(५, ६) दूसरे और तीसरे आर्टाक्जक्सींज़ राजाओंके इतिहास केवल एकही दृष्टिसे महत्वपूर्ण हैं। उसमें अहुर्मज्दके अतिरिक्त मिथ्र और अनहित दो नये देवताओंके नाम आते हैं। इस सम्बन्धमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि इतिहासवेत्ता प्लूटार्क वस्तुतः ज़रतुष्ट्र धर्मसे अपरिचित न था फिर भी उसने शिलालेखों में वर्णित आर्टाक्ज़क्सींज़ राजाओं की उपासना के सम्बन्धी शिलालेखों की लिखावट की पुष्टि की है। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रचीन राजघराने का इतिहास मध्यकालीन इरानी साहित्यमें बिलकुल दिखाई नहीं देता। पहले आर्टाक्ज़क्सींज़ का उल्लेख पेहलवी ग्रंथोंमें आर्देशिर के नाम से हुआ है और वही स्पेन्ददाद का पुत्र बोहुमन कहा गया है। यह विचार कुछ ही विद्वानोंका है। पर इसके लिये कहीं आधार नहीं मिलता। ज़रतुष्ट्री आर्टाक्ज़क्सींज़ स्पेन्ददाद का पुत्र था तो अकिमिनिअन आर्टाक्ज़क्सींज़ कज़क्सींज का पुत्र था। अलबेरूनी ने इन दोनों व्यक्तियों को भिन्न भिन्न बतलाया है और यह ठीक भी है। शाहनामा आदि ग्रंथोंमें ये दोनों व्यक्ति एक ही माने गये हैं। उसका कारण यही होगा कि इन दोनोंके दादा का नाम दारा ही था। परन्तु अवेस्ता और ज़न्द धर्मग्रंथों की दो दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित रखनेकी आज्ञा देनेवाले जरतुष्ट्र का अनुयायी दारा का पुत्र दारा और अकमिनियन घरानेके आर्सेसीनका पुत्र तृतीय दारा ये दोनों व्यक्ति भिन्न थे।

उपर्युक्त जानकारीसे पता चलता है कि अकिमिनिअन राजा सूर्य्य चन्द्र आदि इरानी देवताओं को मानते थे तथा युनानी देवताओंके प्रति भी पूज्य भाव रखते थे। फिर भी अहुर्मज़्द उनके मुख्य राष्ट्रीय देवता और सूर्य्य चन्द्र आदि दूसरे देवता गौण थे। ध्यान में रखने की बात यह है कि पुराने इरानी लेख उन गाथाओंकी अपेक्षा—जिनमें जरतुष्ट्र के पहले की प्रकृति की उपासना की झलक पुनः दिखायी देती है—उत्तर अवेस्ता से अधिक समानता रखते हैं। इसी प्रकार उत्तर अवेस्तामें और आसुरिक समयके वैबिलोनी ग्रंथोंमें बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। इन सब बातोंका विचार कर यह कहना पड़ता है कि अकिमिनियन राजा जरतुष्ट्र पंथके अनुयायी न थे बल्कि मज़्दयस्न-पंथी थे।

अकियनलोग और उनके संघ—यूनानियों की चार शाखाओंमें से एक है। एक दंत कथा प्रचलित है कि इस शाखाका आदि पुरुष अकियस था। कवि होमरके मतानुसार इन लोगोंकी सत्ता समस्त यूनान पर थी। इनका एओलियन शाखासे बहुत कुछ साम्य है। ये ऊंचे कदके थे तथा इनकी आंखें नीले रंगकी थी। ये लोग अपने को यूनानियोंके इष्टदेवता ज़ुइसके वंशज मानते थे। इनके

नेता "वेलायूस" थे। ये लोग लोहेके शस्त्रों तथा चौकोनी ढालोंका उपयोग करते थे।

इनका २० गावोंका एक संघ था। मालुम होता है कि इन्होंने ये संघ अपने बचावके लिये स्थापित् किये थे। इन लोगोंमें एकता का दूसरा कारण था जुइसकी पूजा। लगभग ईसाके २८० वर्ष पूर्व इन लोगोंका महत्व बहुत बढ़ गया था इनका राज राजनैतिक सलाहकार आरेटस था। आरेटसके समयमें इनके अधिकारमें बहुत से गाँव थे।

इनकी केन्द्रीयशासनसंस्थामें लोकमतकी प्रबलता थी। सालमें इस संस्थाके तीन अधिवेशन होते थे। इन्हींमें कानून वगैरह पास किये जाते थे। इस शासन-सभाके अन्तर्गत १२० सदस्योंका एक सहायक मण्डल था। इस मण्डलके हाथमें मुख्य संस्थाका कार्य्य-क्रम निश्चित करना, शहर के झगड़ों को निर्णय करना, विदेशोंके वकीलोंसे इकरारनामा करना, आदि २ काम थे। मुख्य अधिकारीके पदको "स्ट्रेटेजियाँ" कहते थे। इस अधिकारीको किसी भी योजनाके अन्तिम निर्णयका अधिकार था।

इस मण्डलमें एक बड़ी कमी यह थी, कि वह सैनिक विभागको सुव्यवस्थित रखना नहीं जानता था। अपराधियों को दण्ड देनेकी व्यवस्था भी इस संस्थाके द्वारा नहीं की गई थी। रोमन लोगोंने इन संघोंको नष्ट कर दिया।

अकियाब--जिला। लोअर ब्रह्मदेशके आराकान विभागका एक जिला। उ० अ० १९ ४७' से २१ २७' और पू० दे० ९२ ११' से ९३ ५९' है। इसका क्षेत्रफल ५१३७ वर्ग मील है। उत्तरमें चटगांव जिला और उत्तर आराकान है। पूर्वमें उत्तर आराकान और आराकान योमा। दक्षिण और पश्चिममें बंगालकी खाड़ी है।

बंगालकी खाड़ी और आराकानयोमाके बीचका प्रदेश चौरस है। लेम्रो नदीके पूर्वका प्रदेश पहाड़ी है। ऊपर की भूमि अर्थात् ब्रह्मदेश और इस जिले के मध्य पहाड़ी रास्ते हैं। परन्तु वे अत्यन्त दुर्गम हैं। इसलिये कोई उनका उपयोग नहीं करता। उत्तरका प्रदेश भी पहाड़ी है। इस भागमें तीन मुख्य नदियाँ हैं। मयूकलहन और लेम्रो. उत्तरसे दक्षिणकी ओर बहती हैं। श्लस सैगड स्टोंस नामक बालूके पत्थरोंसे यह प्रदेश भरा है। यहाँ हाथी, बाघ, बारहसिंहा, बनैला सूअर इत्यादि जंगली जानवर पाये जाते हैं। समुद्रके समीप होनेके कारण हवा समशीतोष्ण है। यहाँका जाड़ा बहुत ही आनन्ददायक होता है। वर्षा १८० इंचके लगभग होती है। बवंडरसे इस भागको बारम्बार बहुत नुकसान पहुँचता है। १८६८ १८८४ १८८५ ई० में भीषण वर्षा हुई थी जिससे धन और जनकी बड़ी हानि हुई थी।

इतिहास—यह भाग पूर्वी आराकान जिलेमें माना जाता था। इसलिये इसका इतिहास आराकान जिलेके इतिहासमें दिया गया है। (देखिये आराकान) १८२६ ई० में वर्मा युद्ध समाप्त होते ही आराकानके साथ यह जिला अंग्रेजी अधिकारमें आया। पोहंग में १५वीं और १६वीं शताब्दिके कुछ अवशेष अब भी मिलते हैं। महा-मुनिमें एक मन्दिर है जिसमें गौतम मुनिकी मूर्ति थी परन्तु १७८४ में जब कि बर्मियोंने इस भागको जीत लिया तो यह मूर्ति अमरपुर ले जाई गई और वहीं स्थापित की गई। आज कल वह मूर्ति मंडालेके आराकान देवालयमें हैं। जिलेकी जनसंख्या करीब पांच लाख तीस हजार है।

१९०३-४ में इस जिलेके विभाग निम्नलिखित थे।

टाउनशिप अथवा अन्तर्गत विभाग	क्षेत्रफल वर्गमील	कृपियोग्य क्षेत्रफल	संख्या		जनसंख्या	प्रतिवर्गमीलमें जनसंख्याका प्रमाण
			गाँव	पुरवा		
अकियाब	९२	३०	१	६०	४७४२५	७६५
राठेड़ाँग	१२६९	२३७	०	५४५	११३०९८	८८
पोन्नाजियन	७०४	१०६	०	२९०	४९५५५	७०
पाँक्टाँ	४९६	१२१	०	१९०	४३३९५	८७
मिन्वियाँ	४८०	१०४	०	२९५	४१६६१	८७
कियाक्टाव	३७०	११६	०	३१२	५३३०६	१४४
मीओहंग	१३२९	१५२	०	२८२	४९९७८	३७
मांगड़ा	४२६	१२८	०	३७७	८३२४७	१९५

बहुत से भाग पहाड़ी हैं, जँहा आबादी बहुत कम है। जिलेका मुख्य स्थान अकियाब नगर है आबादी अधिकतर बौद्ध (२८००००) और मुसलमानों (१५५२००) की है। समस्त प्रान्तमें जितने मुसलमान हैं उनके आधे केवल इसी एक ज़िले में हैं।

आधेसे ज्यादा लोग आराकानी भाषा बोलते हैं और लगभग ⅓ लोग बंगाली बोलते हैं।

खेती—यहां की जमीन बालूमिश्रित और नम है। इसमें पैदावार अच्छी होती है वर्षा भी अधिक होती है। चौरस भागमें धान और दूसरी जगहोंमें फल इत्यादि पैदा होते हैं। पहाड़ पर मामूली पैदावार होती है। जिस ज़मीनपर बरसातका जमा हुआ पानी बहता है वहां अधिक जुताई की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्षा अधिक होनेके कारण कुँएके पानी की बिलकुल आवश्यकता नहीं रहती। इस जिलेमें धानके पौधे एक जगहसे उखाड़कर दूसरी जगह लगानेका रवाज नहीं है। सिर्फ गीली जमीनमें इधर उधर धानके बीज छींट देते हैं। एक तो यहांके कृषक आलसी होते हैं दूसरे यहाँके पशु रोगी होते हैं। इन कारणोंसे खेती की अच्छी उन्नति नहीं होती। खेती मज़दूरों द्वारा अधिकतर होती है। उठौआ खेती करनेके कारण यहांके बड़े-बड़े जंगल नष्ट हो गये हैं। स०१९०३-४ में कुल एकहज़ार एकड़ जमीनमें खेती होती थी। जिसमें ९३१ एकड़ जमीनमें केवल धान पैदा होता था।

अन्य उपज—तंबाकू, ऊख, मिरचा राई इत्यादि हैं। १९०३-४ से कृषि-क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। चटगांवके बहुतसे लोग यहां आकर बस गये हैं, और दिन-ब-दिन बसते जा रहे हैं। उनमें बहुतसे तो ज़मीनके मालिक बन बैठे हैं। यहांके लोग अधिकतर भैंसे पालते हैं; भेड़ कोई नहीं पालता।

खनिज पदार्थ—अभी इसकी अधिक खोज नहीं हुई है। पत्थरका कोयला रद्दी मेलका होनेके कारण उसकी खुदाई नहीं की जाती। कहा जाता है कि यहाँ सोने चाँदीकी खानें होंगी। परन्तु अभी तक पता नहीं लग सका है। मिट्टीके तेलके कुओं का पता ३० वर्ष पहले लगा था। उनसे प्रति वर्ष ५०,००० गैलन तेल बाहर निकाला जाता है। यह तेल आस पास बेचा जाता है। कुएँ ३०० फुटसे ७०० फुट तक गहरे होते हैं।

जंगल—सागवानके जंगल बहुत कम हैं। सन् १९०३-४ में जंगलकी कुल आमदनी ८८००) रु० हुई थी।

व्यापार—यहां करघेपर सूती और रेशमी कपड़े बुने जाते हैं। इसके अलावा सोने चाँदीके काम, बढ़ईगीरीका काम, कुम्हारका काम तथा सुनारीका काम होता है। आराकानी स्त्रियाँ बुनाईका काम करती हैं। सिर्फ धान और चावल दोही पदार्थोंका व्यवसाय होता है। अकियाब के बाहर रास्ते बिल्कुल नहीं हैं। अतः जलपथ से ही लोग व्यापार करते हैं। अकियाब बन्दर में बहुत जगहोंके स्टीमर ठहरते हैं। १८४२ ई० में इस बन्दरगाहमें दीप-गृह बनाया गया था। इस जिलेके चार विभाग और ८ अंतर्गत विभाग हैं।

विभाग—अकियाब, मिन्बिया, कियाक्ता, बुथिडाँग, टाऊनशिप्सके नाम ऊपरके कोष्टमें दिये गये हैं। हरएक विभागका अधिकारी एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट-कमिश्नर होता है। आराकान का कमिश्नर सेसनजजका काम करता है।

मालगुजारी—१८३२ ई० में कृषिसे २॥ लाख थी। सं० १८३७ में जंगली माल, झोपड़िया, नावें, कारीगर (हाथों से काम करने वाले) आदि पर जो कर थे उठा लिये गये। १८६४-६५ ई०में मछली पकड़ने वालों पर कर लगाया गया। १८६६-६७ ई० में कुल आमदनी पांच लाख थी। १८७९-८० ई० में कानून बन जानेके कारण आमदनी ७·७ लाख हुई फिर १८८५-८८ ई० में जाँच होने पर आय ८·३ लाख हुई और १९०२-३ ई० में १२ लाख हो गई।

आमदनी का खाका (अंक हजार के हैं)

	१८८०-८१	१८९०-९१	१९००-१	१९०३-४
ज़मीन से	७०२	९८६	११८५	१४२०
कुल आमदनी	२३३६	२६०२	२६९७	३०९७

ज़िले की जनसंख्यामें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम हैं। केवल अकियाबमें टीका लगवाने का कानून अनिवार्य है। (ई० ग० भाग ५)

अकियाब (विभाग)—लोअर बर्मा। यह अकियाब जिलेका एक विभाग है।

अकियाबके अंतर्गत विभाग—उ० अ० २०°-६' से २०°-१९', पू० रे० ९२°-४५ से ९२°-५९'। इसके अन्तर्गत विभागमें एक गाँव और ६० पुरवे हैं। जनसंख्या करीब ४८००० है। १९०३-४ ई० में मालगुजारी ५०,०००) थी। ३० वर्गमील ज़मीनमें खेती होती है।

अकियाब खास्—अकियाब शहर उ० अ० २०°-८' और पू० रे० ९२°-५५'। यह कलदन नदी

के मुहानेके समीप बसा है। जनसंख्या करीब अड़तालीस हज़ार है। इसमें करीब आधे बंगाली और शेष आराकानी, चीनी और बर्मी हैं।

इस गाँवके नामकरणका इतिहास ठीक २ मालूम नहीं है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह अक्यात् नामका अपभ्रंश है। अक्यात् बुद्धके जबड़ेके मन्दिरको कहते हैं। इस गाँवका आराकानी नाम सितत्वे है। इसका अर्थ है कि जहाँ से लड़ाई शुरू हो। इस सम्बन्धमें दन्त-कथाएँ सुनने में नहीं आतीं। अंग्रेज़ी शासनके पहले यह मछुओंका एक गाँव था। उस समय आराकान की राजधानी म्योहंग थी। परन्तु अंग्रेज़ी हुकूमत शुरू होते ही यह गाँव आराकानकी राजधानी बनाया गया। बन्दरगाहमें बड़े बड़े जहाज आ जा सकते हैं। वायु अस्वास्थ्यप्रद होनेके कारण यहाँ हैजा वगैरह संक्रामक रोग पैदा होते हैं। यहाँ धानका व्यापार अधिकतासे होता है और वह प्रायः हिन्दुस्तानियोंके हाथमें है। १८७४ ई० में यहाँ म्युनिसपैलिटी की स्थापना की गई। यहाँ जेल, सरकारी कचहरियाँ, दवाखाने आदि हैं।

अकिलीस—पौराणिक युगके यूनानी लोगोंमें यह एक प्रसिद्ध बीर पुरुष हो गया है। होमरके इलियड महाकाव्यमें तो इसका स्थान बहुत श्रेष्ठ है। यह तत्कालीन यूनानी लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ योद्धा था। इसके पिताका नाम मेलियस और माता का नाम थीटिस था। इसका दादा एइकस (Aeacus) जीयसका पुत्र था। अकिलीस की बाल्यावस्थाके संबन्धमें होमर और उसके बादके लेखकोंने भिन्न-भिन्न कथाएँ लिखी हैं। होमर का कथन है कि उसकी बाल्यावस्थामें उसकी मांने उसे पिथिआ (Pythia) में पालपोस कर बड़ा किया। उसे युद्ध-कला, संगीत-कला, एवं वैद्यक की शिक्षा दी गई। उसके विषयमें होमरके बादके लेखकोंने एक कथा कही है कि उसकी माँ उसे अमर बनानेके ख्यालसे प्रति-दिन उसके शरीरमें अमृत लगाती थी और रातको जलते हुए कोयलों के नीचे रखती थी। एक दिन पेलियसने यह देख लिया और झटपट लड़के को आगके नीचेसे निकाल लिया। इसपर थिटीस क्रोधित होकर घरसे चली गई। दूसरी कथा यों है कि उसकी मांने पांव पकड़कर उसे स्तिक्स नदीके जलमें डुबो दिया। जिससे तलवोंके सिवाय उसका सारा शरीर अभेद्य हो गया। आगे चलकर उसे बलिष्ठ बनाने के खयाल से सिंहकी अँतड़ी, भालू तथा सूअर का मांस खिलाया जाता था। उसकी मांको दो वरदान प्राप्त हुए थे पर वे वैकल्पिक थे। यदि वह अपने पुत्रको दीर्घायु बनाने की इच्छा करे तो वह दीर्घायु तो अवश्य होगा; किन्तु घरमें बैठकर जीवन व्यतीत करेगा और संसारमें उसकी ख्याति न होगी, और अगर उसका अल्पायु होना स्वीकार करे, तो वह ट्राय की समरभूमिमें अपनी कीर्तिको फैलावेगा। उसने दूसरा वर स्वीकार किया। परन्तु जिस समय ट्राय पर चढ़ाईकी गयी और शहरके चारों तरफ घेरा डाला गया, उस समय उसकी मांने यह सोचकर कि ट्रायकी समरभूमिमें ही अकिलिसकी मृत्यु होगी, उसे स्त्रीके भेषमें सजाकर लैकोमेडीस राजाके दरबारमें भेज दिया। वहाँ राज-कन्यासे उसकी मित्रता हो गई। उसको निआप्टोलमस नामक पुत्र भी हुआ। अकिलीसके सिवाय ट्राय विजय कर लेना असम्भव समझकर ओडेसिस (युलिसीस) उसका पता लगानेके लिये सौदागरके भेषमें वहाँ गया और उसके सामने रत्न और शस्त्र फैलाकर बैठ गया। स्त्री वेषधारी अकिलीसने शस्त्र उठा लिये, जिससे तुरन्त पता चल गया कि वह पुरुष है। अनन्तर अकिलीस रणमें गया और बड़ी बहादुरीसे लड़ते हुए उसने शत्रुके बारह शहर जीत लिये। कुछ समय बाद अगमेम्ननने उसकी दासी ब्रायसीस को जबरदस्ती उससे छीनकर अपने पास रख लिया। इससे क्रोधित हो उसने युद्धसे अपना हाथ खींच लिया। उसको युद्धमें शामिल करनेके लिये घोर प्रयत्न किया गया परन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ; किन्तु जब उसे अपने परम मित्रके मारे जाने की खबर लगी तो वह अपने मित्रकी मृत्यु का बदला लेनेके लिये स्वयं युद्धमें सम्मिलित हुआ। उसने शत्रु पक्षके मुखिया हेक्टरके खूनसे अपनी प्रतिहिंसाकी आग बुझाई। हेक्टरकी अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन समाप्त होतेही इलियड काव्य समाप्त हो जाता है। अकिलीस की मृत्युके सम्बन्धमें इलियडमें कुछ विशेष हाल नहीं दिया है परन्तु एक दूसरी जगह लिखा है, कि मिनरवाके मन्दिरमें जिस समय वह प्रायमकी कन्या पोलिज़ेना की मँगनी कर रहा था, उसी समय पारिसने उसके तलवेपर बाण मारकर उसका वध किया। उसकी मृत्युके सबन्धमें और भी अनेक कथाएँ हैं। मरनेके बाद देवताओंकी तरह उसकी पूजा सभी जगहोंमें, विशेषतः ल्यूक स्पार्टाके एलिस और हेलेस्पांटके सिगी स्थानमें की जाती थी। होमरने सिद्ध किया है कि अकिसील एक

आदर्श योद्धा, अत्यन्त क्रोधी और उदासीन प्रकृतिका मनुष्य था कहीं २ ऐसा वर्णन भी है कि उसका वीरोचित हृदय कोमलतासे पूर्ण था।

अकृत व्रण—ये परशुरामके अत्यन्त प्रेम-भाजन तथा एक वेद-वेत्ता ऋषि थे। जिस समय अम्बा को प्रसन्न करनेके लिये परशुराम और भीष्ममें संग्राम हो रहा था, उस समय ये परशुरामके सारथी हुए थे। (वनपर्व अ० ११५ उद्योग पर्व अ० १७९)

अकोट ताल्लुका—ज़िला अकोला। उ० अ० २०°५१' से २१°१६' पू० रे० ७६°४६' से ७७°१२'। इस ताल्लुकेमें कुल २६४ खालसा और दो जागीरी गाँव हैं। उत्तर दक्षिणकी लम्बाई लगभग २६मील और चौड़ाई २० मील है। उत्तरमें अमरावती जिलेका मेलघाट ताल्लुका पश्चिममें बुलडाना जिलेका जलगांव ताल्लुका है। ताल्लुके का प्रदेश प्रायः चौरस है और ज़मीन गहरी तथा काली और मिट्टी उपजाऊ है परन्तु उत्तरका प्रदेश पहाड़ी है जिसकी चौड़ाई लगभग ८ मील है। ताल्लुकेमें पानीकी कमी है। कूएँका पानी अधिकतर खारा होता है। कई जगहों पर दो२ मील दूर तकसे झरनों का पानी लाना पड़ता है। इस ताल्लुकेमें सड़कोंका अच्छा प्रबन्ध है। अकोट, मुडगांव और मालेगाँव में रौनकदार बाजार हैं। इस ताल्लुकेमें मन्दिर बहुत हैं और कई स्थानोंमें वार्षिक मेले लगते हैं। (अकोला डिस्ट्रिक्ट गजेटियर)

अकोट—(गाँव) यह ताल्लुके का मुख्य स्थान है और यह अकोलाके उत्तरमें २८ मील पर बसा है। अकोला और अकोटके बीच एक पक्की सड़क है। जनसंख्या करीब १६००० है। यहाँ सभी प्रकारकी इमारतें हैं, जैसे दवाखाना, अंग्रेजी और मराठी स्कूल, आदि। यहाँ हफ्तेमें प्रति बुधवार और रविवार को बाजार लगता है। १८८४ ई० में म्युनिसिपैलिटी की स्थापना हुई। यहाँ कपासका बाजार है। कपास से बिनौले निकालनेवाले दस और रूई दबानेवाले चार कारखाने हैं। यहाँ से लगभग ५००,००० रुपयों का कपास प्रति वर्ष बाहर भेजा जाता है। यहाँ लेन देन का व्यापार जोरों पर है और मेलघाटकी इमारती लकड़ियों का व्यापार होता है। आजकल यहाँ दरियाँ अच्छी बनाई जाती हैं। किसी जमानेमें अकोटकी दरियाँ बहुत मशहूर थीं। जोगवन, चिचखेड और कमलापुर, ये तीनों कसबे मिलाकर यह गाँव बना है। आबादी कुछ घनी है। हरएक घरमें एक २ कुँआ है। पुराने जमानेमें यह गांव मिट्टीकी चहार-दीवारी से घिरा था और उसमें जगह २ छः दरवाजे बने थे, किन्तु इस समय उसका नामोनिशान भी नहीं है। जिस स्थानपर आजकल यह तहसील है, वह पहले किलेके नामसे पुकारा जाता था। यहाँ मुसलमानों की आबादी काफी है। यहाँके बड़े२ कारखानोंकी इमारतें और उनके ऊपर लकड़ियोंमें खुदे हुए नक्काशीके काम तथा दिवाकर भाईका दीवानखाना देखने योग्य है। सरदारसिंह और फरनवीस की हवेलियाँ भी प्रसिद्ध हैं। फरनवीसकी हवेलीमें मज़बूत तहखाने हैं। कहते हैं कि सरदेशमुखके घर से लेकर बाग तक एक सुरंग है। गाँवके पास अकोलाके रास्ते पर एक ओर "एकगाड़ा नारायण" की समाधि है, जिसे हिन्दू मुसलमान दोनों पूज्य मानते हैं दूसरी तरफ मीरजाफ़र करोड़ा की कब्र है। दोनों इमारतों पर फारसी शिलालिपियाँ हैं।

मीरजाफ़रके वंशजोंके अधिकारमें जो ज़मीन है वह उन्हें इनाममें मिली थी। इसलिये वहाँ प्रतिवर्ष उत्सव मनाया जाता है। पास ही में गैबीपीर हैं। लोगों का विश्वास है, कि उक्त गैबी पीरके यहाँ जानेसे जूड़ी-बुखार अच्छा हो जाता है। यहाँ हिन्दुओंके बहुतसे देवालय हैं, किन्तु उनमें कोई विशेष वर्णन योग्य नहीं हैं। नरसिंह बाबाका मन्दिर महत्वपूर्ण और सबसे उत्तम है। नंदीबाग, बालाजी और केशवराज के मन्दिर भी साधारणतः अच्छे हैं।

उक्त बाबा नरसिंह एक मुसलमान फकीर के शिष्य थे। १८८७ ई० में इनकी मृत्यु हुई। प्रतिवर्ष कार्तिक मासमें इनके मन्दिरमें उत्सव मनाया जाता है जिसमें प्रायः बीस पचीस हजार मनुष्य एकट्ठा होते हैं। जनता द्वारा करीब १२० एकड़ ज़मीन देवालयको दान दी गई है। नरसिंह बाबाके जीवन पर लोगों की बड़ी श्रद्धा है। (अकोला डिस्ट्रिक्ट गजेटियर)।

अकोला—जिला—बरार प्रान्तका एक जिला उ० अ० २०°१७' से २१°१६' और पू० दे० ७६°२४' से ७७°२७' है। इसके उत्तरमें मेलघाट पहाड़, पूर्वमें दर्यापूर और मुर्तजापूर ताल्लुका, दक्षिण में मंगरूल वाशिम और मेहकर ताल्लुका पश्चिममें चिखली और मलकापुर ताल्लुका है। यह चौरस प्रदेश है। इसमें पूर्णा नदी बहती है। यहांकी जमीन काली और उपजाऊ है। यह जिला पाइन घाटकी तराईके बीचमें बसा है। यहां कालवीट (एक प्रकारका हिरन) सूअर, नील-गाय, चीते

इत्यादि जानवर पाये जाते हैं। यहाँ खूब गरमी पड़ती है; किन्तु मेलघाटके नरनाला किले पर गर्मी कुछ कम रहती है। वर्षा लगभग ३४ इञ्च होती है। जब कभी पानी कम बरसता है तब पशुओंकी दशा शोचनीय हो जाती है और बहुत से कालके ग्रास बन जाते हैं।

अकोला कभी स्वतन्त्र राज्य नहीं था, इसलिये उसका स्वतंत्र इतिहास नहीं है। इस भागमें खढगाँव और बालापुरकी लड़ाइयाँ तथा नरनाला किलेके घेरे प्रसिद्ध हैं। अकबरके समयमें यह जिला नरनाला सरकारके अन्तर्गत एक परगना था।

१८५३ ई० तक (जिस साल निजामने बरार को अंग्रेजोंके हाथ सौंप दिया) निजामकी कर-वसूलीकी प्रथासे बहुतसे बखेड़े हुआ करते थे। १८४१ ई० में जामोद के तट पर मुगलरावने भोंसलेका झंडा इस पर फहरा दिया। १८४३ ई० में अकोलामें कुछ धार्मिक बातों को लेकर झगड़ा खड़ा हो गया; पर इलिचपुरके ब्रिटिश कर्मचारियों ने उसे शान्त कर दिया। १८४९ ई० में अप्पा साहब विद्रोही हो गये; मगर ब्रिटिश सरकारने सेना द्वारा उनका दमन किया। मुगलोंके शासन में अथवा उसके पहले यह जिला या परगना कितना लम्बा चौड़ा था यह नहीं कहा जा सकता। शक १६८५ (सन् १७४४) के एक पत्र में मौजे धामणगांव, परगना अकोलासे १५० बैलों पर ३०० मन गल्ला लादकर पूना भेजे जाने का और उस पर चुङ्गी न लेनेका उल्लेख है। (राजवाड़े खं० १०-१६-८)

बरार अंग्रेजोंके अधिकारमें आतेही उसके (पूर्व बरार और पश्चिम बरार) दो भाग किये गए। १८६७ ई० से १८७२ तक अकोला पश्चिम बरारका मुख्य स्थान था।

प्राचीन प्रेक्षणीय स्थान—नर्नाला और बालापूर के किले, बालापूरकी छत्री और पातुर पहाड़के दो बौद्ध बिहार देखने योग्य स्थान हैं। इस जिले के गांवों और देहातोंकी संख्या ९७६ है। जन-संख्या करीब सात लाख अट्ठानबे हजार है।

इस जिलेमें पांच ताल्लुके थे। उनके नाम—अकोला, अकोट, बालापूर, खानगांव और जलगांव। मुख्य गांव—अकोला, खानगांव, अकोट और शेगांव। इस जिलेकी जमीन काली और उपजाऊ है। ४२ जागीरी गांवों को छोड़कर समूचे जिलेमें रैयतवारी बन्दोबस्त है। मुख्य पैदावार ज्वार और कपास है। यहाँ उच्च श्रेणीके घोड़े और भेड़ नहीं पाये जाते। १९०३-४ ई० में जिले भरके बगीचोंका क्षेत्रफल सिर्फ २१ वर्ग मील था। जमीन उपजाऊ होनेके कारण इस जिलेमें अधिक जंगल नहीं है। जहां कहीं साधारणजंगल हैं वहाँ सलई, खैर, सागवान, और बबूर आदिके पेड़ पाये जाये हैं। यहाँका मुख्य व्यापार कपासका बाहर भेजना है। इस जिलेमें जी०आई० पी० और सी० पी० रेलवे हैं।

अकाल—नहरोंकी व्यवस्था न होनेके कारण कृषकों को बरसातके पानी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वर्षा न होनेसे अकाल पड़नेकी सम्भावना सदा बनी रहती है। १८६२, १८९६-९७ और १८९९-१९०० के अकालमें लोगों को भयानक कष्टों का सामना करना पड़ा था। १९०० ई० में ८९८८० अकाल पीडित मनुष्यों को काम दिया गया और २२६४२ लोगोंको कर्ज दिया गया था। अनुमान है उस साल जिलेके लगभग आधे पशु मृत्युके मुखमें चले गये।

शासन—अन्यान्य जिलों की तरह।

१९०३-४ ई० में मालगुजारी से २२५४००० और कुल आय ३१३९००० रु० हुई थी।

शिक्षाका प्रमाण फी सदी ५·२ है। १९०५ ई० में बरारके छ जिलोंके रकबोंमें रद्दोबदल किया गया। उस समय अमरावती जिलेका मुर्तजापूर ताल्लुका, वाशिम और मंगरुल पहलेके वाशिम जिलेके ताल्लुके अकोला जिलेमें मिलाये गये। वाशिम जिला तोड़ दिया गया। अकोला जिलेके खानगांव और जलगांव ताल्लुके बुलडानामें मिला दिये गये। अकोला (आधुनिक) जिलेका क्षेत्रफल ४१११ वर्गमील और जनसंख्या ७९८५४४ (१९२१ की मर्दुमशुमारी) है।

अकोला ताल्लुका—(जिला अकोला) उ० अ० २०° ५३' से २०° २३' और पु० रे० ७७° २५' से ७६° ५४' तक। उत्तर-दक्षिण लम्बाई ३० मील, पूर्व-पश्चिम चौड़ाई लगभग २५ मील। क्षेत्रफल ७३९ वर्ग मील है। इस तालुकेमें कुल ३५८ गांव हैं, जिनमें १९ गांव जागीरी हैं। इसके पश्चिममें बालापुर ताल्लुका पूर्वमें मुर्तजापूर ताल्लुका उत्तरमें पूर्णा नदी, अकोट और दरियापुर ताल्लुका, दक्षिणमें मंगरूल और वासिम ताल्लुके हैं। यह ताल्लुका जिलेके मध्यभाग में है। इसकी जमीन उपजाऊ और चौरस है। केवल दक्खिनी हिस्सा पहाड़ी है। इस ताल्लुकेकी नदियाँ और नाले दक्षिणसे उत्तरकी ओर बहते हैं। यहां प्रति गांव पीछे प्रायः ग्यारह कुएँ हैं, फिर भी इस ताल्लुकेमें खास कर उस हिस्सेमें-जहाँका पानी खारा है पानीकी कमी

है। जी० आई० पी० रेलवेकी भुसावल नागपुर लाईन इस ताल्लुकेसे होकर जाती है। ताल्लुकेके अन्दर अकोला, बलखेड़, बोरगाँव और काटाँ पूर्णा स्टेशन हैं। ताल्लुके भरमें १४ स्थानोंमें बाजार लगते हैं।

अकोला शहर—यह अकोला जिलेका मुख्य स्थान है। उ० अ० २०°४३', पू० दे० ७७°०४। समुद्र-तल से यह ६२५ फुट ऊँचा है। पूर्णाकी सहायक मोर्णा नदी इसी शहरमें होकर बहती है। पश्चिमी तीरपर जो भाग है उसे शहर कहते हैं। शहर के चारों ओर दीवाल है। पूर्वी तीरके भाग को 'ताजनापेठ' कहते हैं। पहले नदीकी बाढ़ रोकने के लिये मुसलमानोंने दोनों किनारों पर जुम्मा मसजिदें बनवाई थीं। सन् १८७३ में नदीपर एक पक्का पुल बन गया। जी० आई० पी० रेलवे की भुसावल-नागपुर शाखामें यह एक स्टेशन है। यहाँ सब गाड़ियाँ ठहरती हैं। म्युनिसपैलिटी का क्षेत्रफल १६७४ एकड़ है। १८६७ ई० में इसकी जनसंख्या बारह हजार थी; आजकल लगभग तीस हजार के है। बरार प्रांतमें यह दूसरे दर्जेका शहर है। पानीका काम कुओं से चलता है। मोर्णा नदीमें भी दो जगह बाँध बँधवाये गए हैं। कापसी स्थानमें तालाब बनवा कर कल द्वारा पानी शहर में पहुँचाया जाता है। शहरमें एक सरकारी बाग, कचहरियाँ, वाचनालय गिरिजाघर, धर्मशाला आदि हैं। यहाँ श्रीरामका मन्दिर और नाटकगृह भी हैं। इमारतें बहुत अच्छी नहीं हैं। कपास का रोजगार होता है। पहले सट्टे का बाजार भी गर्म था। रूईसे बिनोले अलग करने के ३० से ज्यादा कारखाने हैं और रूई दबानेके कारखाने भी बहुत हैं। तेल की दो मिलें हैं। एक कपड़े की मिल है। शराब का एक प्रसिद्ध कारखाना यहीं हैं।

गर्मी अधिक पड़ती है, पर रातें हमेशा ठंढी होती हैं। जानू नामक धनी चमारका बनवाया हुआ एक छात्रावास चमार-विद्यार्थियोंके लिये है। दहीदाँडा दरवाजे पर एक शिलालेख हि० सं० १०१४ (१६०७ ई०) का है। उसमें लिखा है—"औरंगजेब बादशाह था और ख्वाजा अब्दुल-लतीफके समय नवाब असदखाँ एक जागीरदार था"। 'ईदगाह' में भी एक शिलालेख है। उसपर यों लिखा हुआ है—"हि० सं १११६ में ख्वाजा अब्दुल लतीफने यह इमारत तैयार की।" यहाँ निजाम और मराठोंके बीच युद्ध हुआ था। कब हुआ, ठीक समयका पता नहीं चलता। १७९० ई० में शहरके सामने गाज़ीखाँ पिंडारीको भोंसला के सेनापति ने हराया था। यहाँ एक किला था पर १८७० के लगभग वह गिरा दिया गया। १८१७ ई० में जनरल डेवटनने नागपूर को जीतने के पहले कुछ दिनों तक यहीं डेरा जमाया था। १८३३ में एक भयंकर बाढ़ आई थी।

शहर से छः मीलपर कान्हेरी गाँव है। कहते हैं इसी गाँव के अकोलासिंह द्वारा इस नगरकी नींव पड़ी। एक दंत-कथा और भी है। यहाँ पहले जंगल था। महादेवजी के एक मंदिरके अलावा कोई इमारत न थी। अकोलासिंहकी स्त्री इसी शिवमंदिरमें दर्शनोंके लिये अकेली जाया करती थी। अकोलासिंहको उसपर संदेह हुआ। एक दिन उसने नंगी तलवार लेकर उसका पीछा किया। जब उसने देखा कि उसकी स्त्री मंदिरमें दर्शनोंके लिये जाथा करती है, तो वह अपनी रक्षा के लिये शिवजीकी प्रार्थना करने लगा। उसने देखा कि मूर्ति बीच से फट गयी और उसकी स्त्री उसमें समा गयी। वह मूर्तिके पास गया, पर साड़ीके आँचल के सिवा उसे कुछ भी न मिला। मूर्तिके बाहर वह साड़ी बहुत वर्षों तक दिखाई देती रही। अकोलासिंहने अपनी स्त्रीके लिये बहुत शोक किया। जहाँ उसे अपनी स्त्रीका अंतिम दर्शन हुआ था वहीं वह रहने लगा। उसने वहाँ मिट्टीकी एक गढ़ी बनवाई। कहा जाता है उसी स्थानपर आजकल किला है।

अकोला ताल्लुका—बम्बई इलाका—अहमदनगर जिलेका एक तालुका। उ० अ० १९°१६' से १९°४५' पू० दे० ७३°३७ से ७४° तक। क्षेत्रफल लगभग ५७२ वर्ग मील। जनसंख्या ७५,०००। सन् १९०३-०४ में कृषि-करसे आमदनी एक लाख रुपया और दूसरे करों से सात हजार रुपया हुई थी। प्रवरा और मूला नदियों के आस पासका प्रदेश इसी ताल्लुके के अंतर्गत है। जमीन सूखी और ऊँची नीची है। सह्याद्रि पर्वतके कारण पश्चिमी भागमें २०० से २५० इंच तक वर्षा हो जाती है, पर पूर्वी भाग में औसत २२ इंच वर्षा होती है। १९१८ में एक मुसलमान तहसीलदार ने सेनामें रंगरूट भर्ती करने के लिये बड़ा जुल्म मचा रखा था। नतीजा यह हुआ कि तहसीलदार जिंदा जला दिया गया। इसी कारण इस ताल्लुके को लोग जान सके।

मराठोंके जमानेमें इसी परगनेका ढोकरी गाँव चितो विट्ठलको इनाम में मिला था।

[राजवाड़े—१२-३३०-२०८]

अक्कड—बेबिलोनियाके नीमरोद राज्यके केन्द्र भागमें जो चार शहर थे उनमेंसे एक का हिब्रू नाम अक्कड था। इस शहरका ज़िक्र बाइबिलके पूर्व खंड (Old Testament) में आया है। अनुमान किया जाता है कि पूर्वके बेबिलोनियन राजा 'सारगन' प्रथमकी जो प्रसिद्ध राजधानी अगडे थी वह और यह अक्कड दोनों एक ही हैं। बेबीलोनिया का अंतिम सेमेटिक राजा नवोनिडस (५५५-५४७ ई० पू०) ने सारगन का काल ईस्वी सनके ३८०० वर्ष पूर्व दिया है। इतिहास-वेत्ताओंका अनुमान है कि शायद यह राजा ईसाके जन्मके ७०० या इससे भी १०० वर्ष पहले रहा होगा। बहुतसे शिलालेखों में अगडे का जिक्र मिलता है। हो सकता है कि अगडे का अक्कड-आसुरी बेबिलोनियन सेमेटिक अपभ्रंश हो। अगडे शब्दका अर्थ 'अग्निमुकुट' (अग=अग्नि, वडे=मुकुट) है। इसका लगाव इश्तर (Ishtar) की पूजासे होगा क्योंकि नवोनिडस के आधार से यह प्रतीत होता है कि इश्तरके पश्चात् अनुनित देवताकी उपासना अगडे में शुरू हुई। इस अनुनित देवताका देवालय सिप्पुरमें था। अनुमान है कि अगडे-अक्कड यूफ्रेटीज (फरात) नदीके किनारे और सिप्पुर नगरका अत्यंत प्राचीन भाग होगा।

आसुरी बेबिलोनियन साहित्यमें अक्कडका नाम सुमेरुके साथके राजाओंकी विरुदावलीमें मिलता है। इसका अर्थ प्रोफेसर मेक्कार्डीके मतानुसार यही निकलता है कि अक्कड शहर और प्रान्तपर उन्हीं राजाओंका राज्य था।

[प्रस्तावना खंड विभाग ३, सुमेरु, असुर और बेबिलोनिया शब्द देखिये।]

अक्कण्णा—कुतुबशाहीका एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राह्मण। असली नाम अकरस और पिता का नाम भानजी। उपनाम पिंगली। मराठी ऐतिहासिकोंका कहना है कि इसका असली नाम एकनाथ पंत था। जन्म एक दरिद्र, आश्वलायनशाखा के देशस्थ ऋग्वेदी भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण कुलमें हुआ था। १६६६ ई० में इसने और इसके भाई मादण्णा ऊर्फ मदन पंतने गोलकुण्डाके सरदार सैय्यद मुस्तफाके यहाँ नौकरी कर ली। १६७२ ई० के लगभग मदनपंत कुतुबशाहका कारिन्दा बनाया गया। उसी साल मुहम्मद इब्राहीम प्रधान सेनापतिके पदसे हटाया गया और उसकी जगह अक्कण्णकी नियुक्ति हुई। ग्रांट डफका कथन है कि १६७६ ई० में शिवाजीने मुगलों और बीजापूर वालोंकी इच्छाके विरुद्ध गोलकुण्डा दरबारसे संधि कर ली। उसीमें अक्कण्णको बीजापूरके कारिन्देकी जगह दिलानेका लालच दिया गया था। १६८६ ई० के मार्च महीनेमें दोनों भाइयोंका गोलकुण्डाके चिढे हुए मुसलमान सरदारोंने खून कर डाला और उनके सिर हाथियोंके पैरके नीचे कुचलवा दिये। (देखिये मादण्णा) इनके समकालीन एक डच लेखक डी० हैवर्टने लिखा है—अक्कण्ण बड़ा ही धूर्त और कांइया था, पर वह मदनपंतके जैसा बुद्धिमान नहीं था। दोनों भाई वैष्णव साम्प्रदायके थे।

[आधार ग्रंथ-जदुनाथ सरकार का "औरंगजेब का इतिहास" चतुर्थ ग्रंथ; ग्रांट डफ-प्रथमग्रंथ; भारत इतिहास संशोधक मंडल-वार्षिक इतिवृत्त शाक १८३८।]

अक्कलक—(अकर काढ़ा) गुजरातीमें अक्कलकरो; अंग्रेजीमें Pallitarp root; कहते हैं। इसके छोटे छोटे पौधे होते हैं जिनकी ऊँचाई लगभग एक हाथ होती है। अरब और मिश्रमें यह पाया जाता है। इन देशोंसे इसकी जड़ें हिन्दुस्तानमें आती हैं। इसका फूल पीले गेंदेके फूलकी तरह होता है। स्वाद मूलीके जैसा होता है। फूलको खाँसीमें पानके साथ देते हैं। (१) दाँतमें दर्द हो तो अकरकाढा और कोरंटी के पत्तेको एक साथ कूटकर दाँतके नीचे दबाना चाहिये। (२) जीभ शुद्ध करनेके लिये इसको दाँतके नीचे दबाकर इसका रस धीरे-धीरे निगलना चाहिये। (३) सेंदुर पेटमें चला गया हो तो अकरकाढ़ा और बचको पानीमें घिसकर पिलाना चाहिये। कहते हैं कि अपस्मार रोगमें इसके चूर्णको शहदमें मिलाकर देना चाहिये और सूंघना भी चाहिये। जीभ यदि लड़खड़ाती हो या उच्चारण स्पष्ट न होता हो तो इसको मुहमें रखकर लारके साथ इसका रस चूसनेसे ये ऐब दूर हो जाते हैं। संधिवायुपर इसका काढ़ा लाभदायक होता है।

[पदे-वनस्पति गुणादर्श; गुप्त-वैद्यक शब्द-सिन्धु; सेन-आयुर्वेदिक सिस्टम आफ मेडिसिन।]

अक्कलकोट—बम्बई इलाकेके अक्कलकोट राज्य का प्रधान नगर। उ० अ० १७ ३१' और पू० दे० ७६ १५'। जनसंख्या १९११ में ९३०३। यह जी० आई० पी० रेलवेके अक्कलकोट रोड स्टेशनसे सात मील पर है। पहले इसके चारों ओर बाँध बँधा हुआ था। इसके पीछे खाई थी। आजकल बाँध कहीं कहीं टूट गया है और खाई तो प्रायः आधी भर गई है। यहाँकी मशहूर इमारतें पुराना और नया राजभवन, हाईस्कूल आदि हैं। राज्यके शस्त्रागारमें शस्त्रोंका संग्रह देखने योग्य है। [इ०ग०]

अक्कलकोटः—बम्बई इलाक़ेका एक देशी राज्य है। यह राज्य शोलापूरके आग्नेय कोणमें है। राज्यका पोलिटिकल एजेन्ट शोलापुरका कलक्टर ही होता है। अक्कलकोट खासके अलावा इस राज्यमें मालशिरस ताल्लुकेके छः गांव और खटाव ताल्लुकेमें कुर्ला गांव है। इस राज्यमें कुल १०३ गांव (१ बड़ा और १०२ छोटे) हैं। कुल क्षेत्र-फल ४९८ वर्गमील है। इसमें कुल १३ वर्गमील जंगल है। ३९ वर्गमील जमीन खेतीके योग्य नहीं है। जनसंख्या १८८१ ई० में ५८०४०थी, १८९१ में ७५७७४,१९०१ में ८२०४७,१९११ में ८९०८२ थी। १८९१ में कुल आमदनी २३५००० रु० थी। १९०३-०४ ई० में ४५०००० रु० थी। आजकल पौने छः लाख है और अब जो बन्दोबस्त होने वाला है, उसके मुताबिक एक लाख और बढ़नेकी सम्भावना है।

सीमाः—मालशिरस और खटाव ताल्लुकेके सात गावोंके अलावा इसके उत्तरमें निजामका राज्य है। पूर्वमें पटवर्धनकी जागीर और निजाम राज्य; दक्षिणमें इन्दी ताल्लुका और निजामका का राज्य और पश्चिममें शोलापूर ताल्लुका है।

अक्कलकोटका प्रदेश समुद्र-तलसे १२०० फुट ऊँचा है। भूमि चौरस और वृक्षरहित है। गावों के चारों ओर केवल आमके वृक्ष हैं। इस राज्यकी सीमामें से होती हुई थोड़ी दूर तक भीमा और सीमा नदियाँ बहती हैं। बोर नदी इसी राज्यसे बहती हुई भीमासे मिलती है। इसकी एक शाखा हरिणी है। इस राज्यमें कुएँ अधिक होनेके कारण पानी हर एक जगह अधिकतासे मिलता है। नदीके तीर परकी जमीन काली और बाकी जमीन हलकी काली है। कहीं कहीं की मिट्टी चूना मिश्रित है। कहीं भी ईटें बनाने लायक मिट्टी नहीं मिलती। वर्षाके अन्तमें हवा अस्वास्थ्य-कर होती है; जाड़े और गरमीमें आबहवा अच्छी रहती है। गरमीमें तापमान '१०८' तक पहुँच जाता है; और जाड़ेमें '६२' तक नीचे उतरता है। वर्षा लगभग ३० इंच होती है। १८८२ में २०००० एकड़ जमीन संरक्षित जंगलके रूपमें बचाकर रक्खी गई। शेषमें बबूलके अतिरिक्त और किसी तरहके वृक्ष नहीं हैं। केवल कुर्लामें सागौन और चन्दनके पेड़ पाये जाते हैं। बाघ, चीता इत्यादि क्रूर पशु नहीं दिखाई पड़ते। कहीं कहीं लोमड़ियाँ और भेड़िये नज़र आते हैं। सर्वसाधारण को शिकार करने की इजाज़त नहीं है। इस कारण हिरन वगैरह जँगलोंमें पाये जाते हैं। खाने लायक पक्षी नहीं मिलते।

यहांकी आबादीमें हिन्दू, मुसलमान और इसाई जातिके लोग हैं। हिन्दूओंमें ब्राह्मण, वैश्य, लिगांयत, मराठे, जुलाहे, गडेरिये पांचाल, चमार, डोम इत्यादि जातियाँ हैं। जुलाहों की जनसंख्या ६००० है जिसमें अधिकतर लिंगायत, पंचमसाली और मुसलमान आदि हैं।

पानी बहुधा कुओंसे पहुँचाया जाता है। भूमि दो फसलें देती है। खरीफ की फसल में बाजरा, अरहर और कपास मुख्य हैं और रबीमें प्रायः ज्वार पैदा होती है। इसके अतिरिक्त धान, अलसी, चना, गेंहूँ और ऊख की भी खेती होती है। पहले यहां राज्यके बगीचोंमें नारियलके बहुतसे वृक्ष थे, परन्तु वर्षाके अभावसे वे नष्ट हो गये। कुछ गुजराती और मारवाड़ी बनिये तथा कुछ ब्राह्मण यहां महाजनी करते हैं।

जी० आई० पी० रेलवे का १८ मील लम्बा रास्ता इस राज्यमें होकर गुजरा है। इस लाइन पर अक्कलकोट रोड स्टेशन है। यह अक्कलकोटसे सात मील दूर है। बीचकी सड़क उत्तम है। यहां से ज्वार, कपड़ा, पान, मिर्चा बाहर भेजी जाती है। अक्कलकोटके पासके निज़ामके प्रदेशमें पैदा होने वाला माल यहींसे बाहर भेजा जाता है। यहाँ साड़ियां, खगड, साफेका कपड़ा और खादी वगैरः कई किस्मके कपड़े तैयार होते हैं। शोलापूर गजेटियरमें लिखा है कि इस राज्यमें लगभग १२०० करघे हैं और प्रतिवर्ष पांच लाखका माल तैयार होता है।

१८६६ से १८७१ के दरमियान इस राज्य की पैमाइश की गई थी। उस समय लगभग १२ आना फी एकड़ लगान था। उसके बाद फिर जमीन की जाँच की गई और लगान ठहराया गया। उस समय यह भी निश्चय किया गया था कि ३० साल तक इस लगानमें कुछ रद्दोबदल न होगा। पहले कुछ जमीन परती पड़ी थी। परन्तु आजकल सब खेतीमें आगई है। कुछ थोड़ेसे परिवर्तनके साथ ब्रिटिश इंडियाके कानून यहाँ लागू हैं। राज्यमें एक दीवान, एक प्रधान विचार-पति, एक तह-सीलदार, दो चीफ मेडिकल आफिसर, स्टेट ओवरसीयर, पुलिस इन्सपेक्टर, वाटरवर्क्सइंजि-नियर, हाई स्कूलके हेड-मास्टर आदि प्रधान अफसर हैं। गवर्नमेंट एडमिनिस्ट्रेटर का नया पद कायम कर दीवान का कुल चार्ज उसीको वर्तमान महराजा की बाल्यावस्थाके कारण दे दिया गया है। स्वयं राजा साहब को दीवानी, फौजदारी

वगैरह सब अधिकार प्राप्त हैं। यहां का दीवान ही डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज तथा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट रहता है। सब विभाग उसीके मातहत रहते हैं। न्याय विभागके प्रधान अधिकारी को असिस्टेंट सेशन जजके अधिकारोंके अतिरिक्त कुछ अपीलके अधिकार भी होते हैं। न्यायाधीश फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट होता है। इसलिये दीवानी दावे पहले इन्हींके इजलासमें होते हैं। मामलेदार (मुंसिफ) सेकेंड क्लास मजिस्ट्रेट होता है और कुछ खास तौरके दीवानी दावोंका ही वह फैसला कर सकता है। महालकरी छोटे छोटे स्थानीय दावों को सुन सकता है, और उसे थर्डक्लास मजिस्ट्रेटके अधिकार प्राप्त हैं। दीवानी और फौजदारी की सबसे बड़ी कचहरी राजा साहब की है। आजकल उनकी अवस्था छोटी होनेके कारण उनके सब कार्य पोलिटिकल एजेंट और बम्बई सरकार करती है। सेशन जज अगर किसी को फाँसी की सजा देता है तो बम्बई सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती है।

इस राज्यमें ४१ घुड़सवार और ७१ नगद तनखाह पानेवाले पुलिस कर्मचारी हैं। कुछ देहाती चौकीदार हैं, जिनमेंसे कुछ को नगद तनखाह मिलती है और कुछ को बिना लगान की जमीन मिली हुई है। १८८२-८३ ई० में इस राज्य की कुल आमदनी २३५००० थी। उसमेंसे माल-गुजारी १४८००० रु० है और लोकल फंडसे ११३०० रुपये वसूल हुए थे। १९०३-४ में माल-गुजारीसे ३६००० रु० और कुल अमदनी ५०००० रु० थी।

१८८२ से ८३ ई० तक इस राज्यमें कुल १९ पाठशालाएँ थीं लेकिन अब कुछ अधिक हैं।

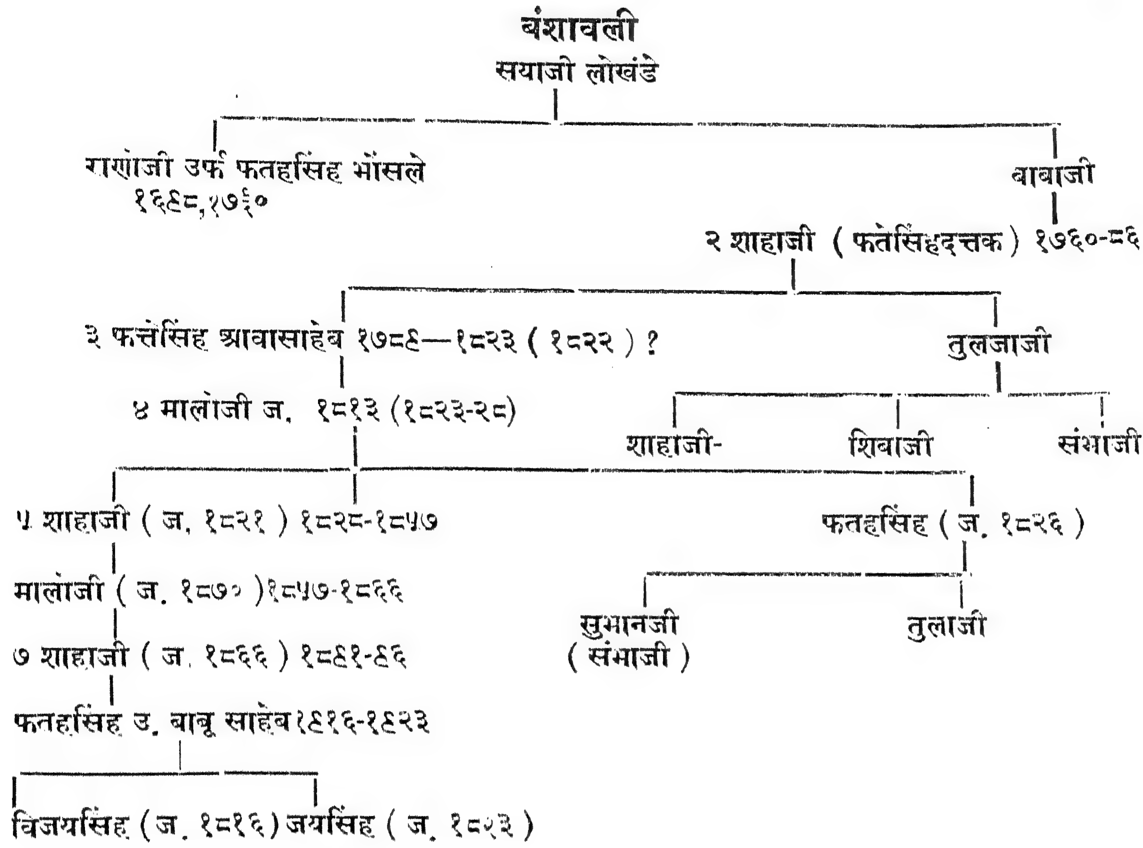
१८७१ ई० में अक्कलकोटमें पहले पहल दवा-खाना खोला गया। आजकल करज़गीमें भी एक दवाखाना है। करज़गीमें सबअसिस्टेण्ट सर्जन और अक्कलकोटमें असिस्टेण्ट सर्जन रहता है। अक्कलकोटका असिस्टेण्ट सर्जन ही चिफ मेडिकल आफिसर होता हैं। इस राज्यमें अक्कलकोट ही सबसे बड़ा नगर है। अक्कलकोटके अतिरिक्त चाफलगांव, जेऊर, करजगी, मंगरुल, तोलनूर आदि दस गांव हैं; जिनकी जनसंख्या दो हजार से पांच हजार तक है।

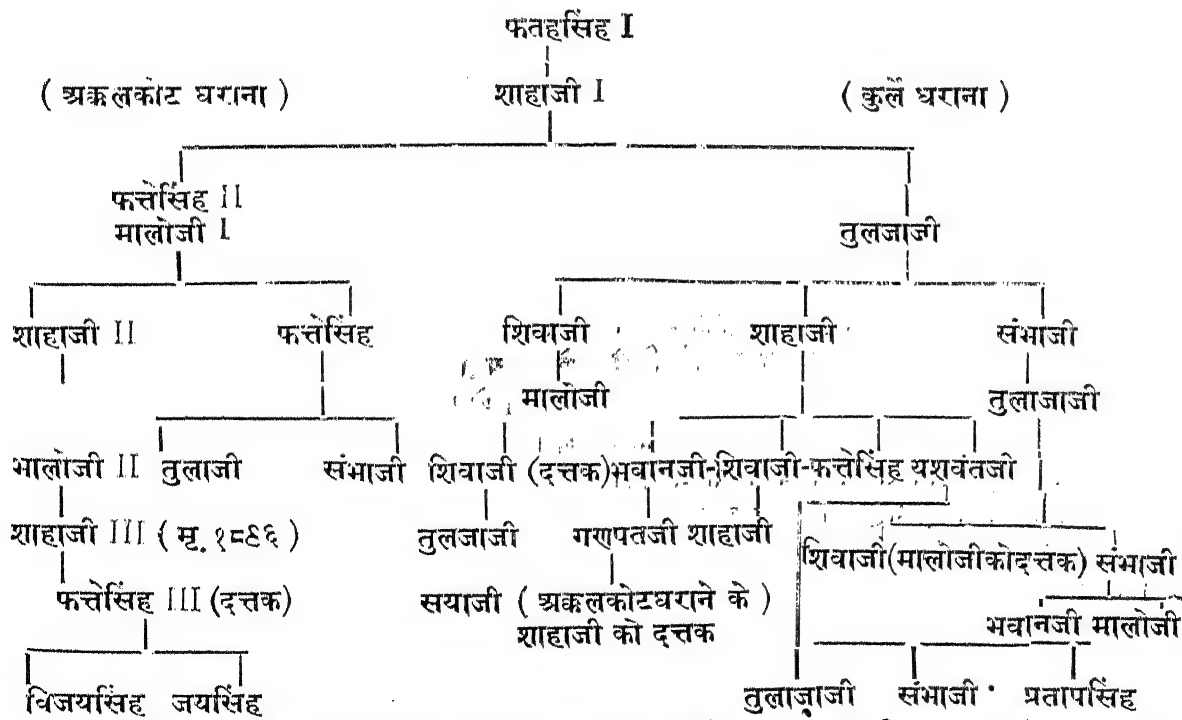
इतिहास—अक्कलकोट राज्यका स्वतन्त्र इतिहास १८वीं शताब्दीसे आरम्भ होता है। १६वीं शताब्दीमें बीजापुर और अहमदनगरके बीच इसके लिये झगड़े चलते थे। १७वीं शताब्दीमें इस प्रदेशमें मलिकअम्बरकी जमाबन्दीकी पद्धति शुरू हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रदेश अहमदनगरके राज्यके अन्तर्गत रहा होगा।

१७१२ ई० शाहूने राणोजी लोखंडे नामक लड़केको अपने यहाँ लाकर, घरके लड़केकी तरह उसका पालन-पोषण किया। उस पर शाहू इतना खुश था कि उसने उसे स्वतंत्र रहनेके लिये साताराके राज-महलमें जगह दी। उसको एक मनसब दी गई और खर्चके लिये उसे ३५ लाखका मुल्क दिया गया। वीरूबाई नामक शाहूकी एक रखेली थी। उसका राणोजी ऊर्फ फतहसिंह पर पुत्रवत प्रेम था; क्योंकि जब उसका देहान्त हुआ तो उनकी अन्तिम क्रिया फतहसिंह से ही कराई गई। इस कारण उसकी धन-दौलत और उसके खर्चके लिये मिली हुई अक्कलकोट परगने की जागीर कानूनके मुताबिक फतहसिंहके अधिकारमें आई। इस तरह फतहसिंह शाहूका धर्म-पुत्र समझा जाने लगा। अब वह अपनेको राजा कहने लगा। सातारा घरानेकी तरह इसने भी अष्ट-प्रधानोंकी नियुक्ति की। इसने अपनी बड़ी जागीर में से इन सबको इनाममें जागीरें दी थीं। साताराका राज्य नामशेष हो जाने पर भी उनके हाथमें थोड़ी बहुत जागीरें बच रही थीं। पेशवा को उसने लगभग ५०००० रु० की आमदनीके गाँव दिये थे।

कोल्हापुर (१७१८) बुंदेलखंड (१७३०) भागा-नगर, कर्नाटक आदि की चढ़ाईयोंमें फतहसिंह खुद हाजिर था। १७४९ में शाहूकी मृत्युके बाद वह अक्कलकोटमें रहने लगा। वहीं वह १७६० में मर गया। (देखो फतहसिंह भोंसले) फतहसिंह के बाद उसके भाई, पारदके पटेल, बाबाजी लोखंडे का लड़का, शाहजी गद्दी पर बैठा। उसे फतह-सिंह ने पेशवाकी मंजूरीसे ५ वर्ष पूर्व गोद लिया था। फतहसिंहके मरतेही त्रिम्बक हरी पटवर्धन शाहजीको लेकर पेशवाके पास आया। अक्कलकोट की जागीरका झगड़ा दो तीन वर्ष तक चलता रहा। बाबू नायक नामक महाजनका कुछ रुपया अक्कलकोट राज्यकी ओर बाकी था। नायक चाहता था की राज्यकी व्यवस्था उसीके हाथ में रहे।

मगर पेशवाने नायककी इच्छाके विरुद्ध त्रिम्बक हरीकी सलाहसे शाहजीको सब अधिकार दे दिये। इससे नायक विद्रोही हो गया। जिस समय शाहजी गद्दी पर बैठे उस समय फतहसिंह की जागीरमें से केवल अक्कलकोटकी जागीर ही





[संदर्भ ग्रंथ-सिलेकशन फ्राम पेपर्स इम्पीरियल गजेटियर; मराठी रियासत; बॉबे गजेटियर सोलापूर जिला; ग्रांट डफ]

बची हुई थी। प्रथम माधवराव पेशवाने हैदर पर जो चढ़ाइयाँ की थीं, उनमें शाहजी की सेना का भी एक दल रहता था। १७८९ में शाहजी का देहान्त हो गया। इसके पीछे उसका पुत्र फतहसिंह उर्फ आबा साहब गद्दी पर बैठा। शाह जी को तुलाजी नामका एक और पुत्र था। उसमें और फतहसिंहमें लड़ाई हुई, जिसमें फतह सिंह ने उसे कैद कर लिया परन्तु वह शीघ्रही पेशवाके पास चला गया और उसने अपने भाईके खिलाफ पूनाके दरबारमें शिकायत की। थोड़े ही समयके उपरान्त सदाशिवराव भाऊ और माणके-श्वरके उद्योगसे दोनों भाइयोंमें मेल हो गया, और तुलजाजीने सतारा जिलेके खटाव ताल्लुकाके कुर्ला आदि ८१०० रु० की आमदनीवाले गाँव लेकर चुप बैठना स्वीकार किया। १८०७ में जब अंग्रेजोंने सताराका राज्य हस्तगत किया, तब ३ जुलाई १८२० ई० को फतहसिंहसे संधि कर उन लोगोंने उसकी जमीन उसे वापस दे दी। १८२२ में फतहसिंह मर गये और उनका लड़का मालोजी गद्दी पर बैठा।

१८२७ ई० में अंग्रेजोंने मराठा राज्योंकी एक फेहरिस्त तैयार की थी जिसमें अक्कलकोटकी आम-दनी निम्नलिखित थी—

अक्कलकोट परगना	२,००,०००
शोलापुरसे आय	४,०००
पूना शहर से चुंगी का हिस्सा	१०,०००
सतारा प्रान्तके ८ जिलोंकी चुंगीका हिस्सा	११,०००
टोटल	२,२५,०००

सन् १८२८ में मालोजी का देहान्त हो गया। उसका आठ वर्षका पुत्र गद्दी पर बैठा। वह नाबालिग था। इसलिये सताराके राजा राज्य-प्रबन्ध करने लगे। १८२९ में उन्होंने कुछ विषयोंमें अनुचित परिवर्तन किये। इसलिये बोरगाँव के सरदेशमुख शंकर रावके नेतृत्वमें वहाँकी प्रजाने विद्रोह खड़ा किया। उसका दमन करनेके लिये शोलापूर और अक्कलकोटसे ब्रिटिश सेना भेजी गयी, परन्तु विद्रोहियोंने कुछ परवाह नहीं की। अधिक छान-बीन होने से पता चला कि प्रजाका बागी होना नाजायज़ नहीं था। तब सताराके राजासे राज्य-प्रबन्ध छीन कर जेमसन नामक रिजेण्ट को सौंप दिया गया।

१८४९ में सताराके बृटिश राज्यमें मिल जाने पर अक्कलकोट अंग्रेजोंके आधीन हुआ। १८५७ ई० में शाहजीकी मृत्युके बाद उसका पुत्र मालोजी गद्दी पर बैठा। १८६६ में मालोजी कुप्रबंधके कारण गद्दीसे उतार दिया गया। वह १८७० में मर गया। मालोजी का एक लड़का था जिसका नाम शाहजी था। शाहाजीकी उम्र कम होनेसे १८९१ तक बृटिश सरकार ही राज्यकी सब व्यवस्था करती रही; पर उसी साल उसने शाहजीको सब अधिकार दे दिये। १८९८ में वह निःसंतान मर गया, इसलिये अंग्रेजोंकी सलाह से उसकी स्त्रीने 'पहले शाहजी' के वंशज कुर्लाके जागीरदार गणपतके पुत्र फतहसिंहको गोद लिया। इनके बालिग होने तक पहलेकी तरह व्यवस्था की गई। १९१६ में बालिग होने पर अधिकार इनके हाथ में आ गये। इस राजासे प्रजा बहुत आशा करती थी। पर इलाजके लिये पूनाके सासून अस्पतालमें जाने पर वहाँ दवाके बदले विष पेटमें चला गया और वहीं उनकी मृत्यु हुई।

अक्कलकोटके राजा पहले दर्जेके सरदार हैं। उन्हें गोद लेनेका अधिकार है। सलामीका मान नहीं है। उनको कर नहीं देना पड़ता, परन्तु १८२० की संधिमें एक शर्त थी, कि देशी राज्योंको अपने खर्चेसे ब्रिटिश घुड़सवारोंकी एक सेना रखनी होगी। १८६८ ई० में सेना रखनेके बदले सिर्फ रुपया देनेका निश्चय हुआ। तबसे वे ब्रिटिश सरकारको प्रति वर्ष १४५९२) देते हैं। आजकल फतहसिंहके बाद उनके पुत्र विजयसिंह राज्यके वारिस हैं। उनकी अवस्था केवल १६ वर्षकी होनेके कारण उनके बालिग होने तक राज्यकी व्यवस्था करनेके लिये अंग्रेजोंने अपनी तरफसे एक अफसर नियुक्त किया है।

अक्कलकोटके स्वामी महाराज—ये विगत शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हो गए हैं। इस महाराष्ट्रीय साधु पुरुषका कहाँ और कब जन्म हुआ इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। अक्कलकोटमें आकर बसनेके पूर्व ये कुछ वर्ष तक 'मंगलवेढ' में थे। यहाँ स्वामीजी दिगम्बर बावाके नामसे प्रसिद्ध थे। उनको बहुतसे लोग पागल कहते थे। सं० १८५७ में स्वामीजी अक्कलकोट आये। कहा जाता है कि हैदराबाद राज्यके माणिक नगर (हुमणाबाद) के माणिक प्रभुके समाधिस्थ होने पर स्वामी महाराज प्रसिद्ध हुए।

स्वामीजी मरण तक अक्कलकोटमें थे। ये बहुत मशहूर हो गये थे। राजा लोग भी बड़े भक्ति-भावसे अक्कलकोटकी यात्रा करने लगे। उनके भक्तोंमें सब जाति और सब वर्णोंके लोग हैं। स्वामीजीकी रहन-सहनके बारेमें लोगोंको आश्चर्य

होता था। परन्तु उनमें पूर्ण विरक्ति भरी हुई थी। वे कभी भी किसीके कहने पर नहीं चले और न उन्होंने किसीको ठीक ठीक जवाब ही दिया। वे जो कुछ भी बोलते थे वह उनके दर्शनको आनेवालोंके मूक प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर हो जाता था। यद्यपि राजा लोग उनके सुखके लिये सब कुछ करनेको तैय्यार थे; परन्तु वे कभी भोग-विलासमें नहीं फँसे।

स्वामीजीके दिखाए हुए चमत्कारोंके बारेमें अनेक कहानियाँ कही जाती हैं। भावुक लोगोंका कथन है कि यहाँके नोमके वृक्षकी कड़वी पत्तियों को उन्होंने मीठा कर दिया, जो अभी तक मीठी हैं।

चैत वदी १२ शके १८०० में स्वामीजी परलोक सिधारे। समाधिकी जगह पर उनका स्मारक बना हुआ है।

अक्का देवी—कल्याणीके पश्चिम चालुक्य राजघराने के जयसिंह द्वितीयकी यह बहिन थीं। इनका उल्लेख बहुतसे पत्रों और लेखोंमें मिलता है। उन उल्लेखों से अनुमान किया जाता है कि यह सुप्रसिद्ध रमणी होगी। "गुणद-बेडगी (सद्‌गुणों की माता) और 'एक वाक्ये' (एक वचनी) आदि विशेषण उसके नामके साथ मिलते हैं। लड़ाइयोंमें उसका वर्णन किया गया है। १०२१ या १०२२ ई० में जयसिंह द्वितीयके मातहत किसुकाड (सप्तती) में वह राज्य करती थी। (ई० ऐं० स० १८ पृ० २७५) जहाँ तक विदित होता है, वह सोमेश्वर प्रथमके समयमें भी अधिकारयुक्त थी। क्योंकि १०४७ ई० के एक लेखमें इसे हम बेलगाँव जिलेके गोकागे (गोकाक) का घेरा डालकर बैठी हुई पाते हैं (बीजापुर जिले के अरसीबीड़ीका शिलालेख)। १०५० ई० में किसुकाड (सप्तति), तोरगेर (पद) और मालवाड़ी (एकशतचत्वारिंशत) आदि स्थानोंमें उसका राज्य था। १०५३ ई० में किसुकाड (सप्तति) पर उसके आधिपत्यका लेख मिलता है। (अरसी बीडीका दूसरा शिलालेख) और उस लेखसे यह भी मालूम होता है कि विक्रमपुर उसकी राजधानी थी। १०६६ ई० के एक लेखमें लिखा है कि बन वासी (द्वादशसहस्त्र) और पातुंगल (पंचशत) के अधिपति कादम्ब महामण्डलेश्वर तोषिय देवकी माताका नाम भी अक्कादेवी था। धारवाड जिलेके होत्तुर गाँवके शिलालेखसे यह स्पष्ट होता है कि उसका पति हानगलके कादम्बोंमें से होगा, परन्तु उसका नाम नहीं मिलता।

[बम्बई गजे०-दि डिनैस्टीज आफ दी कैनैरीज डिस्ट्रिक्ट्स आफ बाँबे स० १ व २ पृ० ४६५]

अक्किवट—बम्बई प्रान्तके बेलगाँव जिलेके मध्य चिकाड़ीसे नैर्ऋत्य कोणकी ओर लगभग १२ मील पर यह गाँव बसा हुआ है। १७७७ ई० में तासगाँवके परशुराम भाऊने इस गाँवको घेरा था। उस समय गाँवके लड़ने वाले भाइयोंके काम आने तथा अकालकी तीव्र आँच लगनेके कारण यह गाँव फतह हुआ। १८२७ ई० में कोल्हापुर सरकारने यह गाँव अंग्रेजोंके सुपुर्द किया, क्योंकि इस गाँवमें लुटेरोंका एक दल रहता था, जो आस-पासके अंग्रेजी देहातोंको सदा दुःख देता था। यहाँका किला सैनिक दृष्टिसे अच्छा नहीं था। (बेलगाँव ग०)

अक्चा—'अफगानी तुर्किस्तान' के जिलेका मुख्य नगर है। उ० अ० ३६°५५' और पु० दे० ६६°१०'। यह समुद्रतलसे १०८८ फुट ऊँचा है। इस गाँवमें एक किला है। यहाँ अफगान सेना रहती है। ग्रीष्म ऋतुमें यहाँकी आबहवा अस्वास्थकर होती है। यहाँ व्यापार अधिक होता है। बुखारा के काफिले व्यापारके लिये यहाँ आते हैं। (इ० ग० ५)

अक्टन—यह इंगलैंडमें मिडलसेक्स का (इलींग पार्लियामेंटरी विभागका) भाग (Urban district) है। यह सेण्ट पाल गिर्जाके पश्चिम नौ मील पर है। यहाँकी जनसंख्या करीब ४०००० है। आजकल यह आधुनिक लंडनके अगल बगलके भागोंके समान है। इसके नामकी उत्पत्ति "ओकटाउन" से है। क्योंकि पहले इस भागमें ओक वृक्षोंका विस्तीर्ण जंगल था। प्राचीन कालसे यह जमीन लंडनके बिशपके अधिकारमें थी। तीसरे हेनरी का यह निवासस्थान था। 'कामनवेल्थ' के समय यह प्युरीटन लोगोंका अड्डा था। फिलिप नाय (मृत्यु १६७२), रेक्टर रिचर्ड बक्सर, सर मेथ्यू हेल, (लार्ड चीफ जस्टिस), प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हेनरी फील्डिंग और वनस्पति शास्त्रज्ञ जान बिडले—वहाँके प्रधान निवासियोंमें से थे। १८ वीं शताब्दीमें अक्टनके खारे पानीके कुएँ बहुत मशहूर थे।

अक्टिअम—अकरनेनिया (यूनान) के उत्तर में आर्टा खाडीके मुहानेके पास यह एक पुराना गाँव है। इस भूभागपर अपोलो अक्टिअसका प्राचीन मन्दिर था। उसे ऑगस्टसने बढ़ाया। उसने अक्टिअमकी लड़ाईके स्मारकमें यहाँ पंचवार्षिक खेल शुरू किये। प्रथमतः अक्टिअम कोरिन्थकी ओर था। ऐसा तर्क किया जाता है,

कि ओपलो अक्टिअमकी पूजा उसीने शुरू की। ईसा के जन्मसे प्रायः तीन वर्ष पूर्व यह अकरनेनियाके अधिकारमें चला गया। अगस्टस नामक पहले रोमन बादशाहने मार्क अन्टनी (इस्वी सनके ३१ वर्ष पूर्व) पर यहीं विजय प्राप्त की थी। इसीलिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

अक्रा—सीमाप्रान्तके बन्नू जिलेका एक प्राचीन स्थान। उ० अ० ३३° और पू० दे० ७०°३६'। यह स्थान बन्नू नगरके पास ही है। काबुलके राजाके नाती रुस्तमका यह मुख्य स्थान था। रुस्तमकी बहन को यह भाग स्त्री-धनके रूप में मिला था। यूनान और पश्चिम एशियाके जड़ाऊ कामोंके सदृश जड़ाऊ मानिक यहाँ पर पाये गये हैं।

अक्रा—(अफ्रिकन) अफ्रिकाके पश्चिमी किनारे पर गिनीकी खाडीके पास "गोल्ड कोष्ट" नामक एक ब्रिटिश उपनवेश है। उसमें अक्रा शहर और बन्दरगाह है। यहाँकी जनसंख्या १० हजार है, जिसमें १५० यूरोपियन हैं। यह गांव सेंट जेम्स, केव्हेकुर और क्रिश्चबर्ग इन तीन किलोंके आस-पास बसा है। इन किलोंमें से दूसरा और तीसरा क्रमशः हालेण्ड और फ्रांसके अधिकारमें था। परन्तु ये किले बादमें अंग्रेजोंके हाथ आए। यहां कोको (Cocoa) के बाग हैं।

अक्रूर—आयु-पुत्र नहुष राजा का पौत्र यदु था। इसी कुलके सात्वतवंशमें क्रोष्ट था। उसका वंशज वृष्णिका था। अक्रूर उसी वृष्णिका पुत्र था। इसके उग्रसेना स्त्री से सुदेव और उपदेव नामक दो पुत्र हुए। यह वसुदेव और कृष्णका समकालीन था। इसने अपनी एक कुमारी नामक बहनका वसुदेवसे ब्याह किया था। कृष्णको मथुरा लानेके लिये कंसने इसीको गोकुलमें भेजा था। स्यमन्तक मणिसे इसका बहुत सम्बन्ध है।

सूर्योपासना करने वाले सत्राजित को यह स्यमन्तक मणि सूर्यसे प्राप्त हुई थी। सत्राजितने यह अपने भाईको दी। उसके पास स्यमंतकके लिये कृष्णने याचना की थी। परन्तु वह कृष्णको नहीं मिली। अक्रूर भी उस मणिको चाहता था। उसने भोजाधिपति शतधन्वी द्वारा सत्राजितका बध करा कर स्यमंतक मणि प्राप्त की। शतधन्वी द्वारा सत्राजितके मारे जानेकी खबर पा कर कृष्ण ने उसपर चढ़ाई कर दी। शतधन्वीने मददके लिये अक्रूरकी प्रतीक्षा की; परन्तु प्रत्यक्ष कृष्णसे विरोध होगा यह सोच कर वह मददके लिये नहीं पहुँचा। अन्तमें कृष्णने शतधन्वीका बध किया। इसके बाद कृष्णको मालूम हुआ कि शतधन्वीने स्यमंतक मणि अक्रूरको दे दी और अक्रूरने ही इसके द्वारा सत्राजितका बध करवाया था। पीछे उन्हें यह खबर भी मिली कि अक्रूर द्वारिका छोड़कर चला गया। कृष्णने यह सोच कर कि अक्रूरको दण्ड देनेसे जातिमें विभेद पैदा होगा, उसे क्षमा कर दिया और फिर द्वारिका में बुला लिया।

अखलकोप—अर्णीके उत्तर-पश्चिम ४ मीलपर तथा तासगाँवसे पश्चिमकी ओर ११ मील पर है। यहाँकी जनसंख्या लगभग तीन हजार है। कृष्णा नदी जिस जगह पश्चिमसे दक्षिणकी ओर मुड़ती है उस स्थानके दाहिने किनारे पर यह गाँव बसा है। यहाँसे लोग दूसरे किनारेके भिलवाड़ी गाँवमें कृष्णा नदी पर बने हुए पुल परसे होकर जाते हैं। तासगाँव तथा अर्णी जानेके लिये कच्ची सड़क है। यहाँ पर कृष्णा नदीकी काली मिट्टी होनेके कारण यह गाँव बड़ा उपजाऊ है और यहाँ खेतीके लायक जमीन भी बहुत है। यहाँ दत्तात्रेय यथा म्हसोबाके दो मन्दिर हैं। दत्तात्रेयके मन्दिरमें तीन बार मार्गशीर्ष पूर्णिमाको, माघ बदी पंचमीको, तथा आश्विनकी द्वादशीको मेला लगता है। दत्तात्रेयका मन्दिर अखलकोपके देशपाण्डेने पहली बार बनवाया था। पश्चात् श्रीकृष्णराव त्रिंबक बापटने (आप उस समय वहींके तहसीलदार थे) सन् १८६० ई० में फिरसे बनवाया। मन्दिरमें दत्तात्रेयके खड़ाऊँ स्थापित हैं। देवस्थानके लिये ११ रु० १२ आ० कर की जमीन नियत कर दी गयी है। अखलकोप तथा जिलेके दूसरे-दूसरे भागके व्यापारी और सेठ साहूकार इस देवस्थानकी द्रव्य द्वारा अथवा किसी अन्य रीतिसे सहायता करते हैं। यहाँ पर म्हसोबाका मन्दिर भी है। कृष्णा महात्म्यमें बताया गया है कि वह मन्दिर पहले गणेशजी का था। यहाँ अप्रैल में मेला लगता है और मेलेमें डोम, चमार, रामोशी चमार तथा मराठों ही की संख्या अधिक रहती है। म्हसोबाके मन्दिरमें जो जमीन दी गई है, उस पर सरकारी कर १३० रु० है। कुल जमीनसे करीब ५०० रु० की आमदनी होती है।

[बंबई ग०]

अखरोट—संस्कृत नाम अक्षोट। दूसरे नाम-अखरोट, आखोर, काल और दून। इसका पेड़ ग्रीस, अर्मीनिया, अफगानिस्तानके पहाड़ी प्रदेश, अफगानिस्तानसे लेकर भूटान तकके प्रदेश, हिमालयके वायव्यभाग, बर्माके पहाड़ और खासियाके पहाड़ों पर होता है। समशीतोष्ण प्रदेशमें भी

यह पैदा हो सकता है।

शीतप्रधान देशोंके बहुत प्राचीन जमीनके थरोंमें इस पेड़की या इससे मिलते-जुलते पेड़की जड़ें मिलती हैं। इससे मालूम होता है कि पहले और अब भी यह पेड़ पृथ्वीके एक बहुत बड़े हिस्से में पैदा होता है। भारतवर्षमें इस पेड़को बहुत प्राचीन कालसे लोग जानते थे और उसी जमाने से लोगोंको इसके गुण-दोष ज्ञात थे।

उपयोगिता—इस पेड़में सबसे अधिक महत्व-पूर्ण भाग इसकी लकड़ी है। लकड़ी सुन्दर और मजबूत होती है। इसलिये नक्काशीदार दराज-वाली सन्दूकें और बन्दूकोंके दस्ते बनानेमें इसका बहुत उपयोग होता है। काश्मीर और पंजाबमें इस लकड़ी पर पच्चीकारी और नक्काशी का काम बनाकर बड़ी फैंसी चीजें तयार की जाती हैं। धड़ और शाखोंके मेलकी जगह जो गाठें लकड़ीमें होती हैं इनकी पहले फ्रांसमें बहुत माँग थी। इस पेड़ की छाल और फल का छिलका स्तंभक (स्तंभन करनेवाला) होता है। इसलिये उनका उप-योग दवाओं में और रंग बनाने में होता है। कच्चे फलोंका अचार बहुत बढ़िया होता है। कच्चे फलकी गिरी बहुत जायकेदार होती है। फ्रांसमें इस गिरीसे बहुत बढ़िया तेल काफी तायदादमें निकाला जाता है। अखरोटमें एक तरहके बड़े फलकी भी एक किस्म है, पर उसकी गिरी किसी काममें नहीं आ सकती। किन्तु उसके छिलके जवाहरातके बक्स बनानेके काममें आते हैं। भारत में इस पेड़की छालका उपयोग दवाओं और दन्त-मञ्जन बनानेमें होता है। फल बहुत पुष्ट होनेके कारण काश्मीरसे अधिक प्रमाणमें बाहर भेजा जाता है। फलसे अच्छा तेल निकलता है और छाल चमड़ा कमाने और रंग तयार करनेमें ली जाती है। इसकी पत्तियाँ जानवरोंको खिलाते भी हैं। इसकी एक घन फुट लकड़ी का वजन करीब करीब ४० पौंड होता है।

पेड़ बड़ा होता है और पत्तियाँ गुलाबके पेड़की पत्तीकी तरह। इस पेड़से सुगन्धियुक्त रस काफी निकलता है। पत्तोंके गिरनेसे डालियोंमें जो गड्हे हो जाते हैं, काफी गहरे होते हैं। पत्तेकी बगलमें (यानी पत्तेके नीचे जहाँ वह शाखासे मिला होता है) एक या अधिक अंकुर फूटते हैं। इसका फूल पपीता या कोहँड़ेके फूलकी तरह एकलिंगी होता है। अर्थात् फूल या तो पुंकेसर या स्त्री-केसर युक्त होता है और बहुधा दोनों मेलके फूल एकही पेड़पर दिखायी पड़ते हैं। एक साल पुराने फूलके गुच्छोंपर बिल्लीकी पूँछकी तरह सैकड़ों पुंकेसर (लम्बे लम्बे धागे जिनका सिरा कुछ मोटा होता है) निकलकर छोटे छोटे खिले हुए स्त्री-पुष्पोंमें गर्भाधान करते हैं। नर- पुष्पोंमें जहाँ से फूल निकलता है, पुष्पासन उसी जगह होता है। परिकोश पांच छः छोटी छोटी हरी पत्तियोंका होता है और उसीमें पुंकेसरोंका गुच्छा रहता है। स्त्री-पुष्पोंमें पुष्पासन प्यालीके आकार का होता है और अण्डाशय उसीमें चिपका रहता है। परिकोशमें चार पत्तियां होती हैं। अंडाशयके पाससे बीजांड सीधा ऊपर आता है। इसके फलमें गूदा या गिरी ऊपर और गुठली भीतरकी ओर रहती है। दो सीपोंकी तरह इसका छिलका गिरीको ढांके रहता है। बीयामें गिरी रहती है और इसीमें अंकुर होता है।

इस पेड़के लिये गहरी बलुई चिकनी मिट्टीकी जरूरत होती है। इसे काफी हवा और सूर्य प्रकाशकी आवश्यकता होती है। बीजसे ये पेड़ पैदा होते हैं। किन्तु खास तौरसे तयार करनेके लिये कभी कभी इसका कलम भी लगाते हैं। बोनेपर पहलेही जाड़ेमें पेड़की हिफाजत काफी करनी पड़ती है। बीजसे तयार होनेवाले पेड़ बीस बरस बाद फल देते हैं। एक साल पुरानी डालोंमें फल लगते हैं। इसलिये फलोंको तोड़ते समय नई शाखाओं को बचाने की पूरी कोशिश की जाती है।

[आधार ग्रंथ—वाट—कामर्शियल प्राडक्ट्स और ब्रिटानिका]

अखा—बर्माके पूर्वीय भागमें शान नामक राज्य है, उसके पठारोंमें बसनेवाली यह एक जङ्गली जाति है। राज्य भरमें इनकी जनसंख्या लगभग २६००० है। इनकी भाषासे यह अनुमान किया जा सकता है कि इनका सम्बन्ध कभी तिब्बतसे भी रहा होगा। इनका चीनियोंसे अब भी घनिष्ट सम्बन्ध है, और कभी कभी उनसे विवाह सम्बन्ध तक हो जाता है। चीनियोंसे ये कुछ अधिक लम्बे होते हैं। इनका रंग भी कुछ काला होता है। ये भाँग और अफीमका व्यापार अधिक करते हैं। कुत्तेका मांस भी भोजन करते हैं। ये अपने पूर्वजों तथा प्रेतात्माओंकी पूजा करते हैं। मृत सम्बन्धियोंका श्राद्ध करते हैं। मृतक गाड़े जाते हैं, और उस समय भैंसेका बलि दिया जाता है। (इं० ग० ५)

अगमुदैयन्—सम्पूर्ण तामिल देशमें यह जाति पायी जाती है। कल्लन् तथा मरवन्

जाति इससे बहुत मिलती-जुलती है। किन्तु अगमुदैयनोंका ब्राह्मणोंसे विशेष सम्बन्ध है। वे ब्रह्मणोंको उपाध्याय बनाते हैं तथा वेल्लाडों की तरह जन्म, लग्न, तथा ओर्ध्व-दैहिक संस्कारोंका पालन करते हैं। जिस भाँति ब्राह्मणोंमें गोत्र आदिका विचार विवाहमें होता है, इनमें नहीं होता। साधारणतः मरवन् पिता तथा अगमुदैयन माँकी सन्तति अगमुदैयन ही समझी जाती है। किन्तु यदि पिता अत्यन्त योग्य तथा ख्यातिवाला हो तो सन्तान भी मरवन् कहलाती है। सामान्यतः विवाह युवा होनेपर ही होता है। विवाह पक्का करनेके समय जन्मकुण्डली देखते हैं। विवाह की रीतियाँ अन्य जातियोंके ही समान हैं। मृतक जलाये जाते हैं और ओर्ध्व-दैहिक संस्कार भी होता है।

अगमुदैयन शैव होते हैं। ऐयनर, पिडारी तथा करूपन्न स्वामी आदि अनेक छोटे छोटे देवताओंकी भी ये पूजा करते हैं। मध्य प्रान्तके रायपुर, जबलपुर इत्यादि स्थानोंमें इनकी कुछ कुछ बस्ती मिलती है। पहले मद्रासी पल्टनोंमें भरती होकर ये यहाँ आये थे। उन्हींमें से जो पेंशन लेनेपर यहीं रह गये, उनके ये वंशज हैं। ये अपने नामके आगे 'पिल्ले' लगाते हैं। इसका अर्थ इनकी भाषामें 'राजपुत्र' है। अतः बड़े लोगों के नामके आगे यह शब्द लगाकर ही उन्हें सम्बोधित किया जाता है। इनकी कुछ बस्ती कोचीन राज्यान्तर्गत चित्तुर ताल्लुके के पूर्व भागमें भी मिलती है।

[थर्स्टन—कास्ट एण्ड ट्राइबस आफ सदर्न इण्डिया; रसेल तथा हीरालाल-कास्ट एण्ड ट्राइब्स आफ सेन्ट्रल प्राविन्सेज-सेन्सज़ १९११ रिपोर्ट]

अगर—रेवाकाँठा एजन्सीमें सांखेड मेहवा नामक एक राज्य है। उसके २७ छोटे छोटे उपविभागों में से एक यह भी है। चौहानराज्यसंघ के आठ भागोंमें से यह भी एक भाग है। इस राज्यके सम्बन्धमें १८७९ के बम्बई गजेटियरसे निम्नलिखित बातोंका पता चलता है।

संघ-चौहान, राज्य-अगर, गाँव-२६ चौरस-१७मील उत्पत्ति १०००पौ० गैकवाडको कर १८पौ० १२ शि०

अगरके उत्तरपूर्वमें वनमाल, दक्षिणमें कामसोली और पश्चिममें बार्जेरिया है। यह सांखेड मेहवाके मध्यमें स्थित है। कुछ भागकी मिट्टी चिकनी है और कुछ की रेतीली है। यहाँ कपास, ज्वार, तिल, चावल, और चनेकी खेती होती है, किन्तु खेतीकी व्यवस्थामें ठीक ठीक सुधार अभी तक नहीं हुआ है। अगर और बर्जेरियाकी मुख्य सड़कसे कुंकज किलेका खण्डहर दिखाई देता है। यह किला बड़ा प्राचीन है।

[बाम्बे ग० भाग ६]

अगर (शिन्देशाही)—मध्य भारतमें ग्वालियर राज्यान्तर्गत राजपुर जिलेका एक कस्बा तथा छावनी है। यह समुद्रकी सतहसे १७६५ फुट की ऊँचाई पर है। उज्जैनसे ४१ मीलकी दूरी पर यह बसा हुआ है। यह उत्तर अ० २३'४३' तथा पूर्व देशा० ७६'१' पर स्थित है। इसकी जनसंख्या लगभग ११००० है। यह दो तालाबोंके बीचमें बसा हुआ है और इसके चारों ओर चहारदीवारी है। अग्रा भिल्लने दसवीं शताब्दीमें इसे बसाया था। अतः इसका नाम भी उसीके नाम पर पड़ा। तत्पश्चात् वह झाला राजपूतोंके हाथ में आ गया। १८ वीं शताब्दिमें धारके यशवंत राव पवारने इसे जीत लिया किन्तु १८०१ ई० में बाबूजी सींधियाने इसपर चढ़ाई करके इसे उजाड़ डाला। फिर इसे दौलतराव सींधियाने बसाया। स० १९०४ ई० में अगर जिलेका यह मुख्य केन्द्र था। यहाँ अनाज और कपासका बड़ा व्यापार होता है। यहाँ एक कचहरी, एक स्कूल, एक पोस्ट आफिस और एक दवाखाना है। रटरिया तालाबके दूसरी ओर सेनाके रहनेका स्थान है। यहाँ सन् १८५० ई० में सेंधियाकी मददके लिये सेना रक्खी गई थी।

[इम्पी० ग० १९०८]

अगरगाँव—यह भीमाके तट पर बसा हुआ एक गाँव है। यह इन्दीके उत्तर पूर्व लगभग १५ मील पर स्थित है। गाँवके दक्षिणमें एक प्राचीन शंकरलिंग देवताका मन्दिर है। गाँवमें "धैरापनागुड़ी" नामका एक दूसरा हेमाडपन्थी मन्दिर है। इस मन्दिरमें शक ११७२ का एक शिलालेख देख पड़ता है। जनसंख्या लगभग ४००० है।

अगरतला—टिपेरा राज्यका मुख्य नगर। यह उ० अ० २३'५१' तथा पू० देशा० ९१'२१' पर स्थित है। सन् १९०१ ई० में यहाँकी जनसंख्या लगलग ९५१३ थी। प्राचीन नगर 'हांरा' नदी के पश्चिम तट पर बसा हुआ था किन्तु नया शहर पूर्वीय तट पर बसा हुआ है। १८७४-७५ ई० में यहाँ म्यूनिसपैल्टी स्थापित हुई। १९०३-४ ई०में यहाँकी आय ९७००) थी और व्यय ७४००) था। यहाँ एक कालिज, एक टेकनिकल स्कूल, एक संस्कृत पाठशाला, एक दवाखाना तथा जेल आदि

मुख्य स्थान हैं। (ई० ग०)

अगरू (अगर, ऊद)—इसे अंग्रेजी में "ईगलउड" और 'कालम्बक' तथा देशी भाषाओं में 'अगर' 'सासी' 'आक्यायू' 'कायू' 'गारू' इत्यादि कहते हैं। देशी नाम संस्कृतके 'अगरू' नामसे ही निकलते हैं। ऐसा भी अनुमान है कि 'अग्लोउड' वा 'इगल उड' नाम पाली भाषाके लाघू अथवा लोहा शब्दसे सम्बन्ध रखता होगा।

प्राप्तिस्थान—भूटान, हिमालय, आसाम, खसिया के पहाड़ी टीलों तथा पूर्वीय बंगाल या मर्त्तबान कीप हाड़ियोंमें यह वृक्ष पाया जाता है। पेड़ सब ऋतुओंमें हरे भरे रहते हैं। इसकी ऊँचाई ६० फीटसे १०० फीट तक होती है और घेरा ५ से ८ फीट तक होता है। इस पेड़से 'अगरू' पदार्थ निकलता है। बीस वर्षका हो जाने पर यह वृक्ष 'अगरू' एकत्रित करने योग्य हो जाता है। कुछ लोगोंका मत है कि जब तक यह वृक्ष ५०-६० वर्षका नहीं होता तब तक यह पूर्ण रूप से इस कार्यके योग्य नहीं होता। इस वृक्षकी सादी लकड़ी बहुत कीमती नहीं होती क्योंकि वह रंग में फीकी, वजनमें हलकी; तथा गन्धहीन होती है। खास समय परही इस वृक्षकेकुछ भागोंमें 'अगरू' नामक पदार्थ पूर्ण रूपसे फलता है। उस समय लकड़ीका मुल्य भी बढ़ जाता है। 'अगरू' का मूल्य उसमेंसे पाई जाने वाली राल परही निर्भर होता है। पूर्ण विकसित वृक्षमें ६ से ८ पौंड तक 'अगरू' पाया जाता है। बहुत उत्तम होने पर ही वृक्षका मूल्य ३००) रु० तक होता है। पेड़का वह भाग जिसमें अगरू उत्पन्न होता है बहुतही टेढ़ा मेढ़ा होता है। इस वृक्षकी वह लकड़ी जिसमें 'अगरू' नहीं होता १) से ३) सेर तकके भाव बिकती है। 'अगरू' से युक्त लकड़ी का रंग कुछ कुछ काला होता है। वह १६) से २०) सेर बिकती है। आइने अकबरीमें इस वृक्षसे 'चूवा' नामक सुगन्धित पदार्थ निकालनेकी विधि वर्णन की गई है।

प्राचीनकालसे ही प्रायः सभी सभ्य देशोंमें सुगन्धिके लिये यह व्यवहारमें लाया जाता है। इसका वैद्यक दृष्टि से भी बहुत कुछ उपयोग है। धूपवत्ती बनानेके काममें भी यह आता है। सिलहाटमें इसका इत्र भी निकाला जाता है। गुलाबके समान इसका इत्र उत्तम तथा कीमती होता है। मार्कोपोलो, गार्सिया डी ओर्टा, वारथेमा, बारबोसा लिन्स्कोटेन, हर्बर्ट इत्यादि पाश्चात्य यात्रियोंने अगरू (Eagle or Polambac wood) का उल्लेख किया है। प्रेबल लिखता है कि बैङ्काकसे बम्बईमें उत्तम अगरू आता है। इसने तथा गागली और मवर्दीने इसके दो भेद बताये हैं। आइने-अकबरीमें इसकी बहुतसी किस्में बताई गई हैं। जिस प्रकार प्राचीन आर्य बर्चके वृक्षकी छालसे कागज का काम लेते थे उसी प्रकार आसाम निवासी अगरू वृक्षके छिलके लिखनेके काम में लाते थे। इसकी छालसे एक प्रकारका धागा भी तय्यार होता है किन्तु वह मजबूत नहीं होता। स्त्रियाँ सिर धोनेके पश्चात् बालोंको सुगन्धित करनेके लिये इसका उपयोग करती हैं। इसका उल्लेख विल्हणने अपने "विक्रमांकदेव चरित्र" के प्रस्तावना खण्डमें इस भाँति किया है—'कुर्यादनाद्रेषु किमंगनानां केशेषु कृष्णा गरु धूपवासः"। प्राचीन समयमें इसकी वैद्यक उपयोगिता गांवोंमें बहुत थी। आमाशयकी औषधियोंमें अगरूकी योजना की जाती है। लोगोंका विचार है कि खाँसी इत्यादि रोगोंमें उत्तेजक पदार्थ देनेके लिये यह बहुतही उपयोगी है। इसकी छाल कड़ुई होती है और मन्दाग्निमें उपयोगी होती है। (वट)

अगस—(अगासा) कनाड़ी धोबियोंकी यह एक जाति है और विशेषतः मैसूर राज्यमें यह मिलती है। मद्रासके दक्षिण कनाड़ी जिलेमें तथा बम्बईके दक्षिणीभागमें भी इनकी बस्ती है। १९११ की जनसंख्यासे सम्पूर्ण भारतमें ये११६०४७ थे। उनमेंसे ८७७७२ मैसूर राज्यमें और शेष मद्रास कुर्ग इत्यादि प्रान्तोंमें हैं। कदाचित् यह जाति द्रविड़ोंकी वंशज है। इनकी गणना शूद्रोंमें की जाती है। अतः इनके धार्मिक संस्कारोंमें बहुधा ब्राह्मण पुरोहित नहीं जाते।

इनमेंसे ३०१४१ तो अन्य धन्धे करते हैं और १३४४८ अपने खानदानी पेशेही को कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त ये खेती भी करते हैं। भाषाओं की भिन्नतासे इनके दो भाग हो गये हैं:—(१) कनाडी तथा (२) तैलंगी। हालहीमें ये महाराष्ट्र में आये हैं। इससे इनका अभी तक हिन्दोस्तानी धोबियोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। तैलंगी तथा कनाड़ी जातियोंमें भी रोटी बेटीका व्यवहार प्रचलित नहीं है। तैलंगी अगसोंमें और भी उपविभाग हैं। इनमेंसे एकसे अधिक ब्याह करनेकी अनुमति है। इसके अतिरिक्त इस जातिमें बालविवाह और प्रौढ़ विवाह भी होता है। हरेक स्त्री को आजीवन अविवाहिता रहनेका अधिकार है। वर अथवा उसके पक्षवालोंको वधुके लिये मूल्य देना पड़ता है। भिन्न भिन्न श्रेणीमें मूल्य घटता

बढ़ता है किन्तु साधारणतः १२) से १४) तक होता है। इस जातिमें विधवा-विवाह भी प्रचलित है, किन्तु विधवाका बिवाह केवल विधुरही से हो सकता है। यदि स्त्री भ्रष्ट हो जाय तो पति उसे तलाक़ दे सकता है। उसी भाँति पतिके भ्रष्ट होने पर स्त्री भी उसे छोड़ सकती है। साधारणतः इस जातिमें श्राद्ध करनेकी प्रथा नहीं है। बहुधा इनके धार्मिक कृत्य इनके धर्मगुरु जंगमही द्वारा सम्पादित होते हैं। कुछ लोग ब्राह्मणोंको भी बुला लेते हैंऔर वे ही उनके पुरोहित होते हैं। इनके गुरू लिंगायत जाति के भी होते हैं, जिन्हें समय समय पर ये दान दिया करते हैं। इनमें जो धनी तथा उच्च श्रेणी के हैं वे उत्सवोंके अवसर पर लिंगायतोंको उत्सव के आगे मशाल लेकर चलनेके लिये बुलाते हैं। अतः ऐसे अवसरों पर रोशनी दिखाना इनका काम हो गया है। जब लड़की ऋतुमति होती है तो वरको खबर देनेके लिये धोबी भेजा जाता है।

अगस जातिके लोग शैव और वैष्णव भी होते हैं। उनकी पूज्य देवी 'लक्ष्मी देवी' हैं। इनकी जातिका देवता, 'भूमिदेवरू' (पृथ्वीका ईश्वर) होता है। गौरी उत्सवके साथ (अर्थात् अगस्त-सितम्बरमें) ये इस देवताका उत्सव मनाते हैं। ये मिट्टीको भी पूजते हैं, और इस-लिये उसपर बलि चढ़ाते हैं कि जिससे उनके वस्त्र भट्टीमें न जलें। बक्कालिग तथा कुरुग इत्यादि श्रेष्ठ जातियोंको मिलानेके लिये खास विधियाँ हैं। दक्षिण कनाडाके जिलेमें इनकी मुख्य तीन जातियाँ हैं—(१) कोकणी खिस्ती, (२) कनाड़ी बोलनेवाले धोबी, जिनका सम्बन्ध मैसूरके अगसोंसे मालूम होता है, और (३) तुलू बोलनेवाले धोबी। ये अपने माताके कुलमें वारिस होते हैं।

अगसों का दूसरा नाम "मड़िवाल" है (मड़ी का अर्थ स्वच्छ कपड़ा है), तुलू मड़िवालोंमें सगोत्रमें विवाह हो जाता है। ये उन जातियोंके जो विल्लवा जातिसे श्रेष्ठ हैं, अथवा मुसलमानों और ईसाइयोंके कपड़े धोते हैं। ये शादीके मण्डपके लिये और कफनके लिये कपड़े देते हैं। समय समय पर ये मशाल भी दिखाते हैं। ये भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं और उनके सामने भेंट चढ़ाते हैं। बच्चेके जन्मके सातवें दिन धोबिन उसके कमरमें करधनी बाँधती है। इनकी रस्में भाटों (ब्राह्मण पुरोहित) के समान होती हैं। किसी किसी गाँवमें इनका नायक 'गुटिकर' अथवा 'गुहिनय' नामसे रहता है। विवाह-संस्कारमें अधिक भाग मामा अथवा पिता ही लेता है। गुटिकरोंका विशेष हाथ नहीं होता। ममेरी या फुफेरी बहनसे विवाह हो सकता है। लड़कियोंका विवाह दस वर्षके पश्चात् और लडकोंका अठ्ठारह वर्षके उपरान्त होता है। पुन-र्विवाह भी इनमें होता है। पंच और सम्बं-धियोंकी सम्मति मिलने पर तलाक़ दिया जा सकता है। ये मांसाहारी होते हैं। इनका दर्जा किसानोंसे नीचा और अछूतोंसे ऊँचा होता है। ये लोग शिव, केदारलिङ्ग, भवानी, हनुमान जी, इत्यादि देवताओंको पूजते हैं। इनके पुन-र्विवाह तथा अन्तिम संस्कार लिंगायत अगसोंके ही समान होते हैं। पूर्वजोंके तर्पणमें ये लोग "महालय" विधिका प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक गाँवमें इन लोगोंकी एक पंचायत होती है। उसमें एक मुख्य पञ्च तथा दस सभासद होते हैं। मुख्य पञ्च सर्व-समिति से चुना जाता है। मुख्य पञ्च एक अधिकारीकी नियुक्ति करता है। उसे 'कोलकर' कहते हैं। इसका कार्य सभामें लोगोंको एकत्रित करनेका होता है। दोषीको दण्ड मिलता है। दण्डका ¾ भाग देव-ताओंको चढ़ा दिया जाता है और शेषसे पञ्चके सभासदोंकी जेवनार होती है।

[सेंसस रिपोर्ट १९०१ व ११ तथा ग०]

अगस्ता—(अगस्त) इस वृक्ष का मराठी नाम "हदगा" है। यह वृक्ष बहुत विशाल होता है, इसे बाग में लगाते हैं। इसकी दो जातियां हैं। एक में सफेद और दूसरी में लाल रंग के फूल फूलते हैं। इसके पत्ते आंवले के पत्तों की तरह होते हैं। इसमें फूल तथा छीमियां लगती हैं, जो तरकारी के उपयोग में आती हैं। यह पेड़ ७-८ वर्ष से अधिक नहीं बचने पाता। इसके पत्ते, फूल और छीमियां औषधि के काम में भी आती हैं और उसकी तरकारी भी होती है। सर्दी, मस्तक-शूल और चातुर्थिक ज्वर (चौथिया) में अगस्त्य के पत्तों का रस नाक में निचोड़ते हैं। अधशीशी (अध-कपारी) पर भी इसका उपयोग करते हैं। सिर के जिस भाग में पीड़ा होती है उसके दूसरी ओर की नासिका में अगस्त्य की पत्तियों अथवा फूलों का रस निचोड़ा करते हैं। अपस्मार में अगस्त्य की पत्तियों का रस गो-मूत्र और कालीमिर्च की बुकनी के साथ मिलाकर देते हैं। अगस्त्य रुक्ष, शीतल, मधुर, वात-हारक और त्रिदोष-नाशक समझा जाता है। यह वृक्ष खास तौर से नहीं लगाया जाता। यह बहुत शीघ्र बढ़ता

और इसकी छाया घनी होती है इसलिये लोग से पान की बाड़ी में छाया के लिये लगाते हैं। हसी किसी बाग में यह फूल की शोभा के लिये ी लगाया जाता है।

(आधार ग्रंथ-पदे, वनस्पति-गुणादर्श)

अगस्त्य—पौराणिक मतानुसार स्वायंभू मन्वंर के ब्रह्ममानस पुत्र पुलस्त्य ऋषि थे। उनको र्दम प्रजापति की कन्या हविर्भुवा से दो पुत्र ए। उन दोनों पुत्रों में ये ज्येष्ठ पुत्र थे और इनके सरे सहोदर का नाम विश्वा ऋषि था। (वैदिक ौरा पुलस्त्य शब्द में देखिये।)

पहले बहुत से असुर समुद्र में छिपकर हा करते थे और इन्द्रादि देवताओं, ऋषियों था अन्यान्य प्रजाओं को पीड़ित किया करते थे। न्द्र ने यह विचार कर, कि समुद्र के सूखने पर नका नाश हो जायगा और सब सुखी होंगे, अग्नि ौर वायु को समुद्र सुखाने की आज्ञा दी इस ाज्ञाका अनादर होने पर इन्द्र ने क्रोधित होकर न दोनों को श्राप दिया कि वे दोनों मृत्यु लोक ं जन्म लें। तदनन्तर वैवस्वत मनवन्तर के अनुसार उन दोनों का जन्म इस संसार में हुआ। मित्र ारुण नाम के एक ऋषि थे। उन्होंने अपना वीर्य क घड़े में रख दिया था और उसमें से अगस्त्य ौर वशिष्ठ ऋषि उत्पन्न हुए। इनके नाम मैत्रा ारुण और कुम्भयोनि भी हैं।

(मत्स्य पुराण-अध्याय २०१)

अगस्त्य ऋषि बड़े तपस्वी तथा विरक्त थे स कारण विवाह नहीं करते थे। परन्तु पितरों ी आज्ञा से विवश हो इन्होंने विदर्भ नरेश की न्या लोपामुद्रा को स्त्री-रूपमें ग्रहण किया। (लोपा मुद्रा देखिये)। जब ऋषिको राजकन्या से पुत्र ाप्ति की इच्छा हुई तो उनका विचार हुआ कि बना ऐश्वर्य के पुत्रप्राप्ति ठीक नहीं। अतः द्रव्य ाचना के लिये अगस्त्य राजा श्रुतर्वाके पास ाये। (श्रुतर्वा देखिये)। [महाभारत वनपर्व प्रध्याय ९७, ९८].

श्रुतर्वा राजा ने अपने को द्रव्य देने में असमर्थ पाकर ऋषि से प्रार्थना की कि वे राजा ब्रद्नश्च के नगर को जायँ। निराश होकर इन्होंने राजा श्रुतर्वा को भी अपने साथ चलने पर विवश किया। दोनों ही साथ साथ राजा ब्रदनश्च के यहाँ गये। (देखिये ब्रदनश्च)। यहां पर भी इन की मनोकामना सिद्ध न हुई। अतः वे दोनों राजाओं को साथ लिये हुए राजा त्रसदस्यु के राज्य में पधारे (देखिये त्रसदस्यु)। वहां पर भी धन की वही स्थिति देख ये बड़े खिन्न हुए। इसी अवसर पर राजा त्रसदस्युने इनसे निवेदन किया कि इल्वल असुर इस समय बड़ा ही धनी है। हमारी कामना वहां पूरी हो सकेगी। अतः हमें वहीं चलना चाहिये।

तीनों राजाओं को साथ लेकर ये इल्वलके नगर में पहुँचे। उससे युद्ध किया और उस पर विजय भी पाई। उन्होंने उससे असंख्य धन लिया। उसमें से कुछ भाग उन्होंने राजाओं को भी दिया और उन्हें वहीं से बिदा कर स्वयं आश्रम को लौट आये। सारा धन उन्होंने लोपामुद्रा को दे उसे सन्तुष्ट किया। (देखिये इल्वल)। कालान्तर में लोपा-मुद्रा अगस्त्य द्वारा गर्भवती हुई। क्रमशः उनके दो पुत्र हुए:—प्रथम दृढ़स्यु और द्वितीय दृढ़ास्य। इध्मवाह के नाम से दृढ़स्यु अत्यन्त प्रसिद्ध हुए।

जिस समय अगस्त्य स्त्रीपुत्रों सहित वर्णाश्रम धर्म चला रहे थे उस समय कालकेय नामक असुरने जीवों को अत्यन्त कष्ट देना प्रारम्भ किया। सम्पूर्ण बड़े बड़े ऋषियों की प्रार्थना से उन्होंने समुद्र का शोषण कर संसार का कष्ट दूर किया। इनकी इस कृपा से इन्द्र भी पूर्णतः सन्तुष्ट हुआ। (देखिये कालकेय)

अगस्त्य ऋषि कुशल तत्व-वेत्ता और महान् परोपकारी थे। धनुर्वेद में भी आपकी गणना उच्च कोटि में की गई है। आपने, विन्ध्यपर्वत द्वारा होने वाले प्राणिमात्र के कष्ट को दूर करने के लिये, देवताओं की प्रार्थना से द्रवीभूत हो, काशीवास छोड़ना भी सहर्ष स्वीकार किया [देखिये विन्ध्य]। वनवास के समय जब श्रीराम चन्द्रजी दण्डकारण्य पहुँचे तब आपके दर्शन और प्रसाद से अपने को कृतार्थ कर आगे अग्रसर हुए थे।

अगस्त्य—(शूद्र वैय्याकरण)—लगभग १००० वर्ष पूर्व ये तामिल देशमें शूद्र जातिमें उत्पन्न हुए थे। ये कवि भी थे। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह भी पुराण-प्रसिद्ध अगस्त्य मुनि के ही अवतार थे। तामिल भाषाका व्याकरण पहले पहल इन्हों ही ने रचा। इसी कारण इस व्याकरण का नाम 'अगस्त्य-व्याकरण' प्रसिद्ध हुआ। इसमें एलकनम् ५ प्रकार हैं। इनके नाम ये हैं:—एलट्ट, चोलू, परलू, आप्प और अलकारु। न्याय, वद्यक, रसायन और धर्म शास्त्र, पूजा-पद्धति आदि पर भी इनके कई ग्रन्थ हैं। इनका उपर्युक्त काल हमने डाक्टर काल्डवेल के मतानुसार दिया है। (कविचरित्र)

अगस्त्य—यह एक मुख्य नक्षत्र है। सिंह राशिमें ४।१३° सूर्यके आनेपर यह ध्रुव नक्षत्रसे सटा हुआ उसके दक्षिणमें उदय होता है और १।२° सूर्य होने पर अस्त हो जाता है। तुलसीदास-कृत रामायणके किष्किन्धाकाण्डमें रामचन्द्रने शरद-ऋतुका वर्णन इस भाँति किया है—

"उदित अगस्त पंथ जल सोषा,
जिमि लोभहिं सोखै सन्तोषा।"

इससे यह विदित होता है कि वर्षा बीतने पर शरदऋतुके आरम्भमें यह नक्षत्र उदित होता है।

समय समय पर इसके रङ्ग तथा आकार आदि में परिवर्तन होता रहता है। जोतिषशास्त्रके अनुसार जब यह रुक्ष हो तो देशमें रोगोंका प्रकोप होना अनिवार्य है। पिंगल होना अवृष्टि-सूचक है। जब यह धूम्र वर्णका देख पड़े तो समझ लेना चाहिये कि गो आदि पशुओं को कष्ट होगा। लाल होनेसे यह दुर्भिक्ष उत्पन्न करता है। यदि यह अत्यन्त सूक्ष्म देख पड़े तो राजको भय होता है। यदि धूम्रकेतु (Comet) के संसर्गमें हो तो भी अनिष्टसूचक है। यदि यह स्वच्छ, तथा चाँदी और स्फटिकके समान कान्तिपूर्ण देख पड़े तो अत्यन्त शुभकारी समझना चाहिये और ऐसा होने से देश धन-धान्य पूर्ण होता है।

अगस्त्यकुण्डा—वर्तमान काशी (बनारस) का एक मुहल्ला। यों तो इसमें कोई भी विशेषता नहीं है किन्तु पौराणिक दृष्टिसे इसके नामकरणकी कथा बड़ी रोचक है और इसका धार्मिक महत्व बहुत कुछ माना जाता है। इसकी गणना तीर्थोंमें की जाती है। (देखिये काशी)

अगस्त्यकूटम—मद्रास प्रान्तके ट्रावनकोर राज्यान्तर्गत नैय्यातिनकर ताल्लुकेमें यह पश्चिमीघाट पर्वतका एक त्रिभुजा-कार गिरि-शृङ्ग है। उ० अक्षां०, ८°३७" और पू० देशां० ७७°१५'। इस प्रान्तमें यह "सह्य" पर्वतके नामसे प्रसिद्ध है। इसकी ऊँचाई ६२०० फिट है। यह शृंग ट्रावनकोर और तिनेवेली ज़िलोंकी सीमा पार है। ताराओंकी गति अनुसंधान करनेके लिये यह स्थान अत्यन्त उपयुक्त है। यह शृंग ताम्रपर्णी और नेयार नदीका उद्गम स्थान है। ऐसा विश्वास है कि दक्षिण भारतमें आर्य सभ्यताके प्रचारक महान अगस्त्य ऋषि आज भी इसी पर्वत पर समाधिस्थ हैं।

अगार्या—यह एक गौड़ोंकी अंतर्गत जाति है। बहुधा ये लोग लोहारीका काम करते हैं। मण्डला, रायपुर, बिलासपुर जिलोंमें इनकी जनसंख्या सन् १९११ ई० में ९५०० थी। मिर्जापुर तथा बंगालमें भी थोड़े बहुत ये पाये जाते हैं। उड़िया प्रदेशमें मिलनेवाले अगारियों से इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इन लोगोंका विश्वास है कि सृष्टिके आरम्भ ही से इनकी जाति भी है, और इनके पूर्वजों ही द्वारा जमीन जोतनेके लिये हल का आविष्कार हुआ था। इनके दो मुख्य भेद हैं (१) पथरिया अगारी, (२) और खूँटिया अगारी। भट्ठी सुलगाते समय भातीके ऊपर जो पत्थर रखते हैं वे पथरिया कहलाते हैं, और जो खूँटी ठोंकते हैं वे खूँटिया कहे जाते हैं। इनके गोत्रों के नाम गोंड़ोंके समान होते हैं। जाति-बहिष्कृत मनुष्योंको सोनवाई जातिके मनुष्य प्रायश्चित् कराते हैं। सोनेका टुकड़ा एक बरतनमें रख कर उसमें पानी छोड़ा जाता है, उसी पानीको पतित के अंगपर छिड़कते हैं जिससे वह शुद्ध हो जाता है। सगोत्र विवाह निषिद्ध है। किन्तु ममेरे, फुफेरे तथा मौसेरे भाई बहिनोंमें विवाह प्रचलित है। विवाह बहुधा युवावस्था प्राप्त होने पर ही होता है। विवाह निश्चित करनेके लिये लड़के का पिता लड़कीके पिताके यहाँ यह समाचार भेजता है कि वे लोग "बासी" खाने उसके घर आवेंगे। यदि कन्याके पिताको यह सम्बन्ध मंजूर होता है तो उत्तरमें कहला देता है कि पैदल चलकर आनेपर उनका पूजन कर स्वागत और अतिथि-सत्कार करनेको तय्यार हूँ। बहुधा विवाह वर्षाऋतुमें ही निश्चित किया जाता है। लड़कीकी ओरका शुल्क विवाहके पूर्व ही चुका देना पड़ता है। सोमवार, मंगलवार, अथवा शुक्रवारको लग्न ली जाती है। वरके आने पर सींकसे उसके दाँत साफ किये जाते हैं और साली उसे पान खिलानेका प्रयत्न करती है, किन्तु वह उसे हटा देता है और सालीको इसके लिये बिदायगी देनी पड़ती है। विवाहकी बहुत सी रस्में वरके घर लौट आनेपर होती हैं। उड़दको ये लोग पवित्र अन्न मानते हैं। ताड़के पत्तोंका मुकुट बनाकर वधु तथा वर उसे तालाबमें डालते हैं, और पारी पारी से उसे खोजते हैं। तदनन्तर तालाब से निकलकर स्वच्छ कपड़ा पहन कर वर घर जाता है। वधु एक गगरेमें पानी भरकर सिरपर रखकर उसके पीछे पीछे चलती है। वरको हिरन के मारनेके लिये अनेक बाण छोड़ने पडते हैं। अनेक बाण छोड़नेके पश्चात् वधु वरको चीनी खिलाती है। यदि तीन तीरमें से एक भी हिरनको नहीं लगता तो वरको चार आने

दण्ड देना पड़ता है। इन लोगोंमें ऐसा नियम है कि विवाहके एक मास तक सहवास नहीं होता। शादीका खर्च वरको १५) और वधुको ४०) लगता है। वरको बहुधा अपने भावी श्वसुरके यहाँ नौकरी करनी पड़ती है। नौकरीका समय तीन साल तक हो सकता है। लग्नकाल निश्चित होते ही वर नौकरी छोड़कर चला आता है। कन्या का पिता वरपक्षको भोजके लिये बुलाता है। यदि वर उस भोजमें न आवे तो सम्बन्ध छूटा समझना चाहिये। इन लोगोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। जेठसे विवाह विधवाओं लिये उत्तम समझा जाता है। व्यभिचार आदि दोषों के लिये तिलाककी भी अनुमति है। त्यक्त स्त्री फिर विवाह कर सकती है। किन्तु जो ऐसी स्त्रीसे शादी करता है उसे उस स्त्रीके पूर्व पतिको १२) दण्ड देना पड़ सकता है। गर्भावस्थामें स्त्रीको उसकी माँ उसे साड़ी पहना कर पक्वान्न खिलाती है। प्रसूति-कालमें पाँच दिन का सूतक मानते हैं। मृत जलाये जाते हैं। चेचक वा हैजेसे मरनेवाले को गाड़ते हैं। मरे हुएके उत्तराधिकारीके सिर पर काला वस्त्र लपेटते हैं। ये आश्विन मासमें पितृ-तर्पण करते हैं।

देवता—दूल्हा इनका देवता होता है। उसको मुर्गी और बकरी की बलि चढ़ाते हैं। नारियल और रोटी भी चढ़ाते हैं। उनका व्यापारिक देवता 'लोहासुर' है। औषधियों पर उनका विश्वास नहीं है। रोगीके शरीरमें देवताका प्रवेश कराकर उसके रोगी होनेका कारण निर्णय कराते हैं। जिस अपराधके कारण रोग होता है उसका प्रायश्चित् निर्णय कराते हैं। प्रायश्चित् हो जानेपर रोगसे छुटकारा पानेकी आशा करते हैं। जादू टोना से रोग दूर करनेपर इनका विश्वास होता है। गोंड, कवार, और अहीरोंको अपनी जातिमें सम्मिलित कर लेते हैं। ये बन्दर, लोमड़ी, मगर, छिपकली, गोमांस और जूठा नहीं खाते। सूअर और मुर्गीका मांस तथा मद्यपानकी पूर्ण स्वतंत्रता है। ये गोंड़ तथा बैंगाके हाथकी रसोई नहीं खाते।

ये लोग कपड़ा बहुत कम पहनते हैं। स्त्रियाँ गोंड़ों के समान ही कपड़ा पहनती हैं। शरीर पर गुदना गुदवाती हैं। आसाममें भी इनकी आबादी है। ये लोग प्रथमतः छोटानागपुरमें खेतीका काम करते थे। किन्तु पिछली जनसंख्याके समय आधेसे अधिक आसाम, सिलहट और शिवसागर के चायके बगीचोंमें काम करते हुए पाये गये थे।

अगीर—यह पञ्जाबकी एक जाति है। इनकी जनसंख्या ३०२७ है। ये हिन्दू हैं। मुख्यतः ये रोहतक, गुड़गाँवा देहली और मुलतान जिलेमें पाये जाते हैं। नमक बनाना ही इनका मुख्य रोजगार है। गुड़गाँव जिलेमें रहनेवाले अगीर अपने को बिठूरके राजपूतोंके वंशज मानते हैं। समाजमें इनका स्थान मामूली है। लोहार से उच्च तथा जाटोंसे निम्न श्रेणीमें इनकी गिनती होती है।

अग्नि—(देवता) मानव सभ्यताके इतिहास में अग्निका आविष्कार सबसे प्राचीन और महत्व पूर्ण है। विद्वानों का मत है कि दूसरे हिमान्तर युग (Second Interglacial Epoch) अर्थात् आजसे ४००००० वर्ष पूर्व अग्निका अविष्कार हो चुका था। भिन्न-भिन्न मानव जातियोंमें अग्निके विषयमें अनेक दन्त-कथायें प्रचलित हैं। भिन्न-भिन्न साहित्यालोकनसे इनका पता लगता है। अग्निके सम्बन्धमें वेदोंमें भी बहुतकुछ वर्णन किया गया है। विस्तारभयसे सबका उल्लेख तो नहीं किया जा रहा है किन्तु संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।

पृथ्वीके देवताओंमें अग्नि प्रमुख है। होम हवनमें इसका प्रत्यक्ष संबंध है। इसलिये इनका माहात्म्य विशेष है। यज्ञ आदिमें अग्निका कितना महत्व है, इनका वर्णन वेद ग्रंथोंमें मिलता है। इन ग्रंथोंमें इन्द्रका सर्वोच्च स्थान है और द्वितीय अग्नि का ऋग्वेदके २०० सूक्तोंमें इनकी प्रार्थना की गयी है। इनकी उत्पत्तिके संबंधमें अनेक भिन्न-भिन्न दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। इनके वर्णनके परस्पर विरोध मिलते हैं। वस्तुतः विरोध इनकी उत्पत्ति-स्थानके भेदके संबंधमें ही है। अरणियोंकी परस्पर रगड़ से ही इनकी उत्पत्ति मानी गयी है। एक दंत-कथा यों है-अग्निरूपी बालक उत्पन्न होतेही अपने मातापिताका भक्षण करता है। उसकी माता उसे दूध नहीं पिला सकती।

अग्नि शब्द इंडोयूरोपियन है। लैटिनमें अग्निको 'इग्निस' और स्लेवानिक भाषामें 'ओग्नि' कहते हैं। भारतवासी प्राचीन कालसे 'अग्नि' को इसी नामसे पूजते आ रहे हैं। इंडो-ईरानी कालमें यज्ञके योग्य देवताओंमें अग्निकी गणना की जाने लगी। पुरोहितोंका एक स्वतंत्र वर्ग (दर्जा) तयार हो चुका था। यही वर्ग 'अथर्वन' कहलाता था। यह अग्नि परम सामर्थ्यवान दैवी शक्तिका केंद्र माना जाता था। धन-धान्य, पुत्र कलत्र, बुद्धि और यश देनेवाले समझे जानेके कारण अग्नि की उपासना की जाने लगी। इंडोयूरोपियन कालमें

भी 'होमाग्नि' रखनेकी प्रथा थी। प्राचीन इटालियन और ग्रीक लोग भी भारतवासियोंकी तरह होममें डाली हुई सामग्रीको देवताओं तक पहुँचानेके लिये अग्निको ही साधन समझते थे। अर्थात् अग्नि कुण्डमें डाली हुई वस्तु देवताओं तक पहुँच जाती है यह उनकी भी धारणा थी।

लगभग सबही संस्कृतियोंमें अग्निकी उत्पति अन्य देवताओंकी अपेक्षा कुछ विशेषता रखती है। वैदिक हिन्दूधर्म तथा ज़रतुष्ट्र धर्ममें अग्नि देवता के लिये विशेष स्थान है। संसारके और भी धर्म-ग्रंथोंके अवलोकनसे यह स्पष्ट है कि जरतुष्ट्र और हिन्दूधर्ममें ही अग्निको प्रत्यक्ष देवता माना है। अग्नि की उत्पत्तिके विषयमें भिन्न-भिन्न कल्पनायें हैं। सूर्य; काँगरू (जानवर विशेष), ओक वृक्ष अथवा ऐसी ही नैसर्गिक वस्तुओं द्वारा अग्निकी उत्पति मानी गयी है। भलीभांति विचारनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कहीं भी अग्निकी उत्पत्ति अग्नि देवता द्वारा नहीं मानी गयी है। विशेष महत्वपूर्ण होनेके कारण ही अथर्ववेदके प्रणेताओं ने इसको देवता का रूप दिया है और दैवी गुणों की इसमें भरमार कर दी है। प्रामिथिअस की भी ऐसी ही कथा है।

अग्नि (भारतीय)—'अग्नि', इण्डोयोरोपियन शब्द होते हुए भी भारतमें इसी नामसे प्रचलित है। इसकी उपासना भी भारतियोंमें बहुत प्रचलित है। इसके वैदिक स्वरूप का सारांश तो उपर दिया ही जा चुका है। किन्तु पौराणिक कालमें अन्य देवताओं की तरह इसके सम्बन्धमें भी अनेक कथायें और उप-कथायें प्रचलित हो गई थीं जिससे इसको भी सगुण स्वरूप दिया जाने लगा। वह्नि, अनल, पावक, वैश्वानर अब्जहस्त, धूमकेतु, हुतभुज, क्रॉर्च, रोहिताश्व, छागरथ, जातवेद, सप्तजिह्व, तोमरधर, इत्यादि अनेक नाम इनको दिये गये। अंगिरस पुत्र, पितरों का राजा, मरुत शांडिल का पौत्र; तामस मन्वन्तरके सात तारोंमेंसे एक नक्षत्र, इत्यादि नामोंसे पुराणों में इसका उल्लेख किया है, और अनेक भूमिकायें दी गयी हैं।

अग्निके स्वरूप भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। सात हाथ, चार सींग, सात जिह्वा, दो सिर, तीन पैर इत्यादि वैश्वदेवमें वर्णन किया है। किन्तु हरिवंशमें ऐसा नहीं है। उसमें चार हाथ वाला, मेढ़े पर बैठा हुआ अथवा वायुके सात पहियों-वाले-रथमें बैठने वाला, सिर पर धुएँ का मुकुट धारण करने वाला—अग्निको बताया है। अग्निका संक्षिप्त पौराणिक इतिहास इस प्रकार है।

स्वयंभू मन्वंतरमें ब्रह्माका मानस पुत्र दक्ष-प्रजापति था। उसकी सोलह कन्याओंमें से जो स्वाहा नामकी थी, वही अग्निकी स्त्री थी। उसको "स्वरोचिष" नामक पुत्र और सुच्छाया नामकी कन्या हुई थी।

उत्तानपादके पुत्र ध्रुव थे; उसके शिष्ट नामक पुत्र को वह कन्या ब्याही गई और उसका पुत्र स्वारोचिष दूसरा मनु हुआ।

इसके अतिरिक्त पावक, पवमान और शुचि तीन और भी पुत्र थे। वे अग्निदेवताके भिन्न-भिन्न पैंतालीस कार्य्य सम्पादन करनेके कारण भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

चालू (वैवस्वत) मन्वंतरमें वरुणने ब्रह्माको ऋत्विज बनाकर यज्ञ किया। उसमेंसे तीन ऋषियों को ब्रह्मदेवने पुत्ररूपसे ग्रहण किया था। ब्रह्मदेवने अग्निको पूर्व और दक्षिण दिशा का स्वामित्व दिया था इसीसे उस दिशाके कोने को आग्नेय दिशा कहते हैं।

पहले श्वेतकी राजाने अगणित यज्ञ किये। जिसके हवि भक्षण करते करते इसको अपचन हुआ। तब अग्नि उसका उपाय पूछनेके लिये ब्रह्माके पास गये। उस समय द्वापरयुग समाप्त हो चुका था। यह जानकर ब्रह्माने कहा कि प्रस्तुत भूमि पर कृष्णार्जुन अवतार हुआ है। उनके पास जाकर खांडववन नामक वन भक्षणके लिये मांग। उसका भक्षण करनेसे तू अपनी व्याधिसे शीघ्र मुक्त हो जायगा। इसलिये अग्निने ब्राह्मण वेशमें आकर कृष्णार्जुनसे खांडववन भक्षणार्थ मांगा। उस समय दोनोंने मिलकर 'तथास्तु" कहा—किन्तु फिर वे बोले कि हम लोगोंके पास इस योग्य रथादि की न्यूनता है, जिससे अग्निने वरुणसे कपिध्वज-युक्त एक दिव्य रथ और "गांडिव" धनुष माँगकर अर्जुन को और 'वज्रनाथ" नामक" चक्र और 'कौमोदिक" नामक गदा कृष्ण को दी। इससे वे दोनों संतुष्ट हुए और उन्होंने उसको वनमें प्रवेश कर वनको भक्षण करने की आज्ञा दी। इन्द्रको यह विदित होतेही वह उसका निवारण करनेके लिये दौड़ता आया। परन्तु कृष्णार्जुनने उसका पराभव कर उसे लौटा दिया। अग्नि १५ दिनतक वनको भक्षण कर व्याधिसे मुक्त हुआ।

"हिब्रू धर्मकी अग्नि-पूजा"—अग्नि अथवा यज्ञ-कर्मों को उल्लेख "हिब्रू" धर्म-ग्रंथमें बहुत कम है।

इस ग्रंथमें अग्नि-उत्पत्ति की कथा यों है कि जेहोवाने आदम और ईव (मानव जातिके मूल स्त्री-पुरुष) से अग्न्युत्पत्ति की पद्धति का विवरण कहा। जिस समय आदम पहले अंधकार में फंस गया उस समय ईश्वरके पवित्र मूर्तिने उसे अग्नि उत्पत्ति करनेके लिये दो ईटें दीं। इस प्रकार हिब्रू ग्रंथके अनुसार अग्नि की उत्पत्ति ईश्वर की दी हुई ईंटोंसे हुई है।

ज़ोरो-आस्ट्रियन धर्मकी अग्नि पूजा—इरानी और भारतीय धर्मकी अग्नि पूजामें मुख्य दो भेद हैं। (१) ईरानी धर्मके अनुसार अग्निमें मृतक का संस्कार करना अनुचित समझा जाता है, किन्तु भारतीय धर्ममें ऐसा नहीं है (२) जितना भारतीय धर्ममें अग्निके काल्पनिक स्वरूप को महत्व दिया गया है उसके मुकाबलेमें ईरानी 'आतर' का स्वरूप बहुतही अपूर्ण है। कुछ लोगोंका कथन है कि ईरानी धर्ममें अग्निको देवता का पद बिलकुल नहीं दिया गया है। भारतीयोंके विषयमें यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि अग्नि पूजाका लोप होते होते अब वह एक विशिष्ट ब्राह्मण वर्गके ही हाथमें हैं। परन्तु जरतुष्ट्र सम्प्रदाय का प्रत्येक पारसी प्राचीन पद्धतिके अनुसार अग्निपूजा करता है।

आतर (अग्नि) दिव्य प्रकाश का पार्थिव स्वरूप है। अग्नि "अहुर्मज़्द" का पुत्र था। उससे ज़रतुष्ट्र का जन्म हुआ। अग्निके पांच प्रकार हैं। अर्हिमनने अंधकार और धूँआ को अग्नि का रूप माना है।

आतरने आहुर को "आंग्रमैन्यु" से युद्ध करते समय सहायता दी। इसी प्रकार की अनेक कथाएँ अवेस्ता और पेल्हवी ग्रंथ में दी हुई हैं। अग्निके संरक्षक को इस पंथमें धर्म-गुरु मानते हैं। ये संरक्षक अग्निको कभी बुझने नहीं देते। अग्निमें मृतकों को जलाना, गोबर इत्यादि गन्दे पदार्थ डालना, इत्यादि कृत्य करनेवालोंको मृत्यु तकका दण्ड है। पारसी धर्मकी उपासना तथा उनकी प्रातःकाल की प्रार्थना-पद्धति प्राचीन वैदिक पद्धतिसे मिलती जुलती है। परन्तु इस प्रकार की प्रार्थना का नियम सर्व साधारणमें लुप्त होता जा रहा है। पारसीमें बड़े बड़े यज्ञ करने की पद्धति है। उसका वर्णन उचित स्थानोंमें दिया गया है।

अग्निकुल—इसमें चौहान, चालुक्य, परमार और परिहार इन चार कुलोंका समावेश किया जाता है। हिंदी महाभारतमीमांसाके प्रसिद्ध लेखक श्री चिंतामणि विनायक वैद्यने भारत इतिहास संशोधक मंडलके नवें अधिवेशनमें कहा था, "ये चार राजपूत वंश अपनेको 'अग्निकुल' में गिनते हैं, पर यह ठीक नहीं है। १००० ई० के लगभग ये अपनेको सूर्य-चंद्रवंशी मानते थे। 'पृथ्वीराजरासो' में चंदबरदाईने वर्णन किया है कि यज्ञकी रक्षाके लिये महर्षि वशिष्ठने अग्निकुण्डसे चार राजपूतों को उत्पन्न किया। इसी कल्पनाको ऐतिहासिक आवरण चढ़ाकर ये सूर्य-चन्द्रवंशी चार कुल अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये अपनेको अग्निके वंशज समझने लगे। आगे चारणोंने भी वंशवृक्ष तयार कर इनका संबंध अग्निसे जोड़ दिया। परन्तु इसका फल अनुचित हुआ। पश्चिमीय इतिहास-अन्वेषक यह मानने लगे कि इन कुलोंकी उत्पत्ति हूण आदि अनार्य कुलोंसे हुई थी और ऋषि वशिष्ठने इनको अग्नि-संस्कार कर इनको शुद्ध करके राजपूतोंमें मिलाया। इससे इनकी सूर्य-चन्द्रवंश की शुद्ध परम्परा नष्ट होने लगी। इसलिये व्यर्थ ही अग्निकुलोत्पन्न कहलानेमें इन राजपूतोंको कुछ भी लाभ नहीं हुआ। प्रथमतः अग्निकुलकी कल्पना मिथ्या है और इसी लिये कौनसे राजा अग्निकुलमें उत्पन्न हुए हैं इस बातकी खोज करना ही व्यर्थ है।" श्रीयुत वैद्य महोदयका कहना है कि चंदबरदाई के पूर्व 'अग्निकुल' की कल्पना प्रचलित न थी। पर यह माननेके लिये हम तयार नहीं हैं।

चंदबरदाईके पूर्व ऐसे परमार राजा थे जो अपनी उत्पत्ति अग्निकुलसे मानते थे। परन्तु ११वीं शताब्दिके पहले इनका अपनेको अग्निकुलोत्पन्न माननेके विषयमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। फिर भी यह सन्देह होता है कि 'अग्निकुल' की कल्पना बहुत प्राचीन है। प्राचीन तामील साहित्य के आधार पर हार्नेलीने लिखा है कि उक्त प्रांतमें यह धारणा प्रचलित है कि एक राजवंशकी उत्पत्ति अग्नि से हुई।

विद्याके आश्रयदाता सात राजा तामील देशमें हो गये हैं। उनमें परम्बुनाड्का राजा 'पारि' सर्व प्रमुख था। चेर, चोल और पांड्य राजाओं द्वारा पराजित होनेके कारण इसकी लड़कियोंके ब्याहकी जिम्मेदारी राजाके ब्राह्मणमित्र कवि कपिलर पर थी। यह कवि उक्त लड़कियोंको जिन दो राजाओं के पास ले गया था, उनमेंसे एकको उसने अग्निकुलोत्पन्न कहा था। यह राजा पश्चिमी घाटके एक पहाड़ी अरयम नामक राज्यका शासक था। इसका नाम पुलिकडीमाल इरुनगोवेल था।

'तिरुविलायड़ल पुराण' के अनुसार कपिलर

कबिका जन्म तिरुवादपुरमें हुआ था। इन्होंने तामील भाषामें अनेक ग्रंथ लिखे थे। कपिलर परणारका समकालीन था। उक्त पुराणमें तीन विद्या-प्रेमी राजाओंके नामोंका उल्लेख है, पर कुल नाम इस तरह से दिये हैं—(१) पलनीसके निकट 'पेहन' (२) उत्तरमें पश्चिमघाट पर 'पारि' (३) दक्षिण आरकाटमें तिरुक्कुवुरके पास 'कारि' (४) तिनावलीके पश्चिम पड़िथल पहाड़ी के पास 'आई'; (५) धर्मपुरी अथवा मैसूरके तगडूका अदिदमन; (६) मलनाजूका 'नाल्लि'; (७) सीलका कोल्लि; (८) मैलके पासका 'ओरी'; (९) उरैपुरका चोल और (१०) वंजीका 'चेर'।

कपिलर गजबाहु राजाका समकालीन था। इसीसे डा० हार्नेलीने अनुमान किया है कि कपिलर ई० सदीकी दूसरी शताब्दिमें था और इतने पुराने जमानेमें भी अग्निसे उत्पन्न कुलोंकी कल्पनायें प्रचलित थीं। [इ० ऐडि० सप्लि० ३४]

अग्निक्रीड़ा—(आतिशवाज़ी) मानव समाज अपने मनोरंजनके लिये नाना प्रकारकी सामग्रीका आविष्कार किया करता है। अतः ज्यों ज्यों उनका प्रचार बढ़ता जाता है वे ब्यापारके लिये तैयार की जाने लगती हैं। इसी भाँति अग्नि-क्रीड़ाकी भी हाल है। इस देशकी प्राचीन ६४ कलाओंमें इसका वर्णन कहीं भी नहीं पाया जाता। अतः निश्चितरूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस देशमें इसके बनानेकी कला कबसे और किसने प्रारम्भ की। अग्नि, ज्वलन्त तथा विस्फोटक पदार्थोंके मिश्रीकरणसे ही मनुष्यके नेत्र-मनोरञ्जनके लिये ही इसका आविष्कार हुआ है। जिन पदार्थोंसे बारूद तय्यारकी जाती है उन्हीं वस्तुओंके हेरफेरसे आतिशवाज़ी भी तैयार की जाती है। महाभारतमें जिस शतघ्नी और युद्धयन्त्र आदि शब्दोंका जिक्र आया है, उसका आजकलका पर्यायवाचक Machine gun ही है अथवा नहीं-यह निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता। विश्वसनीय तथा ठीक ठीक इतिहास न होनेके कारण हम लोगोंको बहुधा कल्पना शक्ति पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। कुछ लोगोंका कहना है कि बन्दूककी बारूद, पटाखे इत्यादि बनानेकी कला पहले पहल चीनियोंने ही ढूँढ़ निकाली थी और धीरे धीरे वहींसे अन्य देशों में भी फैली। रोमन सरकसोंमें भी आतिशबाजीका खेल दिखाया जाता था। यूनानके जल युद्धोंमें भी इसका जिक्र आता है। रोमन बादशाह कारिनस और डायोक्लीसनके प्रति सम्मान दिखानेके लिये आतिशबाजीका प्रयोग किया गया था। 'क्लाडियन' ग्रंथमें ईसा की ४थी शताब्दीमें भी चक्रके समान घूमने वाली तथा वृष्टिका दृश्य दिखाने वाली आतिशबाजीका उल्लेख मिलता है।

प्राचीन यूनान, रोम आदि देशोंका ह्रास होने पर कुछ कालके लिये यह कला ठण्ढी पड़ गई थी। परन्तु (Crusades) धर्मयुद्धके शहीदों ने पूर्वीय देशोंसे बारूद तथा विस्फोटक पदार्थ बनाना सीख कर इसका योरपमें फिरसे प्रचार किया था। जिस भाँति आजकल विजयादशमीके अवसर पर बाँस इत्यादिसे बने हुए रावणके चित्रमें बारूद भर कर जलाते हैं उसी भाँति बाइबिलकी कुछ घटनाओंके आधारपर फ्लारेन्स आदि शहरोंमें १५४० ई० तक कागज तथा लकड़ियोंकी मूर्तियाँ बनाकर उनमें बारूद भर कर जलाते थे। उत्सवों के अवसर पर इंगलैण्ड तथा फ्रान्स आदि देशोंमें अब भी यह प्रथा प्रचलित है।

शोरा, गन्धक और लकड़ीका कोयला ही बारूद बनानेके मुख्य साधन हैं। उसीमें लोहेका बुरादा मिला कर आतिशबाजी भी बनाई जा सकती है। भाँति-भाँतिकी आतिशबाजी बनाने के लिये भिन्न-भिन्न पदार्थोंको मिलाना पड़ता है। सबका तो स्थानाभावके कारण यहाँ वर्णन होना असम्भव है, किन्तु पाठकोंके मनोरंजनके लिये दो एक का उल्लेख नीचे किया जाता है—

चरखी बनाने की विधि

बारूद	२४ भाग
शोरा	१० ,,
गन्धक	७ ,,
कोयले का चूरा	५ ,,
फौलादका चूरा	८ ,,

हरे तारे बनाने की विधि

पोटेशियम क्लोरेट	१० भाग
बेरियम टाइट्रेट	४८ ,,
गन्धक	१२ ,,
कोयला	१ ,,
लाख	५ ,,
कपूर का रस	८ ,,
ताँबे का चूरा (Copper)	२ ,,

अंग्रेजों द्वारा जो पेशवाओंके दरबारोंका वर्णन हुआ है और उनके शासनकालका जो ऐतिहासिक हाल मिलता है उससे पता चलता है कि उस समय आतिशबाजीका काफी प्रचार था। आजकल की तरह उस समय भी विवाह इत्यादि उत्सव में आतिशबाजी छोड़ी जाती थी। बहुधा पहाड़ियोंके नीचे आतिशबाजी छोड़ी जाती थी औ

पेशवा तथा अन्य उच्चाधिकारी उनपरसे उन्हें देखते थे। आधुनिक कालमें अन्य आविष्कारोंके साथ साथ इस कलामें भी बहुत कुछ सुधार हुआ है और नई नई चीजें बनने लगी हैं। पेशवाओंके शासनकालमें महाराष्ट्र देशमें इसका खूब प्रचार था। सवाई माधवरावके विवाहके उपलक्षमें आतिशबाज़ीका जो वर्णन मिलता है उसका उल्लेख नीचे देते हैं।

आकाश मण्डल के तारागण—यह आतिश-बाज़ी आकाशमें जाकर फट जाती थी और इसमें से रङ्ग बिरङ्गे तारे दिखाई देत थे।

नारियल के पेड़—इसमें आग लगाते ही तोपके समान आवाज होती थी और रङ्ग बिरङ्गके शाखाकार तथा सर्पाकार दृश्य देख पड़ते थे।

प्रभा-चमक—इसमें सुनहले तथा रुपहले घूमते हुए चित्र दिखाई देते थे।

इसके अतिरिक्त और भी नाना प्रकार के बाण फूल इत्यादि होते थे।

आजकल इस देशमें हवाई जहाज़, चन्द्रजोत, छुछुन्दर, साँप, बाण, रङ्गबिरङ्ग तारे, फुलझड़ी, महताबी, सिंघाड़ा, चरखी, अनार तथा लङ्का इत्यादि देखनेमें आती हैं।

योरपमें भी आजकल इस सम्बन्धमें बहुतसे नये नये आविष्कार हुए हैं और वे भारतमें भी अब आने लगे है। इसलिये इस देशका आतिशबाजी का व्यवसाय बहुत धीमा पड़ गया है। यदि विद्वान तथा रसायनशास्त्र-वेत्ता इस ओर कुछ ध्यान दें तो इसका फिरसे पुनरुद्धार हो सकता है।

अग्निपुराण—इस पुराणके नामसे ऐसा भास होता है कि इसमें अग्निका विशेष वर्णन किया होगा, किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। अग्निद्वारा जो विद्यासार वसिष्ठ को प्राप्त हुआ था उसी का इसमें मुख्यतः उल्लेख है। पुराणोंमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचारिता—इन्ही पाँचों लक्षणों का बहुधा समावेश होता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक विषय होते हैं। किन्तु अग्निपुराणमें इन सबका विशेष महत्व नहीं देख पड़ता। 'परा' तथा 'अपरा' इन्हीं दोनों विद्याओं पर अधिक विवेचना की गई है। मानव समाजके हितके भी अनेक विषय इसमें भलीभाँति दिये हुए हैं। साधारण रीतिसे भी इसका निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन कालका यह एक विविध-विषयक स्वतन्त्र ज्ञानकोश है। अवतार-चरित्र, रामायण आदि इतिहास, जगत्का उत्पत्तिविवेचन, ज्योतिशास्त्र, वास्तुशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, छन्दशास्त्र, नाट्यशास्त्र काव्य, व्याकरण, तत्वज्ञान, नीतिशास्त्र आदि अनेक विषय इसमें दिये हुए हैं। पुराणोंमें यह तामस श्रेणीका ग्रंथ समझा जाता है, क्योंकि सांसारिक विषयों को छोड़कर परमार्थ सम्बन्धी बातें इसमें बहुत कम अंशोंमें हैं। इसमें किसी खास धर्ममार्गका समर्थन नहीं किया गया है, किन्तु ग्रन्थ देखनेसे यही विदित होता है कि ग्रन्थनिर्माण-समयमें शैवधर्म ही का जोर रहा होगा और मन्त्रतन्त्रपर लोगों की विशेष श्रद्धा रही होगी।

आनन्दाश्रम ग्रंथावली द्वारा प्रकाशित अग्निपुराणमें ३८३ अध्याय और ११४५७ श्लोक हैं। नारद पुराणमें १५००० और मत्स्य पुराणमें १६००० श्लोक अग्नि पुराणमें बताये गये हैं। नारद पुराण में और इस पुराणकी जो विषयानुक्रमणिका लिखी है, उसका भी पता अबके अग्नि पुराणमें नहीं लगता। बल्लालसेनने भी जिन अवतरणोंका अग्नि पुराणमें उल्लेख किया है वे सबभी वर्त्तमान अग्नि पुराणमें नहीं मिलते। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट होता है कि अग्निपुराणका कुछ भाग लुप्त हो गया है। इसका रचना-काल भी निश्चित करना कठिन है किन्तु ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि ई० ५ वीं शताब्दिके पश्चात् और यवनोंके आक्रमणके पूर्व इस ग्रंथका संकलन हुआ होगा।

आधार ग्रंथ—दत्तका अग्निपुराण (वेल्थ आफ इण्डिया सीरीज़); काले का पुराण निरीक्षण। विन्टरनीज़की हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (German book)! असन की हिन्दू क्लासिकलडिक्शनरी। अग्नि पुराण—आनन्दाश्रम आवृत्ति।

इस पुराणमें अनेक विषयोंके समावेश होने तथा अन्य पुराणोंके विस्तारपूर्वक वर्णन होनेसे प्राचीन हिन्दुओं की सामाजिक और राजकीय व्यवस्थाका अच्छा ज्ञान हो सकता है। इसलिये इस ग्रंथका विस्तृत वर्णन दिया जाता है। और उन विषयों का, जिनके प्रति पाठकों की जिज्ञासा अधिक होना सम्भव है, का अधिक विस्तारसे वर्णन किया गया है। अग्निपुराणमें अनेक शास्त्रों का विवेचन है। भिन्न भिन्न शास्त्रों के लेखोंके समय अग्नि-पुराणका उल्लेख करना पड़ता है, अथवा उसके शास्त्र विवेचनका स्वरूप देना आवश्यक है। इसलिये अग्निपुराणका यथार्थ स्वरूप यहीं देना युक्तिसंगत होगा।

अंतरंग निरीक्षण

दशावतार वर्णन अ० १ से १६ तक।

पहिले अध्यायके प्रथम श्लोकमें लक्ष्मी, सरस्वती, गौरी, गणेश, स्कंद, ईश्वर ब्रह्मा, वह्नि, इन्द्र और वासुदेवादिकों का मंगल गाया है। इतने देवताओं का मंगल-गान या उनकी स्तुति का वर्णन इसके अतिरिक्त प्रायः कहीं नहीं दिखायी देता।

ऋषियोंने सूतसे प्रश्न किया कि सारमें सार क्या है, वह कहो। तब सूतने अग्नि-वसिष्ठ संवाद कहा। इसी अग्नि-वसिष्ठ संवाद को अग्निपुराण कहते हैं। परा और अपरा इन दो विद्याओंके आधार पर इस पुराण की रचना की गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा उनके छः अंगों की शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय, वैद्यक, गांधर्व, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, अपरा हैं। ब्रह्मप्राप्तिके जो ज्ञानविषयक वचन कहे गये हैं वह परा हैं। इस प्रकार इस पुराण का आरंभ हुआ है।

दूसरी बात यह है कि ब्रह्मदेव, सृष्टि इत्यादि विषयोंसे पुराण का आरम्भ नहीं हुआ है वल्कि अवतारचरित्रोंसे इसका आरम्भ हुआ है।

अ० २में मत्स्यावतार चरित्र और अ०३में कूर्मावतार का वर्णन है। पद्मपुराण और मत्स्यपुराणमें ये विषय आये हैं और विषयोंके प्रदिपादनमें और इनमें फरक नहीं है; श्लोकरचना मात्र भिन्न है। मत्स्यपुराणमें कूर्मावतार चरित्र का उल्लेख नहीं हैं। अवतार-चरित्रों का प्रायः पुराणोंमें समावेश है। अ० ४ में वराह नृसिंह, वामन और परशुरामके संक्षिप्त चरित्र दिये हैं। अ० ५ में श्रीरामावतारके श्रीवाल्मीकि रामायणके जन्म-काण्डका संक्षिप्त विचार किया गया है। अ० ६ में रामायणके अयोध्याकाण्ड, अ० ६ में सुन्दर कांड, अ० १० में युद्धकांड, अ० ११ में उत्तरकाण्ड, "रामरावणयोर्युद्धं राम रावणयोरिव" वाला सुप्रसिद्ध श्लोकार्ध यहां दिया है। यद्यपि यह रामायण संक्षिप्त है तो भी कोई सुप्रसिद्ध कथा छूटी नहीं है। इस रामायणके कुल श्लोकों की संख्या १८६ है। अ० १२ में कृष्णावतार (इसमें आये हुए गोमंत का निर्णय किस प्रकार किया जाय यह एक प्रश्न है)। क्योंकि यदि गोमंत को आधुनिक गोवा प्रान्त मान लिया जाय तो जरासंध की चढ़ाईसे भयभीत हो श्रीकृष्ण का मथुरा छोड़ कर इतनी दूर भागना संभव नहीं है। अतः गोमंत एक पर्वत का नाम है और भागवतमें उस पर्वत का दूसरा नाम दिया हुआ है। भारताख्यान अ० १३। १४। १५ में हैं। तीन अध्यायोंमें केवल ७२ श्लोक हैं।

अ० १६ में बुद्धावतार और कल्कि अवतार का वर्णन है। बुद्धावतारकी कथा सर्वत्र ही है। बुद्धावतारकी पौराणिक कथा ऐसी है कि पूर्व समयमें देव दैत्योंके युद्धमें देवोंका पराभव हुआ, तब देवोंने विष्णुभगवानकी प्रार्थना की और विष्णुने बुद्ध का अवतार धारण किया। उस समय सब दैत्य वैदिक कर्म करने वाले थे और उनको धर्मसे भ्रष्ट कर उनका पराभव करनेके हेतु विष्णुभगवानने बुद्ध अवतार लिया। इस बुद्धके मत का अनुकरण करने वाले बौद्ध कहलाते हैं। इसके उपरान्त जैनमत उद्भव हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जैनमतका पुरस्कर्ता विष्णु अवतार ही है।

आर्हतः सोऽभवत्पश्चादार्हतानकरोत्परान् ॥

सृष्टि की उत्पत्ति अ० १७ से २०—अ० १७ में जगत्की उत्पत्तिका वर्णन है। इसमें ब्रह्मासे हिरण्यगर्भ-ब्रह्मा तककी उत्पत्ति दी हुई है। इससे सब परिचित हैं। "अपएव ससर्जादौ" यह श्लोक अन्य पुराणोंकी तरह यहाँ भी है।

(१७-७) अव्यक्तब्रह्म—प्रकृति पुरुष, महत्व, अहंकार प्रधान विषय हैं। अहंकारके तीन प्रकार हैं—वैकारिक, तेजस और तामस अहंकार। आकाश, वायु, तेज, पानी तथा पृथ्वी, ये तामस अहंकारकी संतति हैं। तैजस अहंकारसे इन्द्रिय और वैकारिक अहंकारसे इन्द्रियोंके अधिष्ठात्र देवता तथा मन उत्पन्न हुए। "ततः स्वयंभूर्भगवान्" इस श्लोकार्द्धसे अध्याय समाप्त होने तकके सब श्लोक महाभारतसे लिये गये होंगे। क्योंकि टीकाकारका कथन है कि दोनों ग्रन्थोंके श्लोक रचनाओंमें साम्य है। टीकाकार कहता है कि ये ही श्लोक हरिवंश अ० २ में हैं। १८ वें अध्याय के "स्वायंभू व मनु वंश वर्णन" में कुछ फरक है। पूर्व अध्यायोंकी तरह यह हरिवंशमें है। अ० १६ में कश्यप वर्णन और अ० २० में जगत्सर्ग वर्णन है। अ० १७ में निरूपित किये गए प्राकृतादि तीन सर्गोंके आगेका वर्णन दिया हुआ है। प्राकृत सर्गके बाद महत् सर्ग (महत् से अहंकार तक), भूत सर्ग (आकाशसे पृथ्वी तक), वैकारिक सर्ग (भूतोंके सूक्ष्मत्वसे बना हुआ इन्द्रिय वर्ग), ये तीन सर्ग गिने जाते हैं। विकृत सर्गमें स्थावर, तिर्यक् स्रोतस् अधःस्रोतस, ऊर्ध्वस्रोतस

और अनुग्रह ऐसे ५ भाग कल्पित किए गए हैं। तिर्यक् स्रोतस ही तिर्यक् योनिमें जन्मे हुए प्राणिके विषयमें है। ऊर्ध्व स्रोतससे तात्पर्य देवसर्ग, और अर्वाक स्रोतस माने मनुष्य सर्ग है। इस भाँति विकृत ५ और तामस ३ मिलकर ८ सर्ग और नववाँ सात्विक कुमार सर्ग है। इसलिये ब्रह्मदेवसे उत्पन्न हुए जगतके मूल-भूत नौ सर्ग हुए।

देवोपासना और मन्त्र अ० २१-३८—अ० २१ में विष्णवादि देवताओंकी सामान्य पूजा दी हुई है। इसमें देवताओंके मन्त्र बीजोंका विधान है। अ० २२ में पूजाधिकारके लिये सामान्य स्नान-विधि है। अ० २३ में आदिमूर्त्यादि पूजा-विधि। अ० २४ में कुण्ड निर्माणादि, अग्निकार्यादि कथन तथा षोड़श संस्कार। अ० २५ में वासुदेवादि मन्त्र लक्षण। अ० २६ में मुद्रा लक्षण। अ० २७ में शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधि। अ० २८ में आचार्यादि अभिषेक वर्णन। अ० २९ में मंत्र-साधन विधि, सर्वतोभद्रादि लक्षण तथा विधान। अ० ३०।३१ में अपामार्जन विधान। अ० ३२ में निर्वाण दीक्षासिध्यर्थ संस्कार-वर्णन। अ० ३३।३६ में पवित्रारोपण विधि, पूजा और होम। (अधि-वासन और दूसरे देवताओंके सम्बंधमें पवित्रा-रोपण विधि उत्तर खंड अ० ८९ के पद्मपुराणमें और इसमें कुछ फरक है। यह पवित्रारोपण विधि श्रावणमें करनेको कहा है) अ० ३८ में देवालय निर्माणफल, निर्माणारंभ, देवालय निर्माण करनेके लिये जमीनकी परीक्षा। यह परीक्षा पाँच अथवा छः रात्रिमें करनेको कहा है। प्राण-प्रतिष्ठा करने लायक ब्राह्मण कौन है, इसका ग्रंथोक्त विचार इस प्रकार है कि मध्यदेशका ब्राह्मण प्राण-प्रतिष्ठाके योग्य है। कच्छ, कावेरी, कोंकण, कलिंग, कांची और काश्मीर देशके ब्राह्मण प्रतिष्ठाके अयोग्य हैं। भूमिके टीलोंको तोड़ और भूमिको चौरस करके नापना चाहिये। उसके बाद अष्टदिशाओंकी तरफ सत्तू, उड़द, हलदी इत्यादि द्रव्यको फेंकना चाहिये जिससे राक्षस पिशाच इत्यादिका नाश होता है। यह जमीन देवस्थापनाके योग्य होती है। इस भूमिको चौरस करनेके लिये बैलोंसे हल चलवाना आव-श्यक है। इस विषयका बहुत कुछ मत्स्यपुराण के अ० २५२ में उल्लेख किया गया है।

उपासनामिश्र वास्तु शास्त्र ३९-१०६—अध्याय ३९ से ४५ तकका विचार वास्तुशास्त्र विषयक विचार है। इसमेंका बहुत सा भाग कठिनतासे समझमें आता है। अ० ४६-४८ में शालिग्राम लक्षण और पूजन। अ० ४८ में केशवादि चौबीस नामोंकी मूर्तियोंके स्तोत्र। अ० ४९ में दशावतार प्रतिमा लक्षण। अ० ५० में चंडी आदि देवियोंके प्रति-माओंका लक्षण। अ० ५१ में सूर्यादिग्रह देवता प्रतिमा लक्षण। अ० ५२ में चौसठ योगिनी प्रतिमा लक्षण। अ० ५३ में लिंगादि लक्षण। अ० ५४ में लिंगके प्रमाणका व्यक्ताव्यक्त स्वरूप। अ० ५५ में पिंडिका लक्षण। अ० ५६ में दश दिक्पाल योग वर्णन। अ० ५७ में कलशाधिवास विधि। अ० ५८ में स्नपन विधि। अ० ५९में अधि-वासन विधि। अ० ६० में वासुदेवादि देवताओं की सामान्य प्रतिष्ठा। अ० ६१ में अवभृत स्नान, द्वार प्रतिष्ठा ध्वजारोपण विधि। अ० ६२ में लक्ष्यादि देवता प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि। अ० ६३ में विष्णवादि देवता प्रतिष्ठा सामान्य विधि, पुस्तक-लेखन-विधि। इसको किस प्रकार लिखना चाहिये इसका वर्णन नहीं है, बल्कि उपर्युक्त नार-सिंह मंत्र सफेद अथवा सुनहली स्याहीसे नागरी भाषामें लिखना चाहिये इतना ही उल्लेख है।

स्थापना कर्म—अ० ६४ में कूप, वापी, तड़ाग प्रतिष्ठा विधि। अ० ६५ में सभादि स्थापन विधि। अ० ६६ में जमीनकी परीक्षा कर वहाँ वास्तु भाग करना चाहिये। यह सभा चौक अथवा ग्रामके आरंभमें करना चाहिये। सूनी जगहमें न होनी चाहिये। इस सभामें चार, तीन, दो अथवा एक शाल या कोने छोड़ने चाहिये।

अ० ६६ में देवता सामान्य प्रतिष्ठा। अ० ६७ में जीर्णोद्धार विधि। अ० ६८ उत्सव विधि। अ० ६९ में मूर्तियोंको नहलानेका विधि। अ० ७० में वृक्ष प्रतिष्ठा। वृक्षोंको अलंकृत करके सोनेकी सूई चूभोना चाहिये और तदुपरान्त पूजा करना चाहिये। अ० ७१ में गणेश पूजा। अ० ७२ में स्नान विधि। अ० ७३ में सूर्य पूजा कथन, सूर्य को राख लगाकर पूजन करना चाहिये। अ० ७४-७५ में शिव-पूजा तथा होम-विधि। जप करते समय चर्मसे वेष्टित खड्ग का चंदन फूल अक्षत, दर्भ इत्यादि से पूजन करना चाहिये। याग की सामग्रीका इन्तजाम रखना आवश्यक है। हाथमें अर्घ्यपात्र लेकर अग्नि ग्रहमें जाना चाहिए और उत्तर की ओर मुंह कर कुण्ड पर प्रोक्षण करना चाहिये। यह प्रोक्षण अस्त्रमन्त्रसे करना चाहिए। बर्मासे अभ्युक्षण, खड्गसे जमीन खोदना, बर्मासे चौरस कर उसपर पानी छिड़कना, बाणके अग्रभागसे मट्टीका ढेला फोड़ना, त्रिसूत्री परिधान बर्मासे इस प्रकारकी पूजाको तान्त्रिक पूजा समझा जाता है।

अ० ७६ में चंड पूजा। अ० ७७ में कपिला पूजा। अ० ७८ में पवित्राधिवासन विधि। यह कुलधर्म अभी तक प्रसिद्ध है। अ० ७९ में पवित्रारोपण विधि। अ० ८० में दमनकारोहण विधि। अ० ८१ में समय दीक्षा। अ० ८२ में संस्कार दीक्षा। ये सब विषय मन्त्र शास्त्रके हैं। अ० ८३ में निर्वाण दीक्षा विधि। अ० ८४ में निवृत्ति कला शोधन। अ० ८५ में प्रतिष्ठा कला संशोधन। अ० ८६ में विद्या संशोधन विधि। अ० ८७ में शांति शोधन विधि। अ० ८८ में निर्वाण दीक्षा शेष विधि वर्णन। अ० ८९ में एकतत्व दीक्षा विधि। अ० ९० में अभिषेकादि। अ० ९१।९२ में प्रतिष्ठादि विधि। तथा अभिषेकसे संक्षिप्त देवता पूजन। अ० ९३ में वास्तु पूजा। अ० ९४ में शिला विन्यास। अ० ९५ में प्रतिष्ठाकालकी सामग्री आदि विधि। अ० ९६ में प्रतिष्ठा विधिकी अधिवासन विधि। अ० ९७ में शिव प्रतिष्ठा विधि। अ० ९८ में गौरी प्रतिष्ठा विधि। अ० ९९ में सूर्य प्रतिष्ठा। अ० १०० में द्वार प्रतिष्ठा विधि। अध्याय १०१ में प्रासाद प्रतिष्ठा विधि। अ० १०२ में ध्वजारोपण विधि। अ० १०३ में जीर्णोद्धार विधि। अ० १०४में प्रासादलक्षण। अ० १०५ में गृहादिवास्तु विचार। अ० १०६ में नगरादिकवास्तु कथन।

भूगोल ज्ञान—अ० १०७ प्राचीन भूगोल ज्ञान बोधक है। इसके स्वायंभूवसर्गमें स्वयंभूमनुके वंश का संक्षिप्त उल्लेख है। अ० १०८ में भुवन कोश। इस भूवनके सात द्वीप हैं और उनके चारो ओर छः समुद्रोंका घेरा है। उन सप्तद्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—जम्बु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाख और पुष्कर। छः समुद्रोंके नाम–खारा समुद्र, ऊँखका समुद्र, मद्यका समुद्र, घी का समुद्र, दही का समुद्र, क्षीर समुद्र, और मीठे पानीका समुद्र। अ० १०९ में तीर्थ महात्म्य। अ० ११० में गंगा माहात्म्य। अ० १११ में प्रयाग महात्म्य। अ० ११२ में वाराणसी महात्म्य। अ० ११३ में नर्मदा माहात्म्य। अ० ११४।११६ में गया माहात्म्य। पुराणका "एको मुनि कुंभ कुशाग्र हस्त," यह रूढ़ श्लोक इस स्थान पर है। अ० ११७ में श्राद्ध कल्प। अ० ११८ में भारतवर्षका वर्णन। इस भारतवर्षमें इंद्र द्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्ति, नाग द्वीप, सौम्य गांधर्व, वारुण, ऐसे आठ खंड हैं। अ० ११९ में महाद्वीपादि वर्णन। अ० १२० में भुवन कोश वर्णन; फलज्योतिषमिश्रित ज्योतिष-शास्त्र और वैद्यक।

(अ० १२१-१४१) अ० १२१ में ज्योतिषशास्त्र। अ० १२२ में काल गणना। अ० १२३ में युद्धजयार्णवीय तथा अनेक योगोंके नाम देख पड़ते हैं। स्वरोदय, शनिचक्र, कूर्मचक्र, और राहुचक्र ही इसके मुख्य विषय हैं। अ० १२४ में युद्धजयार्णवीय ज्योतिः सार वर्णन। अ० १२५ में युद्धजयार्णवीय नाना चक्र वर्णन। इसके आगेका वर्णन भाग मंत्रशास्त्रका है। अ० १२६ में नक्षत्र निर्णय। अ० १२७ में नाना प्रकारके बलका वर्णन दिया हुआ है।

अ० १२८ में कोटचक्र। अ० १२९ में अर्घकाण्ड। अ० १३० में मंडलादि कथन। अ० १३१ में घात चक्र। अ० १३२ में सेवाचक्र। अ० १३३ में नाना बल वर्णन। गर्भ के प्राणीका ग्रहबल के आधार से स्वरूप वर्णन। उदाहरणार्थ—सूर्यके ग्रहमें पड़ा हुआ मनुष्य बहुत ऊंचा, स्थूल, कृश, तथा मध्यम है। वह गोरा और पित्त प्रकृतिका रहता है, रक्ताक्ष, गुणी, और शूर उत्पन्न होता है। इसी प्रकारसे आगेके ग्रहका बलाबल जानना चाहिये। इसी प्रकार ग्रहकी दशाओंके बलाबलका वर्णन किया है। अ० १३४ में त्रैलोक्यविजय विद्या मन्त्र शास्त्र। अ० १३५ में संग्राम विजय विद्या। अ० १३६ में नक्षत्र चक्र। अ० १३७ में महामारी विद्या कथन (मंत्र)। अ० १३८ में मंत्र शास्त्रके छः कर्म। अ० १३९ में साठ संवत्सरोंके नाम। अ० १४० में वश्यादि योग। इसमें कुछ वनस्पतियोंके नाम भी हैं।

अ० १४१ में छत्तीस पदकोंके ज्ञान, वनस्पति तथा दूसरे द्रव्योंका उल्लेख है। यहाँ ज्योतिषमिश्रित वैद्यकका वर्णन है। हर्रे (हरीतकी) बहेड़ा (अक्ष) सूखा आँवला (आमलकी) (मिर्रे) काली मिर्च पिप्पल (पिप्पली) बालंत (सौंफ) (शिफा) चित्रक (वन्हि) सोंठ (सुंठी) गुडूची (गुलबेल) बच (वचा) नीम (निंबक) अडूसा (बासख) शतावरी (शतमूली) सेंधा (सैंधव) (सिंधुकारक) निर्गुन्डी (कंटकारी), गोखरू (गोक्षुरक) बेल (विल्व) पुनर्नवा (पौनर्नवा) एरंड, मुंडी, काला निमक (रुचक) माका (भृङ्ग) क्षार पित्तपापड़ा (पर्पट) धना (धन्याक) जीरा (जीरक) बड़ी सौंफ (शतपुष्पी) अजवाईन (जवानिक) खैर (खदिर) बाहवा (कृतमाल) सिद्धार्थ, दारु, हलदी, राई इत्यादिका वर्णन किया है।

अ० १४२ में मंत्रौषधि प्रकरण और प्रश्न किस प्रकार देखने चाहिए इसका विचार। अ० १४३।१४४ में कुब्जिका पूजन। अ० १४५ में मालिनी

मंत्र। अ० १४६ में अष्टाष्टक द्रव्य। अ० १४७ में त्वरिता पूजा। अ० १४८ में संग्राम विजय पूजा। अ० १४९ में लक्षकोटि होम।

वर्णाश्रमधर्म—अ० १५१ में मन्वन्तर, अ० १५१ में इतर वर्णोंके धर्म वर्णन। सब धर्मोंका श्रवण करना चाहिये। राजाओं पर प्रेम रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त अहिंसा, सत्य इत्यादि धर्म सार्व वर्णिक हैं। हत्यारों का वध करना चांडालों का काम है। स्त्रियों पर उपजीविका करना और उनका रक्षण करना यह वैदेहिकोंका काम है। अश्व सारथ्य का काम सूतका है। व्याधका काम करना पुल्कसाका काम है। राजाकी बंशावली गाना अथवा स्तुति करना भाटों (मागधों) का कर्तव्य है। रंगावतरण और शिल्पपर जीवन करना यह संतरासों का काम है। गाँवके बाहर रहना और मृतकोंके वस्त्र धारण करना यह चांडाल का काम है। चांडाल-अस्पृश्य हैं।

कष्टमें पड़े हुए गौ, ब्राह्मण, स्त्री, बालकोंके लिये जो अपनी देह तथा सर्वस्व अर्पण करता है वह इन बाह्यबर्गोंसे श्रेष्ठ समझा जाता है और उसको सिद्धि प्राप्त होती है।

गृहस्थ वृत्ति—अ० १५२ में गृहस्थवृत्ति। यद्यपि ब्राह्मणोंको आजीवन अपनी वृत्ति और धर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिये तथापि आपत्ति कालमें क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र वृत्तिका भी आश्रय करना धर्म से असंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य वाह्य वृत्तिका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

आपत्ति कालमें कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा, और व्याज बट्टा ब्राह्मणों की वृत्तिका साधन हो सकता है, किन्तु गोरस, गुड, निमक, लाख और मांस नहीं बेचना चाहिये। भूमि खोदने औषधि तोड़ने और पिपीलिकादिकों का नाश करनेसे जो पाप होते हैं उनका नाश यागादिक करनेसे हो जाता है। परन्तु इस यज्ञका फल किसानों को भगवानकी पूजासे ही प्राप्त होता है। आठ बैलोंसे एक हल जोतना उत्तम, ६ से मध्यम, ४ से अधम और दो से अधमाधम कहा गया है। इन किसानोंको क्रमसे धार्मिक, जीवितार्थी, नृशंस और धर्मघातक कहा गया है। अ० १५३ में ब्रह्मचर्याश्रमधर्म। अ० १५४ में विवाह। विवाहके समय क्षत्रिय स्त्रीको बाण, वैश्य स्त्रीको चाबुक और शूद्र स्त्रीको हाथमें कपड़ा पकड़ना चाहिये। अपत्यविक्रय का कोई भी प्रायःश्चित्त नहीं है। "नष्टे मृते प्रव्रजिते" यह पाराशरस्मृतिका श्लोक यहाँ भी दिया हुआ है। अ० १५५ में आचार। अ० १५६ में द्रव्य शुद्धि। अ० १५७ में प्रेतके संबंध में अशौच निर्णय। अ० १५८ में गर्भस्राव का अशौच निर्णय। इस ग्रन्थकार का कथन है कि अस्थि संचयके लिये ४,५,७,९ ये दिन अनुक्रमसे लेने चाहिए। परन्तु पराशर माधवमें ३।५।७।९ दिन माने गये हैं, और ऐसा मत है कि अस्थिसंचय गोत्रजोंके साथ करना चाहिये। ४ के विषय में उल्लेख विष्णु स्मृतिके सदृश ही किया है। अ० १५९ में संस्कृतादि शौच निर्णय। अ० १६० में वानप्रस्थाश्रम वर्णन। अ० १६१ में यतिधर्म। अ० १६२ में धर्म शास्त्र कथन। अ० १६३ में श्राद्ध कल्प वर्णन।

अ० १६४ में नवग्रह होम नानाविध वर्णन, "न स्त्री दुष्यति जारेण ....बलात्कारोप भुक्ताचेत्" बलात्कार से उपभुक्त स्त्री अथवा शत्रु हस्तगत स्त्री त्यागना नहीं चाहिये। वह ऋतुकाल में शुद्ध हो जाती है। कुछके मतसे योगकी व्याख्या "मन और इन्द्रिय का संयोग ही है" (विषयेन्द्रिय संयोगे काचियोगं वंदतिवै)। परन्तु ग्रंथकार इस मतसे बिलकुल सहमत नहीं है। असवर्णसे जबतक स्त्रीको गर्भ रहे तभी तक वह अशुद्ध है।

गर्भ नष्ट हो जानेपर रजके बाद वह स्त्री शुद्ध होती है। (अशुद्धातु भवेत् नारी यावत्छल्यं न मुञ्चति) अ० १६६ में वर्ण धर्मादि कथन अ० १६७ में ग्रह यज्ञ अयुतलक्ष कोटि होम। अ० १६८। १७४ में महापातकादि कथन और प्रायश्चित्त।

व्रत—१७५ से २०८ अध्यायतक व्रतोंका ही वर्णन है। अ० १७५ में व्रत परिभाषा। अ० १७६ में प्रतिपदाव्रत, अग्निव्रत। अ० १७७ में द्वितीयाव्रत अ० १७८ में तृतियाव्रत। अ० १७९ में चतुर्थीव्रत। अ० १८० में पंचमी व्रत। अ० १८१ में षष्ठीव्रत। अ० १८२ में सप्तमी व्रत। अ० १८३।१८४ में अष्टमीव्रत। अ० १८५ में नवमीव्रत। अ० १८६ में दशमीव्रत। अ० १८७ में एकादशीव्रत। १८८ में द्वादशीव्रत। अ० १८९ में श्रावण द्वादशीव्रत। अ० १९० मे अखंड द्वादशीव्रत। अ० १९१ में त्रयोदशी व्रत। १९२ में चतुर्दशी व्रत। अ० १९३ में शिवरात्रिव्रत। अ० १९४ में अशोक पूर्णिमाव्रत। अ० १९५ में वारव्रत। अ० १९६ में नक्षत्रव्रत-नक्षत्रको पुरुष मानकर पूजा करना चाहिये। अ० १९५ में दिवस व्रत। अ० १९८ में मासिकव्रत। अ० १९९ में अनेकव्रत। अ० २०० में दीपदान व्रत। इसकी तुलनाके लिये ऐसी व्रत-संबन्धी कथाओं का संग्रह पाठकों को व्रतकौमुदी इत्यादि धार्मिक ग्रंथोंमें मिलेगा। इस अध्यायमें 'देविका' नदीका

नाम है परन्तु यह कहाँ है इसका ठीक ठीक पता नहीं है।

अ० २०१ में नवव्यूहार्चन। अ० २०२ में पुष्प-वर्ग कथन। देवताओंकी पूजाके योग्य तरह तरहके पुष्प का वर्णन। अ० २०३ में नरक वर्णन अ० २०४ में मासोपमास व्रत। अ० २०५ में भीष्म पंचक व्रत। अ० २०६ में अगस्त्यार्घ्य कथन। अ० २०७ में कोमुद व्रत। अ० २०८ में व्रतदानादि समुच्चय।

दान मीमाँसा—अ० २०९ में दान परिभाषा कथन। अ० २१० में महादान विधि। अ० २११ में अनेक प्रकारके दान। जिनके पास दस गायें हैं उनको एक गौदान करना चाहिये। इस प्रकार दशांशका प्रमाण है। यहाँ उल्लिखितमहिष दान का और कहीं ज़िक्र नहीं मिलता। उसी प्रकार चान्दीका चन्द्रमा बनाकर मस्तक पर रखना और उसे ब्राह्मणको देना चाहिये।

अपनी लोहेकी प्रतिमा बनाकर देना चाहिये। भिन्न भिन्न धातुओंकी प्रतिमा बनाकर दान करने की विधि है—पुरुषकी प्रतिमा काले तिलकी बनानी चाहिये। दाँत चाँदीके, आँखें सोनेकी, और हाथमें तलवार होनी चाहिये, लाल वस्त्र परिधान करना चाहिये, शंखोंकी माला, पैरमें जूता, काला कम्बल ओढ़े हुए और बाँएँ हाथमें मांस, सोनेके अश्व पर बैठा हुआ होना चाहिये। ऐसा काल पुरुष माना गया है। ब्राह्मण को दासी अर्पण करना चाहिये (दासी दत्त्वा द्विजेन्द्राय)। बसव पुराणमें ऐसा वर्णन है कि बसव नामका राजा (जगमांस) साधुओंको बहुत सी वेश्यायें देता था। उसपर हँसना व्यर्थ है। अ० २१२ में मेरुदान, अ० २१३ में पृथ्वी दान। अ० २१४ में नाड़ी चक्र। अ० २१५ में संध्या विधि, गायत्री, जप और हवनके संबंधमें विचार किया गया है। अ० २१६-२१७ में गायत्री निर्वाण। अ० २१८ में राजधर्मका वर्णन। प्राचीन समयमें राज्याभिषेकके समय राजाको प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह सब धर्मके लोगोंका पालन पोषण करेगा। ऐसी प्रथा थी कि भिन्न भिन्न जगहोंकी मट्टी राजाके प्रत्येक अंगको लगायी जाती थी। पर्वतके शिखरकी मट्टी राजाके मस्तकको लगाई जाती थी। बिल (बांबी) की मट्टी राजाके कान पर, विष्णुके देवालयकी मट्टी राजाके मुखमें लगाई जाती थी। इसी प्रकार अन्य स्थानकी मट्टीका भी वर्णन है। जगह जगहकी मट्टीका वर्णन करते समय वेश्याके दरवाजे की मट्टी राजाके कमरमें लगाईजानेकाउल्लेख है। सब वर्णोंसे राजा का अभिषेक हो जानेपर राजाको शीशे और घी में अपना प्रतिविम्ब देखना चाहिये। विष्णु आदिका पूजन करना चाहिये। शय्या पर व्याघ्रचर्म बिछा रहना चाहिये। पुरोहितको चाहिये कि राजाके मधुपर्क देकर वस्त्र बाँधे। (पट्टबंध) राजाके मुकुट में पंचचर्म होना चाहिये। मुकुट धारण करते समय जिस प्रकार आजकल सिपाहियों की पगड़ियोंमें टोपी दिखाई देती है उसी प्रकार मुकुटमें चर्म बाँधना चाहिये (पंच चर्मोपरि ददेत्)। बैल के, सिंहके, बाघके अथवा चीतेके चर्म पर राजा को बैठना चाहिये। राजासे मन्त्री आदिका परिचय करा देना चाहिये। इसके उपरान्त ब्राह्मणों को दान इत्यादि देकर और अश्व तथा गजकी पूजा करके राजमार्गसे राजाकी बारात निकलनी चाहिये। अ० २१९ में अभिषेक मंत्र। इस मंत्रमें कुछ देव, ऋषि, पर्वत, देश, नदियोंके नाम आए हैं। उनमें बहुत सी नदियोंके अपरिचित नाम हैं जैसे—अच्छोदा, देविका, वरुणा, निश्चिरा पारा, रूपा, गौरी, वैतरणी तथा अरुणी इत्यादि। अ० २२१में सहायसंपत्ति अर्थात् अधिकारीमंडल अथवा राजप्रबन्धके लिये आवश्यक बहीखाते और उनपर अधिकारियोंकी योजना। राजाको राज्याभिषेक होनेपर शत्रुओंको जीतना चाहिये। राजाका सेनापति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिये। कोषाध्यक्षको रत्नों और हिसाब इत्यादि से भलीभाँति भिज्ञ होना चाहिये। गजाध्यक्षको जितश्रम होना चाहिये। उसे गजपरीक्षाका ज्ञान होना चाहिये। उसी प्रकार घुड़सवारोंका मुखिया अश्वशास्त्रमें निपुण होना चाहिये। (दुर्ग) किले का अधिकारी होशियार होना चाहिये। वैसेही शिल्पकार अपनी विद्याको पूर्ण सीखा हुआ होना चाहिये। मंत्री बुद्धिमान होना चाहिये। सभाके सदस्य धर्मको जाननेवाले रहने चाहिये। यंत्रमुक्त, पाणिमुक्त, अमुक्त, और मुक्तधारित, ये चार प्रकार के बाण और शस्त्र छोड़नेके हैं। आचार्य उपर्युक्त चारों प्रकारोंसे भिज्ञ होना चाहिये। प्रतिहारी नीति शास्त्रमें निपुण होना चाहिये। दूत मीठा बोलनेवाला और अति बलवान होना चाहिये। प्रतिज्ञाके लिये राजाको जो बीड़ा देनेके लिये नियत किया जाता था वह तृतीय प्रकृतिका होता था। सारथीके ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती थी। अतः वह पूर्ण-राजनिष्ठ होकर संधि, विग्रह, आदि षड् गुणोंसे युक्त तथा सेनादि विषय को जाननेवाला और राजाके रक्षणार्थ तलवार

धारण करनेवाला होना चाहिये। (सूदाध्यक्ष) आचारी अथवा रसोईदार पाकशास्त्रमें निपुण होना चाहिये। लेखकका अक्षर उत्तम होना चाहिये (अक्षरवित)। दौवारिक (ड्योढ़ीदार) चतुर अथवा वाक्पटु होना चाहिये। वैद्यको आयुर्वेदमें निपुण होना चाहिये। अंतःपुरका कर्मचारी वृद्ध होना चाहिये। अंतःपुरमें काम करनेवाली स्त्रियां ५० वर्षकी अवस्थासे अधिक और पुरुष ७० वर्षकी अवस्था से अधिक होने चाहिये। आयुधागारमें रहनेवाले मनुष्यको हमेशा सावधान रहना आवश्यक है।

राजाको नौकरों की परीक्षा कर नियुक्त करना चाहिये, अर्थात् धर्मिष्ठ को धर्मकार्यमें, शूरों को युद्धकर्ममें, निपुणों को अर्थकृत्यमें नियुक्त करना चाहिये। पुश्तैनी नौकरों को निकालना नहीं चाहिये। वनगजों को पकड़नेके लिये मंत्री को निपुणों की योजना करनी चाहिये। पुश्तैनी नौकरों को दायाद प्रकरणमें नियत नहीं करना चाहिये। क्योंकि "तत्र तेही समा मतः" (?) ऐसा उल्लेख किया है। शत्रुके घरसे भागकर यदि कोई अपने आश्रयमें आवे तो उसे (वे दुष्ट हों या सुष्ट हों) आश्रय देना चाहिये। दुष्टोंपर विश्वास नहीं रखना चाहिये। परराष्ट्रमें गये हुए गुप्तचरसे सब समाचार जान लेने पर उसका आदर करना चाहिये। नौकरोंके दो विभाग करने चाहिये। शत्रु, अग्नि, विष, सर्प, और आयुधोंके लिये विशेष नोकर रहने चाहिये। खराब नौकर एक तरफ रहने चाहिये। राजाके सब विभागोंमें जासूस रहने चाहिये। ये सौम्य, अपरिचित और उस विभागके लोगोंसे भी अपरिचित होने चाहिये। ये व्यापारी, मंत्रिक ज्योतिशी, वैद्य, तथा संन्यस्तके समान मालूमहोने वाले, तथा बलाबल जानने वाले होने चाहिये। इन लोगोंपर राजाको पूर्ण विश्वास न रखना चाहिये। किसी एकके शब्दपर विश्वास न रखना चाहिये। सेवकों अथवा प्रजा का क्रोध या प्रेम, गुण और अवगुण जानकर राजाको बर्ताव करना चाहिये। राजा को सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि लोगोंके लाभके लिये और प्रजाके हितके लिये ही वह बनाया गया है। अ० २२१ में अनुजीविवृत, अर्थात् नौकरकों राजासे किस प्रकार बर्ताव रखना चाहिये इस विषयके नियम दिये हैं। सेवक को राजाज्ञा शिष्यके समान पालन करनी चाहिये। राजासे प्रिय बोलना चाहिये। अप्रिय परन्तु हितकर एकांतमें बोलना चाहिये। द्रव्य का उपहार न करना चाहिये अथवा राजा की मानहानि न करनी चाहिये। राजाके वेष, भाषा, अथवा चेष्टा का अनुकरण न करना चाहिये। जिस मनुष्य पर राजाका रोष है उसका साथ अंतःपुराध्यक्षको (कंचुकी को) न करना चाहिये। राजाकी गुप्त बातें उसको भी गुप्तही रखनी चाहिये अपना चातुर्य दिखाकर राजाको अपना बना लेना चाहिये।

राजाके पुकारते ही चाहे कुछ आज्ञा की हो अथवा न की हो, तत्काल पूछना चाहिये कि "क्या आज्ञा है"। राजाके दिये हुए वस्त्र, अलंकार अथवा रत्न धारण करने चाहिये। जिस द्वारसे मुमानियत है उससे प्रवेश कभी न करना चाहिये। जँभाई लेना, थूकना, खाँसना, क्रोधित होना, पलंग पर बैठना, माथा चढ़ाना, जोरसे डकारना, वातासरण (पादना) इत्यादि राजाके समीप न करना चाहिये। अपने गुणों की प्रशंसा राजा को सर्वदा विदित होती रहे ऐसे मनुष्यों को रखना चाहिये। शाठ्य, लौल्य, पैशुन्य, नास्तिक्य, क्षुद्रता, चापल्य इत्यादि दोष उनमें न होने चाहिये। बहुश्रुत होना चाहिये। विद्या, और शिल्पमें उसे सदा तत्पर रहना चाहिये। वह कला जानने वाला होना चाहिये। राजाके पुत्र, स्नेहपात्रों तथा मन्त्री इत्यादि लोगों को नित्य नमस्कार करना चाहिये। प्रधान पर विश्वास न रखना चाहिये। राजा की इच्छा जानकर उससे समयानुसार बर्ताव करना चाहिये। राजाके बिना पूछे बोलना न चाहिये। आपत्तिमें भी राजा का काम करना चाहिये। थोड़ा देनेपर भी संतुष्ट रहना चाहिये। राजाकी स्तुति सुनतेही सन्तुष्ट होना चाहिये। समय समय पर राजा द्वारा निर्वाचित किये हुए लोगोंके पाससे हाल चाल लेते रहना चाहिये।

अ० २२२ में दुर्ग संपत्ति—राजाको दुर्गका आश्रय लेना चाहिये। इस दुर्गप्रदेशमें वैश्य शूद्रादिकोंकी अधिक बस्ती होनी चाहिये। यह दुर्गभूमि प्रायः शत्रुकी पहुँचके बाहरकी होनी चाहिये। इस जगहमें ब्राह्मणवस्ती थोड़ी ही होनी चाहिये। वह जगह देवमातृक न हो (जहाँ नदी, वर्षा अथवा कुँआ इत्यादिका पानी बहुत इकट्ठा हो जाता है उसे, देवमातृक कहते हैं) अर्थात् यह प्रदेश पहाड़ी होना चाहिये। पानीकी व्यवस्था करनी चाहिये। वहाँ शत्रुका प्रवेश न हो सकना चाहिये। सर्प, तस्कर इत्यादिका भय इस प्रदेशमें न होना चाहिये। दुर्गके छः प्रकार हैं। उनका वर्णन इस भाँति है—धनुदुर्ग, मही दुर्ग, नरदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, अंबुदुर्ग, तथा गिरिदुर्ग,।

इसमें गिरिदुर्ग महत्वका है, क्योंकि यह अभेद्य होना चाहिये।

शेष दुर्ग शत्रु भेद सकते हैं और जीत भी सकते हैं (सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यंचान्यभेदनम्) उपर्युक्त प्रदेशमें शहर बाज़ार तथा मन्दिर आदि बनानेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

अ० २२३।२५ में राजधर्म। महसूल, और काम काजकी व्यवस्था ठीक रखनेके लिये राजाको अधिकारीगण नियत करने चाहिये। गाँवका एक मुख्याधिकारी होना चाहिये उसपर इस गांवके अधिकारीको देख भालके लिये रखना चाहिये। दश ग्रामाधिकारी पर सौ ग्रामके अधिकारीको प्रभुत्व देना चाहिये। इसके बाद प्रान्ताधिकारी होना चाहिये। इसी प्रकार बड़े बड़े अधिकारियों की योजना करनी चाहिये।

उनके वेतन उनके कामके अनुसार होने चाहियें। अधिकारी वर्गकी व्यवस्था ठीक ठीक चल रही है अथवा नहीं, यह समाचार गुप्तचरों के द्वारा राजाको मिलता रहना चाहिये। ग्रामका अर्थ देहात समझना चाहिये। गांवके झगड़ोंकी व्यवस्था ग्रामाधिकारीको करनी चाहिये। यदि तय न हो तो दशग्रामाधिकारीको करनी चाहिये। इसी तरह राजा तक पहुँचकी व्यवस्था होनी चाहिये। इस व्यवस्थाका मूलतत्व देशकी सुरक्षता है। सुरक्षता ही राजाकी आर्थिक संपत्ति है, और आर्थिक संपत्तिसे ही प्रजामें अपने पुरुषार्थ और भयका सञ्चार होता है। राष्ट्रको कष्ट पहुँचानेवाला राजा नरकमें जाता है।

व्यवस्था—राजाको आयके प्रमाणसे छठवां हिस्सा लेना चाहिये (राजा षड्भागमादत्ते सुकृतादि दुष्कृतादपि)। सम्पूर्ण वसूली केवल इतनी ही होनी चाहिये। अर्थात् ऊँचे और नीचेका भेद इसमें न होना चाहिये। कर शास्त्रानुसार लगाने चाहिये। कर अथवा वसूल हुए द्रव्यको दो भागोंमें राजाको बाँटने चाहिये। एक भाग कोश में रखना चाहिये। (कोशे प्रवेशयेदर्द्धं, नित्यंचार्द्धं द्विजंददेत। निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात् सकलं तथा) शेष एक भाग ब्राह्मण को देना चाहिये।

ब्राह्मणको उस द्रव्यमेंसे क्रमसे ४, ८ और १६ वाँ भाग योग्यता, अयोग्यताके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय, और वैश्य को बांट देना चाहिये (चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशकं द्विजः। वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रेतु धर्मतः।)

असत्य बोलने वालेसे राजाको उसके द्रव्यका आठवां हिस्सा दंड स्वरूपमें लेना चाहिये (अनृतं तु वदन् दंड्यः सुवितस्यांशमष्टमः।) प्रनष्ट स्वामिकमृक्थं राजा-त्र्यब्दं निधापयेत्।) लावारिस का धन राजाको अपने पास तीन वर्ष अमानतमें रखना चाहिये। तीन वर्षमें यदि उस धनका वारिस मिल जाय तो उसकी पूँछ-ताछ कर उसको लौटा देना चाहिये। वारिस का निर्णय उसके रूप और संख्यासे करना चाहिये (?)। तीन वर्षके बाद लावारिस धन राजाको कोषमें जमा करना चाहिये। नाबालिग वारिसका धन राजाको अपने पास वारिसके बालिग होने तक रखना चाहिये। बालिग़ की व्याख्या बाल्यावस्था बीतनेके बादकी अवस्था है। जिस प्रकार राजाको नाबालिग का धन रक्षण करने का अधिकार है उसी प्रकार बालपुत्रा (जिसका पुत्र छोटा हो) निष्कुला, अनाथ, पतिव्रता, विधवा, (आतुरा) बीमार और "जीवंती" (?) इन स्त्रियोंका भी रक्षण करना चाहिये। उनके (वृत्तिकी) उपजीविका की जाबावदेही भी राजापर ही है। उपर्युक्त प्रकार की स्त्रियोंकी जिन्दगी खराब करने वाले बांधवों को राजासे दण्ड मिलना चाहिये। यह दण्ड चोरके समान होना चाहिये।

जेलके अधिकारियों का रोजानेका खर्च चोरसे बरामद हुए द्रव्यसे चलाना चाहिये। यदि चोरी न हुई हो और जो झूठही "चोरी हुई है" ऐसा कहे तो उसे "निसार्य" नामक दण्ड देना चाहिये। (अहृते योहृतब्रुयन्नतःसार्य्यो दण्ड एवसः।)

घरमें मिला हुआ द्रव्य मालिक यदि राजा को दे तो वह राजाका ही होता है। स्वराष्ट्रके व्यापार पर १० कर होना चाहिये। परराष्ट्रके व्यापार पर लाभ हानिके अनुसार कर लगाना चाहिये। (शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्यय प्रकाशकम् ज्ञात्वा संकल्पयेत्।) व्यापारी को जितना लाभ हो उस पर १० कर लेनाही चाहिये।

यदि व्यापारी उसे न दे तो वह दण्ड योग्य है। नौकरी करने वालों पर जो कर लगना चहिये उसका उल्लेख ठीक ठीक नहीं पाया जाता। इसी लिए ठीक ठीक कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता। स्त्रियों और सन्यासियों पर नौका व्यवहारके लिए कर नहीं लगता। यदि नौका (दासों की) केवटों की असावधानीसे नष्ट हो जाय तो उसकी हानि राजा को केवटसे वसूल करनी चाहिये। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट है कि आज कलकी ही तरह ठेकोंके नीलाम का सर्व

साधारणके लिये नियम उस समय भी रहा होगा। परन्तु ठेकेपर नौका-देना केवल राजाका ही काम था।

शूक अनाज पर १/६ भाग कर होना चाहिये। शूकधान्यमें बाजरा आदि हैं। शिम्बि अनाज पर १/८ भाग कर लेना उपयुक्त है। राज्यको वनके अनाज देश और कालके अनुसार काममें लाना चाहिये। बरी (एक प्रकारका चावल) ककुनी. सावाँ. देवभात, (एक प्रकारका चावल). पशु, और सोनेपर कर १/५ और १/६ भाग लेना चाहिये। सुगन्धित द्रव्य. औषधि, रस, मूल. फल. प्याज, पत्ता, शाक घास, बाँस, चमड़ा, बाँस की बीया (यह बिल्कुल गेहूँके समान होती है), बाँस या बेतोंके बर्तन, धातुके बर्तन, मधु, मांस, और घी आदि पर १/६ कर-भाग होना चाहिये।

केवल ब्राह्मण कर-मुक्त होते थे। श्रोत्रीय ब्राह्मणकी जीविका उसके गुणपर निर्भर रहती है। उसी प्रकार गुणी व्यक्तियोंको राजाश्रय अवश्य प्राप्त होना चाहिये। जो राजा धर्मपालन करता है उसकी आयु, द्रव्य, और राष्ट्र की वृद्धि होती है। कारीगरोंसे करके बदले वर्षमें एक मास राज्यकार्य कराना चाहिये। अध्याय २२४ में अन्तःपुरकी स्त्रियोंके रक्षणविधानका वर्णन है। यदि स्त्री-रक्षण एक वृक्षरूप कल्पित कर लिया जाय तो धर्म इस वृक्षका मूल, अर्थ इसीकी शाखायें और काम इसका फल होगा। इस त्रिवर्ग की प्राप्ति केवल स्त्री-रक्षण द्वारा प्राप्य है। इसी लिए अन्तःपुरकी स्त्रियों की रक्षा करना यह राजाके अनेक कर्तव्यमेंसे एक मुख्य कर्तव्य है। स्त्रियां कामाधीन हैं। अतः उनके लिये रत्न संग्रह करना चाहिये। विषयभोग बहुत नियमित रूपसे होना चाहिये। इसके बादके अध्यायमें कौनसी स्त्री अपने ऊपर आसक्त नहीं है यह जानने के लक्षण और उसे वश करनेके लिये थोड़ेसे उपाय और औषधि वर्णन की हैं।

अ०२२५में राजधर्म तथा राजपुत्रका शिक्षण। राज पुत्रको किसी एक ही विषयका ज्ञान न होना चाहिये। उसको धार्मिक, आर्थिक, कामिक, सांग्रामिक और शिल्प इत्यादि की पूर्ण शिक्षा देनी चाहिये। चापलूसों की संगतिसे उसकी रक्षा करते रहना चाहिये। तामसी, लोभी, अथवा अभिमानी लोगों की संगति न होनी चाहिये। राजपुत्रके चाल-चलन की पूरी पूरी खबर लगाने के लिये उसके शरीर-रक्षणके निमित्त बहुतसे सेवक रखने चाहिये। राजपुत्र को कष्ट न देना चाहिये। राजपुत्रके उपद्रव करने की शंका होते ही राजा को उसे युक्तिसे बंधन करना चाहिये। नम्र राज-पुत्रको सब अधिकारके पद देने चाहिये। द्यूत, शिकार, मद्य, इत्यादिसे उसे अलिप्त रखना चाहिये। दिनमें निद्रा, वृथा अभिमाना, बेअदबीसे बोलना, निंदा-दण्ड, कठोरता, द्रव्यका निरर्थक खर्चा, काम, क्रोध, मद, मान, लोभ इत्यादि दुर्गुणोंसे उसे बचाते रहनेकी व्यवस्था राजाको रखनी चाहिये। (बाँध) आकार उच्छेद, और दुर्गादिकों की टूट फूट होना अर्थनाश का द्योतक है। देश काला-दिकके विचारके विना दान अथवा निरर्थक खर्च करना अर्थदूषण है।

राजाको प्रथम तो क्रोधादि जीतकर नौकरों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहिये। तदनन्तर देशों को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। फिर बाह्य शत्रुओं को जीतना चाहिये। बाह्य शत्रु तीन हैं। निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ ठीक ठीक ज्ञात नहीं होता। "गुरुवस्ते यथा पूर्वं कुल्यानंतर कृत्रिमः। पितृपैतामहं मित्रं सामंतश्च तथा रिपोः। कृत्रिमंच महाभाग मित्रं त्रिविध मुच्यते" स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग दंड, कोष, और मित्र ये सात अंग मिलाकर राज्य कहलाता है। उपर्युक्त सात अंगोंमेंसे किसी एक भी अंगसे विद्रोह करने वालेको मृत्युदण्ड देना चाहिये। समयानुसार राजाको कठोर और कोमल होना चाहिये। राजाको नौकरोंके सम्मुख हँसना उचित नहीं है। हँसनेसे राजाका सेवकों द्वारा अपमान होनेकी आशंका है। लोकसंग्रहार्थ राजा को कार्यतत्पर होना चाहिये।

राजाको स्मितपूर्व बोलना चाहिये। दीर्घ-सूत्री राजा ठीक नहीं होता। परन्तु क्रोध, दर्प, मान, द्रोह, पाप तथा अप्रियके प्रति राजाको दीर्घ-सूत्री होना चाहिये (अर्थात् इनको शीघ्र ही अपने पास न फटकने दे)।

राजाकी चालचलनके नियम—अपना विचार किसी-से प्रकट न करना चाहिये। मन्त्रविचार (सलाह) अकेले में करना चाहिये। सर्वत्र विश्वास न रखना चाहिये। राजाको उजड्ड न होना चाहिये। राजाको विनयी होना चाहिये। राजाके कल्याणके उपाय इस प्रकार कहे गये हैं:—युद्धसे पीठ न दिखाना, प्रजाका पालन करना, ब्राह्मणोंको दान देना, कृपण, अनाथ तथा विधवाओंकी उप-जीविकाका प्रबंध। वर्णाश्रम व्यवस्था, तापसी लोगोंका पूजन, तपस्वियोंके वचनों पर भक्ति तथा विश्वास करना राजाका मुख्य कर्तव्य है। बगले

के समान अर्थचिंतन, सिंहके समान पराक्रम, चीतेके समान लूट, खरगोशके समान गमन, सूअरके समान दृढ़प्रहार, मयूरके समान चित्राकार, घोड़ेके समान दृढ़भक्ति, कोकिलके समान आलाप, काकके समान शंका, ये सब बातें राजामें विद्यमान होनी चाहिये। राजाको अज्ञात बस्ती में रहना चाहिये परीक्षा किये बिना भोजन और शयन न करना चाहिये, अज्ञात स्त्रीकी भेंट न लेनी चाहिये, और अज्ञात नावमें भी न बैठना चाहिये। राजाके राज्यकी शोभा और दृढ़ता केवल प्रजाके अनुराग और प्रेम पर ही अवलम्बित है।

सामादि उपाय कथन—अ० २२६ के प्रथम चार श्लोकोंमें देव और पुरुष वादमें पुरुषवादको अग्रगण्यत्व दिया गया है। शत्रुका दमन करनेके लिये चार उपाय इस प्रकार हैं—साम, दाम, दंड और भेद। सामके दो भेद हैं तथ्य और अतथ्य। अतथ्यका अर्थ आवश्यकतासे अधिक साम (शांति) है। यह साम साधुपुरुषोंमें अधिक होता है। इसीसे साधु लोगोंको दुष्टोंसे कष्ट पहुँचता है।

दूसरे प्रकारका आवश्यकतानुसार प्रसंग आने पर प्रयोग करना चाहिये। जिनमें परस्पर द्वेष हैं, या एक दूसरेसे अत्यन्त क्रोधित अथवा अपमानित लोगो में भेद करना बहुत ही सरल है। जातिमें भेद उत्पन्न करानेवाले को बड़ी सावधानीसे देखते रहना चाहिये। सभासदों, अथवा प्रधानपुत्रादिकोंके क्रोधको वशमें करके शत्रु पर विजय प्राप्त करना चाहिये। इन चारों उपायोंमें दाम अति उत्तम है। उपर्युक्त तीन उपायोंसे यदि शत्रुका दमन न हो तब दंडका प्रयोग करना चाहिये। दंडके समय सावधान रहना चाहिये। अदंड्यों को दंड न करना चाहिये और दंडयों को क्षमा न करनी चाहिये।

अ० २२७ में दण्ड प्रणयन (जुरमाना)— जुरमाने के लिये सुवर्णके परिमाणका प्रयोग किया गया है। उसका वर्णन इस प्रकार है—तीन जव=कृष्णल; पाँच कृष्णल=माष; छः कृष्णल= कषार्ध; सोलह माष=सुवर्ण; चार सुवर्ण=निष्क; दस निष्क=धरण।

दंड (जुरमाना) कमसे कम (प्रथम) २५० पण होना चाहिये (मध्यम) ५०० होना चाहिये और (उत्तम) अधिक सेअधिक १००० पण होना चाहिये। (असीतिभिर्वराटकैः पण इत्यभिधीयते) पण एक आनेके बराबर है।

चोरी न होते हुए भी चोरी हुई ऐसी जो झूठी अफवाह उड़ाता है राजाको उसे दंड देना चाहिये। झूठ बोलना अथवा दूसरे को झूठ बोलनेके लिये उत्साहित करना—इन दोनोंको पहले से दुगुनी सजा देनी चाहिये। झूठी गवाही देनेवालेको पहलेकी तरह ही शिक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मणकी शिक्षा करना उसे अपने देश से निर्वासित कर देना ही उपयुक्त है। यदि किसी की रखी हुई अमानत का कोई उपभोग करे तो उससे दण्डस्वरूप उसका मूल्य दिलवाना चाहिये। अमानत दबानेवाले और बिना अमानत रखे ही माँगनेवाले को चोरके समान दंड देना चाहिये।

जो व्यक्ति बिना पूँछे दूसरे मनुष्यके मालको बेचता है वहभी चोर ही के समान दण्डका भागी है। दूसरेके धनको रखकर जो व्यक्ति उसका ब्याज (सूद) नहीं चुकाता वह भी उपर्युक्त दण्डयोग्य है। किसीको धन देनेका वचन देकर यदि उसे पूरा न करे तो वह व्यक्ति आर्थिकदण्डके योग्य है। जो मनुष्य दूसरोंसे बिना वेतन कार्य्य करवाता है उसपर ८ कृष्णल जुर्माना होना चाहिये।

जो मनुष्य अकारण या बिना पूर्व सूचनाके नौकरको अपनी नौकरीसे अलग करता है वह भी पूर्वकथित दण्डाधिकारी है। दास विक्रयके व्यवसाई बेचे अथवा खरीदे हुए दासको दस दिनके भीतर वापस लौटा देने और लौटा लेनेके लिये एक दूसरेको बाध्य कर सकते हैं। यदि कोई कन्या वरको, बिना उसके गुणदोषोंके विवेचनके ही अथवा धोखेसे समर्पण की जाय तो कन्या अविवाहित ही समझी जायगी। यदि कोई अपनी कन्या एक मनुष्यको देकर फिर उसी कन्या का विवाह दूसरेके साथ करे तो उसको 'उत्तम' दण्ड अर्थात् १००० पण (पण=आना) जुर्माना करे। यदि कोई व्यापारी लोभवश किसी वस्तु को घूस लेकर बेचे तो उसे ६०० सुवर्ण मुद्रा दण्ड स्वरूप देना अनिवार्य होगा। जो व्यक्ति गौ रखने के हेतु किराया और पालनके लिये खर्चा लेकर उसकी रक्षा नहीं करता वह १०० सुवर्ण मुद्रा राज्यदण्ड देनेको बाध्य है।

गाँवका घेरा १०० धनुष अर्थात् ३०० सौ हाथ होना आवश्यक था। शहरका घेरा दुगना, तिगुना, अथवा कुछ ही अधिक होना चाहिये। इसीसे ज्ञात होजाता है कि तत्कालीन नगर कितने छोटे होते थे।

घेरेके चारों ओर बालियुक्त अनाजके पौधे रखना अनिवार्य है। उसकी रक्षाके हेतु बाड़ा इतना ऊँचा हो कि ऊँट भी उसे न देख सके।

ऐसे सुरक्षित अन्नको नष्ट करनेवालेको ५०० सुवर्ण जुर्माना देना होगा। यदि अनाज न हो तो बाड़ा नष्ट करनेवाला निरपराधी है। घर, तालाब, बाग, खेत, इत्यादिको जबरदस्ती ले लेनेवालेको ५०० सुवर्ण आर्थिक दण्ड-स्वरूप देना चाहिये।

अज्ञानमें भूल करनेवालेको २०० सुवर्ण जुरमाना करना चाहिये। मर्यादा उल्लंघन करनेवालेको २०० पण दण्ड होना चाहिये। ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियको २०० गुणा अधिक दण्ड होना चाहिये, वैश्यको क्षत्रियसे २०० गुणा अधिक और शूद्रको बंधन होना चाहिये। क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रकी निंदा करनेवाले ब्राह्मणको क्रमानुसार ५०, २५ और १२ पण दंड होना चाहिये। क्षत्रियकी निंदा करनेवाले वैश्यको पूर्ववर्णित दंड और शूद्रका जिह्वाच्छेद करना चाहिये। ब्राह्मण का उपदेश करनेवाले शूद्रको दंड करना चाहिये। और श्रुतदेशादिवितथी अर्थात् बहुश्रुत बनने वालोंको दुगना दंड करना चाहिये।

निरर्थक अथवा सज्जनोंको दोष देने वालोंको (उत्तम) दंड और अपने दोषको स्वीकार करने वालेको आधा दंड देना चाहिये। माँ, बाप, भाई श्वशुर, गुरु इत्यादि लोगोंको गाली देने वाला और गुरुको रास्ता न देने वाला १०० पण दंडके योग्य है। "अंत्यजातिर्द्विजातिंतु येनाङ्गेनापराध्नुयात् तदेवच्छेदयत्तस्यक्षिप्रमेवा विचारयन्।" अन्त्यजाति (नीच जाति) त्रैवर्णिकोंका जिस अङ्ग से अपराध करे उस अङ्गका छेदन करना चाहिये। सभामें बैठे हुए राजाके सामने गर्वसे थूकने वाले के होठ काट डालने चाहिये। उसी प्रकारसे अपशब्द कहने पर उसके अवयवच्छेदनका उल्लेख है। "यो यदंगं च रुजयेत्तदंगं तस्य कर्तयेत्"। सिंहासनारूढ़ राजाके सामने जमीन पर बैठा हुआ मनुष्य यदि अपना कोई अङ्ग खुजलावे तो उसका वह अङ्ग काटना चाहिये। गाय, घोड़ा, हाथी, ऊँट इत्यादि पशुओंका घात करने वाले लोगोंके हाथ पैर काटने चाहिये। वृक्षसे कच्चे फलोंका नाश करने वालेका सुवर्ण दण्ड है। जानकारी अथवा अनजानसे जो दूसरेका द्रव्य हरण करता है, सीमा स्थित अथवा राजमार्गके जलाशयों और कूपों का जो नाश करता है, उसे दुगुना दंड देना चाहिये। कुएँकी डोरी (रस्सी) या घटहरण करने वाला अथवा पौसरेका नाश करने वाला अथवा प्राणियों को मारने वाला "एक मास" के कारावासका पात्र है।

यह श्लोक मनुस्मृतिके आधार पर कुछ हेर फेर करके दिया है (यस्तुरज्जुं घटंकूपाद्धरेच्छिन्द्याच्च तां प्रपाम्। स दंडं प्राप्नुयान्मासं दण्ड्यः स्यात् प्राणिताडणे॥) दस अथवा अधिक कुम्भ अनाज हरण करने वालेको मृत्यु दंड देना चाहिये। मनुस्मृतिके टीकाकारने कहा है कि जितने कुम्भ चुराये हों उससे ११ गुना अधिक अनाज चोरसे वसूल करना चाहिये। सोना, चाँदी, उत्तम वस्त्र, स्त्री, अथवा मनुष्यको जो चुरावे उसको प्राणदण्ड देना चाहिये।

"येन येन यथांगेनस्तेनोनृषु विचेष्टते। तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥" मनुष्यको चुराते समय उसके जिस जिस अंगको कष्ट हुआ है चोरके उस उस अंगको काटना चाहिये। यदि ब्राह्मण शाकधान्यकी चोरी करे तो उसे अपराधी नहीं समझना चाहिये। किसी गाय अथवा ईश्वर के निमत्त चोरी करे तो उसे 'प्रथम' शिक्षा देनी चाहिये। घर, खेत चुराने वाला, स्त्री पर बलात्कार करने वाला, विषप्रयोग करने वाला, आग लगाने वाला, अथवा अस्त्र तान कर चढ़ाई करने वाला देहान्त शिक्षाका पात्र है। परस्त्रीसे संभाषण करने वाला, बिना आज्ञाके प्रवेश करने वाला दण्ड का पात्र है। स्वयंवर करनेवाली स्त्री दंडपात्र नहीं है। उच्च वर्णकी स्त्री से संबंध करने वाले नीच वर्णके मनुष्यको मृत्यु दण्ड देना चाहिये। "भर्तारं लंघयेद्यातांश्वभिः संघातयेत्स्त्रियम्।" पतिको त्याग कर निकलजानेवाली स्त्रीको कुत्तों से कटवा कर उसे प्राणदण्ड देना चाहिये। वैश्य स्त्री-गामी ब्राह्मण, अन्त्यज-गामी क्षत्रिय पूर्ण दंड के पात्र हैं।

सवर्ण दूषित स्त्री को "पिंडयात्रोपजीवि" करनी चाहिये। "ज्यायसा" दूषित नारी (वृद्धसे दूषित) को मुण्डनकी शिक्षा है। धनके लोभसे दूसरेके साथ गमन करने वाली स्त्री उस धनके दुगुनेकी दण्डपात्र है। भार्या, पुत्र, दास, शिष्य, भाई, अथवा सोदर अपराधी हों तो बेंतकी छड़ी से पीठ पर शिक्षा करनी चाहिये, मस्तक पर नहीं मारना चाहिये।

यदि प्रजाके रक्षणार्थ नियत किये हुए अधिकारियोंने घूस ली हो (रक्षार्थाधिकृत) तो उनकी सारी जायदाद ज़प्त कर उनको निकाल देना चाहिये। जिस काम पर राजा मनुष्यको नियुक्त करे और यदि उस काममें लोग बाधा डालें तो उनको भी उपर्युक्त शिक्षा देनी चाहिये। अमात्य अथवा न्यायाधीश यदि (प्राड्विवाक) अपना कर्तव्य अयोग्यतासे करे तो उसके लिये भी ऊपर

कहे हुए दण्डका विधान करे। गुरु-पत्नीगमन करने वाले, सुरापान करने वाले, चोरी करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, महत्पातकियोंको अनुक्रमसे भग, सुरापान, श्वपादके चिह्न उनके मस्तक पर बनाने चाहियें। आगेके श्लोकसे ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह दण्ड ब्राह्मणोंको ही दिया जाना चाहिये। क्योंकि आगेके श्लोकमें (शूद्रादीन्घातयेत् राजा पापान्विप्रान्प्रवासयेत् ॥ महापातकी नांवित्तं वरुणायोपपादयेत् ।) राष्ट्रमें नियत किए हुए अधिकारी या सामन्तोंसे मिलकर चोरी करने वाले चोरोंके और उनसे मिल जाने वाले अधिकारियोंके हाथ काटने चाहिये अथवा शूली पर चढ़ाना चाहियें। गांवमें जो चोरोंको वेतन देते हैं अथवा घूस देते हैं उनको ऊपर लिखे दण्ड देने चाहिये। तडाग, देवालय, आगार तथा राजमार्ग भ्रष्ट करनेवालेको दंड करना चाहिये। मासिककर समय पर न चुकाने वाले को ५०० पण दण्ड देना चाहिये।

समके साथ जो विषम चलाता है उसे "मध्यम" दण्ड देना चाहिये। व्यापारियोंसे घूस लेकर अवरोध करनेवालेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकार से "उत्तम" दण्डका विधान होना चाहिये। द्रव्यको दोष देने वाले और प्रतिच्छंद (?) बेचने वाले इन दोनोंको "मध्यम" दंड करना चाहिये। असत्यभाषी, कपटी, झूठी साक्षी देने वालेको दुगना दंड करना चाहिये। अभक्ष्य भक्षण करने वाले शूद्र अथवा ब्राह्मणको कृष्णल दण्ड करना चाहिये। कम माप करनेवालोंको और थोड़ा तौलने वालोंको "उत्तम" शिक्षा देनी चाहिये। विष देने वाली, अग्नि, पति, गुरु विप्र अपत्य का नाश करने वाली अथवा उनको फंसानेवाली स्त्री के नाक, कान, हाथ होठ तोड़ कर गायके साथ निकाल देना चाहिये। खेत, घर, गाँव, बन इत्यादिका नाश करने वालों अथवा राजस्त्रियोंसे गमन करने वालोंको काष्ठाग्निसे जलाना चाहिये। राजाज्ञामें कम अधिक करनेवालेको और पारदारिक को "उत्तम" दण्ड देना चाहिये। राजाके आसन पर अथवा राजाके रथमें बैठने वाला 'उत्तम' दंडका-पात्र है। न्यायसे जीतने पर भी अपनेको जो अजित कहता है वह 'उत्तम' दण्डके योग्य है। राजाको द्वंद्वयुद्धका आव्हान करने वालेको बध की शिक्षा देनी चाहिये। अपराधी यदि दंड करने वालेके हाथोंसे निकल भागे तो दंड देनेवाला दंडका पात्र है। इसके आगेके प्रकरणोंमें कुछ दंडोंका और भी वर्णन है।

युद्ध-यात्रा—अ० २२८ से २३३ में युद्धके लिये निकलने के पूर्व अथवा उसके बादके शुभा-शुभ चिन्होंसे जय-पराजय निर्णय करना। अ० २२८ में युद्ध यात्रा। योद्धा हृष्ट-पुष्ट होने चाहिये। जिस दिशामें भूकम्प होगा वह दिशा पराजय देने वाली होती है। उसी प्रकार केतुविषयक शकुनों को जानना चाहिये। शरीर स्फुरण, सुस्वप्नदर्शन से राजाको जय प्राप्तिकी आशा करनी चाहिये।

ऋतुके अनुसार सेनाकी योजना—वर्षाऋतुमें हाथी और पैदल जिसमें अधिक हों ऐसी सेनाकी योजना करनी चाहिये। हेमन्त और शिशिर (मार्गशीर्षसे फाल्गुन) में रथ और घोड़े जिसमें अधिक हों ऐसी सेनाकी योजना करनी चाहिये। बसन्त ऋतु अथवा शरद ऋतुमें चारों प्रकारकी सेनाकी योजना करनी चाहिये। सेनामें विशेषतः पैदल अधिक होने चाहिये।

युद्ध और शकुन—अ० २२९ में स्वप्न, शुभा-शुभ, दुःस्वप्न शान्ति। अ० २३०-३२ में शकुन के छः प्रकार वर्णित हैं। समय, देश, दिशा, कारण, शब्द और जाति ये शकुन उत्तरोत्तर अधिक फल देनेवाले हैं।

रात्रिचर, दिवाचर और उभयचर पशुपक्षियों के नाम यहाँ दिये हैं। जिस मार्गसे कौए अधिक जाते हैं उस ओरका देश शत्रुके हाथमें जाता है। अ० २३३ में यहाँ से जयपराजय अथवा यात्रा की योजना करना निरूपित किया है।

अ० २३४ में षाड्गुण्य— साम, भेद, दाम दंड इसका पहले उल्लेख किया ही जा चुका है। उसमें स्वदेश दंडका कुछ वर्णन दिया है। दंडके 'प्रकाश' और 'अप्रकाश' दो भाग हैं। उसमें से लूट-पाट, गांवकी नुकसानी, अनाजका हरण, अग्नि इत्यादि प्रकार पहिली तरह के हैं और विषप्रयोग, आग, गुण्डोंसे पिटवाना, अच्छा पानी बिगाड़ना, ये दूसरे प्रकारके हैं। युद्धमें शामिल होनेके पूर्व युद्ध से क्या हानि होगी इसका राजाको पूर्ण विचार करना चाहिये। नुकसान अथवा अनर्थ होना संभव हो तो शत्रुसे संधि करनी चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो अधिक अर्थ व्यय वाले दान ऐसे समय न करना चाहिये।

शत्रुसे कपट निम्नलिखित प्रकारसे करना चाहिएः—शत्रुके शिविरमें एक मोटे पक्षीके पूंछमें जलती लकड़ी बांधकर छोड़ना चाहिये, इसे शत्रु उल्कापात समझता है, और उसमें शंका और भय का सञ्चार होगा। उल्कापात बड़ा अशुभ माना जाता था। इस प्रकार अनेक उत्पात शत्रुओंको

दिखाने चाहिये। तपस्वियों द्वारा अथवा ज्योतिषियों द्वारा शत्रुका क्षय होगा ऐसी बातें शत्रुमें फैलाना चाहिये। शत्रुकी मृत्युके लिये अनेक उपाय करना चाहिये। ऐंद्रजालिक प्रयोग दिखाने चाहिये। शत्रु सेना पर रक्त वृष्टि करनी चाहिये। ईश्वरकी कृपा अपने पर विशेष हुई है ऐसा भासित करना चाहिये। राजप्रसाद अथवा ऊँचे शिखरों पर शत्रुओंके सिर लटकाने चाहिये। छः गुण इस प्रकार हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संशय।

राजाकी दिनचर्या—अ० २३५। दो मुहूर्त शेष रहने पर राजाको सो कर उठना चाहिये। पहले गुप्तचर को बुलाना चाहिये। आयव्यय श्रवण करना चाहिये। मल-मूत्रका उत्सर्ग, स्नान-सन्ध्या, देवपूजन कर सुवर्ण, धेनु इत्यादि दानधर्म करना चाहिये। तत्पश्चात् अनुलेपन करना चाहिये शीशेमें मुख देखना चाहिये, गुरूसे भेटकर उसका आशिर्वाद लेना चाहिये। अलंकार वस्त्रादि परिधान कर सभामें प्रवेश करना चाहिये। सम्पूर्ण कामका व्यौरा सुनकर उसका निर्णय करना चाहिये तब सभा समाप्त करनी चाहिये। व्यायाम करना चाहिये। शास्त्रों का अवलोकन करना चाहिये।

रणदीक्षा—अ० २३६। रणदीक्षा मिलने पर राजाको सेना सहित निकलकर एक कोसपर ठहर कर ब्राह्मणादिकों की पूजा करनी चाहिये। परदेश जाने पर उस देशके आचारानुसार राजाको बर्ताव करना चाहिये। वहाँके लोगों का अपमान न करना चाहिये। सेना की रचना सूची-मुखके समान होनी चाहिये। सेना थोड़ी रहने पर भी शत्रुको अधिक का ही भास करावे। सेनाकी रचना करते समय आगे कम पीछे अधिक सेना रखनी चाहिये। व्यूह रचना प्राणियोंके अंग और द्रव्यों के अनुसार करनी चाहिये। व्यूहके सामान्य १० नाम हैं जैसे—गरुड़, मकर, श्येन, अर्द्धचन्द्र, वज्र, शकट, मंडल, सर्वतो भद्रचक्र और सूची। सब व्यूहोंमें सेना पांच जगह विभक्त होती है। पाँचों भागोंमें चुने हुए योद्धा एक दो अवश्य रखने चाहिये और शेष उनके संरक्षणार्थ रखने चाहिये। राजाको स्वयं युद्ध न करना चाहिये। सेनासे एक कोस दूर रहना चाहिये "मूलच्छेदे विनाशः स्यान्न युद्धेच स्वयंनृपः। सैन्यस्यपश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महिपति.॥" योद्धाओं को आश्वासन देते रहना बड़ा आवश्यक है।

यदि सेना का मुख्य भाग कमजोर हो जाय तो राजा को वहाँ नहीं ठहरना चाहिये। सेना अधिक हो चाहे थोड़ी, व्यूह भेदकी योजना समझ करही करनी चाहिये। व्यूह सबको मिलकर एक साथही तोड़ना चाहिये। शत्रुका व्यूह प्रथम शिथिल करे फिर मौका पाकर उसे तोड़ना चाहिये। व्यूह तोड़नेवाले का रक्षण बड़ी सावधानीसे करना चाहिये। हाथीके पादरक्षणार्थ चार योद्धा होने चाहियें, रथके रक्षणार्थ चार ढाल तलवार सहित घुड़सवार होने चाहियें। धनुर्धारियोंके साथ उतने ही ढाल वाले तथा उनके पीछे अश्व होने चाहियें। अश्वके पीछे रथ, हाथी, पैदल, अनुक्रमसे एकके पीछे एक होने चाहियें। नाकों पर सर्वदा शूर होने चाहियें। शूर लोगोंके सिर्फ कंधेही दिखलाई देने चाहिय। आगे वाले अर्ध-श्लोकका अर्थ स्पष्ट है। (शूराग्प्रमुखतो दत्वा स्कंधमात्र प्रदर्शनम्, कर्तव्यभीरु संघेन शत्रु विद्रावकारकम्।)

शूरोंके लक्षण—लम्बा शरीर, शुकके समान नाक, प्रेम दृष्टि, (अजिम्हेक्षण) संहतभ्रू, संतापी, कलहप्रिय, नित्य सन्तुष्ट, आदि शूरोंके लक्षण हैं। मृतकोंके शव युद्धभूमिसे दूर करना पैदलों का काम है। उसी प्रकार रसद, पानी, आयुध इत्यादि योद्धाओंके पास पहुँचाना भी इन्हीं का काम है। हाथी का काम टक्कर लड़ने का है। शत्रुसे स्वसेना का रक्षण करना, एकत्रित सेना को तितर बितर करना, बहादुरों का कर्तव्य है। शत्रु को भागनेके लिये बाध्य करना धनुर्धारियों का काम है। संघटित सेना को छिन्न-भिन्न करना, तथा सेना को एकत्रित करना, रथियों का काम है। तटादिकों को भेद करना हाथियों का कर्तव्य है। विषम (पहाड़ी अथवा ऊँची नीची जमीन को विषम कहते हैं) भूमि पैदलोंके लिये उत्तम है परन्तु रथोंके लिये उपयोगी नहीं है। हाथी के लिये दलदलकी भूमि उत्तम है। ये सब रणभूमिके लक्षण देखकर राजा को सेना की व्यवस्था करनी चाहिये।

योद्धाओंको सर्वदा उनके नाम तथा कुलकी प्रशंसा करके उत्तेजित करना चाहिये। धर्मनिष्ठ राजाकी सर्वदा जय होती है। युद्ध बराबरीका होना चाहिये। उदाहरणार्थ—हाथीसे हाथी, पैदलसे पैदल, रथसे रथ इत्यादि। प्रेक्षक निःशस्त्र, अथवा पतित लोगोंको रणभूमिमें प्रवेश नहीं करना चाहिये। शत्रु शांत, निद्राभिव्याप्त, नदी अथवा बनमें फँसा हो तो कपट युद्ध करना चाहिये। "शत्रु मारे गये, उनका नाश हुआ"

इत्यादि उच्च स्वरसे चिल्लाते रहना चाहिये (बाहु प्रगृह्यविक्रोशेत् भग्ना भग्ना)। सहायतार्थ नई सेना का आना, शत्रु-सेनापतिका युद्धमें मारे जाना इत्यादि उत्साहित करनेवाले समाचार अपनी सेनामें फैलाना चाहिये। शत्रुको पकड़ने पर यदि प्रधान की ओरसे भेंट (रत्नादि) आवे तो स्वीकार करना चाहिये। शत्रुकी भी स्त्रियोंका रक्षण करना चाहिये। शत्रुको पकड़कर छोड़ देना चाहिये। उससे युद्ध न करना चाहिये। पुत्रके समान उसका पालन करना चाहिये। देशाचार कभी तोड़ना नहीं चाहिये। विजय प्राप्त कर ध्रुव नक्षत्र पर घर लौटकर ब्राह्मणोंकी पूजा करना चाहिये। उनसे आशीर्वाद लेना चाहिये। योद्धाओं के कुटुम्बके पालनपोषणकी योग्य व्यवस्था रखनी चाहिये। युद्धमें पाया हुआ द्रव्य नौकर, सेवक और योद्धाओंमें बाँट देना चाहिये।

अ० २३७ में श्रीस्तोत्र। अ० २३८ में रामने जिस नीतिको लक्ष्मणसे कहा था उस नीतिका सामान्य वर्णन है (नीति और धर्म)। अ० २३९ में राजधर्म। इसमें राजाके और साधुओंके गुणका वर्णन है। (विनीतत्व धर्मकता साधोश्च नृपतेर्गुणः) इसके बाद पुरोहित आमात्य इत्यादि के वर्णन संक्षेपमें दिये हैं। अ० २४० में राजा के षाड्गुण्य। राजाके मुख्य मन्त्रणामण्डलमें अन्य १२ राजा होने चाहियेंः—शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्ष्णिग्राह आक्रंद, आसार, अवनय, इत्यादि। संधि सोलह प्रकारकी हैंः-कपाल, उपहार, संतान, संगत उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मा, उपग्रह, परिक्रमा, छिन्न, परदूषण तथा स्कंधोपनेय आदि।

इन सोलह प्रकारोंमें से चार ही मुख्य हैं—परस्परोपकार, मैत्र, सम्बंध और उपहार। निम्न बीस प्रकारके मनुष्य सन्धिके अयोग्य समझे गये हैं—बाल, वृद्ध, दीर्घरोगी, बन्धुवहिष्कृत, भीरु, डरपोक, लुब्ध, लुब्धजन, विरक्त, अत्यन्त विषयी, अनेकचित्त-मन्त्र, देव-ब्राह्मण-निन्दक, दैवोपहतक, दैवनिन्दक, दुर्भिक्षव्यसनोपेक्त, बल-व्यसन-संकुल, स्वदेशस्थ, बहुरिपु, बहुकाल-मुक्त, सत्य धर्मविरोधी। एक दूसरेकी बुराईसे ही विग्रह उत्पन्न होता है। शत्रु पाँच प्रकारके माने गये हैंः—सापत्न, वास्तुज, स्त्रीज, वाग्जात् और अपराद्ध। विग्रह सोलह प्रकारके हैं।

अध्याय २४१ में सामादि। मन्त्रणा-शक्ति प्रभाव और उत्साह पर ही निर्भर मानी गई है। मन्त्र ५ प्रकारके माने गये हैंः—अज्ञात विषयों का ज्ञान, विदित वस्तुओंका निश्चय, दुविधा वाली बातोंकी शंकानिवृत्ति, अन्त तक परिणाम को देखना, देशका विचार करते हुए सम्पत्तिका विचार। मद, प्रमाद, काम, सुप्त तथा प्रलाप मन्त्रणाके नाश करनेवाले हैं। प्रगल्भ, स्मरण शक्तिवाला, वाग्मी, शस्त्र और शास्त्रमें तत्पर, कार्य्यमें पूर्ण अभ्यास (अभ्यस्तकर्मा) किया हुआ ही राजाकी सेवायोग्य है। दूतमें निम्न-लिखित गुण अवश्य होने चाहिये—बिना समझे बूझे शत्रुके सामने खड़े न होना चाहिये, सभामें न जाना चाहिये, शत्रुका बल देखकर ही उससे विरोध करना चाहिये। राजाको प्रत्येक कार्य्यके लिए उचित कालका ध्यान रखना चाहिये। रागा-परागकी दृष्टिसे अथवा मुखाकृति को देखकर ही हृदयकी इच्छा समझ लेना चाहिये। गुप्तचरको व्यापारी, किसान, भिक्षुक, अथवा बहुरूपिया का रूप समयानुसार धारण करना चाहिये। मन्त्र, मन्त्रफल-सिद्धि, कामकाजका निरीक्षण, आय-व्यय (जमा-खर्च), दण्डनीति, शत्रुका प्रतिशोध, व्यसन का प्रतिकार, राजा तथा राज्यकी सुव्यवस्था—ये आमात्य (प्रधान) के धर्म हैं।

यदि आमात्य व्यसनी हो तो कार्य नियमित रूपसे कदापि नहीं चल सकता। अतः इसका ध्यान रखना चाहिये। 'हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनं प्रजया भवेत्। तथान्ये द्रव्य निचया हन्ति सव्यसना प्रजा॥' इस श्लोकका अर्थ स्पष्ट नहीं होता, किन्तु भाव इसका निम्नलिखित विदित होता है—सोना, अनाज, वस्त्र प्रजाके पास पूर्ण रूपसे होना चाहिये और इसीका प्रजाको ध्यान रखना चाहिये। दूसरी वस्तुओंके फेरमें पड़ी हुई प्रजा व्यसन को प्राप्त होती है। आमात्यको उचित है कि पीड़ित प्रजाकी रक्षा, कोष तथा दण्डकी सुचारु व्यवस्था करता रहे। उपरुद्ध, परिक्षिप्त, अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, श्रान्त, दूर-यात, नवागत परिक्षीण, प्रतिहत प्रहताग्रहर, प्राश्यनिर्वेद, भूमिष्ट, अनृतप्राप्त, कलभगर्भ, निक्षिप्त, अन्तःशल्य, विच्छिन्न, विविधासार, शून्य मूल, अस्वास्थ, संहत, भिन्नकूट, दुष्पार्ष्णिग्राह, ये सैन्यव्यसन कहे गये हैं। इन शब्दोंका अर्थ सावधानीसे करना चाहिये। यन्त्र, प्राकार, परिखा इत्यादिका टूटना, शस्त्रोंकी न्यूनता, निर्बल सेना की भरती करना इत्यादि दुर्व्यसन हैं।

राजाका निवास और राज्यकोश सेनाके मध्य में सुरक्षित रखना चाहिये। सामके चार भेद

हैं। दान पाँच प्रकारके कहे हैं, भेद तीन हैं और तीन ही प्रकारके दाम हैं। किसका किस अवस्था में और किस अवसर पर प्रयोग करना चाहिये, इसका वर्णन संक्षिप्तमें आगे दिया गया है।

अध्याय २४२ में राजनीति। सेना ६ प्रकारकी होनी चाहिये—मौल, भृत, श्रेणि, सुहृत, द्विषत् और आटविक। मौल-खानदानी पुश्तैनी तथा शास्त्रवेत्ता (देखिये मनुस्मृति ७, ४५।) भृत-लायक और स्वामिभक्त। श्रेणि-सुहृद-मित्र। द्विषत्-शत्रु। आटविक-जंगलोंसे भली भाँति परिचित। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रख कर ही सेनामें मनुष्यों को भरती करना चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, ये सेनाके भाग अथवा अंग हैं। क्रमसे आवश्यकतानुसार सेनामें नियुक्ति होना चाहिये।

अब हमें व्यूह और सेनाकी रचनाका निश्चय करना है। नदी, पर्वत, अरण्य, दर्रे, घाटियाँ आदि भयानक स्थानों पर सेनापतिको स्वयं ही सेना लेकर जाना चाहिये। 'नद्याद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत्। सेनापतिस्तत्र गच्छेत स्वयं व्यूहीकृतै र्बलैः।' शुक्रनीतिमें यही श्लोक पाठान्तर करके दिया है। (शुक्र नीति अध्याय ४ प्र० ७)। सेनानायक सबसे आगे होना चाहिये। उसके निकट ही धैर्य्यवान शूर बीर उपस्थित हों। सेनाके मध्यमें कलत्र, स्वामी कोष इत्यादि रहना चाहिये। उभय पार्श्वमें घोड़े,घोड़े के बाद रथ,रथ के बाद हाथी, और हाथियोंके दोनों ओर जंगलसे परिचित सेना (आटविक) होनो चाहिये। सेनापतिका पीछे होना उपयुक्त है। इसी प्रकारकी सन्य-रचना आवश्यक है।

आर्तलोगोंको आश्वासन देते हुए सुसज्जित सेना सहित निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना चाहिये। रणारम्भमें व्यूह रचना निश्चित करना चाहिये। पूर्वगामी सेनाकी रचना इस प्रकार होनी चाहिये। सन्मुखसे भय होनेपर दोनों ओर मकर, श्येन सूची या वीरचक्र आदि व्यूहोंमेंसे किसीकी भी रचना होनी चाहिये। पीछेके भागमें भय हो तो पीछे शकट व्यूह लाभकारी है। पार्श्व-भागमें भय हो तो वज्र व्यूह रचे और चारों ओरके लिये सर्वतोभद्र व्यूह अत्यन्त उपयोगी है। युद्ध दो प्रकारके हैं—प्रकाशित और अप्रकाशित। अप्रकाशित युद्धमें छावनीके रक्षकोंको विनष्ट करना चाहिये। पीछा करती हुई सेनासे अपनी सेना आगे बढ़ा ले जाकर उसके एकत्रित होने पर मारना चाहिये। असावधान पाकर चारों ओरसे अर्थात्, आगे पीछे और दोनों पार्श्वसे आक्रमण करे और आटविक सेना को पहले लड़ावे। तदनन्तर वाहक-सेनाकी योजना करनी चाहिये। छावनी, गांव, शहर, प्रजादिक को विश्वास दिलाकर सेनासे हमला कराना चाहिये। हमला केवल रात्रिमें ही न होना चाहिये, बल्कि दिनमें भी करना चाहिये। रात्रिमें जब शत्रु निद्रा-देवी की गोदमें पड़े रहते हैं उस समय सशस्त्र सैनिकों और हाथियों की योजना करनी चाहिये। गजदल का उपयोग वनप्रवेश करनेमें होता है। एकत्रित सेना को तितर-बितर करने, तितर-बितर सेना को एकत्रित करने, अभिन्न सेनाका भेद-करने और मित्रसंधान करनेके काममें रथ उपयोगी होता है। वन, दिशा, मार्ग की खोज करना, (बीवधासार लक्षण) शत्रुके मार्गका अथवा उसके रसदका पता जानना, अनुयाइयों में हलचल मचाना (अनुयायीनां प्रसरण) जरूरी कामों को शीघ्रतासे करना, (दिनानुसरण) हतोत्साहोंको बल देना या सहायता भेजना, शेष अथवा पीछेकी सेनाका नाश करना, ये घुड़सवारों के काम हैं। पैदल सर्वथा शस्त्रोंसे सुसज्जित रहने चाहिये। शिबिरका शोधन, स्वच्छता बस्तिकर्म, मलशोधन, ईंटा पत्थर, पेड़ काँटेदार वृक्ष,झाले, बिल इत्यादिको ठीक और साफ करनेका काम पैदलोंका है। पैदलोंको ज़मीन भरपूर देनी चाहिये, अर्थात् बाहर जाने आने अथवा भागते समय रास्ता खोज निकालनेके लायक होनी चाहिये। पैदलोंके लिये जमीन कठिन (कड़ी) न होनी चाहिये। तथापि झाड़ी, ईंटा पत्थर वाली ऊँची नीची जमीन, छोटे छोटे पहाड़ अथवा पहाड़ियोंमें पैदल बड़े उपयोगी होते हैं। रेगिस्तान और दलदलका प्रदेश घुड़सवारोंके लायक नहीं हैं। कीचड़, पेड़ अथवा ऊँची नीची जमीन रथ-दलके उपयुक्त नहीं है। झाड़ी, लता, निर्झर, बड़े बड़े पर्वत, समभूमि व कीचड़से रहित प्रदेश गजदलके लायक होता है।

राज्यके सम्बन्धमें "प्रतिग्रह" शब्दका अर्थ अथवा व्याख्या इस भांति है कि व्यूह के शेष छः अंग नष्ट हो जाने पर (छः अंग आगे दिये हैं) सेनाको आश्वासन देकर लड़ाना। इसीको प्रतिग्रह कहते हैं। प्रतिग्रहके विना व्यूह खण्डित मालूम देता है। प्रतिग्रहके विना युद्ध करना अनुचित है। प्रतिग्रह शब्दकी व्याख्या इस प्रकार दी है कि 'उरस्यादीनिभिन्नानि प्रतिगृह्णन्वलानिहि ॥ प्रतिग्रह इति ज्ञातो राजकार्यान्तरक्षमः ॥" राजाका सर्वस्व उसके कोष पर

निर्भर रहता है। इसलिये कोष सर्वदा राजाके समीप रहना चाहिये। कोष योद्धाओंके काममें लाया जाता है। जैसे कोष ही से योद्धाको शत्रुके नाशके बदले इनाम देना चाहिये। युद्ध में योद्धाके हाथ से यदि राजा मारा जाय तो उसे १००००० द्रव्य मिलना चाहिये। यदि राजाका पुत्र मारा जाय तो ५०००० द्रव्य देना चाहिये। (द्रव्य यह शब्द सामान्यवाची देख पड़ता है)। सेनापती, गज योद्धा इत्यादि प्रमुख-वीरोंके मारनेवालेको ५०००० द्रव्य अथवा उसका परिश्रम देखकर देना चाहिये। व्यायामविनिवर्तनसे (पूर्ण रीतिसे कोलाहल करते हुए) किन्तु सेनाकी अड़चन और सुविधा का ध्यान करके युद्ध करना चाहिये। इसमें संकर और संकुल शब्द भिन्न भिन्न अर्थके हैं। पहलेका अर्थ भीड और दूसरेका अर्थ एकदम भीड़ करना है। महासंकुल युद्धमें हाथीकी योजना करनी चाहिये। एक घुड़सवारकी बराबरीके लिये तीन पैदल चाहिये। एक हाथीकी बराबरीके लिये १५ पैदल और तीन घुड़सवार होने चाहिये। यही विधान रथका भी है।

व्यूहके मुख्य अङ्ग सात हैं:—उर, कक्ष, पक्ष, मध्य, पृष्ठ प्रतिग्रह तथा कोटी। बृहस्पतिके मतानुसार व्यूहके अङ्ग उर, दक्ष, कक्ष, और प्रतिग्रह हैं, और शुक्राचार्यका मत है कि इसमें कक्ष न होना चाहिये। (स्मृति समुच्चयमें दिये हुए औशनस् और बृहस्पति-स्मृतिमें यह विषय नहीं है)। आपसमें वैमनस्यका ध्यान करते हुए युद्ध करना चाहिये और एक दूसरेका रक्षण करना चाहिये। व्यूहके बीचमें सेना थोड़ी होनी चाहिये। उरकी जगह प्रचंड हाथीकी योजना करनी चाहिये। कक्षाके स्थानपर रथ, पक्षपर हाथीकी सेना—इस प्रकारकी व्यूह-रचना को "अंतर्भेद" व्यूह-रचना कहते हैं।

रथोंकी जगह घुड़सवार अथवा घुड़सवारों को जगह पैदल या रथोंकी जगह हाथियोंको लड़ाना चाहिये। व्यूहके सात अङ्ग पहले ही लिखे जा चुके हैं।

व्यूह रचना से तात्पर्य है सशस्त्र सेना की नियमपूर्वक रचना करना। व्यूह के सात अंगों में सेना किस प्रकार खड़ी करनी चाहिये उसी योजनाके अनुसार उनके नाम होते हैं। उनमें से मुख्य ये हैं:-मण्डल, असंहत, भोग और दंड। मंडल=संपूर्ण व्यूहमें तत्परता। (मण्डलः सर्वतोवृत्तिः) असंहत=व्यूहके पृथक् पृथक् भागमें युद्ध तत्परता। (पृथक् वृत्तिर संहत;) दण्ड=व्यूहके सर्पाकार भागमें युद्ध तत्परता (तिर्यग्वृत्तिस्तुदण्डस्यात्)। भोग=व्यूहके सरलाकार भाग में युद्धतत्परता (भोगोन्यावृत्तिरेवच)। भोग और दण्डकी रचनामें भेद है। वह इस प्रकार है—प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, कुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, संजय, विशाल, सूची, स्थूणाकर्ण, चमूमुख, सर्पास्य और वलय।

भोगके भेद—अतिक्रान्त, प्रतिक्रान्त, विपर्यय, स्थूणपक्ष, धनुष्पक्ष, द्विस्थूण, दण्ड, ऊर्ध्वांग, द्विगुण, द्विचतुर्दण्ड, गोमूत्रिका, अहिसञ्चारी, शकट और मकर।

मण्डलके भेदः—दण्डपक्ष (शकट) व्यतिकीर्ण।

संहतके भेद—अग्रानीक, उर्ध्वांग, वज्रभेद।

मण्डलके दो प्रकार हैं। असंहतके छः प्रकार हैं और भोगके पाँच प्रकार हैं। दण्डक व्यूहके कक्ष, पक्ष, उर अंग हैं।

व्यूहसम्बन्धी इन श्लोकोंका अर्थ दुर्बोध होनेके कारण श्लोक ही उद्धृत कर दिए हैं। स्यात् कक्षपक्षो रस्यैश्च वर्तमानस्तु दण्डकः। तत्र प्रयोगो दण्डस्य स्थानं तुर्येण दर्शयेत्। स्याद्दण्ड सम पक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः। भवेत्सपक्ष कक्षाभ्यांमतिक्रान्तो दृढः स्मृतः। कक्षाभ्यां च प्रतिक्रान्त व्यूहोऽसह्यः स्मृतो यथा। कक्षपक्षा बधः स्थाप्योरस्यैः क्रान्तश्च खातकः॥ द्वौ दण्डौ वलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः। दुर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः॥. कक्षपक्षोरस्यै भोगो विषयं परिवर्जयेत्। सपचारीगोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः। विपर्ययोऽमरः प्रोक्तः सर्व शत्रु विमर्दकः। स्यात् कक्षपक्षोरस्याना मेकीभावस्तु मण्डलः। चक्रपद्मादयोभेदा मण्डलस्य प्रभेदकाः। एवं च सर्वतोभद्रो वज्राक्ष वरकाकवत्। अर्धचन्द्रश्च शृंगाटो ह्यचलो नाम रूपतः। व्यूहा यथा सुखं कार्य्याः शत्रूणां बल वारणाः।

युद्ध सम्बन्धी शास्त्रका जो भाग यहाँ उधृत किया गया है उससे उस कालकी युद्धपद्धतिके ज्ञानके साथ ही साथ यह भी ज्ञात हो जायगा कि उस कालकी अपेक्षा हमारा युद्ध-शास्त्र-सम्बंधी ज्ञान कितना परिमित है।

स्त्री-पुरुष लक्षण—अ० २४३ में पुरुष लक्षण। ये लक्षण पढ़ने योग्य हैं। अ० २४४-२४५ में स्त्री लक्षण दिये हैं।

चँवर और शस्त्रास्त्र—चँवरके लक्षण—चँवरकी मुठिया सोनेकी होनी चाहिये। मोर, हंस, शुक, बगुला इत्यादि पक्षियोंके पंख चँवरके लिये उप-

युक्त हैं। मिश्रित पंख निषिद्ध हैं। छत्रकी दंडी ३ से ८ वर्ष पुराने भद्रासन वृक्षकी होनी चाहिये। वह ५० अंगुल ऊँचा और उसका घेरा तीन हाथ होना चाहिये। उसपर स्थान स्थान पर सोने का काम उसकी सुन्दरता की वृद्धि करता है।

धनुष—तीन द्रव्योंका होना चाहिये—धातु, सींग या लकड़ी। उसी प्रकार धनुषकी प्रत्यञ्चा के लिये तीन द्रव्य शास्त्रोक्त हैं—वंश, भंगा (अवाड़ी या तागा), त्वचा (ताँत)। लकड़ीका धनुष चार हाथ लम्बा होना चाहिये। दूसरे द्रव्योंका भी कम अधिक प्रमाण दिया है। मुष्टि-ग्राह, (मुट्ठीमें पकड़ने लायक) स्वल्पकोटी, त्वचाशृंग, लोहमय आदि उसके भेद हैं। धनुष का आकार स्त्रीकी भृकुटीके समान होना चाहिये। सींगके धनुषमें चांदीके बिन्दु होने चाहियें। कुटिल, स्फुटित, और छिद्रयुक्त धनुष दोषयुक्त माना गया है।

धातुमय धनुष—यह सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा इत्यादि किसी भी धातुका होना चाहिये। शृङ्गमय धनुष—यह भैंसे, शारभ, अथवा रोहीके सींगोंसे बनाना चाहिये। काष्ठमय धनुष—यह चन्दन, बेत, छाल इत्यादिसे तय्यार करना चाहिये, किन्तु सबसे उत्तम धनुष बाँसका ही होता है। बाँस को शरद ऋतुमें लाना चाहिये। तीर भी बाँसका ही होना चाहिये। उसके अग्र-भागमें सोने, चाँदी अथवा लोहेका नोकीला फल लगा होना चाहिये।

'नन्दक' खड्ग—इसकी उत्पत्तिकी कथासे ही इसका नाम रखा गया है। मेरु पर्वत पर जिस समय ब्रह्मा यज्ञ कर रहे थे, उस समय लोह दैत्य ने वहाँ पहुँचकर उपद्रव मचाना आरम्भ किया। जब ब्रह्माने अग्निकी स्तुति की, तब अग्निसे एक खड्गधारी पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने अपनी तलवारसे ही उस राक्षसका बध किया, जिससे सबको असीम आनन्द हुआ। इसीसे उस तल-वारका नाम 'नन्दक' पड़ा। अन्तमें नन्दकखड्ग भगवानने ले लिया। खड्गके कई भेद दिये हैं। खटीखट्टर—कदाचित् जिस गाँवमें बनता था उसीके नामके आधार पर यह नाम पड़ा है। यह देखनेमें सुन्दर होता था। वार्षिक-(कायाच्छिद) शरीरके छेदने योग्य। सूर्पारक—यह बड़ा मज-बूत होता है। वंग—(तीक्ष्णच्छेद) गहरा घाव करने में समर्थ होता है। (दीर्घः समधुरः शब्दो यस्य खड्गस्य सः उत्तमः तलवार लम्बी और झंकारयुक्त होनी चाहिये। ५० अंगुल उत्तम। २५ अंगुलकी मध्यम, १२ अंगुलकी अधम समझी जाती है। तलवार का अग्रभाग कमलके समान होना चाहिये। धार तीव्र होनी चाहिये। काह्लेरके पत्तेके समान हो तो अति उत्तम है। इसका रङ्ग घीके समान होना चाहिये। इसकी कांति बिजलीके समान चकाचौंध करनेवाली होनी चाहिये। काक और उलूक के सदृश इसमें चमक होनी चाहिये। अपना मुख इसमें नहीं देखना चाहिये। और न इसका मूल्य ही किसीसे कहना चाहिये।

रत्नपरीक्षा—अ० २४६। वज्र, मरकत रत्न, पद्मराग, मौक्तिक इन्द्रनील, महानील, वैदुर्य, गंधशस्य, चन्द्रकांत, सूर्यकांत, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजपट्ट, सौगांधिक, गज, शंख, गोमेद, रुधिराक्ष, भल्लातक धूली, मरकत, तुत्थक, सीस, पीलु प्रवाल, गिरीवज्र, भुजंगमणि, वज्रमणि टिट्टिभ, पिंड, भ्रामर, उत्पल, इत्यादि इनके मुख्य भेद दिये हैं। इस प्रकरणको विचार शुक्र नीतिमें भी किया है, और उसकी परीक्षा जरा विस्तृत रूपसे दी है। अ० २४७ में वास्तुलक्षण। वास्तुमें विशिष्ट देवताओंकी स्थापना। अ० २४८ में पुष्पादि पूजाफल।

धनुर्वेद—अ० २४९ धनुर्वेद। रथ, हाथी घोड़े और पैदल चार प्रकारके योद्धा होते हैं। योद्धा-ओंकी क्रिया-पद्धति पांच प्रकारकी है—यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और बाहुयुद्ध (नियुद्ध)। शस्त्र और अस्त्र-ये युद्धके दो साधन हैं। युद्ध दो प्रकारके हैं—विश्वसनीय और कपटयुद्ध।

यंत्रमुक्त—बाण तथा छोड़ने वाले अस्त्रोंका प्रयोग इत्यादि करना। पाणिमुक्त—पत्थर, तोमर इत्यादि हाथसे फेंकना है। मुक्तसंधारित—अस्त्र, शस्त्र द्वारा शत्रुकृत प्रहारोंसे अपनेको बचाना तथा उनके छोड़े हुए अस्त्रोंको पकड़ना। ढाल इत्यादिका भी इसमें वर्णन है।

अमुक्त—तलवार इत्यादि फेंक कर प्रहार करनेको अमुक्त कहते हैं। नियुद्ध—शस्त्रोंके बिना ही युद्ध करनेको नियुद्ध कहते हैं।

धनुर्युद्ध उत्तम, प्रास मध्यम और खड्ग निकृष्ट युद्ध है। धनुर्वेद सिखाने वाला मुख्य गुरु ब्राह्मण, तत्पश्चात् क्षत्रिय, अन्तमें शूद्र, होना चाहिये। शूद्रका मुख्य अधिकार युद्ध करनेका है। सेनामें अपने ही देशके लोगोंको भरती करना चाहिये। ये वचन ध्यानमें रखने योग्य हैं।

सैनिक शिक्षा-पद्धति—(कवायद) समपदस्थान-पैरके अँगूठे, घुटने और हाथकी अँगुलियोंको

मिलाकर नीचेकी ओर दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये। वैशाख स्थान-सीधे और तने हुये घुटनों पर हाथ की अँगुलियोंको रखना चाहिये। मंडल स्थान—हंसकी पंक्तियोंके समान करके उसमें एक बित्तेका अन्तर रखना चाहिये। आलीढ—हलके आकार के समान घुटने और जाँघ रहना चाहिये। इसमें ५ अंगुलका अन्तर होना चाहिये। विपर्यस्त—उपरोक्त लक्षणोंके विपरीत क्रिया। जातस्थान—बाँयें घुटनेको टेढ़ा करके दाहिनेको सीधे तना हुआ रखना। इसमें ५ व १२ अंगुलका अन्तर होना चाहिये। दण्डायत—दाहिने घुटनेको टेढ़ा करके बायेंको सीधा रखना। विकटस्थान भी इसी भाँति समझना चाहिये। केवल अन्तर दो हाथका होना चाहिये। सम्पुटस्थान—दोनों पैर ऊँचे करके घुटनोंको पूरा पूरा फैलाना। स्वास्तिक स्थान—दण्डके समान सीधे पैरोंको रखकर उनको फेरना। इस क्रियामें अन्तर २६ अंगुल होना चाहिये। ये सब क्रियाएँ ज्यादातर धनुर्धारियोंके लिए होती हैं। वन्दना करनेके पश्चात् धनुष ग्रहण करना चाहिए। धनुषका एक कोना जमीन पर टेक कर प्रत्यञ्चा चढ़ानी चाहिए। 'फलादेश' भूमि पर स्थित करना चाहिये। धनुष को तौलना चाहिये। कलाइयाँ और हाथ घुमाकर प्रत्यञ्चा पर बाण लगाने चाहिये। धनुषका विन्यास १२ अंगुल होना चाहिये। आगेके आधे श्लोकमें कहा है कि प्रत्यञ्चाकी शक्तिके अनुसार ही वह खींचनी चाहिये। धनुषको नाभि पर टेक कर बाण नितम्ब पर रखना चाहिये। हाथ कान तक खींचना चाहिये। चुटकी सधी हुई होनी चाहिये। दक्षिण स्तनकी ओर बाण होना चाहिये; बाण ऊपर नीचे, भीतर बाहर एक समान होना चाहिये। टेढ़ा, चञ्चल, मोटा, पतला होना दोषका लक्षण है। सारथीको त्रिकोणमें बैठना चाहिये। कन्धे झुके होने चाहिये। गर्दन निश्चल और मस्तक ''मयूरांचित'' होना चाहिये। (मयूराञ्चित का लक्षण सारङ्गदेवने संगीत रत्नमें दिया है।) मस्तक, मुख, नाक कन्धे सीधे किन्तु ठुड्डी और कन्धोंमें तीन अंगुलका अन्तर होना चाहिये. यही उत्तम जाना गया है। मध्यम दो और निकृष्ट एक अंगुल कहा गया है। अंगूठा और उसके पास वाली अँगुलीसे बाण निकालना चाहिये। बाणको प्रत्यञ्चा पर चढ़ा कर बाणकी लम्बाईके प्रमाणमें खींचना चाहिये। उपरोक्त सम्पूर्ण विधिको ''आमुक्त'' कहते हैं। दृष्टि और चुटकीको साध कर ही लक्ष पर बाण चलाना चाहिये। बायें हाथसे बाण छोड़नेको 'उच्छेद' कहते हैं। केवल निशाने पर ही ध्यान रखना 'मध्यम' गिना जाता है। उत्तम तो वह है कि लक्ष के साथ ही साथ हाथ और बाण पर भी पूर्ण ध्यान रहे। इसी भाँति उत्तम धनुष ४, मध्यम ३॥ और निकृष्ट ३ हाथका होता है। मुख्यतः तो उपरोक्त वर्णन केवल पैदलों ही के लिये है, किन्तु यही सब नियम और व्यवस्था घुड़सवार, रथ और हाथीके लिये भी हो सकती है। अ० २५० में भी धनुर्वेद ही का वर्णन है। धनुर्विद्या सीखते समय पहले यज्ञ भूमि पर धनुष 'सुनिर्धौत' रखना चाहिये, मांसका हवन करना चाहिए। धनुष, गदा आदि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। निपुण योद्धाको एकचित्त होकर बाण हाथमें लेना चाहिये। (तूण) तरकश पीठमें बाँधना चाहिये। वह बाँये अथवा दाहिने बगलमें लटकाना चाहिये, बाण खुला रखना चाहिये। तदन्तर तरकसमें से बाण निकालना चाहिये। वह दाहिने हाथमें लेना चाहिये। दाहिने हाथसे बाण बीचसे पकड़ कर बांयें हाथसे कक्षा और धनुष पर चढ़ाना चाहिये। धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाने पर बाण पुंखकी ओरसे धनुष पर चढ़ाना चाहिये। सिंहकर्णके समान पुंखको तान कर (सिंह कर्ण यह पुंखका विशेषण है कि क्रियार्थ माना जाय, यह शंका है)। बायें कान तक ले जाना चाहिये। बाणोंको बांए हाथके बीचकी अँगुलीसे पकड़ना चाहिये। ध्यान लक्षकी ओर रख मुष्टि और दृष्टी समरेखामें रखनी चाहिये और प्रत्यञ्चा दाहिने कानकी ओर खींच कर बाण छोड़ना चाहिये। दंड प्रहारके समान चन्द्रक (१६ अंगुलका बाण) माथेमें मारना चाहिये। इसका अभ्यास सावकाश करना चाहिये। इस चतुर्वेध अभ्यासके पूर्ण होने पर क्रमसे तीक्ष्ण, परावृत्त, गत, निम्न, उन्नत ऐसे लक्ष्योंका अभ्यास करना चाहिये। (इस अभ्यास क्रमका आज कल गोली चलानेके अभ्याससे बहुत कुछ साम्य है)। यह धनुर्वेदके अभ्यासकी पहली सीढ़ी है। यह अभ्यास बढ़ते बढ़ते दो तीन वेध एकही समय में हो सकते हैं। इसके बाद १३ से १७ श्लोक तकका अर्थ ठीक ज्ञात नहीं है। (अ० २५१) धनुर्विद्याके अभ्यासकको निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान रखना चाहिये। अभ्यासक जितहस्त, जितभक्ति, जितदृष्टि, और लक्ष्य-साधक होना चाहिये। इस प्रकार धनुर्विद्याका अभ्यास होने पर वाहन पर बैठ कर इन बातोंका अभ्यास करना चाहिये।

पाश—पाशका वर्णन संक्षिप्त ही है। पाश दस होने चाहिये। पाशकी डोरी कपास, मूँज, (मूँज एक प्रकारकी घास है।) तांत अथवा पेड़ के मजबूत छालकी बनानी चाहिये। पाश बांये हाथमें लेकर दाहिने हाथसे फेंकना चाहिये। पाश को कुण्डलाकृत कर मस्तक पर फेंकना चाहिये। चर्मवेष्टित और तूणान्वित मनुष्यों पर इस पाश का प्रयोग करना चाहिये। वल्गित, प्लुत और प्रव्रजित, ऐसी अवस्थामें पाशका प्रयोग करना चाहिये। शत्रुको प्रथम जीत कर बादमें पाश डालना चाहिये। (कहीं कहीं पर श्लोकोंका अर्थ स्पष्ट न होनेसे भाव भी स्पष्ट नहीं हुआ है)।

तलवार—तलवार बांई ओर बांधनी चाहिये। बाएँ हाथसे म्यान पकड़ कर दाहिने हाथसे तलवार निकालनी चाहिये। तलवार ६ अंगुल चौड़ी होनी चाहिये। लम्बाई अथवा ऊँचाई ६ हाथकी होनी चाहिये। वर्ण (कवच) लोहेकी पतली शृंखला (शलाका) और तारोंसे गुहकर तैयार करना चाहिये। कवचके भिन्न भिन्न प्रकार हैं।

भाता चमड़ेका होना चाहिये। वह मजबूत और नया होना चाहिये। उपरी भाग टेढ़ा ऊपरकी ओर झुका होना चाहिये।

सोटोंका उपयोग—दाहिने हाथमें (डण्डा) लगुड़ लेकर तान कर मारना चाहिये अथवा दोनों हाथों से मारना चाहिये। (उभाभ्यामथ हस्ताभ्याम् कुर्यात् तस्य निपातनम्।) बध बहुतही सफाईसे होना चाहिये। [अक्लेशेन ततः कुर्वन्वधे सिद्धिः प्रकीर्तिता।]

धनुर्वेद—अ० २५२। आयुध, ढाल, तलवार, पाश, शूल, तोमर, गदा, परशु, मुद्गर, भिंदीपाल, लगुड़, वज्र, पट्टिश, कृपाण, क्षेपणी, धनुष, बाण, चक्र ये आयुध हैं। ढाल तलवारकी क्रियायें ३२प्रकार की हैं। इनके नाम ये हैं—भ्रान्त, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, प्लुत, संपात, समुदीश, श्येनपात, आकुल, उद्धूत, अवधूत, सव्य, दक्षिण, अनालक्षित, विस्फोट, करालेन्द्र, महासख, त्रिकराल, निपात, विभीषण, भयानक, प्रत्यालीढ, आलीढ, बराह, लुलित, समग्र, अर्ध, तृतीयांश, पाद, पादार्ध, वारिज इत्यादि।

पाशक्रिया—परावृत, अपावृत, गृहीत, लघु, ऊर्ध्वक्षिप्त, अधःक्षिप्त, संधारित, श्येनपात, गजपात, ग्राह-ग्राह्य—ये ग्यारह प्रकार पाश धारण के हैं।

पाश फेंकनेके प्रकार—ऋजु, आयत, विशाल, तिर्यक् और भ्रामित।

चक्र—छेदन, भेदन, पात, भ्रमण, शमन, विकर्तन और कर्तन।

शूल-आस्फोट, क्ष्वेदन, आंदोलिक, भेदत्रास, आघात।

तोमर—ऋजु-घात, भुजा-घात, पार्श्व-घात, दृष्टि-घात।

गदा—आवृत, परावृत, पादोद्धात, हंसमर्द, विमर्द।

मुद्गर—ताड़न, छेदन, चूर्णन, भिंदिपाल, संभ्रान्त, विश्रान्त, गोविसर्ग। लगुडी (लकड़ी) की क्रियायें भी वैसी हैं।

वज्र—अन्त्य, मध्य, परावृत्त, निदेशान्त।

कृपाण—हरण, छेदन, घात, भेदन, रक्षण, पातन स्फोटन।

क्षेपणी—त्रासन, रक्षणघात, बलोद्धरण और आयत।

गदायुद्धमें विशेषतः शारीरिक क्रियाओंकी आवश्यकता होती है। उनका वर्णन इस भाँति है—सप्तांग, अवदंश, वराह, उद्धतक, हस्तावहस्तमाली, एकहस्तावहस्तक, विहस्त बाहुपाश, कटिरेचित, कोद्गत, उग्, ललाट।

गदायुद्धकी हस्त-क्रियाके सामान्य लक्षणः—करोद्धृत, विमान, पादाहति, विपादिक, गात्रसंश्लेषण,शांत, गात्रविपर्यय, ऊर्ध्व प्रहार, घात, गोमूत्र, पादक, तारक, दंड, कवरी बंध, तिर्यक्बंध, अपामरी, भीमवेग, सुदर्शन, सिंहक्रांत, गजाक्रांत, गर्दभाक्रांत। इसमेंका बहुतसा भाग दुर्बोध और पारिभाषिक शब्दोंसे भरा हुआ है। प्रायः ये अब लुप्त हो चुके हैं।

नियुद्ध—बाहुयुद्ध, आकर्षण, विकर्ष, ग्रीवाविपरिवर्त, पर्यासित, विपर्यासित, पशुमार, अजाविक, पादप्रहार, आस्फोट, कटिराञ्चित, गात्र-श्लेष, स्कन्धगत, महीज्याजन, उरुललाटघात, विस्पष्टकरण, उद्धत, अवधूत, तिर्यङ्मार्गगत। इसमें के विशेषणोंका अर्थ लगाने योग्य है।

गज-युद्ध—गजारोही, गजस्कंध, अवक्षेप, अपरांगमुख, देवमार्ग,अधोमार्ग, अमार्ग, गमनाकुल, यष्टिघात, अवक्षेप, जानुबंध, भुजाबंध, गात्रबंध, पिपृष्ट, सोदक, शुभ्र भुजावेलित। यह हाथी परके योद्धाओंकी युद्ध-क्रिया है।

हाथीके संरक्षणार्थ दो अंकुश धारण करनेवाले, एक गर्दनपर बैठनेवाला, दो स्कंधों पर बैठे हुए धनुर्धारी अथवा ढाल तलवारधारी होने चाहिये।

प्रत्येक रथ और घुड़सवारके रक्षणार्थ तीन

घुड़सवार और धनुर्धारी रहने चाहिये। धनुर्धारियोंके रक्षणार्थ चर्मधारक रहना चाहिये।

अ० २५३ में व्यवहारिक विषय हैं। इसके नियम और विचार-पद्धति धर्मशास्त्रके समान विचार करने योग्य हैं। अ० २५४ में ऋण देनेके नियम हैं। अ० २५५ में दिव्यप्रमाण दिया है। अ० २५६ में दाय विभाग प्रकरण। अ० २५७ में सीमाबिवादादि निर्णय। अ० २५८ में वाक्पारुष्यादि प्रकरण। (Hindu Law) आजकल हिन्दुओंके लिये जो कानून प्रचलित हैं वह बहुत अंशमें इसीके आधार पर हैं। विस्तारभयसे इसका वर्णन नहीं दे रहे हैं।

जादू टोनेंमें वेदोंका उपयोग—अ० २५९ ऋग्विधान। यों तो प्रत्येक कार्यके लिये ही, किन्तु विशेष कर अभिचारके लिये जिन ऋग्वेदके मन्त्रों का उपयोग हुआ है उन्हें ऋग्विधान कहते हैं। गायत्री जप, मेधाकर्म, सदस्पति तीन ऋचायें हैं। आगे मृत्यु-नाशक नौ ऋचायें, यात्रा निर्भय होने के लिये 'ते पंथा' वाली ऋचा और निरोग होने के लिये, 'मित्रप्राशपुरन्दरम्' की ऋचा है। एक मन्त्र ऐसा है जिसके पढ़नेसे जाति-श्रेष्ठत्व प्राप्त होता है। इन्हीं सबका वर्णन ऋग्विधानमें है। इस भाँति अन्य तीन वेदोंके भी विधान हैं।

अ० २६० में यजुर्विधान। इसके पूर्वके अध्यायमें फल-प्राप्तिके लिये जो हवन किये जाते हैं उनमें किन भिन्न भिन्न हविर्द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये उसका वर्णन दिया है। शत्रु विद्वेषके हवनके लिये काक और उल्लूके पंखोंको काममें लाना चाहिये। ऋग्विधानमें तो केवल ऐन्द्रजालिक माया का ही उल्लेख आया है किन्तु यजुर्वेदमें तो उच्चाटन विधिका भी प्रयोग आया है। अ० २६१ में सामविधान। इसमें अंजन, मोहन इत्यादिका भी वर्णन आया है। अ० २६२ में अथर्वविधान और अ० २६३ में उत्पात शान्ति का उल्लेख है।

उपासना विषय—अ० २६४ में देवपूजा, वैश्वदेव बलि-वर्णन। अ० २६५ में दिग्पालादि स्नान। अ० २६६ में विनायक स्नान, स्वप्नमें अनेक अपशकुन होनेपर उसके परिहारार्थ स्नान। अ० २६७ में माहेश्वर स्नान, लक्ष कोटादिकोंका वर्णन। अ० २६८ में निरांजना विधि। अ० २६९ में छत्रादि प्रार्थना। अ० २७० में विष्णुपंजर।

राजकीय तथा साहित्यक इतिहास—अ० २७१ में वेद शाखादि कथन। अ० २७२ में पुराण दानादि माहात्म। अ० २७३ में सूर्यवंश। अ० २७४ में सोमवंश। अ० २७५ में यदुवंश वर्णन। अ० २७६ में कृष्णके द्वादश संग्राम। अ० २७७ में राजवंश वर्णन। तुर्वशों की कथा है। यह वंश-वर्णन केवल पाण्डवों तकका ही है।

आयुर्वेद—(अध्याय २७९-३०५) इनमें मनुष्य-वैद्यक, पशु वैद्यक वृक्ष वैद्यक, और बीच बीचमें भिन्न भिन्न विषय हैं। अ० २७९ में सिद्धौषधालय। अ० २८० में सर्वरोगहरण औषधि। मुख्यतः व्याधि चार प्रकारकी हैं-शारीरिक, मानसिक आगन्तुक (बाहरी) और सहज। अ० २८१ में रसादि लक्षण, सोमज रस, स्वादु, अम्ल, लक्ष तथा अग्निज-कटु तिक्त और कषाय। अ० २८२ में वृक्षायुर्वेद। अक्षवृक्ष उत्तरमें, वटवृक्ष पूर्वमें दक्षिण में आम्र, पश्चिममें अश्वत्थ वृक्ष लगाना चाहिये। नीबू, अशोक, पुनागड़, शिरीष, प्रियंगव, अशोक, कदली, जामुन, मौलसरी, अनार, इन वृक्षोंको प्रातःकाल और संध्याके समय पानी देना चाहिये।

उखाड़कर फिरसे लगाए हुए वृक्षको वर्षाऋतु में यदि जमीन सूखी हो तो उसे रात्रिमें भी पानी देना चाहिये। उत्तम २० हाथ, मध्यम १६ हाथ और कनिष्ठ १२ हाथ—यह वृक्ष लगानेका प्रमाण है। यदि वृक्षको फल न आवे तो शस्त्रसे उसकी कलम करनी चाहिये। वृक्षको फल आता हो परन्तु वह परिपक्व नहीं होता हो तो उसमें बायबिरंग और घी, खादमें मिलाकर डालना चाहिये। तथा हुलगे, उड़द, मूँग, तिल, सत्तू और घीका चूर्ण कर ठंढे पानीमें मिलाकर वृक्षको देना चाहिये। इस क्रियासे वृक्षोंमें फूल और फल उत्तम आते हैं।

वृक्षोंमें पुष्प फलादिकों की वृद्धि होनेके लिये वृक्षको बकरीकी विष्ठा, सत्तू, तिल, गोमांस, और पानी सात रात्रि देना चाहिये। वृक्षोंकी वृद्धि मछलियोंके पानीसे होती है। वृक्षोंकी कीड़ी नाश करनेके लिये बायबिरंग, चावल, मछलियोंका मांस पानीमें मिलाकर वृक्षको देना चाहिये।

अ० २८३ में अनेक रोगोंका नाश करनेवाली औषधियाँ हैं। अ० २८४ में मंत्ररूपी औषधियाँ। अ० २८५ में मृतसंजीवन सिद्धियोग।

अ० २८६ में मृत्युञ्जय योग औषधियाँ, अ० २८७ में गज चिकित्सा। लम्बी सूँड़ और बड़े उच्छ्वासवाले हाथी "प्रशस्त" कहलाते हैं। हाथी को २० अथवा १८ नख होने चाहियें। उनको जाड़ेमें मद आना चाहिए। दाहिना दाँत ऊँचा,

और शब्द मेघके सदृश होना चाहिये। कर्ण विशाल और उसपर सूक्ष्म बिंदु होने चाहिये। तदनंतर हाथीको कौनसी औषधियाँ देनी चाहिये इसका विचार किया है।

अ० २८८ में अश्ववाहन सार। इसमें घोड़े का वेग, चलनेका ढंग, घोड़ा कैसा शिक्षित होना चाहिये—इसका उल्लेख है। अ० २८९ में अश्व-चिकित्सा, औषधि। अ० २९० में अश्व शान्ति। अ० २९१ में गज शांति। अ० २९२ में गवायुर्वेद, तथा मन्त्र परिभाषा। अ० २९४ में नाग लक्षण, सर्पादिकोंकी जातियाँ और उनके प्रमाण।

विष वैद्यक—(अ० २९५ से २९८) अ० २९५ में दंश चिकित्सा। अ० २९६ में पंचाग रुद्र विधान; अ० २९७ में विष-हरण करनेके मन्त्र और औषधियाँ। अ० २९८ में गोनसादि चिकित्सा। अ० २९९ में बालादि-ग्रह-हर बालतंत्र। अ० ३०० में ग्रहादि पीड़ा शमनार्थ मंत्र। अ० ३०१ में सूर्यार्चन। अ० ३०२ में अनेक मंत्र औषधि कथन। अ० ३०३ में अंगाक्षरार्चन।

मन्त्र उपासना विषय—अ० ३०४ में पंचाक्षतादि पूजा मंत्र। अ० ३०५ में विष्णु नाम। अ० ३०६ में नृसिंहादि मंत्र। अ० ३०७ में त्रैलोक्यादि मोहन मंत्र। अ० ३०८ में त्रैलोक्य मोहिनी लक्ष्म्यादि पूजा। अ० ३०९ में त्वरितादि पूजा। अ० ३१०-३११ में त्वरिता मूल मंत्र। अ० ३१२ में त्वरिता विद्या। अ० ३१३ में नाना मन्त्र। अ० ३१४ में त्वरिता ज्ञान। अ० ३१५ में स्तंभनादि मंत्र। अ० ३१६ में नाना मन्त्र। अ० ३१७ में सकलादि मंत्रोद्धार। अ० ३१८ में गण पूजा। अ० ३१९ में वागेश्वरी पूजा। अ० ३२० में मंडल पूजा। अ० ३२१ में घोरास्त्रादि शान्ति कल्प। अ० ३२२ में पाशुपत शांति। अ० ३२३ में षडंगान्य घोरास्त्राणि। अ० ३२४ में रुद्र शांति। अ० ३२५ में रुद्राक्षादि लक्षण और धारण, अशांकादि मंत्र। यह मंत्र शास्त्रका ही भाग है। अ० ३२६ में गौर्यादि पूजा। अ० ३२७ में गौर्यादि महात्म्य।

छन्द, काव्य, नाटक, नृत्य, शिक्षा, अलंकार। (अ० ३२८—३४८) अ० ३२८-३२९में ग्रंथकार का कथन है कि छंदसार पिंगलोंके ग्रंथसे उतारा गया है—(छंदोलक्ष्ये मूलजैस्तैः पिंगलोक्तम् यथा क्रमम्) अ० ३३० में छंदःसार। अ० ३३१ में छंदकी जाति। अ० ३३२ में विषम वृत्त। अ० ३३३ में अर्ध समवृत्त। अ० ३३४ में समवृत्त। अ० ३३५ में प्रसाद वर्णन। अ० ३३६ में शिक्षा (आधुनिक शिक्षा की तुलनामें बहुतही कम है। कुल २२ श्लोक हैं और उनमें भी कुछ श्लोकों के तीन चरण शिक्षाके विषयमें नहीं हैं") अ० ३३७ में काव्यादि लक्षण। अ० ३३८ में नाटक निरूपण। अ० ३३९ में रस निरूपण। अ० ३४० में हत्या, अङ्गविक्षेप कर्म निरूपण। अ० ३४१ में अभिनयादिनिरूपण। अ० ३४३ में शब्दालंकार। अ० ३४४में अर्थालंकार। अ० ३४५ में शब्दार्थालंकार। अ० ३४६ में काव्य गुणविवेक। अ० ३४७ में काव्यदोष विवेक। अ० ३४८ में एकाक्षराभिधान। इसमें एक अक्षरका केवल एक अर्थ अथवा अधिक अर्थ दिये हैं।

व्याकरणसारः—(अ० ३४९—३५९) कात्यायनके लिखे हुए व्याकरणको ही असली व्याकरण कहते हैं। प्रथम ३४ सूत्रोंका पाठ दिया है। इसमें सूत्र अथवा वृत्ति अथवा वार्तिक भाग नहीं है केवल शब्दका स्वरूप दिखाया है। अ० ३५० में संधिसिद्धरूप। अ० ३५१ में सुविभक्त सिद्धरूप। अ० ३५२ में स्त्रीलिंग शब्द सिद्धरूप। अ० ३५३ में नपुंसक शब्द सिद्धरूप। ३५४ में कारक। अ० ३५५ में समास। अ० ३५६ में तद्धित् रूप। अ० ३५७ में उणादि सिद्धरूप। अ० ३५८ में तिङ्विभक्ति सिद्धरूप। अ० ३५९ में कृत सिद्धरूप।

शब्दकोशः—अ० ३६० में स्वर्गपतालादि वर्ग में आये हुए नाम। ये श्लोक अमरकोशमें भी पाये जाते हैं। अ० ३६१ में अव्ययादि। अ० ३६२ में नाना अर्थ वर्ग। अ० ३६३ में भूमिवनौषधिवर्ग। अ० ३६४ में नृब्रम्हक्षत्रविटशूद्र। अ० ३६५ में ब्रह्मवर्ग। अ० ३६६ में क्षत्रविट्शूद्र वर्ग। अ० ३६७ में सामान्यनामलिंग। अ० ३६८ में प्रलय-वर्णन। अ० ३६९ में आत्यंतिक लय, गर्भोत्पत्ति। मृतकका शरीर नष्ट होने पर वायु रूपसे यमलोक जाता है और वहां दुखभोगकर वायुरूपसे गर्भमें आता है। मासानुक्रमसे गर्भकी वृद्धि और उसकी उत्पत्ति होती है।। अ० ३७० में शरीरके अवयव। इसमें हाथ पैरों की नसें, नाड़ियाँ, अस्थि तथा दूसरे अवयवोंकी संख्या दी है। अ० ३७२ में नरक निरूपण।

योग—अ० ३७२ में यम नियम। अ० ३७३ में आसन प्रणायाम। अ० ३७४ में ध्यान। अ० ३७५ में धारणा। अ० ३७६ में समाधि। अ० ३७९-३८० में अध्यात्म ब्रह्मज्ञान। इसमें दिया हुआ जड़भरत–संवाद भागवतमें भी है। परन्तु श्लोक-रचना भिन्न है। अ० ३८१ में गीतासार, कृष्णार्जुन संवाद। इनको तात्पर्य प्रायः गीताके श्लोकोंके समान है। अ० ३८२ में यम गीता। इसमें प्रत्येकके विशिष्ट

मत ग्रंथित हैं। उदाहरणार्थः—पंचशिख कहता है कि सर्वत्र समदर्शी, निर्ममत्व, असंगता, इत्यादि कल्याणके मुख्य साधन हैं। गंगाविष्णुका मत है कि गर्भसे मरण तक वयकी अवस्था जानकर उसी प्रकार चलना ही कल्याणका साधन है। इस तरह भिन्न भिन्न कई मत हैं।

अ० ३८३ में अग्निपुराण महात्म्य वर्णित है।

अग्निमांद्य (मन्दाग्नि)—इसका वैद्यक शास्त्रमें कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं है, तो भी इसके होनेसे आमाशय इत्यादि अन्न-मार्गों में किसी रोग होनेकी सम्भावनामात्र की जा सकती है। बहुधा पक्वाशय, आमाशय, जठर और अँतड़ियों में कोई रोग न होते हुए भी मन्दाग्निकी शिकायत हो जाया करती है। आजकल नगरोंकी कृत्रिम तथा अस्वाभाविक जीवनचर्यासे यह रोग बहुत फैलता जा रहा है। अतः यहाँ पर इसका स्वतन्त्र रीतिसे विचार कर रहे हैं।

आरम्भमें इस रोगका कोई विशेष महत्व नहीं समझा जाता है, किन्तु धीरे धीरे लापरवाहीसे यही बढ़ कर किसी प्रचण्ड रोगका रूप धारण कर लेता है। आरम्भमें इससे कोई विशेष कष्ट नहीं होता, केवल बारबार अपचन ही होता हुआ मालूम पड़ता है। आमाशय इत्यादिके रोगोंके लक्षण आरम्भमें केवल मन्दाग्निके अतिरिक्त और तो कुछ प्रत्यक्ष देख पड़ते नहीं, किन्तु वही जब सांघातिक होने लगते हैं तब कठिनता आ पड़ती है। बहुधा, आरम्भमें केवल मंदाग्नि होते हुए भी इसकी ठीक-ठीक चिकित्सा न करने और ध्यान न देनेसे परिणाम भयंकर हो जाता है। इसके कुछ स्वतन्त्र कारण नीचे दिये जाते हैं।

(१) दूषित अन्नके व्यवहारसे होनेवाला अपचः—सड़ा हुआ अथवा बहुत गरिष्ठ भोजन करनेसे अपच हो जाता है। भोज्य पदार्थ ठीक होते हुए भी बहुत अधिक खा जाना, बारबार खाते रहना, अथवा बहुत अधिक उपवास और लंघन करना—इन सबसे भी पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। सब मनुष्योंके लिये एकही भोजन अथवा भोजन-प्रमाण नहीं हो सकता। यह तो प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति और शक्ति पर निर्भर है। बल्कि एक ही मनुष्य को भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें अपना भोजन और उसका प्रमाण बदलना आवश्यक है। ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा जाड़े में मनुष्य अधिक भोजन करता है। बाजारोंमें सर्वदा बैठे हुए व्यापार करनेवालोंके मुकाबिलेमें शुद्ध वायु और सूर्यके प्रकाश में परिश्रम करनेवालोंकी पाचनक्रिया अच्छी होगी। दाँतोंकी खराबी या बिना भलीभांति चबाये भोजन को निगल जाने से यह रोग होने लगता है। खाद्य पदार्थोंकी गरिष्ठता अथवा हलकेपनपर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। घी अथवा तेल में पकाया हुआ भोजन; बहुत अधिक मसालोंसे बघारी हुई वस्तु हानिकारक होती है। इसी भाँति सभी पेय पदार्थ सभी मनुष्योंके लिये लाभकारी नहीं होते। चाय भी पाचनशक्तिको क्षीण करता है और किसी किसीको तो यह बिल्कुल नहीं पचता। भोजनके समय बहुत जल सेवन नहीं करना चाहिये। जठराग्निमें भोजनके साथ अधिक जल पहुँच जानेसे अन्न-पाचक द्रव्य (लार) कम पैदा होता है और अन्न पचनेमें विलम्ब होता है। दाँत में कीड़े अथवा उनसे मवाद या खून आनेसे (Pyrrhoea) अथवा मुखकी अशुद्धतासे भी भोजन ठीक-ठीक नहीं पचता।

(२) मानसिक प्रभाव—इन सब बाह्य कारणों के अतिरिक्त बहुधा मानसिक कारण भी होते हैं। मनुष्यकी मानसिक स्थितिका भी प्रभाव कम नहीं पड़ता। भोजनके समय कोई अनिष्ट अथवा अशुभ बात हो जानेसे उस समय खाया हुआ अन्न नहीं पचता। चित्तमें भोजन के पदार्थसे घृणा हो जानेसे तो कभी-कभी कै तक हो जाती है। चिन्ता, भय, व्याकुलता, और खिन्नता आदि मानसिक अवस्थामें भी भोजन न करना चाहिये। इन मानसिक स्थितियोंका प्रभाव पाचनशक्ति पर भी बहुत पड़ता है।

उदर, छाती, पेट इत्यादिकी नलियोंको साफ न रखनेसे आमाशय इत्यादि शिथिल पड़ जाते हैं और अपनी क्रिया ठीक-ठीक नहीं करते। फल यह होता है कि पेट भारी रहने लगता है, मल-त्याग स्वच्छ नहीं होता और अपच रहने लगता है। बहुधा, बाल्यावस्थामें आमाशय इत्यादिके बराबर रोग होते रहनेसे, बादमें भी हृदय दौर्बल्य, कब्ज, बहुमूत्र इत्यादि रोग आ घेरते हैं। परिणाम यह होता है कि पाचनशक्तिका बिलकुल ह्रास हो जाता है। कभी कभी पेटमें शूल भी होने लगता है। यदि सब नैसर्गिक नियमों, औषधिउपचार तथा पथ्यका पालन करने पर भी पाचनशक्ति ठीक न हो तो बहुमूत्र, मूत्रपिंडके रोग अथवा संधिवात और कफका दोष होना अनिवार्य है। बहुत काल तक अपच रहते रहते क्षय इत्यादि भयंकर रोग तक हो सकता है। अथवा ऐसा भी हो सकता है कि क्षय इत्यादि भयंकर रोग हो जानेसे मन्दाग्निकी शिकायत धीरे धीरे रहने लगती है। अतः यह स्पष्ट है कि

प्रत्येक इन्द्रियोंकी ठीक ठीक क्रिया न होनेसे जठरादि पचनेन्द्रिय पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि स्वतन्त्ररूपसे उत्पन्न हुई मन्दाग्निका आरम्भमें ही ठीक ठीक औषधिउपचार नहीं किया जाता तो अन्तमें अन्य रोग भी मनुष्यको आ घेरते हैं। अतः मन्दाग्नि चाहे स्वतन्त्र रूपसे हो अथवा किसी अन्य रोगके कारण हो, आरम्भ में ही इसका उचित रूपसे निदान करना आवश्यक है।

लक्षण—भिन्न-भिन्न रोगों द्वारा उत्पन्न हुई मन्दाग्निके भिन्न-भिन्न लक्षण होते हैं। इन सबका व्योरा देना तो यहाँ पर कठिन है, किन्तु साधारण लक्षणोंका वर्णन नीचे दिया जाता है। बद्धकोष्ठ अथवा अतिसार द्वारा उत्पन्न हुई मन्दाग्निमें जीभ पर सफेद सफेद फुई जमी रहती है और रङ्ग मटमैला होता है, मुखसे दुर्गन्धि आती है, तबियत सदा गिरी हुई रहती है और किसी काम में रुचि नहीं होती। भूख नहीं लगती, जी मिचलाया करता है, खट्टी डकारें आती रहती हैं, अक्सर हृदयशूल होता रहता है और पेटमें अफार रहा करता है। इसी प्रकार आम्लपित्तके रोगीको होता रहता है और कभी कभी कै हो जाती है।

निकृष्ट पदार्थोंके खाने से भी यह शिकायत पैदा हो जाती है। ऐसी दशामें पेटमें दर्द हो जाता है, जी मिचलाता है, किन्तु यदि कै हो जाय तो चित्त स्वस्थ हो जाता है। बहुत दिनोंतक अपच रहते रहते जब यह रोग पुराना पड़ जाता है तो भोजनोपरान्त पेटमें गुड़गुड़ाहट होती है, कभी कभी दर्द भी होता है, किन्तु दर्द न होते हुए भी पेट सदा भारी रहता है और अफार हो जाता है। चाहे भोजन किया हो चाहे न किया हो; चाहे हलके पदार्थ खाये गये हों चाहे गरिष्ठ; ये सब लक्षण सदा पाये जायँगे। आमाशय, पक्वाशयमें अन्न शीघ्र ही न पचनेसे उसीमें सड़ने लगता है और तब खट्टी और दुर्गन्धि युक्त डकारें आती रहती हैं। कभी कभी डकारके साथ गरम, खट्टा और कडुवा पानी मुँहमें भर आता है और उसीके साथ खाये हुए अन्नके कण मुखमें आ जाते हैं। मुँहमें पानी भर आता है और छातीमें जलन होती है। ये लक्षण भोजनके कुछ समयके बाद दृष्टिगोचर होते हैं। धीरे धीरे भूख बिल्कुल बन्द हो जाती है और अनेक खाद्य पदार्थों पर जी चलने लगता है। पेटकी अवस्था जीभसे सूचित हो जाती है। पेटमें कोई विकार होने से जीभ पर सफेद फुई देख पड़ने लगती है और खुरखुरी हो जाती है। जिह्वाका अग्र भाग लाल रहता है और निनावाँ हो जाता है। कभी कभी जीभका रङ्ग मटमैला हो जाता है। इन सब दशाओंमें पाचनशक्तिको सुधारनेके लिये उचित चिकित्सा करनी चाहिये। रोगके आरम्भमें कभी कभी दस्त आने लगते हैं। जितना ही यह रोग पुराना होता जाता है उतना ही बद्धकोष्ठ होनेका भय रहता है। बहुधा अपचसे मनुष्यको उतना कष्ट नहीं होता जितना इससे उत्पन्न हुए अन्य रोगोंसे होता है। रोग पुराना हो जाने पर हृदयमें पीड़ा, साँस फूलना, धड़कन, सिरमें दर्द, चक्कर, नेत्र-दोष, हाथ पैरमें ऐंठन, उनका ठण्डा पड़ जाना, भोजनसे ग्लानि आदि उत्पन्न हो जाती है। इसका प्रभाव मानसिक स्थिति पर भी पड़ता है। स्वस्थ निद्रा नहीं आती, स्वभावमें चिड़चिड़ापन आ जाता है, चित्तमें सदा उदासीनता रहती है।

उपचार—सबसे पहले केवल भोजन पर ध्यान देना आवश्यक है। रोगीकी अवस्था, पाचन शक्ति, और कार्यक्रमको भली भाँति समझ कर उसका आहार निर्णय करना चाहिये। बहुधा देखा जाता है कि भूखसे भी अधिक खानेकी प्रकृति कुछ मनुष्योंमें होती है, किन्तु यह सदा वर्जित है। जिन्हें अपच रहता हो उन्हें तो भूखसे कम खाना चाहिये। भोजन पचनेको कमसे कम ६ घण्टे चाहिये। अतः भोजनमें कमसे कम इतना अन्तर तो अवश्य ही होना चाहिये। जिस भाँति बारम्बार खाना बुरा है, उसी भाँति बहुत देर तक भूखा रहना, अधिक उपवास करना भी हानिकारक है। हरएक मनुष्यको अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही भोजन करना चाहिये। प्रिय होते हुए भी जिस पदार्थसे हानि होती हो उसको न खाना चाहिये। जिनको अपच रहता हो उनको बहुत पौष्टिक और गरिष्ट पदार्थ नहीं खाने चाहियें। हलके पदार्थका सेवन लाभदायक होता है। धीरे धीरे जिस क्रमसे आमाशयमें शक्ति बढ़ती जाय उसी प्रकार भोजनमें भी अन्तर करते रहना चाहिये। भोजनके साथ पानी अधिक नहीं पीना चाहिये। भोजनके पूर्व पानी पी लेनेसे पूर्वका विकार दूर हो जाता है और पहला भोजन पचनेमें सहायता होती है क्योंकि जठराग्नि प्रदीप्त होती है। भोजन धीरे धीरे चबा चबा कर शान्तिपूर्वक करना चाहिये। गर्दनका पिछला भाग, पेट, और अँतड़ियोंको सर्दीसे बचाते रहना चाहिये। इनको गरम रखने से भोजन पचनेमें सहायता मिलती है। पैरोंमें मोजे (सरदी में)

पहनना चाहिये। पेटमें ऊनी पट्टी लपेटे रहना चाहिये। घी और तेलमें पकाया अथवा तला हुआ भोजन न करना चाहिये। अधिक चटपटा अथवा मसालेदार भोजन भी हानिकारक है। उबाला हुआ सादा भोजन करना चाहिये, फलोंका व्यवहार लाभदायक है। यदि यह भी न पचे तो केवल दूधका सेवन करना चाहिये, किन्तु इसका भी अधिक सेवन हानिकारक हो सकता है। स्फूर्ति और उत्साहके लिये कुछ मनुष्य सुरापान करने लगते हैं, किन्तु इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। अतः यह कभी सेवन न करना चाहिये। भोजन स्वस्थ होकर करना चाहिये और भोजनके उपरान्त तत्काल ही कठिन परिश्रम न करना चाहिये। यदि हो सके तो थोड़ा आराम करना चाहिये। शुद्ध वायु सेवन करना चाहिये। प्रातःकाल उठकर ठण्डे जलसे स्नान करना भी लाभदायक है।

औषधिउपचार—एक तो यह वैद्यक शास्त्रका बड़ा गहन विषय है, दूसरे व्यक्तित्वका ध्यान भी इसमें अनिवार्य है। अतः इसपर पूर्ण रूपसे यहाँ लिखना तो बड़ा कठिन है, परन्तु सर्वसाधारणके लाभके लिये कुछ उपयुक्त औषधियोंके गुण तथा सेवनविधि लिखे जाते हैं।

बाई कार्बनेट आफ सोडा (Bi-Carbonate of Soda) अपचके लिये बड़ी गुणकारी औषधि है। भोजनके पहले इसका सेवन करनेसे भोजनके दो तीन घण्टे पश्चात् जो खट्टी डकारें आती हैं तथा आम्लपित्त होता है उनका नाश होता है। विस्मथ (Bismuth) के प्रयोगसे दाहका नाश होता है। यह बुकनी (Powder) अथवा पेय (Liquid) रूपमें दी जा सकती है। आमाशय की क्रिया ठीक करनेके लिये और भोजन पचाने के लिये थोड़े प्रमाणमें कुचलाका सत (Iodide) भी लाभदायक है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड(Hydrochloric acid) और पेपसीन (Pepsine) पाचनके लिये उपयोगी है। किन्तु यदि जी भी मिचलाता हो और वमन होनेकी शंका हो तो इङ्गलूह्वीनका प्रयोग लाभकारी होता है। यदि पिष्टान्न भी न पचता हो तो डायस्टीस (Diastase) माल्ट (Malt) अथवा पक्का पपीता सेवन करना चाहिये। आमाशय या अँतड़ीमें अन्न सड़ने न देनेके लिये सल्फेट आफ सोडा (Sulph Carb Soda) देना चाहिये। यदि पेटमें सड़ा हुआ अन्न हो तो वातासरणके लिये तथा तन्तुनाशके लिये (Germicide) (Bismuth Silicate) विस्मथसिलिसिकेट, वेटान पॅथोल (Pathol) आदि उत्तम औषधियाँ हैं। इन औषधियोंमें से अथवा किसी देशी दवाईका प्रयोग अपनी प्रकृतिके अनुसार किसी होशियार चिकित्सकको दिखाकर ही करना चाहिये।

वैद्यक शास्त्रमें इसपर पूर्ण विचार किया गया है। कुछ आवश्यक बातें नीचे उद्धृत की जाती हैं। मन्दाग्निका अर्थ अजीर्ण है और अजीर्णसे तात्पर्य है किया हुआ भोजन अथवा जलका न पचना। अन्नका रसादि धातुमें योग्य रीतिसे रूपान्तर न होकर विकृत अन्न-रस बननेसे यह रोग उत्पन्न होता है। (अन्नके न पचनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनके विस्तृत वर्णनके लिये अष्टांग हृदय अ० ८ प्रकरण देखिये।)

अजीर्ण प्रायः तीन प्रकारके कहे गये हैं—(१) वातजन्य (२) पित्तजन्य और (३) श्लेष्मिक। इन्हीं विकारोंसे विसूचिका, आमदोष, अलसक इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। कब्ज रहना या दस्त होजाना,भोजनसे ग्लानि होना, वायु दूर न होना, पेट पर अफार होना, चक्कर आना इत्यादि अजीर्णके लक्षण हैं। पित्तके दोषसे जो अजीर्ण होता है उसे विदग्धाजीर्ण भी कहते हैं। इसमें छातीमें दाह हुआ करती है, प्यास अधिक लगती है, खट्टी व कड़वी डकारें आती हैं। इसीसे 'आम्लपित्त' नामक रोग हो जाता है। कफके अजीर्णमें आँखें तथा गाल सूज आते हैं, विना भोजन किये हुए भी डकारें आती रहती हैं। मुँहमें पानी भरता रहता है, जी मिचलाता है चक्कर आते रहते हैं और शरीरमें जड़ता मालूम होती रहती है। इनके अतिरिक्त एक प्रकारका और अजीर्ण है जिसे रसाजीर्ण कह सकते हैं। इसमें किये हुए भोजनका ठीक प्रकार से धातु आदि रसोंमें रूपान्तर नहीं होता। अतः भोजनमें रुचि नहीं होती, शरीर निर्बल होता जाता है और मनुष्य उत्साहहीन होने लगता है। किसी भी प्रकारका अजीर्ण बहुत बढ़जाने पर मूर्च्छा, निद्रामें प्रलाप, वमन, चक्कर आदि भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते है। इसीसे अलसक, विसूचिका तथा विलम्बिका आदि मनुष्य पर आक्रमण कर बैठता है और मृत्यु तक हो जाती है। यदि दुर्बल पाचन-शक्ति वाला बारंबार बहुत भोजन करता है तो वातादि दोष कुपित होकर पेटमें सड़े हुए अन्नसे मिलकर विसूचिका पैदाकर देते हैं, जिससे दस्त आने लगते हैं। विसूचिकाके लक्षण कालरा (Cholera) के समान होते हैं। यदि यही सड़ा हुआ अन्न

पेटमें जमा होने लगे तो अलसक इत्यादि रोग हो जाते हैं।

वैद्यकशास्त्रमें विसूचिकाके लक्षण इस भाँति देते हैं-पेटमें गुड़गुड़ाहट होना, सूईके समान पेट में गड़ना, नाना प्रकारकी वेदना, (सूचिभिरिव गात्राणि विध्यतीतिविसूचिका।), कै दस्त बहुत होना, वायुदोष, उदरपीड़ा, चक्कर आना, कम्प, पेट फूलना इत्यादि। पित्ताधिक विसूचिकामें तो ज्वर, अतिसार, अन्तरेन्द्रियोंमें दाह, प्यासकी अधिकता और आँखोंके सामने अँधेरा भी छा जाता है। कफजन्य विसूचिकामें कै होती है, शरीर भारी हो जाता है, बोला नहीं जाता, मुँहमें थूक भर आता है और पेटमें अफार हो जाता है।

बहुत अधिक कब्ज रहने से भोजन किया हुआ अन्न पेटमें ही सड़ता है और जमा होता जाता है। वह कफादिसे आच्छादित हो जानेपर पेटमें ही घूमा करता है और वायुका प्रकोप हो जाता है। तब पेटमें दर्द, पेटका फूलना आदि रहते रहते 'अलसक' इत्यादि रोग हो जाता है। अलसकमें आमदोषका अधिक प्रकोप होकर सम्पूर्ण शरीर पर इसका प्रभाव पड़ता है और सारा बदन लकड़ीके समान कड़ा हो जाता है। यही बढ़ जाने पर 'दंडकालसक' हो जाता है। इसका चिकित्सक यश नहीं पाता है क्योंकि यह असाध्य होता है।

बिसूचिका तथा अलसक दोनों ही त्रिदोषजन्य होते हैं और कठिनतासे साध्य होते हैं।

यद्यपि बहुत अधिक खानेसे ही बहुधा अपच होता है किन्तु कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जो केवल थोड़ा खानेसे भी अपच करते हैं। अरुचिकर भोजन, वातोत्पादक अन्न, घीमें पकाया हुआ अन्न, भूना हुआ अन्न, अर्धपक्व अन्न, मलीन, रूखा सूखा, ठण्डा और बासी अन्न सदा हानिकारक होता है। दाह उत्पन्न करनेवाला भोजन, बहुत पतली चीजें थोड़ा खाने पर भी देरमें पचती हैं। शोक तथा क्रोधसे अस्थिर होनेपर भी खाया हुआ अन्न नहीं पचता।

असमय अर्थात् भोजनका समय न होनेपर थोड़ा खाया हुआ भी नहीं पचता। इसे 'विषमाशन' कहते हैं। पथ्य और अपथ्य दोनों एक ही साथ खानेसे भी हानि होती है। इसे 'समशन' कहते हैं। भोजनके कुछ ही देर बाद फिर खाने को 'अध्यशन' कहते हैं। सदा ही विषमाशन, समशन, और अध्यशन होते रहनेसे घोर अजीर्ण होकर मृत्यु तक हो सकती है।

अजीर्णके प्रकोपसे जिसके दाँत, होंठ, नख इत्यादि काले पड़ गये हों, जिसकी आँखें गड्ढेमें घुस चुकी हों, कफसे पीड़ित हो, और जो अचेत-प्राय हो चुका हो, जिसका गला बैठ चुका हो और सब सन्धियाँ शिथिल हो चुकी हों, ऐसा रोगी असाध्य ही समझना चाहिये।

शुद्ध डकार आना, चित्तमें उत्साह होना, शरीर हलका मालूम होना, मल-मूत्रका ठीक ठीक त्याग होना, भूख प्यासका खुलकर लगना इत्यादि पाचनशक्ति ठीक होनेके लक्षण हैं।

जैसा कि आरम्भ ही में कहा जा चुका है कि यह रोग स्वतन्त्र तथा परतन्त्र दोनों ही प्रकार का हो सकता है। इसलिये पहले इसके कारणका ही ठीक-ठीक अनुसन्धान करना आवश्यक है। तदनन्तर औषधि उपचार करना उचित है। यदि परतन्त्र हो अर्थात् किसी दूसरे रोगके कारण ही यह उत्पन्न हो गया हो तो उस रोगकी ठीक-ठीक परीक्षा कराकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। किन्तु यदि यह स्वतन्त्र हो तो प्रथम तो लंघन करना चाहिये। यदि अपच लंघनसे ठीक न हो तो 'पाचक' औषधियाँ व्यवहारमें लाना चाहिये। किन्तु यदि केवल पाचकसे भी लाभ होता न देख पड़े तो वमन होनेका उपाय करना चाहिये अथवा जुलाब लेना चाहिये। यदि अजीर्ण हीसे पेटमें दर्द हो अथवा 'अलसक' के लक्षण देख पड़ें तो शीघ्र ही वमन होनेके लिये औषधि देना चाहिये। ऐसी अवस्था में पेटको सेंकने और वायु-दोषको दूर करनेके लिये गुदाद्वारसे पेटमें बत्ती (Enema) चढ़ानेसे लाभ होता है। हाथ पैरमें ऐंठनके लिये उनको कसकर गरम कपड़ेसे लपेट देना चाहिये।

विसूचिकामें टीके (Injection) का इलाज लाभदायक होता है। केवल जलके अतिरिक्त पूरा उपवास कराना चाहिये। रोग का कोप दूर होने पर जिस भांति जुलाबके पश्चात् धीरे धीरे क्रमानुसार खाद्य पदार्थ दिये जाते हैं, उसी भांति इसमें भी पहले मट्ठा इत्यादि देकर रखना चाहिये। जब जठराग्नि प्रदीप्त हो जाय तब धीरे धीरे अन्न देना चाहिये।

अजीर्णके आरंभमें कोई भी पाचक औषधिका सेवन न करना चाहिये। क्योंकि उससे अजीर्ण बढ़ेहीगा। जहाँतक हो नैसर्गिक नियमोंकी ही शरण लेनी चाहिये।

अग्निमापक—(तापीय वृद्धि मापक)—बहुत अधिक उष्णमान अथवा ताप नापनेका यन्त्र। इसको अंग्रेजीमें पायरो मीटर (Pyro-metre)

कहतेहैं। पहले पहल मशेनब्रोक (Muschen broek) ने धातुशलाकाओंका प्रयोग उष्णमान (ताप) नापनेके लिये किया था। उसीके लिये इस शब्दका प्रयोग भी किया था। कई एक धातुओं तथा क्षारोंको भट्टीमें छोड़ देनेसे उसके पिघलनेसे उनका उष्णमान किसी अंश तक ज्ञात हो सकता है। प्रिन्सेपने सोने, चांदी तथा प्लातिनम (Platinum) को भिन्न भिन्न अंशोंमें मिलाकर कई ऐसी मिश्रधातुओंका आविष्कार किया जिसको भट्टीमें छोड़नेसे ६५४०° से १७७५° तक का उष्णमान जाना जा सकता था। बिल्कुल ठीक माप करनेमें केवल २५ से २०° तक अन्तर पड़ सकता था। जिस भट्टीका ताप जानना हो उसमें, इन्हीं मिश्र धातुओंके गोले छोड़ देने चाहियें। प्रत्येक गोला किसी खास अंशके उष्णमान पर पिघलता है। अतः जो गोला पिघल जाये उसीसे उसके उष्णमानकी स्थूल कल्पना हो जाती थी। बहुतसे क्षारोंका जिनका द्रवणांक (Melting Point) विदित था, उनसे भी उष्णमान मापनेका काम कार्नेली तथा विलयम्स लिया करते थे। चीनीके बर्त्तनके कारखानों में भट्टीका उष्णमान (ताप) जाननेकी बहुत आवश्यकता रहती है। उनमें सेजरके कण (चिकनी मट्टीके कण) का बहुधा उपयोग किया जाता था। इनके पिघलनेसे भट्टीका तापक्रम विदित हो जाता था।

अग्नि मित्र—यह शुंग-वंशका द्वितीय राजा था। इसके पिताका नाम पुष्प-मित्र और पुत्र का नाम सुज्येष्ठ था। पुष्प-मित्र पतञ्जलिका (ईसाके १५० वर्ष पूर्व) समकालीन राजा था। पतञ्जलि की पुस्तकों में राजा पुष्प-मित्र का उल्लेख है।

अग्निवेश्य—(१) एक ब्रह्मर्षि।

(२) सूर्यवंशी नरिष्यन्त राजाके कुलमें उत्पन्न राजा देवदत्तका पुत्र। इसके दूसरे नाम जातुकर्ण्य और कानीन हैं। तपोबलसे यह ब्राह्मण हो गया था। इसके पुत्रका नाम अग्निवेश्यायन था।

(३) अगस्त्य-ऋषिका एक शिष्य। इससे ही द्रोणाचार्यने धनुर्वेदकी शिक्षा पाई थी, और ब्रह्मशिर नामका अस्त्र प्राप्त किया था।

(४) महाभारतमें इसी नामसे प्रसिद्ध अनेक राजा पाण्डवकी ओरसे युद्ध कर रहे थे।

अग्निशिर—काम्यक बनके उत्तरमें एक तीर्थ। यहाँ पर सृञ्जयके पुत्र राजा सञ्जयने 'शम्याक्षेप' नामक यज्ञ किया था। उसी प्रकार राजा भरतने यहाँ पर १४८ यज्ञ किए थे। ऐसी कथा महाभारतमें भी मिलती है। (भारत वन-पर्व अ० ६०)

अग्नि-ष्टोम—(१) चक्षुर्मनुस् नड्वलके ३११ पुत्रोंमें से सातवें पुत्रका नाम। दूसरे ग्रन्थोंमें इसीका नाम अग्नितुष्ट मिलता है। (देखिये शब्द मनु)

(२) एक यज्ञ विशेष। यज्ञ तीन प्रकारके होते हैं—(१) इष्टि, पशु, तथा सोमयाग। यह सोम यागका एक प्रधान अंग है। इसमें अतिरात्र, उक्थ्य आदि भेद होते हैं। इसकी भिन्न २ क्रियायें नीचे दी जाती हैं—

दीक्षा—इसकी दीक्षा वसन्तऋतुमें पूर्णिमा अमावस्या अथवा प्रतिपदाको लेनी चाहिये।

अनुष्ठान—गार्हपत्यमें दर्भासन पर स्थित होकर यजमान पत्नि इसका प्रधान संकल्प लेती है, और यजमान प्रधान अधिकारी तथा ऋत्विजों को निमंत्रित करता है।

ऋत्विक निमन्त्रण तथा स्वागत—इन '१६, १७ सदस्यों सहित प्रधानके आनेपर यजमान मधुपर्क विधिकी योजना करता है।

अग्नि समारोप तथा यज्ञभूमि प्रवेश—यजमान सपत्नीक यज्ञ भूमिमें प्रवेश करते हैं।

प्राग्वंश मण्डप—यज्ञ भूमिमें यह मण्डप तय्यार किया जाता है। पूर्व पश्चिमकी ओर यह १६ पद होता है और उत्तर दक्षिणकी ओर ११ पद। चारों दिशाओं और ईशान्यमें एक एक एक द्वार होना चाहिये। अवशिष्ट तीन कोनों में तीन मोखे होने चाहिये। मण्डप चारों ओरसे घिरा होना चाहिये।

अग्नि-स्थापना—प्राग्वंश मण्डपमें निर्माणित कुण्ड और वेदीमें अग्निका आह्वान किया जाता है।

दीक्षणीयेष्टि—जिन नियमोंका यज्ञारम्भसे अन्त तक पालन किया जाता है वही दीक्षा कहलाती है। देवताओंके प्रीत्यर्थ पुरोडाशका हवन किया जाता है। हवनके पश्चात् उत्तर दिशामें बैठकर यजमान क्षौर इत्यादि कराके स्नान करता है। यजमान पत्नि भी स्नान करती है। तब दोनों नये वस्त्र पहिन कर यज्ञ कर्ममें प्रविष्ट होते हैं।

प्रायणि येष्टि—दीक्षणियेष्टिके दूसरे दिन यह किया जाता है। पथ्या स्वस्ति, अग्नि, सोम, सविता, अदिति इत्यादि प्रधान देवता होते हैं। अदिति के अतिरिक्त सबका हवन घीसे किया जाता है। अदितिका होम कुण्ड मध्यमें होता है और हवन भातसे किया जाता है।

सोमक्रय—इसमें सोम वल्ली किस प्रकार लानी चाहिये इसका वर्णन है।

अतिथ्येष्टि—इसके प्रधान देवता विष्णु हैं।

उपसदिष्टि—इसमें अग्नि, सोम और विष्णु प्रधान देवता होते हैं। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल तीन दिन तक घृतका होम होता है।

प्रवर्ग्योद्वासन—सस्त्रीक यजमान, अध्वर्यु तथा अन्यान्य ऋत्विज उत्तर वेदी की ओर जाते हैं। मार्गमें स्थान पर जहाँ ये रुकते हैं वहाँ प्रस्तोता सामगायन करता है।

अग्निप्रणयन—इसमें सवनीय हविस्सिम्बन्धि शाखाहरण की क्रिया की जाती है।

हविर्धान मंडप—इस नामके मण्डपकी योजना की जाती है। एक एक बित्ते चौड़े चार गड्ढे तयार किए जाते हैं। इन्हीं की मट्टीसे चबूतरा बनाकर उस पर सोमरसके पात्र स्थापित किये जाते हैं। गड्ढोंमें सोमलता कूटनेका प्रबन्ध रहता है।

अग्निध्रीय मण्डप—इसमें दो मण्डप बनाये जाते हैं:—(१) मार्जालीय मण्डप दक्षिण ओर बनाया जाता है, (२) सदनायक मण्डप पश्चिम में होता है। द्वार केवल पूर्व और पश्चिमकी ओर रहता है।

अग्निषोमपणयन—यजमान और उसकी पत्नी वैसर्जन होमके पश्चात् अग्निको उत्तर कुण्डमें मिला देते हैं और सोमको हविर्दान मण्डपमें ले जाते हैं। यूपमें पशु बांधा जाता है और बलि बकरेकी दी जाती है। मृत पशुकी 'वपा' निकाल कर उसका हवन किया जाता है और पशु पुरोडाश तय्यार किया जाता है। एक गगरीमें नदीका जल लाया जाता है और उसमें सोम वल्ली कूटी जाती है।

पशु पुरोडाश अंग याग और अंग याग—पशुके बचे हुए अङ्गोंकी यज्ञमें आहुति दी जाती है उसके अवशिष्ट भागोंको भोजनके व्यवहारमें लाते हैं।

वसतीवरिपरिहरणः—नदी जलको प्रधान ऋत्विज यज्ञ मण्डपमें लाकर रखता है। हवनीय दूध, दही इत्यादि भी इसी मण्डपमें रखा जाता है। इसी मण्डपमें रात्रिको शयन करना पड़ता है। किन्तु यजमानकी पत्नी प्राग्वंशमण्डपमें और यजमान हविर्धानमण्डपमें सोम-रक्षार्थ जागता रहता है।

सुत्याह अथवा सवनीय दिवस—पहले तो अध्वर्यु अग्निमें ३३ हविः छोड़ता है। पश्चात् सवनीय पशु का अनुष्ठान होता है। हविर्द्रव्य पाँच प्रकारके तय्यार किये जाते हैं (१) धाना (सत्तू) (२) काम्भ (दूध और सत्तुका मिश्रण) (३) परिवाप (लाई) (४) पुरोडाश (५) पयस्या (छैना)

दधिग्रह प्रचार—तत्पश्चात् दहीका हवन होता है।

अंशुप्रचार—इसमें सोमरसका हवन होता है और ऋत्विज सामगान करते हैं।

सवनीय पशु—जब पशुकी बलि दी जा चुकती है तो उसके अङ्गोंको पकाया जाता है और उसी की आहूति दी जाती है और सोमरस चढ़ाया जाता है।

शुक्रामथिकप्रचार—इसमें सोम रसका हवन होता है। बचे हुए सोमरसको पान करते हैं सवन प्रायश्चित होता है और ऋत्विजोंके चले जाने पर यह क्रिया समाप्त की जाती है।

माध्यंदिनसवन—प्रातः सवनीयके ही समान यह भी होता है, केवल थोड़ा भेद है।

विप्रुढ्होम—इसमें विप्रुट नामका होम होता है। सवनीय पुरोडाश याग किया जाता है दाक्षिणात्य का होम भी इसकी मुख्य क्रिया है। तदनन्तर दक्षिणा दी जाती है, प्रधानको सुवर्ण दिया जाता है। ऋत्विजोंके चार वर्ग रहते हैं। प्रथम वर्गको १२ गौ, द्वितीयको ६, तृतीयको ४ और चतुर्थको ३ दी जाती हैं। तदनन्तर वैश्वकर्मण होता है।

तृतीय सवन—इसमें आदित्य गृहमें याग होता है। यजमान और उसकी पत्नी "पूतभृत" (सोम रसका प्याला) में दही मिलाकर विप्रुट याग आरम्भ करते हैं। इस क्रियामें सपत्नीक यजमान तथा ऋत्विज लोग मांस खाते हैं। पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है।। 'चारू' भात सोमदेव को हवनमें अर्पण करते हैं।

पत्नीसंयाज—इस नामका अनुष्ठान किया जाता है। इसमें 'अवभृत' स्नान किया जाता है। यजमान, उसकी पत्नि, तथा अध्वर्यू बाहर आते हैं। नदी के किनारे जाकर स्नान करते हैं। मार्ग भर सामगान होता है। स्नानान्तर नये वस्त्र पहनकर ये लौट आते हैं और उदयमेष्टि करते हैं। बांझ गायका याग करते हैं। यह अनुबन्ध्य भाग कहलाता है। कलिमें यह वाजित होनेसे 'आमिक्षा' नामक पदार्थका इसलिये प्रयोग किया जाता है। तदनन्तर क्षौर इत्यादि कृत्य होता है। सत्व होम होता है। अन्तमें अग्नि समारोप करके पूर्णाहुति दी जाती है।

अग्निष्टोभ प्रधान यज्ञ माना गया है, और भी बहुतसे यज्ञोंमें यही सब क्रिया थोड़े बहुत अन्तर से होती है।

अग्यारी—पारसियोंका मन्दिर। पारसियों

में अग्नि-पूजाका विशेष महत्व है और इनके मन्दिर में भी अग्नि का विशेष स्थान है। इस शब्दका अर्थ भी अग्निमन्दिर कर सकते हैं। इसमें अनेक पवित्र और धार्मिक कर्म किये जाते हैं। पारसियोंमें यह प्रथा है कि उनके मन्दिरकी पवित्र अग्नि कभी बुझने नहीं देना चाहिये (सनातनी हिन्दुओंमें भी अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने हवनकुण्डकी अग्नि कभी बुझने नहीं देते)। अतः इसी स्थान पर अग्नि सदा जागृत रहती है। इनके मन्दिरोंमें अग्निपूजा के लिये एक विशेष स्थान होता है, उसीको "दर मैहर" अथवा "अग्यारी" कहना अधिक उपयुक्त होगा। 'दर' शब्दका अर्थ 'द्वार' है और 'मेहेर' का 'मिथ्र देवता'। अतः इस शब्दका अर्थ हुआः- 'मिथ्रदेव तक पहुँचका द्वार'। इस मन्दिरमें अग्निके भी कई भेद होते हैं:—(१) आतिश बेहेराम (२) आतिशआदरान और (३) आतिश दादगाह।

इस मन्दिरमें भिन्न भिन्न पुजारी रहते हैं और उनके लिये भिन्न भिन्न स्थान निर्धारित रहते हैं।

अग्रदानी—आसाम प्रान्तमें इस जाति की जनसंख्या लगभग २०० है। ब्राह्मणों की अनेक उपजातियोंमेंसे यह भी एक है। इस जाति के मनुष्य प्रेतदहनके समय मंत्र पढ़ते हैं और श्राद्धकी दक्षिणा और दान भी लेते हैं। (सेन्सस् १९११ भाग ३) अग्रदानी शब्दका अर्थ (अग्रेदानं अस्य) मृत का दान लेने वाला ब्राह्मण है। (प्रेतोद्देशेन यद्दानम् दीयते तत्प्रतिग्राही।)। इसकी व्याख्या इस प्रकार है:—

लोभी विप्रश्च शूद्राणा मग्रेदानं गृहीतवान्।
ग्रहणे मृत दानानां अग्रदानी बभूव सः॥

अग्रदास—यह जयपुर राज्यके अन्तर्गत गलता नामक स्थानके निवासी थे। यह भी बल्लभाचार्यजीकी शिष्य-परम्पराके श्रीकृष्णदास के शिष्य थे, परन्तु ये रामोपासनाकी ही ओर अधिक आकृष्ट हुए और श्रीरामजीकी भक्तिसे पूर्ण बहुतसे भजन रचे। इनके शिष्य, प्रसिद्ध भक्तमालके रचयिता, नारायणदास (प्रसिद्ध नाम नाभादास) थे; जिनका समय सं० १५७५-१६२५ के लगभग निश्चित किया जाता है। इस विचार से अग्रदासजीका समय नाभादासके गुरू होनेके कारण चालीस या पचास वर्ष पहिले होगा। इनकी निम्नलिखित रचनायें मिलती हैं—

(१) कुण्डलियाँ (२) श्रीरामध्यान मञ्जरी (३) हितोपदेश भाषा (४) रामचरित्रके पद। इनकी कविता सरल है और अपने इष्ट देवताके गुण गान, ध्यान आदिके लिये भक्तोंको प्रिय है। इनकी कविता विशेष साहित्यिक नहीं है और अष्ट छापके सुप्रसिद्ध कवि नन्ददासजीके ढंगकी है। उदाहरणार्थ –

कुण्डल ललित कपोल जुगुल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि अकास लजत राकेस दिनेसा॥
मेचक कुटिल विशाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुख पंकजके निकट मनो अलि छौना आए॥

अग्रवाल (अगरवाला)—भारतकी एक प्रसिद्ध जाति। इस शब्दके भिन्न भिन्न अर्थ टीकाकारोंने किये हैं—(१) श्रेष्ठ बालक (२) अग्रगामी, (३) सूर्यवंशी राजा मानधाताकी सन्तान (४) महीधरके पुत्र राजा अग्रनाथ अथवा अग्रसेनके वंशज।

उत्पत्ति—अग्रवालोंकी उत्पत्तिकी कथा पुराणों में भी मिलती है। पूर्वकालमें प्रतापनगरके राजा धनपालके आठ पुत्र और एक कन्या थी। कन्या का नाम मुकुटा था जो याज्ञवल्क्यऋषिसे ब्याही गई। आठ पुत्रोंमें से नल नामका पुत्र तो संसार से विरक्त होकर साधु हो गया। अन्य सात— शिव, नन्द, कुन्द, कुमुद, वल्लभ, शेखर और अनिल सात द्वीपोंके राजा हुए। शिवको जम्बू द्वीप मिला। उसीके कुलमें विश्य नामक राजा हुआ उसका पुत्र वैश्य था। इसके वंशज इसी नामसे प्रख्यात हुए। इसी कुलके राजाओंने कावेरीके तट पर रङ्गनाथका मन्दिर बनवाया और नैपाल बसाया। इसी कुलमें मधु और महीधर हो गये हैं जो व्यापारमें बड़े प्रवीण थे।

वल्लभके कुलमें द्वापरके चतुर्थ पीढ़ीमें राजा अग्रसेन हो गये हैं। यही अग्रवालोंके पूर्वज थे। दक्षिणमें प्रतापनगर इनकी राजधानी थी। यह ऐसा प्रतापी राजा था कि इन्द्र तक इसकी मित्रता का दम भरता था। एक बार ऐसा हुआ कि नाग लोकका राजा कुमुद अपनी कन्या माधवीके साथ इसकी राजधानीमें आये। माधवीके रूप और गुण पर मुग्ध होकर इन्द्रकी इच्छा उससे विवाहकी हुई किन्तु माधवीका विवाह राजा अग्रसेन ही से हो गया। इन्द्रने इससे क्रुद्ध होकर इसके राज्यमें वर्षा रोक दी। फलतः दोनोंमें घोर युद्ध चला, किन्तु ब्रह्मदेवने मध्यस्थ होकर दोनों मे सन्धि करा दी। तत्पश्चात् राजा नगरी छोड़ तीर्थाटनके लिये निकल पड़ा और महालक्ष्मीकी पूजा करता रहा। इसने कपिलधारा और काशी में विश्वनाथके मन्दिरमें अनेक यज्ञ किये। महा-

देवजीने प्रसन्न होकर इसको आशिर्वाद दिया। एक प्रेतको सहायतासे हरिद्वार पहुँचकर गर्ग ऋषिको साथ लेकर सब तीर्थ स्थानोंमें भ्रमण किया, फिर हरिद्वार वापस आकर महालक्ष्मीकी पूजा आरम्भ की। महालक्ष्मीने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि इन्द्र तेरे वशमें होगा और तेरे वंशज तेरे नामसे प्रसिद्ध होकर धनधान्यसे परिपूर्ण होंगे। इहलोकके बाद तुम और तुम्हारी पत्नि ध्रुव नक्षत्रके समीप रहोगे। देवीके आज्ञानुसार ही उसने कोलापुर आकर महीधरकी कन्याओंसे विवाह किया। तदनन्तर देहलीमें आकर रहने लगा और एक विस्तृत राज्य बसाया। उसीने आगरा बसाया था जो उस समय अग्रवतीके नामसे विख्यात था। कोलापुरसे आनेके पश्चात् द्वितीय बार यमुनाके तटपर बड़े समारोहसे इसने महालक्ष्मीका पूजन किया था और जहाँ पर देवीने प्रकट होकर इसे अनेक वर दिये उसी स्थानका नाम अग्रवती पड़ा, और वही उसकी राजधानी हुई। इस बार देवीने प्रसन्न होकर इसकी कुलदेवी होना स्वीकार किया और आज्ञा की कि उसके वंशज दीपावलीके दिन बड़े समारोहसे महालक्ष्मीकी पूजा किया करें। धीरे धीरे इसका प्रभुत्व बढ़ता ही गया। उत्तरमें हिमालयकी तराइयोंसे लेकर पञ्जाब तक इसीका राज्य था। पूर्व और दक्षिणमें गंगानदी इसके राज्यकी सीमा थी। पश्चिममें मारवाड़ तक इसके शासनमें था।

गोत्र इतिहास—इनके गोत्रोंकी उत्पत्तिमें भिन्न भिन्न कल्पनायें हैं। कुछका तो कथन है कि राजा अग्रसेनने १८ यज्ञ किये। प्रत्येक यज्ञोंसे ही इनके गोत्रोंके नाम पड़े। जब वह अट्ठारहवाँ यज्ञ कर रहे थे तब उनको निर्दोष पशुओंको बलिके समय बड़ा दुःख होने लगा और बिना यज्ञ समाप्त किये हुए ही अपने वंशजोंको बलि देनेका और पशुओंकी हत्या करनेका भविष्यमें निषेध किया। इनके १७ रानियाँ थीं और एक उपपत्नि। उन्हींके वंशज अग्रवाल कहलाये। उन साढ़ेसत्रह यज्ञोंसे साढ़े सत्रह गोत्र अग्रवालोंमें आज तक भी विद्यमान हैं। किन्तु कुछका कथन है कि इनके अट्ठारह पुत्रोंके नामसे अथवा उनके गुरूओंके नामसे ही इनके गोत्रोंके नाम पड़े। सबसे छोटे राजकुमारका कोई अलग गुरू नहीं मिला तो अपने बड़े भाईके गुरू गर्गको ही अपना गुरू बना लिया। जिसका फल यह हुआ कि इसका गोत्र 'गवन अथवा गोधर' आधा ही माना गया। अब भी एक ही गुरू होनेसे गर्ग गोत्र और गवन अथवा गोधर गोत्रमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। इनके गोत्रोंके नाम निम्नलिखित हैं—(१) गर्ग, (२) गोइल, (३) गावल, (४) वात्सिल (५) कासिल (कंसल) (६) सिंहल (७) मंगल (८) भद्दल (९) तिङ्गल (१०) ऐरण (११) टैरण (१२) ठिङ्गल (१३) तित्तल (१४) मित्तल (१५) तुन्दल (१६) तायल (१७) गोभिल (१७) गोइन (गवन) आधा।

मध्यकालीन इतिहास तथा स्थिति-परिवर्तन—पूर्व कालमें तो ये वेदपाठी थे त्रैकालिक संध्या भी करते थे और सनातन धर्मावलम्बी थे। किन्तु जब जैन धर्मका भारतमें अधिक ज़ोर फैला तो इस कुलके तत्कालीन राजा दिवाकरने जैन धर्म ग्रहण कर लिया। आज तक भी बहुतसे अग्रवाल जैन धर्मावलम्बी हैं।

यों तो समय समय पर उनका उत्थान और पतन बराबर ही होता रहा, किन्तु पहला धक्का अग्रसेनकी युद्धमें मृत्युके बाद ही पहुँचा। राजा अग्रसेन और उनके मन्त्रीकी युद्धमें मृत्यु होनेके पश्चात् इनके १८ लड़कोंने मन्त्री पुत्रों (परशुराज और पशुराज) सहित भाग कर पञ्जाबके हिसार जिलेके पास एक नगर बसाया। उस समय इनकी स्थिति अच्छी न थी। विवाह सम्बन्धमें भी कठिनाई होने लगी। अतः अपने पिताके पूज्य गुरू पातञ्जलीकी आज्ञानुसार तथा मन्त्रीपुत्रोंसे सम्मति लेकर अपने अपने गोत्रोंको बचा कर आपसहीमें विवाह करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य सूर्यवंशीसे इनका सम्बन्ध टूट गया और उस समयकी प्रथाके विरुद्ध आपस ही में विवाह करनेसे जनताकी दृष्टिमें भी इनका पहला ऐसा स्थान नहीं रह गया। किन्तु अट्ठारहों राजकुमारोंने भी बड़े परिश्रम और तत्परतासे अपना पूर्व ऐश्वर्य फिरसे प्राप्त किया। सबसे बड़े राजकुमारको राज्याभिषेक कर अग्रोहाको अपनी राजधानी बनाया और सुखपूर्वक सब राजकुमार दिन व्यतीत करने लगे। पुष्पदेवकी मृत्युके पश्चात् उनका पुत्र अनन्तमाल गद्दी पर बैठा। इसके कालमें अग्रोहाने बड़ी उन्नति की। इनके कुलके अन्य लोग भी धन धान्यसे परिपूर्ण थे। व्यापार ही इनका प्रधान व्यवसाय था और लक्ष्मीकी विशेष कृपा होनेसे लक्ष्मीपुत्र कहे जाते थे। अग्रोहामें केवल दो लाख तो इन्हींकी बस्ती थी। जिस समय ३२७ ई० पू० में सिकन्दरने भारत पर

आक्रमण किया था उस समय ये लोग फिरसे उन्नतिके शिखर-पर पहुँच चुके थे और नन्दराज इनका राजा था। सिकन्दरने इसीके समीप साइरेस (आधुनिक सिरसा) नामका एक नगर बसाया किन्तु अग्रोहाके कारण उसकी कुछ भी उन्नति न हो सकी। तब उसने कूटनीतिका प्रयोग कर वहाँके निवासियोंमें धार्मिक फूट कराकर तथा व्यापार वृत्तिवालों और राजकुल वालों में परस्पर विरोध कराकर अपने नगरको बसाना चाहा। उसे इसमें सफलता भी प्राप्त हुई, और उसी समयसे तीन सौ वर्ष पर्यन्त इसका अधः पतन होता रहा। तदनन्तर लोहाचार्यके उत्तम उपदेशोंसे एक बार फिर इन लोगोंने उन्नति की।

सं० ७०१ ई० के फाल्गुन मासमें अग्रोहा-निवासी शिवानन्द और धर्मसेनके कहनेसे धाम-नगरके राजा समरजीतने इसपर चढ़ाई कर दी थी। उसीके बाद इस नगरको संकटावस्थामें देखकर सिरसामें रहनेवाले रत्नसेन गोकुलचन्दने मुहम्मद अबुलकासिमको समाचार भेजकर ७१२ ई० में उससे इस नगर पर चढ़ाई करा दी। उसने इस नगरके साथ ही साथ सिरसाको भी लूटकर बरबाद कर दिया। हजारों नारियाँ अपने पतियों के साथ सती हो गईं और मरते समय वहाँके निवासियोंको अग्रोहा छोड़नेका आदेश किया और रत्नसेन और गोकुलचन्दके वंशजोंको शाप दिया कि समाजमें इनका स्थान बहुत गिर जावे। उसके पश्चात् इस नगरके बचे हुए ऐश्वर्यको शाहबुद्दीनगोरीकी भारत पर चढ़ाईने बिल्कुल नष्ट कर दिया (१२ वीं शताब्दी)। तबसे फिर इनका पूर्व गौरव कभी प्राप्त नहीं हुआ। इन्हीं आक्रमणोंके समय ये चारों ओर फैल गये। बहुतों ने भयसे जनेऊ इत्यादि तोड़ डाले। पानीपत, नारनौल, जैगाँव, देहली, मेरठ, अलीगढ़में बहुत से आकर बस गये। कुछ मारवाड़ उज्जैन और मन्दसोर तक चले गये और वहीं पर रहने लगे। बहुतसे पूरब और दक्खिनमें जाकर बसे। बाहर जाकर बहुधा ये लोग व्यापार ही करते थे। अन्तमें देहली इत्यादिमें बसे हुए अग्रवालोंका मुगल दरबारमें फिरसे बहुत सम्मान हुआ। धन धान्यसे परिपूर्ण होनेके अतिरिक्त राज्य दरबारमें भी ये बड़े बड़े प्रतिष्ठित पदों पर थे। टोडरमल और मधूशाहका नाम अकबरके दरबार में विशेष महत्व का था।

आधुनिक अवस्था तथा आचार व्यवहार—समयकी गतिके साथ इनमें भी बहुत सी उपजातियाँ हो गईं और उच्च, नीचका विचार होने लगा। अब भी इनका मुख्य स्थान पश्चिमोत्तर है और वैश्योंकी एक शाख मानी जाती है। ये जैन अथवा वैष्णवधर्मके माननेवाले होते हैं। इनके दो मुख्य भेद हैं—(१) मारवाड़ी और (२) देशी। इनमें समयके हेर फेरसे अब विवाह इत्यादि भी नहीं होता। अग्रवालोंके पूर्वज रत्नसेन और गोकुलचन्दके कुलद्रोही होनेसे उनके वंशज कलारी (कुलारी) कहलाते थे जो आजकल कलवार और लोहियाके नामसे प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इनके वंशमें कोई दोष नहीं है तथापि सतियोंके शापसे इनका अपनी जातिमें अन्य लोगोंकी भाँति स्थान नहीं है। इन लोगोंसे अन्य अग्रवाल रोटी बेटीका सम्बन्ध नहीं रखते। इसी भाँति इनके दो मुख्य भाग और हैं—(१) बीसे और (२) दस्से (डस्से)। दस्सों (दशांशा) की उत्पत्तिके विषयमें कहा जाता है कि इनके पूर्वज राजाओंकी बहुत सी उपपत्नियाँ थीं, जो समान कुल और वर्णकी नहीं थीं। उनसे जो सन्तान हुई वे केवल आधे (अर्थात् बीसों बिस्वे अग्रवाल न होनेसे) अग्रवाल थे। अतः वे दस्से (दशांशा) हुए और अन्य जो बीसों बिस्वे (अर्थात् जिनके माता पिता दोनों ही अग्रवाल थे) थे वे बीसे कहलाये। इन लोगोंमें भी आपसमें सम्बन्ध नहीं होता। यों तो देश तथा प्रान्तके अनुसार इनकी भी भाषा भिन्न भिन्न है किन्तु ज्यादातर ये लोग खड़ी बोली बोलते हैं और गौड ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। मांस मदिराका व्यवहार वर्जित है। विवाह इत्यादिमें बहुत व्यय करते हैं। वृद्धोंकी मृत्यु पर उत्सव मनाते हैं तथा बिरादरीमें भोज देते हैं। यद्यपि आधुनिक शिक्षाका प्रभाव अन्य जातिकी भाँति इनपर भी बहुत पड़ा है किन्तु मारवाड़ आदि प्रान्तोंमें तथा जिनमें नवीन सभ्यता नहीं घुसी है उनका पहिनावा सीधा सादा है। पगड़ी अंगा इनमें अब भी बहुत प्रचलित है। स्त्रियाँ लहँगा ओढ़ना पहनती हैं। इनके आचार व्यवहार सरल तथा उच्चवर्णोंकी भाँति होते हैं। विधवा विवाहकी प्रथा नहीं है। व्यापार क्षेत्रमें इन्होंने अच्छी उन्नति की है। इनमें बड़े बड़े सेठ साहूकार धनधान्यसे पूर्ण समृद्धिशाली व्यक्ति हैं। प्रायः देशके सभी बड़े बड़े नगरोंमें ये व्यापारके हेतु बसे हुए हैं और देशके प्रत्येक भागमें ये प्रसिद्ध हैं। ये बहुधा उदार और सरल प्रकृति के होते हैं और दान धर्ममें विशेष श्रद्धा होती है। भारतमें अधिकतर हरएक नगरोंमें इनकी बनवाई

हुई धर्मशालाएँ पाठशालायें और देवालय आदि हैं। [भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत अग्रवालोंका इतिहास तथा अग्रवाल इतिहास बी० एल० जैन कृत]

अग्रहरी—जबलपूर जिले व राजगढ़ राज्यमें रहने वाले बनियोंकी एक उपजाति। इनका आगरेकी तरफभी सम्बन्ध है।

संयुक्तप्रान्तमें इनकी जनसंख्या अधिक है। सन् १६११ की जनसंख्यामें ७६२७६ अग्रहरी थे। उनमेंसे ७७२८३ तो संयुक्तप्रान्तमें ही थे। इन लोगोंमें ७६१७४ सनातनी हिन्दू, १०० सिक्ख, और ५ जैन हैं।

अग्रिजेन्टम् (आधुनिक गिरजेन्टी)—सिसली के दक्षिण किनारेका एक शहर। यह समुद्र तटसे ढाई मील दूर है। गॅल दल वालोंने यह शहर ५८२ ई० पू० में बसाया था। पिल्हारी (Phalari) (५७०-५५४ ई० पू०) और थेरॉन (Theran) (४८८-६३ ई० पू०) इन दोनों एकतंत्री (The Tyrants) राजाओंने अपने अपने राज्य-कालमें इसे नष्ट कर डाला। इन दोनोंके बाद थ्रॉसिडेअसने भी इसे विनष्ट किया। जब यह राजा देशसे निकाल दिया गया तब यहाँ प्रजातन्त्र राज्यकी स्थापना हुई। ४०५ ई० पू० में कार्थेजीनियन लोगोंने इस नगरको फिरसे लूटा। ३३८ ई० पू० वर्षके उपरान्त टेमोलियन (Timoleon) ने फिरसे इसे बसाया। एकतंत्री (The Tyrant) राजा फिन्टियसके राज्य कालमें इस शहरको थोड़ीसी सत्ता फिरसे प्राप्त हुई थी। २६१ ई० पू० और २१० ई० पू० में रोमनोंने और ई० पू० २५० में कार्थेजीनिनोंने इस नगरको फिर उजाड़ दिया।

यहाँ से धान्य, कपड़ा और गंधक दूसरे देशों में जाता था। इस नगरके पूर्वमें अथेन पहाड़ी पर जुइस-अटेवियस और ॲथेनके मंदिर थे। जिस चट्टान पर ये मन्दिर हैं वह शहरकी उत्तरीय ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इसीके निकट एक दूसरी चट्टान पर प्राचीन नगर स्थित है। इन दोनों चट्टानोंके बीचमें एक गुफा है। इस नगरके पूर्वीय भागमें बहने वाली अग्रेगस नदीके नाम पर ही इस शहरका यह नाम पड़ा। इस नगरके प्राचीन स्मारक और मन्दिर डॉरिक पद्धति (Doric Style) पर बने हुए हैं। हिरेक्लीसका मन्दिर सबसे प्राचीन है। दूसरे ग्रेगरी पोपने ७६७ ई० में इसी मन्दिरमें एक मुख्य प्रार्थना मन्दिर स्थापित किया था। जुइसके मन्दिरमें अटॅलसकी आकृतियाँ हैं। जुइस और हिरेक्लीस के मन्दिर अब भूकम्पसे गिर गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्राचीन स्मारक हैं परंतु कोई भी विशेष महत्वका नहीं है। इस शहरकी प्राचीरमें बने हुए हिरेक्लीसके मन्दिरके निकट 'पोर्टोऑरिया' नामक एक फाटक है। इस फाटक से एक सड़क निकल कर जाती है। इस शहर के पश्चिममें ग्रीक लोगोंके और शहरके बाहर दक्खिनमें रोमनोंके कब्रिस्तान हैं। ब्योलादिज़के समीप एक पुराने गाँवके चिन्ह पाये गये हैं।

अग्रोर—हज़ारा ज़िलेकी मानशेर तहसीलके वायव्य दिशामें यह एक घाटी है। उ० अ० ३४°२६ से ३४°३६ और पू० रे० ७२°५८ से ७५°६ तक है। यह दस मील लम्बी और छः मील चौड़ी है। इस में चारों ओर छोटी छोटी झोपड़ियाँ और कुटियाँ बनी हुई हैं। यहाँ की फसल अच्छी होती है। इसके चारों ओर पर्वत हैं जिन पर सनोवर (Pine Tree) के वृक्ष बहुत हैं। जमीन चौरस नहीं है बल्कि ज्यादातर ढालू और ऊँची नीची है। पानी पर्याप्त होनेसे सूखा पड़नेका भय कभी नहीं होता। बस्ती यहाँ स्वाति तथा गूजर जाति की अधिक है। जनसंख्या लगभग १७००० है और इस्लाम धर्मके अनुयायी ही अधिक हैं। राजतरंगिणीमें इसका उल्लेख अत्युग्रपुरके नामसे किया है। तैमूरलङ्गके समयसे लेकर अट्ठारहवीं शताब्दीके आरम्भ तक यह प्रान्त कर्लुख घरानेके तुर्कोंके आधीन था, किन्तु १७०३ ई० में जलाला बाबा (सय्यद) ने उसे जीत कर स्वाति लोगोंको दे दिया था। १८३४ ई० में अम्बके नवाबने यह घाटी उन लोगोंसे भी जीत ली, किन्तु सिक्खोंने १८४१ ई० में इसे विजय कर सैदुद्दीनके वंशज अतामुहम्मदको दे दी थी और उसीको वहाँका मुखिया (Chief) बना दिया। सरहदी भागका बन्दोबस्त उसीके सपुर्द था किन्तु यह व्यवस्था भी अधिक दिन चल न सकी। सरकारकी ओरसे एक सेना भेजी गयी और १८६८ में एक पुलिस चौकी स्थापित की गई। किन्तु खाँ ने पहाड़ी जातिको भड़का कर उसे जलवा दिया। तब वह पदच्युत होकर लाहौर लाया गया, किंतु १८७० ई० में वह फिर मुखिया नियत किया गया। उसके पश्चात् उसीका पुत्र अलीगौहर मुखिया रहा। किन्तु सरकारके विरुद्ध षड्यन्त्रमें सम्मिलित होनेसे वह हटा दिया गया, और १८६१ ई० में अग्रोरहेली रेगुलेशनके आधार पर यह सरकारी राज्यमें मिला लिया गया। १६०१ ई० में जमीन का बन्दोबस्त किया गया और अब इसकी आय १३३०० रु० है। कपासका मुख्य

व्यापार यहाँ होता है और उसीका कपड़ा तय्यार किया जाता है। इसका मुख्य गाँव ओधी है। इसमें हज़ाराकी फौज़का एक भाग रहता है।

अग्रोहा—पञ्जाबके ज़िला हिसारकी तहसील फतेहाबादमें एक स्थान है। प्राचीन कालमें इस गाँवका महत्व अवश्य था किन्तु अब तो यहाँ कुछ भी नहीं है। उ० अ० २६°२० और पू० दे० ७५°३८। यह हिसारसे १३ मील पर वायव्य दिशामें बसा हुआ है। ऐसी किंबदन्ती है कि अग्रवाल बनियोंकी उत्पत्ति यहाँ ही से हुई है और इसीसे इसका बहुत कुछ महत्व भी है। पुराने किले और इमारतोंके खण्डहर इसके पूर्व-कालीन महत्वके साक्षी हैं। ११९४ ई० में जब मुहम्मद गोरीने इस नगरको जीत लिया तो 'अग्रवाल' जाति इधर उधर फैल गई। इसकी जनसंख्या लगभग १३०० है।

अघमर्षण—(१) मधुच्छन्दके कुलोत्पन्न एक ऋषि

(२) इसी नामके एक और ऋषि हो गये हैं।

(३) विन्ध्यापर्वतके पास इसी नाम का एक तीर्थ है। यहाँ पर प्राचेतसदक्षने बहुत समय पर्यन्त तप किया था।

(४) 'सन्ध्या' की एक विधि। इस शब्द का अर्थ 'पापक्षाल' है। ऋग्वेदके दसवें मण्डल के १९० सूक्तको यह नाम दिया गया है वह नीचे दिया जाता हैः—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत।
ततो राज्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
समुद्रादर्णवा दधिसंवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी ॥२॥
सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चांतरिक्ष मथोस्वः ॥ ३ ॥

इस अघमर्षण सूक्तमें पद पाठ न होना भी एक विशेषता है। इस सूक्तके पाठके अनन्तर जल हाथ में लेकर उसमें श्वास परित्याग करते हैं और उसे पृथ्वी पर गिरा देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर में जो पाप पुरुष का वास है उसे श्वास क्रिया से हाथ के जलमें बाहर कर अपने बायें ओर की भूमि में पटक कर उस पाप-पुरुषका नाश कर डालते हैं।

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापा पनोदनः।
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपाप प्रणाशनम् ॥

ऊपर लिखे हुए श्लोकसे इस सूक्तका प्रभाव तथा महत्व ज्ञात हो जावेगा। स्नानके समय भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। उस समयका फल भी नीचे दिया जाता है—पानीमें खड़े होकर तीन बार इसको पढ़नेसे गुरू, पत्नि, जननी, भगिनी, स्नुषा इत्यादिसे गमन करनेके समान भी पाप नष्ट हो जाते हैं।

अघारिया—आगरेसे निकलकर यह जाति अब सम्पूर्ण भारतवर्षमें पाई जाती है। सम्पूर्ण भारतमें ५५४११ से अधिक अघारिया हैं। उनमें से आधे तो केवल बरार और मध्य प्रान्तमें ही हैं। बिहार और उड़िसामें भी यह काफी पाये जाते हैं। सम्बलपुर, रायगढ़, सारंगगढ़, बिलासपुर, छोटा नागपुरमें इनकी बस्ती विशेष है। इनकी ऐतिहासिक कथासे यह विदित होता है कि पहले ये आगरेके समीप रहनेवाले राजपूतोंके वंशज हैं। इन्होंने देहलीके बादशाह के सामने कभी सिर न झुकाया—एक ही हाथसे सलाम करते थे। देहलीके बादशाहने एक षड़यन्त्र रचकर सबको बध करनेका प्रयत्न किया। सब तो मारे गये, किन्तु एक कुशलतासे निकल भागा और अपने बदले एक चमारको भेज दिया। आज तक भी पित्रोंको तर्पण करते समय उसको ये लोग जल देते हैं। एक ऐसी भी कथा है कि सेनामें इसी जातिके तीन भाई गजपति राजाके दरबारमें भरती होनेके लिये गये। राजाने तीन म्यानें उनके सामने रख दीं और उनमेंसे एक एक उठाने को कहा और जो कोई जो म्यान उठावेगा उसीके अन्दरकी वस्तुसे उसका कार्य निर्धारित किया जावेगा। एकने सोनेकी मूठ वाली म्यान उठाई किन्तु उसके अन्दर बैल हाँकनेकी चाबुक निकली, अतः उसके लिये खेतीबारीका कार्य निश्चित किया गया। उसके वंशज होनेसे ये लोग खेती करने लगे, किन्तु यथार्थमें ये तो अपनेको सोमवंशी राजपूत कहते हैं। कुछ लोगोंका ऐसा भी अनुमान है कि ये लोग आर्य जातिके हैं क्योंकि इनकी आकृति उन्हींके सदृश है। (Russell & Hira Lal's Tribe and caste of Central India.)

इनमें उच्च और नीच दो श्रेणियाँ होती हैं। नीच श्रेणीवालोंके पिता तो अघारिया होते हैं किन्तु माता बहुधा अहीरिन होती हैं। इनके ८४गोत्र होते हैं। इनमें साठ गोत्र वाले तो पटेल कहलाते हैं १८ गोत्र ऐसे हैं जो नायक कहलाते हैं और ६ गोत्रों को चौधरी की पदवी है।

इनके गोत्र कुछ तो ब्राह्मणोंके गोत्रोंसे मिलते जुलते हैं, कुछ राजपूत वंशोंके समान हैं और कुछ गोत्र ऐसे हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं है। कुलमें बहुधा ५, ६ साल पर कई विवाह एक साथ ही

किये जाते हैं।

इनके जातिके कुलदेवता 'दूल्हा' नामसे प्रसिद्ध हैं। गोंड़ोंमें भी यही देवता पूजे जाते हैं। ये लोग उड़िया ब्राह्मणोंके हाथका जल नहीं पीते। खेतोंमें ये प्रवीण होते हैं और बहुधा यही इनका धन्धा है, किन्तु इनकी स्त्रियाँ न तो खेतोंमें और न बाहरका और कोई काम करती हैं।

अघासुर—कंसने कृष्णका बध करनेके लिये यह राक्षस भेजा था। यह बकासुर और पूतनाका भाई था और कंसका सेना-नायक था। कृष्णबध के लिये इसने अजगरका रूप धारण किया। यह चार योजन लम्बा था। अत. इसके मुखको घाटी समझकर गो तथा ग्वाला इसके मुखमें प्रवेश कर गये तब कृष्णने भी इसमें प्रवेश करके अपना विराट रूप धारण किया, जिससे इसका पेट फट गया और यह मर गया। (भागवत द० स्क० अ० १२)

अघोरी—भारतवर्षमें साधुओंके अनेक पन्थ हैं। उनमेंसे यह भी एक है। यह अघोरी, अघोरपन्थी, औघढ़, और औगर इत्यादि अनेक नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इस पंथके साधु नर-मांस तक भक्षण करते हैं और अनेक अघोर-कृत्य (भाषामें इसीसे यह शब्द घृणायुक्त कार्योंका सूचक होगया है) करते हैं। इनका नाम बहुत प्राचीन समय से ही सुना जाता है।

नामार्थ—'अघोर' शब्द शिवका सूचक है। अतः इस नामसे सम्बन्ध रखनेके कारण यह शैव सम्प्रदायके विदित होते हैं। अघोरीश्वरके नामसे शिवकी पूजा (उपासना) मैसूरके इक्केरी शिवालय तथा अन्य स्थानोंमें की जाती है।

प्रचार—आधुनिक समयमें इसका अधिक प्रचार तो असम्भव है। १६०१ की जनसंख्यासे विदित होता है कि इनकी जनसंख्या केवल ५५८० थी और उनमेंसे ५१८५ तो केवल बिहारमें ही थे। शेष अजमेर, मारवाड़ तथा बरार इत्यादि स्थानोंमें थे। अंडमन द्वीपमें भी दो अपराधीकी हैसियतसे भेजे गये थे। १८६१ ई० में इनकी संख्या बहुत अधिक थी। उस समय संयुक्तप्रान्तमें ६३० अघोरी और ४३१७ औगर थे, बंगालमें ३८७७ अघोरी, और पञ्जाबमें ४३६ औगर थे। इनकी ठीक ठीक संख्या पता न लगनेका एक कारण यह है कि अन्य साधुओंकी तरह ये भी तीर्थादिकोंमें भ्रमण किया करते हैं; दूसरे जनता इस पंथवालोंको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। अतः ये अपना पंथ ठीक ठीक न बताकर अन्य सभ्य धर्मोंकी शरण लेते हैं। इनके मठ प्राचीन नगरोंमें बहुधा होते हैं। आबूका पहाड़, गिरनार, काशी, बुद्ध-गया, हिंगलाज आदि स्थानोंमें इनके मठ थे। अनेकेश्वरीयबाद हिंगलाज तक पश्चिममें पहुँचा था। अब तो धीरे धीरे इनके मठोंका लोप होता जाता है।

पंथका इतिहास—हुएनसॉङ्ग (चीनी यात्री) के भारत-वर्णनमें पहले पहल इनका वर्णन देख पड़ता है। मनुष्योंकी अस्थियों तथा नरमुण्डोंकी माला पहननेवाले (कापालिक), नंगे (निर्ग्रंथ) साधुओंको उसने भारतमें पाया था। इसके पश्चात् कापालिकोंका विशेष वर्णन मिलता है। शंकरविजयमें कापालिकोंके विषयमें आनन्दगिरिका कथन है कि उनके अंगोंमें चिता-भस्म पुती रहती है और गले में नरमुण्डोंकी माला पड़ी रहती है। माथे पर काला टीका लगा रहता है और बालोंकी जटा बनाये रहते हैं। व्याघ्रचर्मसे शरीरको ढके हुए बायें हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी और दाहिनेमें घंटा लिये रहते हैं। 'शंभो भैरव कालीनाथ' की रट लगाते हुए फिरा करते हैं। भवभूतिके 'मालती माधव' नामकी पुस्तकमें इसका उल्लेख इस भाँति मिलता है कि जिस समय अघोरघंट मालतीको वलिमें चढ़ाने जा रहा था उस समय माधवने पहुँच कर मालतीकी प्राण-रक्षा की। दबिस्तान (१६०० ई० में लिखी हुई पुस्तक) में भी इन साधुओंका वर्णन मिलता है। इस पुस्तकसे पता चलता है कि यद्यपि अन्न इनके यहाँ निषिद्ध तो नहीं माना गया है तौ भी ये नरमांस खाते हैं, अपनी विष्ठाका सेवन करते हैं और अक्सर उसको छानकर पी जाते हैं। ऐसी धारणा हो गई है कि कठिनसे कठिन कार्य भी इन क्रियाको करनेवाला कर सकता है। ये लोग 'अतिलि' अथवा 'अखरी' कहलाते हैं। गोरखनाथसे इस पंथकी उत्पत्ति हुई है। दबिस्तानके लेखकका कथन है कि एक ऐसे साधुको उसने देखा था जो नित्यकी तरह आनन्दसे गाता हुआ एक प्रेत (शव) पर चढ़ा हुआ फिरता था, और उस समय तक उसी शव पर सवार रहा जब तक वह सड़ने न लगा। तदनन्तर उसीके मांसको भोजन किया। इन साधुओंकी धारणा है कि ऐसे कृत्य करनेसे पुण्य प्राप्त होता है। गोरखनाथ एक मध्यकालीन विख्यात साधु हो गया है। इसके विषयमें अनेक कथायें कही जाती हैं, और कुछ तो इन्हें अपना गुरू मानते हैं और इन्हींसे अपनी उत्पत्ति बताते हैं।

पंथकी आधुनिक स्थिति—आजकल इनके विषय में अनेक घृणित तथा निन्दनीय विचार फैल रहे हैं। १६८७ ई० में लन्दनके थेवेनो नामक लेखक ने इनका वर्णन किया है। बम्बई प्रान्तके भड़ोच जिलेके एक गाँवमें जो 'डेबका' (Debca) के नामसे प्रसिद्ध है इनकी जो थोड़ी बहुत बस्ती है उसके विषयमें उसने लिखा है। इसका वर्णन वार्डके ग्रंथ (Ward's View of Hindus) में भी मिलता है। टाड साहबने अपनी पश्चिम भारतकी यात्रामें आबू पहाड़के अवघड़ोंका वर्णन किया है (Tod's Travel in W. India)।

उनका कथन है कि फतेपुरी नामक एक विख्यात अवघड़ पन्थी कई वर्ष तक एक ही गुफामें रहता था। अन्तमें उसीकी आज्ञानुसार वह उसी गुफा में जीवित ही चुन दिया गया (समाधिस्थ कर दिया गया)। टाडसाहबसे वार्ता करते समय एक महाशयने उन्हें सूचित किया था कि जब वह अपने मृतक भाईका शव स्मशानमें ले जा रहा था तो एक अवघड़ने उस शवको चटनी बनानेके लिये माँग लिया। कालिका देवीको बलि चढ़ाकर भोग लगानेके लिये ये मनुष्योंको पकड़ते थे (Martin Buchanan & E. India ii 492 f) बकनन साहबने अपनी पुस्तकमें इस प्रकार इन लोगोंका वर्णन किया है कि १९ वीं शताब्दीके आरम्भमें गोरखपुरमें एक अवघड़ बाहरसे पहुँचा और राजाके समीप पहुँच कर उसपर गन्दी चीजें फेंकना आरम्भ की। राजाने जिला न्यायाधीशके यहाँ यह समाचार भेजा। न्यायाधीशने नगर निर्वासनका दण्ड दिया। किन्तु न्यायाधीश तत्काल ही बीमार पड़ गया और राजाके पुत्रका तो देहान्त तक हो गया। लोगोंकी धारणा थी कि यह साधुके अपमानके कारण ही हुआ। 'The revelations of an Orderly' नामक पुस्तकमें इन लोगोंके कृत्योंके बड़े रोमाञ्चकारी वर्णन दिये हुए हैं। अन्तमें लेखकने इन सब प्रथाओंको कानून द्वारा बन्द करनेकी प्रार्थना सरकारसे बड़े प्रभावपूर्ण शब्दोंमें की है। इस पुस्तकके पश्चात् ही सड़कों पर बिल्कुल नङ्गे घूमनेकी प्रथा कानून द्वारा बन्द की गई और मनुष्य-मांसभक्षण भी कानूनकी दृष्टिसे दण्ड योग्य अपराध निश्चित हुआ। तथापि १८८७ ई० में उज्जैनमें एक ऐसे ही साधुओंकी मण्डली पहुँची और एक बकरी वहाँके अधिकारियोंसे माँगी, न मिलने पर वे क्रुद्ध होकर स्मशान पर पहुँच कर शवोंका मांस भक्षण करने लगे। पुलिस के रोकने पर भी इन नङ्गे साधुओंने उस समय तक अपनी यह क्रिया वैसी ही जारी रक्खी जब तक इनकी माँग न पूरी की गई। ड्रेक ब्राकमन नामक एक इण्डियन मेडिकल आफिसरके अनुसन्धानके आधार पर, एच० बालफरने एक अवघड़की कथा वर्णन की है। उनका कथन है कि पञ्जाबके पटियाला राज्यमें रहनेवाला एक लोहार जातिका मनुष्य नित्य भीख माँगा करता था। उससे एक अवघड़से भेंट हो गई और वह उसीका शिष्य बन गया। वह बद्रीनारायण, नैपाल, जगन्नाथजी, मथुरा इत्यादि भ्रमण करता हुआ अन्तमें भरतपुर पहुँचा। बातचीतमें उसने इस भाँति वर्णन किया है कि वह सब जातिका छुआ हुआ अन्न खा लेता है क्योंकि जाति-भेदमें उसका विश्वास नहीं है। यद्यपि वह स्वयं नर-मांस भक्षण नहीं करता क्योंकि उसमें उतनी शक्ति नहीं है, किन्तु मृतक को जीवित करनेकी शक्ति रखने वाले और मन्त्र सामर्थ्यसे परिपूर्ण अघोरी नरमांस भी खाते हैं। जिनको इतनी शक्ति नहीं होती वह मनुष्यकी खोपड़ीमें भोजन जलपान करते हैं। घोड़ेके मांसके अतिरिक्त अन्य सब मृतक पशुओंका मांस यह खाते हैं।

घोड़ेके मांसके लिये ही केवल क्यों आज्ञा नहीं है, इस विषय पर निश्चय रूपसे कुछ कहना कठिन है। कुछका मत है कि घोड़े और इनके पंथके नाममें समानता होनेके कारणही ये उसे नहीं खाते। कुछका कथन है कि पूर्व कालसे ही घोड़े गौ की भाँति पवित्र माने गये हैं। अतः उनको निषिद्ध माना है।

अवघड़ पन्थका अन्य हिन्दू धर्मोंसे सम्बन्ध—अघोरी अपनी ही क्रियामें लिप्त रहते हैं। उनको दूसरे धर्म सम्बन्धी विचार अभी तक भी भली-भाँति विदित नहीं हुए। काशीके समीपके आधुनिक अवघड़ोंकी उत्पत्ति महात्मा किनारामसे हुई है। किनारामके गुरू कालूराम गिरनार पर्वतपर १८वीं शताब्दीमें रहते थे। कुछ अवघड़ आज कल 'किनारामी' के नामसे भी प्रख्यात हो रहे हैं। इनके धार्मिक विचार तथा अन्य प्रथायें 'परमहंस' साधुओंसे मिलती जुलती हुई हैं। परमहंस ब्रह्मस्थितिमें निमग्न रहते हैं और उनके लिये सुख दुःख समान है। संसारसे बिल्कुल अलिप्त रहते हैं और भोजनादि के विषयमें भी कुछ विचार नहीं होता।

जीवनके साधनोंके विषयमें सरभंगीपंथ वाले भी बिल्कुल ही उदासीन होते हैं। किन्तु अवघड़ों

के समान घृणित तथा दुष्ट प्रकृति इन दोनों पंथों की नहीं होती। पञ्जाबके औघर साधुओंसे इनमें कितनी भिन्नता है, यह भी निश्चयरूपसे कहना कठिन है। अन्य पंथोंसे मुख्य भेद तो इनमें ये हैं कि ये मल खाते हैं और नरमांसका भी सेवन करते हैं। खाने पीनेके लिये मनुष्यकी खोपड़ी का प्रयोग करते हैं। काली आदि देवियोंके शाक्त उपासक जो कठिन तथा गूढ़ संस्कार करनेवाले होते हैं उनमें नरमेध और नरमांस-भक्षण वर्जित नहीं है। ऐसी उपासना ५ वीं शताब्दीमें पूर्वीय बंगालमें प्रचलित थी। कलि पुराणमें नरबलि का उल्लेख स्पष्ट आया है। अब भी उसके बदले कबूतर, बकरे, भैंसे इत्यादि बलि दिये जाते हैं। यह सब प्रथाएँ हिन्दुओंमें अनार्यों द्वारा प्रवेशकर गई होंगी। अब भी आसामकी ओर यह प्रथा बहुत कुछ प्रचलित है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि अवघड़ोंका इस धर्मसे बहुत निकट सम्बन्ध रहा होगा।

कुछका दूसरा भी मत है। जंगली जातियों में अब भी बहुतसे जादू टोना करनेवाले होते हैं। ये लोग अपनी आध्यात्मिक-उन्नतिके लिये तथा दूसरोंकी दृष्टिसे अपनेको बचाने तथा घृणाका पात्र समझाने के लिये ऐसे घृणित आचार व्यवहार करते हैं। अघोरियों का मूल यही होगा। शैव सिद्धान्तके आधार पर सब एक ही हैं, भेद कहीं कुछ है ही नहीं। इसीसे अवघड़ोंका प्रचार हुआ। किन्तु यह कल्पना आधुनिक ही है।

नरकपाल का बर्त्तनके समान उपयोग—कुछ जगह ऐसा भी विश्वास है कि नरकपालमें विशेष जादू रहता है। भारतके अघोरियोंके अतिरिक्त भी इसको उपयोग अन्य देशोंमें पूर्वकालमें होता था। पूर्व अफ्रिकाके वाड़ो (Wadoe) जातिमें राज्याभिषेकके समय राजा किसी युवक की खोपड़ी का बर्त्तनके स्थान पर उपयोग करता है। पूर्व राजपुरोहितके मरनेके बाद जब नया पुरोहित बनाया जाता है तो वह पूर्व पुरोहित की खोपड़ीमें पानी पीता है। इन लोगों की ऐसी धारणा है कि इस क्रियासे पूव पुरोहित की आत्मा नवीन पुरोहितमें प्रवेश कर जाती है। हिमालयमें हिमवातसे मरी हुई स्त्रियोंकी खोपड़ी भूतप्रेत बाधा दूर करनेमें नगाड़ेके समान व्यवहारमें लाई जाती है। इन सब बातोंसे यह पता चलता है कि पूर्वकालमें जो खोपड़ी इन सब क्रियाओंके लिये चुनी जाती थी वह विशेष सावधानीसे चुनी जाती थी किन्तु आजकल अघोरी इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। प्राचीन कालमें युरोप में जर्मन और केल्ट लोग भी इससे अनभिज्ञ न थे। एक कथा में इसका उल्लेख इस भाँति मिलता है कि जब अल्वाइन (Alboin) ने अपनी रानी से उसके पिताके कपालमें मदिरा लाने का बहुत आग्रह किया तो उसकी मृत्यु हो गई (Paulas Diaconus History Langol ii–28 in Gummere Germain Ong. 120) अब भी बहुतों का विश्वास है कि आत्महत्या किये हुए मनुष्य की खोपड़ीमें जल पीनेसे अपस्मार की व्याधि दूर होती है।

औघड़ोंको सजा—मनुष्यों का शव खाने और मृतकों का अपमान करनेके लिये आधुनिक काल में बहुतसे औघड़ों को कठिन कारावास दिया जा रहा है। १८६२ ई० में गोरखपुरके सेशन जजने एक औघड़ को मृतक का शव सड़क पर घसीट कर ले जानेके अभियोगमें इण्डियन पेनल कोडकी २७० और २९७ धाराके अनुसार ६ मास का कठिन कारावास दिया था। इसी प्रकारके और भी मुकदमों का पता १८८२ ई० में पञ्जाब के रोहतक जिलेमें, और देहरादूनमें १८८४ ई० में लगता है। १८८४ ई० में गंगाके तटपर नरमांस भक्षण करते हुए एक अघोरी को दो युरोपियनोंने पकड़ा था। उसके झोपड़ीके चारों ओर बाँसपर बहुतसे नरमुण्ड लटक रहे थे, जिनमें से एक तो बिल्कुल ताजा था।

अघोरी दीक्षा--प्रायः ये लोग अपने मन्त्र और दीक्षा-विधि गुप्त रखते हैं। बहुत सी बातें तो नवीन दीक्षा लेने वालोंसे भी गुप्त रक्खी जाती हैं। अतः इसका विश्वस्त पूरा पूरा ब्यौरा मिलना तो कठिन है। एक का कथन है कि दीक्षा-कालमें गुरू शंख बजता है और अन्य अघोरी दूसरे बाजे बजाते हैं। तदनन्तर गुरु नरमुण्डमें पेशाब करता है और उसीसे भावी शिष्यकी खोपड़ी मूड़ी जाती है। तदनन्तर वह नवीन शिष्य थोड़ी सी मदिरा और नीच जाति की भिक्षा का सेवन करता है। गेरूवा वस्त्र धारण कर हाथमें दण्ड धारण करके शिष्य अपने गुरूसे कानमें मन्त्र लेता है। कुछका कथन है कि इसी अवसर पर नरमांस भी आवश्यक है।

काशीके अघोरी दीक्षाके विषयमें कहा जाता है कि अघोरियोंके प्रथम पुरुष किनाराम की समाधि पर ही यह क्रिया की जाती है। समाधिपर दो प्याले—एकमें भांग और एकमें मद्य—रक्खे जाते हैं। जो अधूरी दीक्षा लेते हैं अर्थात् अपनी जाति

इत्यादि का ध्यान रखना चाहते हैं वे भाँग का प्याला पीते हैं और जो पूरी दीक्षा लेना चाहते हैं वह मदिरा पान करते हैं। तत्पश्चात् किनाराम के समयसे ही जो अग्नि अबतक प्रज्वलित रक्खी गई है उसे फल अर्पण करते हैं और कोई पशु बलि दिया जाता है। बहुधा बकरे की ही बलि दी जाती है। तदनन्तर गुरूके पेशाबसे मुण्डन कराया जाता है। अन्तमें सब लोग भोजन करते हैं और दीक्षा क्रिया समाप्त होती है। बारह वर्षके पश्चात् वह दीक्षित शिष्य पंथमें पूर्ण रूपसे प्रवेश करता है।

पहरावा और रूप—इन लोगोंके बहुत से चित्र जमा किये गये हैं। (Anthropological Society of Bombay.) इनके चित्रोंसे उनका शरीर चिता भस्मसे आच्छादित देख पड़ता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एकाकी चिन्ह इनके ललाट पर बना रहता है। रुद्राक्ष, सर्पकी हड्डियों, सूअरके दाँतों की माला इनके गलेमें पड़ी रहती है। इनके हाथमें नर-कपाल होता है। कभी कभी इनके गले में मनुष्यके दाँतों की माला भी देख पड़ती है। इनकी आकृति और रूप भयंकर तथा रोमाञ्च-कारी होता है।

अचल—(१) यह दुर्योधन का मामा और शकुनि का भाई था। यह अपने सम्पूर्ण कुटुम्बके सहित महाभारतके युद्धमें अर्जुन द्वारा मारा गया। अन्य मृत योद्धाओंके सदृश इसका भी दर्शन धृतराष्ट्र और गन्धारी को युद्धके पश्चात् व्यासजी की कृपासे हो गया था। (महाभारत ७-३०-१५-१५-३२८७९)

(२) विष्णु सहस्रनामके नामोंमें से एक नाम।

अचला—बम्बई प्रान्तके नासिक जिलेमें चान्दोर पहाड़ पर स्थित एक किला। यह दिंडोरीके बीस मील उत्तर स्थित है। १८१८ ई० में कैप्टन ब्रिक्ज़ने इसको एक पहाड़ी किला लिखा है और इस पहाड़ की चढ़ाई सीधी होनेसे कठिन है। इस किलेमें उस समयकी केवल किलेकी सतह और दो एकखम्भे पाये जाते हैं, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि किला पूरा बनाही नहीं। वहीं पर छप्पर की एक चौखूटी इमारत थी। कदाचित् वह मदिरा बेचने का गुदाम था। १८१८ ई० में कर्नल मेकडोवेलने त्रिम्बकेश्वरके किलेके साथ १७ अन्य किले जीते थे। उनमेंसे एक यह भी था। (Blackers Mahratta War-Page 322)

अचेष्ट—(आर्गन) वातावरण के वायुमण्डल में अन्य मूल द्रव्यों (Gas) के समान यह भी एक आधुनिक आविष्कृत गैस है।

यह वायुमण्डलमें बहुत कम प्रमाणमें पाई जाती है। १८९४ ई० के लगभग सौ वर्ष पूर्वतक लोगों का यही अनुमान था कि वायुमण्डल की सब कुछ जानकारी होगई है, अब कोई नवीन चीज़ पता लगाने को नहीं रह गई है। वातावरण के घटक से तात्पर्य है देशकाल-स्थिति के अनुसार अल्पांश में होनेवाली आर्द्रता। कर्बाम्ल वायु (Carbonic Acid), उज्जन (Hydrogen) अम्न वायु (Ammonia) इत्यादिके अंश अलग कर देने से वातावरणका मुख्य घटक नत्र (Nitrogen) और प्राण ही बच जाते हैं। अभीतक ऐसा ही विश्वास था। सर हेनरी कव्हेण्डीशके समय तक तो इस विषयमें किसीको तनिक भी सन्देह नहीं था।

यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि इसके आविष्कारका अवसर किस भाँति प्राप्त हुआ। माउंट द्वारा किये हुए प्रयोग कई वर्ष तक चलते रहे। उसने मुख्य-वायु उज्जन और नत्रका विशिष्ट गुरुत्व देखनेके लिये नवीन प्रयोग आरम्भ किये। उसने ह्वेर्नन हार्कोटकी रीतिके अनुसार ही इसको अम्नवायुमें मिश्रण कर रक्तोष्ण ताँबेके चूर्णसे इसका प्रयोग किया। इसमें ऊष्णताके प्रभावसे हवा के प्राणका संयोग अम्नके उज्जनसे होता है। इस क्रियाके पूर्ण होनेपर यह मिश्रण गंधकाम्लके साथ साथ मिलाकर वह (निर्जल) शुष्क किया जाता है। इसमें जो अवशेष नत्र रहता है मुख्यतः वह केवल वायुमण्डलका रहता है—अर्थात् अम्न से तय्यार किया हुआ ही नत्रका अंश रहता है। बहुतसे प्रयोगोंका फल एक ही आनेसे नत्रके विशिष्ट गुरुत्वके सम्बन्धमें कोई शंका नहीं रह गई, बल्कि मुख्य प्रयोगसे यह निश्चय हो गया कि बिना अम्नके उपयोगके, घटकके प्राणवायुके साथ ताम्बेके प्रयोगमें नत्रका विशिष्ट गुरुत्व ही होता है। इन प्रयोगोंके फल समान ही रहे। परन्तु हार्कोटकी रीतिसे तैयार किये हुए नत्रके विशिष्ट गुरुत्वमें $\frac{1}{1000}$ का अन्तर देख पड़ा। इसके बाद हार्कोटकी रीतिसे हवा १ भाग लेकर केवल शुद्ध प्राणको अम्नमें मिलाकर केवल अम्नसे ही नत्र तैय्यार किया। उसका विशिष्ट गुरुत्व देखनेसे प्रतिशत $\frac{1}{2}$ फरक मिला। हवाके प्राणवायुके संयोगी-करणको किसी रीतिसे तैयार करने पर जो नत्र आया, उसके और सप्रणिद, अम्न और अमोनिनत्रायितसे तैयार किये हुए नत्रके विशिष्ट गुरुत्वमें १० प्रतिशत का फरक पड़ने लगा। यदि यह कहा जाय कि यह फरक अशुद्धता

से आया तो वह संभवनीय नहीं है, और इतना फरक कैसे पड़ता है इसका भी निराकरण नहीं हुआ। दोनों रीतिसे तैयार किया हुआ नत्र आठ महीना रखकर देखनेसे भी उनके वि० गु० में कुछ फरक नहीं देख पड़ा। उसी प्रकार विद्युस्फुल्लिंग का भी कुछ परिणाम नहीं देख पड़ा।

तबसे ऐसी शंका होने लगी है कि हवामें नत्रकी अपेक्षा अधिक वि० गु० का कोई एक वायु (Inert gas) होगा। जिस कारणसे यह फरक पड़ता होगा। इसका पूर्ण निराकरण लार्ड रेले और सर विलियम रॅमसे ने किया। उस समय हवाका नत्र सर्व नत्राम्लभावी है अथवा नहीं, और वातावरण नत्र तथा दूसरे पदार्थोंका नत्र एकही है अथवा भिन्न भिन्न है, यह प्रश्न उठा। सर हेनरी कॅव्हेन्डीशने तो १७८५ ई० में यह प्रश्न करीब करीब हल ही कर दिया था। १८६४ ई० में रेले और रॅमसेने ब्रिटिश ॲसोसिएशन को वातावरणमें एक नये वायुके आविष्कारकी खबर दी। इस वायु पर किसी प्रकार का रासायनिक प्रभाव नहीं हुआ। इसलिये इसका अचेष्टअथवा निर्गुण (आर्गन) ऐसा नाम रखा गया इस नवीन वायुके गुण-धर्म संबंधी जिज्ञासा रॉयल सोसाएटीमें जनवरी १८६५ ई० में भेजी गई, और यह नवीन वायु वातावरणमें से पृथक् करनेका प्रयोग बड़े प्रमाणमें आरम्भ किया गया।

वातावरणमें से निर्गुण (जड़) वायु दो तरहसे पृथक् किया जाता है। पहली रीति कव्हेन्डीश द्वारा की गई थी किन्तु उसमें बहुत से सुधार किए गए हैं। इसमें हवा और उज्जनके मिश्रण पर विद्युस्फुल्लिंगकी क्रिया की जाती है और तैयार हुए नत्राम्लका शोषण पतले अल्कद्रव (Alchol) में होता है। इस मिश्रणमें से नत्र लुप्त हुआ अथवा नहीं, यह देखनेके लिये एक विछिन्नकिरणदर्शक यंत्र होता है। इसके बारीक छिद्रमेंसे देखनेसे यदि नत्र होगा तो एक पीली रेखा दिखाई देगी। यह पीली रेखा जिस समय बिल्कुल गायब हो जाय उस समय नत्रका पूर्णरूपसे लुप्त होना समझना चाहिए। इसके बाद अधिक शक्तिमान यंत्र, " विछिन्नकिरण " से देखा जाता है। अचेष्टका विछिन्न-किरण पर आश्चर्यमय प्रभाव होता है। परिस्थितीके अनुसार वह रक्तके समान लाल किरण होते हुए भी फौलादके समान नीला हो जाता है। विद्युत्प्रवाह का जोर तथा अन्य भार इत्यादि योग्य परिस्थिति में होनेसे अचेष्टका विछिन्न-किरण पर नीले रंग का प्रभाव पड़ता है।

दूसरी क्रियाके अनुसार हवाके नत्रका शोषण मग्न (Magnesium) से किया जाता है। इसके लिये मग्नधातुका बुरादा मज़बूत कांच अथवा लोहे की नलीमें भरना चाहिए। इस नलीके रक्तोष्ण होते ही ताम्रसे निष्प्राण की हुई हवा इसी रक्त मग्नमेंसे ले जानी चाहिये। मग्न धातु और निर्जल खट प्राणिदका मिश्रण, केवल मग्न धातुके साथ मिश्रण करनेके मुकाबलेमें अति त्वरित होता है। इस प्रकार तैयार किये हुए अचेष्टकी घनता १६.६४° होती है।

अचेष्ट पानीमें विद्राव्य होता है। १२° मान पर लगभग ४ प्रतिशत प्रमाणमें पानीमें विद्रुत होता है अर्थात् नत्रकी अपेक्षा २½ गुना अधिक अचेष्ट विद्रुत होता है। प्रायः सब ही वायुके विशिष्ट तापका गुणकांक १.४ होता है, परन्तु अचेष्टके विशिष्ट तापका गुणकांक १.६७ होता है। हवाके मानसे अचेष्टकी वक्रीभवनता केवल ६.६१ है। अचेष्ट का हवाके मानसे १.२१ होता है। हीन उष्णमानका परिणाम अचेष्ट पर क्या होता है वह निम्न लिखितकोष्टक में दिखया है।

नाम	स्थित्यन्तर दर्शक उष्णमान (क्रिटिकल टेम्परेचर)	स्थित्यन्तर दर्शक भार (क्रिटिकलप्रेशर)	उत्क्वथनांक (बॉइलिंग पॉइंट)	हिमांक (फ्रीज़िंग पॉइंट)
नत्र	−१४६.०	३५.०	−१९४.४	−२१४.०
अचेष्ट	−१२१.०	५०.६	−१८७.०	−१८६.६
प्राणु	−११८.८	५०.८	−१८२.७	?

अचेष्ट का मग्न (Magnesium) अथवा खटिक (Calcium) से संयोग नहीं होता। उसी प्रकार प्राण, उज्जन और नत्रसे भी इसका संयोग नहीं होता वह किससे संयुक्त होता है यह देखने के लिये अनेक प्रयोग किए गये हैं।

अचेष्टके साथ दूसरे तीन—सौरके अतिरिक्त—वायु वातावरणमें रहते हैं उनकी खोज रॅमसे और एम्०-डब्ल्यू०, ट्रॅवर्सने किया है। उनके नाम न्योन (निआँन) क्रिप्त (क्रिप्टान) और ज़ेनान (ज़ेन) हैं। इनको अचेष्टके सहचर भी कहते हैं। इन सबके धर्म अचेष्टके समान ही हैं। सर-विलियम रॅमसे का मत है कि इन सब अचेष्ट—सहचरों का एकत्र प्रमाण अचेष्टके ४००से अधिक न होगा। इन सबका भौतिकधर्म नीचे कोष्टक रूप में दिया है।

अनुक्रमांक	भौतिकधर्म	सौर (हेलियम)	न्योन (निआन)	अचेष्ट (अर्गान)	क्रिप्त (क्रिप्टान)	ज़ेन (ज़ेनॉन)
१	वक्राभवनत्व(रिफ्रक्टिव्हिटी) हवा=१	·१२३८	·२३५५	·९६८	१·४४९	२·३६४
२	घनत्व (डेन्सिटी) O=प्र=१६	१·९८	९·९७	१९·९६	४०·८८	६४
३	उत्कथनांक ७६० मात्रा सहस्त्रांश-भार (मीलीमीटर)	६ श.मू.ऊ.मा. (अॅवसो० व)	?	८६·९ मू.उ.मा.	१२१ ३०३ मू.उ.मा.	१६३·९ मू.उ.मा.
४	स्थित्यन्तरक उष्णतामान (क्रिटिकलटेंपरेचर)	?	मू.उ.मा.६८° के नीचे	१५५·६ मू.उ.मा.	२१०·५० मू.उ.मा.	२८७·७ मू.उ.मा.
५	स्थित्यन्तरकभार(क्रिटिकिल)प्रेशर	?	?	४० २मात्रा	४१·२४मात्र	४३·५मात्र
६	एक मात्रा शतांश रसका भारांक 1 c. c. liquid का वजन	?	?	१ २११२ ग्रॅ Gm.	२·१५५ ग्रॅ Gm.	३·५२ ग्रॅ Gm.

आजकल रासायनिक मूल तत्व तथा वायु (Gases) प्रत्येक प्रयोगशालामें मिलना सुलभ होने से अचेष्ट तय्यार करनेमें कठिनाई नहीं पड़ती। नत्रकी अपेक्षा अचेष्टमें वाष्प भाग कम परिमाण में होनेसे, वातावरण वायुके वाष्पमय होतेही अचेष्ट रासायनिक रूपमें जम जाता है। इससे प्राणका प्रमाण तो बढ़ता है किन्तु प्रयोगमें उससे कोई अड़चन नहीं पड़ती। रसरूप हवासे वाष्पमय होते समय भिन्न भिन्न स्थितिका पृथक्करण नीचे दिया जाता है। इससे इसका बहुत कुछ ज्ञान स्पष्ट हो जायगा—

अनुक्रमांक	प्राण का प्रतिशत प्रमाण	अचेष्ट का प्रतिशत प्रमाण	नत्र के साथ अचेष्टमें अचेष्टका प्रतिशत प्रमाण
१	३०	१.३	१.९
२	४३	२.०	३.५
३	६४	२.०	५.६
४	७५	२.१	८.४
५	९०	२·०	२०.०

अचोली—अफ्रिकाके 'अलवर्ट नियाजा' नामक झीलके उत्तरमें १०० मील पर नाइल नदी के किनारे रहनेवाले नीग्रो लोगोंको 'अचोली' कहते हैं। इन लोगोंमें गालों और जाँघों पर लहरियादार गुदने गुदवा कर अपना शरीर सुशोभित करनेकी प्रथा है। उनकी झोपड़ियाँ गोल होती हैं और भीतरसे कीचड़से लिपी रहती हैं। ये लोग शिकार कर अपना पेट भरते हैं, और युद्धके समय ढाल और तलवारों का उपयोग करते हैं।

अच्युताश्रम—यह अपनेको "चिदानंदानुचर" कहते थे। इससे यह विदित होता है कि, चिदानंद इनके गुरू थे। इनके शिष्य गोपाल याज्ञवल्की कृष्ण याज्ञवल्कीके पुत्र थे। इनके प्रार्थना करने पर शिवकल्याणने श्री अभनुवामृत की टीकाकी रचना की थी। इससे यह अनुभव किया जा सकता है कि शिवकल्याण इनके समकालीन अथवा किंचित पूर्वकालीन हो गये हैं। उनका काल १५५७ ई० था। (ग्रंथ—भगवद्गीता (१६१४ ?) ब्रह्मकथा, राम बोविया (सं० क० का० सू०)।

अच्युताश्रम शिष्य—उपरोक्त उल्लेखके आधार से यह कृष्ण याज्ञवल्की हो सकते हैं (१५५७)। अच्युताश्रमकी श्रीभगवद्गीता १६१४ ई० में लिखी गई और उनके शिष्यकी प्रार्थना पर शिवकल्याणने १६५७ ई० में टीका लिखी, ये दोनों कल्पनाएँ जरा संशयात्मक हैं। (ग्रंथ—शतक ज्ञान, शिवस्तुति, रामस्तुति (सं० क० का० सू०)]

अछनेरा—संयुक्त प्रान्तके जिला आगराके किरवाली ताल्लुकेमें यह एक गाँव है। आगरा और राजपूताना, मालवा और कानपूरके मार्गमें अछनेरा रेलवे जंकशन है। उ० अ० २७°१० और पू० रे० ७७°४६। यहाँकी जन संख्या ६००० के लगभग है। अट्ठारहवीं शताब्दीमें जाट लोगों की आबादी यहाँ बहुत थी और इस शहरका महत्व भी बहुत कुछ था। इसके बाद इसका लोप होकर जबसे रेलवेका जंकशन हुआ तबसे यह फिर महत्वका स्थान हो गया है।

१८५६ ई० के नियमकी २० वीं धाराके आधार पर यहाँकी शासनव्यवस्थाकी गई है। यहाँ व्यापार बिल्कुल नहीं होता। यहाँ पर बिनौला निकालनेका एक कारखाना है। इस कारखानेमें १५० मनुष्य काम करते हैं। यहाँ एक प्राइमरी स्कूल है।

अछूत—भारतकी कुछ नीच जातियाँ जिनको उच्चवर्णके लोग छूना पसन्द नहीं करते। (विशेष व्यौरेके लिये 'अस्पृश्य' देखिये)

अज—(१) परमेश्वरका नाम। (नहि जातो न जायेऽहं न जनिष्ये कदाचन। क्षेत्रज्ञः सर्व भूतानां तस्मादहमजः स्मृतः॥ महाभारत।

(२) प्रियव्रतवंशी ऋषभदेवके कुलोत्पन्न प्रतिहर्ता नामक राजाको "स्तुति" से उत्पन्न हुए दो पुत्रोंमें से यह ज्येष्ठ पुत्र था।

(३) एक ऋषि और उसका कुल।

(४) रघुका पुत्र। इसकी पत्नी 'इंदुमति' थी। 'अजविलाप' नामक रघुवंशका भाग बड़ा मनोरंजक है।

(५) (विदेह वंश) ऊर्द्ध्व केतु नामक जनकका पुत्र और पुरुजित जनकका पिता।

(६) सोमवंशी कुलोत्पन्न जन्हुराजाका पुत्र पुरु राजा। उसका यह नामान्तर है।

(७) भारती युद्धका एक पांडव पक्षीय राजा (भारत उद्योगपर्व अ० १७१)

अजगर—यह प्रचण्ड सर्प अमेरिकाके न्यू-गिनी-की खाड़ीके पास हिन्दुस्तान, पूर्वी द्वीपों. अफ्रिका के दलदलके भागों, तथा अन्य उष्ण कटिबन्धके प्रदेशोंमें विशेषतासे पाये जाते हैं। अजगरकी लगभग चालीस जातियाँ हैं। उनमेंसे अधिक अमेरिकामें हैं। मेक्सिकोसे ब्रेज़िल तकके प्रदेशमें एक जाति है जो मटमैली और सुघनी रंगकी होती है और जिस पर १५-१६ धारियाँ पड़ी रहती हैं। अजगरोंकी कई जातियोंका स्वभाव बिलकुल शांत होता है।

अजगर अपनेसे भी बड़े प्राणियोंको निगल सकता है। क्योंकि उसका जबड़ा बहुत बड़ा होता है। अजगर ३० फीट लम्बा होता है और प्रायः ६० फ़ीट तक लम्बा भी सुननेमें आया है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्राचीन रोम शहरके उन्नतिके समय १२० फ़ीट लम्बा सर्प ब्रेगाडॉसके किनारे पर पाया गया था। इस अजगरको मारनेके लिये रेग्यूलसके सैनिकोंने सब प्रकारके हथियार चलाये परन्तु कुछ उपयोग नहीं हुआ। इस अजगरने सिपाहियोंकी टोलियोंको निगल डाला। आखिरकार उस पर बड़े बड़े यन्त्र चलाये गये तब वह मारा गया। इस अजगरके विषय में जो कुछ कहा गया है उसमें कुछ सत्यता तो अवश्य है परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि इसकी लम्बाईके विषयमें अतिशयोक्ति की गई है।

यह बिलकुल सत्य है कि अजगर पूरे बकरे, सूअर तथा मनुष्यको निगल जाता है। १८६१ ई० मेंएक अजगरने एक कम्बल खा लिया था। परन्तु उसे वह पचा न सका। इस कारण वह चार सप्ताह पेटमें रहकर फिर मुँहसे निकल पड़ा। इसके बाद वह अजगर शीघ्र ही मर गया।

अजगर जातिका उल्लेख प्रायः वैदिक साहित्य, विशेषतः अथर्ववेदमें मिलता है। यज्ञमें दी जाने वाली बलिकी सूचीमें अजगरका भी नाम है। पुराणोंमें प्रायः राजा नलकी कथामें अजगरका उल्लेख आया है। निद्रावस्थामें दमयन्तीको छोड़ कर जब राजा नल चले गये थे तब उनको

जंगलमें खोजते समय दमयन्तीको एक विशाल अजगरने निगलना शुरू किया। तब दमयन्तीने बड़े ज़ोरसे चिल्लाना आरम्भ किया। उसके शब्द को सुनकर एक व्याधने आकर उस अजगरको मार डाला और दमयन्तीको उससे मुक्त किया। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि अजगरोंका भय हिन्दुस्तानमें प्राचीन कालसे ही है।

अजन्ता पहाड़—बुलडाना जिलेके दक्षिणी प्रदेशमें अजन्ता पहाड़ फैला हुआ है। इसे चांदोर, सातमाला, इनद्याद्रि सह्याद्रि आदि भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं। पश्चिमकी ओर जो सह्याद्रि पर्वत है उनमें जैसे पत्थर मिलते हैं वैसे ही इसमें भी मिलते हैं। नासिक जिलेमें मनमाड़ के पाससे सह्याद्रि पर्वतसे यह आरम्भ होता है और पूर्वकी ओर ५० मील तक फैला हुआ है। औसत ऊँचाई ४००० फुट है, पर कहीं कहीं इससे भी ज्यादा है। इसमें एक जगह बहुत बड़ा दर्रा है जहाँसे होकर जी० आई० पी० रेलवे लाइन गई है। मनमाडसे आगे अकईसे फिर इसका सिल-सिला शुरू होता है। आगे चलकर कासारीके पाससे इसकी एक शाखा और फूटती है जो ५० मील तक चली गयी है। वहाँ से यह बरार तक पहुँच गयो है। निजामके राज्यमें परभनी और निजामाबादमें भी यही पहाड़ है और वहाँ उसका नाम सह्याद्रि है। ये पहाड़ दक्षिणके पठारकी उत्तरी सीमा प्रतीत होते हैं। पहले गुजरात अथवा मालवाके व्यापार मनमाड़ और कासारी दर्रोंसे होते थे। सेना भी इन्हीं मार्गोंसे आती जाती थी। अजन्ता इस समय निजामके राज्यमें है और वह बौद्ध कालीन पत्थरकी खुदाईका बहुत सा अवशेष है। इस पहाड़में जहाँ तहाँ बहुतसे किले हैं।

ऊँचे शिखर—मारकिंदकी (मार्कण्डेय) ऊँचाई ४३८४ फीट है। ८०८ ई० में राजा लोग यहाँ रहते थे। यह बागलाना जानेके मार्ग पर स्थित है। इसी मार्ग पर सप्तशृंग नामकी श्रेणी है जिसकी ऊँचाई ४६५६ फीट है। धोडप—इस पहाड़ का सर्वोच्चशिखर है (४७४१ फीट) और-तुद्रई ४५२६ फीट है।

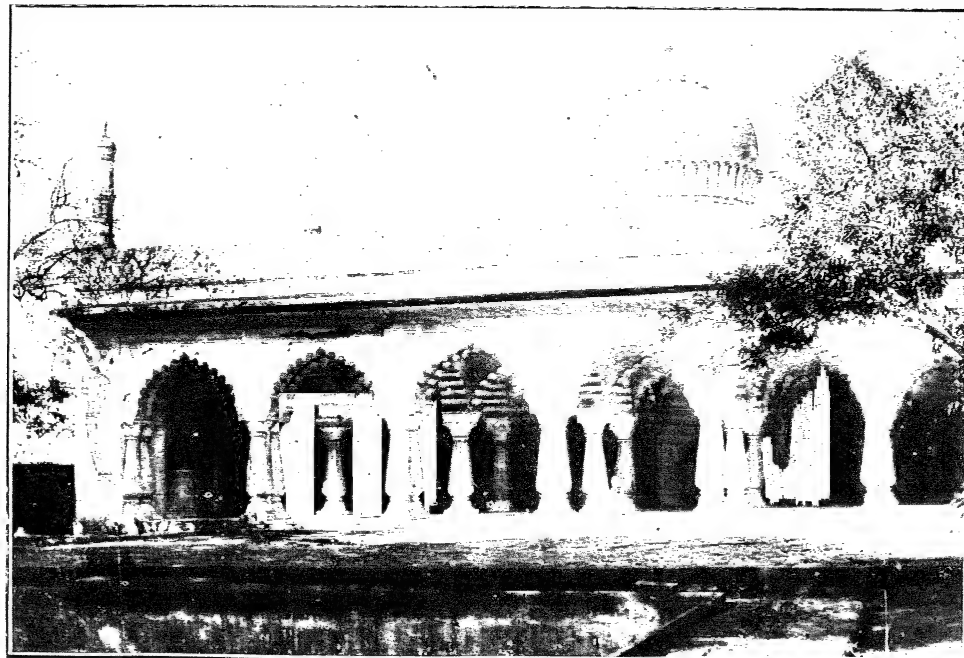
आइने अकबरीमें इसका उल्लेख हुआ है। उसमें इसका नाम सहिया वा सहसा मिलता है।

अजन्ता गुफायें—ये प्राचीन स्मारक निज़ाम के राज्यमें हैं। उ० अ० २०°२५ से पू० देशां ७६°१२ में स्थित है। गुफायें फर्दापुरसे दक्षिण पश्चिमकी ओर साढ़े तीन मील पर अजन्ता अथवा सह्याद्रि पर्वतकी एक मुख्य घाटी में हैं। यहाँ जानेके लिये जमनेर ब्रांच लाइन (जी० आई० पी० रेलवे) के पाचोरा जंक्शन से पाहुन स्टेशन पर उतरना चाहिये। यह जमनेरसे २५ मील है। यहाँसे २५ मील निज़ाम के राज्यमें होकर सड़कसे अजन्ता गाँव तक जाना पड़ता है। गाँवसे गुफा तक पहुँचनेके लिये पर्वतकी तीन चार श्रेणियोंको पार करना पड़ता है। गाँवसे गुफाकी दूरी भी लगभग तीन चार मीलकी होगी। यह पहाड़ी रास्ता बहुत कुछ ऊँचा नीचा टेढ़ा मेढ़ा और कष्टदायक है। गुफाके पासकी घाटी भयानक तथा बिल्कुल सुनसानमें है।

पर्वतकी शिखा पर पहले लेणापुर नामक एक गाँव था। वहाँ जानेके लिये गुफाओंके भीतरसे सीढ़ियाँ खोदकर रास्ता बनाया गया था। प्राचीन कालमें ये गुफायें सड़कके किनारे पर ही थीं। यहाँका प्राकृतिक बनदृश्य अत्यन्त मनोहर है। ह्युएनसांग (चीनी यात्री) ने इन गुफाओंका उल्लेख अपनी पुस्तकमें किया है किन्तु उसने स्वयं ये स्थान नहीं देखे थे (Stan. Julien Memo, Sur. les. cont Occident II 151)

उसके वर्णनसे ऐसा विदित होता है कि ये गुफायें उस कालमें बौद्ध धर्मावलम्बियोंका तीर्थ-स्थान था और सहस्रों मनुष्योंका आवागमन लगा रहता था। आगे चलकर जब बौद्ध धर्म का धीरे धीरे ह्रास होने लगा तो इन स्थानोंका भी महत्व बहुत कुछ घट गया। धीरे धीरे वहाँ की व्यवस्था भी खराब होने लगी और वहाँ जानेवाले यात्रियोंको अड़ोस पड़ोसके जङ्गली तथा क्रूर कोल भील लूट लिया करते थे तथा उनको जङ्गली जानवरोंका भी भय रहता था। अतः यहाँकी आमदरफ्त क्रमशः घटने लगी और यह स्थान उजाड़ होने लगा। यही स्थिति १८२१ ई० तक रही। उसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कालमें मद्रासके कर्मचारियोंको उस प्रान्तके निवासियोंसे इन गुफाओंका पता चला। यद्यपि मार्गमें हर प्रकार की असुविधा और अनेक भयकी आशंका थी तो भी सर जेम्स अलेक्जेण्डर (Sir James Alexander) ने इस सबकी पर-वाह न करके वहाँकी यात्राकी और वहाँ सकुशल पहुँच गया। उन गुफाओंको देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। वहाँसे लौटकर उन्होंने इसकी चारों ओर प्रसिद्धि करना प्रारम्भ कर दी।

१८४६ ई० से १८५५ ई० तक में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने मेजर गिलको यहाँके चित्रोंका



अजन्ता की खोह का एक दृश्य

सुलेमानी प्रेस, बनारस ।

उतारनेके लिये भेजा था। १८७४ ई० तक उसने सब गुफाओंका ठीक ठीक निरीक्षण करके बहुतसे चित्र भी उनके बना लिये थे※। उन गुफाओंमें खिड़कियाँ तथा द्वार बनाने का भी प्रयत्न किया गया था, किन्तु उसमें सफलता नहीं हुई। अब भी वहाँ सफ़ाईका काम होता रहता है।

सब गुफायें मिलाकर २९ हैं उनमेंसे दो अधूरी रह गई हैं। एक में तो जानेके रास्ता बड़ा बीहड़ है और दूसरीके लिये रास्ता ही नहीं है। इन गुफाओंमें नम्बर पड़े हुए हैं। इनमें से पाँच (९, १०, १९, २६, २७) चैत्य (बौद्ध मन्दिर) हैं। इनके आकार बाहरसे लम्बे तथा भीतरसे चन्द्राकार हैं। बीचमें खंभोंकी दो पंक्तियां हैं। सामने के भाग की ऊँचाई कम है। इनकी दीवारोंमें एक से तीन तक दरवाजे तथा दो दो खिड़कियाँ हैं। कुछ के आगे दालान हैं और उन पर बड़ी बड़ी छतें हैं। बाक़ी गुफायें बौद्धबिहारके रूपमें हैं। बहुधा ये चौकोनी हैं। उनमें अगल बगल कोठरियाँ है। इनमें भी खंभे हैं। बौद्धकी मूर्तियां इन में बहुत सी हैं।

कुछ गुफायें अधूरी रह गई हैं किन्तु केवल एकको छोड़कर बाकी सबमें चित्र अङ्कित किये हुए हैं। ये गुफायें ई० पू० २०० से ८०० ई० तक (अर्थात् १००० वर्ष) भिन्न भिन्न समयमें बनाई गई होंगी। कुछ गुफाओंमें शिलालेख भी मिलते हैं किन्तु उनसे कुछ विशेष पता नहीं चलता। इन चित्रोंके देखनेसे तथा उनपर विशेष ध्यान देनेसे तीसरीसे आठवीं शताब्दी तकके भारतकी रहन-सहन तथा उसकी सभ्यताका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। इन चित्रोंमें तत्कालीन राजा, रानी, मन्त्री, सेवकगण, किसान, सैनिक तथा कारीगर तत्कालीन पोशाक पहने हुए दिखाये गये हैं। और भी अनेक भिन्न विषयक चित्र दिये हुए हैं जिनसे उस समयके धार्मिक तथा सामाजिक विचारोंका बहुत कुछ ज्ञान होता है। कलाकी दृष्टिसे ये चित्र अद्वितीय हैं। ग्रिफिथ साहबका कथन है कि भावोंका ऐसा समावेश तो शायद संसारके किसीही चित्रालयमें देखनेको मिले।

गुफा नं० १—यह एक विहार है और इसके सामने एक दालान है। दोनों ओर तथा भीतर की तरफ़ कोठरी है। इसके खम्भों पर तथा भीतर दीवारों पर उच्चकोटिकी नक्काशी और पच्चीकारी की हुई है। बुद्धदेवके चरित्रके कुछ चित्र भी अंकित हैं। अन्दर और भी बहुतसे चित्र भिन्न भिन्न बीस विषयोंके दिये हुए हैं। इसमें ईरानसे आये हुए राजदूतोंको भी दिखाया है।

गुफा नं० २—यह भी पहलीकी तरह एक विहार है। बहुत सी खुदाईका काम किया हुआ है और लगभग ३८ चित्र हैं।

गुफा नं० ३—यह गुफा नं० २ के थोड़ी ऊपर बनी हुई है। यह असमाप्त ही छोड़ दी गई है।

गुफा नं० ४—यह सबसे बड़ा विहार है। खुदाईका थोड़ासा काम भी इसमें किया हुआ है किन्तु चित्र अधूरा एक ही है।

गुफा नं० ५—इसका भी काम अधूरा ही है थोड़ी बहुत खुदाईका काम किया हुआ है। यह भी एक विहार है।

गुफा नं० ६—यह दो मंजिला विहार है और सबसे पीछेका बना हुआ मालूम होता है। खुदाई का काम और कुछ रंगीन चित्र का काम इसमें किया हुआ है।

गुफा नं० ७—उपरोक्त विहारोंसे इसकी शैली भिन्न है। इसमें सिंहासनारूढ़ शाक्य मुनिकी मूर्ति है और उसके चारों ओर खुदाईकी काम की हुई अन्य मूर्तियाँ हैं। रंगीन चित्र भी हैं।

गुफा नं० ८—यह विहार सबसे प्राचीन है। कदाचित् यह ई० पू० १०० में बना होगा। इसके सामनेका भाग गिर चुका है। भीतर दो (गर्भ-गृह) कोठरियाँ हैं जिनमें मूर्त्तियाँ नहीं हैं।

गुफा नं० ९—यह भी ई० पू० पहली शताब्दीका निर्माण किया हुआ चैत्य है। इसमें स्तूप तथा थोड़ा बहुत खुदाईका काम है। बादके बनाये हुए ५ रंगीन चित्र भी इसमें हैं।

गुफा नं० १०—यह चैत्य ई० पू० २ री शताब्दी का बना हुआ है। इन गुफाओंमें यह सबसे प्राचीन है। इसमें स्तूप बना हुआ है तथा वासिष्ठिपुत्रका एक शिला-लेख है। इसमें चारों ओर चित्र बने हुए हैं और कुछ लिखे हुए अक्षर देख पड़ते हैं।

गुफा नं० ११—इस विहारके दोनों ओर दो कोठरियाँ हैं। दालानके बीचमें बुद्ध तथा किसी मनुष्यकी एक एक मूर्त्ति बनी हुई है। इसके अन्दरकी कोठरीमें चित्र हैं तो अवश्य, किन्तु वे ख़राब हो गये हैं।

※ इसने ३० बड़े बड़े चित्र खींचकर लंडन भेजे थे। उनमेंसे २५ सिडनहेमके स्फटिक मन्दिरमें रक्खे हुए हैं। १८६६ ई० के भीषण अग्निकाण्डमें ये सब जलकर खाक हो गये। Mrs. Speir's Ancient India नामकी पुस्तकमें कुछ खुदाईके कामके नमूने तो अवश्य दिये हुए हैं किन्तु गिलके चित्र इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

गुफा नं० १२—इसमें एक दालान तथा १२ कोठरियाँ हैं। इसमें एक शिला-लेख भी मिलता है।

गुफा नं० १३—इसमें एक दालान तथा ७ कोठरियां हैं। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

गुफा नं० १४—यह नं० १३ के ऊपरकी ओर है। इसमें भी कुछ खम्भे तथा एक दालान है। इनके खम्भे दूसरी गुफाओंके खम्भोंसे भिन्न हैं। ज़्यादातर इनमें चार कोनेके खम्भे हैं।

गुफा नं० १५—इस विहारमें आगेकी ओर एक दालान है जो चौकोर है। १० कोठरियाँ हैं और एक बुद्धकी मूर्ति भी है।

गुफा नं०१६—इस विहारका शिल्प-कार्य बहुत उच्च कोटि का है। इसमें की भव्य-बुद्ध-मूर्त्ति दर्शनीय है। १६ कोठरी इसमें है। इसके शिलालेखमें मध्यप्रान्तके विन्ध्यशक्ति आदि ६-७ वाकटक घरानेके राजाओं का उल्लेख है। इसमें बुद्ध चरित्रादिके १६ चित्र दिये हुए हैं।

गुफा नं० १७—यह एक विहार है और इसमें एक शिलालेख है। उसमें अश्मक, धृतराष्ट्र, उसका पुत्र हरिसांब, क्षितिपाल, उपेन्द्र गुप्त तथा उसके पुत्र स्काच इत्यादि अनेक राजाओंके नाम मिलते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहीं के राजा होंगे। इसमें ६१ चित्र हैं।

गुफा नं० १८—यह सुरंग एकको ढकनेके लिये और दूसरेमें जानेके लिये रास्तेके तौर पर खुदी हुई दिखाई देती है।

गुफा नं० १९—यह चैत्य अच्छी स्थितिमें है। इसमें खुदाई का काम बहुत सा किया है, और कुछ चित्रोंके अवशेष अभी तक हैं।

गुफा नं० २०—यह एक छोटा सा विहार है। इसमें एक दालान और कुल ६ कोठरियाँ हैं। इसमें एक बुद्धकी मूर्ति तथा कुछ खुदाईका काम की हुई आकृतियाँ हैं। चित्रोंके अवशेष भी मिलते हैं।

गुफा नं० २१—यह एक बिहार है। इसमें बहुत सा खुदाई का काम किया हुआ है। इसमें बुद्धकी मूर्ति और कुछ कोठरियां है। छतमें भूमि की आकृति वगैरहके चित्र हैं।

गुफा नं० २२—यह एक छोटा सा विहार है। इसमें शाक्य मुनिकी मूर्ति तथा विपष्यि, शिखि, विश्वभू इत्यादि बुद्धोंके चित्र हैं और कुछ शब्द भी लिखे हुए हैं।

गुफा नं० २३—यह एक विहार है और इसमें का गर्भ-गृह अधूरा ही रह गया है। चित्रोंका कुछ भी पता नहीं लगता।

गुफा नं० २४—यह एक अधूरा ही बना हुआ विहार है। इसमें जो खुदाईका काम किया गया है उससे प्रकट होता है कि यदि यह पूरा बन गया होता तो यह बहुत ही अनुपम होता।

गुफा नं० २५—यह एक छोटा सा विहार है। इसके एक ओर एक ही दालान है।

गुफा नं० २६—यह उन्नीसवीं गुफाके समान एक चैत्य है। इसमें खुदाई का काम बहुत ही अधिक है। इसमें दो शिलालेख हैं। इसमें मृत्यु शय्या पर पड़े हुए बुद्ध की एक भव्य मूर्ति है।

गुफा नं० २७—यह अधूरी ही रह गयी है।

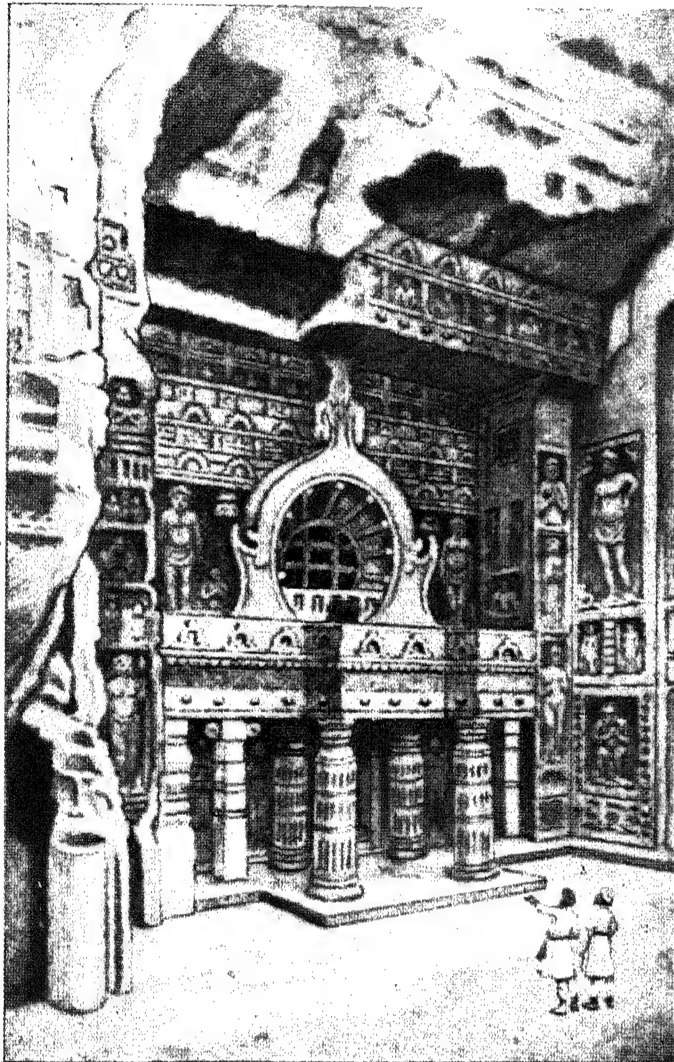
गुफा नं० २८—इसमें एक चैत्य का आरम्भ किया हुआ देख पड़ता है किन्तु अधूरा ही रह गया है।

गुफा नं० २९—इसमें प्रवेश करनेका कोई मार्ग नहीं है इसको एक ओर से खोदकर एक विहार का पता लगा है।

"भारतवर्ष की नकाशी तथा खुदाईके काम की हुई गुफाओंका वर्णन" नामक फार्गुसन तथा बर्जेसकृत पुस्तकसे आगे दिया हुआ वर्णन उद्धृत किया गया है [पृ० २८५]

"यह गुफायें ई० पू० की पहली शताब्दीसे ई० की सातवीं शताब्दी तक बनाई गई थीं। उसमें जो बहुत प्राचीन हैं वह पैठणके शातकर्णीके समय की हैं। यह सब गुफायें बौद्धों की हैं। उनमेंसे जो प्राचीन हैं वह हीन-यान बौद्ध पंथ वालों की हैं। जो बादकी हैं वह महायान पंथ वालोंकी हैं। पहले बनी हुई में चैत्य तथा डागोबा की और बादकी में बुद्धकी मूर्तियाँ हैं। इन दोनों प्रकारकी गुफाओंमें रंगीन चित्र हैं। खुरखुरी दीवारों पर पहले ज़मीन (Ground) तय्यार करनेके लिये एक प्रकारका रंग लगया गया है; तदनन्तर चित्र बनाये हैं।

हीनयान तथा महायान पंथकी गुफाओंके भेद बिल्कुल स्पष्ट हैं। हीनयान पंथके भिक्षु एक दो साथी लेकर टूटी फूटी गुफामें एक कोनेमें पड़े रहते थे। उनका रहन सहन प्राचीन हिन्दूधर्मके सन्यासियोंके समान होता था। परन्तु महायान पंथके भिक्षु भव्य और सुन्दर गुफाओंमें रहकर सब प्रकारके सुखोंका उपभोग करते थे। हीनयान पंथके भिक्षु बुद्धके शरीर पर बने हुए डागोबाके चिन्हकी पूजा किया करते थे किन्तु महापंथी बुद्ध, बोधिसत्व तथा तारा आदिकी स्त्री-स्वरूप-शक्तियों की प्रचण्ड मूर्ति बनाकर पूजा करते थे। उनकी मूर्तिपूजामें विशेष आडम्बर था।



अजन्ता की एक चित्रकारी

सुलेमानी प्रेस, बनारस ।

सामान्यतः इन गुफाओंमें जो चित्र दिये गये हैं वे बुद्ध-चरित्र अथवा तत्कालीन जातिके इतिहासको प्रदर्शित करते हैं। बादकी बनी हुई गुफ़ाके एक चित्रमें ईरानके राजा खुसरूके यहाँसे आये हुए शिष्ट मण्डलीसे अपनी राज्य सभामें मुलाकात करते हुए राजा पुलकेश दिखलाये गये हैं।

निम्नलिखित दृश्यके वर्णनसे पता चलता है कि अजंताकी गुफाओंके चित्र कितने हृदयंगम तथा भावोद्दीपक हैं।

मृत्यु-शय्या पर एक राज-कुमारी पड़ी हुई है जिसके नेत्र अधखुले हैं, गर्दन लटकी हुई है और सारे अवयव शिथिल पड़ गये हैं। एक दासी उसे आधार दिये हुए है और दूसरी उसका हाथ अपने हाथमें लेकर बड़ी ही उत्सुकताके साथ उसके मुँह की ओर देख रही है। यह विश्वास हो जानेके कारण कि राजकन्याका जीवन अब शीघ्र ही समाप्त होने को है दूसरी स्त्रीके चेहरे पर विषाद की गहरी छाया पड़ी हुई है। एक और दासी पीछे खड़ी होकर राजकुमारी को हवा कर रही है और बाईं ओर दो पुरुष अति-दुःखित मुद्रासे देख रहे हैं। नीचे भूमिपर अन्य रिश्तेदार निराश स्थितिमें बैठे हुये हैं; उनमेंसे एक स्त्री तो मुँहपर हाथ रखकर फूट फूट कर रो रही है। (गुफा नं० १६)

यह हृदय-भेदक दृश्य चित्र-संसारके इतिहास में अत्योत्तम होनेके कारण पाश्चात्य पंडित भी इसकी सर्व श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। ग्रिफिथ साहब अपनी रिपोर्ट (१८७३-७४) में लिखते हैं कि चाहे फ्लारेन्टाइन (Florentine) कला इससे अधिक उत्तम चित्र भलेही खींच ले और वेनेशियन (Venetian) कला रंगमें भलेही इससे बढ़ जाय किन्तु इसमें जो भावोंका प्रदर्शन है वह और कहीं भी नहीं देख पड़ता।

गुफाओंके चित्रोंमें मुख्य व्यक्ति राजा होता है। पुराने चित्रोंमें (दसवीं गुफा १५० ई०) राजा एकही जातिके प्रतीत होते हैं, परन्तु इधर उधर चित्रोंमें (३००-६३० ई०) राजा विभिन्न जातिके मालूम होते हैं। ये सभी भारतीय प्रतीत होते हैं। किसी किसी चित्रमें राजा युद्ध, आखेट अथवा यात्रा इत्यादि करते दिखाये गये हैं। किसी किसी चित्रमें राजमहल अथवा राजसभाके कार्योंमें सलग्न दिखाए गये हैं। बहुतसे चित्रों में राजाके साथ रानियोंके भी चित्र हैं। उनके शरीर पर आभूषण हैं और वस्त्र ढाकेकी मलमल के समान बारीक दिखाये गये हैं। राजाओं तथा रानियोंके बाद राज-पुत्र राजाओंके प्रधान तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। दरबारी तथा स्त्रियों के चित्र बहुतसे स्थानोंमें हैं। राजमहलके चित्रों में कार्यव्यस्त सेवक सेविकाओंके दृश्य दिये हैं।

नौकरोंके पहरावे भी तरह तरहके हैं। युद्ध संबन्धी चित्रोंमें राजाके साथ सैनिकोंके चित्र हैं। पुराने चित्रोंमें (दसवीं गुफा) सारे सैनिक पैदल हैं और उनके पास फरसे, भाले, और डंडोंकी तरह हथियार हैं। बादके चित्रोंमें (४००-६०० ई०) पैदल सिपाहियोंके साथ साथ घुड़सवार भी हैं और उनके पास धनुष, बाण, तलवार, भाले चक्र, और आत्मरक्षार्थ ढाल तथा शिरस्त्राण आदि हथियार हैं। व्यापार तथा कारीगरोंके संबंधके स्वतंत्र चित्र नहीं है, परन्तु स्त्रियोंके शरीर के वस्त्रालंकारसे सुनार, जुलाहे नकाशीका काम करने वालोंके कलाकौशलकी कल्पना को जा सकती है। चित्रोंमें रथ आदि सवारियाँ तथा जहाज़ हैं। इससे स्थलीय तथा सामुद्रिक व्यापारकी कल्पना की जाती है। किसानोंके चित्र बहुत कम हैं। इन चित्रोंसे विदित होता है कि वे केला (१, १३) सुपारी (१, १८), आम (५), अंगूर (१४) इत्यादि फलोंकी खेती करते थे, उसी प्रकार इन चित्रोंसे बौद्ध, जैन, तथा ब्राह्मण धर्मकी रीति रस्मोंका बहुत कुछ पता चलता है। तात्पर्य यह है कि ऐतिहासिकोंके लिये ये गुफायें बड़े महत्व की हैं।

अजंताकी गुफाओंका वर्णन निम्नांकित व्यक्तियोंने दिया है।

1. Burgess Notes on the Buddha Rock Temples of Ajantha.
2. Mr. Griffith's Reports (1874-79)
3. Madras officers account 1819 T. B. L. S. III 520.
4. Sir James E. Alexandar's Visit in 1824 T. R. A. S. II 362.
5. Mr. Ralph's account of a visit in 1838 J. B. B. A. S. III Part II 71-72.
6. Lieut. Blake's Description, Bombay Courier 1839.
7. Description of Mandu & Ajantha. Bombay Times Press 1844.
8. Mr. Fergusson's Paper J. R. A. S. 1842.
9. Dr. J. Muir's journey from Agra to Bombay 1854.
10. Major Gill's Stereoscopic photographs of Ajantha & Elura 1862.
11. Dr. Bhau Daje's transcripts and translations

of Inscriptions J. B. B. R. A. S. VII 55-74.
12. Major Gill's Illustrations of Architecture & Natural History in Western India 1864.
13. Mr. Burgess Rockcut Temples of Ajantha Ind. Ant. III 269-274.
14. Griffith's accouut of the Frescoes Ind. Ant. I. 384; II 152; III 25, IV 253.
15. Dr. Rajendra Lal Mitra's Foreigners in Ajantha paintings J. A. S. Ben XLVIII 62.
16. Mr. Forgussons Choroes II in Ajantha Paintings J. R. A. S. New series XI.
बाम्बे गॅज़ेटियर—खानदेश, बुलडाना गॅजेटियर।

अजनाल—पंजाब प्रान्तके अमृतसर ज़िलेकी एक तहसील उत्तर अंक्षांश ३१°३७' से ३२°३' तक और पूर्व देशांतर ७४°३०' से ७४°५६' तक। क्षेत्रफल ४१७ वर्गमील।

तहसीलके दक्षिणके प्रदेशोंमें 'बारी' दोआबेमें नहरका पानी मिलता है। तहसीलकी जमीन कम उपजाऊ होनेके कारण खेती कम होती है।

इस तहसीलमें ३३१ गाँव हैं जिनमें अजनाल मुख्य है। ज़मीनका कुल लगान तथा कर मिला कर ३६१००० रुपये १६०३-४ ई० की आमदनी थी। [इ० गॅ०]

अजमतगढ़—संयुक्तप्रान्तके आज़मगढ़ जिले का एक गाँव। आज़मगढ़की जीयनपुर तहसील से घोसी जाने वाली पक्की सड़क पर यह गाँव दो मील पर बसा हुआ है। यहाँ का देवमन्दिर तालाब इत्यादि देखने योग्य है। १६१७ ई० से यहाँ एक अंग्रेज़ी स्कूल और एक पुस्तकालय भी खुल गया है। यहाँ की सलोना झील दर्शनीय है। जाड़े में बहुधा अंग्रेज लोग तलही चिड़ियों (Water-fowls) का शिकार खेलने आते हैं। यहाँ पर डाकखाना और शफ़ाखाना भी है।

अजमल खां—(जन्मकाल १८६५ ई०) यह भारतके बहुत बड़े यूनानी चिकित्सक (हकीम) हो गये हैं। अपने कालमें इनके टक्कर का दूसरा हकीम नहीं था। यह खानदानी हकीम थे। इनके पिता हकीम महमूदखाँ साहब भी अपने समयके विख्यात हकीम थे। इनकासम्बन्ध मुगल वंशके अन्तिम बादशाहके राजघरानेसे था और देहली ही इनका भी निवास स्थान था।

यूनानी चिकित्साका धीरे २ ह्रास होता जा रहा था। यह देखकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ और इसको पुनर्जीवित करनेके लिये आजीवन प्रयत्न करते रहे। इन्होंने कठिन परिश्रम करके १६१० ई० में एक आल इण्डिया वैद्यक एण्ड यूनानी कान्फ्रेन्सकी थी, जिसमें देशभरके बड़े बड़े चिकित्सक एकत्रित हुए थे। इस कार्यमें इन्हें पूरी सफलता मिली। इसके बाद इन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि देहलीमें एक तिब्बी कालिज खोला जावे जिसमें हिकमत और वैद्यक उत्तम रीतिसे पढ़ाई जावे। इसके लिये इन्होंने पूरा २ प्रयत्न किया और विलायत तक जाकर पूर्ण सफलता प्राप्त की। इन्होंने देशकी स्त्रियोंकी शोचनीय अवस्था देखकर उनके लिये भी अलग अस्पताल खोले। इन्होंने और भी कई सभायें और सोसाइटी इसी कामके लिये नियत की।

इनका हिकमतके विषयका ज्ञान विशेष उल्लेखनीय है। नाड़ी परीक्षाके लिये तो यह बहुत ही प्रसिद्ध थे। इनके विषयमें कहा जाता है कि केवल नाड़ी देखकर ही यह मनुष्यका रोग बता देते थे। कभी कभी तो नाड़ी देखकर ही मनुष्य के चित्तकी गति तक समझ लेते थे। सूझबूझ भी इस विषयमें इनकी विशेष प्रसंशनीय है। रोगका निदान (Diagnosis) भी बड़ा उत्तम करते थे। बहुतसे रोगी तो इन्होंने ऐसे अच्छे किये जो सारे संसारसे निराश हो चुके थे। इनमें विशेषता यह थी कि इनका इलाज बड़ा सरल तथा सस्ता होता था। धीरे २ यह इतने विख्यात हो गये थे कि इनके पचासों शागिर्द (शिष्य) बैठे हुए केवल नुसखे लिखा करते थे और इनको दम मारनेकी फ़ुरसत नहीं होती थी। बहुधा चिकित्सा के लिये इन्हें कलकत्ता बम्बई तथा बड़ी २ रियासतों तकमें जाना पड़ता था।

इतना कठोर परिश्रम करने पर भी यह बड़े शान्त और धीर प्रकृतिके थे। दयालुता और उदारता इनमें बहुत थी। समाजके लिये भी इन्होंने कम कार्य नहीं किया। हर एककी सहायता के लिये सदा तत्पर रहते थे। इनका मान सर्वत्र था। विलायत तक ये विख्यात थे और इनकी इज्जतकी जाती थी। यह कई भाषाके विद्वान् थे, अरबी और फ़ारसीके तो विशेष धुरन्धर थे। थोड़ी बहुत कवितासे भी शौक था और इन्होंने प्रारम्भिक जीवनमें बहुत सी कविता स्वयं भी लिखी हैं। बहुत सी तो इसमें उच्चकोटी की भी हैं।

जीवनके अन्तिम दिवसमें देशकी शोचनीय दशा देखकर ये राजनीति क्षेत्रमें कूद पड़े थे और १६२४ से तो इन्होंने देश-सेवामें बहुत कुछ भाग भी लिया था। असहयोग आन्दोलन (Non-cooperation) में अपने अपूर्व त्याग तथा देश

सेवाकी सच्ची लगनके कारण यह शीघ्र ही एक प्रधान नेता बन गये किन्तु देशके अभाग्यसे यह शीघ्र ही परलोक-गामी हुए।

अजमीढ़—(१) पुरुवंशोत्पन्ना सुहोत्राको ऐक्ष्वाकीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमेंसे ज्येष्ठ अजमीढ़ था। उसके तीन स्त्रियाँ थीं जिनसे उसे ६ लड़के हुए। बड़ी रानी धूमिनीसे ऋक्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीली नामकी दूसरी रानीसे दुष्यन्त तथा, परमेष्ठी, और तीसरी रानी केशिनीसे जन्हु उत्पन्न हुए। इन्होंने ही गंगा-प्राशन किया था। (आदिपर्व अ० ६४)

(२) हस्तिनापुर बसानेवाले सोमवंशोद्भव हस्तिके पौत्र विकुंठनाके पुत्र थे । इनकी चार रानियाँ थीं—(१) कैकेयी (२) गांधारी (३) विशाला तथा (४) ऋक्षा। इन चारोंसे मिलाकर चौबीस पुत्र हुए। ऋक्षाका पुत्र संवरण वंश-संस्थापक था।

(३) अजमीढ़ द्विमीढ़ तथा पुरुमीढ़ हस्तीनरके पुत्र थे। अजमीढ़से कण्व उत्पन्न हुए हैं। उनसे काण्वायन ब्राह्मण उत्पन्न हुए । अजमीढ़के बृहदिषु ऋक्ष नामक दूसरे पुत्रसे संवरण हुए थे। संवरणके पुत्र कुरुने ही कुरुक्षेत्र नामक धर्मक्षेत्रकी योजना की थी (विष्णुपुराण ४-१३)

(४) भरद्वाजके पुत्र मन्यु हुए। मन्युको बृहत्क्षत्र हुये। इनके पुत्र हस्तीको अजमीढ़ हुए। यह परंपरा भागवतपुराण (६-२१-३०) में मिलती है किन्तु अन्यपुराणोंमें भिन्न है। अजमीढ़के वंशज भी अजमीढ़के नामसे प्रसिद्ध हुए।

अजमेर-मेरवाड़ा—उत्तर अक्षांश २५°२५ से २६°४२ तक और पूर्व देशांतर ७३°४५ से ७५°२४ तक। यह राजपूतानेके बीचमें एक ब्रिटिश सूबा है। राजपुतानेका पोलिटिकल एजन्ट यहाँका कमिश्नर है। अजमेर और मारवाड़ मिलाकर यह प्रान्त बनाया गया है।

अजमेरके उत्तरमें जोधपुर, दक्षिणमें उदयपुर पूरबमें जैपुर तथा पश्चिममें जोधपुर है। मारवाड़के उत्तरमें भी जोधपुर और अजमेर है दक्षिणमें उदयपुर, पूरबमें अजमेर तथा उदयपुर और पश्चिममें जोधपुर है। यहाँका क्षेत्रफल २७११ वर्गमील है और १६०१ की जनसंख्या ५०१३६५ और १६२८-२६ ई० ४६५२७१ थी। इसमें से २६६५६६ पुरुष और २२५७०५ स्त्रियाँ थीं।

अजमेरका बहुतसा भाग रेतीला है और कहीं कहीं पहाड़ी है। अजमेरके समीप वह पहाड़ जिसपर तारागढ़ है समुद्रको सतहसे २८५५ फीट ऊँचा है। अजमेर पहाड़ी तथा पठार पर बसा है और ये पठार सारे भारतमें बहुत ऊँचे हैं। इस प्रांतमें बड़ी बड़ी नदियां नहीं हैं। यहाँके अनासागर तलाबके समीपके पहाड़से साबरमती नदी निकलती है। पुष्करके अतिरिक्त यहाँ कोई दूसरा ताल उल्लेखनीय नहीं है। अजमेर प्रान्तमें नेत्रोंको सुख देनेवाले प्राकृतिक दृश्य बहुत कम दिखाई देते हैं। परन्तु अजमेर शहरमें यह बात नहीं है। यहाँ पर वर्षाऋतु आरंभ होते ही सारे पहाड़ हरी साड़ी पहने हुए मालूम पड़ते हैं और सूर्यास्तका दृश्य देखने ही योग्य होता है। राजपुतानेकी मुख्य वनस्पतियां अरवली पर्वतके पूरबमें मिलती हैं। यहां पर विशेष करके पीपल, बर्गद, नीम और सेमरके पेड़ होते हैं। फलदार वृक्षोंमें अनार तथा अमरूद सब स्थानोंमें अधिक संख्यामें दिखाई देते हैं।

मेरवाड़ेमें शेर कभी कभी दिखाई देता है परन्तु चीते तथा लोमड़ियां बहुत हैं। उसी प्रकार बनसूअर, भेड़िया, नीलगाय अजमेरमें मिलती हैं। लोगोंको उनका शिकार करने का अच्छा शौक है।

यहांकी वायु स्वास्थ्यकर है, गरमीमें हवा सूखी और गरम होती है परन्तु जाड़ेमें वह ठंडी तथा उत्साहदायक होती है। साधारणतः अजमेरका तापमान जनवरी महीनेमें ५६°४, मईमें ६१°५। जुलाईमें ८४°६ तथा नवम्बरमें ६७°६ रहा करता है । १८६१ ई० में यहाँ वर्षाका मान लगभग २१°२ था। कुछ लोगोंका विचार है कि चौहान घरानेके राजपूत राजा अजने अजमेरका तारागढ़ नामक किला १४५ ई० में बनवाया था। परन्तु अन्य इतिहासकारोंका मत है कि अजय तथा अज ११०० ई० में हो गये हैं। प्रथम अज उसके बाद अजय और उसके पश्चात् अर्णोराजा सिंहासन पर बैठा। उसका पुत्र विग्रहराज जो विशालदेवके नामसे प्रसिद्ध है गद्दीपर बैठा। ११६२ ई०में विशालदेवका नाती पृथ्वीराज गद्दी पर था। मुहम्मदगोरीने उसको पराजित करके उसे अपने अधिकारमें कर लिया। तत्पश्चात् उसके चाचा हरिराजने स्वयं गद्दी छीन ली। परन्तु गोरीके सूबेदार कुतुबुद्दीनके बराबर कष्ट देते रहनेके कारण उसने शीघ्र ही आत्महत्या कर ली। अनेक राज्योंके छिन्न भिन्न और रक्तपात होनेके पश्चात् अंतमें मारवाड़के मालदेव राठौरके हाथमें यह प्रांतको चला गया। पश्चात् अकबर बादशाहने यह प्रांत अपने राज्यका एक सूबा बनाया। १७२१

ई० में मुगल राज्यकी अवनतिके समय फिरसे मारवाड़के राजा जसवंतसिंहके पुत्र अजितसिंह स्वाधीन हो गये कुछ वर्षोंके बाद अजमेरका क़िला तथा प्रांत मराठोंके अधिकारमें गया। अंतमें दौलतराव सींधियाके हाथसे १८१८ ई० की जुलाईमें यह राज्य अंग्रेजोंके हाथ लगा।

प्राचीन इतिहासकी दर्शनीय इमारतें अथवा प्राचीन चीजें तथा स्थान अजमेर और पुष्कर छोड़कर शायद ही कहीं हैं। अजमेर प्रांतके दक्षिणपूर्व भागमें बहुत पुराने हिन्दू मन्दिरोंके अवशेष दिखाई देते हैं।

१६०१ ई० के मर्दुमशुमारीके अनुसार (अजमेर २६७४५३ तथा मारवाड़ २०६४५६) अजमेर मारवाड़की आबादी ४७६६१२ (१६११ में ५०१३६५ और १६२८ में ४६५२७१) थी। यह १८६१ ई० से बहुत कम है और इसका कारण बराबर अकाल पड़ते रहना है। प्रत्येक वर्ग मीलके पीछे १७६ आबादी थी। वही सन् १८६१ ई० में २०० थी। इस प्रान्तमें ४ बड़े शहर तथा ७४० गाँव हैं। जन-संख्याके मानसे पुरुषोंका प्रमाण ५२.६ प्रतिशत है। १६०१ में निम्नलिखित स्थिति थी।

	टोटल	पुरुष	स्त्रियाँ
अविवाहित	१७६३३८	११३६४३	६२३६५
विवाहित	२३२६२०	११६४५१	११६४६६
विधुर तथा विधवा	६७६५४	२०६१४	४७०४०

छोटे लड़कोंकी शादीकी प्रथा कम है। दो अथवा अधिक स्त्रियाँ करनेकी प्रथा बहुधा नहीं है। उच्च जातिकी स्त्रियोंका दूसरा विवाह नहीं होता। मुसलमानोंमें तलाक़ देनेकी प्रथा प्रचलित है। जाट इत्यादि जातियोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है। मारवाड़में जायदाद माँकी ओरसे मिलती है। अजमेरके उच्च घरानोंमें सारी रियासत बड़े लड़केको मिलती है। छोटी लड़कियों को मार डालनेकी प्रथा कहीं नहीं है।

यहाँकी भाषा राजस्थानी तथा हिंदी है। लोग उद्योगी तथा उत्तम आचार व्यवहारवाले हैं परन्तु अकालके समय मारवाड़के मेर तथा अजमेरके मिन जातिके लोग डाका इत्यादि डालते हैं।

यहाँ हिन्दुओंके बाद मुसलमानोंकी जनसंख्या है। यहाँके हिन्दू वैष्णव, शैव तथा शाक्त, तीनों पंथोंके हैं। प्रतिशत ५५ आदमी खेती पर अपनी उपजीविका चलानेवाले हैं, कुछ लोग जुलाहोंका तथा चमड़ा कमानेका काम करते हैं। उच्च हिन्दू वर्गके लोग अधिकतर शाकाहारी हैं।

शहरोंमें मकान पत्थरोंके बने होते हैं परन्तु गावोंमें वे मट्टीके ही होते हैं। आरोग्यताकी (Sanitation) दृष्टिसे वहाँके मकान अच्छे नहीं हैं। कबड्डी कसरत, पटाबाजी, कुश्ती आदि यहाँके खेल हैं। आजकल क्रिकेट, फुटबाल आदि अंग्रेज़ी खेलोंका भी समावेश होने लगा है। लोगोंमें गाना बजाना सितार, बीन, आदि की विशेष रुचि है।

होली, दिवाली, विजयादशमी और तेजाजी का मेला इत्यादि यहाँके हिन्दुओंके मुख्य त्योहार हैं। यहाँ व्यापारी लोग गणगौर नामक एक त्योहार मनाते हैं। पार्वती देवीका अपने पिताके यहाँ वापस जानेका यह मेला होता है। तेजाजीका मेला जाटोंका उत्सव है। तेजाजी नामक एक जाट योद्धा हो गया है।

यहाँकी खेतीकी स्थिती सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि मट्टी उपजाऊ नहीं है। बहुतसे टीले, छोटी छोटी चट्टानें सब ओर फैली हुई हैं। यहाँ वृष्टि बहुत कम और अनियमित होती है। इस कारण जमीनमें खाद अधिक डालनी पड़ती है।

गेहूँ, ज्वार, मक्का, कपास इत्यादि यहाँकी मुख्य पैदावार है। पुष्कर नदीके आस पास ऊँखकी खेती की जाती है और तड़गोड़ तहसील में अफीमके पौधे लगाये जाते हैं। एक जाड़ेमें और दूसरी वसंतऋतुमें—दो फसलें होती हैं।

जमीनकी लगान पैदावारके रूपमें दी जाती है। पैदावारके $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ तक मालिकको लगान मिलता है। कुछ स्थानों पर लगान धनके रूपमें देते हैं। मजदूरोंको मजदूरी दो आनेसे चार आने रोज तक होती है। कारीगर (पेशराज), बढ़ई लोहार इत्यादिको चार आनेसे आठ आने तक रोज मिलता है। देहातोंमें मजदूरोंको अनाज देने की प्रथा है। शहरमें मध्यम श्रेणीके लोग खाने पीनेसे खुशहाल हैं, परन्तु किसानोंकी दशा अभी तक सुधरी नहीं है।

अजमेर मारवाड़के पहाड़ोंमें धातुओंकी अनेक खानें हैं। अजमेरके उत्तरके पहाड़में लोहे और ताँबेकी खानें हैं और तारागढ़के पहाड़में सीसा (lead) पाया जाता है।

अजमेरमें कला अथवा अन्य प्रकारके काम विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं, मारवाड़की तो बात ही छोड़ दीजिये। कहीं कहीं करघों पर कपड़ा, और हाथी दाँत और लाखकी चूड़ियाँ बनती हैं। अजमेरके जेलमें दरियाँ और कालीन बनते हैं।

इस प्रान्तकी राज्य-व्यवस्था कमिश्नर करता

है। वह अजमेरमें रहता है। प्रधान न्यायाधीश, पुलिस विभाग, जंगल विभाग और शिक्षा विभाग के अधिकारियों पर उसका पूरा अधिकार रहता है। इसकी मददके लिये दो असिस्टेन्ट कमिश्नर होते हैं। इस प्रान्तके तीन भाग किये गये हैं। वे अजमेर, मारवाड़ और तोड़गढ़ हैं। राजपूतानेके गवरनर जनरलका एजेन्टही चीफकमिश्नर होता है।

अजमेरमें लगानकी पद्धति राजपूतानेकी अन्य रियासतोंके समान है। जमीनके दो भाग किये गए हैं —एक खालसा और दूसरा इस्तमरारी (सेनाके लिये छोड़ी हुई जमीन)। परन्तु जब यह प्रान्त मरहठोंके अधिकारमें आया तब उन्होंने अपने लाभकी दृष्टिसे सेनाके लिये जमीन लेनेके बदले एक निश्चित कर धन-रूपमें लेना आरम्भ किया। जब यह प्रांत बृटिशोंके अधिकारमें गया तब उन्होंने यह लगान (कर) बहुत बढ़ाया। परन्तु १८७३ ई० में इस्तमरार लोगोंको सनदें दी गईं और लगान स्थायी रूपसे निश्चित कर दिया गया।

दूसरी ध्यानमें रखने योग्य यहाँ की 'भूमि' पद्धति है। ऐसी जमीनके मालिकको भूमिया कहते हैं। पहले भूमियोंके काम तीन प्रकारके होते थे— (१) जिस गाँवमें भूम होता था वह उसका रक्षण करता था। (२) जो यात्री लोग आते थे उनके जान मालकी रक्षा करता था। (३) असावधानीसे हुए नुकसानको भर देना। आज कल इन लोगोंका काम लड़ाईमें सरकारको मनुष्योंकी सहायता करना है।

बृटिश राज्यके पहले मारवाड़में कोई खास सत्ता न होनेके कारण वहाँकी जमीनके लगान इत्यादिकी कुछ पद्धति नहीं थी। १८५१ ई० में जो पैमाइश हुई उसमें (अजमेरके) सब जमीन जोतने वाले जमीनके मालिक बनाये गये।

आमदनीका दूसरा उपाय अफीमका कर है। इस देशकी अफीम चीन तकमें जाती थी।

कुछ वर्ष पूर्व यहाँके ऊँचे दर्जोंके विद्यार्थी एलाहाबाद युनिवर्सिटीकी परिक्षामें शरीक होते थे; किन्तु अब यहाँ (Intermediate Baord) इन्टरमीडियेड बोर्ड अलग स्थापित हो गया है और एफ० ए० तकके विद्यार्थी वहीं परीक्षा दे लेते हैं। बी० ए० के लिये यहाँके कालिज आगरा युनिवरसिटीसे सम्बन्ध रखते हैं। यद्यपि कुछवर्ष पूर्व तक एलाहाबाद युनिवरसिटीसे ही उनका संबंध था। १९०२-३ में स्कूलोंमें शिक्षा पाने वालोंकी संख्या ४७१८ थी और कन्याओंकी संख्या १८४८ थी। अब तो यह संख्या उत्तरोत्तर बहुत बढ़ती जा रही है। स्कूल, कालिज इत्यादिमें पढ़ने वालोंकी संख्या १९२८-२९ ई० में १२९९० थी और ऐसी कन्याओंकी संख्या २४८८ थी।

अजमेर—यह राजपूतानेके अजमेर–मारवाड़ प्रान्तका मुख्य शहर है। उ० अ० २६°२७' और पू० रे० ७४°३७'। यह शहर बम्बईसे ६७७ मील उत्तर है। (१९११ ई०) में यहाँको जनसंख्या ८६२२२ थी। १८७९ ई० से यहाँ रेलगाड़ी बनजानेसे यहाँकी जन-संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जाती है। (इस शहरके इतिहासके संबंधमें अजमेर-मारवाड़ देखो।)

यह शहर तारागढ़ पहाड़के नीचे बसा है। यहाँकी सड़कें चौड़ी हैं। इमारतें भी सुन्दर हैं। शहरके चारो ओर एक घेरा बना हुआ है। उसमें पाँच फाटक हैं। घेरेकी स्थिति अच्छी नहीं है। तारागढ़ पहाड़ पर किला बना हुआ है। किलेके नीचे शहर बसा है। किलेकी ऊँचाई लगभग १३००-१४०० फीट है। १८३८ ई० में किला बेकार हो गया। १८६० ई० से किलेमें नसीराबाद और मऊकी अंग्रेजी सेना ग्रीष्म ऋतुमें रहती है। किलेमें सय्यद हुसैन नामक एक मुसलमान फ़कीरकी कब्र है। ऐसा उल्लेख है कि १७२८ ई० अर्थात शक १६६१ में नादिरशाहने दिल्ली लेनेके बाद इस पीरके दर्शनके लिये आनेका इरादा किया था। (रा० खं० ६-१३३, २४४) किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वह फकीर यही था अथवा मुइनउद्दीन।

अजमेरमें अनेक प्राचीन इमारतें हैं। 'अढ़ाई दिनका झोपड़ा' नामक एक मसजिद बहुत प्राचीन है। प्रथमतः यह मसजिद चौहान वंशीय राजा विशालदेवकी बनवाई हुई वेधशाला थी, परन्तु मुहम्मदगोरीने इसे मसज़िदके रूपमें बदल दिया। ऐसा कहा जाता है कि जिस समय मुहम्मदग़ोरी इस शालाके पाससे जा रहा था, उस समय उसने फर्माया था कि अढ़ाई दिनके बाद आने पर यह शाला मसजिदके रूपमें होनी चाहिये और वह उस मसजिदमें नमाज पढ़ेगा। इसलिये इस मसजिद का नाम 'अढ़ाई 'दिनका झोपड़ा' पड़ा। आज कल मसजिद उत्तम स्थितिमें है। दिल्लीका कुतुब मीनार और यह मसजिद करीब करीब एकही समयमें बनवाई गई थी। अजमेरसे दस मील पर पुष्कर तीर्थ नामक एक प्रसिद्ध सरोवर है। (पुष्कर देखो)।

अनासागरके तालाब पर शाहजहाँ बादशाहके बनवाये हुए संगमर्मर के पाँच क्रीड़ागृह अत्यन्त रम्य हैं। इनमेंसे एक जीर्ण हो गया है किन्तु शेष अच्छी स्थिती में हैं। इनमें तीन क्रीड़ागृहोंमें पहले वृटिश अधिकारी रहते थे। आजकल उनको पूर्व स्थितीमें रक्खा है।

'दरगाह ख्वाजा साहब' नामक एक दूसरी इमारत देखने योग्य है। इसमें मुइनउद्दीन चिश्ती नामक एक फकीरकी कब्र है। १२३५ ई० के लग भग इसका देहान्त हो गया। यहाँ प्रतिवर्ष मुसलमानी महीने रज्जबमें 'उरूस' होता है। दरगाहमें अकबर और शाहजहाँकी बनवाई हुई मसजिदें हैं। अकबरकी बनवाई हुई मसजिदमें चित्तौड़की लूट में मिला हुआ नगारा और पीतल के दीवट (दीया) रखे हैं।

अकबरने अजमेरमें किला बनवाया। किला चौखूटा है और प्रत्येक कोने पर अष्टकोनी बुर्ज हैं। मुग़ल बादशाह अजमेरमें इसी किलेमें रहा करते थे। मरहठोंके समय यही उस प्रांतका मुख्य स्थान था। आजकल किलेमें तहसीलकी कचहरी है। मूल इमारतमें बहुत सा रद्दोबदल करनेके कारण उसका रूप बिल्कुल पलट गया है। शहरके आस-पासका घेरा आजकलका ही है, उसमें बने हुए फाटक दिल्ली दरवाजा, मदार दरवाजा, उस्री दरवाजा, आगरा दरवाजा और त्रिपोलिया दरवाजा के नामसे प्रसिद्ध हैं।

अनासागरके पासही सत्तरहवीं शताब्दी में जहाँगीर बादशाहके समय बनवाया हुआ दौलत बाग है। उसमें बहुतसे प्राचीन वृक्ष हैं। उसपर आजकल मुनिसीपॅलटीकी देख रेख है और शहर के लोगोंकी हवाखोरीका एक मुख्य स्थान बन गया है।

व्यापार और उद्योग-धन्दा—अजमेर एक बहुत बड़ा स्टेशन है। यहाँ पर अनेक प्रसिद्ध आढ़तें हैं। उनका व्यापार आसपासके रियासतोंसे होता है। कुछकी शाखाएँ तो हिन्दुस्तानके मुख्य मुख्य शहरोंमें भी है।

१८६९ ई० से यहाँ म्युनिसीपैलिटी स्थापित हुई। १९०२ ई० में इसकी आय १८३००० रु० थी। १८९१ और १८९२ में अकाल निवारणार्थ गरीबोंसे कराए हुए काममें फॉय सागर नामक तालाब बन जानेके कारण गाँवको पानीकी बहुत सुविधा हो गई है।

शिक्षा—उच्चशिक्षाके लिये मेयो कालेज और सरकारी आर्टस कालेज यहाँ की संस्थायें हैं। मेयो कालेज में राजाओं के लड़के शिक्षा ग्रहण करनेके हेतु आते हैं।

अजमेरमें कारागृह और एक बड़ा औषधालय है। राजपूताने में जो नो मुख्य शहर हैं, उनमें से अजमेरका दूसरा नम्बर है (१८८१ ई० के जनगणना से इसकी आबादी बढ़ती दिखाई देती है। अजमेर और बीकानेरके अतिरिक्त सब शहरोंकी आबादी कम होती जाती है। इस कारण अजमेर और बीकानेर की वृद्धि ध्यानमें रखने योग्य है। यद्यपि पैदाइशकी संख्य ठीक ठीक नहीं लिखाई जाती तो भी अजमेरकी जनसंख्या बढ़ती ही जा रही है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अजमेरकी जन संख्यामें ४० प्रति शत लोग अन्य राज्योंसे आये हुए बहिरागत हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अजमेरमें उत्पत्तिकी अपेक्षा मृत्युही अधिक होती हैं। बहिरागतोंमें से ½ संयुक्त प्रान्तके होते हैं। अजमेर में प्रायः सब जातियोंके लोग मिलेंगे। सबसे अधिक संख्या 'शेख' जातिके मुसलमानों की है। इसके बाद ब्राह्मण, पठान, धीमर, महाजन, राजपूत, ईसाई, सय्यद, कायस्थ इत्यादि जातियोंकी संख्या क्रम से है। बाहरसे आनेवाले लोग प्रायः सकुटुम्ब आते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वह स्थायी रूपसे रहने के लिये आते हैं।

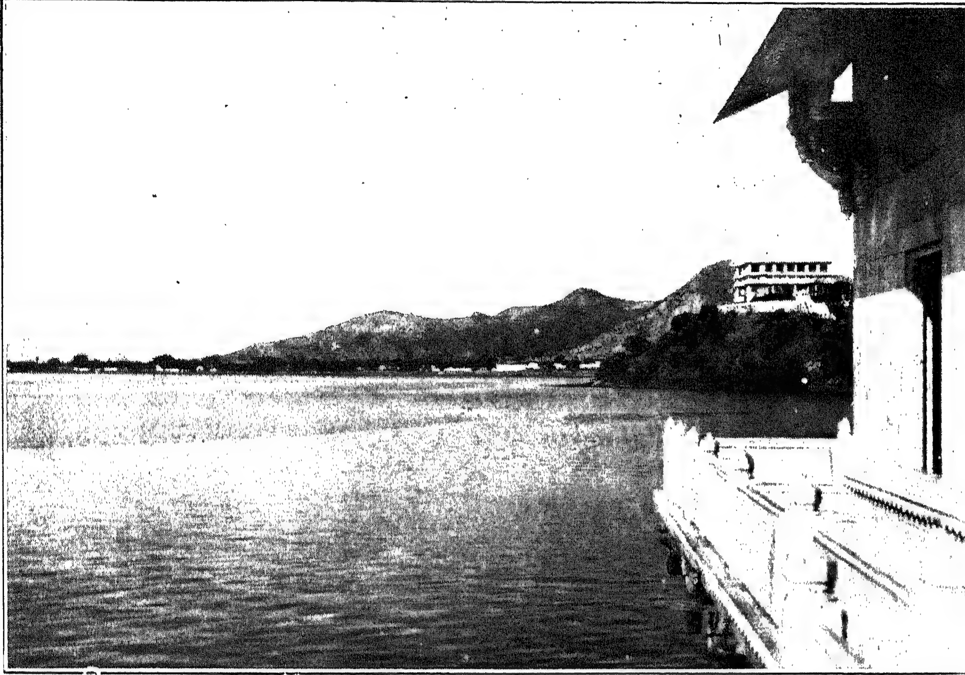
यहाँ तीन अस्पताल और एक नर्सिंग ऑसोसियेशन है। कालेज, हाईस्कूल, दो कन्याओं और बालकोंकी पाठशालाएँ, रेल्वेटेक्निकल स्कूल (Railway Technical School) इत्यादि अनेक शिक्षाके लिये संस्थायें हैं।

हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयोंकी अनेक अन्य संस्थाएँ भी हैं। यहाँसे चार समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। यहाँ अनेक कम्पनियाँ हैं जिनकी शाखाएँ सारे राजपुताने और भारतके मुख्य मुख्य नगरोंमें है। अजमेरजेलमें दरियाँ और कालीन बहुत अच्छी तय्यार होती हैं। यहाँ की चन्दनकी कंघियाँ और मालाएँ प्रसिद्ध हैं। दो जिनिंग (Ginning) के कारखाने, चार आटे की मिलें, दो बर्फके कारखाने, और लोहेकी ढलाईके कामके कारखाने हैं।

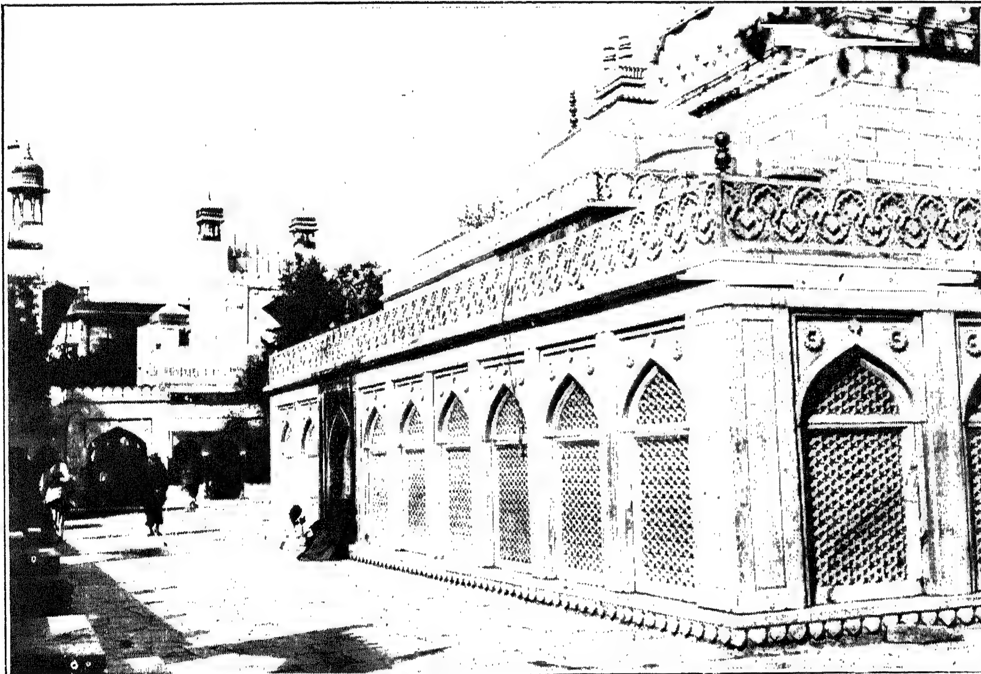
अजमेर शहर और उसके नामकी उत्पत्ति—कर्नल टाड का कथन है * कि पुष्करका अजपाल नामक एक चरवाहा चौहान राजा बुसिलदेव (बीसलदेव) का पूर्वज था। उसने यह शहर बसाया था और इस शहरका नाम इसीके नामपर पड़ा।

* Annals & Rajasthan Vol. 1 Page 663 f.

अजमेर का प्रसिद्ध अना सागर।



अजमेर की प्रसिद्ध दरगाह।



सुलेमानी प्रेस, बनारस।

* कनिंगहमका ऐसा मत है कि अजमेरकी स्थापना चौहान अथवा चाहमान राजा अजयपाल ने की। यह राजा ८१९ ई० के पहले हो गया है। कनिंगहमकी फेहरिस्तके आधारपर ऐसा विदित होता है कि यह शहर बहुत प्राचीन है क्योंकि फरिश्तेके लेखों में अजमेरके राजाका उल्लेख ६८४ ई०में मिलता है। महमूद ग़जनवीने सोमनाथ पर चढ़ाई करते समय अजमेरको लूटा था।

† राजपुताना गजेटियरमें अजमेरकी स्थापना का काल १४५ ई० और बसाने वालेका नाम अनलका वंशज पहला चौहान राजा अज दिया हुआ है।

मोलसेन साहब‡ का अनुमान है कि इस शहरका नाम अजमीढ़ होगा और उसके बाद 'अजमेर' नाम पड़ा होगा। टॉलेमीने इस शहर का उल्लेख १५० ई० में गंगस्मिर (Gangasmira) नामसे किया है।

जयचंन्द्रके हम्मीर महाकाव्य (१-५२) में ऐसा लिखा है कि चौहान वंशके चाहमानके तीसरे उत्तराधिकारी अजयपालने अजमेर बसाया।

प्रबन्ध चिन्तामणि§ नामक ग्रंथमें चाहमान राजाओंकी एक सूची दी हुई है। उस सूचीमें चौहान वंशके चौथे राजा अजय राजको "अजय मेरु दुर्गणारकः" कहा है। इस चौहान वंशका आरम्भ ६०८ ई० से हुआ है। अतः अजमेर शहर बहुत प्राचीन है। इस सम्बन्धमें ऊपर दिये हुये प्रायः सभी ग्रंथोंका एकमत है; परन्तु डॉ० जे० मॉरिसन साहबने चाहमान वंशके विषयमें लिखते हुये$ एक छोटी सी टिप्पणी दी है कि इस वंश का बीसवाँ राजा अजयराज सल्हणने 'अजयमेरु' नामक नगर बसाया। यह 'पृथ्वीराज विजय' नामक पुस्तक@ में दिया हुआ है। इस आधारसे ऐसा निश्चित होता है कि इस शहरकी स्थापना उत्तरकालीन है। ११०० और ११२५ ई० में या इसके लगभग अजय राजाने राज्य किया होगा और अजयमेरु भी उसी समय बनवाया होगा। उसका प्रमाण नीचे दिया जाता है।

अजयराजाके पुत्र अर्णोराजने गुजरातके जयसिंह सिद्धराजकी कन्या काञ्चनदेवीसे विवाह किया*। इससे यह निश्चित होता है कि वह जयसिंह सिद्धराजका समकालीन होगा और उससे छोटा होगा। जयसिंह सिद्धराजने १०९४ से ११४३ ई० तक राज्य किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने अर्णोराज अथवा आनाकसे युद्ध किया†। इस लड़ाईका अन्त ११४९-५० अथवा ११५०-५१ ई० में हुआ‡। अर्णोराजके दूसरे पुत्र चवथा-विग्रह अथवा वीसलदेवके अजमेरके अंकित लेखका काल§ ११५३ ई० है। इससे अनुमान किया जाता है कि अर्णोराजका देहान्त ११५० और ११५३ ई० के बीचमें हुआ होगा। इसलिये अर्णोराजके बारहवीं शताब्दीके दूसरे पदमें और उसके पिताने सन् ११००—११२५ कालमें राज्य किया होगा।

पृथ्वीराज विजय नामक ग्रंथ दूसरे पृथ्वीराज के समयमें अर्थात् १२ वीं शताब्दीके दूसरे पदमें रचा गया है। हम्मीर महाकाव्य १४ वीं शताब्दी के अन्तमें और फरिश्तेकी पुस्तक १६ वीं शताब्दी के अन्तमें लिखी गई है। डॉ० मॉरिसन् साहबका मत है कि इस पुस्तकके लेख और 'पृथ्वीराज विजय' में दी हुई चाहमानोंकी वंशावली मिलती जुलती है। इससे यह निश्चित होता है कि इस ग्रंथका प्रमाण अधिक महत्वका है।

प्राचीन भूगोल शास्त्रवेत्ता अजमेर शहरका उल्लेख नहीं करते। केवल प्रभावक चरित$ में इसका उल्लेख किया है। फरिश्तेके समय अजमेर चाहमान राजाओंकी राजधानी होगा। पूर्व राजपूतानेमें इन राजाओंकी सत्ता छठीं शताब्दीसे थी। इससे मालूम होता है कि फरिश्तेने भूलसे शाकंभरीके चाहमानोंको "अजमेरका राजा" कहा होगा। इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज विजय' का ही विधान सत्य है। यह विधान इस प्रकार है कि शाकाम्भरीका चाहमान वंशीय बीसवाँ राजा अजय इसका संस्थापक

* Archaeological Survey Reports V. 2 Page 252 ff.

† Rajputana Gazetteer Vol. II Page 14.

‡ Indische Alter thumskunde Vol. III Page 151.

§ Bombay edition of the Prabandha Chintamani Page 52 ff.

$ Vienna Or. Journal Vol VII. Page 191.

@ Prithviraj Vijaya Sarga V. 77, 99, 100, 102.

* पृथ्वीराज विजयसर्ग

† Gujarat Chronicles.

‡ Epigraphia Indica Vol. II Page 422.

§ Indian Antiquary Vol XX Page 201. The date is that of the incision of Viprahas Harakeli natika.

$ XXII 420

था और यह नगर उत्तरकालीन है—यही कहना इतिहाससे युक्तिसंगत है।

'अजयमेरु' नामका अर्थ 'पृथ्वीराज विजय'* में "अजय राजाका बनाया हुआ मेरु" है। इसी प्रकार अनेक दूसरे नाम प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ जैसलमेरु जैसलमीर, कमलमेरु (कुम्मल मेर) बालमेर अथवा बार्मेरू (बाहडमेरु), भांभमेरु और अजयमेरुगढ़ (अजमेरगढ़) इत्यादि।

अजमेरका मराठोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध रहा है। (१) दिल्लीके बादशाह और मराठोंके सन्धिपत्रके अनुसार १७५० ई० में अजमेरकी सूबेदारी मल्हारराव होलकर और जयाजीराव सींन्धियाको प्राप्त हुई।

(२) जोधपुर पर चढ़ाई करनेके लिये मार्गमें अजमेर सैनिक दृष्टिसे बड़े महत्वका स्थान था। १७५८ ई० में राजा विजयसिंहने अप्पाजी सींधिया के बहुतसे गाँव उजाड़ डाले। इसपर मराठोंने अजमेरको अपना केन्द्र बनाकर जोधपुर और मेरठके आसपासके गाँवोंको लूटना शुरू कर दिया। (रा० खं० १.४८-८८)

(३) बादमें यह सूबा होलकरको पुरस्कार रूपमें मिला था। शक १७६४ में जब पठानोंके दिल्ली पर आक्रमणका समाचार बादशाहने सुना तो सींधियाको बादशाहने सहायतार्थ बुलाया। इस सहायताके बदलेमें बादशाहने अजमेरका सूबा मल्हाररावको उपहार-स्वरूप दे दिया।

अजमेर—यह काठियावाड़का एक छोटासा गाँव है परन्तु अब इसका समावेश नवानगरमें हो गया है। यहाँकी जन-संख्या ५०० है।

अजमेरीगंज—आसाम प्रान्त। जिला सिलहटके हबीगंजका विभाग। उ० अ० २४°३३' और पू० रे० ९१°१५'। यह गाँव सुर्मा नदीके किनारे पर बसा है। इसकी जनसंख्या ६०० है। यहाँ बहुत कुछ व्यापार होता है। यहाँसे चावल, सूखी मछली, बाँस, चटाईयाँ इत्यादि बाहर जाती हैं।

अजमोदल—(थायमल Thymol) यह अजमोदासे निकाला जाता है। इसका उपयोग कीटाणुओंके नाशके लिये अत्यन्त लाभदायक है। (Eczema) येक्ज़ेमा, इसब तथा प्सोरी आसिस इत्यादि बाहरी रोगोंमें यह गुणकारी है। दाद, गजकर्ण, खुजली इत्यादि रोगोंमें इसका उपयोग अन्य औषधियोंके साथ मिलाकर किया जाता है। घाव और कट जानेपर भी इसको लगानेसे फायदा होता है। सन्निपात ज्वरमें अँतड़ियोंको साफ़ रखनेके लिये यह गुणकारी है। (Ankylostome Duodenale) अंकिलोस्तोम ड्योडिनेल के कीटाणुको नाश करनेके लिये यह अत्यन्त लाभदायक है। अमेरिकाके अस्पतालोंमें आदिद नाम औषधिके साथ इसका बहुत कुछ प्रयोग अब किया जाने लगा है। ऍरिस्टाल और अनिडिलिन नामक औषधिमें भी इसका बहुत कुछ हिस्सा रहता है। ग्लॉकोथायमोलीन नामकी औषधि कफ और अँतड़ियोंके शीतमें अति लाभदायक है। नॅफथलीन, कपूर और अजमोदलका मिश्रण 'थायमोलीन' के नामसे बिकता है।

अजमोदलकी रासायनिक प्रकृति क० १० उ० १४ प्र० अथवा (क ६ उ ३) (प्रउ) (क उ ३) (क ३ उ ७) है। [१:३:६] अजमोदल मथिल इसो प्रापिल फिनील और कंठिजरल (करवाक्रोज) के समान है। इसमें गन्ध विशेष होती है। अजमोदलमें उत्कर्ब सायमीन क १० उ १४ और थायमीन क १० उ १६ रहता है। यह अजवाइन इत्यादिके तेलोंमें भी पाया जाता है। तेल से अजमोदल निकालनेके लिये उसमें सौम्यदाहक पलासका जलद्रव डालकर पहले उसका मिश्रण करना चाहिये। तब इस द्रवको छानकर उद्धराम्लमें डालकर फिरसे छानना चाहिये। तब अजमोदलका निपात होता है। वह छान कर और सुखा कर उर्ध्वपतनकी क्रियासे शुद्ध करके व्यवहारमें लाना चाहिये।

अजमोदल मेन्थॉनसे कृत्रिम रीतिसे तय्यार किया जा सकता है। मेन्थॉनका हरीपुत्तिका (Chloroform) पर स्तंभन करना चाहिये। तब द्विस्थम्भ-मेन्थॉन तय्यार होता है। इसमें उदस्तयाम्लके अणु निकलने पर अजमोदल तय्यार होता है। इसके मणिभ (Crystals) बड़े, चपटे और स्वच्छ निर्वर्ण होते हैं। इसका रसांक ४४ श और उत्कथ्वांक २३ श होता है। अजमोदल और स्फुर-गंधकिद मिश्रण करनेसे सायमीन तय्यार होता है।

अजमोदलकी सुगन्ध तेज और स्वाद तीक्ष्ण होता है। अलकहल, इथ्र, हरिपुत्तिका अथवा जैतूनका तैल (Olive oil) में यह विद्राव्य है। परन्तु ठंडे जलमें यह नहीं गलता। यह कर्बाम्ल (Carbolic acid) के साथ कीटाणु नाशके लिये अधिक शक्तिमान है। किन्तु अविद्राव्य होनेसे इस

* VI 100.
Indian Antiquary Vol. XXVI P. Page 262-164

काममें इसके उपयोगमें अड़चन पड़ती है। इसका संप्रक्त जलद्रव (१००० भाग गर्म जल और १ भाग अजमोदल) विषैली फुडिया क्षत इत्यादिमें मलहम पट्टीके काममें आता है।

अजमोदा- इसे अंग्रेजीमें (Celery Seed) कहते हैं। यह अजवाइनकी एक किस्म है। इसके पेड़ वार्षिक होते हैं। हिन्दुस्तानमें यह पेड़ अनेक स्थानमें पैदा होता है। बंगालमें इसकी खेती अधिक प्रमाणमें की जाती है। इसकी ऊँचाई लगभग डेढ़ हाथ होती है, सफ़ेद रंगके छोटे छोटे फूल आते हैं। साग, भाजी मसालोंमें भी अजमोदा छोड़ते हैं और अजीर्ण होने पर भी देते हैं। (पदे—वनौषधि गुणादर्श)

अजयगढ़—(राज्य) यह मध्य भारतमें बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजेन्सीके आधीन एक छोटी सी रियासत है। उत्तर अक्षांश २४·५-२५·७ और पूर्व रेखा० ७६·५० से ८०·२१। इसका क्षेत्रफल ७७१ वर्गमील है। यह विन्ध्यपर्वतके भीतरी भागमें है। पर्वत और घाटियोंसे यह कई भागोंमें विभक्त है। इनमें केन और वैर्मा नदी बहती हैं। यहाँकी वृष्टिकी औसत ४७ इञ्च है।

अजयगढ़के राजा छत्रसालके वंशज बुन्देले राजपूत हैं। १७३१ में राजा छत्रसालने अपने राजके कई हिस्से कर दिये थे। उसमेंसे एक ३१ लाखका प्रान्त उसके तीसरे पुत्र जगतराजको मिला। जगतराजकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्र पहाड़ सिंह और उसके भाईके लड़के खुमानसिंह या गुमानसिंहसे झगड़ा होने लगा।

आखिरमें गुमानसिंहको बाँदा प्रान्त तथा अजयगढ़का किला मिलनेपर यह झगड़ा तय हुआ। उसके पश्चात् गुमानसिंहका भतीजा वख्तसिंह बाँदाकी गद्दी पर बैठा। उसे १७६२ ई० में अलीबहादुरने निकाल बाहर किया और वह दाने दानेके लिये तरसने लगा। १८३० ई० में जब बुन्देलखण्ड अंग्रेजोंके हाथमें आया, उस समय उन्होंने वख्तसिंहकी ३०००० रु० की पेन्शन उस समय तकके लिये नियत कर दी जब तककि उसे देश लौटा नहीं दिया जायगा। १८०७ ई० में उसे कोटारा तथा पवाई परगनेकी सनद मिली। उस समय अजयगढ़का क़िला तथा उसके निकटवर्ती प्रान्त लक्ष्मण दौवा नामक एक प्रसिद्ध डाकूके अधीन था। देशमें शान्ति स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होनेके कारण अंग्रेजोंने अपनी सार्वभौम सत्ता उसे मनवानेके लिये बाधित करके वह प्रान्त उसीके आधीन रहने दिया। परन्तु सन्धिकी शर्तोंका उससे पालन न हो सकनेके कारण १८०६ ई० में कर्नल मार्टिनडेलने चढ़ाई करके वह देश छीन लिया। इस प्रान्तका बहुत बड़ा भाग उस समय वख्तसिंहके राज्यमें शामिल किया गया। १८१२ ई० में नयी सनद तयार करके यह सारा मुल्क उसमें मिला लिया गया।

१८३७ ई० में वख्तसिंहकी मृत्यु हो गई। इसका लड़का माधवसिंह गद्दी पर बैठा, परन्तु वह भी बहुत समय तक टिकने न पाया। १८४६ ई० में उसकी मृत्युके कारण गद्दी फिरसे खाली हो गई। उसके पश्चात् महीपतसिंह गद्दी पर बैठा। किन्तु १८५३ ई० में उसकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्र विजयसिंहको गद्दी मिली। परन्तु वह भी दो वर्ष बाद मर गया। उसे पुत्र न होनेके कारण गद्दीका कोई वारिस न रहा और राज्य अंग्रेजोंकी देखरेखमें आ गया। इसी समय गदर (१८५७) शुरू हुआ। इस समय राजाकी माँ ने अंग्रेजोंसे शत्रुता न कर मित्रताका बर्ताव किया। इसलिये राज्यको जब्त न करके विजयसिंहके भाई रणजोर सिंह (दासी पुत्र) को गद्दीका वारिस मुकर्रर कर दिया। १८५६ ई० में उसे गद्दी पर बैठाया। १८६२ ई० में रणजोरसिंह को गोद लेनेकी सनद मिली। १८७७ ई० में 'सवाई' का खिताब वंशपरम्परा के लिये मिल गया। १८६७ ई० में उसे के० सी० आई० ई० का खिताब मिला। इसको ११ तोपोंकी सलामी का मान है। इसे १८६६ ई० में पहला पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसका नाम राजा-बहादुर भूपालसिंह था।

इस राज्यमें पौराणिक दृष्टिसे अजयगढ़के क़िलेके अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण स्थान हैं। अजय-गढ़के उत्तर-पूर्वमें १५ मीलपर एक गाँवहै। वहाँ पर एक बड़ा शहर स्थित था। उस शहरको ११६५ से १२०३ ई० तक चन्देल राज्यके अन्तिम राजा परमाल देवके प्रधान वच्छराजने बसाया था। दूसरा स्थान गंजसे २ मील पर स्थित नायना नामक गाँव है। इसे कुठार कहा करते थे और तेरहवीं शताब्दीमें सोहनपाल बुन्देलेके समयमें बड़े महत्वका स्थान था। बहुत सी बातोंसे पता चलता है कि यह प्राचीन कालमें बड़ा उन्नतशाली शहर रहा होगा और चौथी शताब्दी अर्थात् गुप्त कालमें बसाया गया होगा।

१६०१ ई० में राज्यकी आबादी ७८२३६ थी। उसमें ८६ प्रतिशत हिन्दू अर्थात् ७०३६० हैं। शेषमें ६ प्रतिशत गोंड हैं जो ५०६२ हैं। और ३ प्रति-शत मुसलमान हैं ये २३१४ हैं। इस राज्यकी

राजधानी अजयगढ़ है तथा इसमें ४८८ गाँव है। १६११ ई० में यहाँकी आबादी ८७०६३ हो गई थी।

स्थानीय जातियाँ—ब्राह्मण ११९००, चमार ६२००, और काछी, बुन्देले ठाकुर, लोध, अहीर, तथा गौंड ३००० से ४००० तक हैं। ४० प्रतिशत लोग खेती करके जीविका चलाते हैं और १७ प्रतिशत मजदूरी करते हैं। ५३ प्रतिशत खेतीके योग्य जमीन है अर्थात् कुल ४०७ वर्गमील जमीन में खेती की जा सकती है। उसमेंसे १० प्रतिशत पानीमें है। १४४ वर्गमील जंगल है परन्तु उसमें खेती नहीं की जा सकती है। ७६ वर्गमील जमीन ऊसर है। चना, कोदो, गेहूँ, ज्वार, बाजरा तथा कपास यहाँकी फ़सलें हैं। केन नदीमें नहर का काम चल रहा है। कुछ समय पहले यहाँ पर लोहेकी खानोंकी खुदाईका काम किया जाता था। परन्तु आजकल यह खानें बंद हैं। किसी किसी स्थानोंमें हीरे भी मिलते हैं। बंदूक, तलवार, पिस्तौल यहाँपर तैय्यार की जाती हैं। इस राज्य का कोई मुख्य व्यापार नहीं है क्योंकि यह पहाड़ी स्थानमें बसा हुआ है। कुल ७२ मील लम्बी सड़कें हैं। इनमेंसे २४ मील पक्की तथा ४८ मील कच्ची हैं। इस राज्यकी आमदनी २३०००० रु० है जो कि कर ही से होती है। मुख्यतः यह कर तथा लगानसे ही होती है।

सेना—७५ घोड़ सवार, ३५० पैदल, ४४० गोलंदाज तथा ६ तोपें हैं। इसके अतिरिक्त ६८ पुलिस, २११ गाँवकी पुलिस हैं। स्कूल कम संख्यामें हैं और उनमें सौ सवासौ विद्यार्थी पढ़ते हैं। अजयगढ़ शहरमें एक अस्पताल है। (इं० गॉ० भाग ५।)

अजयगढ़ शहर—मध्य हिन्दुस्तान। अजयगढ़ राज्यकी राजधानी है। उत्तर अक्षांश २४°५४' तथा पूर्व देशांतर ८०°१८' पर स्थित है। १६०१ ई० में आबादी ४२१६ थी।

आधुनिक राजधानीको 'नया शहर' कहते हैं। शहरके ऊपर किलेकी चहारदीवारी आकाशको छूती हुई मालूम होती है। यह किला बुन्देलखंड के उन आठ विख्यात किलोंमें से है जिनके बलपर बुन्देलोंने मुसलमानोंकी दाल न गलने दी। १८०० ई० में बाँदाके अलीबहादुरने यह किला ६ महीने घेरा डालनेके बाद जीत लिया था। परन्तु १८०३ ई० में वह लक्ष्मण दौवाके हाथमें चला गया और १८०६ ई० में उसे कर्नल मार्टिनडेलने जीत लिया।

किला 'केदार पर्वत' नामक पहाड़ पर स्थित है। और वह समुद्रकी सतहसे १७४४ फीटकी ऊँचाई पर है। सबसे ऊपरके पचास फीटको छोड़कर बाकी भाग पर सुगमतासे चढ़ सकते हैं पहले लेखोंमें इस किलेको जयपुर दुर्ग कहा गया है। यह किला नवीं शताब्दीमें बनाया गया था। यद्यपि इसमें कोई सन्देहका स्थान नहीं है परन्तु अबुलफ़ज़लके अतिरिक्त और कोई इतिहासकार इसका उल्लेख नहीं करता। यह त्रिकोण बना हुआ है। पहले इसमें पाँच दरवाज़े थे परन्तु आजकल तीन बन्द कर दिये गये हैं। दीवारें तीन गज़ मोटी हैं, ऊपर कई पानीकी टंकियाँ और तीन जैन मंदिर अब भी दिखाई देते हैं। किन्तु वे बिल्कुल टूटी फूटी स्थितिमें हैं। वह १२ वीं शताब्दीके ढंगके बने हुए हैं। यहां चंदेल राजाओं के समयके (सन् ११४१ ई० से १३१५ ई०) बहुत से शिलालेख मिले हैं।

इन पहाड़ों पर सागौन तथा तेंदूके बहुतसे वृक्ष हैं। इस कारण किलेका प्राकृतिक सौन्दर्य और भी दर्शनीय हो जाता है।

शहरमें प्रारम्भिक शिक्षाके लिये एक पाठशाला डाकखाना और दवाखाना है। जी० आई० पी० रेलवेका यहाँ एक स्टेशन है। वहाँसे भहारा जानेके लिये एक उत्तम मार्ग है। मोटर, तांगा, बैलगाड़ी इत्यादि द्वारा लोग वहाँ जाते हैं। नरैनी में डाक बँगला है आधुनिक राजधानीका नाम "नौशहर (नया शहर) है और जिस पहाड़ पर किला स्थित है उसके उत्तरीय भागमें यह शहर बसाया है (? आर्नाल्ड-गाइड १६२०)

अजयपाल—(११७३-११७७ ई०) गुजरातके चालुक्य वंशके कुमारपालके बादका राजा। इसके बापका नाम महिपाल था। कुमारपाल निसन्तान होनेके कारण उसकी मृत्युके पश्चात् उसके भाईका लड़का अजयपाल ११२६ ई० में गद्दी पर बैठा। [व्याश्रय काव्य तथा पाटनका अंकित लेख जो वेरावलमें है देखिये]। कुमारपाल प्रबंधमें लिखा है कि कुमारपालकी इच्छा अपनी लड़कीके लड़केको राज्य देनेकी थी परन्तु अजयपालने षड़यंत्र रचकर विष प्रयोग द्वारा कुमारपालकी हत्या कर डाली। सुकृत-संकीर्तनका लेखक लिखता है कि अजयपालके दरबारमें जो चांदीकी छत थी वह सपादलक्ष (शिवालिक) के राजाके यहांसे आई हुई नज़र थी। जैन ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। कीर्तन कौमुदी में अजयपालका नाममात्रके लिये उल्लेख आया है और प्रबंधचिंतामणिके लेखकने तो स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि अजयपालने अपने चचाके

बनाये हुए जैन मंदिरोंको उजाड़ डाला। आंबडा आदि कुमारपालके जैन अमात्योंसे और उससे बनती न थी । ऐसा पता चलता है कि यह निर्दयी तथा घमंडी था । उदयपुर के अंकित लेखों में उल्लिखित है कि ११७३ ई० में सोमेश्वर अजयपालका कर्मचारी था । उसने कपर्दि नामक व्यक्तिको ब्राह्मणोंका अनुयायी होने के कारण पहले तो अपना कर्मचारी नियुक्त कर लिया, किन्तु बादमें उससे कुछ अनबन हो जानेके कारण उसे उबलते हुए तेलकी कढ़ाईमें डाल देने की आज्ञा दे दी। दूसरे अवसर पर उसने रामचन्द्र नामक एक जैन पण्डितको तपते हुए ताँबेके पत्र पर बैठनेका दण्ड दिया। आंबडा (आम्रभट्ट) नामक उसके सरदारमें और उसमें इन्हीं सब कारणोंसे एक छोटी सी लड़ाई भी हुई थी। इसमें आंबडा मारा गया। १२३३ ई० में अजयपालके विज्जलदेव नामक द्वारपालने खंजर घुसेड़ कर उसकी हत्या कर डाली।

टाड साहबका मत है (वेस्टर्न इण्डिया) कि अजयपाल मुसलमान हो गया था, किन्तु ऐसा सिद्ध करनेके लिये उपयुक्त प्रमाण नहीं दे सके हैं। इसके बाद इसका पुत्र मूलराज द्वितीय गद्दी पाटनकी गद्दी पर बैठा। मूलराज अल्पवयस्क था, अतः उसकी माता नैका देवी जो कदंब राजा परमादि (११४७-११७५) की कन्या थी, राज्यकी सारी व्यवस्था करने लगी। इसका भाई भीम देव सेनापति नियुक्त हुआ। यह बड़ा शूर था। दो वर्षोंके अन्दर ही युवराज मूलराजका देहान्त हो गया। [आधार ग्रंथ बाम्बे-गजेटियर गुजरात]

अजयसिंह—(१२६०-१३०१ ई०) चित्तौड़के राणा लक्ष्मणसिंहके पश्चात् अजयसिंहको चित्तौड़ छोड़ कर मारवाड़की पश्चिमीय सरहद पर आरावलीकी घाटीमें स्थित केडवाड़ा नामक स्थानमें रहना पड़ा। जिस समय लक्ष्मणसिंह जौहरके लिये निकलने लगे थे (देखिये लक्ष्मणसिंह) अजयसिंहको आदेश कर गये थे कि अपने बाद अपने भाई अमरसिंह (यह युद्धमें पहलेही मारा जा चुका था) के पुत्र हमीरको गद्दी पर बैठाना। अलाउद्दीनने जब चित्तौड़ जीत लिया तब वह कुछ दिन तक वहाँ ही ठहर कर मन्दिरोंको नष्ट भ्रष्ट करता रहा। जब सम्पूर्ण नगर उजाड़ डाला तो झालोरके मालदेव नामक अपने सामन्तको वहाँका भी प्रबन्ध करनेके लिये नियुक्त किया। दिल्लीके सिपाही तथा सवार मारवाड़ भरमें रक्षा करनेके लियेनियुक्त हुए। अजयसिंहको नगर छोड़ कर छिप कर रहना पड़ता था और इन लोगोंसे नित्य झगड़ा लगा रहता था। इनके अतिरिक्त पहाड़ोंमें रहने वाले भील आदि जाति के नायकोंसे भी अजयसिंहको झगड़ना पड़ता था। इन सबमें मुंजा भील नामक एक अत्यन्त बलिष्ठ नेता था। उसने एक बार 'शेरो' नाले पर चढ़ाई की और साथही अजयसिंहका सामना कर के उसके मस्तक पर भालेका वार किया। अजयसिंहके दो पुत्र थे। एक का नाम सज्जनसिंह तथा दूसरेका अजीमसिंह था। सज्जनसिंहकी उम्र १४ वर्ष तथा अजीमसिंहकी १६ वर्षकी थी। परन्तु वे इस संकटके अवसर पर काम न आये। इसलिये अजयसिंहने हमीरको, जो अपने नानाके घर था बुलवाया और मुंजासे बदला लेनेकी आज्ञा की। इस पर हमीर मुंजाका सिर काट कर अपने चाचाके पास ले आया और उसके सामने डाल दिया। इसपर अजयसिंह अति प्रसन्न हुआ और यह कह कर कि तुम्हारे भाग्यमें दैवने साम्राज्योपभोग लिखा है। इसलिये अपने भतीजेके मस्तक में मुंजाके खूनसे तिलक किया। अजयसिंहके दोनों पुत्रोंमें छोटा अजीमसिंह थोड़े ही दिनोंके बाद केड़वाडामें मर गया। दूसरा सज्जनसिंह रह गया।

अजयसिंहको यह भय था कि उसकी मृत्युके पश्चात् कहीं सज्जनसिंह और हमीरमें राज्यके लिये झगड़ा न हो। अतः अपने जीवन काल ही में उसे देश निर्वासित कर दिया।

सज्जनसिंह मारवाड़ छोड़कर सीधे दक्षिणमें आया और वहीं बस गया। इसीके वंशमें शिवाजी उत्पन्न हुए थे जिन्होंने औरंगजेबके नाकों में दम करके मुसलमानोंसे महाराष्ट्र देश छीन कर स्वतन्त्रता स्थापित की थी। अजयसिंहसे शिवाजी तक निम्नलिखित वंश-परम्परा दी हुई है- अजयसिंह, सज्जनसिंह, दलीपसिंह, शिवजी, भोराजी, देवराज, उग्रसेन, माहुलजी, खेलूजी, जनकोजी, सटवाजी, संभाजो और उनके बाद छत्रपति शिवाजी। लोकहितवादीमें माहुलजीके बदले मालोजी और संभाजीकी जगह शाहजी इत्यादि भिन्न भिन्न नाम दिये हैं (टाड राजस्थान)। कुछ महाराष्ट्र इतिहासकारोंका मत इससे भिन्न है। चाहे कुछ भी हो किन्तु शिवाजीको राज्यतिलक देते समय इनको सज्जनसिंहका वंशज मान कर राज्याभिषेक हुआ था।

अजवाइन—संस्कृतमें इसे धनानी, बँगलामें न्यमानी, गुजरातीमें यवान, मराठीमें ओंवा कहते

हैं। इसकी उत्पत्ति मुख्यतः भारतवर्षमें और विशेषकर बंगालमें होती है। मिश्र, ईरान और अफगानिस्तानमें भी पैदा होती है। यूरोपमें यह हाल ही में गयी है। फ्रांसके राजा चौदहवें लुईके राजवैद्य पोमेटइन्नेने लिखा है कि अच्छी अजवाइन क्रीट या (Alexandria) सिकन्दिरियासे आती है।

उत्पत्ति—भारतवर्षमें यह अक्तूबर या नवंबर में गोई जाती है। पानीके किनारे इसके रोप (पेड़) लगाते हैं। हर एक पौदेमें छः इंचका फासला रखते हैं। अच्छी खादकी उतनी जरूरत नहीं है, पर पानी काफी चाहिये। अजवाइन बागोंमें होती है। पेड़ हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। इसका अर्क निकाला जाता है जिसे अजवाइनका सत कहते हैं। मध्यभारतमें इंदौर के पास यह सत बहुत मिलता है। सत निकालनेके नये ढंगके कारखाने कलकत्ता या बंबईमें हैं। बंबई इलाकेमें हरसाल ५००—६०० एकड़में यह बोई जाती है। मध्य प्रांतमें नेमाड़, मद्रास में नंदियाल घाटी (Valley) में और तिनावल्ली जिलेमें भी पैदा होती है। गुजरातके खेडा जिलेमें भी यह ज़ीरेके साथ बोई जाती है। ज़ीरा पहले तय्यार हो जाता है और ३०-४० दिन बाद अजइन भी पक जाती है। पूना जिलेमें मूँगफलीके साथ इसे बोते हैं। जब मूँगफली पैदा होने लगती है तो इसका बिया बो दिया जाता है। औसत एक एकड़में दो मनके करीब निकलती है। बंबईकी अजवाइनके खरीदार मिस्र, जर्मनी और अमेरिका हैं। अजवाइनका अर्क निकालने पर भी उसमें १५ से लेकर १७ फीसदी ओजस (द्रव्य) रहता है और इसकी दूनी मात्रामें चिकनाहट रहती है, इसलिये इसकी सीठी मवेशियों को खिलाई जाती है।

तेल—तेल साफ और बेरंगका होता है। कुछ दिन बाद जरा सा पीलापन आ जाता है। इसकी सुगंध अजवाइन ही की तरह होती है। स्वादमें जरा सी तिताई होती है। पेटकी बीमारीमें तीन बूँद शकर या गोंदके पानीके साथ देना चाहिये।

अजशृङ्गी—(मेढासिंगी) इस वनस्पतिकी लतायें होती हैं। इसको संस्कृतमें मेषशृंगी मराठीमें मेंढशिंगी, हिन्दीमें अजशृङ्गी या मेढ़ासिंगी इत्यादि कहते हैं। इस वनस्पतिका रस दूधके समान स्वच्छ होता है। इसकी लतामें कांटे होते हैं और फल इसका मेढाके सींगके समान होता है। मुख्यतः इसका उपयोग नेत्ररोगमें किया जाता है। इसकी लतायें खंडालाघाट अथवा अन्य पहाड़ों पर बहुत पायी जाती हैं। यह कफको नाश करती है और वमनद्वारा बाहर निकाल देती है। इसकी छाल भी अनेक औषधियाँ बनानेके काममें आती है। (पदे-वनस्पति गुणादर्श)

अजामिल—पूर्वीय कान्यकुब्ज देशका रहनेवाला एक ब्राह्मण होगया है। यह अपने माता पिता तथा विवाहित स्त्रीका त्याग कर एक शूद्र स्त्रीके साथ रहने लगा था। इसने अपना लगभग सम्पूर्ण जीवन उसीके साथ भोग विलासमें व्यतीत कर दिया था। एक समय वह अपने कनिष्ठ-पुत्र नारायणको पुकारनेकी इच्छासे जब उसके समीप गया तो उसने विष्णुदूत और यमदूतको अपने ही विषयमें संवाद करते सुना। इसे सुनकर उसे घोर पश्चात्ताप हुआ और कठोर प्रायश्चितकी इच्छासे उस शूद्रवर्णा स्त्री तथा उसकी सन्ततिका परित्याग करके वह गंगाके तीर पर आकर नियमपूर्वक संयमके साथ भगवत-भजन करने लगा। इससे अंतमें उसे उत्तम लोक प्राप्त हुआ (भाग० षष्ठ अ० १-२)

अजात शत्रु—(लगभग ई० पू० ५५४-५२७) यह शिशुनाग वंशका छठवाँ राजा था।

यह लगभग ई० पू० ५५४ में मगध देशकी गद्दी पर बैठा। (देखो बुद्धोचर जग० पृ० १६६, १७१-१७२ और १४३) इसके अन्य नाम कुणिक और कुणीय भी हैं। जिस प्रकारसे इसे राज्य प्राप्त हुआ उस विषयमें इतिहासकारोंमें मतभेद है। जैन-दन्त-कथाके अनुसार बिम्बसारके वृद्धावस्था प्राप्त करने पर उसका पुत्र (अजातशत्रु) उसकी आज्ञानुसार राज्यका मालिक हुआ। ब्राह्मण तथा बौद्धोंका मत है कि राज्यके लोभसे अपने पिताका बध करके वह राजगद्दी पर बैठा था। पुराणकी बुद्ध कथामें वर्णित है कि गौतमबुद्धके शालक देवदत्तके चिढ़ाने पर यह कृत्य किया गया था (हीस डेविडस्-बुद्धिस्टिक इण्डिया)। वी० स्मिथके मतानुसार अजातशत्रु की पितृ-बधकी कथा बिल्कुल बनावटी है (आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया)। बिम्बसारके समयमें वर्धमान महावीर और गौतमबुद्ध दोनों ही महान् धर्मप्रचारक अपने अपने धर्मका मगधदेशमें प्रचार कर रहे थे। महावीर अजातशत्रुकी माताके कुलमें से था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि महावीर तथा गौतमबुद्ध दोनों ही अजातशत्रुके समयमें परलोक सिधारे होंगे।

एक समय गौतम बुद्धकी अजातशत्रुसे भेंट होनेका उल्लेख मिलता है। इसकी कथा सामाञ्ज्य सुतामें मिलती है। इसमें वर्णन किया गया है कि अजातशत्रुने अपने पितृ-बधके पातकके लिये गौतमबुद्धसे मिलकर पश्चात्ताप प्रकट किया और बौद्ध सिद्धान्तोंके प्रति अपनी अटल भक्ति दर्शाकर उनसे क्षमा प्राप्त की। भर्हुत स्तूप पर इस प्रसंगका चित्र भी बना हुआ है (बुद्धोत्तर जग० पृ० १४७)।

कौशलनरेशकी बहन अजातशत्रुकी सौतेली माँ थी। अपने पतिका बध देखकर वह सती साध्वी भी परलोक सिधारी। यह मालूम होनेपर कौसलाधीशने अजातशत्रुपर चढ़ाई कर दी। बहुत दिन तक युद्ध चलता रहा। अन्त में विजय मगधराज की ही रही। अन्त में कौशल नरेशको अपनी कन्या देकर सन्धि करनी पड़ी (वी० स्मिथकी अर्ली हिस्ट्री)। र्‍हीस डेविड्सने इस विषयमें भिन्न ही कथा दी है। (बुद्धोत्तर जग० पृ० १६८)। इस विजयसे अजातशत्रुको सन्तोष नहीं हुआ। उसने गंगाके उत्तरमें लिच्छवी राज्य (आधुनिक तिरहुत) पर चढ़ाई की। इसकी राजधानी वैशाली थी। यद्यपि अजातशत्रु की माता उसी वंशकी थी तो भी उसने अपने मातामहका प्रदेश अपने आधीन कर लिया। तदनन्तर उत्तरमें हिमालय तकके सम्पूर्ण प्रदेशों को जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। लिच्छवी राज्यसे अपनी पूर्ण रक्षाके हेतु उसने सोन नदी और गंगाके संगम पर पाटली नामक गाँवमें एक किला बनवाया। यहीं पर इसके पौत्रने पाटली नगर बसाया। इसके बाद कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलीपुत्रके नामसे यह गाँव सारे भारतमें प्रसिद्ध हो गया, और मौर्यवंशके समय तो यह केवल मगधका ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतका केन्द्र बना हुआ था। वायुपुराणमें इस नगरकी उत्पत्तिकी कथा है। यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि इसके तीनों नाम पुष्पवाचक ही हैं।

अजातशत्रुके देहान्तका समय लगभग ई० पू० ५२७ होगा। अजातशत्रुका ऊपर दिया हुआ काल वी० स्मिथके आधार पर भी कहा जा सकता है। प्रथमतः तो उसने अजातशत्रुका समय मोटी रीति से ई० पू० ५०५-४७५ और बुद्धनिर्वाणका समय ई० पू० ४८७ अथवा ४८६ लिखा था (Early History Ed. 1914)। परन्तु कुछ घटनाओंके समावेशसे वी० स्मिथ कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कह सके हैं। एक जगह उनका कथन है कि बिम्बसार महावीरका ही समकालीन था किन्तु महावीरका निर्वाण काल तो ५२७ ई० पू० माना है।

खारवेलके शिलालेखोंसे शिशुनाग वंशका समय कुछ पीछे हटाना पड़ता है और अजातशत्रुको ५५४-५२७ ई० पू० हीका काल देना पड़ेगा। किन्तु बुद्ध और महावीर बिम्बसार और अजातशत्रुके समकालीन अवश्य थे और उन दोनोंकी मृत्यु अजातशत्रुके समय ही में हुई थी, और महावीर के निर्वाणका समय ई० पू० ४८७ भी हो सकता है। अतः इसपर निश्चयपूर्वक स्मिथ साहब भी कुछ न कह सके।

बिहार उड़ीसाके संशोधन मण्डल (Research Society) के पत्र (Journal) के १६१६ ई० के दिसम्बर अंकमें श्रीयुत के० पी० जयसवालने अजातशत्रुकी मूर्तिके संशोधनका वृत्तान्त दिया है (Modern Review Feb. 1920)। उनका कथन है कि पहले वह मूर्ति किसी यक्षकी समझी जाती थी, पर इस मूर्तिके नीचे एक लेख है। इसके कुछ अक्षर अदृश्य हो गये हैं किन्तु जो हैं उन्हींके आधारों पर शंका करनेका कोई भी कारण नहीं रह जाता। उसमें मिलता है—सेनी (श्रेणी) अजा (त) शत्रु, कुणिक सेवा सिनजो (शिशुनाग) मगधनं राज इत्यादि इत्यादि।

अजाहुत सरदेशमुख—पहले पहल मराठों के राजा शाहूने 'अजाहुत सरदेशमुख' नामक एक पद अपने मन्त्रीके एक सम्बन्धीके लिये निर्माण किया था। इस पदपर काम करनेवालेको सम्पूर्ण मराठा देशसे सरदेशमुखी (एक प्रकारका कर) वसूल करना पड़ता था। शाहूकी मृत्युके बाद बालाजी बाजीरावने केवल नाम-मात्रके लिये यह पद कायम रक्खा। उसने कुछ जागीर अजाहुत सरदेशमुखके नाम अवश्य कर दी किन्तु दक्षिणके ६ प्रान्तोंसे देशमुखी वसूल करनेका अधिकार उसके हाथसे निकाल लिया। बादमें तो धीरे धीरे पेशवाओंने इस पदको बिल्कुल ही तोड़ दिया क्योंकि यह कर वसूल करनेका अधिकार पेशवाओं ही को था और यदि यह अधिकार किसी दूसरेके हाथमें छोड़ दिया जाता तो पेशवाओंकी सत्तामें बहुत कुछ कमी आ जाती।

अजित—जैनियोंके २४ तीर्थङ्करों (अवतारों) में से यह दूसरा माना जाता है। प्रथम अर्हत्‌के बाद यह दूसरा अर्हत हुआ। जैनियोंने कालके दो भेद माने हैं—(१) उत्सर्पिणी। इससे तात्पर्य

है उत्कृष्ट समय। (२) अवसर्पिणी। इसका अर्थ है निकृष्ट काल।

जैनियोंका कथन है कि दूसरे काल (दुःखरूप) के पाँचवें हिस्सेमें इनका जन्म हुआ था। इनके तीर्थङ्कर होनेके पहलेके जन्मके विषयमें वह इस भाँति ब्यौरा देते हैं—इसका नाम वैजयन्त था, और दूसरा अनुत्तर विमान था। इसकी जन्म-नगरी अयोध्या थी। इसके पिता जितशत्रु और माता विजयसेना देवी थी। शरीर ४५० धनुष और सुवर्णके समान वर्ण था। आयुष्य इसकी ७२ लाख थी। पूर्व दीक्षा-स्थान सप्तच्छद वृक्ष (सात वाणोंसे विधा हुआ वृक्ष) निर्वाण आसन खड्गासन (कायोत्सर्ग)। निर्वाण स्थान-सम्मेद शिखर। इसके बाद ३० लाख करोड़ सागर संवत में शंभवनाथ का जन्म हुआ। (जैन इतिहास लेखक-अनन्ततनय)। यह बात निश्चित करने की है कि सब सद्धर्मालंकारमें उल्लिखित अजितकेश कम्बल महावीर-पूर्वी-तीर्थङ्कर और अजित एक ही है अथवा नहीं। (देखिये पूर्व-तीर्थङ्कर)

अजीगर्त—(१) भृगुकुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण हो गया है। इसको शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलाङ्गल नामके तीन पुत्र थे। वरुणको बलि देनेके लिये उसने अपने द्वितीय पुत्र शुनःशेपको राजा हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया था (देखिये शुनःशेप और हरिश्चन्द्र) (२) (अज्यैगमनाय गर्त अरय) सर्प।

अज़ीम गञ्ज—बंगाल प्रान्तके जिला मुर्शिदाबादमें गंगाके दक्षिण तट पर यह गाँव बसा हुआ है। दूसरे तीर पर बसे हुए जियागञ्ज और इसकी कुल मिलाकर जनसंख्या लगभग तेरह चौदह हज़ार है। नलहटीसे इस स्थान तक एक रेलवे लाइन है। व्यापार यहाँ साधारण होता है। अज़ीमपुरसे बुरहानपुरके लिये छोटी छोटी नावें चलती हैं। १६०३-४ ई० में यहाँ की म्युनिसिपैल्टीकी आय १६०००) थी। अब तो यह बढ़ गई है।

अज़ोटस—ग्रीक (यूनानी) और रोमन लेखकोंने पॅलेस्टाइनके अशदाद नामक प्राचीन नगरको ही 'अज़ोटस'का नाम दिया था। ऐतिहासकोंका विचार है कि आधुनिक एकर (Acre) नगरके अशदादमें जो टूटी फूटी इमारतें पाई जाती हैं वे अज़ोटसकी ही हैं। एकर उत्तर अक्षांश ३३°२०' और पूर्व देशान्तर ३०° पर है। सीरिया और मिश्रके सैनिक-मार्ग पर और भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) से ३ मील पर यह नगर बसा हुआ था। पॅलेस्टाइनके पाँच प्रसिद्ध नगरोंमें से यह भी एक था। यहाँ ड्रैगन (उड़नेवाले सर्प) की पूजा प्रचलित थी। इसराइल सत्ताका निरन्तर प्रतिकार करते हुए यह मॅकाबीसके काल तक स्वतन्त्र था। सन् ७२० ई० पू० में ऍसिरियन (Assyrian) लोगोंने यह नगर जीत लिया। परन्तु शीघ्र ही यह स्वतन्त्र हो गया और अगली शताब्दीमें यह मिश्रके सेमेटिक राजासे लोहा लेता रहा। ईसा सम्वत्के आरम्भमें यहाँ एक बिशप (पादरी, पुरोहित) नियत किया गया किन्तु इसका विशेष फल न हुआ। अशदादमें सॉरासन पद्धति पर बनी हुई खान नामक इमारतका (जो धर्मशालाके समान है) अवशेष अब भी पाया जाता है।

ऍज़ोयौगिक—(Azo-compound) आजकल जो विदेशोंसे कृत्रिम रङ्ग आते हैं, वे प्रायः इसी वर्गके हैं। इन्हें अंग्रेजीमें ऍज़ोडाई (Azo-dye) कहते हैं। ये सब रङ्ग रसायन-प्रयोग द्वारा तय्यार किये जाते हैं। क्रिसोडाइन नामसे जो रङ्ग आते हैं वे प्रायः नरङ्गी रङ्ग, बिसमार्क बाउन, फेनिलिन बाउन, मैनचेस्टर बाउन इत्यादि भूरे या हलके बादामी रङ्ग तथा ऑरेञ्ज नम्बर तीन हैं। इनमें से कुछ लाल और पीले रङ्ग भी आते हैं। कार्बनिक (सजीव Organic) रसायन शास्त्रमें ऍज़ोयौगिकसे तात्पर्य है ङ, नः न ङ। इस सूत्र (formula) में ङ=(Aryl) अरिल मूलक अथवा सुरभिल मूलक। कदाचित् अरिल शब्द संस्कृत भाषाके ऋ धातुसे बना होगा जिसका अर्थ ओजस्विन होता है। कुछ कुछ अर्थ-साम्य होनेसे कदाचित् इस शब्दका उपयोग किया गया होगा। नाइट्रो कम्पाउण्ड (नत्र यौगिक) के (Reduction Process) लघ्वीकरण क्रियासे ही अम्लों (Acid) की उपस्थितसे इस जातिके अमिन पदार्थ तय्यार होते हैं। (Alkali) क्षारीय पदार्थोंमें लघ्वीकरण क्रिया द्वारा ऍज़ो-यौगिक तय्यार होता है। इसके लिये जस्ता (Zinc) और क्षारका उपयोग किया जाता है। द्वि ऍज़ो-यौगिक (Di-azo Compound) की अपेक्षा ऍज़ो-यौगिक अधिक स्थायी रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ऍज़ो-यौगिकके द्वि-बन्धित (Doubly-linked) नत्र-परमाणु (Benzene Nuclues) बेनज़ीन केन्द्रकसे (attached) आसक्त रहते हैं। रङ्गोंमें जो (Azo-dye) ऍज़ोके रङ्गके नामसे प्रसिद्ध हैं उनका इसी वर्गमें समावेश होता है।

क्षारीय-यशदके बदले क्षारीय बंगाइत (स्टॅना-इट) का भी लघ्वीकरणमें उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त (Di-azotized) द्वि-अज़ोकृत अमीनका संयोग भानल (Phenol) अथवा अमीन मूलक यौगिकसे करनेसे भी अॅज़ो-यौगिक तय्यार हो जाता है। किन्तु इसका ध्यान रखना आवश्यक है कि इस अमीन अथवा भानलमें का पॅरा-स्थान (Para-position) बिल्कुल (free) निर्विकार होना चाहिये।

द्वि-अॅजोकृत अमीनको तन्मूलक भस्म (Base) तथा उसके उद्धरिदके साथ गरम करनेसे द्वि-अॅज़ो अणुओंकी पुनः रचना हो जाती है और उससे अॅज़ो-यौगिक तय्यार हो जाता है। इस प्रकार तय्यार किये हुए अॅज़ो-यौगिक गहरे रङ्गके होते हैं। परन्तु उसमें क्षारोद अम्ल अथवा भस्म मिलाये बिना वह रँगनेके काममें नहीं आ सकता। चेतन (कार्बनिक) कारकोंके योगसे इसका रूपान्तर अॅज़ोक्सीयौगिक (Azoxy Compound) में हो जाती है। यदि (Reduction Process) लघ्वीकरण क्रिया की जाय तो उसका रूपान्तर हाइड्रो-अॅज़ो अथवा अमीनमें हो जाता है।

अॅज़ो बेनजीनका सूत्र क. ६, उ. ५, न : न. क. ६, उ. ५, है। नत्रबेनजीन (Nitro Benzene) की लघ्वीकरण क्रियामें यशद चूर्ण इत्यादिके प्रयोग से यह तय्यार हो जाता है। इसकी लघ्वीकरण क्रियाके लिये क्षारीय-वंग हरिदाका भी प्रयोग होता है। इसका सिद्धान्त नीचे दिया जाता है—

नत्र बेनजीन. उज्ज. अॅज़ोबेनजीन पानी
२क,६ऊ,५.नत्र २+४उ२=क६,उ५ नःनक६उ+४उ२प्र

अॅज़ो बेनजीनका अल्कहलके प्रयोगसे यदि मणिभ तय्यार किया जाय तो वह नारङ्गी अथवा लाल रङ्गके चपटे टुकड़े होंगे। इनका (Melting point) द्रवणांक ६८°श और (Boiling point) क्थनांक २९३° श होता है।

अमिन-अॅज़ो-यौगिक–यह केसरिया अथवा लाल वर्णका पदार्थ होता है। बहुधा यह मणिभ (Crystals) रूपमें होते हैं। इनकी लघ्वीकरण-क्रिया शीघ्र ही की जा सकती है। अनिलिन (Aniline) (यह (Indigo) अथवा कोलतार इत्यादि द्वारा तय्यार किया हुआ कार्बनिक (चेतन) पदार्थ है) के साथ वह पदार्थ यदि गरम किया जाय तो इन्दुलीन 'इन्दुलाइन' तय्यार होती है।

इस वर्गके मुख्य तत्वोंका वर्णन संक्षिप्तमें नीचे दिया जाता है:—अमीन अज़ो-बेनजीन (सूत्र. क ६ उ ५. न २. क ६ उ ४ न उ.२.) द्वि-अज़ो अमीन-बेनजीनके अणुकी अन्तस्थ रचनासे तय्यार होता है। इसके चकत्ते पीले चपटे और सूईके आकारके होते हैं। इसका द्रवणांक १२६°श. होता है। नत्र-अॅज़ो-बेनजीनका अमोनिया (क्षारिन वायु) गन्धकिदके साथ लघ्वीकरणसे अॅज़ोबेनजीन तय्यार होता है। अमीन-अॅज़ो-बेनजीनका बंगस हरिद (Stanic Chloride) के साथ लघ्वीकरणसे उसका रूपान्तर (Aniline) अनीलिन और (Mete phenol-di-amin) मित भानल-द्वि-अमिनमें हो जाता है।

द्वि-अमीन-अॅज़ो-बेनजीन (क ६ उ. ५. न २: क ६ उ. ३ (न. उ २) २) के साथ द्वि-अज़ो-बेनजीन-हरिदकी क्रियासे मित भानलिन-द्वि-अमीन नीचे लिखे अनुसार तय्यार होता है:—

द्वि-अॅज़ो-बेनजीन-हरिद मित-भानलिन-द्वि-अमीन
क. ६. उ. ५ नः न ह + क ६ उ ४ (न. उ २) २
द्वि-अमिन-अज़ो-बेनजीन उद्धराम्ल
क ६ उ ५ न : न क. ६ उ ३ (न उ २) २×उ. ह.

यह पीत वर्णके मणिभ भस्मरूपमें होते हैं। इसके अम्ल द्रवमें रक्त वर्णके होते हैं। इसका उद्धरिद (Hydro Chloride) का पीला तथा नारङ्गी रङ्ग इत्यादि 'क्रिसोइ डाइन' नामसे बेचा जाता है। ऊन अथवा रेशमको पीला रँगनेमें यह काममें आता है।

त्रि-अमीन-अॅज़ो-बेनज़ीन (मेटा अमीनबेनजीन-अॅज़ो मेटा, फेनेलीन-डाई-अमाइन विस्मार्क-ब्राउन, फेनेलीन-ब्राउन वेसुब्राइन, और मनचेस्टर ब्राउन इत्यादि) (न उ २. क ६ उ ४. न. २ क ६ उ ३. (न उ २) २) से अर्थ है। मित अमीन बेनजीन-अजो-मितभानलीन द्वि० अमिन ये पदार्थ मित-भानिल पर नत्र-अम्ल (Nitric Acid) के साथ प्रयोग करनेसे तय्यार होता है। मित-भानिलिन द्वि अमीन उद्धरिदमें सिन्धु नत्रायितका द्रव डालनेसे हलका बादामी रङ्ग तय्यार होता है। जैसे मित-भानिलिन. द्वि-अमीन उद्धरिद-मित-भानलीन (न उ २) क ६ उ ४, न २ ह + न. क ६ उ ४ (न उ २) २) उद्धराम्ल

विस्मार्क ब्राउन—(न उ २) क ६ उ. ४ न : न क ६ उ ३ (न उ २) २ + उ. ह.

द्वि-अमीन अणुमें से एक अणु अॅज़ो-संघ द्वि-अॅज़ो हो जाता है और उसीके दूसरे अणुके संसर्गमें आनेसे यह अॅज़ो रङ्ग (Azo-dye) हो जाता है।

इसके मणिभ (Crystals) भूरे होते हैं और गरम जलमें सरलतासे घुल जाते हैं। इससे सूत (Cotton) पर गहरा रङ्ग चढ़ाया जाता है, किन्तु रँगनेके पहले सूत पर रङ्ग पकड़नेके लिये किसी रसायनका प्रयोग कर लेना चाहिये।

मेथिल आरेञ्ज (Methyl orange) में ही गोल्डआरेञ्ज, मन्दारिन ऑरेञ्ज अथवा आरेञ्ज न०३ इत्यादि आ जाते हैं। यह परा द्वि-मेथिल (Para-di-methyl) अमीन बेनजीन अज़ोबेनजीन तथा गन्धकिकाम्ल (Sulphuric Acid) का सिन्धु क्षार है। इसका सूत्र (क उ ३) २ नं. क. उ ४ न २ क ६ उ ग प्र ३ धु है। यह नारङ्गी रङ्ग की रवेदार बुकनी होती है। पानीमें यह घुल जाती है। अम्लके अतिरिक्त और कुछ न होनेसे वह लाल रङ्गकी होती है। नरङ्गी रङ्ग होना अम्लके साथ क्षार भी होना सूचित करता है। उदाराम्ल युक्त द्रवमें बंगस हरिदके साथ लघ्वीकरण क्रिया करनेसे गन्धकिक-अनिलिनाम्ल और पॅरा अमीन-द्वि-मेथिल अनिलिन पृथक् पृथक् हो जाते हैं। इससे मेथिल-आरेञ्जके विषयमें बहुत कुछ स्पष्ट हो जावेगा।

प्राण-अॅज़ो यौगिक—(Hydro Azo Compound) यह तय्यार करनेके लिये भानल क्षार तथा ठण्डे द्रवमें द्वि अज़ोनियमके क्षारका द्रव मिलाना चाहिये। यह द्विअज़ोसंघ (डाइ. अॅज़ो-ग्रूप) उत्प्राणिल संघ (हाइड्राक्सिल ग्रूप) के सम्मुख आकर पॅारास्थानमें व्याप्त हो जाता है, किन्तु रुकावट होनेसे वह आसन-स्थान पर रह जाता है। स्वयं वह मित स्थान पर कभी नहीं जाता।

(Peroxy) परॉ प्राण-अॅज़ो बेनजीन अथवा बेनजीन-अॅज़ो भानल (क ६ उ ५ नः क ६ उ ४ प्र ३) तय्यार करनेके लिये द्वि-अॅज़ो टाइज़ड् अनिलिन का संयोग क्षारद्रवके भानलसे करना आवश्यक है। यह नरङ्गी तथा लाल वर्णके मणिभ के आकार का होता है। इसका द्रवणाङ्क १५४° है।

आसन्न-प्राण-अज़ो-बेनज़ीन (ऑर्थो-आक्सि अॅज़ो बेनजीन-क ६ उ ५. न : न (१) क ६ उ ४ (प्र उ) २) का किसी अन्य पदार्थ में रूपान्तर करनेसे वह उसके सहितअल्पांश प्रमाणमें होता है। अतः उसको बाष्पोद्रेकसे नीचे लाना चाहिये। यह आसन्न पदार्थ वाष्पपातके साथ आता है। इस पदार्थके मणिभ नरङ्गी रङ्गके होते हैं। इसका द्रवणाङ्क ८२.५ से ८३ तक होता है। पतले हरिद अमीन के द्रव में इसका यशद चूर्ण के साथ लघ्वीकरणसे आसन्न (आर्थो) अमीन-भानल और अनिलिन तय्यार हो जाता है।

मित प्राण-अॅज़ो बेनजीन (क ६ उ ५ न : न (१) क ६ उ ४ (प्र उ) ३ आसन्न सालेयिदीन (आर्थो-अनिसिडिन) और द्वि-अॅज़ो-बेनजीनके गाढ़ी-करण (Condensation) से तय्यार होता है। इस भाँति जो पदार्थ तय्यार होता है उसका द्वि-अॅज़ोटाइज़िड अलकोहलसे लघ्वीकरण करने से बेनजीन अज़ो-अनिसोल तय्यार होता है। अल्युमिनियम क्लोराइडके साथ इस पदार्थ पर रासायनिक क्रिया करनेसे मित-प्राण अॅज़ोबेनजीन तय्यार होता है। इसका द्रवणाङ्क ११२° से ११४° तक है। इसके-लघ्वीकरणकी क्रिया सरल ही है और तज्जातीय (corresponding) उद् जीव यौगिक तय्यार होता है।

द्वि अॅज़ो-अमीन—इसका सूत्र ज्ञ न : न नउ ज्ञ १ (ज्ञ = मूलक) है। इसको निम्नलिखित प्रकार से तय्यार किया जा सकता है-(१) आद्य (Primary) अमीनकी क्रिया द्वि-अज़ोनियम क्षार पर करने से, (२) असंयुक्त (Free) आद्य अमीन पर नत्राम्लकी क्रिया करनेसे, और (३) आद्य अमीन पर नत्र अमीन की क्रिया करनेसे। ये मणिभ जमे हुए पीतवर्णके होते हैं। अम्लसे इनका संयोग नहीं होता। अमीन अॅज़ो-यौगिक में इनका रूपान्तर शीघ्र ही होता है। गाढ़े तैलादि उपधातु (Halogen) अम्लके योगसे इसका पृथक्करण हो जाता है और बेनज़िन हलाइडस् नत्र और अमीन अलग अलग हो जाता है।

अम्ल-निरुज्जादिद (Acid unhydroid) अमीन उज्ज परमाणुके स्थान पर जाकर उसके स्थान पर अम्लिल (ॲसिडिल) मूलक (radicles) निविष्ट होते हैं। यदि यह पानीके साथ उबाला जाय तो भानलमें रूपान्तर होता है।

द्वि-अॅज़ो-अमीन बेनजीन—(क ६ उ ५ न : न उ क ६ उ ५) यह पदार्थ पहले पहल पी० ग्रीसने निकाला था। ये पीत वर्णके मणिभ होते हैं। यह ९६° पर पिघल जाते हैं। यदि तापमान अधिक कर दिया जाय तो इसका स्फोट हो जाता है। इथर और बेनजीन अल्कहलमें सहज ही घुल जाते हैं।

द्वि-अज़ो-बेनजीन पॅर-ब्रोमाइड पर अम्लवायु को क्रिया का प्रयोग करनेसे द्वि-अज़ो-अमीन-बेनजीन (क ६ उ. ५. न उ) तय्यार हो जाता है। यह पीतवर्ण का तेलके समान रहता है। इसका क्थनाङ्क ५९° होता है इसको सूँघनेसे अचेतना

होती है। अधिक तापसे इसका स्फोट हो जाता है। उद्धराम्लके योगसे इसका रूपान्तर हर-अनिलिन (क्लोरो-अनिलीन) में हो जाता है और नत्र निकल जाता है। उबलते हुए गन्धकाम्लके योग से इसका रूपान्तर अमीन-भानल में हो जाता है।

ॲजोप्राण-यौगिक—इसका सूत्र (ज्ञ, न, प्र, न ज्ञ) (ज्ञ=मूलक) है। प्रायः ये जमे हुए पीत वर्ण अथवा रक्तवर्णके मणिभ होते हैं। नत्र अथवा नत्र-यौगिकके लघ्वी-करणसे यह तय्यार होता है। अल्कहल युक्त इसे पलाससे गर्म करनेसे इसका लघ्वी-करण होता है। ॲजो-यौगिकके प्राणिदीकरणसे भी यह तय्यार हो जाता है।

अज़ोर्स (Azores)—पुर्तगालके अधिकार में अटलांटिक महासागरका एक द्वीपसमूह है। यहाँकी जनसंख्या १९११ में २४२६१३ थी। इसका क्षेत्रफल ९२२ वर्गमील है। उ० अ० ३६°२५'-३९°५५' तथा प० रे० २५° से ३१-१६' के बीच यह टापू वायव्याग्नेय दिशामें फैला हुआ है। इन टापूओंके दूर दूर पर तीन समूह हैं। वे अढ़ाई मील गहरे समुद्रमें से ऊपर आये हैं। इनमेंसे आग्नेय दिशाके समूहमें सेन्ट मायकेल्स, सेन्ट मेरी (सान्ता मेरिया) फोर्मिगस हैं। बीचके समूहमें फायल, पायको, सेन्ट जार्ज टर्सेइरा और ग्रशिओसा हैं। वायव्यके समूहमें फ्लोर्स और कोर्व्हो टापू हैं। इस समूहमें क्षेत्रफल और आवादी के ख्यालसे सबसे बड़ा टापू सेन्ट मायकेल है। (क्षेत्रफल २९७ वर्गमील; आबादी (१९०१) २१३४० है। इस टापूसे योरपका किनारा लगभग ८०० मील, अफ्रिकाका किनारा ९०० मील और अमेरिकाका किनारा २००० मीलसे भी दूर है। तथापि यहाँकी आबहवा और वनस्पतियाँ योरप-खंडके टापूओंके समान ही हैं।

भू-वर्णन—इन सब द्वीपोंकी जमीन ऊँची नीची है और इसमें पठार बिल्कुल नहीं हैं। इनमें से सबसे छोटा शिखर कोर्व्होका समुद्र-तलसे ३०० फुट ऊँचा है और सबसे ऊँचा शिखर पायकोका ७६१२ फुट ऊँचा है। कुछ भागको छोड़कर प्रायः सब भाग समुद्रकी सतहसे ऊँचा है। यह ज्वालामुखी-जन्य-द्वीप समूह है। जबसे इसका पता लगा है तबसे अनेक भूकम्प और ज्वालामुखीके प्रस्फुटन होते रहे हैं। फ्लोर्स, कोर्व्हो, ग्राशिओसा और फायल नामक द्वीप निसर्ग क्षोभसे दूर हैं। सेन्ट मायकेल्स भू-कम्प-मंडलका केन्द्र होते हुए भी यह आश्चर्य है कि, इसके पड़ोसके सेन्ट मेरीके टापूको इससे कुछ खतरा नहीं पहुँचा है। १४४४-४५ ई० में सेन्ट-मायकेल्समें एक प्रस्फोटन हुआ था, परन्तु इस प्रस्फोटनका वर्णन जो दिया हुआ है वह अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ता है। १५२२ ई० के उग्र प्रस्फोटनमें तो इस टापूकी राजधानी विल्ला फ्रांका ६००० निवासियों सहित जमीनमें समा गयी। इसके बाद १६३०, १६५२, १६५६, १७५५, १८५२ ई० इत्यादिमें भी अनेक भू-कम्प आये थे। इसके पश्चात् यहाँ अनेक ज्वाला-मुखी स्फोट हो गये हैं। कई समय (१६३८, १७२०, १८११, १८६७) यहाँ भूगर्भ जन्य स्फोट भी हुए हैं, जिनके साथ एक आध टापू समुद्रमें से ऊपर आ जाता है। इसी प्रकारका एक टापू जो १८२१ ई० में सेन्ट मायकेल्सके पश्चिमी कोनेमें दो मीलकी दूरी पर समुद्रमें से ऊपर निकला, वह 'साब्रिना' नामसे प्रसिद्ध है।

आबहवा—इस टापूकी आवहवा सम शीतोष्ण है। जनवरीमें छायामें तापमान ४८° के नीचे और जुलाईमें ८२° से ऊपर। जाड़ेमें हवा वायव्य, पश्चिम, दक्षिण दिशासे और ग्रीष्मऋतुमें प्रायः उत्तर ईशान्य और पूर्व दिशासे बहती है। यहाँ, बड़े बड़े तूफान अकसर आया करते हैं।

प्राणि और वनस्पति——यहाँ पर पालतू पशुओं के अतिरिक्त खरगोश, चूहा, चिमगादड़ इत्यादि दूसरे पशु पाये जाते हैं। यहाँ पर अनेक प्रकार के पक्षी हैं। परन्तु उनसे फसलका बहुत नुकसान होता था। इस कारण ४०-५० वर्ष पूर्व असंख्य पक्षियोंका संहार किया गया था। फायल में ह्वेल मछलियोंका शिकार तथा उसका व्यापार बहुत होता है। यहाँकी वनस्पतियाँ सामान्यतः यूरोपकी वनस्पतियोंके समान हैं। बहुतसे टापूओं में घास अधिक पैदा होती है। परन्तु १९ वीं शताब्दी तक बड़े बड़े वृक्षोंकी यहाँ बहुत कमी थी। नारंगी, नीबू, अनारकी खेती की जाती है। किसी समय ईखकी खेतीकी ओर बहुत ध्यान दिया जाता था। परन्तु आजकल वह खेती बिल्कुल बंद हो गई है। १९ वीं शताब्दीमें नील (Indigo) की खेती आरम्भ की गई थी परन्तु उसकी भी ईखके समान दशा हुई।

आबादी और शासन-पद्धति—इस द्वीपमें मुख्य बस्ती मिश्र वंशके पुर्तगीजोंकी है। इनकी नसोंमें फ्यूरिश और फ्लेमिश लोगोंका रक्त प्रवाहित होता है। नीग्रो, इंग्लिश, स्कॉट, और आइरिश लोग भी विशेषतः सेन्ट मायकेल्स, और फायल टापूओंमें आकर बसे

हैं। राज्यप्रबन्धके लिये इस द्वीप-समूहके तीन भाग किये गये हैं। इसके मुख्य शहर पाराडेल-गाड़ा (सेन्ट मायकेल्सकी राजधानी) आँग्रा (टर्सइराकी राजधानी) और होर्टीफायलकी राधानी है। लिस्बनकी जनताकी प्रतिनिधि-सभाको पाटा-डेलगाडामें चार और दूसरे दो ज़िलोंमें अपने दो दो प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार है। सेनाकी छावनी आग्रा और पारा-डेल-गाडामें है। सेन्ट-मायकेल्स, केह्निल्ला-डो-काम्पो तथा पायको, फायल, सेन्ट जार्ज और ग्राशिओसा द्वीपों और लिस्बन शहरमें तारका सम्बन्ध स्थापित किया गया (Telegraphic System) है। १६०१ में फायल और आयर्लेंडमें भी तार (Telegraphic Connection) हो गया है। आग्रा और पॉटा-डेलगाडामें वायुभार मापक यन्त्रशालायें हैं।

व्यापार-इस टापूका पुर्तगाल, ग्रेटब्रिटेन, जर्मनी, युनाइटेड स्टेट्स इत्यादि देशोंमें व्यापार होता है। कपड़ा, कोयला, चीनी, लिखनेकी वस्तुएँ, लोहेके सामान, रासायनिक द्रव्य, रंग, तेल इत्यादि पदार्थ यहाँ बाहरसे आते हैं फल मद्य और खाद्य पदार्थ यहाँसे बाहर भेजे जाते हैं। पारा-डेल-ग्रोडामें मिट्टी के बर्तन, सूती कपड़े, मद्य, घासकी टोपियाँ और चाय; आग्रामें सूती, और ऊनी, कपड़ा, मक्खन, साबुन, ईंटें, खपड़ा, इत्यादि, और हार्टामें टोकरियाँ, चटाइयाँ, इत्यादि वस्तु तैयार होती हैं।

इतिहास--कोव्होंमें कार्थेजियन सिक्के पाये जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि इन वीर पुरुषों ने इस टापूमें प्रवेश किया था। १२ वीं शताब्दीके अरब-भूगोल-वेत्ता इद्रिसीने कॅनडी द्वीपके बाद महासागरके जितने द्वीपोंका वर्णन किया है वे प्रायः अज़ोर्स ही होंगे। अरबी-ग्रंथकारने इसके विषयमें कहा है कि इन द्वीपोंमें घनी बस्ती और साधारण बड़े शहर हैं। यहाँके लोग आपसकी लड़ाइयोंके कारण हीनावस्थाको प्राप्त हुए हैं। इन टापुओंका उल्लेख १३५१ ई० के नकशेमें मिलता है परन्तु उसमें उनके नाम मात्र भिन्न भिन्न हैं। इस टापूकी खोज प्रथम यूरोप खण्डवालों ने (१४३२) की। पुर्तगीज़ और फ्लेमिश लोगों ने वहाँ उपनिवेश स्थापित करना आरम्भ कर दिया। १५८० से १६८० ई० तक ये द्वीप स्पेनके अधिकारमें थे। १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें जब पुर्तगालकी गद्दीके लिये अनेक पक्षोंमें युद्ध आरम्भ हुआ तो इन टापुओं पर अधिकारके लिये भी झगड़ा हुआ था। अन्तमें इन टापुओं पर रानी मेरियाका अधिकार स्थापित होगया। आग्रामें रानी मेरियाका निवास १८३० ई० से १८३१ ई० तक था (संदर्भ ग्रंथ-डब्ल्यू० एफ० बाकर—अज़ोर्स। एस० एल० ब्राउन-मदिरा एण्ड कनरी आयरलैण्ड बुइथ अज़ोर्स)।

अज़ोरा, डॉन्ट जोन्स निकोल डी—(१७३१ ई० से १८०४ ई० तक) यह एक स्पेनिश मुखिया था। इसका जन्म १७३१ ई० में ऑरगॉनके बार-बुनेल्समें हुआ था। १७८५ ई० में रोमके राज्य-दरबारमें यह राज्यदूत नियत कर भेजा गया। यहाँ पर उसने प्राचीन इटालियन वस्तुओंका संग्रह करने तथा कला कौशलमें बहुत नाम कमाया। स्पेनसे यहूदियोंको निकालनेके कठिन कार्यमें इसने मुख्य भाग लिया था। छठवें पोप का चुनाव भी इसीकी सहायतासे हुआ था। १७६२ ई० में फ्रान्सीसी लोगोंने जब रोम ले लिया तो यह फ़्लॉरेन्समें जाकर रहने लगा। पोपके अज्ञातवासमें यह बराबर बहुत कुछ काम करता रहा। बल्कि व्हलेन्समें जब उसकी मृत्यु भी हो गई तब भी यह उसका काम बराबर करता ही रहा।

इसके पश्चात् यह स्पेनकी ओरसे पेरिसमें राजदूत बनाकर भेजा गया। दुर्भाग्यवश नैपोलियनकी इच्छानुकूल इसे फ्रान्स और स्पेनके मध्यमें सन्धि स्थापित करानेका भार अपने ऊपर लेना पड़ा। १८०४ ई० में पेरिसमें इसका शरीरान्त होगया।

अज़ोह—(Azov) यह नगर रूसके डॉन-कोसक्स प्रान्तमें बसा हुआ है। यह डॉन नदीके तीर पर स्थित है। तेरहवीं शताब्दीमें जिनोवा-निवासियोंने यहाँ एक कारखाना खोला था जिसे टाना कहते थे। यह सैनिक दृष्टिसे बड़े महत्व का स्थान है। व्यापार भी यहाँ होता है। पीटर दी ग्रेटने यह नगर १६६६ ई० में प्राप्त किया था, किन्तु १७११ ई० में यह फिर तुर्की लोगोंको मिल गया था। १७३६ ई० में यह नगर रूस साम्राज्य में मिला लिया गया, और अब तक उसीके आधीन है। धीरे धीरे करके यह बन्दरगाह डान नदीकी मट्टी और कीचड़से बिल्कुल नष्ट होगया जिससे इसका पूर्व महत्व भी लुप्त होगया। १६०० ई० में यहाँ की जन-संख्या २५२१४ थी। यहाँ बहुधा लोग मछली पकड़नेका रोज़गार करते थे।

अजोहका समुद्र—(Sea of Azov) यह उ० अ० ४७° और पू० रे० ३४°-३६°१५ में स्थित है। यह दक्षिणीय योरपका अन्तस्थ छोटा सा समुद्र

है। योर्नकेलके (Strait) स्थल-डमरूमध्य द्वारा यह काले समुद्र (Black sea) से संयुक्त है। आदि-एतिहासिक कालमें इसका सम्बन्ध कॉस्पियन समुद्रसे था। इसकी लम्बाई (नैऋत्य से ईशान्य तक) २३० मील है और अधिकसे अधिक स्थानपर चौड़ाई ११० मील तक है। इसका क्षेत्रफल १४५१५ वर्गमील है। यह नवम्बरसे अप्रैल तक जमा रहता है। इसमें केवल डॉन नदी गिरती है। अधिकसे अधिक गहराई इसकी ४५ फीट है। इसका सिन्धु-धरातल काले समुद्रके धरातलसे ४७५ फीट अधिक है। किन्तु धीरे धीरे इसका धरातल कम होता जा रहा है। अन्य समुद्रोंकी अपेक्षा इसका जल कम खारा है। इसके जल पर स्थल इत्यादिका बहुत प्रभाव पड़ता है। रूसके व्यापारमें इसका स्थान बड़े महत्वका है। इसके किनारों पर टागन-राग, बेरड्यान्स्क, मेरयुपोल और येनिकेल इत्यादि नगर बसे हुए हैं।

अज़्हर बैजान—(अझर बैजन Azer baizan)—इसमें लोकसत्तात्मक राज्यका अस्तित्व १९१७ ई० तक नहीं हुआ था। जब रूसमें साम्राज्यवादका अन्त हो गया तो काकेशिया पर्वत के परे छोटे छोटे कई रूसी प्रान्तोंने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। उन्हींमें से यह भी एक था। अज़्हर बैजानका कोई स्वाधीन प्राचीन इतिहास नहीं है। ये लोग अपनी वंशोत्पत्ति तकसे अनभिज्ञ थे। १९१७ में बाकू और एलीसाव्हेटोपोल के दोनों प्रान्त मिलकर 'अज़्हर बैज़ान' का लोकसत्तात्मक राज्य बन गया।

१८१३ ई० की सन्धिके अनुसार यह प्रदेश ईरानके हाथसे निकल कर रूसके आधीन होगया था। रूसके शासनमें अज़्हर बैजनका अस्तित्व करीब करीब नष्ट हो चुका था, किन्तु प्रजातन्त्रका ज़ोर होनेपर यह फिर प्रसिद्ध होगया। यह प्रदेश कुर और आरस नदियोंके मध्यमें बसा हुआ है। देश उपजाऊ है और तेलके सोते अनेक पाये जाते हैं। यहाँपर दो तिहाई लोग तातार वंशीय हैं, और ये 'शीया' पंथके माननेवाले हैं। अनाटोलियाके सुन्नी लोगोंसे ये भिन्न हैं। यहाँकी जनसंख्या २६,००,००० है। इनमेंसे १७४००० तो केवल मुसलमान हैं। ५४०००० आर्मेनियन तथा २३०००० रूसी और शेष योरप की भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। इसकी सीमा पर एरिव्हान और जार्जिया नामक दो लोक-सत्तात्मक राज्य स्थापित होगये थे। इसका क्षेत्रफल लगभग ३२००० वर्ग मील है। उ० अ० ४०° से पू० रे० ४९ में यह स्थित है।

यहाँका मुख्य व्यापार तेलका है। इसको बाहर बहुत अधिक परिमाणमें भेजते हैं। इसकी राजधानी बाकूके समीप तेलके कई बड़े बड़े सोते हैं। इससे बाकूका महत्व बहुत कुछ बढ़ गया है। बाकूसे मास्को, अफगान, पामीर, ईरानका एरिव्हान, ट्राविज, तुर्किस्तानका अर्जेरूम, और काला समुद्रके बातूम तक रेल जारी कर दी गई हैं। तेलके व्यापारमें प्रधानत्वके कारण यूरोपीय महासमरमें इसने भी बहुत कुछ भाग लिया था।

तुर्किस्तानमें जो आधुनिक इस्लामी आन्दोलन उठा था उस नीतिका प्रभाव मध्य एशिया और भारत पर तो पड़ा ही था, किन्तु अज़्हर बैजन पर भी इसका प्रभाव बहुत कुछ हुआ था। और इस्लामी आन्दोलनसे भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था इसपर रूसकी बोलशेविक सत्ताका (Bolshevic)। इन्हीं दोनों, तुर्की और रूसी, नीतियों के परस्पर संघर्षसे इसका स्वतन्त्र इतिहास बन गया।

इतिहास—'ईरानकी सोहराब रुस्तमकी कथा' इत्यादि पुराने लेखोंमें इसका उल्लेख आया है। स्वतन्त्र राष्ट्रकी दृष्टिसे इसका पुराना इतिहास नहीं मिलता। १९१७ ई० की २० सितम्बरसे यहाँ प्रजा-सत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ। १९१७ ई० के मार्च मासमें रूसका ज़ार पदच्युत कर दिया गया और नवीन राज्यका आविष्कार हुआ। इसी वर्ष सितम्बरमें बोलशेविक प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना हुई। ट्रॉन्स काकेशियाने इस आन्दोलनसे लाभ उठाया। इन्होंने टिफ्लीसमें एक सभा करके लोक-सत्तात्मक राज्यकी घोषणा कर दी। जार्जिया और अरमेनियाके ईसाइयोंमें और अज़्हर बैजानके तातारी मुसलमानोंमें पटरी नहीं खाती थी। इसलिये इन्होंने भी अपने अलग अलग छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। अरमेनियाने रूसके बोलशेविकोंसे, जर्जियाने जर्मनसे और अज़्हर बैजानने तुर्किस्तानसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया। उसी समय बाकू और उसके समीपस्थ प्रदेशोंमें बालशेविक राज्य की स्थापना हुई, और वहाँके रूसी और आरमेनियनोंने तुर्की लोगोंको भगाना और मारना आरंभ कर दिया। इन सब आपसके झगड़ोंसे संयुक्त लोक-सत्तात्मक राज्य नष्ट भ्रष्ट होगया और जर्जिया और अज्हर बैजानने स्वतन्त्र लोक-सत्तात्मक राज्य स्थापित किये। इस्लामी संसारके

नीतिके अनुसार बाकू प्राप्त करने और मध्यएशिया में प्रवेश करनेको तय्यारी तुर्किस्तानने आरम्भ कर दी। उनसे युद्ध करनेके लिये तथा बाकूकी अरमेनियन फौजकी सहायताके लिये जनरल डन्स्टर हीलके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश फौज मोसोपोटेमियासे भेजी गई। महासमरकी तहकूबी सन्धिके अनुसार तुर्की और जर्मन सेना इस भागको छोड़ कर चली गई और ब्रिटिश फौजने बाकू पर अपना अधिकार स्थापित किया। वहाँ पर शासन-व्यवस्था ठीक करनेके लिये तथा व्यापारियोंको तेलोंके कारखानोंका ठीक ठीक प्रबन्ध करने, जहाज बनाने, बैंक खोलने, डाक, तार, रेल जारी करने, पुलिस विभाग, न्याय विभाग, इत्यादि स्थापित करनेमें ब्रिटिश अधिकारियोंने बड़ी सहायता की। इससे इस राज्यमें शांति तथा सुव्यवस्था स्थापित हो गई थी, किन्तु १९१९ ई० के अगस्त मासमें ब्रिटिश-सेनाके चले जानेके बाद यहाँ फिर गड़बड़ शुरू हो गई।

१९१९ ई० के जनवरी महीनेमें जो सन्धिपरिषद्की बैठक पेरिसमें हुई थी उसमें काकेशिया प्रदेशकी ओर बहुत कुछ ध्यान दिया गया था। परन्तु वहाँके लोक सत्तात्मक राज्योंने सीमाप्रान्तके झगड़ोंको परस्पर ही निबटानेका निश्चय कर लिया, और उन लोगोंको हस्तक्षेप करने न दिया। भविष्यमें झगड़ा रोकनेके लिये एक हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया। बातूम जार्जियाको फिरसे प्राप्त हुआ। किन्तु सेव्हिर्सकी सन्धिसे अनाटोलियामें फिर बड़ी हलचल मच गई, और उसका प्रभाव अज्हरबैजान पर भी बहुत पड़ा। मित्रराष्ट्र (Allies) से तुर्कों तथा रूसी बोलशेविकों दोनों ही का झगड़ा था। अतः कुछ कालके लिये ये दोनों मिल गये और मित्रराष्ट्रके हाथसे इसे फिर निकाल लेनेका प्रयत्न करने लगे।

१९२० में रूसने वहाँका स्वतन्त्र राष्ट्र नष्ट कर सोवियेट राष्ट्र स्थापित किया। इसके बाद जब तातारियोंने वहाँ विद्रोह किया तो १५००० तातारों का बोलशेविकोंने नाश कर डाला। आगे चलकर तुर्किस्तानकी सहायतासे जार्जिया और एरिव्हान के स्वतन्त्र लोक-सत्तात्मक राज्योंका भी इन्होंने अन्त कर दिया। तुर्किस्तानको इसके फलस्वरूप अर्दनान, कार्स, और आर्मेनियाका कुछ भाग प्राप्त हुआ। और रूसने ट्रान्स-काकेशियाका वह भाग जो युद्धके पहले उसके आधीन था अपने अधिकार में फिरसे कर लिया। अज़हर बैजान, जार्जिया और एरिव्हानके स्वतन्त्र-राज्यका अस्तित्व अब केवल नाम मात्रको रह गया।

अटक जिला—पंजाब प्रांतका यह एक जिला है। इसका क्षेत्रफल ४०२२ वर्ग मील है। इसके पश्चिम और वायव्यमें सिन्धु नदी, वायव्य सीमाप्रान्तमें कोहाट और पेशावर ज़िला, ईशान्य में इसी प्रान्तका हजारा जिला, पूर्वमें रावलपिंडी, आग्नेयमें झेलम, दक्षिणमें शाहपूर और नैऋत्यमें मियाँवाला जिला है। तल-गंगका पठार समुद्रतलसे १२०० फीट ऊँचा होनेके कारण दूसरे भागोंकी अपेक्षा इसकी आबहवा सर्द है। अटकके पठार, जंगलके बालुकामय प्रदेश, तथा मरवंदकी छोटी छोटी पहाड़ियों पर अधिक गरमी पड़ती है। यहाँकी वृष्टिकी वार्षिक औसत १७ से २४ इञ्च तक है।

इतिहास—इसका और रावलपिंडी जिलेका इतिहास करीब करीब एक है। यह बुद्धके समय से विख्यात था। उस समयके मुख्य खण्डहर अब तक हसन अब्दुला गाँव इत्यादिमें पाये जाते हैं। एक समय यह तक्षिला राज्यके अधिकारमें था। मुहम्मद गजनवीने आनन्द-पालका पराभव अहिन्दके पास किया था। तत्कालीन अहिन्द अटकके समीप ही था।

जनसंख्या—१९२१ ई० में इस जिलेकी जनसंख्या ५१२२४९ थी। जनसंख्यामें से फी सदी ९० मुसलमान हैं। यहाँ पंजाबकी भिन्न भिन्न जातियाँ बसी हुई हैं। यहाँके निवासी पश्तो भाषा बोलते हैं।

खेती—इस जिलेके उत्तरमें चॉचका चौरस मैदान अत्यन्त उपजाऊ है। सोहान और दूसरी नदियोंके किनारेकी जमीन भी उपजाऊ है। अन्य स्थानोंकी भूमि उपजाऊ नहीं हैं पर यहाँकी बस्ती कम होनेके कारण वृष्टि कम होनेपर भी यहाँ अकाल नहीं मालूम पड़ता है। यहाँकी मुख्य पैदावार तो गेहूँ है, पर चना, बाजड़ा, इत्यादि अनाज भी पैदा होते हैं। यहाँ पर घोड़े उत्तम होते हैं।

अटक जिलेमें संगमरमरकी खलें तथा अनेक अन्य वस्तुयें तय्यार की जाती हैं। काला पहाड़ में कोयला मिलता है। फतेहगंजके पास मिट्टीका तेल निकालनेके पाँच कुएँ हैं।

व्यापार और तिजारत—इस जिलेमें कोई भी बड़े महत्वका कारखाना नहीं है। यहाँ रेशमी तथा सूती कपड़ा बुना जाता है। इसके अतिरिक्त लकड़ीके काम, लोहेके बर्तन, ताला, चटाइयाँ, साबुन इत्यादि वस्तु यहाँ बाहरसे आती हैं।

नार्थ वेस्टर्न रेलवेकी एक शाखा इस जिलेके उत्तर भागमें होकर गई है। मध्यभागसे खुशहाल गढ़वाली एक शाखा गई है। पश्चिम भागमें मारीअटक शाख कॅम्बॅलपूर (Campbelpur) से मुलतानकी ओर गई है। रेलवेकी लाईनसे सटी हुई दो सड़कें, 'हसन अब्दाल अबटाबाद' और 'रावल पिंडी खुशहालगढ़' तक पक्की बनी हुई हैं।

राज्य-व्यवस्था—अटक पिंडीघेव. फतेहगञ्ज और तलगंगमें तहसीलदार और नायब तहसील दार रहते हैं। कॅम्बॅलपूर जिलेका मुख्य स्थान है। यहाँ डिप्टी-कमिश्नर रहता है।

पिंडी और हजारामें म्युनिसिपैलटियाँ हैं। अटक 'नोटिफाईड' एरिया है। और दूसरे स्थानों का शासन जिला बोर्डके हाथोंमें है।

१९०१ ई० की जनसंख्याके अनुसार प्रतिशत ३.६ मनुष्योंको पढ़ना लिखना आता था। उनमें से मनुष्योंकी संख्या तो ६.४ प्रतिशत थी और स्त्रियोंकी .४ थी।

अटक (नदी)—सिन्धु नदीको पश्चिमीय धाराको ही कदाचित् यह नाम दिया गया होगा। अटक शब्दका प्रयोग अकबरने किया था और कदाचित् इस नदीको पार न कर सकनेके कारण ही (अर्थात् वहाँ आने पर अटक जानेके कारण) यह नाम दिया गया है। कुछ लोगोंका मत है कि वह हिन्दुस्तानकी सीमा है, इसी कारणसे उसको यह नाम पूर्वकालसे दिया गया होगा। देशकी धार्मिक सीमा भी इसीको मान लिया गया था। धार्मिक दृष्टिसे पुराने जमानेमें विदेश जानेसे धर्ममें बाधा पड़ती थी। अतः इस नदी के पार जानेवाले हिन्दूको भी दोष लगता था और प्रायश्चित् करना पड़ता था। इस कारणसे भी इसका नाम सम्भवतः अटक पड़ा होगा। किन्तु निश्चयरूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि अटक हिन्दुस्तानकी सीमा कब स्थापित हुई। अवेस्ता कालमें 'हप्त हिन्दवः' का उल्लेख मिलता है और यूनानियोंने 'इण्डिया' नामसे उल्लेख किया है। उस समयसे ही उन लोगोंकी यह कल्पना थी कि जिस भाँति यह धार्मिक विचारों से सीमा निश्चित की गई है उसी भाँति राष्ट्रीय विचारोंसे भी यही मर्यादा थी। अटकके पार का देश अपने देशके परे समझा जाता रहा है। १७६० ई० में पेशवा बालाजी बाजीरावने गंगाधर यशवंत को पत्रमें लिखा था कि दत्ताजी सींधिया इत्यादि की सहायता लेकर उनको चाहिये कि अब्दालीको जीत कर अटक नदीके पार खदेड़ दें (राजवाड़े खं० १-१५६-२४५)। इससे स्पष्ट है कि मराठोंने अपने देशकी सीमा खैबरदर्रा, क्वेटा इत्यादि न समझ कर शत्रुको केवल अटक पार ही करना चाहा। जिस प्रकार 'असितु हिमाचल' सम्पूर्ण भारतके लिये व्यवहार किया जाता है उसी भाँति अटकसे रामेश्वर तक भी समझा जाता है। १७३२ ई० में बालाजी बाजीरावने पिलाजी जाधवको लिखा था कि नवाब और मराठोंका देश अटकसे रामेश्वर तक है।

अटक गाँव—यह गाँव, पंजाब प्रान्तमें अटक जिलेके अटक ताल्लुकेका मुख्य स्थान है। यह नार्थ वेस्टर्न रेलवेका स्टेशन है। यह कलकत्तेसे १५०५ मील, बम्बईसे १५४१ मील और कराचीसे ८८२ मील दूर है। यहाँकी जनसंख्या १९०१ ई० में २८२२ थी। काबुल और सिंध नदीके संगम के थोड़ा नीचे सिंधके किनारे पर अटकका क़िला है। इस क़िलेके सामने ही कमालिया और जलालिया नामक काले पत्थरकी चट्टानोंमें से होकर सिंध नदी बहती है। अकबरके समयमें दो पाखंडियोंको इन चट्टानों परसे ढकेल दिया गया था।

ऐसा कहते हैं कि अटकसे सोलह मील पर ओहिंद में नदीके ऊपर नावोंका पुल बनाकर सिकन्दर इस नदीके पार आया था। अपने भाई हकीम मिरज़ाके आक्रमणोंसे बचनेके लिये अकबरने १५८१ ई० में यह क़िला फिरसे बनवाया और उसका नाम अटक—बनारस रखा। दूसरी दंत कथा है कि इस नदीको पार करना कठिन है अर्थात् अटकाव करती है। इसलिये अकबरने इस क़िलेका नाम अटक रखा और नदी पार कर उसके पश्चिम किनारे पर उसने खैरवाद याने 'रक्षाका स्थान" स्थापित किया। रघुनाथ राव ने चढ़ाइयाँ कर मराठोंकी सत्ता अटक तक बढ़ाई। १८१२ ई० में रणजीतसिंहने इस क़िले पर हमला किया था। पहले सिक्खयुद्धमें अंग्रेजोंने यह क़िला ले लिया था परन्तु दूसरे युद्ध में वे उसे क़ायम न रख सके। और वह सिक्खों के हाथमें आ गया किन्तु युद्ध समाप्त होते ही यह क़िला फिरसे अंग्रेजोंको मिल गया। १८७३ ई० में सिंध पर रेलवेका पुल और दूसरा रास्ता तैयार हुआ।

अटकमें, 'बेगमकी सराय' नामक धर्मशाला थी। इस धर्मशालाकी पंजाब सरकारने ३०००) रु० खर्च कर मरम्मत करवाई है।

अटलस पर्वत–(उ० रे० ३२° और प० रे० ६° से आरम्भ होता है) यह अफ्रीका महाद्वीपके उत्तरकी ओर ऊँचे पहाड़ोंकी श्रेणियाँ हैं। यह योरपके पहाड़ोंके सिलसिलेमें हैं। इसके मध्यमें उपजाऊ घाटियाँ हैं। इस प्रदेशके दो भाग हैं—(१) टेल अटलस और (२) शाटस अटलस। टेलकी घाटियोंमें गेहूँ, जौ, मक्का, जैतून, अंगूर, अञ्जीर तथा नारंगी इत्यादि पैदा होती हैं। यहाँ पर अल्फा नामकी घास बहुत होती है जो कागज बनानेके काममें आती है। यहाँ पालतू जानवर भी पाये जाते हैं। शाटसकी पहाड़ियोंमें अधिक घने जङ्गल ही जङ्गल हैं। यहाँ कार्क और (ओक) शाहबलूतके लम्बे लम्बे वृक्ष होते हैं। ऊँचे भागोंकी चरागाहोंमें भेड़ इत्यादि पाली जाती हैं। इस प्रदेशके आदि निवासी मूर जातिके मुसलमान हैं। इसकी आबहवा भूमध्य सागरके समान ही है। इस पहाड़की चोटियाँ बहुत ऊँची नहीं हैं। अटलस पर जो देश आबाद हैं उन्हें बारबरी स्टेट्स कहते हैं। अटलसके उच्चतम श्रेणियों पर गरमियोंमें भी हलकी सी बरफ गिरती है। इसकी सबसे ऊँची श्रेणी १४००० फ़ीटके लगभग है। इसकी श्रेणियाँ मोरक्को प्रदेश से ट्यूनिस प्रदेश तक फैली हुई हैं। यद्यपि इसके बहुतसे भागका अब तक पूरा पता नहीं लगा है तो भी कहीं कहीं ताँबा, लोहा और सीसे की खाने मिलती हैं। इसका तद्देशीय प्राचीन नाम 'इद्रारेन-ए- दर्री' था।

अटलस—यूनान देशके पौराणिक इतिहासमें इसे एक अत्यन्त बलिष्ठ राक्षस माना गया है। यह (Titan Japetus) टीटान इएप्टस तथा (Clymene) क्लिमोनका पुत्र था। प्रोमेथेन्स तथा एपिमेथेन्स इसके दो भाई थे। ह्रेइडस और हेइडस नामक इसके पुत्र थे। अत्यन्त शक्तिमान होनेके कारण यह अपनी जाति (Titan) टिटान का शीघ्र ही नेता बन बैठा और उनकी सहायता से स्वर्ग (आकाश) पर चढ़ाई कर दी। इसकी इस धृष्टतासे ज़ुइस अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। फलतः इसको अपने मस्तक और भुजाओं पर ब्रह्माण्ड उठाकर खड़े रहनेका दण्ड दिया गया। पौराणिक दृष्टिसे (Hesperides) हेस्पेरिडेस संसार का पश्चिमीय छोर (परमावधि) समझा जाता था और यहाँ पर दिन और रात्रिका समागम होकर सूर्य भगवान विश्राम करते थे। आधुनिक विचारसे यह अफ्रीका का उत्तर-पश्चिमका भाग था। इसी स्थान पर स्थित रहकर अटलसका अपना कठिन भार वाहन करना पड़ता था। पौराणिक-ऐतिहासिक ओविड़ लिखता है कि वीर शिरोमणि पेरूसियस जब मेडूसाका आश्चर्यजनक मस्तक काट कर लौट रहा था तो अटलसके कु-व्यवहार के कारण इसी मस्तक द्वारा उसको पत्थरका बना दिया (देखिये पेरूसियस)। अब भी यह अफ्रीकामें पहाड़के रूपमें वर्त्तमान है। इसका उल्लेख हरकूलीसके बारह दुष्कर-कर्मोंमें से (Golden apples) सुनहरी सेब लानेवाले कर्ममें मिलता है। हरकूलीसके सिर पर ब्रह्माण्ड रख कर हरकूलीसके लिये यही सेब लाया था। जब यह वापस आया तो हरकूलीससे यह ब्रह्मांड वापस नहीं लेता था किन्त उसने इसे कौशल तथा छलसे एक बार फिर दे दिया और उसके समीपसे चल दिया।

कुछका विचार है कि यह एक बड़ा बुद्धिमान बादशाह था और यह ज्योतिष-शास्त्रका प्रकाण्ड विद्वान था। अपनी विद्वत्तासे इसने आकाशके सम्पूर्ण नक्षत्र इत्यादिका ज्ञान प्राप्त करना चाहा था। बहुतोंका मत है कि आधुनिक अटलस पहाड़को यह सब रूपक दिया गया है और इसीके आधार पर यह सब पौराणिक कथायें गढ़ी गई हैं।

अटलांटिक महासागर—इसका आकार अंग्रेजी अक्षर S के समान है। योरप और अफ्रिकाके पश्चिमीय तट और अमेरिकाके पूर्वीय तटके बीचमें यह फैला हुआ है। इसके उत्तरमें आर्कटिक महासागर तथा दक्षिणमें अन्टार्कटिक (दक्षिण) महासागर है। भूमध्य रेखा द्वारा यह दो भागोंमें बट गया है:—उत्तरीय अटलांटिक तथा दक्षिणीय अटलांटिक। इसका उत्तरीय भाग ही अधिक प्रसिद्ध है। इसके पश्चिम में कॅरेबियन सागर, मेक्सिकोकी खाड़ी, सेन्ट-लारेन्सकी खाड़ी, तथा हडसनकी खाड़ी है। इसके पूरबमें भूमध्यसागर, काला सागर, उत्तर समुद्र और बाल्टिक सागर इत्यादि हैं। यह आर्कटिक महासागरसे हडसन जल डमरूमध्य डेविस जलडमरूमध्य तथा नार्वेजियनसागर द्वारा संयुक्त किया गया है। ६० अक्षांशके पास इसकी चौड़ाई २००० मील, ५० अ० पर १७५० मील और २५ अ० के समीप ४५०० मील है। आगे चलकर अफ्रीकाके केप पामस (Cape Palmas) और केप सेन्टरॉकके बीचमें तो इसकी चौड़ाई केवल १६०० मील ही रह गई है।

दक्षिणीय अटलांटिक उत्तरीयसे कई बातोंमें भिन्न है। इसके दोनों ओरके तट सम हैं, समुद्र

आखात, खाड़ियाँ इत्यादि नहीं के बराबर हैं। ज्यों ज्यों दक्षिणकी ओर जाते हैं इसकी चौड़ाई बढ़ती ही जाती है। ३५ द० अ० पर यह ३७०० मील है। समुद्र तथा खाड़ियाँ आदिको छोड़ कर उत्तरीय भागका क्षेत्रफल लगभग १०५८८००० वर्गमील है। दक्षिणीय भाग १२६२७००० वर्ग-मील है। संसारकी बहुतसी बड़ी बड़ी और मुख्य नदियाँ अटलांटिक महासागरमें गिरती हैं। सेन्ट लारेन्स, मिसीसिपी, ओरोनिको, अमेज़न, कांगो, नाइज़र, लायर, राइन और एल्ब इनमेंसे मुख्य हैं।

इसकी (अन्तस्थल) तलभूमिकी रचना—इसकी तल-भूमिके विषयमें बहुत कुछ महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका है। इसके ५० उत्तर अक्षांशसे ४० दक्षिण अक्षांश तकके मध्य भागमें प्रायः चट्टानोंके पठार हैं। ये प्रायः १७०० पुरसा (Fathoms) गहरे हैं। अज़ोंसके द्वीपसमूह के समीप यह चट्टानी भाग बहुत चौड़ा हो गया है। न्यू-फाउण्डलैण्डसे आयरलैण्डके बीचमें ५० उ० अ० के पास तो यह करीब करीब बिल्कुल ही चट्टान है। ५०°अ० के उत्तरमें आइसलैण्ड अथवा फैरोटापूसे लेकर स्काटलैण्ड तकका चट्टानी भाग बहुत छिछला हो गया है। यह २५०० पुरसा गहरा रह गया है। एक प्रकारसे इसको उत्तर महासागर (आर्कटिक महासागर) और अटलांटिक महासागरके मध्यका एक बाँध कह सकते हैं। चट्टानोंके दोनों ओरकी गहराई ३००० पुरसा तक है। कहीं कहीं तो इससे भी अधिक है। बिस्केकी खाड़ीके केपवर्ड द्वीपके पासका भाग भी अत्यन्त गहरा है। इसको मोसेले लीप कहते हैं। बहामा द्वीपके समीप यह सबसे अधिक गहरा समझा जाता है। यहाँकी गहराई ४५६१ पुरसा है और यह नेअर्स लीपके नामसे पुकारा जाता है। १९०४ ई० तक ४०° द० अ० के दक्षिणीय भागकी गहराईका ठीक ठीक पता नहीं था। दक्षिण प्रदेश (Antarctic Region) का पता लगानेके लिये जो स्काटलैण्डनिवासी गये थे उन्होंने दक्षिणीय भागके अन्तःस्थलका भी बहुत कुछ पता लगाया था। बोवेटद्वीप और सैण्डविच द्वीपसमूहके मध्यमें एक चट्टानी पठार है। इसी प्रकार १७०० मीलका एक और भी पठार है।

महासागर अन्तस्थल संशोधन—१८७३ ७६ ई० में एच०एम० एस०'चेलेञ्जर' और जर्मन जहाज गजेलने इसका बहुत कुछ संशोधन किया। तदन्तर 'ट्रावेलियर' जहाज़ (१८८०) ने इसका काम किया। संयुक्तराज्यके संशोधनके लिये गये हुए 'ब्लेक' जहाजने भी इसका बहुत कुछ पता लगाया था। तदन्तर १८९८ ई० में जर्मन जहाज 'व्हाइ डिविया' के प्रोफेसर च्यूनने तथा १९०३-४ में अनेक अन्य संशोधक मण्डलोंने इसके विषयमें बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया।

द्वीप—अन्य महासागरोंकी अपेक्षा इसमें द्वीप कम हैं। मुख्य तथा प्रसिद्ध द्वीप केवल निम्नलिखित ही हैं—आइसलैण्ड, ब्रिटिशद्वीपसमूह, न्यू-फाउण्डलैण्ड, वेस्टइण्डीज़ अजोर्स कनेरी-दीपसमूह केपवर्ड असेनशनद्वीप, सेन्ट हेलना, ट्रिस्टेण्डा कुहा तथा बावेट द्वीप।

गहराई तथा अन्तस्थलकी बनावट—उत्तरीय भाग की गहराई लगभग २०४७ और दक्षिणकी २०६७ पुरसा है। इस महासागरका वह भाग जिसकी गहराई १००० से ३००० पुरसा है उसके अन्तस्थलकी मट्टी 'ग्लोबी जेरिना' जातिकी है। जहाँ पर ३००० पुरसेसे भी अधिक गहरा है वहाँकी मट्टी प्रायः लाल तथा चिकनी है। ऊष्ण कटिबंध में जो छिछला भाग है उसकी मट्टी 'टेरोपॉड' जातिकी है। इस महासागरका दक्षिणीय भाग 'डाइटोम' जातिकी गीली मट्टीका बना हुआ है। इसके अतिरिक्त कहीं कहींका अन्तस्थल नीली, लाल, हरी मट्टी अथवा बालुकामय मट्टीका है। बहुत कम स्थानोंमें ज्वालामुखीके लावाके अथवा मूँगेके समान मट्टी है।

अभीतक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सका कि मूल अटलान्टिक किस भाँति बना होगा। यह तो प्रायः सभी भूस्तरशास्त्रज्ञोंका मत है कि यह भी अन्य महासागरोंके समान ही बहुत पुराना है, किन्तु इ० सुएज़, तथा एम० न्यूमेअरका मत है कि शान्त महासागर इससे भी अधिक पुराना है। यह द्वितीयावस्था युग (मेसोज़ोइक एज) का मालूम होता है। न्यूमेयरने तो सिद्ध किया है कि अफ्रीका और दक्षिण अमेरिकाके मध्यमें अटलांटिक महासागरमें एक और भी खण्ड था। एफ० कॉसमट का मत है कि (क्रेटेशियस एज) सीतापल युगमें अटलाँटिक अपने आधुनिक रूपमें ही था।

इस महासागरके जलका तापमान—इसका भी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इस महासागरको उत्तरीय तथा दक्षिणीय, दो विभागमें कर लेने ही से सुविधा होगी। तापमानकी मध्यम रेखा अफ्रीका के तटके ५०° उ० अ० से निकल कर ४० मील पश्चिम रेखांश तक जाती है। तदनन्तर यही उत्तरकी ओर मुड़कर करेबियन सागरकी ओर

जाती है। इस रेखाके समीप ८०° से कुछ अधिक तापमान है। ६०° की उष्णता दर्शक रेखा ४५° उ० अ०के पास इससे मिलती है। कुछ उत्तरमें जानेपर इसकी उष्णता अमेरिकाकी अपेक्षा योरपकी ओर कुछ अधिक है। उत्तर अटलांटिकका ऊपर कहा हुआ तापमान समुद्रकी सतहसे ५०० पुरसा गहरे तक एक सा ही रहता है। अटलांटिकके बिल्कुल उत्तरमें अर्थात् आर्कटिक महासागरके समीप पानी का तापमान ४०° से भी कम अर्थात् सबसे अधिक वजनी होता है। दक्षिणीय अटलांटिक महासागरका तापमान अफ्रीकाकी अपेक्षा अमेरिकाकी ही ओर अधिक रहता है। ५०० पुरसा गहराईके नीचे समशीतोष्ण-दर्शक-रेखायें अक्षांश रेखाओंके समानान्तर ही रहती हैं।

क्षार—अन्य महासागरोंकी अपेक्षा इसका जल अधिक खारा होता है। इसका सबसे अधिक खारा भाग २०° से ३०° उ० अ० में है। भूमध्य रेखाके पासका जल उतना खारा नहीं है। ज्यों ज्यों यह उत्तर महासागरके निकट होता जाता है इसके जलका खारापन भी कम होता गया है। इसमें भी पूर्वीय भागकी अपेक्षा पश्चिमीय भाग का जल कुछ अधिक मीठा है। इन सब बातोंके अतिरिक्त जलका खारापन भिन्न भिन्न ऋतुओं तथा प्रत्येक वर्ष कम अधिक होता रहता है। ज्यों ज्यों इसके दक्षिणीय भागमें पहुँचता जाय त्यों त्यों जलका खारापन कम होता जाता है। इसके बिल्कुल दक्षिणीय भागमें तो जल कुछ कुछ मीठा मालूम होता है।

वायु-मान—इस महासागरमें हवा नियमित-रूप से बहती है। अफ्रीका और दक्षिणीय अमेरिका के मध्य अटलांटिकका भाग बहुत कुछ संकुचित होनेके कारण दक्षिण अटलांटिक महासागरमें हवा सदा एक ही रूपसे बहा करती है। किन्तु उत्तरीय भागमें वायुका भार भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न होनेसे हवाकी गतिमें भी परिवर्तन हुआ करता है। किन्तु यह परिवर्तन भी बहुत नियन्त्रित रूपसे होता है क्योंकि एक तो इसमें भूमण्डल बहुत है दूसरे एक ओर बिल्कुल हिमसे परिवेष्टित है। 'उत्तर अटलांटिक प्रत्यावर्त' बहुत बड़ा है और इसकी गति जाड़ेकी अपेक्षा गर्मीमें अधिक रहती है।'

प्रवाह (धारा)—उपरोक्त वातावरणमें (Trade winds) व्यापारी हवा केवल मन्द गतिसे बहती है। इसके सहारे सतह पर बहनेवाली धाराओं को बड़ी सहायता मिलती है। फलतः इस हवा से विषुवत् वृत्तीय (Equatorial) धाराय उत्पन्न होती हैं। गल्फस्ट्रीम (एक गरम धारा) उत्तरीय अटलांटिकमें है और जिन देशोंके तटपरसे बहती है वहाँका तट गरम रहता है। इस धाराकी चौड़ाई लगभग १०० मील, गहराई ६०० से १५०० फीट और तापमान ७६° है। इसका वेग प्रति घंटा ४ से ५ मील तक है। इसका संचार बहुत बड़ा है और शाखायें इसकी अनेक हैं।

अटलांटिक महासारकी सतहके नीचेसे भी अनेक धारायें बहती हैं। जिन स्थानों पर ऊपरी सतहमें 'गल्फस्ट्रीम' के समान गरम धारायें बहती हैं वहीं पर बहुत नीचे शीत जलकी धारायें बहती हैं। ये नीचेवाली धारायें कहीं कहीं पर बहुत स्पष्टरूपसे देख पड़ती हैं। अफ्रीकाके तट पर इनकी गति १००० पुरसा की गहराई तक पायी गई है। नार्वेजियनसागरका नीचेका भाग आर्कटिक महासागरके जलके समान बहुत ठण्डा बरफके समान है। अटलांटिकके बिल्कुल उत्तरीय भागमें यह गति दृष्टिगोचर नहीं होती क्योंकि एक तो यह आर्कटिकसे सम्बन्धित है दूसरे नीचे और ऊपरकी गति अति तीव्र है।

दक्षिणीय अटलांटिकमें अन्य दक्षिणीय महासागरोंकी भाँति ही धारा-प्रवाह है। उसके जल का सम्बन्ध दक्षिण महासागरके साथ होनेके कारण, दक्षिण महासागरकी जलधारायें विषुवत-वृत्त तथा उससे भी आगे तक देख पड़ती है।

अटलांटिक सिटी—यह संयुक्तराज्यके न्यूजर्सीराज्यमें फिलेडेफियाके दक्षिण पूरबमें ६० मील पर है। अटलांटिक प्रांतका यह मुख्य स्थान है। यहाँकी जन-संख्या लगभग २८००० थी, जिनमें से लगभग ७००० निग्रो थे। यहाँ घूमने के लिये उत्तम सड़कें तथा बगीचे इत्यादि हैं। बिजलीके प्रकाशमें रात्रिको यह नगर बड़ा ही मनोहर मालूम होता है। यहाँ अस्पताल इत्यादि अनेक इमारतें हैं। उस प्रान्तका यह स्वास्थ्य-प्रदेश (Sanitorium) है। राज्यकी ओरसे इसका अच्छा प्रबन्ध है।

अटाला—संयुक्त प्रान्तके जौनपुर ज़िलेमें यह एक ऐतिहासिक इमारत है (देखिये जौनपुर)।

अटालिया—यह प्राचीन पॅम्फिलियाका एक नगर था। परगॉमेसके द्वितीय राजा अटलसने इस नगरको बसाया था और इसी नाम पर इस नगर का भी नाम पड़ा। यह आधुनिक अडॅलिया माना जाता है और यह मध्य एशिया माइनरसे

सीरिया जानेके मार्गमें है। इस उपजाऊ प्रदेश में आग्नेय फ्रीजियाका बन्दरगाह होनेसे इसे बड़ा महत्व प्राप्त हुआ था। ई० पू० से भी पहले यह पेर्गाका बन्दरगाह था। इसी कारणसे यह राज्य का मुख्य स्थान हो गया था। नगरके एक ओर महारानी जूलियाका बनवाया हुआ एक बुर्ज है। यहाँके अन्य मुख्य अवशेषोंमें हिड्रियनका वेस (Vase) भी है।

अटीना—(१) इटली देशके अत्यन्त प्राचीन शहरोंमें से यह भी एक माना जाता है। यह लुकॉनियामें है। इसकी किलेबंदी प्राचीन है। यह शहर ई० पू० ७ वीं शताब्दीमें भी था। यहाँ रोमन लोगोंका अर्धचन्द्र सभागृह और उनके अनेक हस्तलिखित लेख पाये जाते हैं।

(२) यह एक गाँव कॅसियमके पास था।

(३) पीनीके ग्रंथमें लिखा है कि इसी नाम का एक गाँव वेनेशी प्रान्तमें था।

अट्ठारह अखाड़े—साधुओंके अट्ठारह संप्रदायोंके लिये इस शब्दका प्रयोग होता है। यहाँ अट्ठारह शब्द "अनेक" अर्थमें इस्तेमाल किया गया है। साधुओंके सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

औघड़, अरण्य, अवधूत, आनंद, आश्रम, इन्द्रउदासी, कानफटे, कालवेला, गोदंड, गोरखपंथी अथवा गोरखनाथी, डबरा, नंगागिरी, निरंजनी, निर्वाणी; पुरी; भराड़ी, भारती राउल, वन, सरभंगी।

अखाड़ेका एक अर्थ तो सम्प्रदाय अर्थात् पंथ है इससे अट्ठारह अखाड़े (साधुओंके) का अठारह पंथ रूढ़ार्थ समझना चाहिये।

इनमें से अनेक पंथोंको अब विवाहादिकों द्वारा जाति स्वरूप प्राप्त हो गया है और साधुत्व (गुसाईंपन) का ह्रास होता जा रहा है। (देखिये गुसाईं)

अट्ठारह टोपकर—(एक पुरानी पुस्तकके आधार पर) निम्नलिखित नामोंके आगे यह शब्द लगाया जाता था।

पाश्चात् प्रभेद टोपियाँ १८

१ फिरंगी (Portugal), २ बलंदेज (Holland), ३ सुवेस (Swiss), ४ निविशियन (Norwegian ?), ५ यग्रदोर (?), ६ ग्रेग (Greek), ७ रखतार (?), ८ लतियान (Latian), ९ यहूदोन (Jew), १० अंग्रेज (English), ११ फरांसिज (French), १२ कसन त्यान (Shetlandian ? Celtre ?), १३ विनेज (Venetran), १४ दिनमार्क (Denmark) १५ उरूस (Irish or Russian), १६ रूमियान (Roman or Romanian), १७ तलियाथ (Italian), १८ प्रेमरयान (Pomeranians) । [भा० इ० सं० मं० इतिवृत्त १८३५]

अट्ठारह धान्य और उपधान्य—गेहूँ, धान्य, तूर, यव, ज्वार, मटर, लाख, चना, अलसी, मसूर, मूँग, राल, तिल, हरीक, कुलीथ, साँवा, उड़द और बाड़ा। ये अट्ठारह मुख्य धान्य निम्नलिखित संस्कृत श्लोकमें दिये हैं—

गोधूम शालि तुवरी यव यावनाल
वातानलंक चणका अतसा मसूराः।
मुद्गप्रियंगुतिलकोद्रवकाः कुलित्थाः
श्यामाक माषचवला इति धान्यवर्गः।

१८ उपधान्य—ये दो प्रकारसे गिने जाते हैं; (१) संजगुरा, भादली, वरी, नाचणी, बरग, कांग, खपले, गेहूँ, मका, करडई, रामदाना भटकी पावटा, मूँग, वाल, कारला, साँवा, सत्तू, अंबाड़ो (सन)।

(२) संजगुरा, नाचली बरो, मका, मटकी, रामदाना, सरसों, सफेद फली जीरा, मेथी, वेणुबीज, साँवा, कमलबीज, पाकड़, सन, भेंडी बीज, गोवारी, कुड़ेका बीज है।

कतिपय लोग खसखस (पोस्ताका दाना) और सफेद रालको भी उपधान्यमें गिनते हैं। और इस प्रकार उपधान्योंकी संख्या बीस बतलाते हैं।

अट्ठारह पुराण—मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयं अनापल्लिंग कूस्कानो पुराणानि पृथक् पृथक् आलिंपाग्नि पुराणानि कूस्क गारुड़मेव च। १८ पुराणोंके नाम निम्नलिखित हैं—१ ब्राह्म (श्लोक संख्या १० हजार) २ पद्मपुराण (५५ हजार), ३ वैष्णव (२३ हजार), ४ शैव अथवा वायु (२४ हजार), ५ भागवत (१८ हजार), ६ भविष्य (१४५००), ७ नारद (२५ हजार), ८ मार्कण्डेय (९ हजार), ९ अग्नि (१५४००), १० ब्रह्मवैवर्त (१८ हजार), ११ लिंग (११ हजार), १२ वराह (२४ हजार), १३ स्कन्द (८११००), १४ वामन (१० हजार), १५ कूर्म (१७ हजार), १६ मत्स्य (१४ हजार), १७ गरुड़ (१९ हजार), और १८ ब्रह्माण्ड (१२ हजार)। पुराणोंकी श्लोकसंख्या के संबन्धमें एकमत नहीं है। पुराणोंके विशेष उल्लेख "पुराण" लेखमें मिलेगा।

उपपुराण—उपपुराण बहुतसे हैं। उनमेंसे कुछ प्राचीन और कुछ आधुनिक हैं। देवी भागवतमें (१२०० ई०) निम्नलिखित नामकी सूची दी हुई हैः—१ सनत्कुमार, २ नृसिंह, ३ नंदी, ४ दुर्वासा,

५ नारद (उप), ६ कपिल, ७ मानव, ८ उशनस, ६ वरुण, १० काली, ११ वासिष्ठ लिंग, १२ माहेश्वर, १३ सांब, १४ सौर, १५ पाराशर, १६ शिव (धर्म), १७ मारीच, १८ भागवत (भार्गव)। कई ग्रन्थोंमें ब्रह्माण्डोपपुराण १६वाँ उपपुराण माना गया है।

अट्ठारह राज्यविभाग (मुहकमे)—राज्यके १८ मुख्य विभाग होते थे। इनका वर्गीकरण तीन प्रकारसे किया गया है। मोलस्वर्थ और क्याएडीके आधार पर निम्नलिखित नाम दिये जाते हैं—(१) उष्ट्र (२) कबूतर (३) ज़नान (४) जवाहिर (५) जमादार, (६) तालीम (शिक्षा) (७) तोप (८) भट्टी (६) दफ्तर (१०) बारूद (११) दीवान (१२) नगाड़ा (१३) फ़ील (१४) फर्राश (१५) बन्दी (१६) मोदी १७) शिकार (१८) जिक्र। दूसरा वर्गीकरण तोप फ़ील, उष्ट्र, फर्राश, शिकार, रथ, जमादार, जवाहिर, ज़रायत नगाड़ा, बारूद, वैद्य, लक्कड़, इमारत मुदवक, कुनबिन, खासगत, तथा थट्टीसेसर। तीसरा इस भाँति है—खजाना, दफ्तर, जमादार, फील, ज़रायत, अम्बर, फर्राश, मुदवक, नगाड़ा, शरबत, आबकारी, शिकार, तालीम, बारूद, उष्ट्र, बकरे, तोप, तराफ।

इनमेंसे कुछ शब्दोंके अर्थ स्पष्ट नहीं होते। उनका अर्थ नीचे दिया जाता है। उष्ट्र=ऊँट, फील=हाथी, मुदबक=रसोई घर, शरबत=अर्क, औषधि। ज़रायत=अनाजकी कोठी, थट्टी=गोशाला, फर्राश=खेमा तम्बू इत्यादि। मोदी=युद्ध सम्बन्धी वस्तु विक्रेता। आबकारी=पानी। अम्बर=अनाज, पान, सुगन्धि।

महाराज शिवाजीके राज्याभिषेकके अनन्तर राज्य व्यवस्थाके लिये जो अट्ठारह विभाग खोले गये थे उनके विषयमें कृष्णाजी पंत केलुसकर इस भाँति उल्लेख करते हैं—(१) गजशाला (फीलखाना) (२) मल्लशाला (अखाड़ा) (३) धान्य संग्रह (अम्बार खाना), (४) भेरी दुन्दुभी (नक्कार खाना) (५) यन्त्रशाला (तोप खाना) (६) वैद्यशाला (रसशाला) (७) शिबिरशाला (फर्राशखाना) (८) आखेट शाला (शिकार खाना) (६) पानीयशाला (आबकारी) (१०) उष्ट्रशाला (११) रत्नशाला (जवाहिर खाना) (१२) पाकशाला (१३) शास्त्रशाला (१४) ताम्बूलशाला (१५) रथशाला (१६) लेखनशाला (१७) नाटकशाला और (१८) जिन्स खाना।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि समय समय पर यह मुहकमे बदलते रहते थे। पेशवाओंके हाथमें राज्यसूत्र आनेपर भी अट्ठारह मुहकमे थे।

पेशवाके समयके अट्ठारह मुहकमोंका व्योरा नीचे दिया जाता है।

१ तोपखाना—इसमें गोला, बारूद, खलासी, रखवाले, गाड़ी, बैल इत्यादि अनेक युद्धके सामान रहते थे। इसके अधिकारी (१) सखाराम पंत पानशे (२) गणपतराव विश्वनाथ पानशे (३) माधवराव कृष्ण पानशे (४) जयवन्तराव पानशे थे।

२ फीलखाना—इसमें १०० हाथी थे। अधिकारी—(१) भगवन्त परशजी, (२) मुनोम रामचन्द्र राव।

३ उष्ट्रखाना—इसमें करीब १००० ऊँट थे। अधिकारी—गणपत राव मोरेश्वर।

४ शिलेखाना—इसका अधिकारी सदाशिवपन्त था।

५ फर्राशखाना—इसमें तम्बू, शामियाने, डेरे तथा कनात थे। राघोपंत आंबीवर।

६कोठी- इसकेअधिकारीनारोशिवरामखाजगीवालेथे।
७ लकड़खाना,, ,, ,, ,, ,, ,,
८ इमारत ,, ,, ,, ,, ,, ,,
९ बाग ,, ,, ,, ,, ,, ,,
१० घास ,, ,, ,, ,, ,, ,,
११वहीतकोठी,, ,, ,, ,, ,, ,,
१२ रथखाना ,, ,, ,, ,, ,, ,,

१३ पूना कस्बा—यह भी उपरोक्त विभागमें शामिल था किन्तु इसका खर्चा इन्हींमें शामिल था या नहीं इसका ठीक ठीक पता नहीं।

१४ थट्टी—नारायण रामचन्द्र पूना सूबाके अधिकारमें था।

१५ पोते तथा जक्षादारखाना—अधिकारी शामराव कृष्ण पोतनवीस थे।

१६ जिन्सखाना तथा वैद्यशाला—श्यामराव बाबूराव करमरकरके आधीन था।

१७ पुस्तकशाला—गोविन्द पंत आपटे।

१८ खानगा—नारो शिवराम खासगीवाले।

(इतिहास संग्रह पुस्तक १ ली, अंक १२ वाँ जुलाई १६०६)

अट्ठाविंशी—(अट्ठाविस्सी) १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्धमें यह नाम तापी नदीके दक्षिणकी ओरके गयकवाड़के अट्ठाइस परगनोंको दिया गया था। इनको सूरत अट्ठाइसी भी कहते थे। १७८० में फतहसिंह गयकवाड़ने यह प्रदेश अंग्रजों के हवाले कर दिया।

अडगाँव—बरार प्रान्त, जिला अकोला, ताल्लुका अकोटमें यह गाँव बसा हुआ है। उ० अ० २१°७' पू० रे० ७६°५'६। यहाँकी जनसंख्या तीन हज़ार है। इसी गांवके पासके विस्तीर्ण मैदानमें रघूजी भौंसलेके भाई व्यंकोजी पर २९ नवम्बर १८०३ ई० में जनरल वेलेज़लीने विजय पाई थी और गाबिलगढ़का किला सर किया था।

अडलम—यह फानानिटिशका एक अत्यन्त प्राचीन नगर था। यहाँ पर (Juda) जूडा जातिके निवासी बहुत थे। कदाचित् आधुनिक ए डेकलमा (वीह जीब्रीनके ईशान्यमें ७ मीलपर) इसी नगरका नाम होगा। यहाँ पर एक किला था। इसी किलेमें डेविड़ने दो बार आश्रय लिया था। यहाँके खारेटून (सेन्ट चारटीन) की गुफाकी दन्तकथा कदाचित् धर्मयोद्धाओं (Crusaders) के समयसे प्रचलित हुई होगी। यहाँके लोग दुःखी कर्जदार और जीवनसे उकता गये थे। सर वाल्टर स्काटने इसके नामकरणकी उत्पत्ति इसी आधार पर बताई थी।

ॲडलरफेलिक्स—यह अमेरिकन शिक्षाविभागका एक प्रधान पुरुष हो गया है। इसका जन्म अलज़े गाँव (जर्मनी) में १८५१ ई०में हुआ था।१८७४ मेंकार्नैल के विश्वविद्यालयमें पौरस्त्य साहित्यका अध्यापक नियुक्त हुआ था। १८७६ ई० में न्यूयॉर्क की नीति-शिक्षा संस्था (Society for Ethical Culture) की उन्नतिके लिये इसने बड़ा परीश्रम किया था। १९०२ ई० में वह कोलम्बिया विश्वविद्यालयमें राजनैतिक तथा सामाजिक शास्त्रका प्रधान अध्यापक नियुक्त किया गया था। डा० ॲडलरने लोकहितके लिये और सामाजिक सुधारके लिये भी आन्दोलन किया था। इसने अनेक उपयोगी पुस्तकें लिखकर देशकी बड़ी सेवाकी थी। मुख्य पुस्तकें इसकी नीचे दी जाती हैं— (Creed and Deed 1877) धर्म तथा कर्म (The Moral Instructions for children-1892) बालकोंके लिये सच्चरित्रका उपदेश (Life & Destiny-1903) जीवन तथा कर्मफल (भाग्य) (Marriage & Divorce-1903) विवाह तथा विवाहोच्छेद (तिलाक) (The Religion of Duty 1901)। कर्तव्य धर्म।

अडस—यह गाँव ताल्लुका नागपूर, ज़िला नागपूरमें है। जनसंख्या करीब ३०० है। नागपूरके वायव्यमें १७ मील पर नागपूर तहसीलमें यह एक छोटासा देहात है। इसमें ५ पुराने मन्दिर हैं। गणेशजीके मन्दिरमें एक ही पत्थरकी मूर्ति है और इस प्रकार बनाई गई है कि लोग सरलता से प्रदक्षिणा कर सकें। गाँवके पास तीन लिंग के महादेवका मन्दिर है। लिंग स्वयं जमीनमें से निकले हैं। यहाँ भोसलेके बनवाये हुए दो तालाब हैं। ये पत्थरके हैं। कुछ मन्दिरके पुजारी गोसाईं हैं। गाँवमें बहुतसे ब्राह्मण भी रहते हैं।

अडाण—इस नदीकी लम्बाई कुल १३० मील है। यह वाशीम ताल्लुकेसे निकलकर पैनगंगा नदी में मिलती है। यद्यपि ग्रीष्मऋतुमें इस नदीका पानी बहता हुआ नहीं रहता, तौभी जगह जगह पर इसमें पानीके कुण्ड हैं (यवतमाल. डि. गॅ)

ॲडम्स जॉन—अमेरिकाका दूसरा राष्ट्रपति था। इसका जन्म क्वीन्सी गाँवमें १७३५ ई० में हुआ था। इसका बाप किसान था। इसने १७५५ ई० में हारवर्ड कालेजसे उपाधि प्राप्त की। १७६८ ई० में इंग्लैंडमें जो "स्टैम्पऐक्ट" पास हुआ था उससे अमेरिकन लोगोंको अपने प्रतिनिधि पार्लमेंटकी सभामें भेजनेका अधिकार न होनेके कारण उनपर (अमेरिकावालों पर) इसने लागू नहीं होने दिया। यह उन लोगोंमें से एक था, जिन्होंने अमेरिकाकी स्वतंत्रताका घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था। फ्रेंच लोगोंके विषयमें इसके विचार अच्छे नहीं थे। इन लोगोंका यह विश्वास भी न करता था, ब्रिटिश सरकारसे व्यापारिक संधि करनेमें इसने बहुत परिश्रम किया था।

इग्लैंडमें अमेरिकाके राष्ट्रीय राजदूतकी हैसियतसे यह तीसरे जार्ज बादशाहके दर्बारमें था। यह १७९६ ई० में अमेरिकाका राष्ट्रपति चुना गया। अमेरिकाकी रियासतोंके ऐक्यके लिये इसने बहुत परिश्रम किया। इसका स्वभाव अत्यन्त तीव्र था। यह हाथमें लिया हुआ कार्य जी लगाकर किया करता था। परन्तु अपने मतके विषयमें आवश्यकतासे अधिक अभिमान होनेके कारण तथा हठी और झगड़ालूपनके कारण यह शीघ्र ही जनतामें अप्रिय हुआ। इसकी मृत्यु ४ जुलाई १८२६ ई० में हुई।

ॲडम्स जान क्विन्सी—यह राष्ट्रपति जॉन-ॲडम्सका प्रथम पुत्र था। १७६७ ई० क्विन्सी गाँवमें इसका जन्म हुआ था। इसके नामसे इस गाँवको यह नाम प्राप्त हुआ था। १७८७ ई०में इसने हारवर्ड विद्यालयकी उपाधि प्राप्त की। इसने थॉमसपेनकी 'मनुष्यके अधिकार' नाम की प्रसिद्ध पुस्तकका खंडन करनेके लिये बहुतसे लेख लिखे। १७९६ ई० में जार्ज वाशिंगटनने इसको पुर्तगाल देशमें अमेरिका का राजदूत नियुक्त किया। आगे चलकर

इसको बर्लिनमें भी उसी पद पर भेजा गया था।

१८०३ ई० में संयुक्त राज्यकी सभाका यह सभासद हुआ। यह संयुक्त (फेडरेलिस्ट) दल छोड़कर लोकतंत्र (रिपब्लिक) दलमें मिला। यह १८०६ से १८०९ तक, हारवर्ड कालेजमें अध्यापक था। १८०९ ई० में यह रूसमें अमेरिकाका राजदूत बनाकर भेजा गया था। १८१८ ई० में यह राष्ट्रपति मनरोका मंत्री बन बैठा था। मनरोके नाम से जो सिद्धांत प्रसिद्ध है वह इसीने निकाला। १८२६ ई० के अन्तमें यह अमेरिकाका राष्ट्रपति हुआ। इसने गुलामी उठा देनेका बहुत प्रयत्न किया। लेखन-स्वातंत्र्यका अपहरण करनेवाले नियमोंको इसने बड़े परिश्रमसे रद्द किया था।

इसमें सच्ची योग्यता, जनताके प्रति स्वाभाविक प्रेम, स्वतंत्रता इत्यादि अनेक गुण थे। इसकी बुद्धि विशाल थी।

ॲडम्स हेनरी कार्टर—इस अमेरिकन अर्थशास्त्रज्ञका डेवनपोर्टमें जन्म हुआ था (१८५२ई०)। उच्च शिक्षा पानेके उपरान्त यह जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालयमें फेलो और लेक्चरर था। इसके पश्चात् कुछ दिन कार्नेल विश्वविद्यालयमें लेक्चरर का काम करनेके उपरान्त यह मिशेगन विश्वविद्यालयमें अर्थशास्त्र और आयशास्त्र (Finance) का अध्यापक हुआ, वह अंतराजकीय व्यापारी संघ (Inter State Commerce Committee) का ॲकाउन्टेन्ट था।

इसके लिखे हुए 'उद्योग धंदोंसे राज्यका सम्बन्ध' (The State in relation to Industrial Action-1887), "संयुक्त राज्यका लेन देन" (Transaction in The United States 1885), "राष्ट्रीयऋण," Public Debts 1887), "आयशास्त्र"—(The Scince of Finance 1888), अर्थशास्त्र और कानून तत्व, (Economics and Jurisprudence 1897) इत्यादि मुख्य ग्रंथ हैं।

ॲडावद—बंबई प्रान्तके पूर्व खानदेशमें चोपडे के पूर्व १८ मीलकी दूरी पर बसा हुआ करीब ५ हजार जनसंख्याका यह एक गाँव है। पूर्व कालमें यह एक महत्वकी जगह थी और यहाँ एक महल था। गाँवमें एक गढ़ी थी, जिसकी मिट्टी लोग ले जाते हैं। पहले जहाँ राजकार्यालय था वहाँ आजकल पाठशाला है। लालबागमें बँधी हुई सीढ़ियों का एक पुराना कूआँ है। यह शामदास नामके एक गुजरातीने बनवाया था। इसके सिवा १०८९ हिजरी (१६७८ ई०) की बनी हुई एक मसजिद है जिसपर फारसी लेख हैं। इसके वायव्यमें तीन मीलकी दूरी पर 'उनबदेव' नामका गरम पानीका फव्वारा है (बं० गॅ०),

ॲडिस अबाबा—यह ॲबीसीनियाकी राजधानी है। उ० अ० ९° व पू० रे० ८°-५६′। यह शहर एनटेटो पर्वतकी श्रेणीके ढाल पर समुद्रकी सतहसे ८००० फीटकी ऊँचाई पर बसा हुआ है। चारों ओरका प्रदेश घासोंके मैदानोंसे व्याप्त है। इस शहरको एक छावनी कह सकते हैं। यहाँ बड़ी इमारतें नहीं हैं। यहाँके मुख्य व्यापारी हिंदू और आर्मीनियन लोग हैं। यहाँकी इमारतोंमें शिल्पकौशल कुछ अधिक नहीं दिखाई देता। दूसरे मॅनेलेकने १८९२ ई० में इस शहरकी स्थापना की थी।

ॲडरॉन डॉक्स—इस नामका पर्वत-समूह अमेरिकाके संयुक्त राज्यमें न्यूयार्कके ईशान्यमें क्लीटन, इसेक्स, फ्रँकलिन और मिल्टन परगनेमें है। कुछ भूगोलवेत्ताओंने इसका समावेश "आपालाशियन" में किया है, पर यह ठीक नहीं मालूम होता। वास्तवमें इसका समावेश कनाडाके "लारेनशियन" पहाड़में होता है। इसकी चोटियाँ २०० हैं। उनकी ऊँचाई २००० से ५००० फीट तक हैं। इसमें अनेक नदियोंके उद्गम स्थान हैं जिनसे मुख्य नदी हडसन है। यहाँ सरोवर भी अनेक हैं, जिनमें ऊपर 'कारन्याक' और नीचेकी ओर हेसिड सरोवर बहुत बड़े हैं। यहाँ पर जंगल बहुत ही घने हैं। इन जंगलोंमें देवदार और स्प्रूसके वृक्ष उगते हैं। लोहा और 'ग्राफाईट' भी पाया जाता है।

ॲडिसन ज़ोसेफ—(१६७२-१७१९) यह प्रसिद्ध कवि और निबंध लेखक था। इसका जन्म १६७२ ई० के मईकी पहली तारीखको मिल्सटनमें हुआ था। स्कूलकी पढ़ाई समाप्त कर लेनेके उपरान्त यह कुछ दिन आक्सफोर्डके क्वीन्सकालेजमें रहा। इसने लैटिन काव्यमें अच्छी योग्यता प्राप्त की थी।

इसलिये इसे दो सालके पश्चात् मॅकडालेन कालेजमें 'डेमी" नामकी छात्रवृत्ति मिली। इसके पहलेके लिखे हुए सब लेख लॅटिनमें हैं, और वे सब पद्यमें हैं। चार्ल मॉन्टेगू और लार्ड सामर्ससे परिचय होनेके कारण "जार्जिक" काव्यका अनुवाद और ड्रायडनके मिसलेनीज़ (?) पर एक कविता लिखी। १६९९ ई० में यह फ्रान्समें फ्रेंच भाषा सीखनेके लिये गया था। तब माँटेगू और सामर्सने इसे ४५००) सालाना वेतन पर नियुक्त किया। परन्तु इटलीमें सालभर रहकर १७०२ ई०

में स्विट्ज़रलैंडसे लौटते समय "विग" दलकी सत्ता समाप्त हो चुकी थी। इस कारण इसे नौकरी से हाथ धोना पड़ा। अब उसकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी, योरपमें रहकर इसने "केटो" और "पदकके विषयको संवाद" और "इटलीके कुछ भाग पर विचार" लेख लिखे। विनोदपूर्ण तथा ओजस्विनी भाषामें ये लेख लिखे हुए हैं, पर इनमें चिकित्सा बुद्धि तथा पुरातन वास्तुज्ञान नहीं देख पड़ता।

१७०४ ई० से १७१० तक इसने सरकारी नौकरी की। इसकी शक्तिका परिचय जनताको इसके लेखोंसे ज्ञात हुआ। इस कारण यह सार्वजनिक कार्यके योग्य समझा जाने लगा। राज दरबारमें और बड़े बड़े लोगोंमें इसका सम्मान हुआ करता था। १७०४ में इसने ड्यूक ऑफ मार्लबरो को दृष्टिगत कर एक काव्य लिखा। इस काव्यका लोगोंने बहुत आदर किया। १७०६ ई० में इसे अंडरसेक्रेटरी (उपमन्त्री) का पद प्राप्त हुआ, हैलिफाक्सने १७०७ ई० में इसे सेक्रेटरी बनाया, और १७०८ ई० में इसका पार्लमिंटमें प्रवेश हुआ। इन सब पदोंका काम इसने योग्यतासे किया। इस समय इसने कुछ राजकीय लेख लिखे थे। यह लज्जाशील था। इसका आचरण और व्यवहार सरल होनेसे लोगोंका इसपर विशेष प्रेम था।

१७१० ई० में 'टैटलर' १७११ ई० में 'स्पेकटेटर' और १७१३ में 'गार्जियन' में इसने विनोदपूर्ण और शिक्षाप्रद अनेक लेख लिखे। इन लेखोंमें 'स्पेकटेटर' नामकी मासिक पत्रिकामें लिखे हुए लेख विशेष सावधानी तथा विचारसे लिखे हुए हैं और उनका ध्येय बहुत ऊँचा है। समाजकी हास्यास्पद रीतियोंका, मनुष्याकी प्रकृति वैचित्र्य का तथा समाजकी हीन दशा इत्यादिका अच्छा चित्र इसने खींचा है। इन लेखोंमें बड़े मीठे शब्दोंमें जनता पर चुटकियाँ ली हैं। यद्यपि इन लेखोंमें गहन तत्वज्ञान विषयक बातें नहीं हैं किंतु समाज-सुधारकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

स्पेकटेटरका सम्पादक स्टील, अडिसनका बचपनका साथी था। इन दोनोंमें आगे चलकर अनबन हो गई। झगड़ेका कारण यह हुआ कि स्टीलने (Peerage) पियरेज बिलके सम्बन्धमें लिखते समय जनताके पक्षका साथ दिया परन्तु अडीसनने जनताके पक्षके विरुद्ध ही टीका की। ऐसे ही कारणसे पोप और अॅडीसनमें भी अनबन हो गई थी। अडिसनकी मृत्यु १७१९ ई० की १७ जूनको हो गई। अॅडिसनकी सरल तथा सुबोध भाषा उसके पश्चात्के लेखकोंके लिये एक आदर्श बन गई। अभी तक उसकी लेखनशैली सर्वत्र माननीय है। लेखककी दृष्टि ही से इनका स्थान इतना ऊँचा है।

अॅडीसनका रोग—जब यह रोग पूर्ण रूपसे शरीरमें व्याप्त हो जाता है तब त्वचाके स्वाभाविक वर्णमें अन्तर होना, अत्यन्त निर्बलता, अपच, अतिसार, हृद्रोग, बढ़ी हुई ग्रंथी (Enlarged-glands) इत्यादि रोग हो जाते हैं। इस रोग के जो अपवादात्मक रोगी होते हैं उनकी त्वचामें अन्तर आ जाता है अथवा पिण्डकी क्रिया बिगड़ जाती है। १८५५ ई० में अडीसन नामके डाक्टर ने इस रोगका पता लगाया था। तदन्तर पेरिस के संसार-प्रसिद्ध डा० ब्राउन स्वीकर्डको इसमें अन्वेषण करनेकी प्रबल उत्कंठा हुई। इसके कई वर्षके पश्चात् यह पता लगा कि 'मिक्सडेमा' (Myxcedema) के रोगमें थायरॉइडपिंडका सत देना उपयोगी होता है। इसका पता लगते ही शरीरकी सभी ऐसे नलिका-रहित पिण्डकी क्रियाका संशोधन तेजीसे किया जाने लगा। इस कार्यमें योरपमें सबसे पहले कार्य आरम्भ हुआ और सब देशोंमें लोगोंने कार्य आरम्भ कर दिया किन्तु सबसे पहले पूर्ण सफलता लन्दनके शेफर नामक डाक्टरको प्राप्त हुई। इसने इस पिंडके भीतरी कार्यका निर्णय किया और उसपर बहुत कुछ विवेचना की। तब अडीसनके निकाले हुए रोगको और भी महत्व प्राप्त हुआ। इसने खोजकर निम्नलिखित बातोंका ज्ञान प्राप्त कियाः—(१) इस पिण्डमें अत्यन्त तीव्र सत होता है। (२) यह सत यदि किसी तरह पेट में चला जाय तो विष प्रयोगके समान लक्षण प्रकट होते हैं। (३) अड्रेनलिन (Adrenlin) इससे पृथक् की जा सकती है। (४) इसको पेटमें पहुँचानेसे शरीरकी छोटी छोटी धमनियोंका संकुचन होने लगता है और शरीरमें रक्त-गतिका भार बढ़ता है। (५) इस पिण्डके बिगड़नेसे इसकी अन्तर रसोत्पत्ति कम होती जाती है। कभी कभी यह एक दमसे भी नष्ट हो जाती है। जब यह पिण्ड बिगड़ जाता है तो जो सहानुभूतिक मज्जा-तन्तुओंकी जालीसी पेटमें रहती है। उसमें एक प्रकारकी जलन हुआ करती है और इसीसे यह रोग होता है।

मृत रोगियोंके विकृत-पिण्डोंकी परीक्षा करने से निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं—(१) क्षय क्रिया आरम्भ होनेसे इस पिण्डका भीतरी भाग

प्रतिशत अस्सीमें पिलपिला हो जाता है। बहुधा दोनों पिण्ड ही खराब होते हैं और क्षय क्रियाका आरम्भ किसी अन्य भाग पर देख पड़ता है। कभी कभी पीछेकी अस्थियाँ भी पोली हो जाती हैं और यहाँ ही से इन पिण्डोंमें भी रोग फैलता है। (२) कभी कभी क्षय क्रिया न देख पड़ने पर भी यह केवल शुष्क हो जाते हैं और संकुचित होते जाते हैं। (३) पहले जलन होकर यह पिण्ड शुष्क और संकुचित हो जाता है। (४) मुख्य पिंडमें कुछ भी दोष न होते हुए सहानुभूतिक मज्जाग्रंथिमें विकृति हो जाती है और तब रोग पूर्ण रूपसे दबा लेता है

लक्षण—रोगीको धीरे धीरे कमजोरी बढ़ती जाती है। निम्नलिखित नये लक्षण क्रमशः शरीर में प्रगट होते हैं। हृदय-स्पन्दन अनियमित रूप से होने लनता है। धड़कन धीमी पड़ने लगती है। कभी कभी चक्कर आ जाता है। कभी कभी तो रोगी अचैतन्य अवस्थामें मर भी जाता है। रक्त-सञ्चारकी गति धीमी हो जाती है। जी मिचलाता है और वमन और दस्त होने लगता है। जब यह रोग शरीरमें पूर्ण रूपसे व्याप्त हो जाता है तब साधारण जनताकी समझमें आने वाले बाह्य लक्षण दिखाई देते हैं। वह लक्षण त्वचाका भूरा, पीला या काला होना है। हाथ, पैर, मुहँ, आदि सदैव खुले रहने वाले भागोंकी त्वचाका रंग शीघ्र ही परिवर्तित होता है या स्वभावतः ही जो स्थान सदासे काले ही होते हैं जैसे बगल, स्तनके चारों ओरका स्थान, धोती बाँधने वाला कमरका भाग (कटि) आदि ऐसे स्थानों पर त्वचाके रंगमें शीघ्रही परिवर्तन होता है। कभी कभी मुखके अन्दर अथवा अन्य स्थानोंकी श्लेष्म-त्वचाका भी रंग बदल जाता है। रोगीका तापमान साधारण तापमानसे कम होता है। यह रोग पुरुषोंको अधिक होता है। इस रोगके शिकार धनिकोंकी अपेक्षा निर्धन ही अधिक होते हैं। गरीबोंको पुष्ट खाद्य पदार्थ तो नसीब होते नहीं। इस कारण उन्हें क्षय रोग हो जाता है। यही उपर्युक्त रोगका भी कारण है।

निदान—गर्भावस्था, गर्भाशयग्रन्थि, उदरोत्पन्न ग्रन्थि, कुछ विविक्षित हृदय रोग और (Exophthalmic Goitre) आदि रोगोंमें भी त्वचाका रंग इसी तरह बदलता है। अतएव प्रथमावस्था में इस रोगकी ठीक ठीक पहचान होना कठिन है। सोमल (संखिया) भस्म और रौप्यादि भस्म खानेसे भी त्वचाका रंग परिवर्तित होता है। रक्त-संचारकी शिथिलता, हृदयकी क्षीणता तथा अन्य प्रकारकी शक्ति-हीनता इस रोग-परीक्षामें पर्याप्त सहायता देती है। इस रोगका निश्चय करनेके के लिये इस पिंडका आन्तर-रस-सत पेटमें प्रविष्ट करना चाहिये। यह रोगीके रक्त-सञ्चालनकी गति शीघ्रही सुधारता है परन्तु स्वस्थ मनुष्य पर इस क्रियाका कुछ भी प्रभाव नहीं होता।

उपचार—स्वास्थ्य-लाभके लिये अत्यन्त उद्योग-पूर्वक और सावधानीसे चिकित्सा करनी चाहिये। पौष्टिक भोजन अत्यन्त आवश्यक है। सोमल (संखिया) और कुचला आदिसे मिश्रित पाचनको बढ़ाने वाली पौष्टिक औषधियोंका उपयोग करना चाहिये। रोगीको खुली और स्वच्छ वायुमें रखना लाभकारी है। इस पिण्डके अनेक प्रकारके सत बाजारमें बिकते हैं। उनके प्रयोगसे स्वास्थ्यमें वृद्धि होगी।

आर्यवैद्यक शास्त्रमें इस रोगका वर्णन नहीं है परन्तु यह रोग भारतवर्षमें भी कहीं कहीं होता है। अतएव वैद्यगणोंको इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

ॲडीलेड—यह दक्षिण अस्ट्रेलियाकी राजधानी है। टॉरेंस नदीके मुहानेसे ७मील भीतर इसी नदी के किनारे यह शहर बसा हुआ है। यह दो भागों में बँटा हुआ है। एकमें बस्ती है और दूसरेमें औद्योगिक कारखाने हैं। इन दोनों भागोंके बीच में एक छोटासा जंगल है जिसमेंसे होकर टॉरेंस नदी बहती है। शहरके रास्ते बहुत सुन्दर और चौड़े हैं। इमारतें और बाग देखने योग्य हैं। १९१७ ई० में जनसंख्या २२५३१७ थी।

ॲडीलेड विश्वविद्यालय १८७६ ई० में खुला। इसमें शिल्प, कृषि, खनिजविद्या, वाणिज्य, आदि भिन्न भिन्न शास्त्रोंकी शिक्षा देनेवाले विद्यालय हैं। शहरमें अनेक सुन्दर मूर्तियाँ (Statues) हैं।

कर देनेवालोंकी ओरसे चुना हुआ एक मेयर और छः ॲल्डर-मैन (Aldermen) नगरका इंतज़ाम करते हैं। मिट्टी और लोहेके काम करने वाले कारखाने यहाँ बहुत हैं। शराब और साबुन भी बहुत तय्यार होता है। अस्ट्रेलियाका यह केंद्रीय शेयरमार्केट है। रेलद्वारा मेलबोर्न सिडनी, ब्रिसबेन आदि स्थानोंका संबंध है।

गरमीमें यहाँ बहुत गरम हवा बहती है। परन्तु समुद्र और पहाड़ पासही में होनेके कारण गरमी असहनीय नहीं होती। यहाँ वर्षाका औसत २० इंच है।

इस नगरकी स्थापना १८३६ ई० में हुई।

विलियम चतुर्थकी इच्छाके अनुसार रानी ॲडीलेडके सम्मानार्थ इस नगरका नाम ॲडीलेड रक्खा गया।

अडुर—यह बम्बई प्रान्तके धारवाड़ ज़िले में हंगलसे दस मील पूरबमें एक छोटासा गाँव है। यहाँकी जनसंख्या लगभग १५०० है। १२वीं शताब्दीके एक शिलालेखमें पाण्डीपुर नामसे इसका उल्लेख किया गया है। १८६२ ई० तक यह छोटे विभागका मुख्य स्थान था। इसके पूरबमें कालेश्वर महादेवका एक मन्दिर है। वहाँ १०४४ ई० का एक शिलालेख है (Fleet's Kanarese Dynasties 36-85-47)। इस गाँवमें दो शिलालेख और भी मिले हैं। एक १०३४ ई० का है और दूसरे पर समय नहीं दिया है। कदाचित् वह भूतपूर्व चालुक्य वंशके छठे राजा वृत्तिवर्मा (५६७ ई०) के कालका है। तेरहवें राष्ट्रकूटके राजा द्वितीय कृष्ण (८७५-६११) के समयके (अर्थात् ६०४ ई० का) और पश्चिमके चालुक्य वंशके राजा सोमेश्वर प्रथम (१०४२-१०६८) के कालके (अर्थात् १०४४ ई०) दो शिलालेख हैं। उस समयके कुल ४० शिलालेख वहाँ प्राप्त हुए हैं।

अड़ूसा—इस वनस्पतिके पेड़ इस देशमें सब स्थानोंमें पाये जाते हैं। संस्कृतमें वासक, वासा, अटरुष इत्यादि; मराठीमें अडुलसा; बंगालीमें वासक; उड़ियामें वासं; कनाड़ीमें अड्सा आडशोगे; तेलगूमें अडसर; तामिलमें अधडोडे; गुजरातीमें अड़ूसो और लैटिनमें Adhatoda; अंग्रेजीमें Adhatoda Vasaka कहते हैं।

पैदाइश—भारतवर्षके समस्त उष्ण प्रदेशमें ४०००फीटकी ऊँचाई तक यह पेड़ पाया जाता है। हिमालयकी तराईमें यह बहुत होता है। पूर्वी भागोंमें साधारण और पश्चिम तथा दक्षिणमें बहुत कम मिलता है। कहीं कहीं इसके जंगलही जंगल नज़र आते हैं।

उपयोग—औषधि, रंग और खाद इत्यादिमें इसका उपयोग किया जाता है। यह वनस्पति कृमि-नाशक भी है। पुराने कफ-विकार, दमा या क्षय रोगोंमें यह काम देता है। जैकउडके बुरादे के साथ इसकी पत्ती उबालनेसे पीला रंग तयार होता है। कृमिनाशक होनेके कारण और पोटाश की अधिकताके कारण खादके लिये इसकी पत्ती का इस्तेमाल किया जाता है। रासायनिक भस्म तयार करनेमें इस पत्तीको काममें लाते हैं। इसी पेड़से बंदूकोंकी कारतूसें तयार करनेके लिये कोयला बनाया जाता है। बंगालमें इसकी लकड़ी से मणि (मालाके लिये) तयार करते हैं।

नागा पहाड़ोंमें इस पेड़से साइत विचारते हैं। इसकी कृमि-नाशकतामें संदेह किया जा रहा है। वैज्ञानिक हूपरने साबित किया है कि इस वनस्पतिमें क्षार होता है जिसे वैसिसाइन (Vacisine) नाम दिया गया है। टारट्रेट बाजार में मिलता है परन्तु उसीके समान दूसरे कृमिनाशक पदार्थ उपलब्ध होनेके कारण उसका उपयोग कम होता है। खाद तयार करने और कृमिनाशनमें इसकी पत्तियाँ उपयोगी हो सकती हैं या नहीं इसके लिये अभी और अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

अड़ूसेकी पत्ती अमरूदकी पत्तीकी तरह होती है। आर्यवैद्यकमें कई रोगों पर इसकी जड़का उपयोग भी लिखा है। यह भारतमें सब जगह मिलनेवाली, बहुत अच्छी और अति आवश्यक वनस्पति है। खेद है कि जनताका ध्यान जितना होना चाहिये उतना इस ओर नहीं है।

अड़ूसाकी पत्ती सूखी चाहे हरी दोनोंही उपयोगी होती हैं, पर वह पुरानी होनी चाहिये। नयी पत्ती (कोपल) किसी कामकी नहीं होती, पुरानी पत्ती जरा कड़ी होती है। उसकी सुगंध कुछ उग्र और चायकी पत्तीके समान होती है। इसकी पत्ती जरा लंबी होती है।

रासायनिक पृथक्करण—अड़ूसामें वैसिसीन नाम का क्षार और 'अटेटोडिक एसिड' नामका कार्बनिक अम्ल (Organic Acid) रहता है।

गुण-धर्म—कफदोष-नाशक, कफसंस्रावी (कफ गिराने वाला) और वायुको दबाने वाला है। इसका विशेष गुण रक्तपित्त या क्षयक्षतमें गिरने वाले रक्तको बंद करना है।

पुरानी खाँसी, साँस कफ अथवा कफक्षयकी प्रारम्भिक अवस्था (इसमें बुखार हलका सा रहता है) और अन्य कफजनित दोषोंमें अड़ूसा बहुत लाभदायक है। तीव्र ज्वरमें इससे उतना लाभ नहीं होता। पुराने रोगोंमें छोटी पीपरके साथ अड़ूसा देनेसे लाभदायक होता है। (Dr. U. C. Dutta Hindu Mat ria Medica) यह कड़ुवा और ठंढा है। यह कँवल रक्तपित्त, कफज्वर, क्षय, साँस आदिका नाशक है (राजनिघंटु)। यह ऊर्ध्वग और अधोग रक्तपित्तको नाश करने वाला है (गण)। हृद्रोग, कै, कुष्ट, प्यास इत्यादिमें उपयोगी है (धन्वन्तरि)। ज्वर, मेह, अरुचिमें उपयोगी होते हुए बादी और कफको दूर करने वाला है (केयदेव नि०)। इस तरह निघंटुमें

इसके गुणदोष और गुणधर्म प्रकट किए गये हैं। यह समझा जाता था कि क्षयरोगमें उडूसा अत्यंत गुणदायक है, परन्तु सब प्रकारके क्षयोंमें इससे जैसा फायदा होना चाहिये वैसा नहीं होता।

अतिसार और संग्रहणीमें अडूसाकी पत्तीका रस पीते हैं। रक्तातिसार और पित्तसंग्रहणीमें तो यह बहुत ही लाभदायक होता है।

सूखी पत्तीका धुआँ पीनेसे साँसकी तेजी कम हो जाती है। इसके फूल और फल कडुवे, सुगन्धियुक्त और शामक हैं। फूलोंका काढ़ा या अर्क लाभदायक होता है। कई मौकों पर, विशेषकर पूयप्रमेहमें इसका केसर भी लाभदायक होता है। क्षयरोगके बुखारमें होनेवाली घबराहट और गरमीमें अडूसाके फूलोंका शरबत देनेसे लाभ होता है। अडूसाके फलोंकी माला बच्चोंके गलेमें पहनानेसे ठंढ और सर्द हवासे बचाव होता है।

अडूसाकी ताजी पत्तीको चायकी तरह पीनेसे ठंड और हवासे उत्पन्न खाँसीमें लाभ होता है।

अडूसासे अर्क, सत, मद्ययुक्त रस (Tincture) और शरबत तयार होता है। अडूसाके रस अथवा काढ़ेको औटा कर उसका गोला तयार करते हैं जिसे सूखा सत (Dry Extract) कहते हैं। अडूसाके रसको फिल्टरपेपरमें छानकर उससे ४० सैकड़ा के प्रमाणसे मद्यका अर्क मिलाते हैं। यही अडूसाका रस कहलाता है। शरबत तयार करने के लिये ऊखमें अडूसाका रस मिलाते हैं और उसे फिर गरम करके औटाते हैं। यही अडूसाका शरबत है। इसको अवस्था और प्रकृतिके अनुसार व्यवहारमें लाना चाहिये।

[वैट; पदे; कलावैभव; भिषग्विलास २२]।

अडेल्सबर्ग—आस्ट्रियाके कार्निओला प्रान्त में यह एक तिजारती गाँव है। इस गाँवसे एक मील दूरी पर एक गुफा है जो योरप भरमें सबसे बड़ी, सुन्दर और प्रेक्षणीय है। इसके पानीमें घुली हुई खड़ियाकी बहुत सी शकलें देखते ही बनती हैं।

अडेसर—गुजरातमें कच्छके अंतर्गत बागडके पास तीन-चार हजार जनसंख्याका एक गाँव है। यह कच्छकी खाड़ीके किनारे पर है। यहाँ चावल और गुड़का थोड़ा सा व्यापार होता है। यहाँकी गिरी हुई दीवालें १८१६ ई० में राय भारमलजी द्वारा की गई गोलाबारीकी याद दिलाती हैं।

अँडोनिस—(१) इसका यूनानके पौराणिक इतिहासमें उल्लेख मिलता है। इसके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न अनेक कथायें हैं। यह अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण 'अफ्रोडीटी' का विशेष प्रेम-भाजन था। इसके जन्मके सम्बन्धमें अनेक दन्त-कथायें प्रसिद्ध हैं। अफ्रोडिटी द्वारा उत्पन्न किये हुए अनुचित प्रेमके फल-स्वरूप सीरियाके राजा थीयसको उसकी लड़की ही से पुत्र होनेको हुआ। तब उसने लड़कीको जानसे मार डालनेकी आज्ञा दी। परन्तु देवताओंकी उसपर विशेष कृपा थी और वह वृक्षके रूपमें बदल दी गई। दस मासके पश्चात् उस वृक्षसे एक अत्यन्त सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। अफ्रीडीटीके आज्ञानुसार पर्सिफोनीने उसे पाला। ज्युसके आज्ञानुसार अडोनिस वर्षका तिहाई भाग अपने इच्छानुकूल बिता सकता था। शेषका आधा अफ्रोडीटीके साथ और आधा पर्सीफोनीके साथ बिताना पड़ता था।

शिकारसे अत्यन्त प्रेम होनेके कारण यह एक जङ्गली सूअर द्वारा मार डाला गया। (Venus) वीनस 'रति' का इसपर विशेष प्रेम था। और उसने इसके लिये बड़ा ही हृदय-विदारक विलाप किया। इसके रक्तसे उसने एक फूल बना दिया।

(२) पूर्बकालमें ऑथेन्स ॲलेकज़ेंरिड्रया इत्यादि बड़े बड़े नगरोंमें इसकी वार्षिक पूजा बड़े समारोहसे होती थी, और बड़े बड़े मेले हुआ करते थे।

(३) कुछका कथन है कि ॲडोनिस वनस्पतिका जीवन है। उसके जीवन-मरणकी कथा केवल वसन्त तथा शरदऋतुमें होनेवाले परिवर्तन को रूपक रूपसे बतलाती है।

(४) शेक्सपीयरका "वीनस ॲण्ड अडोनिस" नामक काव्य है। इसी भाँति 'शेली' ने कीट कविकी मृत्यु पर 'अडोनीस' नामकी Elegy (शोकगीत) लिखा था।

(५) ६ महीने उत्तरायण और ६ महीने दक्षिणायणमें रहनेके कारण सूर्यका 'रूपक' ॲडोनिस माना जाने लगा। ६ महीने जब उत्तरायण में रहता है तो आकाशमें ऊपर रहता है और वीनस 'रति' इसके समीप रहती है। जब यह दक्षिणायणमें चला जाता है तो उसका पातालमें बास समझा जाता है।

(६) जार्ज चतुर्थ को (The Adonis of Fifty) पचासका अडोनिस कहा जाता था।

(७) यह एक विशेष वनस्पति होती है। इसको 'Pheasant's eye' फीजेन्ट पक्षीका नेत्र भी कहते हैं।

(८) यह एक प्रकारकी 'फूल सुँघनी" नाम

की चिड़ियाको भी कहते हैं।

ऑडोबा- अविसीनियाके टाइग्रे (Tigre) प्रान्तकी यह राजधानी है। यह नगर गोंडारसे ११५ मील पर ईशान्य दिशामें बसा हुआ है। लाल समुद्रके मसोवा टापूसे मध्य अबीसिनीया में जानेवाले मुख्य मार्गमें यह स्थित है। सूडान से अरबिस्तान अथवा अरबसे सूडान जानेवाले यात्री यहाँ ठहरते हैं। यह उनके मार्गमें पड़ता है। १८८७-६६ ई० तकके इटली और अबिसीनीयाके युद्धमें इस स्थानकी बहुत हानि हुई, तथापि धर्मस्थानोंको विशेष क्षति नहीं पहुँची। १८६६ ई० में अविसीनिया निवासियोंने इटली की सेनाको अडोवाके युद्धमें ही पूर्णरूपसे पराजित किया था।

ऑडमिरल्टीद्वीप समूह—यह द्वीपसमूह न्यूगिनीके उत्तरमें बसा हुआ है। यह २°-३° दक्षिण. अ० से १४६°-१४७° पूर्व० रे० में स्थित है। यह समूह लगभग ४० द्वीपों द्वारा बना है। इनमें मैनस सबसे बड़ा है। यह लगभग ६० मील लम्बा है। यहाँकी सबसे ऊँची चोटी ३००० फीट ऊँची है। १६१६ ई० में डच लोगोंने इसका पता लगाया था। तदनन्तर १७६७ ई० में फिलिप-कार्टरेट यहाँ आया। समुद्रमें द्वीपके चारों ओर ऊँचे ऊँचे टीले होनेके कारण 'चैलञ्जर' ज़हाज़के पहले यहाँ कोई भी नहीं आया। यहाँके निवासियोंकी रहन सहन पेपुअन है किन्तु वह मिश्र जातिके जान पड़ते हैं। ये लोग नरमांस-भक्षक होते हैं और इन्होंने न जाने कितने ही गोरोंका खून कर डाला।

अड्यार—यह मद्रास प्रान्तका एक नगर है। यहाँ जानेके लिये मैलापुरसे जाना पड़ता है। यह थियॉसिफीका मुख्य केन्द्र बना हुआ है। यहाँ पर धार्मिक पुस्तकोंका एक बड़ा भारी पुस्तकालय है। इसीके आधीन एक बहुत बड़ा प्रेस भी है। खजूरके वृक्ष यहाँ बहुत हैं जिनके कारण वहाँका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर हो गया है। वहाँका जीवन भारतके कठोर धार्मिक-बन्धनोंसे बहुत कुछ मुक्त है और यहाँपर बहुत कुछ धार्मिक-स्वतन्त्रता है। यहाँपर थियॉसफीका एक कालेज और स्कूल है जिसमें विद्यार्थियोंके रहनेका भी उत्तम प्रबन्ध है। संसारके भिन्न भिन्न देशोंसे थियॉसफी मतवाले यहाँ आते हैं। यहाँका वायु मण्डल धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टिसे अत्यन्त उदार हो रहा है।

अड्याल—मध्य प्रान्तके भण्डारा जिलेकी भण्डारा तहसीलका एक गाँव है। यह भंडारेके दक्षिणमें १४ मील पर पवनीके मार्ग पर बसा हुआ है। इसका क्षेत्रफल १३०० एकड़ है और जनसंख्या ३००० है। यहाँ महावीरजीका एक बहुत पुराना मन्दिर है। इनकी मूर्त्ति बहुत बड़ी है। लोगोंका कथन है कि यह मूर्त्ति स्वयं उत्पन्न हुई है। कुछ काल पूर्व जब यहाँ खुदाई का काम जारी था तब जैनोंके 'पारसनाथ' नामक देवताकी एक मूर्त्ति मिली थी। यहाँ पर ५-६ तालाब हैं। गोंड़ लोगोंकी बस्ती यहाँ अधिक है। यहाँ रेशमी किनारेकी धोतियाँ, बाँसकी टोकरी और चटाइयाँ बहुत बनती हैं। पुलिस का थाना, प्राइमरी स्कूल, डाकखाना, तथा अस्पताल इत्यादि बने हुए हैं। स्वास्थरक्षाके निमित्त एक फण्ड (fund) खोल रक्खा है।

ऑड्रा—यह बन्दरगाह स्पेनके दक्षिणीय तट पर ऑलमेरियाके समीप है। 'रियोमाँड्रा' नदीके मुहाने पर भूमध्य सागरके तटपर यह है। इस स्थानसे अंगूर, शीशा इत्यादि वस्तु बाहर भेजी जाती हैं और अमेरिकाके संयुक्त देशसे यहाँ प्रायः कोयला आता है। यहाँकी जनसंख्या (१६०० ई०) ११७८८ थी।

अड्रार—उत्तर अफ्रीकाके सहारा मरुभूमिके कई प्रान्तोंको यह नाम दिया गया है। स्पेनके 'रियो-डे-ऑरो' (Rio-de-aro) रियासतके दक्षिणकी ओरके पहाड़ी तथा रेतीली ज़मीनको एड्रा सुटफ (suttuf) के नामसे पुकारते हैं। (Timbuctu) टिम्बकटूके ईशान्यमें जो पहाड़ी भाग है उसे भी इसी नामसे पुकारते हैं। सेनीगालसे उत्तरमें ३०० मीलकी दूरी पर पश्चिमीय सहारामें जो प्रदेश है वह भी अड्रार कहलाता है। इन स्थानों पर फ्रेंच आधिपत्य अधिक है। यह प्रदेश लगभग मरुभूमिके समान ही है किन्तु कहीं कहीं हरे भरे मैदान भी हैं जहाँ जल भी काफी होता है। सम्पूर्ण जनसंख्या यहाँकी २०००० है। शिंगेटी, वाडान और उजेक्टकी जनसंख्या कुछ अधिक घनी है। शिंगेटी मुख्य व्यापार का केन्द्र है। यहाँसे सुवर्णरज, शुतुरमुर्गके पर और खजूर इत्यादि सेन्ट-लुईको भेजा जाता है। नमक का भी बड़ा व्यापार यहाँ होता है।

ऑड्रियन—अमेरीकाके संयुक्तराज्यके मिशिगानके लेनावी परगनेमें रायसीन नदी पर यह बसा हुआ है। यहाँकी जनसंख्या लगभग १०००० है। यहाँ अड्रियन कालिज १८५६ ई० में स्थापित हुआ था। यहाँ पर एक औद्योगिक-शाला

(Techincal Instititute)और सार्वजनिक वाचनालय है। व्यापार यहाँ अच्छा होता है। खेती करनेके औजार, बाजे, खिलौने, मोटरकार इत्यादि बनानेके अनेक बड़े बड़े कारखाने और पुतलीघर हैं। १८२८ ई० से यह नगर बहुत तरक्की कर गया। इस शहरका नाम 'हेड्रिअन' नामके रोमन बादशाहके नामपर ही रक्खा गया है।

ॲड्रिया—यह नगर इटली देशके रोबियो प्रान्तमें एडिगे (Edige) और पो (Po) नदीके मुहानोंके बीचमें बसा हुआ है। अब यह समुद्रसे लगभग १४ मीलकी दूरी पर है। यह रोविनो प्रान्तके धार्मिक विभागका मुख्य स्थान है। जहाँ पर 'अड्रिया' नामका प्राचीन नगर बसा हुआ था वहीं पर अब यह है। इस नगरकी प्राचीन सत्ता बहुत थी और इसीके नाम पर इसके सामनेके समुद्रका नाम पड़ा। यह स्थान अरस्तु (Aristotles) के समयसे ही नाना प्रकारके पक्षियोंके लिये प्रसिद्ध रहा है। पूर्वकाल में यह बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह था और अपने व्यापारके कारण इसका स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता था।

ॲड्रिआटिक समुद्र—यह भूमध्य सागरका एक विभाग है। इटलीके पूर्वीय किनारे, अस्ट्रिया हंगरीके दक्षिणमें और मांटीनिग्रो और अलबानिया के पश्चिममें यह समुद्र स्थित है। इसका नाम अड्रिया नामके नगर पर रक्खा गया था। इसकी लम्बाई ५०० मील और चौड़ाई १२० मीलके लगभग है। यह सागर ४०° से ४५°-४५ उत्तर अ॰ में स्थित है। इस समुद्रके किनारेका सबसे मशहूर नगर वेनिस है। इटलीकी ओरका किनारा अधिक गहरा है। अन्य तट इसके छिछले और पथरीले हैं। इसकी अधिकसे अधिक गहराई १३३ पुरसा है। साधारणतः यह १२ से २२ पुरसा तक गहरा है।

ॲड्रियानोपल—(प्राचीन हाड्रियानोपोलिस) यूरोपीय तुर्किस्तानके अड्रियानोपल प्रान्तकी राजधानी है। इसकी जनसंख्या लगभग ८०००० है, जिसमें आधे तुर्क और बाकीमें यहूदी, ग्रीक, बल्गर, अर्मीनियन आदि हैं। कुस्तुनतुनिया और सलोनिका इससे अधिक महत्वके हैं। यहाँ एक ग्रीक आर्चविशप, एक अर्मीनियन और दो बल्गार विशप (धर्मगुरु) रहते हैं। तुर्किस्तान और बलगरियाकी सरहद पर यह शहर स्थित है और इसके चारो ओर आधुनिक सैनिक पद्धतिके अनुसार किलेबन्दी की हुई है। यह तुञा नदी (Tunja) के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। इसी स्थान पर मारिसा नदी इसमें आकर मिलती है। बलग्रेड और सोफियासे कुस्तुंतुनिया और सलोनिका जाने वाली रेलवे लाइन पर अड्रियानोपल है। इस शहर पर पूरबका प्रभाव बहुत पड़ा है। यहाँ इमदादी (Aided) मदरसे, कला-कौशल सिखाने वाले स्कूल, यहूदियोंकी पाठशालायें, ग्रीक विद्यालय जैपियन, इम्पीरियल आटोमन बैंक, टेबेकोरिजी, अग्निबुर्ज और सरकारी नौकरोंके रहनेके स्थान इत्यादि मुख्य इमारते हैं। पुरानी इमारतोंमें सुलतानका पुराना राजमहल जिसे 'एस्की सराय' कहते हैं, अलीपाशाका बाजार, १६वीं शताब्दीमें द्वितीय सलीमकी बनवाई हुई मस्जिद आदि इमारतें दर्शनीय हैं। यह मसजिद वास्तवमें तुर्की कारीगरी का नमूना है।

अड्रियानोपल के अंतर्गत पाँच उपनगर (Suburb) हैं। इनमेंसे कॅरॅगॅच एकदम युरोपियन ढंगबर बसाया गया है। यहाँ सब वर्गोंके लोगोंके लिये पाठशालाएँ बनी हुई हैं जिनमें कुछमें तो पुरानी प्रथासे पढ़ाई होती है और कुछमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रचलित है। हमीदिया नामक सरकारी कालेजमें तुर्की और फ्रेंच भाषाके प्रोफेसर हैं और दोनों भाषाएँ सिखायी जाती हैं। यहाँ ग्रीक लोगोंका एक साहित्य-समाज भी है। १८७७-७८ में युद्धोंके कारण इस नगरकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त हीन होगई थी। १८८५ में यह सॉमिलिया प्रान्तसे अलग कर लिया गया, जिससे इसकी अवस्था और भी शोचनीय हो गयी। थ्रेस, बाल्कन और डेन्यूब प्रांतके व्यापार का यह केन्द्र था परन्तु १८८५ ई० में इसका विदेशी व्यापार फिलिप्पोपोलिस नगरके हाथमें चला गया। यहाँ रेशम, कमाया हुआ चमड़ा, सूती तथा ऊनी कपड़ा तैयार होता है। फल और कृषि सम्बन्धी मालके अतिरिक्त यहाँसे कच्चा रेशम, कपास, अफीम, गुलाब जल, गुलाबका इत्र, मोम और 'टर्किशरेड' 'लालरंग' बाहर भेजा जाता है।

अड्रियानोपलका प्राचीन नाम उस्कादम, या उस्कोदाम था, पर रोमन बादशाह हेड्रियनने इस शहरकी अधिक उन्नति कर इसका नाम बदल दिया। ३७८ ई० में गॉथ जातिने रोमनोंको यहीं पर हराया था। १३६१ ई० में प्रथम मुरादने इसपर कब्जा किया और तबसे १४५३ ई० तक अर्थात् कुस्तुंतुनियाके पतन तक तुर्कीके सुलतान यहीं रहते थे। १८२९ से १८७८ ई० तक यह शहर

रूसके कब्जेमें था। तत्पश्चात् यह तुर्किस्तानके हाथमें आया। बाल्कन युद्धकी संधिमें तय हुआ था कि तुर्क इसे छोड़ दें पर तुर्कोंने लड़ाई जारी रखी और उस परसे कब्जा न हटाया। विगत महायुद्धमें तुर्कोंके हाथसे पुनः यह शहर चले जाने की नौबत आ गयी थी परन्तु यह अब भी तुर्कोंके अधिकारमें ही है।

अढ़तिया—किसी व्यापारमें लेन-देनके कामों के लिये, अपने ही कारखानेका माल, अथवा गोदाममें भरा हुआ माल खपानेके लिये, या दूसरे दूसरे कामोंमें जवाबदेही सिर पर लेकर अपनी ओरसे तीसरे आदमी या दूकानके साथ व्यवहार चलाने या करनेके लिये बिचवई (मध्यस्थ) मनुष्योंकी आवश्यता होती है। ऐसे मध्यस्थ आदमी को अढ़तिया, गुमाश्ता या दलाल कहते हैं। कानूनी भाषामें ऐसे व्यक्तिको जो, दूसरे मनुष्यका कार्य करनेके लिये या किसी अन्य व्यक्तिसे लेन-देन करनेके लिए मालिकका प्रतिनिधि नियुक्त किया जाय, उसे गुमाश्ता कहते हैं। जिस व्यक्ति के लिये व्यवहार किया जाता है अथवा गुमाश्ता जिसका प्रतिनिधि होता है वह मालिक (मुख्य व्यक्ति) कहलाता है। (धारा १८२ एकरारनामा) (Cantract)।

व्यापारी दलालोंकी किस्में—इनका मुख्य कतव्य मालिकके भेजे हुये अथवा सौंपे हुए मालको दलाली लेकर बेचना है। दलालका दूसरा काम मालिकके लिए आवश्यक माल खरीद कर उसके पास भेजना है। इसी कार्यके लिए दलाल नियुक्त किये जाते हैं और उनके नाम मुख्तारनामा भी लिख दिया जाता है अथवा मालिकके जितने काम निकलें उन सबको पूरा करनेका अधिकार उसको मिल जाता है। इसकी मियाद नियमित काल अथवा मालिकके मुख्तारनामा रद्द करने तक रहती है। सभी दलाल अढ़तिये नहीं होते।

बम्बईमें विदेशोंसे व्यापार आढ़तोंके ही मार्फत होता है। ये आढ़तें अढ़तिया अथवा साहूकारोंकी होती हैं। विदेशी व्यापारियोंको बम्बईके सभी व्यापारियोंका परिचय तथा ज्ञान नहीं होता इसी कारण आढ़तोंकी आवश्यकता होती है। ये आढ़तें अपनी जिम्मेदारी पर माल खरीद कर बाहरी व्यापारियोंके पास भेजती हैं। यह व्यापार बम्बईमें अधिक प्रचलित है। ये लोग १) प्रति सैकड़ा कमीशन लेते हैं। इसके अतिरिक्त सूद भी लगाते हैं। धर्म खाते भी ।) से ॥) प्रति सैकड़ा काट लेते हैं। इस प्रकारके खातों का नियन्त्रण नहीं होता। इन अढ़तियोंमें से महाराष्ट्रीय अढ़तियोंने एक असोसियेसन (परिषद्) स्थापित किया था परन्तु उसमें सब आढ़तों ने भाग नहीं लिया। विदेशोंसे व्यापार करने वाली आढ़तोंका वर्णन परदेशी व्यापारके अन्तर्गत है।

अढ़ोई—कच्छमें मोर्वीके अधिकारमें यह एक छोटा सा नगर है। यहाँ किलेबन्दी की हुई है। यहाँकी जनसंख्या लगभग ४५०० है। कपास का व्यापार यहाँ बहुत होता है। नगरके उत्तर ओर दो मीलकी दूरी पर काठी लोगोंके छिपनेके लिये छोटी छोटी गुफाये हैं। (बां० गॅ)

अणि मांडव्य—यह मांडव्य ऋषिका नामान्तर है। पूर्वकालमें इस नामके एक अत्यन्त दृढ़ निश्चय यथा सर्वधर्मज्ञ ऋषि हो गये हैं। इन्होंने बहुत समय कामनारहित होकर तप किया था। एक दिन कुछ चोर चोरीका बहुत सा माल लिये हुए छिपनेके लिये इनके यहाँ आये। राजकर्मचारियोंको इनके आश्रम पर सन्देह उत्पन्न हुआ। अतः वे आश्रममें घुसकर चारो ओर खोजने लगे। वहाँ पर उन्हें चोर और चुराया हुआ धन दोनों ही मिल गया। उस आश्रममें मिलनेसे राजाको ऋषि पर भी सन्देह हो गया। अतः राजाने चोरों के साथ ऋषिको भी सूली पर चढ़ा देने की आज्ञा दे दी। ऋषिने योगाभ्याससे प्राण-संयम करके वेदाध्यन करते हुए तपश्चर्या आरम्भ कर दी। अन्य ऋषियोंने अन्तर्ज्ञानसे सब स्थिति समझ ली और माण्डव्य ऋषिके लिये अत्यन्त दुःखी हुए। तब वे पक्षिरूप धारण कर राजाके पास आये और माण्डव्यऋषिके दण्डकी आज्ञा राजासे बदलवा ली। तदन्तर वह ऋषिके पेटमें घुसा हुआ शूल निकालनेका प्रयत्न करने लगे, किन्तु वह निकल न सका। तब उन्होंने जड़के पाससे शूलको तोड़ डाला, किन्तु कुछ भाग भीतर ही रह गया। इसीसे इनका नाम अणि-माण्डव्य पड़ा था।

बाल्यावस्थामें ऋषिने एक चिड़ियाको खेल करते करते लकड़ी भोंक दी थी। यमधर्म ने इस अपराधके लिये ऐसेहो कठोर दण्डकी ऋषि के लिये योजना की थी। ऋषिने इसपर क्रुद्ध होकर राजाको अगले जन्ममें शूद्रकुलमें जन्म लेने के लिये श्राप दिया क्योंकि राजाने अल्प अपराध के लिये इतने कठोर दण्डकी योजना की थी। उसी समय ऋषिने नियम बना दिया कि १४ वर्षकी अवस्था तकमें किये हुये अपराधका दण्ड प्राणिको न मिला करे।

अणु—भौतिक (Physics) तथा रसायन (Chemistry) दोनों ही शास्त्रोंमें किसी भी पदार्थके उस अत्यन्त सूक्ष्म भागको 'अणु' (Molecules) कहते हैं जिसका अस्तित्व स्वतन्त्र रीतिसे हो सकता हो। भारतके तत्वज्ञान में 'अणु' शब्दकी चर्चा की गई है किन्तु भौतिक शास्त्रमें उसका कोई निश्चित स्थान नहीं रक्खा गया था। 'ऑटम' (Atoms) शब्द युरोपमें सत्रहवीं शताब्दीमें प्रचलित हुआ था, किन्तु उस समय तक लोग 'अणु' और 'परमाणु' के भेदसे भिज्ञ न थे। इसलिये दोनों शब्द समान ही अर्थके लिये प्रयोगमें लाये जाते थे। यह भेद तो १६ वीं शताब्दीके मध्य से मालूम हुआ और उसी समयसे भेदके अनुसार शब्दोंका प्रयोग भी किया जाने लगा। बहुधा 'परमाणु (Atoms) रासायनिक क्रियाके विषय में व्यवहारमें लाया जाता है। अणुसे भी छोटे और सूक्ष्म पदार्थके कणोंसे रासायनिक क्रिया की जाती है। किसी पदार्थके अणुसे भी सूक्ष्म कण को परमाणु (Atoms) कहते हैं।

किसी पदार्थका अणुमें विभाग हो सकता है अथवा यों कह सकते हैं कि कणोंके समुदायसे पदार्थ-रचना होती है। प्राचीन कालसे आधुनिक समय तक किस किस भाँति 'अणु' और 'पदार्थ रचना' की कल्पनायें बदलती गई हैं, इस विषयका इतिहास जेम्स क्लार्क मैक्सवेलके शब्दों में आगे दिया जाता है।

अणु सिद्धान्त तथा अनन्तविभाग सिद्धान्तः—(Molecular Theory & Theory of Infinite Divisibiltiy)—अणुसिद्धान्तवादियोंका मत है कि किसी भी पदार्थ का 'अणु' एक ऐसा सूक्ष्म भाग है जिसके आगे उसका फिर भाग हो ही नहीं सकता और पदार्थकी रचना 'अणु-समुच्चय' से होती है। अनन्त-विभाग-सिद्धान्त-वादियों का कथन है कि पदार्थ समजातीय (Homogeneous) तथा आपसमें नथे हुए अर्थात् अविच्छिन्न (Continuous) होते हैं। उदाहरणके लिये वह जलके विषयमें कहते हैं कि चाहे जलका कितना ही सूक्ष्म भाग किया जाय उसके बाद भी उसका भाग हो सकता है और यह क्रिया अनन्त तक हो सकती है।

इसपर अणुसिद्धान्तवादियोंका कथन है कि किसी मर्यादा तक ही पदार्थके विभाग हो सकते हैं जिसके आगे होना असम्भव है और जो सबसे सूक्ष्म भाग हो उसीको 'अणु' कहा जाता है। विरोधियोंका मत है कि अणु चाहे कितना भी छोटा हो तो भी उसके चारों ओरका कुछ न कुछ तो आकार होगा ही और जिसका आकार और परिमाण होगा वह विभाज्य अवश्य है।

प्राचीन कालमें डिमाक्रीटीस (यूनानी तत्ववेत्ता) ने इस सिद्धान्तकी कल्पना की थी। पदार्थ अनेक भागमें समानरूपसे फैले हुए हैं। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि यथार्थमें जड़ पदार्थ अनन्त भागों तकमें विभक्त हो सकता है। अनॅक्ज़गोरसका मत, उसके विरुद्ध मत तथा इसी सिद्धान्त पर अनेक अन्य खण्डन-मण्डन लुकेशियस नामक ग्रंथकारने अपनी पुस्तक में भलीभाँति दर्शाये हैं।

अणु-सिद्धान्त का प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास—आधुनिक समय में सृष्ट पदार्थों का अध्ययन खूब जोरों से हो रहा है। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि पदार्थ के सूक्ष्म कणों पर तथा उन कणों की गति पर अनेक गुणधर्म निर्भर हैं। इस विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाने से इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। दोनों पक्षों का कथन भिन्न भिन्न है। बहुत प्राचीन काल के यूनानी तत्त्ववेत्ताओं ने संख्या अविच्छिन्न महत्वमान, (Continuous magnitude) दिक्, (स्थल) काल, जड़ पदार्थ तथा गति इत्यादि के विषय में स्वतन्त्र रीति से बहुत कुछ विचार कर डाला है। इसमें सन्देह नहीं कि उनका प्रत्यक्षज्ञान अथवा शास्त्रीय अनुभव अत्यन्त अल्प था तो भी आगे के लिये पथदर्शक का काम कर गये हैं जिससे बहुत सहायता मिलती है। आरम्भ में यदि किसी भी विषय का ज्ञान उन्हें समुचित रूप से हुआ था तो तो वह संख्या का ही ज्ञान था। अब हम इसी संख्या के आधार पर तथा उनके उस ज्ञान की सहायता से जड़ वस्तु की माप और गणना-क्रिया करते हैं। दूसरी ध्यान में रखने योग्य बात है संख्या की विच्छिन्नता (discontinuity)। एक संख्यासे दूसरी संख्या पर हम प्लुत गति (by Jumps and per saltum) से बढ़ जाते हैं। किन्तु रेखागणित में जो हमको महत्वमान (magnitude) देख पड़ता है वह बिल्कुल ही अविच्छिन्न (Continuous) है। संख्या-सम्बन्धी विचार-पद्धति का प्रयोग रेखागणित के महत्वमान पर करने का प्रयत्न करने से ही अपरिमेय (Incommensurable) संख्या और अवकाश (space) के अनन्तविभाग करने की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु काल के विषय में यह कल्पना नहीं की गई। इलिया तथा जेनो के समय में यह विचार था कि कालके

क्षणों की गणना की जा सकती है किन्तु आकाश के बिन्दु (अंक) अगणित हैं। इसीको दर्शाने के लिये जेनोने कछुआ और अचीलिस का कूट प्रश्न सम्मुख रक्खा। यूनान का प्रसिद्ध शीघ्रगामी योद्धा अचीलिस और कछुआ दौड़ लगाते हैं। मान लीजिये कि कछुआ चल रहा है और उसके एक हज़ार गज पीछे से अचीलिस चलना प्रारम्भ करता है। अचीलिस की गति कछुए से दस गुनी है। अतः जब अचीलिस १००० गज चला तो कछुआ १००गज। जब अचिलीस१००गज तो कछुआ१० गज। जब अचिलीस १ गज चलेगा तो कछुआ .१ गज चलेगा। इसी भांति अचिलीसके कितना ही कम चलने पर भी कुछ न कुछ तो कछुआ भी जरूर चलेगा ही।

प्राचीन काल में इसी तरह की अवकाश और काल के विषय में मनुष्यों की कल्पना थी। इसी कारण अचिलीस और कछुए का कूट प्रश्न सदा बना ही रहा किन्तु आगे चल कर अरस्तू (Aristotle) ने यह दिखा दिया कि अवकाशके समान काल के भी अनन्त भाग हो सकते हैं। किन्तु इस धारणा का पूरा पूरा प्रचार उस समय नहीं हो सका था।

सारांश प्राचीन काल से ही अवकाश और काल के अनन्त विभाग के सम्बन्ध की कल्पना की जाने लगी थी। इसी आधार पर आधुनिक समय में जड़ पदार्थों पर प्रयत्न करना प्रारम्भ किया गया। जिस प्रकार अवकाश के अनन्त विभाग हो सकते हैं उसी भांति पदार्थ के भी होने चाहिये। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो कहा जा सकता है कि प्राचीन अवकाश और काल का प्रश्न आज कल के जड़ पदार्थ के अणु-सिद्धान्त का बहुत बड़ा पथ-प्रदर्शक है। इसके विपरीत जो अनन्त विभाग-सिद्धान्त-वाद है वह मानों अविच्छिन्न महत्वमान की कल्पना जड़ पदार्थ पर प्रयुक्त करने का यत्न है। अणु-सिद्धान्त-वादियों का कथन था कि अवकाश तथा जड़ पदार्थ के गुण धर्म भिन्न-भिन्न है। दो अणुओं के बीच में कुछ न कुछ तो अवकाश अवश्य रहता ही है। केवल अणु से पदार्थ नहीं बने हुए हैं; बल्कि अणु और उनके बीच के अवकाश दोनों के मूल ही से पदार्थ तय्यार हुए हैं। यदि ऐसा न होता तो पदार्थ में गति प्राप्त न हुई होती। इसके विपरीत अनन्त-विभाग-वादियों का कथन है कि विश्व का प्रत्येक भाग तथा स्थल द्रव्य से परिपूर्ण है। प्रत्येक वस्तु की गती मछलियों की जल में गति के समान है। जब पानी काट कर मछली आगे बढ़ती है तब पीछे का पानी फिर मिल जाता है और आगे मछली को स्थान मिलता है। यही दशा बाहर दूसरे पदार्थों की है।

आधुनिक काल में डेकार्ट ने यह मान लिया है कि पदार्थ में लम्बाई. चौड़ाई और मोटाई तीनो होनी चाहिये। उसी भांति अवकाश में भी कुछ न कुछ जड़ पदार्थ का होना अनिवार्य है क्योंकि अवकाश में भी मोटाई लम्बाई और चौड़ाई तीनों का समुच्चय होता है। विना जड़ पदार्थ के लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई की कल्पना ही होना असम्भव है। इसी आधार पर डेकार्ट ने अपने सभी ग्रंथोंमें जड़पदार्थ और अवकाशकी कल्पना एक साथ ही की है। उसका मत था कि जड़-पदार्थ अणुओं के संयोग से बने हैं।

इस भांति प्राचीन तथा आधुनिक तत्त्व वेत्ताओं में दो अलग अलग मत थे। ये दोनों मत गणित की संख्या की कल्पना और रेखागणित के अविच्छिन्न महत्वमान की कल्पना से भिन्न भिन्न निकले हैं। जो सब गुण धर्म पदार्थों में दृष्टिगोचर होते है उनका स्पष्टीकरण अनन्त-विभाग कल्पना से होना सम्भव नहीं देख पड़ता। तिसपर भी शास्त्रों में अनेक स्थानों पर इसी कल्पना का उपयोग किया जाता है। (Hydrostatics) जलस्थिति शास्त्र में जल अर्थात् तरल अथवा बहने वाले पदार्थ की व्याख्या उसके एक महत्व गुणधर्म के आधार पर की है। तदनंतर अनुमान से अनेक बातें सिद्ध की हैं। इसी भांति जलस्थिति शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस कारण इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि जल अणुओं द्वारा बना है या इसके अनन्त विभाग किये जा सकते हैं। इसी भांति फ्रान्सीसी गणित-शास्त्र-वेत्ताओं ने स्थिति-स्थापक (Elastic) पदार्थों के विषय में अनेक सिद्धान्त बनाये। इन सिद्धान्तों को बनाते समय यह मानना पड़ा था कि पदार्थ अणुओं से बने हैं और उन अणुओं का एक दूसरे पर जो आकर्षण होता है उससे प्रत्येक अणु अपनी मध्यस्थिति में स्थिर रहता है। इसके अनन्तर स्टॉक इत्यादि ने यह साबित कर दिखलाया कि स्थिति-स्थापकता के विषय में जितनी बातें सिद्ध की गई हैं वे सब अन्य उपाय से भी सिद्ध को जा सकती हैं। स्थिति-स्थापक पदार्थ को चाहे कितना भी सूक्ष्म मान लिया जाय वह खण्डसम जातीय (Homogeneous) ही होगा। इससे अणुवाद मानने में

बाधा पड़ती है। इस सम जातीयत्व अथवा अविच्छिन्न महत्वमान की कल्पनासे (Theory of Fluxion) वहन सिद्धान्त की नींव पड़ी है। इसी वहन सिद्धान्त पर ही आधुनिक गणितशास्त्र* निर्भर है। समजातीयत्व की कल्पनासे तथा उपरोक्त प्रकार के गणितशास्त्र की सहायता से जड़-पदार्थों के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं।

जड़पदार्थ की अरवात्मक रचना—इस सम्बन्ध में बहुत से प्रयोगसिद्ध प्रमाण एकत्रित हो चुके हैं कि जड़पदार्थ अविच्छिन्न महत्वमान के समान समजातीय गुणयुक्त नहीं हैं बल्कि जड़पदार्थ की रचना कणों से ही हुई है। विज्ञानशास्त्र की दृष्टि से पदार्थ के सबसे छोटे कण को ही 'अणु' कहते हैं। जिस समय रासायनिक क्रियाओं का विचार किया जाता है उस समय अणु का विभाग परमाणु में करते हैं। जिस समय विद्युत्निरीक्षण परमाणु का होता है उस समय परमाणु का विभाग 'अतिपरमाणु' में किया जाता है। अणु के समुच्चय से ही जड़पदार्थ बने हैं और अणु-कल्पना ही से सब विद्युदितर और रसायनेतर कार्य कारण-भावों का स्पष्टीकरण होना चाहिये। इससे वायुमय पदार्थों के विषय में बहुत सुगमता से स्पष्टीकरण किया जाता है। वायु का गति विषयक सिद्धान्त (Kinetic Theory of Gases) द्वारा यह प्रतिपादन किया जाता है कि जड़पदार्थ अणुसमुच्चय से बने हैं। इसी सिद्धान्तसे अनन्त विभाग-सिद्धान्त-वादियों के मत खण्डित होते हैं और बिना इसकी सहायता लिये ही विद्युत् तथा प्रकाश की सहायता ही से पदार्थों की अरवात्मक रचना सिद्ध की जाती है।

अणु का आकारमान—लार्ड रॅले द्वारा किये हुए कुछ प्रयोगों से अणु के आकारमान के विषय में अनुमान किया जा सकता है। पहले पानी पर तेल की बहुत पतली झिल्ली फैला कर यह देखा गया है कि उससे तैरते हुए कपूर पर क्या परिणाम होता है। इससे यह पता चला कि जब तेल का थर $\frac{१०.६}{(१०)^८}$ सेन्टीमीटर तक मोटाईका होता है तो उस पर विशिष्ट परिणाम होता है। किन्तु यदि तेल का थर $\frac{८.१}{(१०)^८}$ सेन्टीमीटर मोटाई का हो तो वैसा विशिष्ट परिणाम नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि तेल के इन दो भिन्न भिन्न मोटाइयोंके कारण फल भी भिन्न भिन्न होते हैं। यदि इसकी भिन्नता के कारण पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि तेल का थर जब बहुत पतला होता है तब उसकी अरवात्मक रचना की ओर ध्यान देना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि अणु का आकारमान $\frac{१}{(१०)^८}$ सेंटीमीटर पर होगा। इस अनुमान की पुष्टि अन्य प्रयोगों से भी हुई है। टॉमस यंग ने सन १८०५ ई० में अणु का आकारमान जानने के लिये उपरोक्त ढंग से तेल की झिल्ली पर प्रयोग किये थे। लार्ड रॅले के मतानुसार यंग का यह प्रयोग सब से आरम्भ में हुआ था। सरसरी तौरसे गणित करके उसने यह अनुमान किया था कि अणु का एक दूसरे पर होने वाला आकर्षण एक इंच के $\frac{१}{२००००००००}$ अंश का होता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह अनुमान $\frac{१}{(१०)^८}$ सेंटीमीटरके दर्जे का है। इसी के आधार पर सन् १८०५ ई० में आधुनिक अन्वेषण की नीव पड़ गई थी। इसी भाँति उसने गणित से यह सिद्ध किया कि पानी में के अणुका व्यास या उनका अन्तर $\frac{१}{२०००००००००}$ से $\frac{१}{१००००००००००}$ तक होना चाहिये अर्थात् $\frac{.१२५}{(१०)}$ से $\frac{.०२५}{(१०)^८}$ सेंटीमीटर तक होना चाहिये।

*आधुनिक गणितशास्त्रान्तर्गत शून्यलब्ध सरीखे महत्व भागकी उत्पत्ति वहनकल्पना से हुई है। न्यूटन और लिब्नीजने इसको निकाला था।

आधुनिक शास्त्रवेत्ताओंने वायुके अणुके व्यासकी जो लम्बाई निकाली है, वह आगेके कोष्ठकमें दी हुई है।

अणुगति सिद्धान्तसे निकाला हुआ अणुका-व्यास					
वायु	बॉइलके नियमसे व्यास	स्निग्धताके गुणकानुरोध से व्यास	उष्णता वहनके गुणकसे व्यास	वायुके प्रसरण से व्यास	इन सबकी औसत
उज्ज (हाइड्रोजन)	२·०५ × १०$^{-८}$	२·०५ × १०$^{-८}$	१·९९ × १०$^{-८}$	२·०२ × १०$^{-८}$	२·०३ × १०$^{-८}$
(कार्बनमोनाआक्साईड) कर्ब प्राणिद	......	२·९० × १०$^{-८}$	२·७४ × १०$^{-८}$	२·९२ × १०$^{-८}$	२·८५ × १०$^{-८}$
नइट्रोजन (नत्र)	३·१२ × १०$^{-८}$	२·९० × १०$^{-८}$	२·७४ × १०$^{-८}$	......	२·९२ × १०$^{-८}$
हवा	२·९० × १०$^{-८}$	२·८६ × १०$^{-८}$	२·७२ × १०$^{-८}$	......	२·८३ × १०$^{-८}$
प्राण (आक्सिजन)	......	२·८१ × १०$^{-८}$	२·५८ × १०$^{-८}$	२·७० × १०$^{-८}$	२·७० × १०$^{-८}$
(कार्बनडाय आक्साइड) कर्ब द्विप्राणिद	३·०० × १०$^{-८}$	३·४७ × १०$^{-८}$	३·५८ × १०$^{-८}$	३·२८ × १०$^{-८}$	३·३३ × १०$^{-८}$

ऊपर के कोष्टक से यह स्पष्ट हो जायगा कि चाहे अलग अलग मार्गों से अणु का व्यास निकाला जाय तो भी प्रायः वह एक ही आता है; अत्यंत सूक्ष्म वस्तु की गणनामें भले ही चाहे कुछ अन्तर पड़े। इसी कारणसे ऊपरके कोष्टकमें एक सा व्यास नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्तर का एक और भी कारण है। ऊपर के कोष्टक में अणु के व्यास की गणना करने में हरेक अणु को गोल (Sphere) माना गया है किन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हरेक वायु (Gas) का अणु बिल्कुल गोल ही है। अतः अणु के व्यास में भिन्न भिन्न पद्धति से गणना करने पर अन्तर पड़ता है।

तापमान और अणुकी गति—आजकलके विज्ञानवेत्ताओं का मत है कि पदार्थ के अणुमें गति होती है। यद्यपि ये अणु अत्यन्त वेग से स्वयं घूमते हैं तो भी पदार्थ स्थिर ही रहता है। इन अणुओं की गति का कारण उनकी सापेक्षता है।

अणु की गति पर प्रयोग करने से बहुत सी कामकी बातोंका पता चलता है और उनकी सहायता ही से अणु-गतिका सिद्धान्त बना है। सामान्यतः कह सकते हैं कि अणुकी गति तीन प्रकार की है। पदार्थ भी तीन ही प्रकारके होते हैं। (१) घन (२) द्रव (प्रवाही) और गैसीय (वायु)। इन्हीं तीन प्रकारके पदार्थोंकी तीन प्रकारकी गतियाँ भी स्वरूपानुसार होती हैं। घनपदार्थके अणु अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणमें गतिमान हैं। यह बात व्यवहारके अनेक अनुभवोंसे सिद्ध की जा सकती है। उदाहरणार्थ—यदि किसी धातुपर सोनेका मुलम्मा किया जाय तो बहुत दिनोंतक वह मुलम्मा जैसेका तैसाही रहता है क्योंकि उस मुलम्मेके अणु वहाँ से नहीं हटते और न वे सुवर्ण कण उस धातुमें प्रवेश कर पाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी हलकी धातुपर सुवर्णका पतला पत्तर चढ़ा दिया जाय तो उस हलकी धातुके कण उस पत्तरके ऊपर नहीं आ पाते अथवा उस पत्तरके कण उस धातुके अन्दर प्रविष्ट नहीं होते। इससे यह सिद्ध होता है कि घनपदार्थके अणु अत्यन्त सूक्ष्म गति से घूमते हैं। किन्तु जब पदार्थ वायुरूपकी दशा में होता है तो उसके अणु अति तीव्र गतिसे घूमते हैं। और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है। इसका कारण यह है कि इसके कुछ कण वायुके साथ संलग्न हो जाते हैं और वे सर्वत्र फैल जाते हैं।

अब यह देखना चाहिये कि घनपदार्थके अणुओंकी स्थिति कैसी होती है। बहुतसे लोग यह समझेंगे कि घनस्थितिमें रहने वाले पदार्थोंके अणु भी बिल्कुल स्थिर होते हैं, परन्तु यह विचार गलत है। घनपदार्थके अणु सिकुड़ते और फैलते

हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घनपदार्थके अणु भी सूक्ष्म प्रमाणमें गतिमान हैं। प्रत्येक अणुके चंचल होनेसे आपसमें ये टकराते हैं। आपसकी टक्कर और आकर्षण-शक्ति द्वारा ये अणु अपनी पूर्वस्थितिमें थोड़े ही समयमें पहुँच जाते हैं। उष्णतासे पदार्थ फैलते हैं और उसके अभावमें सिकुड़ते हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि कोई भी पदार्थ ज्यों ज्यों ठण्डा किया जायगा उसके अणु को गति भी स्तब्ध होती जायगी और अत्यन्त शीत पदार्थके अणुकी गति स्तब्ध होगी। और उस समय तापमान २७३° श (सेन्टीग्रेड) होता है। इससे कम तापमान होनेसे स्तब्धता असम्भव है। इस उष्णतामानको मूल्य शून्यांश (Absolute zero) कहते हैं।

अब हमें यह देखना चाहिये कि घनपदार्थ जब ऊष्ण रहते हैं तब उनके जो विशेष गुणधर्म दिखाई देते हैं उनका अणु-सिद्धान्त-द्वारा किस भाँति निर्णय किया जा सकता है। ऐसा मान लीजिये कि दो पदार्थ २७३° सेंटीग्रेड तापमान पर हैं अर्थात् उनके अणु बिल्कुल स्तब्ध हैं। इन दोनों पदार्थोंको एक दूसरे पर घिसना शुरू किया जाय। तब इनकी सतहके अणुमें गति प्राप्त हो जायगी और घिसनेसे उष्णताका प्रादुर्भाव होगा। आरम्भमें यह उष्णता पदार्थकी सतहपर रहेगी, परन्तु सतहके अणुओंमें गति प्राप्त होते ही उन अणुके पासके थरको भी गति प्राप्त होगी। इस भांति जब समीपके अणु गतिमान होगें तब समस्त पदार्थमें धीरे धीरे उष्णता फैल जायगी। इस भांतिके तापप्रसरणको ताप चालकता (Condrction) कहते हैं। उष्ण पदार्थके अणु हिलते रहते हैं। निश्चित् उष्णतामान पर उनकी गतिके लिये निश्चित स्थान भी चाहिये। ज्यों ज्यों तापमान बढ़ाया जायगा त्यों त्यों उनके आन्दोलनके लिये अधिक स्थानकी भी आवश्यकता होगी। नित्य व्यवहार में देखने से यह स्पष्ट है कि उष्णतासे पदार्थका प्रसरण होता है। इसके विपरीत यह भी देखा जाता है कि दबाव (Pressure) इत्यादिका उपयोग करके पदार्थको सिकोड़नेसे भी उष्णतामान बढ़ता है।

जिस प्रमाणमें पदार्थका उष्णतामान बढ़ाया जायगा उसी प्रमाणमें अणु-आन्दोलनके लिये अधिक स्थान भी होना चाहिये। यदि किसी पदार्थको हद दर्जेसे भी अधिक गरम किया जाय तो उस पदार्थके अणु इतनी शीघ्र गतिसे हिलने लगेगें कि फिर उनका अपनी पूर्व स्थितिमें आना सम्भव नहीं। इस भाँति बदलनेवाली जो अणुओंकी अवस्था होती है उस अवस्थाको 'प्रवाही अवस्था' कह सकते हैं। यदि कोई अणु अधिक प्रमाणमें आन्दोलित होने लगता है तो वह अपनी मध्य-स्थिति (Centre) छोड़कर दूसरी ओर चला जायगा। वहाँ पर दूसरे अणु-संघके कारण वह अणु नये आकर्षण-बंधसे बँध जावेगा, किन्तु यदि उस पदार्थके पृष्ठ भागके समीप किसी अणुको अधिक गति प्राप्त हुई और वह गति उस पदार्थमें से बाहर निकलनेकी ओर ही झुकी रही तो वह पदार्थ अपने चारों तरफके अणु-बन्धसे निकल कर उस पदार्थके बाहर चला जावेगा। इसी भाँति यदि बहुतसे अणु बाहर जाने की क्रिया होती रहे तो उस पदार्थके अणु कम होते जायँगे। इस तरह पदार्थमें से अणुओंके बाहर निकलनेकी क्रियाको 'वाष्पीभवन' (Evaporation) कहते हैं।

* जब सामान्य उष्णता और दबाव(Normal Temperature and pressure) होता है तब पदार्थके वायुका घनत्व (Densit,) उस पदार्थ के घनस्थिति में रहने के घनत्वका एक सहस्रांश होता है। इससे गणितकी सहायतासे यह सिद्ध किया जा सकता है कि जड़पदार्थकी घनस्थितिमें रहने के समय उसके अणुओंमें जितना अन्तर रहता है उसका दस गुना वायुरूपस्थितिमें होने से हो जाता है।

अब यह बतलाया जायगा कि वायु (Gas) के अणु सम्बन्धमें विज्ञानवेत्ताओंने अबतक कौन कौनसे प्रयोगसिद्ध अथवा गणितसिद्ध ज्ञान प्राप्त किये हैं। हवामें अणुका औसत व्यास प्रायः $\frac{२.८}{१०^८}$ सेन्टीमीटर रहता है। यदि ये अणु बिल्कुल चौकोर हों तो उनके दो अणुओंमें के अन्तरकी औसत लगभग $\frac{२.६}{१०^७}$ सेन्टीमीटर होती है। जब सामान्य उष्णतामान और दबाव होता है तब एक परिमाणके घनमें अर्थात् एक सेन्टीमीटर लम्बे चौड़े और ऊँचे घनमें करीब २.७५×१०^{१९} अणु होते हैं। २.७५×१०^{१९} अर्थात् २७५ के आगे १७ शून्य है। यह संख्या परार्धकी अपेक्षा दो स्थल

* सामान्य उष्णतामान और भार(दबाव) = Normal Temperature and Pressure। शून्य शतांश उष्णतामान ही सामान्य उष्णतामान है। और जब वायु-भार-मापक (Barometer) नलीमें पारेकी ऊँचाई ७६ मिलीमीटर होती है तब सामान्य भार (Normal pressure) होता है।

बड़ी है और इतने अणु एक घन सेन्टीमीटरमें रहते हैं। अब प्रयोग और गणितसे वायुके अणुकी जो गति निकाली गई है वह आगे दी जाती है।

वायुका नाम	उष्णता मान	गतिप्रतिसे०(Velocity)
हाइड्रोजन(उज्ज)	० शतांश	१८३६०० सेन्टीमीटर
हवा	१५० ,,	४६८०० ,,
पारेकी भाप	० ,,	१८५०० ,,

इसी प्रकार गणितसे यह सिद्ध हुआ है कि $\frac{१}{१०^{१२}}$ ग्रामके वजनके अणुका या अणु-समुच्चयका प्रायः शून्यशतांश उष्णमान पर २ मिलीमीटरके हिसाबसे प्रत्येक सेकेण्डमें वेग होना चाहिये। $\frac{१}{१०^{१२}}$ ग्रामका अणु हमको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे दिखलाई देना सम्भव है। इसी प्रकार जिस वस्तुमें प्रति सेकेण्डमें दो मिलीमीटरके हिसाबसे वेग होता है वह वस्तु आँखसे देखी जा सकती है। परन्तु उस वस्तुका वेग कुछ काल तक एकही दिशामें अव्याहत रूपमें होना चाहिये। अणु बारंबार एक दूसरेसे अथवा बर्त्तनोंके पार्श्वोंसे टकराते हैं। इस कारण वेगकी दिशा बराबर बदलती रहती है। इस कारण प्रत्येक अणुको व्यक्तिशः देखना सम्भव नहीं है। ऐसा होने पर भी लघु गतियों (Short Motion) का फल किसी औसत गति पर होना चाहिये। और वह गति हर सेकण्डमें २ मिलीमीटर की अपेक्षा कम होनी चाहिये। आर०वान०स्मोलुचौस्कीने यह दर्शाया है कि राबर्ट ब्राउन नामके बनस्पतिशास्त्र वेत्ताने १८२७ ई० में अणुकी जो हलचल देखीहै वही औसत गति है। ऊपर बतलाई हुई गतिको 'ब्राउनकी गति' कहते हैं। ब्राउनकी गतिका निरीक्षण करनेसे अणुकी गति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है।

डाल्टन का सिद्धान्त—नीचे दिये हुए नियमको डाल्टनने निकाला है। यदि किसी पात्रमें अलग अलग वायुका मिश्रण किया जाय तो उस पात्रके प्रत्येक वायुके भारका जोड़ उस मिश्रण के भारके बराबर होगा। उदाहरणके लिये एक पात्रमें नात्र (Nitrogen) और प्राण (Oxygen) का मिश्रण किया गया हो तो उस मिश्रणका भार (१५ + ६१) = ७६ सेन्टीग्राम होगा क्योंकि नत्रका भार १५ सेन्टीग्राम और प्राणका ६१ सेन्टीग्राम होता है।

बाइल और चार्लसका सिद्धान्त—जब किसी वायु का तापमान स्थिर रहता है तो उस वायुका भार उस वायुके आकारमानका घनफल व्युत्क्रम प्रमाण (Inverse Proportion) में बदलता है। यदि उस वायुका घनफल स्थिर रक्खा जाय तो उसका भार तापमानके समप्रमाणमें बदलता है।

एवागड्रोका सिद्धान्त—यदि बिलकुल समान आकारके घनफलकी भिन्न भिन्न जातियोंकी वायु एक ही उष्णतामान और दबावकी ली जाय तो उन भिन्न भिन्न वायुके अणुकी संख्या एक ही होगी। इससे बाइल और चार्लसका उपरोक्त सिद्धान्त सर्वांशमें ठीक नहीं देख पड़ता क्योंकि यदि उष्णतामान अथवा दबावमें विस्तृत प्रमाणमें अन्तर किया जाय तो उपरोक्त नियम ठीक नहीं उतरता। वायुके भार, क्षेत्रफल तथा तापमान एक दूसरे से निश्चित प्रमाणमें रहना चाहिये। यदि इन तीनोंमें अधिक प्रमाणमें अन्तर है तो यह प्रमाण नहीं रह सकता और इस अन्तर होने का कुछ न कुछ कारण अवश्य होगा। इस विषयमें व्हान नामक विज्ञानवेत्ताने विचार करके दो कारण बतलाये हैं। एक तो अणुओंके आकर्षणका परिमाण है। यदि इसका ध्यान रखकर समीकरण किया जाय तो वह बदले हुए क्षेत्रफलादिक पर ठीक घटेगा।

यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि डाल्टन, चार्लस, बाइल एवागड्रो तथा व्हानडर वालके उपरोक्त सिद्धान्त तथा विचार-पद्धति अणु-सिद्धान्तकी बहुत कुछ पुष्टि करती है।

अणे—पूना ज़िलेमें यह एक गाँव है। जुन्नार के पूर्वकी ओर २५ मीलकी दूरी पर अणे ही नाम की एक घाटीके नाके पर यह स्थित है। यहाँ की जनसंख्या लगभग २००० है। यहाँ प्रति बुद्धवारको हाट लगता है।

अण्णाजीदत्तो—शिवाजीके आठ प्रधानोंमेंसे यह भी एक थे। सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें जब हिन्दूराज्यकी नींव डालनेकी फिरसे कल्पना की जाने लगी थी और जिस समय अनुभवी तथा कार्यकुशल लोगोंकी कमी भी देख पड़ती थी, ऐसे ही समयमें शिवाजीके आधिपत्यमें कुछ एकनिष्ठ, देशभक्त तथा गुणी एकत्रित होने लगे थे। ऐसे ही मनुष्योंमें अण्णाजीदत्ताप्रभुणीकर भी थे। यह तद्देशस्थ ब्राह्मण थे और १६४७ ई० में शिवाजी से आकर मिले। यह संगमेश्वर ताल्लुकमें पटवारी (देशकुल कर्णपण) के काम पर नियुक्त थे। इसके न तो निजी जीवनका कोई ब्यौरा मिलता है, न उसका पूर्व वृत्तान्त ही उपलब्ध है। जिस समय अफजलखां का सामना करनेके लिये शिवाजी १० नवम्बर १६५८ ई० को प्रतापगढ़से

चले थे उस समय संभाजी तथा जिजाईके संरक्षण-भारके लिये अरणाजीको वहाँ ही छोड़ दिया था, अरणाजी दक्षिण कोकनसे भली भांति भिज्ञ थे इस लिये अफजलखाँ को पराजित करनेके पश्चात् जब शिवाजीने पन्हाला किला जीतनेका विचार किया तो इसे आगे ही भेज दिया था। इसके बाद स्वयं पहुँचकर २८ नवम्बर १६५६ ई० को शिवाजीने क़िला जीत लिया। शिवाजीके पास रहकर समय समय पर अरणाजी अपने गुणोंका परिचय देने लगे। शिवाजीने भी उसके गणित-ज्ञान तथा कार्य-कुशलता पर मुग्ध होकर उसे २६ अगस्त १६६१ ई० को 'वाकनीस' के पदपर नियुक्त किया और पालकी (सवारी) दी। ख़ानगी मामलेकी देख-रेख, राज्यके कारबारकी देख-भाल, पत्र-व्यवहार, दफ्तरका कुल काम देखना इत्यादि कार्य उनके आधीन था। भोजनकी व्यवस्था निमन्त्रण इत्यादि भेजना भी इसीके अन्तर्गत होता था। इस पदके प्राप्त होनेके पहले ही अरणाजी को ज़मीनकी देख-भाल करना, सम्पूर्ण कर वसूलना तथा अन्य राज्यव्यवस्थाके कार्य करने पड़ते थे। क्योंकि दादाजी कोंडदेव की मृत्युके पश्चात् इस कार्यके लिये यही प्रवीण समझे जाने लगे। अरणाजीने कर वसूलने की पद्धति वहीं पुरानी रक्खी और बड़ी कुशलतासे इस कार्यका सम्पादन करते रहे। इन सब कारणोंसे प्रसन्न होकर शिवाजीने ३ अप्रैल सन् १६६२ ई० को अरणाजी को सुरनिस अथवा सचिव (मन्त्री) के पदपर विभूषित किया। इस पदपर यह राज्यकी ओर से सब चिट्ठी पत्री करते थे तथा परगनों और गाँवके हिसाब किताबका निरीक्षण करते थे। इसीके पास राज्यकी मोहर (Seal) रहती थी। युद्धादिक प्रसंगपर राजाके हितका ध्यान रखकर विचार करना इत्यादि कर्त्तव्य करने पड़ते थे। यद्यपि राज्य व्यवस्था इसने अत्युत्तम की थी, किसी कर्मचारी पर विश्वास न करके स्वयं ही गाँव गाँव घूमकर सब देख भाल किया करते थे किन्तु युद्ध कार्यमें अरणाजीका विशेष महत्व नहीं देख पड़ता न उनके द्वारा कोई स्वतन्त्र युद्ध ही जीता गया।

शिवाजीने ६ जनवरी सन् १६६४ ई० को थाना जिलाके कोतवणके मार्गसे जाकर सूरत शहरपर धावा किया था। उस समय अरणाजी साथ थे। तदनन्तर दक्षिण भारत पर विजयके लिये जो चुने चुने लोग भेजे गये थे उनमें भी यह गये थे। किन्तु इन लड़ाइयोंमें भी इनकी विशेष वीरताका उल्लेख नहीं मिलता। केवल हुबली नगरकी लूटमें अरणाजीका विवरण मिलता है (१६७३ ई०)। हुबली उस समय व्यापार-क्षेत्रका केन्द्र बना हुआ था और ऐसा अनुमान किया जाता है कि सूरतसे भी अधिक यहाँ पर लूटका माल मिला होगा। किन्तु यहाँ पर अंग्रेज तथा अन्य विदेशी व्यापारी बसे हुए थे, उनके विवरणसे पता चलता है कि अरणाजीने शिवाजीको इस लूटका कुछ समाचार ही नहीं दिया। राजपुरकी लूटमें जो क्रूरता दिखलाई गई थी उसके लिये शिवाजीने उन अधिकारियोंको दण्ड दिया था। कदाचित् इसी कारण से अरणाजीने ऐसा किया होगा। जिस समय १६६६ ई० में शिवाजी देहलीके मुगल बादशाह औरंगज़ेबसे मिलने गये थे उस समय जिन तीन पुरुषोंके ऊपर सम्पूर्ण भार सौंपा गया था उनमें एक अरणाजी भी थे। इन लोगोंने ५ मार्च १६६६ से २० नवम्बर १६६६ ई० तक बड़ी दक्षतासे कार्य सँभाला था। इससे प्रसन्न होकर शिवाजीने इन लोगोंको 'राज्यका आधारस्तम्भ' की उपाधीसे विभूषित किया था। अरणाजीका कुल समय कर निश्चित करने, गाँवके झगड़ोंका निपटारा करने इत्यादिमें ही व्यतीत होता था। लड़ाईमें वे बहुत कम भाग लेने पाते थे किन्तु दक्षिणके युद्धोंमें उन्हें भाग लेना पड़ता था क्योंकि उस ओरसे वह विशेषरूपसे भिज्ञ थे। पन्हालाका किला जो १६५६ ई० में जीता गया था वह बीजापुर वालोंने सन् १६६२ ई० में फिर ले लिया था और मराठोंके आधीन प्रदेशोंमें ख़वासखाँ दिन पर दिन अधिक अत्याचार बढ़ाता जाता था। अतः शिवाजीने १६७० ई० में पन्हालेको जो दक्षिण की सरहदका मुख्य स्थान था लेने का निश्चय किया। तदनुसार शिवाजीने अरणाजीको पन्हाला पर फिरसे अधिकार प्राप्त करने के लिये भेजा और जो प्रतिनिधि बीजापुरमें था वह वापस बुला लिया गया। दो तीन दिनके बाद कुछ गुप्त परामर्श देकर अरणाजीकी सहायता के लिये कोंडाजी इत्यादिके साथ बहुत से और आदमी भेजे। अरणाजी पहले ही से डटे थे, इन लोगों के ५ मार्च १६७३ ई० को पहुँचने पर रात्रिके निबिड़ अन्धकारमें क़िले पर इन लोगोंने छापा मारकर चारों ओर हाहाकार मचा दिया। अरणाजी पिछले भागकी रक्षाके लिये कुछ सेना को लेकर जंगलमें छिपे हुए थे। थोड़ी लड़ाई दूसरे दिवस अर्थात् ६ मार्च को भी हुई किन्तु विजय इन्हीं लोगोंके हाथ रही और किला हस्त-

गत हो गया। कोंडाजीने यह समाचार गुप्तचरों द्वारा शिवाजीके पास भिजवा दिया। शिवाजीके आठ दिन आने तक अरणाजी वहीं रहे। इस भांति पन्हाला पर दो बार विजय प्राप्त की गई और सत्रहवीं शताब्दीके अन्त तक वह मराठोंके ही आधीन रहा। इसी वर्ष शिवाजीके राज्याभिषेकके समय शिवाजीने अपने अष्ट-प्रधानोंको सब काम बाँट दिया। अरणाजीको चेऊलसे लेकर दामोल तक राजापुर, कुडाल, बाँदा और फोंडा अकोल तक–सारांश समस्त दक्षिण कोंकण की व्यवस्थाका भार सौंपा। इसके अतिरिक्त कर-व्यवस्था पहिलेकी भाँति उसीके आधीन रही। इलागिरी ताल्लुके की जमीदारी तथा कोल्हापुर इलाके के भूधरगढ़के निकट सामानगढ़ भी अरणाज को दे दिया गया था। कहा जाता है कि अरणाजी ही ने सामानगढ़ बनवाया था। दक्षिण कोकनकी व्यवस्था अरणाजीके ही हाथमें होने के कारण समुद्रतटकी देख-रेख भी इन्हें ही करनी पड़ती थी।

इसी कारण योरोपीय व्यापारियोंसे उनका सम्बन्ध सदैव घनिष्ट रहा। वे अरणाजीको अरणाजी पण्डित सूबेदार (Viceroy)' के नाम से सम्बोधित करते थे। ५ जून १६७४ ई० को जब शिवाजीका राज्याभिषेक हुआ था तब राज्यकी भीतरी व्यवस्था अरणाजी ही करते थे। अतएव शिवाजीके शीश पर राजछत्र सुशोभित करने का सम्मान इन्हीं को प्रदान किया गया था। उस अवसर पर उन्हें बादली (वस्त्र विशेष). पोशाक, कराठी, चौकड़ा (बाला) सिरपेंच, कलगी, कटार, ढाल, तलवार, हाथी, घोड़ा आदि देकर गौरान्वित किया गया था। अरणाजीको पालकी के व्ययके सहित १०,००० होण (३००० रुपया) नग़द वेतन मिलता था। अरणाजी राज के पत्रों पर जो अपनी मुहर करते थे वह अष्टकोण, बड़ी तथा लम्बी थी। उसमें निम्न ४ पंक्तियाँ अंकित थीं। (१) श्रीशिवचरणी (२) निरन्तर दत्त (३) सुत अनाजिपंत (४) तत्पर। इन चारोंको मिला कर पढ़नेसे अर्थ निकलता है:—श्रीशिवाजीके चरणोंमें निरन्तरदत्त सुत अनाजिपंत सदा तत्पर। लेख समाप्त होने पर और लिफाफेके जोड़ों पर व्यवहारमें लाई जाने वाली मोहर छोटी तथा गोल थी। उसमें निम्न शब्द अँकित थे। (१) लेख (२) नावधि रे (३) धते (अर्थात् लेखना वधि रेधते) १६७४ ई० में फिर शिवाजीने भूमिनिरीक्षण प्रारम्भ कर दिया और अरणाजीके ४ या ५ वर्ष इसी कार्य्यमें बीते थे। इसी बीचमें शिवाजीने अरणाजीको मालवे भेजा था। १६७८ ई० में जब शिवाजी स्वयं कर्नाटक गये थे तब इन्हें राज्य-प्रवन्धके लिए छोड़ गये थे। अरणाजी प्रायः राजगढ़में ही रहते थे। जिस समय में वे गावोंके निरीक्षणके लिए बाहर जाते उस समय उनके सहायक सब कामोंको करते थे।

गाँवोंके कर्मचारी भूमिनिरीक्षणमें अक्सर भूल करते थे जिससे राज्यको विशेष धक्का पहुँचता था। इसलिए अरणाजी स्वयं परिश्रम करके गावोंमें घूमते, भूमिनिरीक्षण करते तथा कर निश्चित करते थे। इस प्रकार राज्यकी आमदनी बढ़गई; भीतरी व्यवस्था सुधर गई और साथ ही साथ अरणाजीका उत्कर्ष भी खूब हुआ। इस कारण कई बड़े तथा योग्य व्यक्तियों और अरणाजीसे अनबन होगई। कुछ लोगोंने शिवाजी से ज़मीनके लगान और गावोंके झगड़ोंका निपटारा स्वयं करनेके लिए प्रार्थना की। परिणाम यह हुआ सब भूमिके फिरसे निरीक्षणकी आज्ञा शिवाजीने दी। उसीके अनुसार शिवाजीके राज्याभिषेकके बाद भूमि-निरीक्षण प्रारम्भ हुआ। इस बार भी दादाजी की ही कर-पद्धति स्वीकृत हुई। परन्तु ऋतु परिवर्तनसे थोड़ा बहुत सिकुड़ने वाली रस्सीके स्थान पर राजाके हाथसे ५ हाथ ५ मूठ लम्बी लाठी लम्बाई नापनेके लिए प्रयुक्त की जाने लगी। शिवाजीके आजानु बाहु तथा राजा होने के कारण कोई भी इस नापके विरुद्ध आवाज न उठा सका। उपजका ३ वां भाग कर नियत किया गया था, किन्तु कर अन्नके रूपमें न लेकर नगद सिक्कों में ही लिया जाता था। इस समय जो कर निश्चित किया गया था वह स्थायी था। ऊसर भूमि पर भी कर लगाये जानेके कारण लोग उसे भी खाद देकर उपजाऊ बनानेका यत्न करने लगे। निर्जन स्थानों पर नये लोग बसाये गये। उन्हें बोनेके लिए बीज, मवेशी और धन दो वर्षकी मुद्दत पर देकर ज़मीन उपजाऊ बनानेका प्रयत्न किया गया। दुर्भिक्षमें भी धन और मवेशी दिये जानेके कारण स्थायी-कर-पद्धतिके प्रतिकूल कोई न था। कर नियत करते समय अरणाजी ने विभिन्न गावोंको जो आज्ञा-पत्र दिये थे उनसे ज्ञात होता है कि पहिले कर मुनीम तथा गाँवके अन्य अधिकारी पिछले दो वर्षकी उपज पर तथा गाँवके बड़े आदमियोंकी सम्मतिसेही निश्चित किया गया था। इस कार्यमें गाँवके मुख्य लोग भी सहायता करते थे। इस प्रकार कर नियत किये जाने पर

अण्णाजी को उसकी सूचना दी जाती थी। तब अण्णाजी स्वयं जाकर जाँच करते थे और यदि निश्चित कर राजा तथा प्रजाकी दृष्टिसे हानिकारक न होता तो अपनी स्वीकृति दे देते थे। ऐसा करते समय अण्णाजी व्यक्तित्वके हितकी ओर ध्यान न रख सके। फलतः उन्हें बहुतों का द्वेषभाजन बनना पड़ा। मोरोपन्तपिंगले पेशवाके सम्मुख समस्त राज्यके लिये उत्तरदायी थे, और कई बार उन्होंने अण्णाजीके विरुद्ध निर्णय किया था। बहुधा शिवाजी भी उसे ही मान्य रखते। इस कारण अण्णाजी मोरोपन्तसे द्वेष करने लगे, और इन दोनोंमें मनोमालिन्य हो गया। शिवाजीके अभिषेकके समय मोरोपन्तके विरोध करनेके कारण अण्णाजीको स्पष्ट रूपसे बदला लेनेका अवसर हाथ लगा। अण्णाजीको राज्य की भीतरी-व्यवस्थामें हस्तक्षेप करना पड़ता था, जिससे कुछ लोगोंकी हानि होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जितना ही अण्णाजी धाक जमानेका प्रयत्न करते थे उतने ही छोटे छोटे अधिकारी तथा प्रजा गण उनके विरुद्ध होते जाते थे।

हिन्दुओंमें उत्तराधिकारी का प्रश्न ही सब अनर्थों की जड़ रहा है और इसीसे अनेक भयंकर कलहोंका बीजारोपण होता रहता है। इसमें सन्देह नहीं कि जब समय उत्तम रहता है और उन्नतिके पथपर अग्रसर होते रहते हैं उस समय यह प्रश्न दबा रह जाता है किन्तु तनिक भी ढील पड़ी कि यह प्रश्न फिरसे उठ आता है। सर्वगुणसम्पन्ना तथा नम्र सई बाईकी मृत्युके पश्चात् राजारामके जन्मके कारण जो गृह-कलह उत्पन्न हुआ था वह जीजाबाईके कठोर शासनमें पूर्णरूपसे दब चुका था, किन्तु शिवाजीके राज्याभिषेक तथा सम्भाजीके युवराज बनानेके समय इसका फिरसे प्रादुर्भाव हुआ। जीजाबाईकी मृत्युके पश्चात् तो शिवाजीके घरानेमें पूरी उच्छृङ्खलता फैल गई। अण्णाजी स्वभावतः उच्चाभिलाषी तथा बुद्धिमान् था, किन्तु न तो वह वीर ही था न युद्ध-कार्यमें कुशल ही। इस कारण सदा षड्यन्त्र रचनेका प्रयत्न किया करता था। शिवाजीके सदा साथ रहने के कारण तथा रायगढ़में भी बहुत रह चुकनेसे इन सब बातों से यह पूर्ण परिचित था। सोयराबाई का पक्ष उस समय बलवान होनेके कारण उसने उसीका पक्ष लिया और उस पर अपना प्रभुत्व जमा दिया। संभाजीके विरुद्ध षड्यन्त्र रच कर उसे नालायक साबित करनेके लिये सोयराबाईको अण्णाजी बहुत उपयुक्त जान पड़ा। अतः उसने भी इसका पूरा पूरा स्वागत किया। शिवाजीके कर्नाटककी ओर प्रस्थान करने पर इस गुप्त षड्यन्त्रने खूब जोर पकड़ा और अन्तमें सम्भाजी को स्त्रीके साथ रायगढ़ छोड़कर जाना ही पड़ा। शिवाजी ने लौटकर जब यह सब सुना तो सम्भाजीको बुलानेका प्रयत्न करने लगे। इस प्रतिदिन बढ़ते हुए गृह-कलहको दूर करने तथा हिन्दु-राज्यकी नींव भलीभाँति जमानेकी चिन्तामें जब शिवाजी मग्न हो रहे थे तो उसी समय उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। शिवाजीका मरणकाल जान कर सम्भाजी की ओरसे भी गुप्त योजनाएँ की जाने लगीं। इस समय मोरोपन्त पिंगले इत्यादि अनुभवी तथा योग्य पुरुषोंको शिवाजीने बुला भेजा। बालाजी भी इस समय वहीं पर था इस समय ये लोग हिन्दुराज्य की आने वाली अधोगतिको सोच सोचकर इतने व्यग्र हो रहे थे कि ये क्षुद्रबुद्धि तथा सौतिया डाह से प्रेरित सोयराबाई तथा स्वलाभदत्त-चित्त अण्णाजीकी स्वार्थ परायणताको भलीभाँति न समझ सके। अतः उन स्वामिभक्त प्रधान मण्डली तथा मंत्रियों के लिये इन दोनोंके विरुद्ध आवाज़ उठाना असम्भव था। इधर अण्णाजी इस बातका पूरा प्रयत्न करता रहा कि सम्भाजीको शिवाजीकी बढ़ती हुई अस्वस्थताका पता न लगे। उसने यहाँ तक व्यवस्था कर रक्खी थी कि शिवाजीकी मृत्युका भी संवाद उस समय तक सम्भाजीको न मिलने पावे जब तक वह उसी अवस्थामें क़ैद न कर लिया जाय। शिवाजीकी मृत्युके १८ दिन पश्चात् २१ अप्रैल सन् १६८० ई० को अण्णाजी ने सब अधिकार अपने हाथमें लेकर नौ दस वर्षके बालक राजारामका 'मंचकारोहण' कराया और मोरोपन्तसे सन्धि करके सम्भाजी को क़ैद करने लिये रायगढ़से वह रवाना हुआ। अण्णाजीके इस उद्धतआचरणसे मोरोपन्तका अपने भविष्य जीवनकी भी शंका होने लगी और भीतर ही भीतर दोनोंमें मनोमालिन्य और भी बढ़ गया। बालाजीके इनकार करने पर उसके पुत्रसे पत्र लिखवा कर जनार्दन पन्त और हम्बीर रावको भी वह भेज चुका था। यदि वास्तवमें देखा जाय तो हम्बीरराव का राज्यमें जो पद तथा प्रभाव था उस पर ध्यान रखते हुए अण्णाजीको बिना उसकी सम्मतिके कोई कार्य करना उचित न था। किन्तु अण्णाजी का यह भी निश्चय था कि हम्बीर

राव दुष्टप्रकृति वाली सोयरा बाईका कभी भी साथ न देगा। अतः बिना उसकी सम्मतिके फेर में पड़े हुए ही सोयरा बाईकी सहायतासे तथा अपनी बुद्धि तथा बल पर आवश्यकतासे अधिक भरोसा करके राजाराम रूपी कठपुतलीको आगे करके राज्यसूत्रको अपने हाथमें ही रखनेकी महत्व-कांक्षा अरणाजीने धारण की। फल यह हुआ कि सब मन्त्री तथा प्रधान इसको शंकाकी दृष्टिसे देखने लगे। मोरोपंत और जनार्दन पंत तो पहले ही से उसके विरुद्ध थे। अब हम्बीरराव भी अरणाजीके आचरणको अपमानकारक समझकर क्रुद्ध हुए। सेना तथा प्रजा हम्बीर रावका साथ देनेको तय्यार थी। ऐसी दशामें जनार्दन पंत तत्काल ही अरणाजीके विरुद्ध संभाजीसे जा मिला। हम्बीर रावने भी समाजके तथा अन्य बड़े बड़े लोगोंसे पत्र-व्यवहार करके अरणाजी मोरो पंत और प्रल्हाद पंतको कराड़के मार्गसे जाकर रास्तेमें गिरफ्तार कर लिया और संभाजीके पास ले गया। अनन्तर हम्बीर राव ने समस्त सेना एकत्र करके संभाजीको राज्य दिलाया। जून महीने में संभाजी रायगढ़ आया और राजा बन बैठा। उसने सोयराबाईको प्राण दंड दिया और राजारामको कैद कर लिया। इस प्रकार अरणाजीका षड्यंत्र विफल हुआ। चार या पांच महीने बाद अर्थात् सितंबर मासमें संभाजी ने अरणाजीको कैदसे मुक्त कर दिया और उसे मजमूहीके उच्च पद पर नियुक्त कर दिया। अरणाजी ने अपने किए हुए पापके लिये पश्चात्ताप करना छोड़ दिया और वह संभाजी द्वारा किए हुए अपने अपमानका बदला लेने पर उतारू हुआ। औरंगजेबका पुत्र अकबर जिस समय संभाजीके पास शरण माँगने के लिये आया; उस समय अरणाजी ने शिरके लोगोंको उभाड़कर उसके साथ संभाजीके विरुद्ध षड्यंत्र रचना चाहा। अकबर ने डरके मारे संभाजीसे षड्यंत्रका सब हाल कह सुनायो। उसे सुनकर संभाजी अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, और सम्पूर्ण शिरके वंशका नाश करा डाला। अरणाजी और दूसरे षड्यंत्रकारियोंको पटलीके निचे कैद करके हाथीके पैरोंके तले रौंदनेका दंड दिया। इस प्रकार इस पुरुषका अगस्त सन् १६८१ में अन्त हुआ। किन्तु उसके षडयंत्रोंका दुष्परिणाम उसके पीछे मराठों और महाराष्ट्र देशको सदाके लिये भुगतना पड़ा।

कहनेका तात्पर्य यह है कि शिवाजी के समय जो धार्मिक जागृति हुई थी, वह स्वराज्य प्रेम या राष्ट्रीय भावनासे दस गुनीसे भी अधिक थी। औरंगज़ेब की दक्षिणकी चढ़ाईके बाद अर्थात् शिवाजीके समयमें हिन्दू मुसलमानोंमें अधिक वैमनस्य उत्पन्न हो चुका था। जिस प्रकार अंग्रेज़ों के आधीन बड़े बड़े ओहदों पर रहनेमें अब भी लोग संतोष मानते हैं; उसी प्रकार उस समय भी मुसलमानोंके आधीन किसी पदपर रहनेमें लोगों को बड़े गौरवका अनुभव होता था। जिस समय सेवा-धर्म ही सर्व-प्रधान कर्त्तव्य समझा जाने लगे उस समय अपने धर्मके लिये स्वार्थत्याग करना तथा अपने देशके लिये प्राणोंको निछावर करना संभव नहीं होता। अष्टप्रधानोंके लम्बे लम्बे वेतन और अनुचित ऊपरी आमदनीका ध्यान करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय योग्य से योग्य मनुष्य भी धनकी सहयतासे कठ-पुतली की भांति नचाये जा सकते थे। औरंगजेब सा शत्रु हिन्दू राज्योंको धूलमें मिलानेके लिये उद्यत देखते हुए भी शूर संभाजीके विरुद्ध षडयंत्र रच कर तथा राजाराम रूपी कठपुतलीको लोगोंके सामने रखकर शासनाधिकार अपने हाथोंमें लेने की इच्छा करने वाले अरणाजी का आचरण केवल आश्चर्य्यजनक ही नहीं, बल्कि घृणित भी है। शिवाजीके आधीन काम किये हुए अनुभवी और कार्य्य-दक्ष समझे जाने वाले अरणाजी भी अपनी नीच करतूतोंको जाहिर हो जाना देखकर भी उनके लिये खेद और पश्चात्ताप न प्रकट कर सके, उलटे राज्य-नाश करनेके लिये ही कटि-बद्ध हुए। इस कारण प्रत्येक मनुष्य अरणाजी को तिरस्कार की दृष्टिसे ही देखेगा। लेकिन उस समयकी यही दशा थी कि नेता स्वार्थ तथा स्वामि-भक्तिको छोड़कर और कोई तीसरी बात जानते ही न थे। इन सबका यह फल हुआ कि अरणाजो वाले षड्यंत्रमें फँसे हुए प्रधानों परसे संभाजी का विश्वास उठ गया। उनमेंसे कितनेही मार डाले गये और जो बचे उनका भी नाम-निशान न रहा। इस प्रकार महाराष्ट्र देशकी सारी योग्यता तथा कार्य पटुता इस जीवन मरण के समय नष्ट हो गई और संभाजी ऐसे वीरके लिये भी अच्छे तथा अनुभवी राजनीतिज्ञोंके अभावमें स्वधर्म तथा राज्यकी रक्षा करना असंभव सा होगया। चारो ओर मनोमालिन्य ही दिखलाई देता था। शिवाजी तथा उनके वीर अनुयायियोंने अपने रक्त की नदियाँ बहा कर, दिनरात अदम्य उत्साह तथा कठोर परिश्रम से जो राज्य स्थापित किया था वह अरणाजी की स्वार्थप्रियता और हठवादिताके

कारण मराठोंके हाथसे निकलने लगा। परन्तु औरंगज़ेबके अत्याचारोंके कारण नवयुवकों का रक्त खौलने लगा था और उनमें देशप्रेम और धर्म-रक्षाके अंकुर जमने लगे थे। वे पर-धर्मानुयायियों को घृणा की दृष्टिसे देखने लगे और उनमें पूर्ण-जागृति हो चुकी थी। मराठों का गौरव जीवित रखनेके लिये आगे के २५ वर्ष तक निरन्तर कठिन परिश्रम करना पड़ा।

अरणीगिरी—यह बंबईके इलाकेमें धारवाड़ जिले में है। धारवाड़-गदग मार्गपर नवलगुंदके दक्षिण पूर्वमें लगभग १०मीलपर है। उत्तर अक्षांश १५° २२' तथा पूर्व देशान्तर ७५°२६' पर स्थित सात हज़ार जनसंख्याका यह एक गाँव है। यहां अमृतेश्वरकाएक मंदिर है। कहते हैं कि इसे जखना चार्यने बसाया था। मंदिर की दीवालोंपर पौराणिक चित्र खुदे हुए हैं। मंदिरमें ११५७ से १२०८ ई०के बीचके कालके ६ शिला लेख मिले हैं। दूसरे मंदिरोंमें भी शिला-लेख मिलते हैं।

११६१ ई०में कलचुरीके राजा विज्जलदेवने पश्चिमी चालुक्योंको पराजित करके अरणीगिरीको अपनी राजधानी बनाया। विज्जलके पुत्र सोमेश्वर (११६७—११७५ ई०) के समयके शिला लेख मिले हैं। उनसे पता लगता है कि ११७५ ई० तक यह राजधानी थी। ११८४ ई० में पश्चिम चालुक्यों के राजा सोमेश्वर चतुर्थने कल्याणके जैन और लिंगायतोंके झगड़ेसे लाभ उठाकर चालुक्य राज्य फिरसे स्थापित करने का प्रयत्न किया था। एक शिलालेखसे पता चलता है कि ११८९ ई०में देवगिरीके तीसरे राजा यादवभिल्लम (सन् ११८७-११९१) मांडलिक महामंडलेश्वर बाचिराजकी राजधानी अरिणगिरी थी। एक शिला लेखसे पता चलता है कि बाचिराजाके बाद शीघ्रही वीर बल्लाल नामक होयसल राजा (सन् ११९२ से १२११ ई० तक) की भी यही राजधानी थी।

(फ्लीटका "कनाड़ी राजघरानेपर ग्रंथ")

१८०० ई० में जब प्रसिद्ध धोंड्या बाघ डंबलसे भागा था उस समय वह अरिणगिरीमें ठहराथा। अरिणगिरी, धारवाड़ तथा हुबलीमें अक्तूबर १८०० ई० में वेलिज़लीने खेमे तयार करवाये। (सप्लीमेंटरी डिस्पैचेस-भाग २) ब्रिटिश शासनके आरंभ होनेके समय अरिणगिरी निपाणी राज्यकी जागीरमें शामिल था। १८२७ ई० में यहाँ ४५० घर, १४ दुकाने तथा कुछ कूए थे। १८३९ ई० में कोई वारिस न रह जानेके कारण कानूनके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने इस जागीर को अपने राज्यमें मिला लिया। हुबली तथा धारवाड़ के समान यह गाँव पहले कपड़े की तिजारतके लिये प्रसिद्ध था।

(धारवाड़ गजेटियर-इम्पीरियल गजेटियर)

अतर—(इत्र अथवा सुगन्धित पदार्थ) जिस भाँति मनुष्य भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा शब्द, स्पर्श रूप, रस का अनुभव करके प्रसन्न होता है उसी भाँति घ्राणेन्द्रिय-प्रिय इत्र अथवा अन्य सुगन्धित पदार्थ का भी उपयोग मनुष्यजातिके इतिहासमें बहुत प्राचीन है। पुष्प, काष्ठ,पत्ती, कस्तूरीसे अतर अर्क तेल इत्यादि अनेक सुगन्धित पदार्थ तय्यार होते हैं। सुगन्धिसे मनुष्य का चित्त प्रसन्न तथा आल्हादित रहता है। प्राचीन कालके सभ्य राज्यों तथा देशों में इसका उपयोग बहुत होता था। मिश्र अरब,असीरिया,इरान, इटली, यूनान आदि देशोंमें इसकी प्रथा बहुत प्रचलित थी। इसी कारण यह कला बहुत पूर्व कालहीमें पूर्णत्वको प्राप्त हो चुकी है। भारतवर्ष भी इस कलामें अत्यन्त प्रवीण था। इसका मुख्य कारण यह भी है कि यहां पुष्प इत्यादि बहुत अधिक उत्पन्न होते हैं। अतर अथवा सुगन्धित पदार्थ केवल शौकीन अथवा विलासी पुरूष ही व्यवहारमें लाते हों यह बात नहीं है। यह धार्मिक कृत्यों तथा देवपूजन इत्यादिमें काममें लाया जाता है। देव-प्रतिमाओं अथवा समाधियों इत्यादि पर फूल चढ़ाने की, तथा सुगन्धित तेल मर्दन कर स्नान करानेकी प्रथा बड़ी प्राचीन है। मिश्रदेशमें मृतकके शवमें इत्र पोतनेकी प्रथा थी। यूनान और रोममें तो इतना अधिक प्रचार बढ़ गया था कि इसके पीछे बहुत धन नष्ट होने लगा था। इसी कारण समय समय पर इसके विरूद्ध नियम बनाये जाते थे। इसी भाँति चन्दन, ऊद, अबीर इत्यादि सुगन्धियोंकी धूनी देकर गृह शुद्ध करने की प्रथा है।

उपरोक्त पदार्थोंके अतिरिक्त रासायनिक पदार्थों के मेलसे भी अतर बनाया जाता हैं। उसे रासायनिक सुगन्ध कह सकते हैं।

इत्र तथा अर्क बनाने की रीतियां भिन्न भिन्न हैं। सबका विस्तार देना तो इस छोटेसे लेखमें असम्भव है। जबसे जर्मनी इत्यादि विदेशोंसे अर्क (Essence सत) आने लगे हैं भारतवर्षमें इत्रका कारबार बहुत ठण्डा पड़ गया है। ये बहुत सस्ते पड़ते हैं और इनके मेलसे सुगन्धित तेल इत्यादि बड़ी सुगमतासेत य्यार हो जाते हैं। अब तो भारतसे इस सम्बन्ध का कच्चा माल भी बाहर भेजा जाता है जो इत्र और अर्कके रूपमें आकर लाखों रूपये का बिक जाता है। १९१४, १९१५ ई० में यहाँ

से ६७२५ टन अर्थात् ४ लाख रुपयोंका कच्चा माल विदेश भेजा गया था।

देहली, लाहौर, अमृतसर, लखनऊ, जौनपुर कन्नौजमें इत्रका अब भी बहुत व्यापार होता है। कच्चा माल बम्बईसे बाहरके देशोंमें भेजा जाता हैं। निम्न-लिखित पदार्थोंसे बहुधा इत्र अथवा सुगन्धित तेल तय्यार किया जाता है। बेलाके फूल, धूप, शिला-रस. कुलञ्जन, इलायची, अगरू, मूगफली, दालचीनी, संतरे का फूल अथवा छिलका. खटुआ, जूही, चमेली, जई का फूल; सोनचम्पा, केवड़ा कस्तूरी, जटामासी, पानड़ी, गुलाब, चन्दन, खस, लोबान, नागरमोथा, दौना, मरवा, मौलसरी इत्यादि।

यदि केवल कच्चा माल ही देशसे जाता तो भी उतना नुकसान न होता किन्तु वही फिर इत्र तथा सतोंके रूपमें आकर बिकता है जिससे बड़ी हानि होती है। इन्हीं विदेशी इत्रोंके कारण कन्नौज इत्यादिके बहुतसे कारखाने बन्द होते जा रहे हैं। क्योंकि इन्हीं तीव्र सतों (Concentrated essence) से सुगन्धित तेल बनाने की प्रथा बहुत बढ़ गई है क्योंकि इसमें सरलता बहुत होती है और व्ययभी कम पड़ता है। यद्यपि ये मिश्रण नियम पूर्वक बनाये हुए असली तेलके मुकाबलेमें कुछभी लाभ-कारी नहीं होते, न उनकी सुगन्ध ही स्थायी होती है तौभी खपत उन्हीं सतोंद्वारा बनाये हुए तेलोंकी ही बहुत अधिक होती है। जर्मनसे, जिस समय युरोपीय महासमर आरम्भ हुआ था, उस समय इन विलयती सतों का आना बन्द होगया था जिस से एक बेर कन्नौज इत्यादिके कारखाने फिरसे चालू होगये हैं। कन्नौज, जौनपुर तथा गाजीपुर अपने सुगन्धित तेल तथा अतरके लिये सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध हैं। देशी रीतियाँ तेल बनाने की बड़ी ही सुगम है किन्तु भद्दी होनेके कारण विदेशी मालोंके सामने नष्टप्राय होती जारही हैं।

कृति नं०१—सफेद तिल भली भाँति धोकर सुखा लेना चाहिये। थोड़ी पिची का हाथ लगाकर जिस वस्तुका तेल निकालना हो उसकी एक परत बिछाकर उसपर एक परत तिल बिछा देना चाहिये। इसी भाँति एक परत तिल और एक परत मुख्य वस्तु की देते रहना चाहिये। फिर उसको ढककर १२ से १८ घण्टे तक रखदेना चाहिये। तदनन्तर कोल्हूसे तेल निकाल लेना चाहिये।

कृति नं०२—अतर बनाने वाले गन्धी एक बड़े हण्डेमें पानी भर कर उसमें फूल भरते हैं। उसके नीचे भट्टी जलाकर उसकी भाप उर्ध्व नलिका-यन्त्रसे बाहर दूसरे बर्तनमें एकत्रित करते हैं। वह फिर पानी हो जाता हैं और उसके ऊपर तेल सा पदार्थ तैरने लगता है। उसी को युक्तिसे एकत्रित किया जाता है। वही उत्तम अतर कहलाता है।

कृति नं०३—जिन फूलों का इत्र बनाना हो उनको बोतलमें भर कर तिल्ली का तेल इतना छोड़े कि फूल डूबजावे। उसमें इतना कसा काग लगाना चाहिये कि हवा भीतर प्रवेश न करसके। उसको महीना सवा महीना धूपमें रखना चाहिये। तद-नन्तर उसमें नये फूल डालना चाहिये और पुराने निकाल कर फेंक देना चाहिये। इसी क्रियाको चार-पाँच बार करनेसे इत्र तयार हो जाता है।

गुलाब जल—गुलाबके फूल और पानी एकमें मिला कर एक मटकेमें भर देना चाहिये। उस पर एक छोटा सा मटका औंधा करके गीली मट्टी से दोनोंका मुंह बन्द कर देना चाहिये। उस मटकेमें छेद करके एक उर्ध्वनलिका उसमें इस भाँति लगा देनी चाहिये कि भाप बाहर बिल्कुल न निकल सके। अर्थात् उस छेद पर गीली मट्टी पोत देनी चाहिये। नलीका मध्यभाग या तो शीतल जलमें डूबा रहना चाहिये या खूब गीला कपड़ा उस पर लपेटा रहना चाहिये। तब नलीके मुंह पर कोई बर्तन रख कर उस मटकेके नीचे आग सुलगा देनी चाहिये। अन्दरके जलकी भाप जब ठण्डके सहवाससे फिर पानी होकर दूसरे बर्तनमें एकत्रित होगी तो वह अत्यन्त सुगंधियुक्त गुलाब जल हो जावेगा।

कृति नं० २—ओटो डी रोज -॥- ड्राम, मग्नेशिया १ औंस, स्रवितजल १(Distilled Water) -॥- गैलन। पहले ओटो डी रोज और मग्नेशियाको मिला लेना चाहिये। तदनन्तर पानीमें उसे घोल कर ब्लाटिङ्ग-पेपर (सोख्ते) से उसे छान कर व्यवहारमें लाना चाहिये।

अर्क संतरा—(ऑरेञ्ज वाटर) निरोली तेल ३० बूंद और २ ड्राम मग्नेशिया तीन पाव स्रवित जलमें डाल कर छान लेना चाहिये।

कोलन वाटर बनानेकी कृति—निरोलीके तेलकी २५ बूंद, एसन्स आफ सिदरेट २५ बूंद, एसंस आफ लेमन २५ बूंद, एसन्स आफ वर्गमोर २५ बूंद, एसन्स आफ रोजवेरी ½ औंस, एसन्स आफ पुर्तगाल निरोली ½ औंस पदार्थोंको एक गैलन अल्कहलमें भली भाँति मिला कर एक बोतलमें मिला कर आठ दिन रखना चाहिये।

लेवेण्डर वाटर बनानेकी कृति—उत्तम लेवेण्डर तेल २ ड्राम, लौंगका तेल ½ ड्राम, कस्तूरी २॥ ग्रेन,

स्पिरिट आफ वाइन २॥ औंस और स्रवित जल १ औंस। इन सबको आठ दिन एक बोतलमें भर कर रख देनेके बाद व्यवहारमें लावे।

धूपबत्ती बनानेकी कृति नं० १—नरवला ४॥ छटांक, गटाना २॥ छटांक, गुलाब कली १/४ छटांक, पत्थर फूल २। छटांक, ऊदका फूल १/४ छटांक, शिलारस १/४ छटांक, शहद १/४ छटांक, खस १/२ छटांक, ब्राह्मी २॥ छटांक, टोपचीनी २॥ छटांक, जटामासी ४॥, छटांक, पानड़ी २॥ छटांक। उपरोक्त पदार्थों को बारीक पीस कर कपड़ छान कर शहतमें मिला कर काले रंगके लिये कोयलेकी बुकनी मिला कर बांसकी सींकोंमें लगा कर सुखाना चाहिये।

कृति नं० २—मालावारी चन्दन १/४ छटांक, कृष्ण अगरू १/४ छटांक, चींड ४॥ छटांक, नखला ५ तोला, कौड़िया ऊद ५ तोला, अम्बर ३/४ तोला, चोपचीनी ३ तोला, गहुला १ तोला, ब्राह्मी १ तोला चीनी,२॥ तोला, अगरू ५॥ तोला, कस्तूरी १/४ तोला, इनको पीस छान कर नौ तोले शहदमें घोट कर बांसकी सींकमें लगाकर सुखा लेना चाहिये।

कृति नं० ३—गोंदके पानीमें बुका मिला कर गाढ़ा वरक बनाना चाहिये और उसे सींक पर लगाकर सुखा कर चिकनी करनी चाहिये।

उत्तम बत्तियाँ बनानी हो तो उस पर इत्र का हाथ फेर कर छांहमें सुखाना चाहिये।

कृति नं० ४—नागरमोथा ४ तोला, कृष्णअगरू ४ तोला, खस २ तोला, दालचीनी ४ तोला, तगर २ तोला, कचोरा २ तोला, बुरादा चन्दन १८ तोला, पत्थर फूल २ तोला, गहाला ६ तोला, गुलाबकली २ तोला, मैदान कड़ी ६ तोला, कस्तूरी १/४ तोला। इन सब पदार्थोंमें कस्तूरी तथा सिलारसको छोड़ कर सबको पीस कर कपड़छान करके काला बनानेके लिये कोयलेकी बुकनी तथा कस्तूरी और शिलारस मिला कर बनाना चाहिये। इसके लिये गोलसे अच्छी चौखूंटी सींक होती है। क्योंकि गोल आकार पर पदार्थ उतनी अच्छी तरह नहीं चिपकते जितने चौरस पर चिपकते हैं। हाथमें कोयलेकी बुकनी लगाते रहना चाहिये जिससे वे पदार्थ हाथमें न चिपकें।

अगर-बत्ती बनानेकी कृति—कस्तूरी एक रत्ती, अम्बर दो रत्ती, चन्दन एक तोला, केसर १ तोला तगर २ तोला, कंकोल १/२ तोला, लौंगफूल १/२ तोला गवल १ तोला, अगरू २ तोला, ऊद १/२ तोला, शिलारस २ तोला, इलायची १ तोला, जायफल १/२ तोला, कोष्ठ कुलिञ्जन १/२ तोला इत्यादि घोटकर अगरबत्ती बनती है।

केसरकी गोली बनानेकी कृति—उत्तम केसर लाकर धूपमें सुखा कर उसे बारीक कूट लेना चाहिये। जब यह बुकनी हो जाये तो उसमें थोड़ा सा गुलाबजल डाल कर हाथमें कोई सुगन्धित इत्र इत्यादि लगा कर लम्बी लम्बी गोली बना लेना चाहिये।

अष्टगन्ध—केसर, कस्तूरी, कपूर, गोरोचन, देवदार, कृष्णागरू, सफेद चन्दन और नागरमोथा अष्टगन्ध कहे जाते हैं।

कृत्रिम कस्तूरी बनाना—एक ड्राम अम्बर तेल लेकर उसमें उससे चौगुना नमाम्ल (Nitric Acid) धीरे धीरे डालना चाहिये तदनन्तर काँच के चम्मचसे वह मिश्रणकर उस समय तक हिलाते रहना चाहिये जब तक यह पीला न हो जावे। इस क्रियासे उसमें असली कस्तूरीके समान सुगन्ध आने लगेगी। तदनन्तर उसमें १५ ग्रेन कस्तूरी मिलाना चाहिये।

अगरजा बनानेकी विधि—नागरमोथा, गवला, जटामांसी, तज तथा खसका दो दो भाग पत्थर फूल, कृष्णागरू, जावित्री, लौंग, इलायची, चंदन, जायफल, कपूर कचरी और बचका एक एक भाग, आधा भाग केसर और मोतिया, गुलाब तथा चन्दनका इत्र १/२ भाग लेना चाहिये। केसर, कस्तूरी तथा इत्रोंको छोड़ कर सबका कपड़छान करना चाहिये। इसके बाद केसर, कस्तूरी पीस कर उसमें मिला देनी चाहिये। तब उसमें इत्रकी पुट देनेसे अरगजा तयार हो जाता है।

शरीरमें लगानेका उत्तम उबटन—बारीक दालचीनी इलायची, नागरमोथा, जावित्री, कचोरा, खस और कपूरको पानीमें पीस कर लगानेसे शरीरमें उत्तम सुगन्ध आने लगती है।

दशांगकी गोलियाँ—हवाको सुगन्धित करने के लिये सुगन्धित पदार्थकी गोलियां बनाकर उसे जलाते हैं। इसके बनानेकी विधि इस भाँति है। उत्तम चन्दन ८ भाग, गुगुल ८ भाग, बाल तम्बोल २ भाग, धूप ४ भाग, कृष्णागरू ८ भाग, देवदार २ भाग, जायफल १/२ भाग, कोल कुलञ्जन २ भाग, कपूर १/४ भाग, खस ३ भाग। उपरोक्त चीजें लेकर उनका कपड़छान करके घी में उनकी गोली बना लेना चाहिये।

• उपरोक्त कृतियोंसे तेल और सुगन्धित इत्र इत्यादि बनाये जाते हैं। किन्तु आधुनिक रासा-

यनिक क्रियाओंके आगे इनकी अब बिलकुल पूछ होती ही नहीं। रासायनिक रीतिसे किसी भी पदार्थका सुगन्धित सत (Essence) अलग निकाला जा सकता है। इन्हींका प्रयोग अब दिन दिन बढ़ता जा रहा है। गन्धी लोग भी अब भिन्न भिन्न सुगन्धित द्रव्य बनानेमें पुरानी रीतियों को छोड़ कर इन्हीं सतोंका प्रयोग करने लगे हैं, और इन्हीं अर्कों और सतोंकी मांग भी दिन दिन बढ़ती जा रही है। जर्मनीसे हेको (Heiko) नामका अर्क (Essence) आता है। उसे सादे तिल्ली या नारियलके तेलोंमें मिला कर सुगन्धित बना लेते हैं। रङ्गहीन मट्टीके तेलका (White oil) आज कल इन्हीं सुगन्धित द्रव्योंको मिला कर बहुत प्रयोग हो रहा है। इसमें खर्चा कम और आसानी बहुत होती है। अतः इसका व्यापार करने वाले बहुत लाभ उठा सकते हैं। जो भेद कृत्रिम नील तथा स्वाभाविक नीलमें होता है वही भेद इन कृत्रिम रासायनिक विदेशी इत्रों, सतों तथा अर्कोंमें और स्वाभाविक रीतिसे तय्यार किये हुए तेल तथा इत्रमें है। जो स्थायी तथा लाभकारी सुगन्ध इन स्वाभाविक फूलोंके इत्र तथा तेलमें होती है वह इन कृत्रिम सुगन्धियोंमें नहीं होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक भी रसायनशास्त्रवेत्ताओंको फूलोंके पूर्ण सूक्ष्म पदार्थोंका पता नहीं लग सका है, इस कारण उनकी क्रिया पूर्तिको नहीं पहुँची है। (वाङ्मय सूचि 'आध' और आम देखिये)।

अतरसुवाँउपविभाग—इसके उत्तरमें देहगाँव का ताल्लुका, पूर्व तथा दक्षिणमें खेड़ा ताल्लुकेका कुछ भाग तथा पश्चिममें भी देह गाँवका उपविभाग है। इसके बहुतसे विभाग तथा गाँव ब्रिटिशराज्य सीमान्तर्गत है।

यह प्रदेश पहाड़ी तथा जङ्गली होनेके कारण बड़ा रमणीक है। १८७६-८० में वर्षाका मान लगभग २५-६० इंच था। वात्रक, मागम, धम्मी, वाराणसी तथा मोहर नदियाँ इस प्रदेशमें से होकर बहती हैं। इसके पीछे की ओरकी भूमि रेतीली है, तथा किसी किसी स्थानमें काली मिट्टी दिखाई देती है। यहाँ पर अधिकतर कोल जाति के लोग रहते हैं। १६११ ई० में यहाँ की जनसंख्या लगभग २०२२२ थी।

अतरसुवाँ गाँव—यह बड़ौदाके अतर-सुवां 'सब-डिविजन' का मुख्य स्थान है (व० इ०)। इसकी जनसंख्या तीन हज़ार है। यहाँ पर एक डाकखाना, गुजराती पाठशाला तथा एक टूटा हुआ क़िला है। यहाँ के लोग लोहेका काम करते हैं। यहाँ के लोग छूरियाँ बनानेके लिये प्रसिद्ध हैं। (व०ग०)

अतारी—यह गाँव (३०°२६' उत्तर अक्षांश ७२°१' पूर्व देशान्तर) पंजाब प्रान्तमें मुलतान जिलेमें कबीर वाला तहसीलमें है। सिकन्दरने जब भारत पर आक्रमण किया था उसकी तीसरी जीत इसी स्थान पर हुई थी। कनिंगहमका मत है की यही ब्राह्मणाबाद होगा। यह गाँव किसी महत्वका नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले यह क़िला अभेद्य रहा होगा। यह क़िला ७५० वर्ग फीट का है तथा ३५ फीट ऊँचा है। इसके दोनों ओर प्राचीन शहरके खंडहर हैं। किसीको भी इन खंडहरोंका इतिहास मालूम नहीं है। इसके समीपका गांव बिलकुल आधुनिक है। (इं० ग०)

अतिकाय—यह रावणके धान्य मालिनी नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम है। यह अत्यन्त स्थूल शरीरका था। इसलिये इसका यह नाम पड़ा था। इसने ब्रह्मदेवकी आराधना की थी। ब्रह्मदेवने प्रसन्न होकर इसे, अस्त्र, कवच, दिव्य रथ दिया था। उसे यह बरदान भी मिला था कि वह देवता या राक्षसों द्वारा न मारा जा सकेगा। इस कारण इन्द्रको पराजित किया तथा वरुणको जीत कर बाँध लिया। रावणको इससे बहुत मदद मिली थी। कुम्भकर्णकी मृत्यु के बाद यह युद्ध करनेके लिये रामचन्द्रजीके सामने आया। लक्ष्मणजीने इसे घोर युद्ध करके मार डाला। (वा० रा० युद्ध स० ७१)

अति परमाणु विद्युत्कण—(१) निरवयव विद्युतमलमान अथवा विद्युत् परमाणुकी कल्पना—मॅक्सवेल (Maxwell) ने विद्युत् विश्लेषण (Electrolysis) की सहायतासे पता लगाया था कि पदार्थके प्रत्येक परमाणु पर विद्युत्भार एक सा होता है, किन्तु आगे चलकर १८८३ ई० में उसे इस विषयमें स्वयं ही सन्देह होने लगा और इसके विरुद्ध विधान करने लगा। किन्तु उसके बाद होने वाले विज्ञानवेत्ताओंने पूर्णतया परीक्षा करके उपरोक्त कथन सत्य सिद्ध कर दिखाया।

परमाणुका पूरा विद्युत्भार विद्युत् मूलमानही (Unit) है। इसके आधार पूर्ण हो सकते हैं किन्तु भिन्नात्मक (fractional) होना सम्भव नहीं। आज कल जो स्थिर-विद्युत् मूलमान (Unit) व्यवहारमें आते हैं, उनकी अपेक्षा ये बहुत सूक्ष्म हैं।

डा० जानसन स्टोनी ने विद्युतभारवाही परमाणुको 'विद्युत्कणवाही परमाणु' की नाम संज्ञा दी है और विद्युत्कणको 'द्रव्य रहित विद्युत्भार' माना है। ये ही नाम अब भी चालू हैं। ये विद्युत्कण परमाणुओंसे बिल्कुल सटे हुए रहते हैं। अतः विद्युत्विश्लेषणके समय विभिन्न विद्युन्मार्गसे टकरानेके कारण नष्ट हो जाते हैं। विद्युत्भारके कारण ही परमाणु विद्युन्मार्गकी ओर अग्रसर होते है अथवा यों भी कह सकते हैं कि विद्युत्भार परमाणुके साथ जाता है। विद्युत्विश्लेषणके समय विद्युन्मार्ग के कारण विद्युत्भारका नाश हो जाता है और केवल द्रव्य परमाणु ही रह जाता है। यह भार एक परमाणु एक गुना दो पर दुगना इसी भाँति बढ़ता जाता है। इससे यह विदित होता है परमाणुके साथ इसका सम्बन्ध निश्चित् ही होता है। अतः इस परमाणुके विद्युन्मानको विद्युत्परमाणु कहनेमें कोई भी आपत्ति नहीं रह जाती।

(२) अति परमाणु विद्युत्कणोंकी कल्पना—(अ) वातरहित नलीके भीतरका दृश्य—यदि विद्युत् मण्डलमें एक वात-रहित नली छोड़ दी जाय और एक मामूली छोड़ी जाय तो विद्युत्प्रवाह उस खुली जगहसे न जाकर उस बातरहित नलीसे जाना ही पसन्द करेगें। जब वात रहित नलीसे विद्युत्प्रवाह गुज़रता है तो उस नलीमें चमकता हुआ प्रकाश दिखाई देता है। ज्यों ज्यों उस वात रहित प्रदेशका विस्तार बढ़ाया जाय वैसे ही वैसे इस चमकते हुए प्रकाश रङ्गमें भी भेद होता जाता है। अन्तमें उस नलीके सिरे पर एक पूरा पट्टा दिखाई देता है। यदि वात रहित प्रदेश बहुत अधिक बढ़ाया जाय तो उस पूरे पट्टेके बदले विभिन्न टुकड़े टुकड़े देख पड़ेगें, और ऋण (Negative) ध्रुवके समीप एक काला भाग देख पड़ेगा। इसके पूर्व कि यह काला भाग नलीसे व्याप्त हो ऋणध्रुव से दूसरा ही तेज युक्त भाग निकल पड़ता है। किन्तु यह क्रिया होते समय यदि बातरहित भाग बढ़ाते जाया करें तो अन्तमें तेज युक्त भाग नष्ट हो जाते हैं और नलीमें एक अदृश्य प्रवाह शुरू हो जाता है। ऐसी अवस्थामें विद्युन्मण्डलकी जगह बढ़ानी पड़ती हैं नहीं तो यह प्रवाह बात रहित नलीसे न जाकर खाली जगहसे जाने लगता है। अस्तु। इस भाँति जो अदृश्य प्रवाह आरम्भ होता है उसीको ऋण-ध्रुव किरण कहते हैं।

(आ) ऋणध्रुव किरण—वात रहित नलीमें अदृश्य प्रवाह शुरू होने पर प्रकाश या दृश्यभाग का तो कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता क्यों कि ऋण ध्रुवसे एक पदार्थ अत्यन्त बेगसे निकलता रहता है और उस समय तक यह अदृश्य रहता है जब तक यह किसी भाँति रोका नहीं जाता, अर्थात् इसी की गतिमें रुकावट डालने पर यह देख पड़ने लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रदेश कृष्णकिरणों द्वारा व्याप्त होनेसे कृष्ण ही होता है। किन्तु उसकी सीमा प्रकाशयुक्त होती है क्यों कि उस जगह इन किरणोंको रुकावट होती है। अन्य दशामें इनकी गति बिल्कुल सीधी होती है और आपसमें यह एक दूसरेसे बिल्कुल नहीं टकराते। यह सिद्ध करना बिल्कुल कठिन नहीं है कि इन कृष्णकिरणोंमें भी शक्ति है। यदि इन किरणोंको केन्द्रीभूत करके उसके समीप प्लातीनमका टुकड़ा रक्खा जाय तो वह खूब गरम हो जावेगा। अतः यह स्पष्ट है कि इन कृष्ण-किरणोंमें भी शक्ति अवश्य है। बात रहित प्रदेश ज्यों ज्यों बढ़ाया जायगा त्यों त्यों प्लातिनम भी कम गर्म हुआ करेगा। पूर्ण बात रहित अवकाश के समय यद्यपि कोई दृश्य प्रकाश नहीं निकलता तौ भी एक प्रकारकी अत्यन्त शक्तिशाली किरण निकलने लगती है। उसे क्ष-किरण कहते हैं। प्रक्षिप्त पदार्थ यदि एकाएक रोक लिया जाय तो उसमेंसे क्ष-किरणका विसर्जन होने लगता है। यह गुण चरविद्युत्भारमें ही होता है और वह भी तभी होता है जब उसकी और प्रकाशकी गति समान ही हो।

इन ऋण-ध्रुव किरणोंकी भेदन शक्ति विलक्षण होती है। यह एक धातुकी चद्दरको छेद कर निकल जाते हैं और बादमें वायुके संघर्षसे तेजमय हो जाते हैं। यह दृश्य देख कर कुछ की धारणा यह हुई कि ये विद्युत्भारयुक्त पदार्थ परमाणु हैं लेकिन पदार्थके परमाणु बिना किसी आघातके एक इञ्चका सहस्त्र भाग भी चल नहीं सकते।

कुछ काल तक लोगोंकी यह कल्पना थी कि ऋण-ध्रुव किरणें गतियुक्त हैं और इनकी गति तथा साधारण अणुओंकी गति समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि उनका मार्ग सादे वायु पदार्थोंके मार्गसे अधिक विस्तृत है। उसी भाँति वे चलते भी समान रेखान्तरोंमें हैं और उनकी गति उष्णतांशु विक्षेपणकी भाँति अनियमित भी नहीं होती। इसका कारण यह है कि उनको खुला मार्ग बहुत विस्तृत मिलता है। क्रूक नामक विज्ञानवेत्ताका मत है कि पदार्थकी जैसे तीन

दशायें—द्रव रूप, घन रूप, वायु रूप है उसी भाँति यह भी चौथी दशा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि यह किस भाँति प्रमाणित किया जाय कि ऋणध्रुवसे निकले हुए परमाणुओंमें गति होती है। एक तो वातरहित नलीमें किसी प्रकारकी चक्ररचना करके उसमें विद्युत्प्रवाह छोड़ने पर उन चक्रोंके घूमनेसे यह प्रश्न हल हो जाता है, दूसरे यदि इन किरणोंके निकट घोड़ेकी नालके आकारका चुम्बक लोह लगाया जाय तो ये अपने सीधे मार्गसे च्युत हो जाते हैं। इससे केवल यही नहीं सिद्ध होता कि इन किरणोंके परमाणु विद्युत्पूर्ण हैं बल्कि यह भी प्रमाणित हो जाता है कि ये ऋण-विद्युतपूर्ण भी हैं। इसमें धन (Posi tive) विद्युत्पूर्ण परमाणुओंका अधिक होना सम्भव नहीं मालूम होता। इससे यह स्पष्ट है कि चाहे कारण जो भी हो किंतु बात रहित नलीमें ऋणविद्युत् किरण धनविद्युत् किरणों कि अपेक्षा बहुत अधिक चपल होती हैं। इसकी गति भी अति तीव्र होतीहै और गतिके कारणही जितनी दूर चाहे ये जा सकते हैं। इसी भाँति इसके विपरीत विद्युत्भारयुक्त कणोंसे संयोग होने पर वे नष्ट भी होजाते हैं।

प्रो० टौनसेण्डके मतानुसार इनकी वाहकता धूलरहित हवामें अत्यन्त स्थायी होती है क्योंकि हवामें यदि धूलके कण होते हैं तो वे बराबर विद्युत्भार लेते देते रहते हैं। और कुछ अपनेमें एकत्रित भी करते जाते हैं। यदि हवामें धूलके कण बिलकुल नहीं होते तो वाहकशक्तिके नष्ट होनेमें बहुत समय लगता है। इससे यह पता लगता है कि ये चरपरमाणु बहुत ही सूक्ष्म होतेहैं। जिससे एक दूसरे पर शायद ही आघात होता होगा। आकारमें जितनेही ये छोटे होते हैं उतने एक दूसरेसे कम टकराते हैं। वायुके अणुकी चपलता या प्रसरणशक्ति उसके परमाणुओंके आकार और उनके स्वतन्त्र मार्गपर बहुत कुछ निर्भर रहती है। विद्युत् विश्लेषणके जो चपल परमाणु होते हैं वे द्रव्यपरमाणु नहीं होते और इनका विद्युत्भार भी द्रव्य-परमाणुओंसे भिन्न होता है। द्रव्य परमाणुओं का बोझ नष्ट हो जानेसे उसे जितने वेगसे चाहे घुमा सकते हैं। विद्युन्मार्ग की विद्युत्शक्ति का भी उसपर परिणाम होता ही हैं। इससे स्पष्ट है कि विद्युत्भार द्रव्यपरमाणुसे अलग और अकेला भी रह सकता है। यह एक परमाणुसे दूसरे परमाणु तक जाते समय कुछ काल तक तो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखता है। इस क्षणिक स्वतन्त्रताके वात रहित अवकाशमें एक विद्युत्भारका विजातीय विद्युत्भारसे मिलकर नष्ट होजाना सम्भव है। उसी भांति सदाके लिये अलग होकर जिधर चाहे उधर चला जाना भी सम्भव है। इस प्रकारके स्वतन्त्र विद्युत्भारों को अर्थात् एकाकी परमाणुसे अलग हुए विद्युत्भार को अति परमाणुविद्युत्कण कहते हैं।

यदि उन चपल कणों की ओर जिनसे ऋण-ध्रुव किरणें बनीहैं ध्यान दिया जाय तो ऐसा भास होने लगता है कि वे प्रायः अति परिमाणु-विद्युत् कण ही होंगे क्यों कि उनमें विलक्षण चपलता, अत्यन्त वेग तथा फैलने की अगाधशक्ति इत्यादि सभी गुण होते हैं। यद्यपि उनका समावेश किसी भी द्रव्यमें न किया जासके तौभी यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि वे द्रव्योंके गुणसे बिल्कुल ही विहीन है। द्रव्यपरमाणु की भांति उनमें जड़त्व तथा भ्रमकत्व दोनों ही है और इसी कारणसे निर्वातनलीमें तय्यार की हुई चक्र योजना को घुमाते हैं। इसी भांति उनके अंगमें गतिविशिष्ट शक्ति है। यही कारण है कि उसके मार्गमें स्थित प्लातिनमका टुकड़ा तप जाता है और जिस समय अति वेगसे घूमता है यदि उसमें अवरोध न किया जाय तो उसका प्रकाश पड़ने लगता है। अथवा उससे भी अधिक उच्चकोटि का किरणविसर्जन (क्ष-किरण) होने लगता है। विद्युत्तत्वोंकी भांति क्ष-किरणके इस धर्मसे कुछ निश्चित बातों का पता चलता है। विद्युत् प्रवाहके लिये (Positive) धनविद्युत्-परिमाणुओंकी ही आवश्यकता होती है, क्यों कि ऋण-विद्युत्-परिमाणु चाहे कितनेभी हों उनका कुछ भी उपयोग नहीं होता। किन्तु वे बराबर उत्पन्न होते रहते हैं और कभी समाप्त नहीं होते। ऋणविद्युत्कणों की अधिकता के कारण निर्वात नलीमें जो कुछहवा शेष रहती है उसका विश्लेषण होने लगजाता है और उस विश्लेषणसे धन-विद्युत्अणु उत्पन्न होते हैं। ये धन विद्युत्अणु ऋण-ध्रुव से उत्पन्न होने वाली ऋण-विद्युत्कणोंकी अधिकता होते हुए भी ऋण-ध्रुव की ओर ही अग्रसर होते हैं। अन्तमें उन्हींसे जाकर टकरानेके कारण नये विद्युत्कण उत्पन्न होते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जिस स्थान पर यह विश्लेषण हुआ करता है ऋण-ध्रुवका वही भाग प्रकाशित रहता है।

जिस वेगसे यह आगे फेंके जाते हैं उससे यह स्पष्ट होजाता है कि उनपर बहुत अधिक विद्युत्भार होता है। इनकी भेदन-शक्ति अगाध है तथा विलक्षण

होती है। ऐसे धातुपत्रोंको भेदकर भी ये चले जाते हैं जो हमलोगोंको छिद्ररहित देख पड़ते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि उनका आकार बहुत ही छोटा होगा।

(२) ऋण-ध्रुव किरणोंकी गति तथा विद्युत् रासायनिक सममूल—जब अतिपरिमाणु विद्युत्कणों के गतिकी ओर ध्यान देते हैं तो यह कल्पना कि ऋण-ध्रुव किरणें परमाणुओंसे बनी होंगी, बिल्कुल ही छोड़ देनी पड़ती है। क्योंकि उनकी गति प्रति सेकण्ड १० हजार मील अथवा कमसे कम प्रकाश की गति का दशांश तो होती हैं। यदि यह सेन्टीमीटरग्राम-पद्धतिसे निकाली जावे तो वह $१०^{९}$ होती है और विद्युत्रासायनिक सममूल $१०^{७}$ होता है। इसके प्रमाणके लिये उज्जवायु (Hydrogen) माना गया है। निर्वात्नली का वायु कोई भी हो अथवा विद्युत्मार्ग किसीभी प्रकार का हो उसमें अन्तर नहीं पड़ेगा ऋण-ध्रुव-किरणों की गति दो विद्युन्मार्गोंकी संभाव्य-शक्तिके अन्तर तथा नलीके निर्वातता पर ही अवलम्बित रहती है।

ऋण-ध्रुव किरणें जिन कणोंसे बनी हुई है, उनकी गति चाहे कितनी ही विलक्षण हो तोभी शक्ति उनकी साधारण ही रहेगी और उनका सम्पूर्ण पिण्ड बहुत कम होगा। किन्तु उनका कुल विद्युत्भार विलक्षण तथा बहुत अधिक होता है। क्यों कि १५ मायक्रोफॅरेड (micro-farad) की ग्राहकता १ सेकेण्डमें ५ वोल्टतक वे बढ़ाते हैं। अथवा जिस तापमापक की तापग्रहण-शक्ति ४ मि० ग्र० जलके बराबर है, उसकी उष्णता दो अंशोंमें बढ़ाते हैं। किन्तु इनका पिण्ड इतना छोटा होता कि $\frac{१}{१०}$ मि० ग्रा० एकत्रित करनेमें १०० वर्ष लग जावेगें। उनकी गति बन्दूकसे छूटी हुई गोली की गतिसे लाखगुनासे भी अधिक है। यदि इन किरणों का द्रव्यमें समावेश किया जाय तो द्रव्योंमें भी इनकी गति सबसे अधिक है। अब यदि यह कहा जाय कि इन ऋण-ध्रुव किरणोंके कणपरमाणु है तो कमसे कम यह भी मान लेना पड़ता है कि उनके ऊपर का विद्युत्भार बहुत अधिक है। किन्तु इन गतिमान कणों का विद्युत्भार तथा विश्लेषणमें मिले हुए परमाणुओं का विद्युत्भार समान ही है। यदि यह मान लिया जाय कि ये परमाणु हैं तो उनका पिण्ड भी विश्लेषणमें मिले हुए परमाणु पिण्ड की अपेक्षा सहस्रांशमें छोटा होना चाहिये। ऐसा निश्चित होजानेपर ऋणध्रुवसे निकलने वाले कणोंकी कल्पना दो ही भिन्न प्रकारोंसे की जासकती है। यातो वे उपरोक्त-कल्पित अति-परमाणु-विद्युत्कण होंगे अथवा वे किसी भिन्नही प्रकारके विद्युत्परमाणु होंगे।

(३) उपनील लोहित किरणोंके योगसे होने वाला विद्युत्स्राव—यदि किसी ऋण-विद्युत्पूर्ण भाग पर उपनील लोहित किरणें चाहे वे किसी प्रकाश स्थान से आई हुई हों-गिराई जायँ तो उस भागमें से विद्युद्भार धीरे २ लुप्त होने लगता है यदि उस भागके जितने समीप लोह-चुम्बक लाया जाय तो लोह चुम्बककी शक्ति रेखायें (lines of force) जिस दिशासे जाती हों उस परिमाणसे उनमें अन्तर होता है। यह स्राव कणोंके स्वतः बाहर निकल जानेसे ही होता है। ऋण-ध्रुव किरणोंमें जिस प्रकार विद्युत्कण स्वयं ही घूमते रहते हैं, उसी प्रकार उपनील लोहित प्रकाशके कारण वे इस भागसे स्वयंही जाने लगते हैं। यह दृश्य देखनेके लिये यह आवश्यक नहीं है कि प्रदेश निर्वात ही हो; पर निर्वात प्रदेशमें यह दृश्य अधिक अच्छी तरह दिखाई पड़ता है, वस्तुतः अणुमें बिना चञ्चलता (गति) आरम्भ हुए यह स्राव सम्भव नहीं है। उपनील लोहित किरणों के समकालिक आन्दोलनोंके योगसे ही इस आन्दोलन (चंचलता) का प्रादुर्भाव होता है। अणुमें आन्दोलन आरम्भ होने पर उनका ऋण विद्युद्भार उनसे अधिक शिथिल होता है और वे वहाँ से दूर होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त किरणोंके संयोगसे कुछ अंशमें धन-विद्युत भी उत्पन्न होने लगती है। इस धन-विद्युतकी उत्पत्तिके योगसे जो परिणाम होता है केवल वही धातुके उष्णताप मान पर अवलम्बित रहता है।

जे० जे० थाम्सन नामक विज्ञानवेत्ताने इस स्रावको गणनाके लिये कई प्रयोग किये उन प्रयोगों से पता लगा है कि लोह-चुम्बकके संसर्गसे धातु के पात्रमें छोड़ने पर इन कणोंके घूमनेका जो मार्ग है वह चक्राभास (Cycloid) है। और चक्राभासका प्रमाण (सूत्र) $\frac{प}{व}$ (प=पिण्ड और व=विद्युत्भार) हैं। अर्थात् उस कणके पिण्ड तथा उस पर रहने वाले विद्युत्भार दोनोंके भागाकारके अनुसार ही उस चक्राभासका आकार होता है। चक्राभासके अदृश्य होनेके कारण उन्हें प्रत्यक्ष देखना अत्यन्त दुर्लभ है। केवल उसकी कल्पना भरकी जा सकती है। मान लीजिये कि किसी धातुके पत्रसे यह कण निकल रहे हैं और यदि उस पत्रके निकट किसी दूसरे

त्रको लाया जाय और वह पत्र यदि चक्राभासके ज्याके (radius) अन्तर्गत हो तो उस पर युत्भार गिरेगा और यदि त्रिज्यान्तरके बाहर गा तो विद्युत्भार बिल्कुल नहीं गिरेगा। इस ाँति उस दूसरे पत्रको हिलाकर यह जाना जा कता है कि इन कणोंका मार्ग चक्राभास है, किन्तु दि इसी पत्रको त्रिज्यान्तरके बाहर ले जाकर द्युत्क्षेत्र अधिक शक्तिमान किया जाय अथवा ोहचुम्बकीय क्षेत्र कम किया जाय तो भी इस र बहुतसे विद्युत्कण आ सकते हैं। त्रिज्यान्त-तकी ठीक ठीक गणना धातुके दूसरे टुकड़ेको ागे पीछे हटाकर की जा सकती है। जिस स्थान ा विद्युत्भारका आना कम होने लगे उसी त्रिज्या-तरको मानना ठीक होगा। यह अन्तर तथा रेण्ड-विद्युच्छक्ति इत्यादिका सम्बन्ध इस सूत्रमें र्शाया गया है-- $\frac{२प०वि०}{ब० ल^२}$ । इसमें प=पिण्ड वे=क्षेत्रकी विद्युच्छक्ति व=पिण्डका विद्युत्भार =लोहचुम्बककी शक्ति (पृथ्वीकी लोह चुम्बक ाक्ति=Magnetism) है। क्षेत्रकी विद्युच्छक्ति था पृथ्वीकी चुम्बक शक्ति मालूम हो जाने पर पेण्ड तथा विद्युत्भारका प्रमाण सरलतासे नेकाला जा सकता है। यद्यपि त्रिज्यान्तरकी णना ठीक ठीक नहीं हो सकती तथापि इस ्रयोगसे निकले हुए पिण्ड और विद्युत्भारके ्माणका मूल थामसनके निकाले हुए $१०^७$ के बेल्कुल करीब करीब आती है।

इन प्रयोगोंमें यदि कुछ भी विशेषता है तो ाह यह है कि इनमें विद्युन्मापक विक्षेपके अति-रेक्त और कुछ भी देख नहीं पड़ता। यदि लेनार्ड की रीतिसे प्रयोग किया जावे तो पहले यह देखना चाहिये कि महत्तम विक्षेप कितना होगा और यदि ामसनकी पद्धतिसे प्रयोग करें तो यह देखना चाहिये कि शून्य विक्षेपसे विक्षेपविशेष तक केस प्रकार की गति है।

४ लेनार्डके $\frac{प}{व}$ प्रमाणकी गणना करनेका प्रयोग—इस प्रयोगमें विद्युत्स्फुलिंगका तेज विद्युत्भारित 'क' तश्तरी पर गिरती है। तदनन्तर उसमेंसे विद्युत्कण बाहर आकर 'ब' नामक सरंध्र तश्तरी से 'इ' तश्तरी पर गिरते हैं। यदि ऐसे समयमें उनके मार्गमें उचित रीतिसे लोह चुम्बक शक्ति छोड़ी जाये तो 'फ' तश्तरी पर उनका विक्षेपण होता है और वे गिरने लगते हैं। 'इ' तथा 'फ' दोनों ही भिन्न भिन्न विद्युन्मार्गों द्वारा जुड़े रहते हैं। जिस समय 'फ' तश्तरी पर बहुतसे कण आने लगते हैं वे उस समय इन विद्युत्कणोंके चक्राभास-मार्गकी स्पर्शज्या पृथ्वीके समान्तर पर रहती है और यह चक्राभास विक्षेप 'फ' तश्तरीके मध्यसे जाता है। इतने ज्ञानसे वक्रगतिकी त्रिज्या निकाली जा सकती है। लेनार्डने यह बात $\frac{प \times ग}{व \times ल}$ सूत्र द्वारा दर्शायी है। इसमें प=पिण्ड; ग=पिण्डकी गति; व=विद्युत्भार, ल=पृथ्वीकी लोह चुम्बक शक्ति। इनमें गतिका माप 'क' और 'व' इन्हीं दो भागोंमें है। अतः ये उनकी शक्तिके अन्तर पर हैं। और वह [$\frac{१}{२} प \times ग^२ = व (श - श')$] सूत्र द्वारा निकाला जाता है। इसमें श व श' दोनों ही विद्युन्मार्ग शक्तिके निदर्शक हैं। अर्थात् 'क' तथा 'व' के शक्ति-निदर्शक कहे जा सकते हैं। (श-श') से शक्तिका अन्तर दिखाया जाता है। इस भाँति गति, पिण्ड तथा विद्युत्भारके प्रमाणसे दोनोंकी गणना की जा सकती है।

यह पिण्ड तथा विद्युत्भारके प्रमाणका मूल्य (Value) उस समयका निकाला हुआ है जिस समय दबाव कम होता है। किन्तु यदि दबाव अधिक हो तो इनका मूल्य इसकी अपेक्षा कम हो सकता है। इससे यह विदित होता है कि कम दबावके समय विद्युत्कणका संयोग परमाणुसे होता होगा। सादे वातावरणके दबावके समय धन या ऋण परमाणुके अवयवोंकी गति वायुरूप द्रव्योंमें भिन्न नहीं होती। इसके लिये विद्युत्क्षेत्र ही होना आवश्यक है। रेडियमसे निकले हुए विद्युत्कणोंकी गति इतनी होती है कि उनके विषयमें परमाणुके संयोगका भाग देख भी नहीं पड़ता।

५ अति परमाणु विद्युत्कणोंकी गति— धनवाहककी गति प्रत्येक सेकेण्डमें $१०^८$ सेन्टीमीटर होती है और ऋण-वाहक गति प्रत्येक सेकेण्डमें ३×१०^९ सेन्टीमीटर होती है। यह गतिप्रमाण प्रत्यक्ष गणना करके निकाला गया है। इस गतिमें जो अन्तर दृष्टिगोचर होता है इससे इस काल्पनिक सिद्धान्तकी पुष्टि होती है कि धन विद्युत्भारके साथ द्रव्य परमाणु सदा ही लगे रहते हैं। इनका द्रव्य परमाणुके साथ संयोग होनेके कारण ही से परमाणुओंका अवयव विद्युदणु (Ions) कहते हैं। ऋण विद्युत्भार बहुधा स्वतंत्र ही मिलते हैं। सम्भव है किसी समय उनके साथ भी द्रव्य परमाणुओंका भार होता हो, किन्तु ऐसी अवस्था में उन्हें (Corpuscle) रज ही कहना चाहिये। द्रव्य-परमाणु-रहित विद्युद्भार उसी अति पर-

माणु-विद्युत्कणके सदृश ही होगा जो हम लोगोंको सिद्धान्तरूपमें विदित है।'

६ विद्युदणवी भवन अथवा पृथक्करण—(Ionisation) हवा अथवा वायुरूप पदार्थ तथा क्ष-किरणोंके योगसे धन तथा ऋण-विद्युदणुमें विद्युदणवी भवन होता है। अथवा किसी एक पदार्थके अति-परिमाणु विद्युत्कणोंके विसर्जनसे भी यह क्रिया होती है। जल प्रपातके आघातसे भी हवामें विद्युदणवीभवन होता है। इसीके कारण से जलप्रपातकी तलको हवा विश्लेषित रहती है।

७ गाढ़ीकरण Condensation—यदि क्ष-किरणोंके योगसे हवाका पृथक्करण हुआ हो इसी भाँति पृथक की हुई हवामें यदि विद्युन्मार्ग रख कर विभाग किया जाय तो ऋण-विभाग एक विद्युन्मार्गकी ओर और धन-विभाग दूसरे विद्युन्मार्गकी ओर होगा। यदि पात्रमें की हवाकी विरलताका पहली हवासे १·२५ प्रमाण हो तो आधे पात्रमें भाप दिखाई देने लगेगी। इससे यह सिद्ध होता है कि गाढ़ीकरणके लिये धन-विभाग की अपेक्षा ऋण-विभाग ही अधिक उपयोगी है। यह तो हुआ पदार्थ-परमाणुओंके धन तथा ऋण-विभागोंके विषयमें। किन्तु इसीके अनुसार जब ऋण-विभाग मध्यमवर्त्ती होता है तो उसके निकट गाढ़ीकरण होने लगता है। अब प्रश्न यह है कि यदि अति परमाणु विद्युत्कण हो तो इसी प्रकार की क्रिया होने लगेगी या नहीं। इस प्रश्न पर सी० टी० आर० वुइलसन नामक शास्त्रज्ञका मत है कि अति परमाणु विद्युत्कण होने पर भी हवाके प्रसरण होनेके पूर्व ही परमाणुसे संयोग पाकर ऋण-विभाग बन जाता है। जिस वायुमें पूर्ण संपृक्तताकी चौगनी आर्द्रता रहती है। उस वायु में शुष्कवायुके विद्युदणुके आकारके अणु विद्युत्कणोंके चारों ओर जमा होने लगते हैं। फिर इससे साम्यस्थिति (Equilibrium) हो जाती है। किन्तु यदि हवामें आर्द्रता अधिक हुई तो परिस्थितिमें फिर उलट फेर लगा रहता है। अन्त में आर्द्रताके अणु विन्दु-स्वरूप होकर दिखलाई पड़ते हैं। बल्कि इस अवस्थामें यदि प्रसरणके पश्चात् प्रसरणक्षेत्रमें विद्युत्कण सहसा प्रवेश करें और चौगुनी संपृक्ततासे अधिक आर्द्रता रहे तो फिर गाढ़ीकरणके लिये वेही विद्युदणु नहीं रहते बल्कि ज्यों के त्यों वे मूलविन्दु रह जाते हैं। किन्तु यदि नीललोहित-किरणोंके प्रकाशमें प्रयोग किया जाय तो इन विद्युत्कणोंके प्रसरण होनेके बहुत पूर्व ही विद्युदणु तैयार हो जाते हैं।

८ विद्युत्कण विषयक निर्णय—आज तक जितने प्रयोग हुए हैं उनसे विद्युत्कणके विद्युत्भारका और पिण्डका मूल्य (Value) इकट्ठा ही निकाला गया है, विद्युत्भार तथा पिण्डका अलग अलग मूल्य नहीं निकाला जा सका था। मुख्य कठिनाई इसमें यह थी कि अभी तक प्रयोगमें बहुसंख्यक विद्युत्कण लिया जाता था जिससे केवल उनका एकत्रित पिण्ड ही पता लगता था। उदाहरणः—यदि 'स' इन विद्युत्कणोंकी संख्या और 'प' पिण्ड मानलें तो 'स; प.' सम्पूर्ण विद्युत्कणोंके पिण्डका मूल्य मालूम हो जाता था किन्तु 'स' तथा 'व' के भिन्न भिन्न मूल्यका पता न लगता था। इसी भाँति यदि 'ग' उनकी गति मान ली जाय तो उनकी एकत्रित गति ($\frac{1}{2}$ प × ग^2) सूत्रसे मालूम हो जावेगी। किन्तु जब 'प' तथा 'व' का भिन्न भिन्न मूल्य नहीं पता लगता तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'स' और 'प' तथा 'ग' और 'प' का भिन्न भिन्न मूल्य किस प्रकार निकाला जाय।

दूसरी बात यह है कि ये विद्युत्कण यदि किसी खाली पात्रमें छोड़ा जाये और वह पात्र यदि विद्युन्मापकसे जोड़ा जाय तो यह गणना कठिन नहीं है कि सम्पूर्ण विद्युन्मान कितना होगा, अर्थात् (स × व) का मूल्य पता लग जावेगा किन्तु 'स' तथा 'व' का भिन्न भिन्न मूल्य निकालने का प्रश्न रही जाता है।

स × प, स × व $\frac{1}{2}$ प ग^2, ग व, इत्यादि भिन्न भिन्न सूत्रोंका पता तो लग जाता है, किन्तु पिण्ड का तथा विद्युत्भारका स्वतन्त्र मूल्य पता लगानेके लिये यह जानना चाहिये कि 'स' अर्थात् संख्या का मूल्य क्या होगा। इसके मूल्यका ठीक ठीक पता लगने पर बहुत कुछ सरलता हो सकती है। जे० जे० थामसनने विलसन, अटकिन तथा सर जार्ज स्टोक्स इत्यादि विज्ञान वेत्ताओंके सिद्धान्त के आधार पर इस संख्याकी गणना करनेका भिन्न भिन्न रीतिसे प्रयत्न किया था।

(अ) अॅटकिनका प्रयोग—घनमध्यविन्दुके विना कुहरेका विन्दु तयार नहीं होता। जितने ये मध्य विन्दु होंगे उतने ही कुहरेके भी विन्दु तयार होंगे। यदि भापको छान लिया जाय और उसमेंसे इस प्रकारके घनमध्यविन्दु बिल्कुल कम कर दिये जावें तो कोहरा शीघ्र ही तय्यार नहीं होगा, और यदि होगा भी तो जलकी बड़ी बड़ी बूँदे दिखाई पड़ने लगेगीं इससे यह निर्विवाद है कि गाढ़ीकरणके लिये घनमध्य विन्दुकी जरूरत है। केलविनने इस बातका बड़ी उत्तम रीतिसे

स्पष्टीकरण किया है कि इस घनमध्यबिन्दुकी अथवा मूल बिन्दुकी आवश्यकता क्यों है। ज्यों ज्यों द्रवपदार्थकी पातली वक्र होने लगती है त्यों त्यों भाप बननेकी क्रिया भी बढ़ती जाती है। यदि प्रदेश अत्यन्त बाह्यवक्र हो तो द्रवपदार्थकी एकाएक भाप बन जावेगी। इसी कारणसे द्रव-पदार्थका अति सूक्ष्म परमाणु नहीं मिलता। भाप का गाढ़ीकरण करनेके लिये धूलके कणोंके सदृश उत्तम वक्र भाग प्रदेश, परमाणु अथवा एकत्रित परमाणु ही ठीक हैं। क्योंकि इन्हीं की विशेष आवश्यकता है।

(अ) थामसनका प्रयोग—१८८८ ई० में थामसन ने यह सिद्ध करदिया कि विद्युज्जाग्रति होने पर पदार्थों में जो वक्रताका गुण रहता हैं वह नष्ट हो जाता है। बाहरी वक्र भाग पर भापके गाढ़ी करणमें विद्युज्जाग्रतिसे सहायता भी मिलती है। वक्रताके कारण ही (Surface Tension) पृष्ठके तनावका अंतःकेन्द्रिय अंग तैयार होता है अर्थात् वक्रताके कारण सब शक्ति त्रिज्याके द्वारा केन्द्रपर आती है किन्तु विद्युज्जाग्रतिके कारण इससे बिल्कुल उल्टा अर्थात् वक्रताके बाहर निकालने वाली शक्ति उत्पन्न होती है। ट को यदि पृष्ठका तनाव मानलें और 'र' को त्रिज्या मानलें तो तनावका केन्द्रिक अवयव $\frac{\text{२ ट}}{\text{र}}$ सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है, और विद्युत्वाह्यका तनाव $\frac{\text{व}^{\text{२}}}{\frac{\text{८}\times\text{२२}}{\text{७}}\,\text{क}\times\text{र}^{\text{४}}}$) सूत्र द्वारा दिखाया जा सकता है। (व=विद्युत्भार र=त्रिज्या; क=एक नियमित संख्या)। इन दोनों सूत्रोंका समीकरण करने पर जो 'र' का मूल्य निकलेगा वह ऐसे विद्युदणुके आकार का मूल्य होगा जिस विद्युदणु के ऊपर जल बिन्दु स्थिर रह सकता हो। इन दोनों सूत्रोंका समीकरण करने पर 'र' का मूल्य $\text{१०}^{\text{८}}$ आता है। और यह परमाणुके आकार मान से बराबर मिलता है। इससे विद्युदणुके योगसे गाढ़ीकरण होनेमें कोई रुकावट नहीं होती और इतना ही विद्युत्भार सहन करने वाला किन्तु आकारमानमें इससे किंचित् बड़ा हो तो उस पर बहुत शीघ्र गाढ़ीकरण हो सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्युद्भार गाढ़ीकरणमें सहायता देता है, और यदि विद्युद्भार पर्याप्त हो तो मध्य बिन्दु (nucleus) का आकार छोटा होने पर भी उसपर गाढ़ीकरण हो सकता है अथवा पर्याप्त विद्युद्भार छोटे आकारके पिंड पर भी गाढ़ीकरण करा सकता है। इससे यदि थोड़ा बढ़ा जाय और विद्युत्कण यदि मध्य-बिन्दु पर आवें तो यह कहने में कोई हानि नहीं है कि और किसी द्रव्यपिंडकी सहायताके विना ही भाप उस पर द्रव्यरूप होने लगेगी। उन (विद्यु त्कणों) को गलाकर निकालना सहज नहीं है और यदि निकाला भी जाय तो; धूल रहित वायुमें उनमें देर नहीं लगती। यदि वायुमें बहुतसे विद्युत्कण हों तो बादल सिर्फ कोहरा दिखाई पड़ने लगेगा, किन्तु इस बादल का रंग रोज की धूलके कणोंके चारों तरफ जमने वाले बरसाती बादलकी अपेक्षा बिलकुल भिन्न रहता है। ये विद्युत्पूर्ण बिन्दु उन सब योगोंमें से किसी एक योगसे उत्पन्न होते हैं जिनमें वायुका पृथक्करण होता है अथवा वायुमें विद्युत्अणु उत्पन्न होते हैं।

थामसन ने क्ष किरणों की सहायतासे अथवा और किसी प्रकारसे विद्युन्मध्य बिन्दु उत्पन्न करके एक मर्यादित भापका दृश्य निर्माण किया था। विद्युन्मध्य बिन्दुके योगसे सहसा बादल तैयार हो गया और धीरे धीरे बूँदे गिरने लगीं। उसने उन बंदोंके रंगसे उनके आकार का अनुमान किया; किन्तु वह वास्तवमें सन्तोषजनक नहीं था। फिर उन बूँदोंके गिरनेके वेगको गिनकर उनके आकार का अनुमान किया वे बूँदे समान आकारकी होती हैं। और एक दम गिरने लगती हैं। इसलिये उनकी गणना करना कठिन नहीं होता।

विद्युदणु उत्पन्न करनेवाले क्ष-किरण (Aluminium) स्फटके मोटे ढकनेसे किसी बरतनमें आते रहते हैं। विद्युत्स्राव गिननेके लिये स्फटके ढकने और विद्युत्तुलाके साथ सम्बन्ध रहता है। विद्यु त्तुलाके दोनों सिरोंको विद्यु च्छक्तिका अन्तर साधारण रखा जाता है। इसके बाद प्रसरणके लिये जो व्यवस्था पहले की जाती है उसीके योग से प्रसरण करते हैं। जब प्रसरण होने लगता है तब बादल दिखलाई पड़ता है। उस समय उनके गिरने का अथवा उनका बादल बननेसे रोकने का वेग प्रकाशित पात्र के भाग की ओर देखकर गिना जासकता है। $\text{क}=\frac{\text{२}}{\text{९}}\,\frac{\text{गु}\times\text{घ}\times\text{र}}{(\text{वायुकीघनता})}$ इससूत्रसे यह जाना जा सकता है कि बूंदोंके गिरने का वेग और उसका क्या सम्बन्ध है। इस सूत्रमें क=गुरुत्वाकर्षणका मूल्य, घ=बूँद की वायुसे अधिक होनेवाली घनता, र=बूँदों की त्रिज्या क=गिरने का वेगहै। यह विदित होनेपर कि प्रसरण कितना

हुआ यह भी जाना जा सकता है कि कितने जल की कितनी बूँदें हुईं। उसी प्रकार यह भी पता लगाया जा सकता है कि उनके गाढ़ीकरणमें काम आनेवाले मध्य विन्दु अर्थात् विद्युत्कण कितने हैं। एक घन सेन्टीमीटरमें इस प्रकार की ३०००० बूंदे गिनी गई हैं। और जितनी बूंदे होती हैं उतने ही मध्य बिन्दु होते हैं जिनसे मध्यविन्दुओं की संख्या गिनी गई।

इस प्रयोगके कारण जब मध्यविन्दुओं की संख्या विदित हो जाती है तो उसका प्रमाण सूत्र व/प से निकाला जासकता है कि केवल पिण्ड कामूल्य और उस पिण्डके विद्युत्भार का मूल्य कितना होगा।

स्थिर विद्युत्मानके प्रमाणसे गणना की जाय तो विद्युत्भार (३×१०^{१०}) होता है, और यदि विद्युच्चुम्बकीय मूलमानके प्रमाणसे गणना की जाय तो $१०^{२०}$ होता है। पिण्ड का जो मूल्य इस भांति आवेगा वही घनविद्युत्वाहक अथवा विद्युदणु का होगा और वह परमाणुके वास्तविक पिण्ड का मूल्य प्रदर्शित करेगा। किन्तु यदि इस मूल्य की अपेक्षा अधिक मूल्य निकले तो यह कहना पड़ेगा कि एकसे अधिक परमाणु एक ही स्थान पर एकत्रित हुए हैं। ऋणविद्युद्वाहक अथवा विद्युत्कणके व/प विद्युद्भार और पिण्डके प्रमाण का मूल्य $१०^{७}$ है और उनके पिण्डका मूल्य $१०^{२७}$ ग्रॉम है यह सबसे हलके उज्ज (Hydrogen) के परमाणु का १/७०० वाँ भाग है। इस भाँति प्रयोग से यह सिद्ध है कि परमाणुसे भी छोटे पिण्डों का अस्तित्व है। इसके सिद्ध होनेके योगसे विज्ञानशास्त्र के इस विभागमें एक नये युगका आरम्भ होगया।

(९) अतिपरमाणु विद्युत्कणका विद्युत्भार—एच० ए० विलसन नामक विज्ञानवेत्ताने त्रिशंकुके प्रयोग से इस विद्युत्भार का मूल्य निकाला। वह प्रयोग इस तरह है कि हवामें से नीचे गिरते समय द्रवित-भाप के विन्दु को त्रिशंकु की भांति बीचोबीच लटका रखनेके लिये जितनी विद्युत्शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी उसको निकाला। फिर उस विन्दु का वजन और विद्युच्छक्ति का समीकरण किया गया और उसका मूल्य निकाला। यदि 'य' उस विन्दु का वजन हो और 'इ' विद्युत्क्षेत्र की शक्ति और 'प' उस विन्दुके मध्यमें रहनेवाले मध्यविन्दु का भार हो तो उनका समीकरण य= इ×व, किया जावेगा। इस समीकरणमें 'इ' अर्थात् विद्युत्क्षेत्र का मूल्य, और 'म' उसविन्दुके वजनका मूल्य होनेसे, व अर्थात् विद्युत्भार निकाला जासकता है। इस प्रयोग-द्वारा प्राप्त विद्युत्भारका मूल्य (३.१×१०^{-१०}) था। गतिमापन की सहायतासे थामसन द्वारा निकाला हुआ मूल्य ३.४×१०^{-१०} था।

आकार—ये इधर उधर घूमने वाले द्रव्य कण है और यह सिद्धान्त मान कर चलें कि उन पर भी कुछ विद्युत्भार है तो इस कणकी द्रव्य तथा विद्युत् दोनों की ही रचना सिद्ध होती है। मतलब यह कि उसको जितनी जड़ता प्राप्त हो वह भी इन्हीं दोनों कारणों पर निर्भर होनी चाहिये। इस प्रकार की दोहरी कल्पनाके कारण गति का होना कठिन होनेलगा। किन्तु उसके बदलेमें यह कल्पनाकी जाय कि ये घूमने वाले कण विद्युत्कणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है. उन्हीं पर विद्युत्भार है और वे ही परमाणुओंके घटक है किन्तु उन्हें किसी द्रव्यके मध्यविन्दु (Material Nucleus) की आवश्यकता नहीं है तो यह कल्पना प्रगतिके मार्गमें बाधक नहीं होगी। परमाणुओं के जो गुण धर्म हैं वे सब इन धन अथवा ऋण विद्युत्कणोंके समुदायसे हुए होंगे और उनमेंसे हरएक एक दूसरेसे अलग किया जा सकता है और उसका अस्तित्व स्वतन्त्र है यदि इस कल्पित सिद्धान्तके अनुरोधसे इन कणों के पिंडकी गणना हो सकती है तो उनके आकार की भी गणना होनी चाहिये। यदि कुछ विद्युद्गुण और कुछ द्रव्य गुण दोनोंका हिसाब निकाला जाय तो हम लोगोंको किसी का भी पता न लगेगा और इसलिये यही मानकर चलना पड़ेगा कि ये कण केवल विद्युत्कण है। यदि दूसरे कल्पित सिद्धान्त का अवलम्बन किया जाय तो पिण्ड और विद्युत भारके प्रमाणसे इन कणोंका आकार भी निकाला जा सकेगा क्योंकि इनका पिण्ड (हाइड्रोजन) उज्ज परमाणुके पिण्ड १/१००० वाँ हिस्सा होता है। यदि उसका विद्युत्भार स्थिर विद्युन्मूल मानके अनुसार गिना जाय तो $१०^{-१०}$ होता है। यह बात ऊपर बतलाही जा चुकी है। अब विद्युत्कणका जितना जड़त्व है उतनाही जड़त्व यदि इस विद्युत्भारका भी होता हो तो उस विद्युत्भारका आकार $१०^{-१३}$ सेन्टीमीटर त्रिज्या वाले वृत्तके बराबर ही होना चाहिये, और ऐसी दशामें हमलोगोंके कल्पित विद्युत्कण का भी आकार यही होना चाहिये। अब इस आकार की ओर देखनेसे यह मालूम होने लगता है कि ऋणध्रुव किरणोंकी भेदक शक्ति यथार्थ है क्योंकि स्वयं द्रव्य परमाणु ही इन विद्युत्कणोंके बने हुए हैं। इसलिये यह आवश्यक है

कि इन दो कणोंके बीचमें काफी प्रशस्त स्थान रहता होगा। यही कारण है कि ये कण किसी धातुके पत्रसे बिना टकराये पार निकल जाते हैं।

विद्युत कणका व्यास $१०^{-१३}$ और परमाणुका व्यास $१०^{८}$ सेन्टीमीटर होता है। यदि सूर्य मालिका से इसकी तुलनाकी जाय तो पृथ्वीका व्यास उसकी कक्षाका $\frac{१}{२४०००}$ है। अब यदि यह कल्पना की जाय कि पृथ्वी भी विद्युत्कण है तो परमाणुका गोलाकार इतना बड़ा हो जावेगा कि यदि सूर्यको मध्य मान लिया जाय तो उस गोलाकार की त्रिज्या पृथ्वी और सूर्यके अन्तरसे चौगुनी होगी। सादे वातावरणके समय चार इंच जगहमें एक विद्युत्कण करीब करीब दस करोड़ दूसरे कणोंसे बचाकर जाता है। बल्कि जो परमाणु अत्यन्त घन धातुओंसे होकर जाते हैं उनको तो इतना भी प्रशस्त मार्ग नहीं मिलता। मिलीमीटरके करीब करीब हज़ारवें भागके बराबर उनको प्रशस्त मार्ग मिलता। पर वह मार्ग सीधी रेखामें नहीं मिलता और इसीलिये प्लतिनमके प्रस्तरमेंसे जाते समय उस प्रस्तरके पृष्ठ भागके पास ही रुक जाते हैं। फिर उस गतिरोधसे ज्ञ-किरणें उत्पन्न होती हैं।

घूमते समय इन कणोंके पारस्परिक आघात की तुलना आकाश स्थित तारोंसे कीजा सकती है। इन घूमनेवाले विद्युत्कणोंकी स्थिति सूर्य मालिका पर आनेवाले धूम्रकेतुके सदृश होती है। जिस भाँति धूम्रकेतु घूमता घूमता किसी ग्रहके गुरुत्वाकर्षणके जालमें फँसाकर सदाके लिये अपनी ग्रहमालाका एक ही ग्रह बना लेता है उस भाँति परमाणु रूपी ग्रह इस विद्युत्कण रूपी धूम्रकेतुको सदाके लिये अपनी मालामें रखलेता है। इससे यह पता चलता है कि विद्युत्कण परमाणुके परिमाणमें ही रोका जाता होगा। अर्थात् $१०^{-८}$ सेंटीमीटरके अन्तर परही रोका जाता होगा। एक विद्युत्कण रोकनेके लिए $\frac{१}{१०}$ डाइंन शक्ति लगती है (डाइंन = सेन्टीमीटर पद्धतिसे एक ग्राम वजन एक सेन्टीमीटर ऊपर उठानेके लिये लगने वाली शक्ति) इसीलिये आत्यन्तिक किरण विसर्जनके दृश्य दिखाई पड़ते हैं। प्रकाशके वेगका $\frac{१}{३०}$ वेग रखने वाले विद्युत्कण की गतिको रोकनेके लिये कितन शक्ति लगती है यह निम्नलिखित सूत्रसे मालूम होगा।

$$\text{शक्ति} \div \text{समय} = \frac{१}{२}\ \text{प} \times \text{ग}^{२} \times \frac{\text{ग}}{२ \times \text{परिणाम}} =$$

$$१०^{-२७} \times (१०^{-९})^{२} \times १०^{-८} = १०^{-८}$$ अर्ग। $१०^{८}$ अर्ग अर्थात् करीब करीब १० वॅट. (वॅट=एक अम्पीयर तीव्रता वाली बिजलीकी चालक-शक्तिके एक वोल्ट द्वारा किया हुआ काम) बल्कि इसका बहुत थोड़ा भाग किरण रूपसे जाता है और बाक़ी उष्णता रूपसे बाहर होता जाता है। किरण रूपसे कितना बाहर पड़ता है यह लॉरमूरके सूत्र से निकाला जा सकता है।

$$\frac{\text{विद्युत्भार}^{२}}{\text{गति}} \times \text{गतिवर्धन}^{२} = \frac{१०^{-४०} \times १०^{५२}}{१०^{१०}} = १००$$

अर्ग तब $१०^{८}$ में के केवल $१०^{२}$ अर्ग ही किरण रूपसे बाहर आते हैं। बाकी के उष्णता रूपसे आते हैं।

इस शक्तिमें की उष्णताकी अपेक्षा किरणरूपसे अथवा किरणोंकी अपेक्षा उष्णतारूपसे कैसी और कितनी शक्ति बाहर आवेगी, यह बात विचारणीय है। यदि किरणविसर्जन शक्तिकी ही आवश्यकता अधिक हो तो विद्युत्कणका वेग प्रकाशवेगके बहुत कुछ लगभग होना चाहिये और उसकी गति का अवरोध उसी जगह पर होना चाहिये। यदि विद्युत्कणका वेग प्रकाशवेगका $\frac{१}{१०}$ भाग हो और उसकी गति उसके व्यासके बराबर अन्तरान्तमें ही रोकी गई हो तो प्रायः १० सैकड़ा शक्तिकिरण विसर्जन रूपमें प्रगट होती है। किन्तु उस विद्युत्कणको रोकनेके लिये प्रायः दोसे तीन हज़ार किलोवेट तक शक्ति लगेगी। परन्तु इसमेंसे विद्युत्कण परमाणु परिमाणमें ही रोकना अधिकाधिक शक्य है। इसके लिये ५० वेट शक्ति लगती है किन्तु इसमें ज्ञ-किरण रूपमें यह केवल एक दश लक्षांश ही मिलता है। किन्तु जैसे जैसे गति कम होती है वैसे वैसे उष्णतारूपमें अधिकाधिक शक्ति प्रगट होती है। विद्युत्कणकी कुल शक्तिका प्रमाण उसके परिणाम और उसे रोकनेमें लगने वाले समयमें प्रकाश जितनी दूर जाता है उतने अन्तरके प्रमाणके बराबर रहता है।

(११) विद्युत्कण सिद्धान्त—वहन तथा किरण निक्षेपण—

(अ) वहन—द्रव्य परमाणुमें जो विद्युद्गुण धर्म हैं वे सब विद्युत्कणके कारण हैं। यह दिखाने का प्रयत्न लॉरन्टज़ तथा लॉरमूर दोनों ही विज्ञानवेत्ताओंने किया है। उनकी कल्पना थी कि जिसे विद्युत्प्रवाह कहते हैं वह सच्चा प्रवाह नहीं है किंतु विद्युत्कणोंकी गति है। वे कदाचित् परमाणुओं के साथ घूमते होंगे। और उसी तरह वे विद्युद्विश्लेषणके समय भी घूमते हैं, अथवा जैसे वे विरल वायुमें रहते हैं वैसेही वे प्रशस्त रूपसे घूमते भी होंगे। अथवा घन पदार्थोंमें उष्णता-

वहनके समय जो क्रिया होती है कदाचित् उसी क्रियाके अनुसार ये विद्युत्कण एक परमाणुसे दूसरे परमाणुके आधीन रखे जाते होंगे। विद्युद्वहन निम्नलिखित तीन प्रकारके हो सकते हैं—(१) पक्षी जिस प्रकार दाना चोंचमें उठा कर अपने घोंसलेमें लाकर रखता है उसी प्रकारसे विद्युत्का एक जगहसे उठा कर दूसरी जगह पर लाकर रखा जाना। (२) विरल वायु द्रव्यों में ऋण-ध्रुव किरणसे बन्दूककी गोली जिस प्रकार निकलती है उसी प्रकारसे इसका भी होना, अथवा (३) परमाणु स्वयं बहुत दूर तक नहीं हिलता किन्तु एक तरफ विद्युत् लेनेके थोड़ी दूर तक और दूसरी ओर विद्युत् देनेके लिये थोड़ी दूर तक हिलता है। जिस प्रकार बहुतसे आदमियों को एक पंक्तिमें खड़ा करके हाथों हाथ कोई वस्तु थोड़ी दूर तक इधर उधर ले जायी जा सकती है उसी भाँति उपरोक्त बात भी होती है। विद्युद्रोधक द्रव्योंमेंसे विद्युद्वहन जबर्दस्ती हुआ करता है और अन्य धातुओंमें से वह सहज रीतिसे हुआ करता है। जब तक विद्युत् प्रवाह बहुत नहीं होता तब तक धातुमें प्रवेश करनेके लिये बाहरी शक्तिका कुछ प्रभाव नहीं होता। जब तक विद्युत्कणोंकी शक्ति उष्णता पर अवलम्बित रहती है तब तक धातुके विद्युत्कण स्वतन्त्र रहते हैं।

जब वायुरूपमें से ऋणविद्युत्कण अलग होते हैं तब बहुत शीघ्रतासे दौड़ने लगते हैं किन्तु धन विद्युत्कण अथवा विद्युदणुका वेग इतना नहीं होता।

द्रव्यरूप पदार्थमें किसी भी प्रकारके विद्युत्कण स्वतन्त्र रूपसे नहीं मिलते। उनका सम्बन्ध परमाणुसे तत्काल ही हो जाता है। तदन्तर वे विद्युदणुके रूपमें रहने लगते हैं किन्तु उनका वेग कम रहता है।

घनरूप पदार्थोंमें से किसीमें ऋणका भाग तथा किसीमें घनका भाग अधिक रहता है।

(व) किरण विक्षेपण—परमाणुओंके चारों ओर जिस प्रकारसे विद्युत्कण घूमते होंगे उसी प्रकार पर किरण विक्षेपणकी शक्ति भी अवलम्बित है। यदि विशुद्ध द्रव्य ग्रहण किया जाय तो उसका सम्बन्ध इथ्र (Ether) से नहीं होता। यदि उसका सम्बन्ध इथ्रसे देख पड़े तो समझना चाहिये कि विद्युत्भारके कारण ही है। इथ्रमें यदि चञ्चलता देख पड़े तो इसका कारण विद्युद्गति-वर्धन ही है। विच्छिन्न किरण-पटोंमें की भिन्न भिन्न रेखायें गतिके भिन्न भिन्न कम्पनकी संख्या पर अवलम्बित रहती हैं। यदि किरण विक्षेपणका यही कारण हो तो उस पर लोह-चुम्बकका परिणाम होना चाहिये, क्यों कि घूमता हुआ विद्युद्वार अर्थात् वर्तुलगति ही विद्युत्प्रवाह है। विद्युत्कण चाहे जिस दिशामें घूमता हो, यदि उसके चारों तरफ बढ़ती हुई शक्तिका क्षेत्र उत्पन्न किया जाय तो किसीकी गति बढ़ेगी और किसीकी कम होगी। यह क्रिया उस क्षेत्रके नष्ट होने तक चलेगी। इससे यह स्पष्ट है कि यदि किरण-विक्षेपक-पदार्थका समावेश लोह चुम्बकीय क्षेत्रमें करें और उसमें की विच्छिन्न-किरणपट की रेखाओंको देखें तो उनमेंसे कुछ चौड़े दिखाई पड़ेंगे और कुछ स्थान परिवर्तित किये हुए देख पड़ेंगे। किसीमें कुछ दूसरा ही अन्तर देख पड़ेगा। लॉरमूर ने इस प्रकार की कल्पना की थी किन्तु प्रयोग द्वारा वह उसे सिद्ध न कर सका। उसके बाद १८९७ ई० मे ज़ीमनने एक अच्छा अपभवन जाल (Diffraction Grating) और लोह चुम्बक लेकर बड़ी सावधानतासे देखा था कि ये रेखायें चौड़ी होती हैं। इस प्रकार आरम्भमें ही स्वभावतः इस विषय को बड़ा महत्व प्राप्त हुआ, और फिर यह देखा गया कि भिन्न भिन्न पदार्थोंमें से निकली हुई किरणोंके विच्छिन्नपटमें की प्रत्येक रेखामें लोहचुम्बकके कारण क्या अन्तर होता है। लोहचुम्बकके कारण कुछ रेखायें दुगनी, कुछ चौगुनी और कुछ छःगुनी हो जाती हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि लोहचुम्बकका परिणाम कम नहीं होता है किन्तु अत्यन्त तीव्र तथा शक्तिशाली होता है। किन्तु उसे देखनेके लिये उच्चकोटिके यन्त्र की आवश्यकता होती है। यदि विद्युत्कणोंके कारण किरण-विक्षेपण हो तो उनकी गति का विरोधक-द्रव्य पिण्ड उसके साथ बहुत ही थोड़ा होना चाहिये। इतना ही नहीं किन्तु विच्छिन्न किरण-पटों की रेखाओंके अनुमानसे यह भी जाना जा सकता है, कि भिन्न भिन्न विद्युत्कणोंके साथ द्रव्य भाग कितना है। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहा जासकता है कि इससे यह भी पता लग सकता है कि किरण-विक्षेपणोपयोगी विद्युद्रासायनिक-सममूल्य कितना है। प्रोफेसर ज़ीमन ने सिंधू (Sodium) की रेखाओं में होने वाले अन्तर से यह पता लगाया था कि विद्युत्सममूल्यका मूल्य $१०^७$ से ग्रा. प है। और ठीक यही मूल्य विद्युत्भार और पिण्डके प्रमाण का भी है। यही आधुनिक प्रयोगोंसे भी निश्चित हुआ है। ऋणध्रुव किरणोंमें जो कुछ कण गिरते हैं उनका आन्दोलन किरण-विक्षेपके उद्गम स्थान में होता

है और ऋणध्रुव किरणें यदि घूमनेवाले विद्युत्कणों से बनी हुई हो तो यह कहा जा सकता है किरण विक्षेपण इन घूमने वाले विद्युत्कणों ही से होता है। यदि जीमन का प्रयोग बहुत बारीकी से कियाजाय तो जीमन, लॉरेन्टज़ फिटज़ीरल्ड और लॉरमूर वगैरहने जो यह कहा है कि किरण-विक्षेपण विद्युत्कणसेही होता है ठीकही है। यद्यपि यह अभीतक पूर्णरूपसे सिद्ध नहीं हुआ है तौ भी बहुत कुछ समाधान कारक रीतिसे सिद्ध होता है।

लारेन्टज़के सिद्धान्तके अनुरोधसे तथा जीमन की खोजसे परमाणुओंके गुण-धर्म दिखाने के विषयमें और विक्षेपणकी पद्धतिपर प्रकाश डालने के लिये विच्छिन्नकिरणके वर्गीकरण पद्धतिमें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हुई है। इसी योगसे ग्रह और उपग्रह के बदलेमें परमाणु और विद्युत्कण वाला एक भिन्नही भौतिक ज्योतिषज्ञान उत्पन्न हो गया है।

शीघ्रगतिके योगसे जड़त्व की वृद्धिः—सर्वदा यही समझा जाता रहा है कि जड़त्व बराबर निश्चित रहता है। इसका और गतिका कुछ सम्बन्ध नहीं है। जिस समय कोई पिंड शीघ्र वेगसे घूमता है उस समय जाने वाली शक्ति रेखायें जिस तरह उसके पृष्ठ भागपर बँटी रहती है यदि इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन कियाजाय तो उन रेखाओंके जड़त्वमें लम्बपार्श्व गतिसे अन्तर पड़ सकता है। और इसी लिये यह सम्भव है कि विद्युज्जड़त्व वेगपर अवलम्बित होगा। यह बात यन्त्र शास्त्रमें अधिक ज्ञात न थी। जिस समय कोई विद्युद्धार घूमने लगता है उससमय वह अपने चारों तरफ़ वर्तुलाकार लोह चुम्बकीय रेखायें उत्पन्न करता है। और चूंकि यह रेखायें भी पिण्डकेही वेग से घूमती हैं इसलिये उनसे अन्य स्थिर विद्युत् रेखायें भी उत्पन्न होती है। दूसरे प्रकार की रेखाओंका परिणाम साधारण वेगके समयही नहीं किन्तु बड़े वेग के समय भी बहुत नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु यह वेग जिस समय प्रकाश वेग की समता को प्राप्त होता है केवल उस समय उसका परिणाम होता है। प्रकाश प्रर्याप्त-वेग के सदृश इसका वेग होनेपर जड़त्व बिल्कुल अन्तिम सीमा को प्राप्त होता है किन्तु इसके लिये यह विद्युद्धार बिलकुल पतले बिन्दु के बराबर होना चाहिये।

अब तक प्रकाशके समान वेगवाला अन्य कोई पदार्थ अस्तित्वमें नहीं था और इसीलिये जड़-वर्धन का प्रश्न कम महत्वका था। ऋण-ध्रुवसे निकलने वाले कणोंका वेग प्रत्येक सेकण्डमें २०००० मील होता है और एक प्रतिशतके हिसाब से वृद्धि होती है। बल्कि अब इसकी अपेक्षा भी कहीं कहीं जो अधिक वेग है वह विद्युत्किरण विसर्जक (Radio active) पदार्थोंकी ओरसे फेंके हुए विद्युत्कणोंका अथवा परमाणुओंका होता है। अतः यह भी अब महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि इस तरहकी किरणोंका जड़त्व क्या होना चाहिये।

(१३) जड़त्वके विद्युत्सिद्धान्तका समर्थन—जिस कण से इस जड़ताकी गिनती और तौल होती है वह कण मूलमें ही केवल-विद्युन्मय है और उसके मध्यबिन्दुमें भी दूसरा द्रव्य नहीं है। बिना इस बातके सिद्ध हुए यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि जड़त्व अथवा जड़त्व-वर्धन विद्युन्मूलक है। उपरोक्त कथनको सिद्ध करनेके लिये थामसनने इस बातका विचार किया था कि किरण-विक्षेपणका उष्णता-उत्पादनसे क्या सम्बन्ध है। यह तो ऊपर सिद्ध हो ही चुका है कि जो किरण-विक्षेपण होता है वह उस कणके विद्युत्मार्गके कारणही होता है और इतर द्रव्योंके कारण उष्णता उत्पन्न होती है। इस प्रयोगसे भी उपरोक्त कथन पूर्णरूपसे तो सिद्ध होता नहीं है। अतः इसके बाद काफमॅनने अन्य रीतिका अवलम्बन लिया। उसने विद्युत् तथा विद्युच्चुम्बकीय शक्तिके क्षेपमें एक ही समय में एकही प्रकारकी किरणें मिलाकर और उन शक्ति रेखाओंको एक ही दिशासे छोड़कर यह पता लगाया कि प्रत्येक शक्तिकी सहायतासे वे रेखायें कैसे घूमती हैं। इसी प्रयोगसे उसने यह भी पता लगाया कि जब इन किरणोंका वेग प्रकाश-वेगके लगभग बराबर पहुँचता है तब विद्युत्भारका मूल्य जड़त्वके विद्युत्सिद्धान्तके योगसे जितना बढ़ना चाहिये उसी मानमें बढ़ता है। यह सिद्धांत जड़त्ववर्धन विद्युत्के कारण ही है। दूसरा कारण इसका कुछ भी नहीं है। काफमॅनके उपरोक्त प्रयोगसे जिस समय उस कणका वेग प्रकाश के वेगके बराबर होता है उस समय विद्युतके सिवाय किसी भी अन्य प्रकारके द्रव्यसे होनेवाले जड़त्वके लिये स्थान ही शेष नहीं रहता।

काफमॅनके गिने हुए विद्युत्कणका अधिकसे अधिक वेग २·३६, २·४८, २·५६, २·७२, २·८५ × $१०^{१०}$ सेन्टीमीटर और प्रकाशका वेग ३·० × $१०^{१०}$ सेन्टीमीटर है। अतः उपरोक्त दोनों गतियोंके अनुसार प्रकाशको १ मान लेने पर विद्युत्कणका ·७८७, ·८२७, ·८६३, ·९०७ तथा ·९५ होगा। जब गति प्रमाण कुछ भी नहीं रहता,

ऐसेकी अपेक्षा प्रकाशकी गति कुछ भी निर्धारित रहनेसे मूल-पिण्ड जितना बढ़ा हुआ देख पड़ता है उसका प्रमाण अनुक्रमसे १·५, १·६६, २·०, २·४२, ३·१ होता है किन्तु प्रत्यक्ष देखा हुआ १·६५, १·८३, २·०४, २·४३, ३·०४ होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोग तथा सिद्धान्त कितने मिलते जुलते हैं।

इस प्रकार सिद्धान्त तथा प्रयोगोंका फल बिल्कुल एक हो गया। चाहे यह सिद्धांत काल्पनिक ही हो कि विद्युत्कणोंका जड़त्व विद्युत्भारके कारणही है तथापि उसके विरुद्ध शंका करनेका स्थान नहीं मिलता। यदि कोई यह कहे कि विद्युत्कण द्रव्यमध्य और वे सब विद्युन्मय नहीं है तो यह सिद्ध करनेका भार उसी पर होगा। आज तकके प्रयोगसे तो उपरोक्त कथन ही सिद्ध हुआ है। किन्तु परमाणुके विषयका प्रश्न फिरभी रही जाता है। आज तक भी इसका ठीक ठीक समर्थन नहीं हो सका कि परमाणु पूर्णतः इन विद्युत्कणोंसे ही बना हुआ है।

द्रव्य सम्बन्धी विद्युतदृष्टि—उपरोक्त वर्णित भिन्न भिन्न प्रयोगोंसे यह सारांश निकलता है कि महत्व के गिनेजाने वाले चपल कण केवल विद्युत्भार हैं और उनका मध्य भी द्रव्य या किसी अविद्युत पदार्थका नहीं है। इससे यह महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है कि ऋण-विद्युत् छोटे छोटे भिन्न २ अभेद्य तथा अद्रव्य भागोंमें भी रह सकते हैं और इससे विद्युत्प्रवाह, लोहचुम्बक तथा तेजोत्पादक मूल दृश्योंका अर्थ हम लोगोंकी समझमें आने लगता है, किन्तु रासायनिक क्रिया द्वारा किरण विसर्जनका भली भाँति स्पष्टीकरण, विद्युद्वहन सम्बन्धी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें देख पड़ने वाले अन्तरका अर्थ इत्यादि पूर्ण रीतिसे समझनेके लिये यह भी जानना आवश्यक है कि जड़ पदार्थ क्या है। विद्युत्कणके अंगमें विद्युज्जड़त्व होना सिद्ध हो चुकने पर भी परमाणुके सम्बन्धमें यह अभी सिद्ध नहीं किया जा सका है। इसके अतिरिक्त अभी तक केवल ऋणविद्युत्कण ही देखनेमें आया है। धन-विद्युत्कण अभी तक देखनेमें नहीं आया। इससे यह विदित होता है कि द्रव्य परमाणुसे भिन्न उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। सम्भव है द्रव्य परमाणु स्वयं ही धन-विद्युत्कणका गोला हो। केवल अनुमान ही अनुमान इस पर किये गये हैं निश्चय कुछ नहीं कहा जा सकता। लॉरमूरका मत है कि धन-विद्युत्कण दर्पणमें दिखलाई पड़ने वाला ऋण-विद्युत्कणका प्रतिबिम्ब है और प्रयोगकी घटना इसी दृष्टिसे करनी चाहिये। जो कुछ भी हो पर पदार्थ विज्ञानशास्त्रका मुख्य प्रश्न अब यह हो रहा है कि ये धन-विद्युत्कण क्या है। बिना यह निश्चय हुए यह समझमें आ ही नहीं सकता कि परमाणु क्या है। तथापि इसके वास्तविक रूप तथा अस्तित्वके विषयमें कुछ कल्पनायें नीचे दी हुई हैं।

(१) परमाणुका मध्यभाग साधारण द्रव्यका ही बना हुआ है। भेद केवल इतना ही है कि जो विद्युत्कण अर्थात् ऋण-विद्युत्कण उसके चारों तरफ रहते हैं उनके विद्युत्भारको शून्य करनेके लिये उनमें कुछ विद्युद्भार रहना आवश्यक है।

(२) परमाणुका पिण्ड धनविद्युत्कण तथा ऋण-विद्युत्कणसे बना हुआ होगा। यद्यपि सुदृढ़ बन्धनोंसे वे एक दूसरेसे नथे हुए हैं तो भी कुछ न कुछ तो उनकी अन्तर रचना होगी हो।

(३) परमाणुका मध्य धन-विद्युत्के एक ही अभेद्य गोलेका होगा उसका आकार प्रायः गोल रहेगा और उसमें विद्युत्भारके लिये पर्याप्त धन-विद्युत्कण मिले हुए होंगे। ये चक्रगतिसे चारों तरफ घूमते होगें।

(४) धन तथा ऋणविद्युत्के आपसमें पूर्ण रूपसे मिल जाने पर परमाणु बन गया होगा। उनको एक दूसरेसे अलग करनेके लिये चाहे कितनी शक्ति लगाई जाय वे कभी भी अलग नहीं हो सकते। सदा वे इसी प्रकार रहते होंगे, मानो वह एक ही पिण्ड है।

(५) परमाणु तीव्रतासे एकजीव किया हुआ धन-विद्युत्रूपी एक सूर्य है जो मध्य भागमें स्थिर है। उसके चारों तरफ उसके कक्षकी आकर्षण शक्तिकी सीमामें बहुत ऋणविद्युत्कण फिरते होगें।

इन कल्पनाओंमें से तीसरी कल्पनाके अतिरिक्त और सब अनिश्चित हैं। सन्देह तो तीसरी कल्पनामें भी है। जब तक धनविद्युत्का अर्थ हमारी समझमें पूर्ण रूपसे नहीं आता तब तक यह सन्देह बनाही रहेगा। इसके अतिरिक्त इसमें और भी बहुत सी निश्चित बातें दिखाई पड़ती हैं। इस कल्पनाका चाहे मूल्य कुछ भी न हो किन्तु इससे अब तक बहुत सा काम हुआ है। यद्यपि यह कल्पना अब तक पूर्णताको प्राप्त नहीं है तो भी उसके स्वाभाविक मूल्यके कारण उस ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। एक विद्वान् विज्ञानवेत्ताने कुछ काल पूर्व ही एक लेख लिखकर इसे और भी सन्देहात्मक बना दिया है। अतः इस

कल्पनाको भी अधूरी ही छोड़नी पड़ती है। यद्यपि विद्युत्कणोंकी रचनाका विषय छोड़ भी दिया जाय तो भी इस दृष्टिसे कुछ गुण धर्मोंका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है कि द्रव्य विद्युन्मय है।

संसक्तिस्वरूप Nature of Cohesion—तीसरी कल्पनाके अनुसार यह माना जाता है कि विद्युत्कण एक नियमित आकारमें मिले हुए हैं। स्फटिक शाखाके अध्ययनसे यह मालूम होगा कि उनके कौन कौनसे आकार होते हैं।

रासायनिक आकर्षण—वास्तविक रासायनिक आकर्षण दो परमाणुओंमें होता है। इस परमाणुमें किसी जातिका एक या एककी अपेक्षा अधिक अनियमित विद्युत्कण होते हैं। किसी परमाणुमें ऋणविद्युकण अधिक होते हैं तो किसीमें धनविद्युत्कण अधिक होते हैं। यदि ऐसे दो परमाणुओंका सानिध्य हो तो उनकी कमी या अधिकता पूरी हो जाती है और एक (Neutral) तटस्थ अणु तयार होते हैं। किन्तु यह संयोग चिरस्थायी नहीं होता क्योंकि जहाँ यह संयोग होता है वहीसे छूट जाता है। केवल (Organic) कार्बनिक रसायनशास्त्रमें रसायनोंको चाहे जिस भाँति भिन्न भिन्न प्रकारसे पृथक करनेकी पद्धतियां प्रचलित हैं। घर्षणके योगसे इन अणुओंका विद्युत्सम्भार कम या अधिक होता है। जिसका वज़न अधिक होता है ऐसे स्थूल परमाणु स्वयं ही अस्थिर होते हैं। इस भाँति अस्थिर होने पर फिर स्थिर होनेके लिये वे अपनी भीतरी बनावट में परिवर्तन करते हैं। यह परिवर्तन होते समय आवश्यकतानुसार वे विद्युत्कणोंको बाहर फेंक देते हैं। इसी कारणसे किरण विसर्जन (Radio-activity) का दृश्य दर्शनीय होता है।

अणु शक्ति (Molecular force)-रासायनिक संसक्तिको छोड़ कर अणु-संसक्तिका भी कुछ अंश होता है। इस अणु-संसक्तिका जोर ऐसे ही परमाणु पर चलता है जिस पर विद्युत्भार अथवा विद्युदणु नहीं होते। विद्युत्कणके सुव्यवस्थित रीतिसे रहते समय परमाणु पर छोटे २ खे या गड्ढे तयार होते हैं। यदि इस प्रकारके एक दूसरेमें रहने लायक दो खे एक स्थान पर आ जाय तो दो परमाणु जुड़ जाते हैं। यही कारण है कि इस प्रकारकी संलग्नता दृढ़ नहीं होती और साधारण अन्तर पर इस आकर्षणकी कुछ भी शक्ति नहीं होती किन्तु परमाणु ज्यों ज्यों निकट पहुँचते हैं त्यों त्यों यह आकर्षण अधिक होता है। मालूम होता है कि यह क्रिया विद्युच्छक्तिके कारण होती होगी। किन्तु इस प्रकारकी संसक्ति उन्हीं अणुओंमें होती है जो रासायनिक दृष्टिसे संवृत होते हैं। यह संसक्ति अन्तरमें स्थित धनविद्युत्कणोंकी एक दूसरे पर क्रिया और प्रति क्रियाके कारण होती है। अथवा यों कह सकते हैं कि यह कार्य अविशिष्ट स्नेहाकर्षणसे होता है। यदि दो अणु अणवन्तरके बाहर के हों और उनके आमनेसामनेके भाग यदि विरुद्ध विद्युद्धारसे भारी कर दिये जावें तो क्षण भरमें रासायनिक आकर्षणके समान आकर्षणसे संसक्ति शक्ति बढ़ेगी और अणवन्तरकी अपेक्षा अधिक अन्तर पर इस संसक्ति-शक्ति का परिणाम देख पड़ेगा। परमाणुके ध्रुवी-भवनसे साधारण अणु शक्तिका औपक्रमिक अथवा रासायनिक स्नेहाकर्षणमें रूपान्तर होता है। इन दोनों तरहकी शक्तियोंका ऊपर दी हुई तीसरी कल्पनासे विद्युतके ही आधार पर स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

परमाणुके रचनाके सम्बन्धमें कुछ और विचार—तीसरी कल्पना पर लोगोंका आक्षेप है कि उनके भागमें अन्यान्य प्रतिकार होने पर भी धन-विद्युत् पिण्ड एक ही स्थानमें कैसे रह सकता है। यह आक्षेप केवल धन-सम्बन्धी ही नहीं ऋण-सम्बन्धी भी हो सकता है। यदि वास्तवमें इस आक्षेपमें कुछ तथ्य है तो यह कहना चाहिये कि विद्युत्कणोंके कुछ और भी भाग हैं, और अभी तक यही ज्ञान प्राप्त हो सका है कि भिन्न भिन्न विद्युत्कण एक दूसरेका प्रतिकार करते हैं। वे धन-विद्युत्भारसे आकर्षित भी होते हैं। किन्तु यह हम लोग नहीं जानते कि एक ही विद्युत्कणके विभाग एक दूसरेको दूर ढ़केल देते हैं। विद्युत्कणकी कार्य शक्ति-दिखलाने वाली रेखायें हर प्रकारसे बाहर ही रहनी चाहिये। उनका भीतर रहना आवश्यक नहीं। और सब विद्युत् क्रियाओंके लिये विद्युत्कणका अविभक्त रहना ही अच्छा है।

दूसरा मत यह है कि हमलोग जिसे परमाणु कहते हैं वह केवल धनविद्युत्का ही नहीं, साथ ऋण और धन, दोनों ही विद्युत्का कभी दूर न होने वाला पूर्ण मिश्रण है। वे बाह्य-पदार्थोंसे कभी किसी तरह अकेले व्यवहार ही नहीं करते, बल्कि दोनोंके मिश्रणके गुण-धर्मानुसार व्यवहार करते हैं। उदाहरण-वास्तवमें जल, वायु तथा उज्ज दो पदार्थोंसे बना हुआ है, किन्तु जलका बाह्य शक्तिके साथ प्राण अथवा उज्जमें से किसी

एक स्वतन्त्र शक्तिके रूपमें व्यवहार नहीं होता, केवल जलरूपसे ही होता है। यही नियम उपरोक्त परमाणु पिण्डका भी है। इस जलमें ज्यों ज्यों प्राणके अधिक परमाणुओं समावेश होता है त्यों त्यों इस पर परमाणुके चारों ओर अधिकाधिक विद्युत्कण घूमते हैं। ऐसी अवस्थामें परमाणुओंको एकत्र करके पकड़नेके लिये शक्ति रेखायें भीतरकी ओरसे जाती हैं, बाहरकी ओरसे नहीं जातीं। इसी कारण किसी निकटस्थ दूसरे परमाणुओं पर उसका परिणाम नहीं होता। इसके भार रहित होनेके लिये और इसी प्रकार प्रत्यक्ष विश्लेषणके सिवाय उनके पृथक्करणके लिये और कोई मार्ग ही नहीं रह जाता।

(१६) किरण विसर्जन—प्रत्येक पदार्थके परमाणुके चारों तरफ विद्युत्कण रहते हैं और वे उसके कक्षमें भ्रमण करते हैं। यदि यही बात है तो प्रश्न उठता है कि क्या वे निरन्तर किरण विक्षेप किया करते हैं, क्योंकि घूमने वाले विद्युत्भार एक प्रकारके विसर्जक हैं। और कम या अधिक प्रमाणमें विसर्जन भी किया करते हैं। इस कारणसे उनकी गति-शक्ति नष्ट होती है और अन्तमें वे शान्त हो जाते हैं। अथवा उनका परिवर्तन दूसरे रूपमें हो जाता है। आधुनिक प्रयोग करने वालोंको कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं जिससे केवल उपरोक्त रीतिसे क्रिया होनेवा ोंका विसर्जन एकही प्रकारका नहीं बल्कि बहुत प्रकारका होता है।

पहला प्रकार—यह रॉटजेन किरणके समान लहरके रूपमें होती है। इनको 'ग' किरण कहते हैं।

दूसरा प्रकार—ऋण ध्र व किरणके समान एक किरण। इसमें प्रत्यक्ष विद्युत्कणही रहते हैं। इनको 'ब' किरण कहते हैं।

तीसरा प्रकार—इसमें विद्युत्भार सहित विद्युदणु, परमाणु अथवा अर्ध परमाणु प्रायः सौर (हेलियम) वायुके स्वरूपके होते हैं। ये दूर फेंक दिये जाते हैं। इनको 'अ' किरण कहते हैं।

चौथा प्रकार—इन सब विसर्जनोंके अनन्तर विद्युद्भार-रहित अवशिष्ट भागसे गंधकके रूपमें निकलता है।

जिन पदार्थोंके परमाणुका वजन अधिक होता है उनमें उपरोक्त प्रकारके विसर्जन होते हैं। इसका कारण अत्यन्त वेगयुक्त अंतः क्षोभ है। जिससे रॉटजेन किरण निकलती हैं।

आघातके कारण होने वाली किरण विसर्जन क्रियाओंको तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, किन्तु जिस कारणसे विद्युत्कण कक्ष भ्रमण करते हैं, उसी कारणसे उन पदार्थोंकी तरफ़से भी विक्षेपण क्यों नहीं होता, जिन पदार्थोंके परमाणुका वजन थोड़ा है। इसका उत्तर इन प्रकार दिया जा सकता है कि इन पदार्थोंमें विसर्जक अलग अलग नहीं होता, और पृष्ठ भाग पर का विसर्जन उनके योगसे होता है जो भीतरकी ओर रहते हैं। ये विसर्जक संख्यामें भी अधिक रहते हैं, और यदि एकसे अधिक विसर्जक हो तो उनके व्यक्तिशः विसर्जनसे अन्यान्य विसर्जनका नाश होता है; और इसी कारण बाह्य परिणाम कुछ भी नहीं दिखाई पड़ सकता।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो उष्णता मान कम होनेके कारण पदार्थोंसे किरण विसर्जन होता है। और यदि शक्तिक्षय न होती हो तो उसका कारण आयात और निर्यात् अथवा ग्रहण और विसर्जनका समान होना ही कह सकते हैं। यह बात नहीं है कि विसर्जन रुक जाता है। यदि यह देखना हो कि इस प्रकारसे कितना विसर्जन होता है तो जिस पदार्थके विसर्जनका हिसाब जानना हो उस पदार्थको शून्यांश उष्णताकी जगह रखना चाहिये क्योंकि उस जगह वह किसी प्रकार की शक्ति ग्रहण न कर सकेगा। जो कुछ भी होगा वह सब विसर्जन ही द्वारा होगा।

यदि अन्तः शक्ति व्यय करते हुए किरण विसर्जन होता हो तो परमाणु स्थिर न होंगे, बल्कि क्षणिक और अस्थिर होने लगेंगे, और उनमें अन्त स्फोटका होना भी स्वाभाविक होगा। सब परमाणुओंको इस दृष्टिसे एक ही प्रकारका व्यवहार करना चाहिये। किरण विसर्जनका विषय बहुत गहन है। इसलिये उसके विस्तृत विवेचन करने का यहाँ विचार नहीं है।

कुछ ऐसे पदार्थोंका भी किरण विसर्जन होता है, जिनके योगसे विद्युत उत्पन्न होकर छाया चित्र बनानेके लिये तैयार किये हुए शीशे पर परिणाम उत्पन्न करती है। बहुतसे पदार्थ विद्युत्कण अथवा विद्युदणुके सदृश कण फेंकते हैं। जिस समय यह फेंके हुए कण फोटोके प्लेट पर गिरते हैं, उस समयके उनके आघातके योग से विद्युत् रंग उत्पन्न करते हैं और इस योगसे उस शिशेके टुकड़े पर लगाये हुए राजतक्षार पर परिणाम होता है। ये गुण वरुण (युरेनियम), रद (रेडियम) इत्यादि उन धातुओंमें ही नहीं होते जिनके परमाणु वजनी होते है किन्तु और सब पदार्थोंमें होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है

कि इन पदार्थोंमें से खासकर वही पदार्थ दिखाई पड़ते हैं जिनके परमाणु वज़नी होते है।

तीव्र किरण विसर्जन शक्ति-वाले रद (रेडियम) तथा पोल (पोलोनियम) आदि पदार्थोंमें से जो 'अ' किरण निकलती है उनका जशदगंधकिदसे आघात होता है जिससे प्रकाशित किरणे निकलने लगती हैं। ये किरणें किंचित् बड़ी की जाने पर दिखाई देने लगती है। अथवा इस क्षार स्फटिक पर इसका प्रयोग करनेसे भी उनमें से किरणें निकलने लगती हैं।

कुछ ऐसे परिवर्तन भी होते हैं जो किरण रूप में नहीं होते, इस कारण परमाणुका वजन नहीं बदलता। बल्कि जब जब 'अ' किरण विक्षेपण होता हो तब तब सौर (हेलियम) वायुके परमाणुके वजनके प्रमाणसे इसका वजन कम होना चाहिये। रॉटज़न किरणोंके साथ सर्वदा विद्युत्कण रहते हैं। ये सब निकले हुए पदार्थ वायुरूप में या उसके सदृश होते हैं और शेष (Solid Deposit) घन निक्षेप रूपमें होते हैं। ये निसृत द्रव्य उसी स्थान पर जमा होकर रहते हैं और ये जिस पदार्थ पर जमा रहते हैं उसकी किरण-विसर्जन क्रिया पूर्वसे भी अधिक होने लगती है, क्योंकि ये निसृत द्रव्य मूल द्रव्यकी अपेक्षा तीव्र क्रिया-कारक होते हैं। रेडियम परसे निसृत द्रव्य शून्यांशके नीचे १५०° का अंशके समय द्रवरूपमें आते हैं।

जिस समय 'अ' किरण का लोहचुम्बकीय क्षेत्रमें प्रवेश किया जाता है उस समय अपने मार्ग से वे किञ्चित वक्र हो जाते हैं। इससे यह पता चलता है कि उनके ऊपरका विद्युत्भार धन है। रूदर फोर्ड तथा बकेरल आदि विज्ञान वेत्ताओंका मत ऐसा ही था। किन्तु थोड़े दिन हुए सॉडी नामक विज्ञान वेत्ताने यह शंका की कि यह धनविद्युत्भार मूल का नहीं हैं बल्कि वायुके विद्युदणवी भवनसे बीचमें ही आया होगा क्यों कि यदि निर्वात् स्थान ठीक रीतिसे बनाया गया हो तो किरणोंके अङ्ग में बक्रता नहीं आती। इससे यह सिद्ध कर दिखाया कि मूलारम्भमें उनके अंगों में किसी प्रकारका विद्युद्भार नहीं होता। इस प्रकारके दो प्रयोग करके उसने यह सिद्ध कर दिया था। इसी भाँति उसने यह भी दिखाया है कि रेडियम धातुकी किरण-विसर्जक प्रत्येक उष्णमानताके समय समान रहती है।

(१७) रेडियम धातुके योगसे दिखलाई देने वाला विच्छिन्न किरणपट—रेडियमके विच्छिन्नकिरणपटके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) जिस प्रकाशमें रेडियम जलता है उस प्रकाशका ही विच्छिन्न-किरण पट। (२) रेडियमसे निकलने वाले प्रकाशका विच्छिन्नकिरणपट। यदि दूसरे प्रकारका विच्छिन्नकिरणपट देखा जाय तो यह पता चलता है कि वह नत्रवायु (Nitrogen) का है। इससे यह सिद्ध होता है कि रेडियम यदि वायुमें रहे तो नत्र पर बहुत धक्के बैठते हैं। रेडियमका जो स्वयं प्रकाश है वह दूसरी वस्तु पर होने वाले उसके परिणामके कारण है। यदि सादा शीशा रेडियम की किरण पर रक्खा जाय तो वह काला हो जावेगा।

विद्युद्दर्शककी सहायतासे रेडियम धातुका पता बहुत ही सूक्ष्म भेदग्राही रीतिसे लगाया जाता है। रेडियमकी किरण विसर्जन क्रियाकी अपेक्षा जो अधिक विद्युदणवी-भवनकी शक्ति है उसका उसमें उपयोग होता है। प्रत्येक 'अ' किरणकण अपनी गति-रोध होनेके पूर्व हजारों विद्युदणु उत्पन्न करता है। इसी सूक्ष्म ग्राहकताका विद्युद्धारित विद्युद्दर्शक यह दर्शाता है कि उसके विद्युन्नाशके योगसे कितनी विद्युदणवीभवन क्रिया होती है किन्तु एक मिलीग्रॉम रेडियम से प्रत्येक सेकेण्डमें इस प्रकारके कोटिशः कण निकलते हैं।

(१८) विद्युद्विषयक उत्पत्ति—डब्ल्यू० बीन नामक विज्ञानवेत्ताने यह पता लगाया है कि यह शक्ति किरणसे निकलती है। तथा 'अ' और 'ब' किरण परमाणुओंकी अलग अलग भेदक शक्तिसे लाभ उठाकर एक प्रकारकी किरणोंको छोड़ते जाते हैं और दूसरी प्रकारकी किरणोंको एकत्रित करते जाते हैं। स्ट्रटने एक ऐसा नवीन यन्त्र तय्यार किया है कि जिससे पता चलता है कि किस प्रकार से विद्युत् उत्पन्न होती है। उसने शीशेकी एक छोटी नली लेकर उसके बाहरके पार्श्वको विद्युत्प्रवाही किया और उसने सुवर्ण पत्र लगाया। तब उसने नलीमें रेडियमका क्षार रख कर विद्युत्प्रवाही पदार्थोंसे उसका सम्बन्ध तोड़ कर उसने उसके चारों तरफ निर्वात प्रदेश स्थापित किया। रेडियमसे धन तथा ऋण दोनों ही कण समान प्रमाणमें निकलते हैं, किन्तु ऋण कण छोटे तथा भेदक होते हैं। इसी कारण वे शीघ्र निकल जाते हैं और धन उसी प्रकार बढ़ते जाते हैं। इस कारण सुवर्ण-पत्र पर विद्युत्भार जमा हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि किरण विसर्जन से विद्युत्का उत्पादन होता है। यह बात

बराबर देखी जाती है कि विद्युद्धारित विद्युदर्शक रेडियमके अभावमें भी विद्युत्को धीरे धीरे कम करता है। यह विद्युन्नाश वातावरणके विद्युदणवी-भवनसे होता है। यह अणवीभवन कुछ अंशोंमें बाहर आनेवाले किरण-विक्षेपसे होता है और कुछ अंशोंमें उन धातुओंके किरण-विसर्जन से होता है जिस धातुके पत्रोंकी पट्टी विद्युदर्शक में बैठाई रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि साधारण पदार्थोंमें भी किरण-विसर्जन होता है।

सब पदार्थोंकी निकटवर्ती वायुमें विद्युदणवी-भवन होता रहता है। इसी आधार पर नार्मन कॅम्बैल नामक विज्ञानवेत्ताका कथन है कि प्रत्येक पदार्थोंमें यह किरण-विसर्जन-धर्म होना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रयोग द्वारा यह भी देख पड़ता है कि प्रत्येक पदार्थकी कुछ विशिष्ट किरण-विसर्जन क्रिया होती है। इससे इस कल्पनामें बाधा पड़ती है कि प्रत्येक पदार्थमें थोड़ा बहुत रेडियम का भाग रहता है जिससे वह उत्पन्न होती है अतः यही सिद्ध होता है कि किरणविसर्जनक्रिया रेडियम अवशेषकी ही नहीं बल्कि प्रत्येक पदार्थ के अंगमें रहने वाली विशिष्ट किरणविसर्जन क्रिया है। यदि किरणविसर्जन पृथक्करणका चिह्न है, और इसके कारण यदि प्रत्यक्ष पृथक्करण और द्रव्य नाश होता हो तो फिर यह किरण-विसर्जन जिन पदार्थोंमें तीव्रताके साथ होती है वे पदार्थ बहुत ही थोड़े प्रमाणमें अस्तित्व में होना चाहिये। जो साधारण चिरकालिक द्रव्य हैं वे किरण-विसर्जनमें बहुत तीव्र नहीं होते किसी भी पदार्थकी विपुलता उसके उत्पादनके प्रमाण, उसकी आयुष्यविधि तथा नाश-प्रमाण पर ही अवलम्बित रहती है।

(१९) विद्युत्कण वलयांकित किरण-विसर्जन—कम्पित होने वाले या घूमने वाले एक विद्युत्कणकी किरण विक्षेपण-शक्ति यदि बहुत कुछ भी हो तोभी उसके सम प्रमाण पर यदि कोई दूसरा विद्युत्कण आवे तो उन दोनोंकी किरण-विक्षेपण शक्ति बहुत कुछ कम हो जावेगी, क्यों कि वास्तवमें कुछ अन्तर पर वे बिलकुल विरुद्ध अवस्थामें होते हैं। यदि किरण-विक्षेपण बढ़ाना हो तो व्यासके दूसरे सिरे पर रहने वाला विद्युत्कण निम्न रीतिसे अङ्कित होना चाहिये। प्रो० थामसनने दिखाया है कि विद्युत्कणोंकी संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती है त्यों त्यों किरण-विक्षेपणकी संख्या किस भाँति कम होती जाती है। सम-भुज-त्रिकोणके तीनो कोने पर यदि एक-जातीय विद्युत्कण हों तो उन तीनोंका किरणविक्षेपण दो स्वतंत्र रहने वाले किरण-विक्षेपणोंकी अपेक्षा कम होगा। व्यासके दोने सिरों पर रहने वाले विद्युत्कणोंका किरण-विक्षेपण एक सिरेके किरण-विक्षेपण के १/१० भागके बराबर भी नहीं होता। यदि काटकोन त्रिकोणके चार कोनों पर रहने वाले चारों विद्युत्कणोंके किरण विक्षेपणकी गतिका १/१० भाग हो तो एक साथ ही चारोंकी गति १/१०००० होगी। किन्तु चाहे किसी कारणसे ही क्यों न हो यदि वे सम प्रमाणसे निकाले जावें और उनकी एक साथ ही गतिका विचार किया जावे तो उनका अन्यान्य-किरण-विक्षेपण नष्ट नहीं होता बल्कि सहसा बढ़ता ही जाता है। तीव्र उष्णता मानके योगसे होने वाला किरण-विक्षेपण भी इसी प्रकार सहसा तीव्र होता जावेगा।

(२०) परमाणुओंकी अस्थिरता—जब तक कोणात्मकवेग किसी मर्यादाकी अपेक्षा अधिक होगा तभी तक परिभ्रमित् विद्युत्कण वलयस्थिर रहता है। यदि त्रैकोणिक विद्युत्कण मानलिये जाँय, और स्वस्थ तथा स्थिर रहते हैं तो भी यदि वे घूमने लगें तो उनकी स्थिरता बढ़ने लगती है। किन्तु काटकोनके चतुष्कोणके चार कोनों परके चार विद्युत्कण लिये जाँय तो वे केवल घूमते ही हैं और स्थिर रहते ही नहीं। उनकी गति यदि ५७ के नीचे आवेगी तो उनकी काटकोन चतुष्कोणकी रचना बिगड़कर वह एकदम चतुष्कोण फलककी रचनामें आते हैं। पांच हों तो उनको इसकी अपेक्षा भी अधिक वेगकी जरूरत है। यदि छः हों तो किसी भी वेगसे स्थिर नहीं रह सकते, किन्तु यदि उसीमें ही सातवां कण मिलाया जाय तो वह वलय स्थिर रह सकता है। यदि बारह विद्युत्कणों के स्थिर वलयकी आवश्यकता हो तो सात मध्य भागमें रखने चाहिये और उनके आस पास पांच का वलय होना चाहिये। इस प्रकार बहुतसे कणों को भिन्न २ वलयोंमें व्यवस्थित रीतिसे बैठा सकेंगे किन्तु उन वलयोंकी गति तो नियमित गतिकी अपेक्षा अधिक होनी चाहिये। यदि यह गति उस की अपेक्षा कम होजाय तो फिर चाहे वह उसमेंके एक ही वलयकी क्यों न हो तो भी सबकी रचना बिगड़ जाती है और उसके बाद नयी घटना होती है। इस समय परमाणुओंकी रचनामें एकाएक क्षोभ उत्पन्न होता है। इस क्षोभके बाद उन परमाणुओंकी घटना होती है। नयी घटनामें संभाव्य शक्ति कम होती है, और गति-विशिष्ट शक्ति बढ़ती है और कुछ परमाणुओंके निकल जानेकी संभावना

रहती है। एक की जगह दूसरा ही पदार्थ बनता है। अथवा पहिला ही दूसरे रूपमें दिखाई पड़ता है। इन सबके होनेके समय किरण-विसर्जन होता रहता है। सारांश किरणविसर्जनक्रिया से ही यह होता है।

(२१) परमाणुओंकी अस्थिरताके विषयमें लॉजका मतः– परमाणुके आसपास परमाणु बाह्य नामका जो विद्युत्कण घूमता है उसकी शक्तिका ह्रास किरण विसर्जन क्रियाके कारण होता है और धीरे २ परमाणुकी ओर वह खिंचता जाता है और उसकी गति बढ़ती जाती है। उसकी गति बढ़ने पर उसका कार्यक्षम जड़त्व भी बढ़ने लगता है और फिर मध्याभिगामी शक्तिके योगसे उसे अपनी कक्षामें रखना कठिन हो जाता है। यह शक्ति विद्युदाकर्षण पर ही अवलंम्बित है गति पर नहीं। अतः जैसे जैसे गति बढ़ेगी वैसेही वह कम होगा। अंतमें एक ऐसा समय आवेगा कि विद्युदाकर्षण इस किरणके गोलेको अधिकारमें रखनेके लिये पर्याप्त नहीं होता और फिर वह वर्तमान गतिसे दूर हो जाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार दूर हो जानेसे उसको अधिकारमें रखने वाली विद्युदाकर्षण शक्तिका वेगकम होने लगता है किन्तु उसका मध्योत्सारी वेग कायम ही रहता है। इस प्रकारकी स्पर्धासे समतोलता नष्ट होती है और वह कण स्वतः के गतिचक्रके स्पर्श रेखाकी ओर परमाणुसे दूर निकल जाता है। और इस भाँति एक नयी प्रकारकी किरणविसर्जन क्रियाका आरंभ होने लगता है। यह किरण विसर्जन अति वेगसे दौड़नेवाले विद्युत्कणोंका उत्सर्जन है। इसका बेक्बेरल नामक विज्ञावेत्ता ने पता लगाया था। दो एक विद्युत्कणोंका सहसा उत्सर्जन होनेसे या उसकी गतिमें एकाएक रोध होनेसे ईथरमें एक प्रकारकी लहर (Current) उत्पन्न होती हैं उसीको रॉंटजेन किरण कहते हैं। क्योंकि इसका आविष्कर्ता रॉंटजेन नामक विज्ञानवेत्ता था।

(२२) उपसंहारः—इस विषय पर बहुत कुछ लिखने पर भी यह विषय पूर्ण नहीं होता तो भी स्थलसंकोचके कारण अधिक नहीं बढ़ा सकते। इसमें मुख्य महत्त्वका विषय विद्युत् मूल तत्व ही है। हमलोग जिसे परमाणु कहते हैं और जिसका इससे सूक्ष्म विभाग करना शक्य नहीं है वे इन विद्युत्कणोंसे ही बना है। और सब पदार्थोंके परमाणु भी इसी प्रकारसे बने हैं। सब पदार्थों के एक मूलत्वका या अद्वैत (Unification of matter) का जो तत्वज्ञोंका सिद्धान्त है उसकी सिद्धता पदार्थ-विज्ञान-वेत्ताओं ही द्वारा ही की गई है। यह ध्यानमें रखना आवश्यक है कि बहुत कुछ साध्य हो चुकने पर भी पूर्णरूपसे यह सिद्ध नहीं हुआ है, क्योंकि अब भी मुख्य प्रश्न विद्युत् मूल बिन्दुका ही है। इसके सिद्ध करनेके पहले बहुत कुछ और भी सिद्ध करना है। परमाणुका अवकाश स्थान विद्युत्कणोंको अपेक्षा भी अधिक है। यह मालूम होनेसे उसकी तुलना जिसके आस पास समान आकारका जड़त्व (Inertia) हो अथवा पारस्परिक विद्युद्योगसे आकर्षण तथा प्रतिसारण करने वाले गोले हो–ऐसे दो एक तेजोमेघसे कर सकते हैं क्योंकि इन तेजोमेघका किरण विसर्जन कुछ परमाणुओंके ऋ किरण के समान आघात या धक्केके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

परमाणु तथा अतिपरमाणु विद्युत्कण (Electrons) के आकारमें बहुत भिन्नता है। यदि अति परमाणु विद्युत्कण एक कागके समान माना जाय और एक परमाणुमें वे हजार माने जायँ तो उस परमाणुका आकार खुले अवकाशमें करीब लगभग १०० घन फीट होगा। ऐसा होने पर भी उसी अति परमाणु विद्युत्कणका भी परमाणु होता है। वही उसके जड़त्वके कारण हैं। इसीसे उसके कक्षामें जो परमाणु आवेंगे उनसे इसका संयोग होता है। किसी एक संख्यासे कम या अधिक होनेके कारण इसीके योगसे परमाणु भिन्न भिन्न गुणधर्म बतलाता है।

अति-परमाणु-विद्युत्कणके गुणधर्म पर विचार करके उसके विषयमें कुछ निश्चित् मत कर लेना युक्ति संगत नहीं होगा क्योंकि धन विद्युत् भागसे इतनी क्यों बंधी हुई होनी चाहिये और ऋण-विद्युत्कण मात्र इतनी स्वतन्त्रतासे क्यों घूमने चाहिये। इसी भाँति गुरुत्वाकर्षणका भी पूरा पूरा ज्ञान नहीं हो सका है। जब विद्युत्कणका सद्धान्त पूर्णरूपसे स्पष्ट होगा तभी गुरुत्वाकर्षणका प्रश्न भी सुलझ सकेगा। ऋण विद्युत्कणका ही विचार अब तक भलीभाँति होता रहा है क्योंकि वे स्वतन्त्ररूपसे भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु धन विद्युत्कणका बिना भलीभाँति ज्ञान हुए विद्युत्कणकी चाल इत्यादिका पूर्ण ज्ञान होना कठिन है। लॉरमूर नामक विज्ञानवेत्ता कहता है कि धन-विद्युत्कण ऋणविद्युत्कणका शीशेमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब है।

अब तक धन-विद्युत्कणके विषयमें जो कुछ मालूम है, उस पर विचार करनेसे विद्युत्कणके समान इनके स्वतंत्र अस्तित्वका नहीं पता लगता किन्तु

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि ऋण-विद्युत्कण निकाल लिये जावें तो जो शेष बचेगा वे धन विद्युत्कण होंगे। बेनजामिन फ्रङ्कलीन का मत इसी प्रकार है। इससे पूर्वकालीन विज्ञान-वेत्ताओंके मतकी पुष्टि फिरसे भविष्यमें होने की सम्भावना है।

धन और ऋणके मिश्रणसे परमाणु उत्पन्न होते हैं। किन्तु फ्रङ्कलीनका मत यह नहीं था। अभी तक ये सब अनुमान ही अनुमान है। ये सब अनुमान सिद्धान्तरूपमें तभी माने जा सकते हैं जब धन-विद्युत्कणका रूप पूर्णतया स्पष्ट हो जावे।

अतिरात्रयज्विन्—यह अप्पय्या दीक्षितका पौत्र और नारायण दीक्षितका पुत्र था। इसने 'कुशकुमुद्वितीय' नामक पंचाङ्की नाटक लिखा। 'नील कंठ विजय चम्पू' के रचयिता नीलकंठ दीक्षितका यह छोटा भाई था।

अतिविष—संस्कृतमें इसे अतिविष, घुण-प्रिया आदि नामसे सम्बोधित करते हैं। अंग्रेज़ी में इसे अकोनाइटम (Aconitum) हेटरोफिल कहते हैं। यह तीन प्रकारकी होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३) पीली। इस नाम से यह बोध होता है कि यह बचनागकी जातिमें होगी और विषपूर्ण भी है। परन्तु यह विषैली नहीं है, यद्यपि बनस्पति शास्त्रके वर्गीकरणके आधार पर तथा उसके आकार तथा रूपसे उसे वचनागके वर्गमें ही समझना चाहिये। यह वन-स्पति हिमालय तथा दूसरे पहाड़ी पठारों पर अधिकतासे पाये जाते हैं।

वर्णन—बजारमें यह गाँठोंसे युक्त देखनेमें आता है। इसकी जड़ें महीन महीन होती हैं। इसके सिरे महीन तथा नोकीले होते हैं। इसकी लम्बाई लगभग डेढ़ दो इञ्चकी होती है। और मोटाई लगभग चौथाई इञ्चकी होती है। उसका बाह्य छिलका कड़ा होता है और उसपर सिकुड़ने पड़ी रहती हैं। उसके बीच बीचमें जड़ोंके चिन्ह पड़े रहते हैं। वे सहजही तोड़ी जा सकती हैं। जड़ीके भीतरका रङ्ग सफ़ेद होता है। इसमें सुगन्ध बिल्कुल नहीं होती। इसमें अम्लता बिल्कुल नहीं होती। कुछ कड़वी अवश्य होती है। इसका सेवन करते समय प्रत्येक जड़ीको तोड़ना चाहिये। जो भीतरसे सफेद भूरी और कड़वी न हो उसे व्यवहारमें न लाना चाहिये। जिसको चबानेसे जीभ पर बारीक बारीक रोम उठने लगे और शरीर सुन्न होने लगे उसे भी व्यवहारमें न लाना चाहिये क्योंकि ऐसी जड़ी विषैली होती हैं।

गुण—इसमें विशेषतः ज्वरघ्न और शक्तिबर्धक धर्म है। यह पाचक और स्तम्भक भी होता है। ज्वर विशेषतः हिम्ब ज्वर, ज्वरके बादको अशक्तता, अपचन, वमन दस्त और खांसी आदिमें इसका उपयोग करते हैं। इसके छालका उपयोग कपड़ा रङ्गनेमें करते हैं।

प्रमाण—ज्वरमें २०-३० ग्रेन बुकनी प्रत्येक तीन अथवा चार घण्टेकी अवधि पर लेते रहना चाहिये। ज्वर होने पर भी अथवा उतर जाने पर किसी भी अवस्थामें लेनेसे हानिकी सम्भावना नहीं है। हिम्बज्वरके नियत समय (पारी) को टालनेके लिये समयके तीन चार घण्टे पूर्व अथवा पसीना आचुकनेके तीन चार घण्टे बाद कोपनेल की भाँति थोड़े जलके साथ इसे भी पी लेना चाहिये। शक्ति बढ़ानेके लिये अथवा और विकारों के लिये ५-१० ग्रेन तक बुकनी देनी चाहिये।

काढ़ा—यदि ज्वरके साथ दस्त भी होते हों तो अतिविष, सोंठ, नागरमोथा, गुड़ूचीकी जड़ तथा कुड्याकी छालको ६-६ माशे लेकर आधसेर जल में काढ़ा पकाना चाहिये और जब चौथाई हिस्सा जल रह जावे तो उसे दिनमें तीन चार बार थोड़ा थोड़ा लेते रहना चाहिये।

चूर्ण—छोटे लड़कोंके ज्वर, दस्त, खांसी अथवा उदर विकारसे वमनमें अतिविषका उपयोग करना चाहिये। उस समय या तो केवल उसीकी बुकनी अथवा अन्य औषधियोंके साथ उसको सेवन कराना चाहिये। अतिविष नागरमोथा तथा काकड़ासिंगीको सम भाग लेकर उसका चूर्ण बनाना चाहिये और अवस्थानुसार उसे शहद मिलाकर बालकोंको चटाना चाहिये। कभी कभी पीपलकी बुकनी भी मिलाते हैं। इन चारों औष-धियोंके चूर्णको 'बाला चतुर्भद्रिका' नाम चक्रदत्त ने दिया है।

अतिविषको संस्कृतमें जो 'घुणप्रिया' नाम दिया गया है वह अर्थके ऊपर ही रक्खा गया है। इसमें कीड़े लग जाते हैं, अर्थात् यह कीड़ोंको प्रिय है। इसीसे इसका नाम भी घुणप्रिया पड़ गया।

अतिसार—निदान-बार-बार और अधिक दस्त होनेको अतिसार कहते हैं।

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, भयज, और शोकज ये इस रोगके ६ प्रकार हैं।

अत्यन्त पानी पीना, शुष्क मांस भक्षण, आदत के विरुद्ध पदार्थोंका खाना, बहुल मद्यपान करना,

ज्यादा भोजन करना, अतिस्नेह भक्षण, केंचुआ, बवासीर, मलमूत्र इत्यादिका अवरोध तथा कुपित वायुके कारण अग्निमंद हो जाती है और मल पतला होकर गिरने लगता है।

अतिसार होनेके पूर्व हृदय, गुदाद्वार और अंतड़ियोंमें बड़ी वेदना होती है। शरीर ढीला हो जाता है। दस्त साफ़ नहीं होता, पेट फूल जाता है और अन्न नहीं पचता। इस प्रकार आरम्भमें यह सब होकर बादमें अतिसार होता है।

अतिसारके छः प्रकारोंमें से वातजन्य अतिसारसे पेटमें बहुत दर्द होता है। और दस्तके समय फर फर आवाज़ होती है और दस्त थोड़ा थोड़ा होता है। मल सूखा, लसदार, और गाठों से युक्त रहता है। गुदाद्वारमें कैंचीसे काटने की तरह पीड़ा रहती है (परिकीर्तन)। जले हुए गुड़के समान काला और लाल रंगका मल झाग युक्त होता है। रोगीका मुख सूखा रहता है। शरीर पर रोयें खड़े रहते हैं और चित्त ग्लानियुक्त रहता है।

पित्तजन्य अतिसारमें मल पीला, हरा और काला होता है। उससे अति दुर्गन्ध आती है। मलके साथ कभी कभी खून भी आता है। रोगी को प्यास अधिक लगती है। बेहोशी, पसीना और शरीरमें जलन पैदा होती है। पेट गड़ता है गुदाद्वारमें भी जलन पैदा होती है और वह पक जाता है।

कफज अतिसारमें मल बंधा हुआ, चिकना, सफेद और कफयुक्त रहता है। उससे अति दुर्गन्ध आती है। पेट हमेशा गड़ता है, रोगीको नींद अधिक आती है। अन्न अच्छा नहीं लगता दस्तके समय बहुत काँखना पड़ता है. आलस आता है, जी मचलाता है, पेट, गुदाद्वार और जांघे भारी हो जाती हैं। मल त्याग कर आने पर भी उसकी शंका बनी रहती है।

त्रिदोषसे होने वाले अतिसारमें सब दोषोंके लक्षण रहते हैं।

भयसे चित्तका क्षोभ होनेके कारण वायु पित्तयुक्त होकर मलको पतला करता है। मल बहुत गरम और पतला रहता है। उसके साथ खून भी गिरता है जिससे मल रत्ती (गुंज) के समान लाल रहता है। उपरोक्त वातपित्तात्मज अतिसार के लक्षण इसमें होते हैं।

शोकसे होने वाले अतिसारके भी ये ही लक्षण हैं। भय अथवा शोकसे उत्पन्न हुआ अतिसार कष्ट साध्य समझना चाहिये।

अतिसारके निम्नलिखित चार भेद हैं—

आम, निराम, रक्त और रक्त रहित। उनमेंसे आमयुक्त अतिसारमें मल पानीमें डूबता है। मलमें दुर्गन्धि रहती है। पेटमें दर्द, पेट फूलना, जी मचलाना आदि इसके लक्षण हैं।

इसके ख़िलाफ़ (विरुद्ध) लक्षण हों तो अतिसार निराम समझना चाहिये। कफ जन्य अतिसार निराम भी हो तो भी उसका मल पानीमें डूबता है।

जिस अतिसारमें मलका रंग पके हुए जामुन के समान स्वच्छ रहता है या घी, तेल, चरबी, दूध, दहीके समान, अथवा काला, नीला, अरुण वर्ण, अथवा इन्द्रधनुषके रंगका होता है। वह अतिसार असाध्य होता है। अधिक सड़ा हुआ मल जिस अतिसारमें गिरता है वह भी असाध्य है।

प्यास, शरीरकी जलन, आंखके सामने अंधेरा, दमा, बड़बड़ाना, हिचकी, पसलियोंमें दर्द, बेहोशी, चित्त अस्वस्थता, गुदाद्वारका पकना, गुदाद्वारका बन्द न होना, सूजन, पेटका दर्द, ज्वर दमा, प्यास, खाँसी, अरोचक, वमन, बेहोशी, हिचकी अथवा शरीरका ठंढा होना इत्यादि लक्षणोंसे युक्त अतिसार का रोगी अच्छा नहीं होता।

दमा पेटका दर्द, प्यास और ज्वर आदि लक्षणोंसे युक्त वृद्ध मनुष्य अतिसारके रोगसे नहीं बचता।

अतिसारके रोगीको मल त्यागसे स्वतन्त्र भी यदि पेशाब और वातासरण होने लगे तथा भूख, लगे और शरीर हलका हो जाय तो रोगीके अच्छा हो जानेकी पूर्ण आशा की जा सकती है।

चिकित्सा—अतिसार प्रायः मन्दाग्नि होने पर आमाशयके विकारसे उत्पन्न होता है। इसलिये चाहे वह वात जन्य भी हो तो भी प्रथम लंघन लाभदायक होता है।

यदि अतिसारमें पेटमें शूल हो, पेट फूला हो, और लार छूटती हो तो वमन करवाना चाहिये। पक्व और अपक्व आहारसे मिलकर जब बहुत पुराने विकार अतिसार उत्पन्न करते हैं तब वह अपने आप मलरूपमें बाहर निकलने लगते हैं। इसलिये उसे वैसे ही निकलने देना ही उसकी दवा है। अर्थात् पाचक, इत्यादि दवा न देकर पथ्य रखनेसे ही काम चलजाता है।

आमातिसार पर प्रथम ही स्तंभक औषधि नहीं

देनी चाहिये। पेट फूलना भारीपन, शूल, और सर्दी आदि विकार हों और पखाना थोड़ा थोड़ा होता हो तो स्तंभक औषधि न देकर रेचक हरें देनी चाहिये।

जिनका रोग मध्यम अवस्थाको पहुँच चुका हो उन्हें लंघन करना चाहिये. और अजवाइन, पीपल, सोंठ, धनिया, और हर्रेकी बुकनीका काढ़ा पीना चाहिये।

अतिसारके आरम्भके अथवा मामूली रोगी को उपास (लंघन) ही लाभदायक है। भोजनका योग्य समय आते ही यदि रोगी भूखसे कुछ व्याकुल हो जाय तो उसे हलका भोजन प्रमाणमें ही खिलाना चाहिये। ऐसा करनेसे उसकी रुचि अन्न पर शीघ्र ही बढ़ती है, जठराग्नि भी प्रदीप्त होता है और शक्ति भी आती है।

भोजनके पश्चात् पीनेके लिये मट्ठा, कांजी (ईख के रससे तय्यार होती है) द्राक्षासव इत्यादिकी स्वभावके अनुकूल योजना करनी चाहिये।

पित्तजन्य आमातिसारके आरंभमें भी पूर्व ही की भांति लंघन चिकित्सा करनी चाहिये।

लंघन करते समय प्यास लगे तो किराइत और उपलसरीके सहित गरमपानी पीना चाहिये। भूख लगे तो शतावरी, चिरना, रानमूग और उड़द से सिद्ध किया हुआ अग्निदीपक पेयादि लाभदायक होता है। इतने परभी अतिसार बन्द न हो तो इन्द्रजव, कुड्याकी छाल, और अति विषको कुचलकर चांवलके धोवनमें शहत मिला कर खाना चाहिये।

पित्तातिसारमें पित्तज पदार्थ खानेसे खून गिरने लगता है और गुदापक हो जाता है। इसमें मोचरस, उपलसरी, मुलेठी और लोध्रको बकरी के दूध, शहत और चीनीके साथ मिला कर पीना चाहिये। उसी दूधके साथ भात खाना चाहिये; और कपासकी तहें उस दूधमें भिगोकर गुदाद्वार पर रखना चाहिये। शतावरीके जड़ोंकी छालको दूधमें मिलाकर पीना चाहिये। अन्न नहीं खाना चाहिये। केवल दूधही पीना चाहिये। जिससे रक्तातिसार शीघ्र अच्छा होता है।

जिसे पेटमें दर्दके साथ बार बार थोड़ा थोड़ा दस्तके साथ खून गिरता है और वायुका अवरोध होनेके कारण वह कष्टसे निकलता है अथवा कभी कभी निकलता भी नहीं उसे पिछावस्ती देना चाहिये। शिसवा और सफेद कांचनका पत्ता कुचल कर और यव मिलाकर काढ़ा बनाना चाहिये। उसमें तूप और दूध डाल कर आम, गुदाभ्रन्श और कराहनेकी वेदनाओंमें पिछावस्ती के साथ देना चाहिये।

कफक्षीण अतिसार बहुत दिनों तक रहनेसे गुदा असक्त हो जाता है जिससे वायु प्रबल हो जाता है और एकाएक रोगीको मार डालता है। इस लिये शीघ्र ही उसका शमन करना चाहिये। वायुके बाद पित्त और पित्तके बाद कफको जीतना चाहिये अथवा तीनोंमें जो प्रबल हो प्रथम उसका शमन करना चाहिये। भय और कोपसे भी वायु कुपित हो जाता है इस लिये भयातिसार तथा शोकातिसार पर वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। रोगीको जिससे समाधान और आनंद हो वैसे उपाय करना चाहिये।

जिसे मलत्यागसे स्वतन्त्र भी पेशाब होने लगे वायु मूत्रत्याग तथा वातासरण होने लगे तथा अग्नि प्रदीप्त तथा पेट हलका हो गया हो ऐसे रोगी स्वस्थप्रद ही समझना चाहिये।

उपवास वमन, नींद, मांड, पुराने चावलका भात, खरगोश अथवा मृग मांसका रस बकरीका घी, दूध, दही, मट्ठा, शहद, जामुन, अनार, जायफल, अफीम, जीरा इत्यादि पदार्थ अतिसार में लाभदायक हैं।

सेंकना, रक्तस्राव, पानी पीना, स्नान, मैथुन, चनेकी घुघनी पराँठा इत्यादि, घीमें तली अथवा बघारी हुई वस्तु अथवा स्वभाव विरुद्ध अन्न, जिस अन्नकी आदत न हो उसे खाना, द्राक्ष, लहसुन, गिरी, साग, खट्टा और नमकीन रस इत्यादि पदार्थ अतिसारमें हानि करता है।

नाभिके दो अंगुल नीचे अर्धचन्द्राकार दागने से अतिसार अच्छा हो जाता है। शंखोदर रस, अगस्ति सुतराज, कुंकुम बटी इत्यादि योगरत्नाकरमें बताई हुई दवाइयाँ अतिसारके लिये गुणकारी हैं।

अतीत—सतारा ज़िलेमें यह एक गाँव है। १७३० ई० में जब रामचन्द्र पण्डित आमायको यह दिया गया था उसमें इस मौजेका उल्लेख आया है (ता० तारगाव-तर्फ हरेचरी) (रा. खं. ८ १२२. २५१)। शक १६१८ के कार्त्तिक मासमें सेनापति धनाजी जाधवने अतीत इत्यादि गावोंसे देश मुखीका झगड़ा तोड़ दिया था।

अतीत—इस जातिके लोग कच्छ प्रदेशमें भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। इस जातिमें अनेक उप-जातियाँ हैः—(१) गिर, (२) पर्वत, (३) सागा, (४) पुरी, (५) भारती, (६) वन (७) अरन, (८) सरस्वती, (९) तीर्थ और

(१०) आश्रम। इन लोगोंमें अपने नामके आगे अपनी उपजाति लगानेकी प्रथा है। जैसे चंचल भारती इत्यादि। इनमें जो आजीवन ब्रह्मचर्याश्रममें रहते हैं वे 'मठधारी' कहलाते हैं और जो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते हैं वे 'घरबारी' कहलाते हैं। मद्यमांस इनमें वर्जित नहीं है। बहुतेरे इनमें भीख मांगकर जीवन निर्वाह करते हैं। इनको गुसाईं भी कहते हैं। ये जनेऊधारी नहीं होते। स्त्रियोंके पुनर्विवाहकी प्रथा है। भुजमें कल्याणेश्वर अंजारके अजयपाल, तथा पश्चिममें कोटेश्वर, इन लोगोंके मुख्य निवास स्थान हैं। प्रायः ये शैव होते हैं। इनके मरनेके बाद इनकी समाधि बनायी जाती है और उस पर शिवलिङ्ग स्थापन करते हैं। इनकी कुछ बस्ती आसाममें भी है (Indian Ant-V 168 ब० ग०, सेन्ससरिपोर्ट)

अतीतानन्दः—इनके ग्रंथोंसे ठीक पता नहीं चलता कि इनके गुरू ब्रह्मानन्दके शिष्य स्वानन्दानन्द थे अथवा शिवानन्द थे। परन्तु रा० चान्दोरकरका यह मत है कि इनके गुरु शिवानन्द ही रहे होंगे। ग्रंथः—योग वासिष्ठ (सं० क० का सू०)

अतीश—यद्यपि बौद्ध साधु अतीश अथवा दीपंकर भारतवर्षका ही रहने वाला था, तथापि तिब्बतमें जाकर उसने वहाँके लामा धर्ममें बहुतसे सुधार किये। १०३८ ई० में जब वह तिब्बत पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँके तत्कालीन बौद्ध धर्मकी बागडोर वहां अन्यायी भिक्षुकोंके हाथमें है। चारों ओर प्रेत पूजा फैली हुई थी जिससे वे घोर अवनतिके गढ्ढेमें गिरते जा रहे थे। शुद्धतम बौद्धधर्मका उदाहरण सन्मुख रख कर उसने 'कादम' नामक नया पंथ चलाया। इसी धर्मके आधार पर वहाँका आधुनिक राष्ट्रधर्म 'गेलुग' (पीत-शिरस्त्राण) का प्रचार हुआ। प्रेत पूजा का नाश तथा ब्रह्मचर्य पालन आदि अनेक सुधार इसने किये। उसके लिखे हुए अनेक तात्विक ग्रंथोंमें से 'बोधि पंथ प्रदीप' विशेष प्रख्यात है। उसने भारतके अनेक बौद्ध-धर्मीय ग्रंथोंके अनुवाद तिब्बतकी भाषामें किये हैं। इसके उपदेश अत्यन्त लोकप्रिय तथा हितकारी थे। इसकी लोकप्रियताके कारण ही 'सस्क्य' तथा 'कग्यु' नामक दो अधूरे पंथोंका निर्माण हुआ था। सस्क्य पंथ तो बहुत दिनों तक जारी रहा। १०५२ ई०में लासा के पास (Ne-tang) नेटांगमें इसका देहान्त हो गया इसकी समाधी पर बना हुआ स्तूप आज तक मौजूद हैं।

अतूर—मद्रास प्रान्तके सालेम ज़िलेमें अतूर तालुकेका यह मुख्य स्थान है। यहाँकी जनसंख्या लगभग १०००० है। गाँवके उत्तरमें एक क़िला है। १८वीं शताब्दीमें यहाँ घेटीमुदलीयार नामक एक प्रसिद्ध सरदार रहता था। यह सालेमसे त्याग दुग जाने वाले पहाड़ी मार्गमें स्थित है। अतः हैदरअलीके युद्धमें इस स्थान का बड़ा महत्व था। यहाँका किला अंग्रेजोंने टीपूके दूसरे युद्धमें (१७६८ ई०) विजय किया था। नीलकी खेतीके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। यहाँ बैलगाड़ी अच्छी बनती है।

अत्तार फरीदुद्दीन—यह ईरान देशके एक प्रसिद्ध कवि और गूढ़ तत्ववादी हो गये हैं। यह निशापुरमें १११९ ई० में पैदा हुए थे और १२२९ ई० में इनका देहान्त हो गया था। इनके जन्म तथा मृत्यु-कालमें मतभेद है। इनका पूरा नाम अबूतालिब (अबूहामिद) मुहम्मदबिन इब्राहीम था। फरीदुद्दीन (धर्मके मोती) इनकी उपाधि थी। पहले अपने पिताके व्यापारको ये भी करते थे। इनके पिता गन्धी (अत्तार) थे। इनकी धार्मिक जागृति तथा आत्माके अस्तित्वके गूढ़ ज्ञानके विषयमें एक विशेष किंवदन्ती है। उसका उल्लेख नीचे दिया जाता है।

एक दिन एक फकीर उनके दूकानके सामने आकर कहने लगा, 'तुम लोगोंका अज्ञान देख कर मुझे दुःख होता है।' जिस धन दौलतके लिये इतनी हाय हाय कर रहे हो उन सबको यहीं छोड़ कर खाली हाथ ही मृत्युका आलिङ्गन करना पड़ेगा'। इसका इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी दुकान इत्यादि छोड़कर अपना चित्त परमार्थिक विषयोंकी ओर लगाया। इन्होंने मक्का, मिश्र, दमास्कस तथा भारत आदि स्थानों की यात्रा की। अन्तिमकाल उन्होंने शाद्याखमें व्यतीत किया था।

इनके मृत्युके विषयमें भी बड़ी आश्चर्य-जनक कथा है। चंगेज़खाँ के एक सैनिक इनको पकड़ ले गया और गुलाम बना कर बेचना चाहा। इनकी कीमत पहले अच्छी लग रही थी, किन्तु इन्होंने मालिकसे उस समय तक रुक जानेको कहा जब तक कि और अधिक मूल्य न लग जावे किन्तु बादमें उसको उतना मूल्य भी न मिला। इससे क्रोधित होकर उसने फरीदुद्दीनको मरवा डाला। तत्पश्चात् इनकी एक कब्र बड़े समारोहसे बनवाई गई और उसको धार्मिक रूप दे दिया गया। उसने १२०० दोहे (शेर) लिखे हैं। अन्तमें भगवत-भजनमें वह ऐसे लीन हो गये कि कविता

इत्यादि भी लिखना छोड़ दी। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'मंतिक-अत्तार' है इसमें उन्होंने आत्मा का ब्रह्मपद प्राप्त करनेके उपाय तथा लाभ भली-भाँति दर्शाये हैं।

अत्यग्निष्टोम—सप्त सोमसंस्थाओंमें से एक याग। अग्निष्टोमयाग होनेके पश्चात् यह याग करना पड़ता है। इसमेंके सब कर्म अग्निष्टोमके समानही करने पड़ते हैं। इसमें यह विशेषता है कि अग्निष्टोममें सुत्याके अन्तिम दिनको बारह शस्त्रोंका शंसन, और बारह स्तोत्रोंका गान होता है किन्तु अत्यग्निष्टोममें इनकी संख्या तेरह होती है आजकल ये सप्त-सोम-संस्था (याग) अलग अलग कोई नहीं करता। अग्निष्टोमके बाद अन्तिम सोमसंस्था जिसे 'सर्व पृष्ट नामक' याग कहते हैं वही करते हैं और उसमें अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, वाजपेय आदिका समावेश किया जाता है। इसका उल्लेख संहिता ग्रंथमें नहीं मिलता।

अत्राफ़ एवल्दा—यह हैदराबादके चारों तरफके स्थानको कहते हैं। (अतराफ चारों तरफ; वल्दा=हैदराबाद)।

यह हैदराबाद रियासतके कई छोटे छोटे गांव तथा कस्बोंको मिलाकर बना है। इसका अधिकांश भाग पहाड़ी है। मुशी तथा माँजरा नदियाँ इस ज़िलेसे होकर बहती हैं। संरक्षित जंगलोंमें चीते, सूअर, भालू तथा कभी कभी बाघ भी मिल जाते हैं। यहाँ पर तालाब तथा झरने बहुत हैं। आबहवा सर्द और नम है। इससे बरसातमें मलेरिया ज्वरका प्रकोप होता है। अक्तूबरसे मार्चतकका मौसम अच्छा तथा स्वास्थकर रहता है। यहाँकी वार्षिक वृष्टिकी औसत ३३ इंच है।

इतिहास—यह जिला ११५० ई० से १३२५ ई० तक बारंगलके काकतीय राजाओंके अधिकारमें था। किन्तु दखिन मुसलमानोंके हाथमें आने पर यह भी उन्हींके हाथमें आ गया। ब्राह्मणीवंशके समयमें तेलंगणके सूबेदार मुहम्मदशाहने स्वतंत्रताकी घोषणा कर दी और १५१२ ई० में 'सुलतान कुली कुतुबशाह' की पदवी धारण की। औरंगजेबने यह ज़िला कुतुबवंशीय राजाओंसे छीन कर देहलीके आधीन कर लिया था। तदन्तर १८वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जब हैदराबाद रियासतकी स्थापना हुई तो इस ज़िलेका उसमें समावेश हो गया।

हैदराबादके पश्चिममें गोलकुण्डाका क़िला कुतुबवंशकी राजधानी थी। हैदराबादको छोड़ कर अन्य स्थानोंकी जनसंख्या लगभग सवा चार लाख है। यहाँ ८७ प्रतिशत हिन्दू हैं। वे तेलगू भाषा बोलते हैं।

खेती—प्रायः यहाँ रेतीली जमीन ही अधिक है। किन्तु कुछ स्थानोंकी मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। ज्वार, बाजरा और चावल यहाँकी मुख्य पैदावार है।

इस जिलेमें कंकड़, वासाज तथा ग्रेनाइट इत्यादि खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। अंबरपेट ताल्लुकेमें अशुद्ध सोडा (Crude Carbonate of Soda) और पोतलूर ताल्लुकेमें शाहबादी पत्थर पाये जाते हैं।

व्यापार तथा तिजारत—चांदूरमें रूमाल तथा साड़ियाँ, और असफ नगरमें ताँबे और पीतलके बर्तन बड़े उत्तम बनते हैं। ज्वार, चावल, कपास, गुड़, तम्बाकू, चमड़ा, हड्डी इत्यादि पदार्थ इस ज़िलेसे बाहर भेजे जाते हैं। नमक, अफ़ीम, रेशमी तथा सूती वस्त्र, करोसिनका तेल इत्यादि बाहरसे इस जिलेमें आते हैं। हैदराबाद ही व्यापारका केन्द्र हो रहा है किन्तु अन्य स्थानोंमें भी बाजार लगते हैं।

इस जिलेमें पूर्वसे पश्चिममें होकर निज़ाम स्टेट रेलवे गुज़री है। हैदराबाद-गोदावरी-वैली रेलवेकी एक शाख हैदराबादसे निकलती है। हैदराबादसे ५ सड़कें निकलती हैं—(१) शमसाबादसे महबूबनगर, (२) नलगोदला, (३) बीबी नगरसे भोंगरि (४) मेदचल, तथा (५) लिंगपल्लीसे पंतचेरू। एक सड़क धारूरसे कोहीर को जाती है।

शाशन-प्रणाली—इस जिलेमें ६ ताल्लुके हैं—(१) मेहचल, (२) जकल, (३) पतलूर, (४) असफनगर, (५) अंबरपेट, तथा (६) शाहबाद। दो ताल्लुकोंको एकमें मिलाकर एक भाग बनाया गया है। इस विभाग पर एक ताल्लुकेदार नियुक्त रहता है। प्रत्येक ताल्लुका एक तहसीलदारके आधीन होता है। इस ज़िलेमें अब तक भी लोकल बोर्ड इत्यादि स्थापित नहीं किये गये हैं। रियासत हैदराबादके अन्य बहुतेरे ज़िलोंसे शिक्षाका प्रचार यहाँ बहुत अधिक है। १९०१ ई० में यहाँके पढ़े लिखोंकी संख्या ३.५ प्रतिशत थी।

अत्रावली—यह गाँव संयुक्त प्रान्तके अलीगढ़ ज़िलेके अत्रावली तहसीलमें है। १९०१ ई० में वहाँकी जनसंख्या १६५६१ थी। १८५७ ई० के गदर (विद्रोह) के समय यह स्थान जून मास से सितम्बर तक विद्रोहियोंके ही हाथमें रहा था। लड़ाई झगड़ेके लिये यहाँके लोग प्रसिद्ध हैं।

अत्रि--इस शब्दका अर्थ 'खानेवाला' है। इस नामके एक ब्रह्मर्षि हो गये हैं। इनका उल्लेख वेदमें भी आया है। ये अग्नि, इन्द्र, अश्विन्, तथा विश्वदेवता आदिके सूक्तकर्त्ता थे। पुराण में इनका उल्लेख भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न रूपसे आया है। स्वायंभूमन्वन्तरमें ब्रह्माने प्रजोत्पादनके लिये दस मानस पुत्र उत्पन्न किये थे। उनमेंसे एक ये भी थे। ये ब्रह्माके नेत्रसे उत्पन्न हुए थे। इनकी स्त्री कर्दम प्रजापतिकी कन्या अनुसूया थी। इनको अनुसूयासे दत्त, दुर्वासा और सोम नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। आगे चलकर उसी मन्वन्तरमें महादेवके शापसे सम्पूर्ण ब्रह्ममानस पुत्रोंके साथ साथ यह भी मर गये। (२) पहलेके सब पुत्रोंके मर जाने पर ब्रह्माने वैवस्वत मन्वन्तरमें पुनः पुत्रोत्पादन किया। इस बार ब्रह्मा द्वारा किये हुए यज्ञकी अग्निसे ये उत्पन्न हुए। इस बार भी अनुसूया ही इनकी स्त्री थी। इनको चार पुत्र और एक कन्या हुई थी। पुत्रों के नाम दत्त, दुर्वासा, सोम तथा अर्यमा और कन्याका नाम अमला था। अब भी प्रति ज्येष्ठ मासमें द्वादश सूर्योंमें से एक सूर्यके समागममें यह संचार करता है।

दण्डकारण्यमें जब बनवासी श्रीरामने प्रवेश किया था तो इनके आश्रममें भी गये थे। उस समय उन्होंने श्रीरामचन्द्रका बड़े प्रेमसे अतिथि सत्कार किया था। इसी भाँति अनुसूयाने भी सीताका अतिथिसत्कार कर उसे पतिव्रतधर्मका उपदेश किया था। तदनन्तर जब सीता रामके साथ जानेको प्रस्तुत हुईं तो उनको मार्गश्रम तथा राक्षसादि भयसे सुरक्षित रखनेके हेतु अनुसूयाने अंगरादिक उत्तम उत्तम वस्तुयें दीं। महर्षि अत्रिने रामचन्द्रको वनमें के मार्ग बताकर बिदा किया। (वा० रा० अ० स० ११७-११९)।

इनके कुलमें इनके सहित ६ मन्त्रदृष्टऋषि थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) अर्द्धस्वन, (२) श्वावास्व, (३) गविष्ठिर, (४) कर्णक, (५) पूर्वातिथि, (६) तथा वे स्वयम्। (मत्स्य अ० १४४)।

इनके वंशको चलानेवाले नौ ऋषि थे। उनके नाम निम्नलिखित है—अत्रि, गविष्ठिर, वान्दूतक, मुद्गल, अतिथि, वामरथ्य, सुमंगल, बीजवाय, तथा धनञ्जय। इसमें दो भाग हो गये थे। एक तो अत्रि वंशीय और दूसरे प्रवर कहलाते थे। उद्दालकि, शोण, कर्णिरथ, शौक्रतु, गौरग्रीव गौरजिन, चैतायण, अर्द्धपण्य, वामरथ, गोपन, तकिबिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, मैद्राणी, शाकलायनि, तैलप, वैसेय दूसरा अत्रि, गोणिपति, जलद, मगपाद, सौपुष्पि, तथा छन्दोगय तो आत्रेय कहलाते थे, और आर्चनानस, श्यावाश्व आदि त्रिप्रवर थे।

गविष्ठिर कुलोत्पन्न, दाक्षि, बलि, पर्णवि, उर्णनाभि, शिलार्दनिवि तथा भलन्दन इत्यादि आत्रेय थे। त्रिप्रवरोंके दो भेद थे। वाद्भूतक कुलोत्पन्न आत्रेय, गविष्ठिर, पौर्वातिथ भी त्रिप्रवरोंमेंसे थे। इसी भाँति इसमें अनेक भेद, प्रतिभेद हैं। किन्तु सुमंगल कुलको आत्रेय सुमंगल श्यावाश्व कह कर बोध किया जाता है।

कालेय, वालेय, वामरथ्य, धात्रेय, मैत्रेय, कौन्द्रेय शौम्नेय इत्यादि ऋषि अत्रिकी कन्याके वंशमें से थे। इनके आत्रेय, वामथ्य, तथा पौत्री प्रवर होते हैं। (मत्स्य० अ० १९६)। इन कन्या कुलोत्पन्न वंशवालोंका विवाह विश्वामित्र तथा वशिष्ठ-कुलोत्पन्नोंका विवाह नहीं होता।

(३) चालू वैवस्वत मन्वन्तरके १९वीं चौकड़ी में उत्पन्न हुए एक व्यास। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह व्यास कौनसे अत्रि थे। इसलिये ऐसा भास होता है कि वसिष्ठ तथा अंगिरस, दोनों ही कुलोंमें एक एक अत्रि होगये हैं। उन्हींमें से एक यह भी होंगे।

(४) चालू मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें से जो एक अत्रि हैं, वह भी इन्हीं उपरोक्त दोनोंमें से एक होंगे।

(५) गौतमऋषिके एक मित्र द्वितियार्थक ऋषि शुक्र थे। उनके चार पुत्रोंमेंसे यह दूसरे थे। एक समय ये महर्षि एक वेन कुलोत्पन्न राजाके यहाँ द्रव्य याचनाके लिये गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने राजाकी स्तुति की। उस स्तुतिमें इतनी प्रशंसाकी कि राजाको साक्षात् ईश्वर ही बना दिया। राजाने उस स्तुतिका तिरस्कार करके कहा कि राजाको ईश्वरसे साम्यता दिखलाना घोर अनुचित है। इन दोनोंमेंसे किसका कहना ठीक है। इसका निर्णय करानेके लिये यह प्रश्न सभा के सन्मुख रक्खा गया किन्तु कोई भी ठीकसे जब निर्णय न कर सका तो इसका निर्णय करानेके लिये यह प्रश्न साक्षात् सनत्कुमारके पास भेजा गया। सनत्कुमारने ऋषिके कहनेको ही उचित ठहराया। इसपर राजाने प्रसन्न होकर इच्छासे भी अधिक धन देकर ऋषिको बिदा किया। ऋषि भी अपने आश्रमको लौट गये। (भारत वन पर्व अ० १८५)।

अथगढ़—उड़ीसा प्रान्तकी यह एक देशी

रियासत है। इसके उत्तरमें धेनकानलकी रियासत, पूरब तथा दक्षिणमें कटक ज़िला, तथा पश्चिममें टीग्रिया और धेनकानल रियासतें हैं। यहाँकी जमीन सपाट तथा उपजाऊ है। यहाँकी पैदावार धान है।

इस रियासतके पहले राजा श्रीकरणनीलाद्रीबवार्त पाटनायक थे। पहले यह पुरीके राजाके प्रधान थे। कुछ लोगोंका मत है कि राजाने खुश होकर इनको यह राज्य दे डाला था, किन्तु कुछ का कथन है कि राजाने अपनी बहन इनको ब्याह दी थी। उसीके दहेजमें यह राज्य भी दे दिया था। राज्यकी जनसंख्या ४३००० है। १९०१ ई० में इस रियासतमें केवल २६४३ हिन्दू थे। (ईं० ग०)

अथणी ताल्लुका—बम्बई प्रान्तके बेलगाँव ज़िलेके ईशान्यमें स्थित एक ताल्लुका है। यहाँ की १९२१ ई० की जनसंख्या १२४६७८ थी। इस ताल्लुकेके मुख्य गाँव अथणी तथा कुड़ची हैं। यहाँकी ज़मीन प्राय ऊसर तथा वृक्षहीन है। हवा यहाँकी सूखी तथा स्वास्थ्यकर है। इसके दक्षिणी भागसे कृष्णा नदी बहती है।

अथणी गाँव—बम्बई प्रान्तके जिला बेलगाँव के ईशान्यमें ७० मीलकी दूरी पर उ० अ० १६'४०' व पूर्व रे० ७५'७० के मध्यमें यह गाँव स्थित है। १९२१ ई० में यहाँकी जनसंख्या १३५३८ थी। पुराना गाँव गिरकर अब बिल्कुल खंडहर होगया है, केवल उत्तर तथा दक्षिणके फाटक अभी तक देख पड़ते हैं, यहाँ प्रति रविवार, तथा सोमवार को बाज़ार लगता है। चौपायोंका व्यापार यहाँ बहुत होता है। यहाँ १८५३ ई० से म्युनिसिपैल्टी स्थापित है। १८८२-८३ ई० में इसकी आय १२५३०) रु० और व्यय १४०४०) रु० था। यहाँ (Ginning) जिनिङ्गके पाँच,छः कारखाने हैं। यहाँकी मुख्य पैदावार कपास ज्वार इत्यादि है। इस गाँवमें एक हाई स्कूल, एक ॲङ्ग्लो वरनाक्यूलर, और प्राइमरी स्कूल हैं। विलापुरको यहाँसे मोटर जाती है। यहाँ एक टूटी फूटी मट्टीकी गढ़ी है जिसमें दो बाड़े हैं। सिद्धेश्वर अमृतेश्वर ऐसे दो पुराने मन्दिर तथा एक मसजिद है।

इतिहास—१६३९ ई० में एक फ्रान्सीसी यात्री मन्देलस्लोने इस नगरका (Atheni City) उल्लेख किया है। उसका कथन है कि यह गोवा और बीजापुरके बीचमें एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था (Harris voyages II. 129)। १६७० ई० में इङ्गलिश भूगोलवेत्ता अजिल्बीने लिखा है कि यह गाँव बीजापुरसे दो दिनके मार्गपर स्थित है, और यह व्यापारका मुख्य स्थान है (Atlas V. 247)। १६७५ ई० में अंग्रेज़ यात्री फ्रायरने इसका हटनी (Huttany) नामसे उल्लेख किया है (East India & Persia 175)। १६७९ ई० में यह गाँव मुगलसेनापति दिलावरखांके अधिकारमें था। उसने यह गाँव शिवाजीसे जीतकर लूटा था। पिता पुत्रमें विरोध हो जानेके कारण संभाजी दिलावरखांके यहाँ आकर कुछ दिन पहले से टिका था। दिलावरखाँ चाहता था कि वहांके लोगोंको गुलाम बनाकर बेच दें किन्तु सम्भाजीने इसका घोर विरोध किया, किन्तु दिलावरने इनके विरोध पर बिल्कुल ध्यान न दिया। तब सम्भाजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने पिताके पास फिर चले आये। उस समय भी अंग्रेजी कारबारी कोठियों से इसका बड़ा व्यापार होता था। १७२० ई० में निज़ामने यह गाँव जीत लिया किन्तु अपने मित्र राजा कोल्हापुरके आधीन इसको कर दिया। इन्होंने १७३० ई० में इस गाँवको सताराके शाहू छत्रपतिको दे दिया। १७९२ ई० में कॅ० मूरने वर्णन किया है कि दक्षिण तथा पश्चिम फाटकसे शहरके रास्ते बने हैं। १८३९ ई० में निपाणीकेराजा निःसन्तान मर जानेके कारण यह अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया (बॅ० ग०)।

अथमलिक—उड़िसा प्रान्त की यह एक देशी रियासत है। इसके उत्तरमें रेराखोल रियासत, दक्षिणमें महानदी और पश्चिममें सोनपुर तथा रेराखोल है। यहाँ के पहले राजा प्रतापदेव थे। पुरीके राजाने उसके सातों भाइयों में से दो को मार डाला था। तदन्तर अथमलिक में आकर वहाँके डोम राजाको भी मार डाला और राज्य अपने हस्तगत कर लिया। १८७४ ई० में अंग्रेजोंने अन्य राजाओंकी भाँति इन्हें भी राजा की सनद दी। राज्यकी आय ७१०००) है। राजा अंग्रेजोंको ४८०)रु० कर सालाना देते हैं। इमारत बनानेकी लकड़ी तथा चावलका व्यापार यहाँ बहुत होता है। यहाँ व्यापारके लिये बैलगाड़ी अथवा नावोंका अधिक प्रयोग होता है। कटक से होकर यहाँ जाना पड़ता है। बंगाल नागपूर रेलवे (Bengal Nagpur Railway) का यह एक स्टेशन है। यहाँकी वर्षाका प्रमाण लगभग ५०-८०" होता है। यहाँकी १९११ ई० की जनसंख्या ५३७६६ थी।

अथर्वण—प्राचीन कालमें अग्नि उपासक पुरोहितोंको अथर्वन् कहते थे। आगे चल कर

इस शब्दसे सब पुरोहितोंकी संज्ञा की जाने लगी। 'अथर्वन्' शब्द पर्शु भारतीय समयका है और कदाचित् अवेस्ताके 'अथ्रवन' शब्दसे इसका सम्बन्ध विदित होता है। (देखिये अथर्ववेद) ब्राह्मण जातिके प्रभुत्वमें आने तथा पुरोहितका कर्म उनके हाथमें आनेके पहले शायद भारतियोंके पुरोहित अथर्वण वर्गके ही होते होंगे। इस वर्ग का वेद अथर्ववेद है। इसको शाखायें निम्नलिखित प्रकारसे बनीः—

महर्षि व्यासने सुमन्तु नामक अपने अत्यन्त तेजस्वी शिष्यको 'महातरु' की अथर्व नामक चौथी शाखा बताई। सुमन्तुने 'कबन्ध' नामक अपने शिष्यको उन शाखा विभागोंका अध्ययन कराया। कबन्धने उस संहिताके दो भाग करके अपने देवदर्श तथा पथ्य नामक दो शिष्योंको पढ़ाया। मौद्ग, ब्रह्मवली, शौलकायनी, पिप्पलाद आदि अनेक शिष्य देवदर्शके थे। पथ्यके भी जाजली, कुमुद तथा शौनक शिष्य थे। ये प्रसिद्ध संहिताकार हो गये हैं। शौनकने अपनी संहिताको दो भागों में करके एक भाग बभ्रु और दूसरा सैन्धवायन को सिखाया। सैन्धवायन तथा मुञ्जकेशके शिष्यों ने भी अपनी अपनी संहिताके दो दो भाग किये। श्रेष्ठ अथर्वणोंकी संहिताओंके पांच भेद हैं:— (१) नक्षत्र कल्प, (२) वेद कल्प, (३) संहिता-कल्प, (४) अंगीरस कल्प तथा (५) शांतिकल्प। वायु पुराणमें भी इसका उल्लेख ऐसा ही मिलता है। भेद केवल इतनाही है कि वायु पुराणके अनुसार सैन्धवायनने अपने शिष्य मुञ्जकेशको अपनी संहिताके दो भाग करके दिये थे। विष्णु पुराणमें भी ऐसा ही लेख मिलता है। विष्णुपुराण के श्लोकोंका अर्थ इस भाँति करनेसे कहीं भी असामाजंस्य नहीं होता—गुरु शिष्य सैन्धवायन तथा मुञ्जकेशके पश्चात्के होने वाले शिष्योंने अपनी अपनी संहिताको दो दो भागोंमें अलग अलग कर दिये। विष्णु पुराणमें केवल नाम मात्रका भेद रह जाता है। उसमें मौद्गलको मौद, शौल कायनीको शौष्कायनी, देवदर्शको वेदस्पर्श संबोधित किया है। पञ्चकल्पोंमें दूसरे वेदकल्पके बदले 'वैतान' नाम दिया है। अथर्ववेद तरुमें कुल नौ शाखायें फूटीं और उनमें पञ्चकल्प रूपी फल लगे। चरण व्यूहमें अथर्व संहिता वेदके नामों की सूची इस प्रकार दी हुई हैः-पिप्पल, दान्त, दामो दान्त, औतपन, जाबाली शौनक ब्रह्म पलाश, देवदर्शी और चारणविद्य। इसके अतिरिक्त वैतान कल्पको विधान और आंगीरस कल्पको अभिचार कल्प नाम दिये गये हैं,) 'स्वाध्याय' वर्ष १ले अ० १ला)

आजकल भारतवर्षमें इस वर्गका अस्तित्व नष्ट प्रायही समझना चाहिये, केवल कहीं कहीं नाम मात्रको रह गये हैं।

अथर्व वैदिक ब्राह्मणोंके सम्बन्धका आधुनिक ज्ञानः— सतारा ज़िलेके चिन्धवली गांवके निवासी रा० अन्ताजी काशीनाथ कुलकर्णी (काले) से इस विषय का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है।

राघव कुलकर्णीका घराना चिन्धवलीमें दो तीनसौ वर्षसे बराबर रह रहा है। उनके मालन्दन, प्रवर काश्यप, आवत्सार तथा नैध्रुव गोत्र हैं। उनके कुल गुरू नागेश भट्ट वि. बालभट्ट जोशी नामक कौशिकि गोत्रके माहुलीकर ब्राह्मण थे। उनका गोत्र मालन्दन था। उनकी शाखाके गोत्र भारद्वाज उपमन्यु कौशिकि तथा शावास्य (श्यावाश्व) थे। पिंप-वलीमें भी अथर्वण वर्गके तीन घर हैं। थोड़े बहुत मलुपडीमें भी हैं। इनकी धर्मविधि गत १५-२० वर्षसे इनकी शाखानुसार नहीं होती।

इस शाखाका विधि पूर्वक पालन करनेवाले ब्राह्मण आधुनिक समयमें सांगली तथा ग्वालियर राज्यमें मिलते हैं। श्रीयुत् कुलकर्णीजीसे इस विषयमें पूछने पर उन्होंने निम्नलिखित स्थान बताये हैं। (१) वाईतालुकेमें चिन्धवली। (२) सतारामें माहुली संगम, चिंचनेरे, तथा महागाँव। (३) कोरेगाँवमें जयगाँव। (४) माणमें मलवड़ी दही वड़ी, विदाल महिमागड़। (५) खटावमें मोल, दिसकल, बुध, पुसेगाँव, कडगुण, खादगुणज खन गाँव, अमेरी जाम गाँव उम्बरमले, कुरवली, कातर खटाव। (६) सांगली रियासत तथा (७) पूना जिलेमें। काशी, प्रयाग, गया, लश्कर इत्यादि स्थानोंमें भी इन लोगोंकी कुछ वस्ती है।

महाराष्ट्र देशमें इन शाखा वालोंका विवाह संबंध तद्देशस्थ कह्लाडे ब्राह्मण, ऋग्वेदी, अथर्वण तथा आपस्तंब शाखीय लोगोंसे होता है। ये ब्राह्मण अपना वेद सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। इनका कथन है कि इस वेदके आर्ध देवता परशुराम हैं। ऐसी कथा प्रचलित है कि एक बार छत्रपति शिवाजी ने इन ब्राह्मणोंकी परीक्षा लेनेका विचार किया। तब नैवेद्यके लिये जो पदार्थ रक्खे गये थे वे फूल बन गये। इससे प्रभावित होकर छत्रपतिने इन लोगोंको बड़े बड़े वेतन बाँध दिये थे। पितरपक्षमें पितरोंका नामोच्चारण करते समय पहले पितामह, फिर प्रपितामह और अन्त में पिता, अदित्य, रुद्र, तथा वसुरूप इन अनु-

क्रमसे कहते हैं। सांगली रियासतमें शावास्य गोत्रके बापू आणा नामक एक बहुत विद्वान महाशय हैं।

अथर्णवाचार्य—यह बड़े प्राचीन तेलगू ब्राह्मण थे। यह उच्चकोटिके कवि थे। इनका समय लगभग ३॥ हजार वर्ष पहले निर्धारित किया जाता है। ये तेलगू तथा संस्कृत दोनों ही भाषाके पूर्ण विद्वान थे। महाभारतके आधार पर इन्होंने एक ग्रंथ तेलगू भाषामें लिखा है। वर्त्तमानकालमें उसका बहुत थोड़ा सा भाग प्राप्य है। इनके बादके कवियोंने इनकी कविताका बहुत सा भाग अपनी कृतियोंमें मिला दिया है।

अथर्ववेद—सामान्य रूप—अथर्ववेदमें अभिचार मंत्र हैं। यह अर्थवन् लोगों का वेद है। प्राचीन समयमें अग्निके उपासक पुरोहितोंको अथर्वन् कहते थे। बादमें यही नाम सामान्यतः सब पुरोहितोंके लिये हो गया। यह शब्द पर्शु-भारतीय काल का है। अवेस्तामें उल्लिखित 'अथ्रवन्' और हिन्दुओंके अथर्वन् लोगोंमें बहुत कुछ समानता है। प्राचीन ईरानियोंमें अग्नि पूजकोंके नामसे जो प्रसिद्ध हुए उनमें जिस प्रकार अग्निका महात्म्य था उसी तरह प्राचीन भारतीयोंकी दैनिक पूजा विधिमेंभी अग्निकी वैसीही प्रधानता थी। ये प्राचीन अग्नि पूजक अमेरिकाके 'इंडियन' लोगोंके वैद्योंकी तरह अथवा उत्तर एशियाके 'शामत' लोगोंकी तरह जादू टोना जानते थे। ये अग्नि-उपासक 'जारण-मारण' विद्याभी जानते थे। यानी एकही व्यक्ति आचार्य और अभिचारक दोनोंही था। मीडिया देशमें 'अथ्रवन्' लोगोंको 'मगी' (जादू टोना जाननेवाले अग्नि पूजक) कहते थे। इसी कारण पुरोहितवर्गमें आचार्य और अभिचारक दोनों का संयुक्त अस्तित्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार यहभी स्पष्ट है कि अथर्वन लोगोंके अथवा आचार्य अभिचारकोंके मंत्रों (अभिचारों) का नाम 'अथर्वान्' था। भारतीय साहित्यमें इस वेदका बहुत पुराना नाम 'अथर्वांगिरस' था। इतिहास कालके पूर्व 'अंगिरस' नामकी अग्नि-उपासकोंकी एक जाति थी। अथर्वन् शब्दकी तरह 'अंगिरस' शब्दका अर्थभी 'जारणमारणादि' मंत्र-किया जाने लगा। परंतु अथर्वन् और 'अंगिरस' दो भिन्न वर्गोंके मंत्र हैं।

एक कल्पना यहभी है कि ब्राह्मण जातिकी उत्पत्तिके पहले जो लोग पुरोहितका काम करतेथे उन्हें अथर्वण कहते हैं। यहभी संभव है कि जिस तरह पर्शुओंके आचार्य लोग विदेशी थे उसी प्रकार हिन्दुओंके आचार्यभी विदेशी हों। इतना अवश्य सिद्ध है कि इन पुरोहितों वा आचार्योंमें कुछ विदेशी लोग घुस गए थे।

'अथर्वन्' मंत्र सुख देनेवाले और पवित्र हैं। 'अंगिरस' मंत्र ठीक विपरीत अर्थात् अघोर और पीड़ा देनेवाले हैं। इसका स्पष्टीकरण यों है। 'अथर्वन्' मंत्रोंमें रोग निवारक विधियोंका वर्णन है तो 'अंगिरस' मंत्रोंमें द्वेषी, शत्रु और मायावी तथा पीड़ा देनेवालोंको शाप देनेकी विधियाँ कही गयी हैं। अथर्ववेदमें प्रधानतः 'अथर्वन् और अंगिरस'–दोनों प्रकारके मंत्रोंकी विधि बतलायी गई हैं। इसी लिये इन वेदोंका पुराना नाम 'अथर्वांगिरस' है। 'अथर्ववेद' नामकरण बादमें हुआ और यह 'अथर्वांगिरस वेद' नामका संक्षिप्त रूप है।

'अथर्ववेद संहिता' की एक प्रतिमें कुल ७३१ सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएँ हैं। इस वेदके २० कांड हैं। २० वाँ कांडतो बहुत बादका लिखा हुआ मालूम होता है और १६ वाँ कांडभी पहले शायद इस संहितामें नहीं था। बीसवें कांडके करीब करीब सभी सूक्त अक्षरशः ऋग्वेद संहितासे लिये हुएहैं। इसके अलावा अथर्ववेद संहिताका लगभग सप्तमांश भाग ऋग्वेदही से लिया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनोंमें समान रूपसे मिलनेवाली ऋचाओंमें आधीसे अधिक ऋग्वेदके दसवें मंडल में मिलती हैं और बाकी बहुतसी ऋचाएँ ऋग्वेद के पहले और आठवें मंडलमें मिलती हैं।

अथर्ववेदके १८ कांडोंके सूक्तोंकी रचना बहुत नियमित और सुव्यस्थितकी गई है। पहले सात कांडोंमें बहुत छोटे छोटे सूक्त हैं। पहले कांडके सूक्त साधारणतः चार-चार ऋचाओंके; दूसरेमें पांच ऋचाओंके; तीसरेमें छः ऋचाओंके; और चौथेमें सात ऋचाओंके हैं। यही साधारण क्रम है। पांचवें कांडके सूक्तोंकी ऋचाएँ कमसेकम आठ व अधिकसे अधिक अठारह हैं। छठे कांडमें तीन ऋचाओंके १४२ सूक्त हैं और सातवें कांडमें एक या दो ऋचाओंके ११८ सूक्त हैं। आठसे लेकर चौदहवें कांडमें और सत्रहवें तथा अठारहवें कांडमें लंबे लंबे सूक्त हैं। इन उपर्युक्त कांडोंमें सबसे छोटा सूक्त (२१ ऋचाओंका) आठवें कांड का पहला सूक्त है और सबसे लंबा सूक्त (८६ ऋचाओंका) अठारहवें कांडका अंतिम सूक्त है। पंद्रहवाँ कांड पूरा और सोलहवें कांडका बहुतसा अंश गद्यात्मक है। इनकी भाषा और रचना 'ब्राह्मण' ग्रंथोंकी तरह है। इन बातोंके देखनेसे

पता लगता है कि संहिता बनाने वालोंका विशेष ध्यान बाह्य रचना और ऋचाओंकी संख्या पर था। किन्तु भीतरी विषयकी रचनामें भी उन लोगोंने लापरवाही नहीं की है। एकही विषयके दो, तीन चार या इससेभी अधिक सूक्त अधिकतर एकही स्थानमें मिलेंगे। कांडके आरंभमें किसी विशिष्ट सूक्तको पहला स्थान देनेका कारण उस सूक्तमें वर्णित विषयहो सकता है। उदाहरणके लिये, दूसरे, चौथे पांचवें और सातवें कांडोंके आरंभमें 'ब्रह्मविद्या' संबंधी सूक्त दिए गए हैं। ये अवश्यही हेतुपूर्वक दिए गए हैं। तेरहसे लेकर अठारहवें कांडमें हर एकमें एकएक स्वतंत्र विषय का निर्देश है। चौदहवें कांडमें केवल 'विवाह' संबंधी वचन हैं। अठारहवेंमें तो केवल 'अंत्य-विधि' के संबंधमें ऋचाएँ हैं। इससे हमारा उपरोक्त कथन स्पष्ट हो जायगा। अथर्व वेदके सूक्तों की भाषा प्रधानतः ऋग्वेद संहिताके जैसीही है। फिरभी अथर्व वेदमें कुछ बातें निस्संदेह ऋग्वेद-कालके पश्चात् की हैं। इसकी भाषामें जनसाधारणकी भाषाके शब्द और प्रयोग ऋग्वेदकी अपेक्षा अधिक दिखायी देते हैं। इसके अलावा यहभी मालूम होता है कि इस वेदमें ऋग्वेदकी तरह वृत्तोंकी ओर बारीकीसे ध्यान नहीं दिया गया है। यह कह चुके हैं कि पंदरहवाँ पूरा और सोलहवें का अधिकांश भाग गद्यात्मक है। इसके अलावा और और कांडोंमेंभी बीच बीचमें गद्य भाग आया है। कई स्थानों पर यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि अमुक भाग पद्य है या गद्य। कहीं कहीं यहभी दिखाई देता है कि असली वृत्त निर्दोष है किन्तु वह प्रक्षेप अथवा विक्षेपके कारण भंग हो गया है।

कहीं कहीं भाषा और वृत्तोंको देखनेसे साफ मालूम हो जाता है कि ये भाग बहुत प्राचीन नहीं हैं। फिरभी यहाँ केवल भाषा और वृत्तके आधार पर सूक्तोंका समय निर्णय नहीं किया जा सकता। इसी वजहसे संहिताका भी समय निर्णय नहीं हो सकता है। ऋग्वेद सूक्त और अथर्ववेद मंत्रोंमें जो अंतर है वह अथर्ववेदकी भाषाकी विभिन्नता और वृत्तोंकी स्वतंत्रता है।

अथर्व-वेदसंहिताका समय-अब कुछ ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिनके बल पर यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध होता है कि अथर्ववेद संहिता का काल ऋग्वेद संहिताके कालके पश्चात् है। पहला प्रमाण है ऋग्वेद और अथर्ववेदका भौगोलिक ज्ञान तथा उनकी संस्कृति। इन दो बातोंके मिलानसे स्पष्ट हो जायगा कि अथर्ववेद संहिताका समय ऋग्वेद संहिताके समयके बाद आता है। उससमय आर्य लोग बढ़ते बढ़ते गंगा नदीके पास पहुँच गए थे। बंगालके दलदलमें रहनेवाला शेर ऋग्वेदमें नहीं मिलता। किंतु अथर्ववेदमें उसका वर्णन पाया जाता है। वह हिंसक पशुओंमें सबसे बली और भय उत्पन्न करनेवाला है तथा राज्याभिषेकके समय राजाके पराक्रमको व्यक्त करनेके लिये उसका चर्म राजाके पैरके नीचे फैलाया जाता है और राजा उस पर अपने पैर रखता है। अथर्ववेदके समय ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण थे। केवल यही नहीं बल्कि ब्राह्मणोंको ऊंचा स्थान दिया गया है और वे 'भूदेव' कहे गए हैं। ऋग्वेद की अभिचार-ऋचाओंके विषयोंको देखनेसे स्पष्ट होता है कि वे बहुत प्राचीन थी और सर्वसाधारणमें प्रचलित थी। परंतु अथर्ववेद संहितामें उन्हें ब्राह्मणी पुट दिया गया है। और और पेशोंके लोगोंको जिस तरह उनके अभिचार मंत्र, मोहन-मंत्र आदिके उत्पादकोंका पता नहीं रहता पर मंत्र साधारणतः लोगोंमें प्रचलित रहते हैं उसी तरह अथर्ववेदके समयभी थे किन्तु इसी वेदके संहिता कालमें वे साधारण जनताकी पहुँचके बाहर जा चुके थे। वाचक पद पद पर देखेंगे कि यह संग्रह ब्राह्मणों द्वारा हुआ है और बहुतसे सूक्त ब्राह्मणों द्वाराही रचे हुए हैं। विशेषणों और उपमाओंके प्रयोगोंमें अथर्ववेदके सूक्तोंका संग्रह करनेवालों और लेखकोंमें यही 'ब्राह्मणी' दृष्टि साफ दिखायी देती है। उदाहरण यों है। क्षेत्र (खेत) कृमि (कीड़ों) के विरुद्ध जो मंत्र है उसमें कहा गया है कि जिस तरह ब्राह्मण संस्कार द्वारा बिना शुद्ध किए हुए अन्नको छू नहीं सकता उसी प्रकार क्षेत्र कृमिभी क्षेत्र (खेत) के अन्नको न छुए। अथर्ववेद सूक्तोंके एक भागमें लिखा है कि ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, यज्ञोंमें उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये। ये ब्राह्मणोंके लाभकी बातें हैं। अतः इसमें संदेह नहीं कि इस भागकी रचना ब्राह्मणों द्वाराही हुई है। जिस प्रकार पुराने अभिचार मंत्रोंको ब्राह्मणी स्वरूप प्राप्त होना पश्चात् कालका निदर्शक है उसी प्रकार अथर्ववेदमें वैदिक देवताओंकी कृतियोंका वर्णनभी यही स्पष्ट करता है कि यह संहिता ऋग्वेद संहिताके बाद तयार हुई। ऋग्वेदके अग्नि इन्द्र आदि देवता इस वेदमेंभी हैं परंतु उनकी विशेषता जैसीकी तैसी बनी हुई है। ऋग्वेदमें वे प्रकृतिके मूल-स्वरूप माने गए हैं और यही उनका महत्व था, पर इस वेद (अथर्व) में वह महत्व

कुछ कमसा हो गया। इस वेदके मंत्रोंका उपयोग राक्षसोंका नाश करनेके लिये किया जाने लगा और इसके लिये उपरोक्त देवताओंका आह्वान किया जाने लगा। यानी अथर्ववेदमें ये देवता केवल राक्षस-संहारक रह गए। अंतमें अथर्ववेद व देवताओं और संसारकी उत्पत्तिकेविषयमें जो कल्पनाएँ हैं उनसे भी सिद्ध होता है कि ये मंत्र ऋग्वेदके वादके हैं। इस वेदमें तत्वज्ञानकी परिभाषाओंका अच्छा विकास दिखायी देता है। 'ईश्वर सर्वव्यापी है' इस कल्पनाका जो उन्नत स्वरूप उपनिषदोंमें दिखायी देता है लगभग वैसाही इसमेंभी दृष्टि गोचर होता है।

तत्वज्ञानके सूक्तोंकाभी अभिचार मंत्रोंकी तरह उपयोग किया गया है। उदाहरण यों है। तत्व विद्यामें 'असत्' से अभिप्राय राक्षस, शत्रु और अभिचारीके नाशसे है। इससे स्पष्ट है कि इस वेदमें जो अभिचार, मंत्र और तंत्र सन्निविष्ट हैं वे प्राचीन कालमें साधारण जनतामें प्रचलित जादू टोनामें नई कल्पनाएँ जोड़ कर तयार किए हुए कृत्रिम नए संस्करण मात्र हैं।

अथर्ववेद का स्थान—बहुतदिनों तक भारतीय अथर्ववेदको पूज्य और पुनीत नहीं मानते थे। अबभी इस विषयमें मतभेद है। पर छाती ठोंक कर यह नहीं कहा जा सकता कि यह वेद बहुत प्राचीन नहीं है। इसका प्रमाण अथर्ववेदके विषय हैं। इस वेदका अभिप्राय अनिष्ट शांति, इष्ट पूर्ति, और शत्रु पीड़ा है 'अभिशाप', 'भूतापसरण' आदि के संबंधमें आनेवाले मंत्र-विधि अपवित्र मंत्रोंमें आ सकते हैं। इसलिये ब्राह्मणोंने उन्हें अपने ब्राह्मणधर्मसे दूर ही रखा है। यदि वस्तुतः देखा जाय तो परमार्थसाधन और जादू-विद्यामें कुछ भी अंतर नहीं है। दोनों ही अतींद्रिय (इन्द्रिय से परे) सृष्टि पर कब्जा करनेकी कोशिश करते हैं। इसके सिवा आचार्य और जादूगर असलियतमें एक ही हैं। किंतु हरएक देशके लोगोंके इतिहासमें एक ऐसा समय आ जाता है जब परमार्थ सांप्रदाय और मंत्रविद्या एक दूसरेसे अलग होनेकी कोशिश करते हैं। यह हो सकता है कि इसमें पूर्ण रूपसे सफलता न प्राप्त हो। देवताओंसे प्रेम रखनेवाला पुरोहित, पिशाचों भूतप्रेतादिकोंसे संबंध रखनेवाले जादूगरका आदर नहीं करता और उसे अपनेसे उतर कर (हलका) समझता है। भारतवर्षमें भी यह भेद बढ़ता ही गया है। बौद्ध और जैन भिक्षुओंको कठोर आज्ञा है कि वे अथर्ववेदके अभिचारोंसे और मंत्रविद्यासे दूर रहें। यही नहीं ब्राह्मणी धर्मशास्त्रोंमें भी मारण, मोहन, उच्चाटन आदि पाप माने गए हैं। इसका प्रयोग करनेवाले धोखेबाज और पाखंडियोंकी श्रेणीमें माने जाते हैं और उन्हें दण्ड देनेका आदेश राजाको दिया गया है। इसके विपरीत ब्राह्मणोंके धर्मशास्त्रोंमें कई स्थानों पर शत्रुके विरुद्ध अथर्ववेदीय अभिचार मंत्रोंको काममें लानेकी स्पष्ट आज्ञाएँ दी गई हैं। बड़े बड़े यज्ञोंका वर्णन जिन सूत्रग्रंथोंमें है उनमें भी भूतापसरण मंत्र और शत्रुका नाश करनेमें सहायक मंत्रविधियोंके वर्णन मिलते हैं। आगे चलकर तीन वेद—ऋक्, यजु और सामके ज्ञाता पुरोहितोंमें इन अभिचार मंत्रोंके प्रति कुछ अश्रद्धा उत्पन्न हुई। ये पुरोहित अथर्ववेदको सत्य और प्राचीनताकी दृष्टिसे कम महत्वपूर्ण समझने लगे। इसी कारण यह दिखायी देता है कि कहीं कहीं इन लोगोंने इस वेदका पवित्र धर्मग्रंथोंमें समावेश करने से आनाकानी की है। आरंभ ही से पवित्र धार्मिक साहित्यमें इसका स्थान कुछ अनिश्चित सा था। इस संबंधमें जो कल्पनाएँ थीं वे भी विचित्र थीं। पुरातन ग्रंथोंमें जहाँ कहीं पवित्र धार्मिक ग्रंथोंका उल्लेख हुआ है वहाँ उससे अभिप्राय ऋक्, यजु और सामसे प्रथमतः माना गया है। हाँ, कहीं भूलसे हुआ भी है तो इस वेदकी क्रमसंख्या उन तीनोंके बाद ही हुई है। कहीं कहीं तो धर्मग्रंथोंकी सूचीमें वेदांग और पुराण तक दिखाई देंगे, पर अथर्ववेदका नाम भी न मिलेगा। शंखायनके गृह्य-सूत्रमें (१-२,४,८) एक संस्कारका वर्णन है। यह एक नवजात शिशुके प्रति 'वेदाधिक्षेपण' संस्कार है। इस संस्कारमें जो मंत्र कहा जाता है वह यों है—"हे शिशु, मैं तेरे प्रति (तुझमें) ऋग्वेदाक्षिपण करता हूँ; मैं तुझमें यजुर्वेदाधिक्षेपण करता हूँ, मैं तुझमें सामवेदाधिक्षेपण करता हूँ; मैं तुझमें कथा पुराधिक्षेपण करता हूँ; मैं तुझमें समस्त वेदाधिक्षेपण करता हूँ।" यहाँ अथर्ववेद जानबूझकर छोड़ दिया गया है। पुराने बौद्धधर्म ग्रंथोंमें भी ब्राह्मणोंका उल्लेख करते समय उन्हें केवल तीन वेदोंमें पारंगत कहा गया है। उपरोक्त स्थानोंमें अथर्ववेदका उल्लेख न पाकर यदि कहा जाय कि अथर्ववेद-संहिता सबके बाद बनी है, तो ऐसा कहना एकदम गलत होगा; क्योंकि कृष्ण यजुर्वेदकी एक संहितामें और कहीं कहीं ब्राह्मण तथा उपनिषद आदि ग्रंथोंमें अथर्ववेदका उल्लेख अन्य तीन वेदोंके साथ ही साथ किया गया है।

यद्यपि यह सत्य है कि अथर्ववेद संहिताकी उपलब्ध प्रति ऋग्वेद संहिताके बादकी है किंतु इससे यह प्रकट नहीं होता कि इस संहिताके सब सूक्त ऋग्वेद सूक्तोंके बादके हैं। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अथर्ववेदके सबसे अंतिम सूक्त ऋग्वेदके सबसे अंतिम सूक्तोंके पश्चात् रचे गये हैं। जिस तरह अथर्ववेदके बहुतसे सूक्त अधिकांश ऋग्वेद सूक्तोंके बादके हैं उसी तरह यह भी निश्चित है कि अथर्ववेदकी अभिचार ऋचाएँ ऋग्वेदकी यज्ञ संबंधी ऋचाओंसे पुरानी भले ही न हों, पर एक ही समयकी अवश्य हैं। अथर्ववेदके बहुतसे सूक्त ऋग्वेदके पुरानेसे पुराने सूक्तोंकी तरह प्राचीन और उसी अज्ञात प्राक्-इतिहास कालके हैं। 'अथर्ववेदकाल' कोई निश्चित काल नहीं है। ऋग्वेद संहिताकी तरह अथर्ववेदकके कुछ सूक्तोंके रचना कालमें कई शताब्दियों का अंतर है। इसीलिये अधिकसे अधिक यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेदके अंतिम सूक्तों की रचना ऋग्वेद सूक्तोंके आधार पर हुई है। डॉ० औल्डनवर्गका मत है कि—भारतवर्षके अथर्ववेदके अति प्राचीन अभिचार गद्यमय थे और पद्यात्मक ऋचा और सूक्तोंकी रचना ऋग्वेद के यज्ञसंबंधी सूक्तोंके आधार पर हुई है।" पर डॉ० विंटरनिट्ज इसे ग़लत कहते हैं। ऋग्वेदके विषय और कल्पनाएँ अथर्ववेदसे एक दम भिन्न हैं। ऋग्वेदकी और अथर्ववेदकी रचना भिन्न हैं। एकमें (ऋग्वेद) पंचमहाभूतात्मक बड़े बड़े देवता हैं, गायक उनकी स्तुति और प्रशंसा करते हैं— उनकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते हैं। देवता बहुत बलवान हैं विपत्तिके समय दौड़कर सहायता करनेवाले हैं, उदारचित्तवाले हैं और अधिकतर आनंद और प्रकाश देनेवाले हैं। (अथर्ववेद) दूसरेमें मनुष्य जातिको आपत्तिमें फँसानेवाली शक्तियाँ और भय पैदा करनेवाले पिशाच (भूत प्रेत) आदि पर उग्र मंत्र छोड़नेवाले या उनकी मिथ्या प्रशंसा करके उनको शांत करनेवाले मांत्रिक दिखायी देते हैं। इस वेदमें वर्णित बहुत से सूक्त और उनके प्रयोगकी विधियाँ उन कल्पनाओंकी कक्षामें आती हैं जो कल्पनाएँ पृथ्वीकी एकदम भिन्न संस्कृत रखनेवाली जातियोंमें प्रचलित हैं और उनमें एक विलक्षण सादृश्यता दिखाई देती है। उत्तर अमेरिकाके पूर्व निवासी अफ्रीकाके नीग्रो, मलायाके निवासी, मध्य एशिया के मंगोल पुराने ग्रीक और रोमन आदि लोगोंकी जारण-मारण संबंधी कल्पनाएँ तथा मन्त्र तंत्र और उनके विषयमें अद्भुत विचार पुराने हिन्दू लोगोंके अथर्ववेदसे मिलते जुलते हैं। इसलिये अथर्ववेदकी बहुतसी ऋचाओंके विषय अमेरिकन इंडियनोंके वैद्यों अथवा तातारी शामनों और अति प्राचीन जर्मन काव्यावशेषोंमें मिलनेवाले मर्सेबर्ग मंत्रोंके विषयोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। मर्सेबर्ग मंत्र संग्रहमें एक मन्त्र है। वोडन नामक मान्त्रिकने बाल्डरके बछड़ेके मोच खाये हुए पैरको निम्नलिखित मन्त्रसे ठीक कर दिया—"हड्डीके साथ हड्डी, रक्तके साथ रक्त, अवयवोंके साथ अवयव मिलानेसे एक-जीव हो (परस्पर मिल) जाय।" ठीक इसी आशयका एक मन्त्र अथर्ववेद (४. १२) में पैर टूटनेके इलाजके सम्बंधमें है।

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥ ३ ॥
मज्जा मज्ज्ञा संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥ ४ ॥
लोम लोम्ना संकल्पया त्वचा संकल्पया त्वचम्।
असृक ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे ॥ ५ ॥

अथर्व वेद ४,१२

तेरे शरीर की मज्जायें इन टूटी हुई मज्जाओं से और अवयव इन टूटे (भग्न) अवयवोंसे जुड़ जायँ। शरीर का नष्ट हुआ मांस और टूटी हड्डी फिर बढ़ जाय ॥ ३ ॥

मज्जा में मज्जा मिल जाय। फटा हुआ चमड़ा फिर जुड़ जाय तेरे शरीरका नष्ट हुआ रक्त और टूटी हुई हड्डी फिर पैदा हो और मांस बढ़े (आ जाय) ॥ ४ ॥

हे वनस्पति, नष्ट (ग़ायब) हुए केश (बाल) तेरे कारण आवें, चमड़ा जुड़ जाय, रक्त और हड्डी बढ़े, इस प्रकार घाव (जख्म) ठीक होजाय ॥५॥

अथर्व वेदका विशेष महत्व बढ़ाने वाले कारण निम्नलिखित हैं। यज्ञ-यागादिक और तत्वज्ञान सम्बन्धी विचारोंसे दूर रह कर केवल भूत, प्रेत, राक्षस आदिमें विश्वास करने वाले मनुष्योंके कैसे कैसे पृथक पृथक मत हैं इसको जाननेके लिये अथर्ववेद एक अमूल्य साधन है। अथर्ववेदके भिन्न-भिन्न सूत्रोंको ध्यान पूर्वक पढ़ने पर दिखाई देगा कि मानव जातिके ज्ञानविकासके इतिहासको जानने की इच्छा रखनेवाले पंडितोंको अथर्ववेदका ज्ञान प्राप्त करना कितना आवश्यक है।

भैषज्य-सूक्त—अथर्ववेदका एक महत्वपूर्ण विभाग उन मतोंका है जिनमें रोगोंको दूर करनेका उल्लेख है। इन्हें भषज्य सूक्त कहते हैं। रोगोंको

राक्षस मानकर मंत्रों द्वारा उनको संबोधित (व्यक्त) किया गया है। कहीं कहीं यह मानकर कि अमुक रोग अमुक राक्षसके द्वारा उत्पन्न होता है. मंत्र कहे गए हैं। अन्यान्य लोगोंकी तरह हिन्दू भी इस वातको मानते हैं कि ये राक्षस गण रोगियोंको बाहरसे दिक करते हैं और रोगियोंमें प्रवेश कर उनके शरीरको चालन देते हैं। कुछ मंत्रोंमें तो रोग निवारक औषधियोंका आवाहन और स्तुति है; कुछ मंत्रोंमें रोग दूर करने वाले किसी विशेष जलकी प्रार्थना है और कुछ मंत्रोंमें ऐसे राक्षसोंको दूर भगाने वाले अग्निकी स्तुति है। ये मंत्र और इनके प्रयोग (तंत्र) ही आयुर्वेदके उद्गम स्थान हैं। इस प्रकारके वैद्यक ज्ञानका वर्णन कौशिक-सूत्रोंमें मिलेगा। इन मंत्रोंमें भिन्न भिन्न रोगोंके लक्षण विस्तार-पूर्वक दिये गए हैं। इसी लिये वैद्यकके इतिहासमें इन मंत्रोंका बहुत उल्लेख हुआ करता है। उपरोक्त विधान ज्वरके मंत्रोंमें विशेष कर उपयोगी है। ज्वर बार बार आता है और कठिन पीड़ा देता है, इस लिये वेद-कालके पश्चात् निर्मित ग्रंथोंमें भी इसको 'रोगोंके राजा' की पदवी दी गयी है। अथर्ववेदमें 'तक्मन' नामक ज्वरको राक्षस मानकर उसको संबोधन करके बहुतसे मंत्र दिये हुए हैं। उदाहरणके लिये अथर्ववेदके पांचवें कांडके बाईसवें सूक्तको देखिये। उस सूक्तकी कुछ ऋचाएँ नीचे देते हैं:—

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छो चयन्नग्निरिवाभिन्दुवन्। अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधान्यङ्ङिडः धराङ्वापरेहि ॥ २ ॥

यः परुषः पारुषेयोविध्वंस इवारुणः। तक्मानं विश्वधावीर्यधराञ्चं परा सुव ॥ ३ ॥

तक्मन् भूजवतो गच्छ बल्हिकान्वा परस्तराम्। शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१तां तक्मन वीवि धूनुहि ॥ ७ ॥

यत् त्वं शीतोथो रूरः सह कासावेपयः। भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्घि नः ॥ १० ॥

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह। पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥ १२ ॥

अथर्व० ५. १२

आगकी तरह तेज गरमीसे जलाकर दुनियाके लोगोंको तू पीला बना देता है। इस लिये हे तक्मन् * ! तू बलहीन व तेजहीन हो जा। पातालमें चला जा और यहाँसे गायब हो जा ॥२॥

जो परुष जलने वाला और परुषसे उत्पन्न हुए अरुण वर्णकी धूलिकी तरह है ऐसे तक्मन्‌को, शरीरमें विश्ववीर्य धारणकर मिट्टीमें मिलादो ॥३॥

हे तक्मन् ! तू मूजपन्तोंके पास जा या उनसे भी परे बल्हिकोंके पास जा। किसी कामुक शूद्र युवतीको खोजले और इच्छा भर उसे तंगकर ॥७॥

तू कभी कम तो कभी अधिक रहता है और कासा (खांसी) के संयोगसे हमें हिला देता है। हे तक्मन् ! ये तेरे उपद्रव बहुत भयानक हैं। इनके द्वारा हमें तंग न कर ॥ १० ॥

हे तक्मन् ! तेरा भाई बलास, बहन कासिका और भतीजा पाप्मन् सबको लेकर तू विदेशियोंके पास जा ॥ १२ ॥

अथर्ववेदमें यह इच्छा बार बार प्रकट की गयी है कि रोग अन्य देशोंके लोगोंको तंग करें, उन देशों पर जा कर हमला करें।

जिस मंत्र द्वारा खाँसी किसी रोगीके शरीरसे दूरकी जाय वह मंत्र इस प्रकार है—

यथा मनो मनस्केतै परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोनु प्रवाय्यऽम् ॥१॥
यथा बाणः सुसंशित परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥२॥
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥३॥

अथर्व ६. १०५.

जिस तरह मन बुद्धिसे परे दूरस्थ विषयोंकी ओर अत्यंत वेगसे दौड़ जाता है उसी प्रकार हे कास ! तूभी उसी मनोवेगसे जा ॥ १ ॥

जिस प्रकार सज्ज (तयार किया हुआ) बाण अति वेगसे भेदन करता है, उसी प्रकार हे कास ! तूभी (पाताल पर्यंत) चला जा ॥ २ ॥

जिस तरह सूर्यके किरण बड़े वेगसे चलते हैं उसी प्रकार हे कास ! तूभी समुद्रकी लहरोंके साथ जा ॥ ३ ॥

कुछ मंत्र अपनी सुन्दर भाषाके कारण काव्यके अच्छे नमूने माने जा सकते हैं। हाँ, इस काव्य-रसमें विशेष आनन्दकी आशा रखना व्यर्थ है। बीच बीचमें कुछ कल्पनाएँ अवश्य सम्मुख आ जायँगी जिनसे हृदयको आनन्द प्राप्त होगा या कुछ मनोरंजन हो सकेगा। यह दिखायी देगा कि इन वैदिक कवियोंने अपनी उपमाओंके लिये रक्त वाहिनी नाड़ियाँ, या पेटमें उत्पन्न होनेवाले कीड़ों तकको उपमेय माना है। इस प्रकारकी एक सुन्दर कल्पना अथर्व. १. १७ में है। यह मंत्र रक्त स्राव

* ज्वर ताप

के रोकनेके संबंधमें है। इसमें रक्त वाहिनी नाड़ियोंको रक्तांबरधारी कुमारियोंके नामसे संबोधित किया है।

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥ १ ॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ॥ २ ॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्।
अस्थुरिन्मध्यमा इमा साकमन्ता अरंसत् ॥ ३ ॥
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रिमीत्।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

अथर्व० १. १७.

ये रक्त वस्त्र (लाल वस्त्र) पहन कर जानेवाली रक्त वाहिनी कुमारियाँ, जिनको भाई न हो ऐसी बहनोंके समान बलहीन होकर अपनीही जगह पर चुपचाप खड़ी रहें ॥ १ ॥

निम्न भागमें बहनेवाली धमनी ! तू ठहर जा; ऐ ऊपरवाली तू भी ठहर जा; मध्यमें बहनेवाली तू भी ठहर। सबसे छोटी धमनी तो रुकही गयी। अब बड़ीभी ठहर जाय ॥ २ ॥

सौ धमनियों और हजार रक्तवाहिनी शिराओंकी नाड़ियाँ बन्दहो गई और बाकी रुधिर-स्तंभन (रोकनेवाली) धमनियोंके साथ खेलने लग गयीं (अर्थात् उन्होंनेभी रक्त स्राव बंद कर दिया ॥ ३ ॥

ये ऋचाएँ सदा काव्यमयही नहीं होतीं; अक्सर एक सुरी (बारबार वही बात कहनेवाली) होती हैं। इनमें हर एक ऋचामें काव्यका इतनाही रूप झलकता है कि वही वही शब्द उन्हीं उन्हीं वाक्योंका पुनरुच्चार (बारबार उल्लेख) होता है। प्रारंभिक दशामें जैसी कविताएँ होती हैं उसी प्रकारकी ये ऋचाएँ हैं। यही उनमें समानता है। अन्यके मंत्रोंसे अथर्ववेदके मंत्रोंका साम्य औरभी है। वह यों है कि अक्सर इनका अर्थ जानबूझकर गूढ़ और दुर्गम रखा जाता है। ऐसीही एक गूढ़ ऋचाका एक उदाहरण अथर्व. ६. २५ में है। इस मंत्रका गंडमाला (कण्ठमाला) से संबद्ध है।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि।
इतस्ता सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ ३॥

अथर्व० ६. २५.

पाँच और पचास जो कंठके ऊपरी भागमें जमा है। उन सबका दुखदायी कीड़ोंकी तरह नाश हो ॥ १ ॥

जो सात और सत्तर (कंठमाला) ग्रैव्या नाड़ी पर एकत्रित हैं उनका अपचित् कीड़ोंकी तरह नाश हो ॥ २ ॥

जो नौ और नब्बे कन्धोंके अगल-बगल जमी हैं उनका भी कीड़ोंकी तरह नाश हो।

यह कल्पना बहुत पुरानी है कि बहुतसे रोग जन्तुओं (कीड़ों) से उत्पन्न होते हैं। इसी लिये अथर्ववेदमें सब तरहके जन्तुओंका अपसरण (नाश) करनेके लिये एक मन्त्रोंकी मालिका ही तयार की गयी है।

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४॥
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः। ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ॥ ५ ॥

अथर्व० २. ३१.

अँतड़ियोंमें सिरमें और पार्ष्णोंमें रहनेवाले कीड़ोंका, भीतर घुसनेवाले कीड़ों (अवस्कव) और अन्य मार्गोंसे भीतर जानेवाले कीड़ों (व्यध्वर) का मैं इस मंत्रके द्वारा नाश करता हूँ ॥४॥

जो कीड़े पहाड़, जंगल, वनस्पति, पशु और जलमें घुसे हुए हैं और वहाँ से हमारे शरीर में घुस गए हैं, उन सबको जड़ही में खोद डालता हूँ ॥ ५॥

मालूम होता है उस समय इन रोग उत्पन्न करनेवाले जन्तुओंके विषयमें लोगोंकी ये भावनाएँ थीं कि ये जंतु असुर (मनुष्येतर) हैं, इनमें भी राजा, प्रधान आदि अधिकारी हैं, इनमें स्त्री-पुरुष आदि भेद हैं, इनके अलग अलग रंग हैं। वे अनेक रूप धारण कर सकते हैं। इसका उदाहरण अथर्ववेदके ५ वें कांडके २३ वें सूक्तमें हैं। इस सूक्तमें अत्यंत सूक्ष्म रोग-जंतुके प्रतिकूल निम्नलिखित ऋचाएँ हैं—

अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि। हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥ २ ॥
यो अक्ष्यौपरिसर्पति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३॥
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हता ॥ ४ ॥
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णा शितिबाहवः।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५॥
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥

हुतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥ १२ ॥

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्॥ १३ ॥

अथर्व० ५. २३.

हे धनके स्वामी इन्द्र! इस बालकके शरीर पर उत्पन्न कृमि (कीड़ों) को मार डाल। मेरे उग्र (तेजस्वी) मंत्रोंके बलसे सब शत्रु मर गये॥२॥

जो कृमि (कीड़ा) आंखमें जाता है, जो नाकमें घुसता है, जो दांतोंमें घर बनाता है, उसे मैं मारे डालता हूँ ॥ ३ ॥

दो एक जाति के, दो भिन्न जातिके, दो काले, दो लाल, एक भूरा और भूरे कानवाला, गिद्ध और भेड़िया, ये सब मार डाले गए ॥ ४॥

जिन कीड़ोंकी बगलें सफेद हैं, जो काले हैं और जिनकी भुजायें सफेद हैं, जिनके रूप अनेक हैं। ऐसे कीड़ोंको मैं मार डालता हूँ ॥ ५ ॥

कृमियों (कीड़ों) का राजा मार डाला गया, जिसकी माँ, भाई बहन आदि मार डाले गए वह कृमि भी मार डाला गया ॥ ११ ॥

उसका परिवार नष्ट होगया, उसके आसपास के लोग मार डाले गए और वे भी जो बहुत क्षुद्र (छोटे) थे नष्ट हो गए ॥ १२ ॥

सब स्त्री पुरुष (नर-मादा) कृमि (कीड़ों) का-उनमेंसे हरएक का—सिर मैं पत्थरसे कूचता हूँ और हरएक का मुंह अग्निसे जलाता हूँ ॥ १३ ॥

इस वेदमें ऐसे भी बहुतसे मंत्र हैं जो भिन्न भिन्न रोगोंके उत्पादक (पैदा करनेवाले) माने गए हैं। उनको पिशाच अथवा राक्षसके नामोंसे संबोधित किया गया है। उद्देश केवल उनका अपसारण करना है। इस विषयमें निम्नलिखित ऋचाएँ हैं—

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव। श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम्॥ ६॥

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः। पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ॥ ७ ॥

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम। पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ॥८॥

अथर्व० ४. ३६.

ढोरोंके मालिकोंको जिस तरह बाघसे हानि उठानी पड़ती है उसी तरह पिशाच (भूत) मेरे मंत्र सामर्थ्यके सामने बे-बस हो जाते हैं। सिंहको देखकर कुत्ता जिस प्रकार छिपनेका समय भी नहीं पाता उसी प्रकार पिशाचभी (मुझसे छिपकर) कहीं छिप नहीं सकते ॥ ६ ॥

पिशाचों, चोरों और जङ्गलमें भटकनेवालोंसे मैं कुछभी संबंध (सरोकार) नहीं रखता। इसके विपरीत मैं जिस जिस गाँवमें जाता हूँ वहाँके पिशाच गायब हो जाते हैं ॥ ७ ॥

जिन जिन गाँवोंमें मेरे मंत्र-सामर्थ्यका चमत्कार दृष्टिगोचर होता है वहाँसे पिशाच दूर भागते हैं और लोगोंको किसी तरहका कष्ट नहीं होता॥ ८॥

इन मंत्रोंसे स्पष्ट है कि मांत्रिक लोग अपनी शक्तिमें कितना अटूट विश्वास रखते थे।

लोगोंमें एक कल्पना यहभी प्रचलित है कि राक्षस, भूत और पिशाच आदि मानवजातिमें रोग उत्पन्न करते हैं। दूसरी कल्पना-जो संसारमें बहुत रूढ़ है–यहभी है कि आसुरी स्त्री-पुरुष (भूत चुड़ैल) मानवी स्त्री-पुरुषोंको रातके समय घेरते हैं और उनपर जबर्दस्ती करते हैं। प्राचीन हिन्दुओंमें ऐसे स्त्री-पुरुष अप्सराएँ और गन्धर्व माने गए हैं। ये जल-देवता, वन-देवता या निसर्ग (सृष्टि) देवताओंकी तरहही थे। इन लोगोंके रहनेके स्थान नदियाँ और पेड़ आदि हैं। ये लोग मनुष्योंको भुलावा देकर उनसे सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध संभोग करनेके लिये अपने रहनेके स्थान छोड़कर बाहर निकल पड़ते हैं। ऐसे देवताओंसे अपनेको बचानेके लिये उस कालके मांत्रिक अजश्रृंगी नामकी सुगंधित वनस्पतिको काममें लाते थे। उस मौके पर वे अथर्ववेदके ४थे कांडके ३७वें सूक्तको भी कहते थे।

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे। अजमृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ २ ॥

नदीं यन्त्वप्सरसोपां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३॥

यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः। तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥

आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः। भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ॥ ७ ॥

श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः। प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ ११ ॥

तेरे बलपर हम गंधर्वों और अप्सराओंको नाश करते हैं। हे अजश्रृंगि, सब राक्षसोंको भगा दे; अपनी सुगंधिसे सबको नष्ट कर दे ॥ २ ॥

ये अप्सराएँ नदीमें अपने स्थान पर चली जायँ। गूगुल, पीला, नलदी, अक्षगंधी, प्रमन्दनी आदिके हवनसे वे डर जायँ। अब उनके चले जाने पर तुम्हारा चित्त शांत हुआ ॥ ३ ॥

जहाँ अप्सराएँ गई हैं उस जगह अश्वत्थ (पीपल) न्यग्रोध (बड़) आदि बड़े बड़े वृक्ष हैं; मोरभी हैं। उनके चले जानेसे अब तुम्हारा चित्त शांत हुआ ॥ ४ ॥

मोरकी तरह नाचनेवाले इस अप्सराके पति गंधर्व का वृषण (अण्ड) दबाकर उसके इन्द्रिय को छेद दूंगा ॥ ७ ॥

कोई कुत्तेका, कोई बन्दरका या कोई बालक का तो कोई शरीर पर केश बढ़ाकर, कोई सुन्दर रूप धारण कर ये गंधर्व अप्सराओंको तङ्ग कर रहे हैं। मंत्रके बलसे उनका नाश करता हूँ ॥ ११ ॥

हे गंधर्वगण, आप पति और अप्सराएँ आप की पत्नियाँ हैं। आप अमर हैं इसलिये आप हम मनुष्यों (मर्त्यजनों) से दूर रहिये; हम लोगोंमें मत मिलिये ॥ १२ ॥

आरोग्य मंत्र और ताबीज—अथर्ववेद सूक्तोंका पहला वर्ग यदि रोग निवारण करनेवाले मंत्रोंके प्रयोगोंका है तो दूसरा वर्ग आयु और आरोग्य (स्वास्थ्य) की कामनाके लिये कहे जानेवाले प्रार्थना-मंत्रोंका है। इन दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। ये प्रार्थना-मंत्र खासकर चौल (मूँडन) उपनयन (जनेऊ) आदि संस्कारोंके समय कहने के लिये हैं। इनमें हर एकमें दीर्घायुष्य तथा रोगोंसे मुक्ति पानेकी प्रार्थनाएँ मात्र हैं। अथर्ववेदके १७वें कांडमें ३० ऋचाओंका जो एकही सूक्त है वह इसी तरहका है। जिस तरह रोग-निवारक मंत्रों द्वारा मांत्रिक वैद्य रोग नाशक औषधियोंका आह्वान (बुलाते) करते हैं उसी प्रकार आयु और आरोग्य (स्वास्थ्य) के निमित्त कहे जानेवाले मंत्र उसी मतलबसे पहने जानेवाले मंत्रों (ताबीजों) को सम्बोधित कर कहे जाते हैं।

पौष्टिकमंत्र—उपरोक्त प्रार्थना-मंत्रोंकी तरह बहुत से पौष्टिक मंत्रभी मिलते हैं। खेतिहर और व्यवसायी ऐसे मन्त्र कह कर अपने कार्योंमें यश-प्राप्ति की इच्छा करते हैं। पौष्टिक मन्त्रोंमें-मकान बाँधने, बीज बोने, धान्य पैदा होने, कीड़ोंके मारनेके सम्बन्धमें प्रार्थनाएँ; आगसे बचने, पानी बरसाने, गाय भैंस आदि पालतू पशुओंकी वृद्धि करने, चोर और हिंसक पशुओंसे बचनेके मन्त्र; अपने व्यवसायमें लाभ और भ्रमणमें सुख प्राप्त होनेके लिये अभ्यर्थना; द्यूतमें सफलता पाने और साँपका विष उतारनेके मन्त्र-आदि आदि विषयोंके मन्त्र दिखायी देते हैं। इस विषयकी बहुत थोड़ी ऋचाएँ काव्यके अन्तर्गत आ सकती हैं। हाँ, कभी कभी किसी साधारण लम्बे सूक्तमें टूटी फूटी पर बहुत सुन्दर ऋचाएँ मिलती हैं। अथर्व संहिताके ४थे कांडके १५वें सूक्तमें 'पर्जन्यसूक्त' बहुतही सरस है। उसमेंसे दो ऋचाएँ देते हैं—

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः
समभ्राणि वातजूता नियन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो
वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ १ ॥
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं
भूमिंपर्जन्य पयसा समङ्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमा-
शारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ॥ ६ ॥

अथर्व. ४. १५.

चारों दिशाओंसे हवाके बलपर पानी बरसाने वाले मेघ इकट्ठा हों। मस्त सांड़की तरह गर्जना करनेवाले मेघ पृथ्वीपर भरपूर जल बरसावें ॥१॥

हे पर्जन्य! खूब गरज, समुद्रको खौला दे, अच्छा पानी बरसा कर पृथ्वीको नहला (भिगो) दे। मूसलाधार पानी बरसने दे। सूर्यको ढँककर पानी गिरा ॥ ६ ॥

सुख और समृद्धि तथा संकट निवारणके लिये जो पौष्टिक मन्त्र है उनमें काव्यका बहुत थोड़ा स्वाद रहता है।

प्रायश्चित्त मन्त्र—संकट दूर करनेके लिये जो मंत्र हैं उन्हींमें "मृगार सूक्त" नामक 'शांतिपाठ' हैं। अथर्व ४-२३से २९ तक सात सात ऋचाओं के सात सूक्त हैं। वे क्रमसे (१) अग्नि. (२) इन्द्र (३) वायु और सवितर् (४) अन्तरिक्ष और धरित्री (पृथ्वी); (५) मरूद्गण (६) भव और शर्व और (७) मित्र और वरुण है। इन्हीं सात देवताओंको संबोधित करके वे कहे गए हैं। हरएक ऋचाके अंतमें अंहसा (संकट) से मुक्ति पानेकी टेक है।

'अंहस्' का अर्थ 'संकट' है; पर दूसरा अर्थ 'पाप' भी है। इस कारण उपरोक्त शांतिपाठ अथर्ववेदके प्रायश्चित सूक्तोंमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। पाप निवारण करनेवाले मन्त्र प्रायश्चित्त मन्त्रोंसे विशेष भिन्न नहीं हैं। क्योंकि प्राचीन मतके अनुसार केवल धर्मबाह्य अथवा नीतिबाह्य आचरणोंके लिये प्रायश्चित्त विधान नहीं है बल्कि अधूरे यज्ञ, जानबूझ कर अथवा अनजाने अपराध, हृदयमें उठनेवाले पापी विचार, कर्ज न देना, शास्त्र विरोधी विवाह आदि पापोंकी शांतिके निमित्त भी प्रायश्चितका विधान है। इसी तरह साधारण अपराध और पातकोंके क्षालनके लिये, शारीरिक और मानसिक दुर्बलताके लिये, बुरे

ग्रहोंमें पैदा होने, जोडुवाँ बालक होने, दुःस्वप्न दिखायी देने आदि आदिके लिये भी प्रायश्चित्त मन्त्र हैं। अपराध, पाप, विपत्ति, दुर्दैव आदि की कल्पनाएँ इस वेदमें इतस्ततः बहुत हैं। यह माना गया है कि व्याधि (कष्ट) आपत्ति(विपत्ति) अपराध (गुनाह) और पाप इत्यादि जितनी बुरी बातें हैं भूत पिशाचोंसे उत्पन्न होती हैं। यह भी समझा जाता था कि रोगी या पागल मनुष्यकी तरह पातकी मनुष्य पर भी भूतकी सवारी हो जाती है। यही नहीं ये रोग उत्पन्न करनेवाले मनुष्य-द्वेषी भूतपिशाच असगुन और अपघात (चोट वगैरह) आदिके भी कारण होते हैं। इसका उदाहरण अथर्ववेदके १०वें कांडके ३रे सूक्तमें मिलेगा। इसकी २५ ऋचाओंमें एक मंत्र (तावीज) की खूब प्रशंसाकी गयी है। उसके सामर्थ्यकी बहुत प्रशंसाकी गयी है। सब प्रकार के विघ्न, दुष्ट मंत्रोंका प्रयोग, बुरे स्वप्न, असगुन, माँ, बाप, भाई, बहन द्वारा तथा स्वयं किये हुए पापोंका निरसन करनेकी क्षमता उस मंत्रमें बताई गई है।

शांति-सूक्त—उस समय यह माना जाता था कि दुष्ट दैत्य अथवा द्वेष करनेवाले मांत्रिक ही घरमें कलह (फूट) पैदा करते हैं। अथववेदमें ऐसे मंत्र हैं जो घरमें सुख और शांति विराजनेके लिये कहे जाते हैं। इन मंत्रोंको प्रायश्चित्त मन्त्रों और पौष्टिक मन्त्रोंके मध्यमें स्थान देना चाहिये। इन मन्त्रोंमें केवल ऐसे ही मन्त्र नहीं हैं जिनसे घरमें सुख ही हो, किन्तु ऐसे भी मन्त्र हैं जिनके बल से अपने अधिकारी (अफसर) को प्रसन्न किया जा सकता है; इच्छा होनेपर समाजमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई जा सकती है; अदालतमें अपने पक्ष की बातोंको ठिकानेसे समझाकर न्यायका पलड़ा अपनी ओर झुकाया जा सकता है; या अनेक दूसरे महत्वके काम किये जा सकते हैं। इस सम्बंधमें एक उत्तम सूक्त अथर्व संहिताके ३ रे काण्डका ३०वाँ सूक्त है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥
अथर्व० ३. ३०.

मैं आपको द्वेषसे मुक्त, समान चित्तवृत्ति धारण करनेवाले और प्रेमसे पूर्ण बनाता हूँ। गाय जिस तरह अपने बछड़े पर प्रेम करती है उसी प्रकार आप भी परस्पर प्रेम बढ़ावें ॥ १ ॥

पुत्र पिताके अनुकूल और माताके हृदयको समझनेवाला हो। स्त्री अपने पतिसे मधुर (मीठी) बाणी बोले ॥ २ ॥

भाई भाईसे द्वेष (बैर) न करे; वैसे ही बहनें भी आपसमें न लड़ें। ये आपसमें प्रेमसे सम्भाषण करें और उदार चित्तसे व्यवहार करें ॥ ३॥

प्रणयमंत्र—घरमें सुख और शांति कायम रखने वाले ये मंत्र पति-पत्नीमें प्रेम और एक-भाव उत्पन्न करनेमें उपयोगी हो सकते हैं। परन्तु अथर्ववेदमें विवाह और प्रेमसे सम्बंध रखनेवाले मंत्रोंके भिन्न सूक्त हैं। ये सूक्त बहुत हैं। इस वेद के कौशिक सूत्रमें 'स्त्रीकर्म' नामक मंत्र प्रयोग और काममंत्र हैं। इन मंत्रोंके दो विभाग हैं। प्रथम विभागमें विवाह और सन्तानोत्पत्तिके सम्बंधमें सात्विक और शांत मंत्र हैं। ये मंत्र कुमारियोंको पति मिलनेमें और युवकोंको गृहिणी प्राप्त होनेमें सहायक होते हैं। ये मंत्र पति-पत्नी और नव-विवाहित जोड़ेका कल्याण साधन करनेवाले हैं। इनके कारण शीघ्र गर्भ-धारण होता है, गर्भवती स्वास्थ लाभ करती है, गर्भस्थ बालककी रक्षा होती है सुन्दर बालक प्राप्त होता है; और इसी प्रकारके अनेक वैवाहिक सुख प्राप्त होते हैं। समस्त चौदहवें कांडमें यही विषय है। मालूम होताहै ऋग्वेदमें लिखित विवाहसम्बन्धी मन्त्रोंका यह परिवर्द्धित संस्करण है। अब द्वितीय विभागको लीजिये। इसकी संख्या बहुत है। विवाहके पश्चात् यदि पति-पत्निमें विग्रह हुआ हो, अथवा प्रेमी-प्रेमिकाके प्रेम सम्बन्धी षड़यन्त्र रचे जा रहे हों तो उनकी सफलताके सम्बन्धमें मन्त्र हैं। पतिके शक्की (सन्देह युक्त) मिज़ाज़को दूर करने, बद-चलन स्त्रीको सुधार कर पति-सेवामें तत्पर करने अथवा अपनी प्रेमिकासे भेंट करनेके लिये उसके (प्रेमिकाके) सगे सम्बन्धियोंको अपने बसमें लानेके मन्त्र हैं। यह ठीक है कि ये मन्त्र विशेष कष्ट उत्पन्न करनेवाले नहीं हैं। इच्छाके विरुद्ध किसी स्त्री या पुरुषको अपने अनुकूल या औरभी ऐसेही कुकर्मोंके लिये साधनभूत कुछ अधिक उग्र मन्त्र हैं। दुनियाके अन्यान्य स्थानोंकी तरह प्राचीन समयमें इस देशमेंभी यह समझा जाता था कि किसी स्त्री या पुरुषको उसकी प्रतिमा (मूर्ति) बनाकर उसको मन्त्र द्वारा अपने कब्जेमें रखा जा सकता है या नुकसान पहुँचाया जा सकता है। कोई पुरुष यदि किसी स्त्रीको अपने

वशमें करना चाहता था तो वह उसकी मिट्टीकी प्रतिमा (मूर्ति) तयार करता था। धनुषी अम्बाडी को डोरी लगाता था। काली लकड़ीके बाणमें एक कांटा और उल्लू पक्षीके परको खोंस-कर उक्त प्रतिमाके हृदय स्थान पर आरपार छेद करता था। उद्देश यही था कि कामदेव अपनी अपे-क्षित प्रेमिकाके हृदयमें प्रेमीके प्रति अनुराग उत्पन्न करदे इस तरहका प्रयोग करते समय वह प्रेमी प्रयोगकर्ता निम्नलिखित मन्त्र मुंहसे कहता था।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥१॥
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम्।
ता सुसन्नतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥ २ ॥
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥ ४ ॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ ५ ॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

अथर्व० ३. २५

उत्तुद (कामदेव) तुझे व्यथित करे। तू शय्या पर सुखसे न सो सकेगी। कामदेवका बाण तीक्ष्ण है; उसीसे मैं तेरा हृदय विद्ध (छेदन) करता हूँ ॥ १ ॥

जिसको मानसिक पीड़ाके पङ्ख लगे हुए हैं, काम ही जिसका कांटा है, संकल्प (निश्चय) ही जिसकी नोक है, ऐसा बाण तयार कर, (हे कामिनो) कामदेव तेरे हृदयको विदारित (छिन्न) करे ॥ २ ॥

जो सुसज्जित बाण प्लीहाको शोषण कर लेता है और जिसके पंख जलाते हुए निकल जाते हैं ऐसे बाणसे मैं तेरा हृदय विद्ध (वेधना) करता हूँ ॥ ३ ॥

दाहक और दुःखदायक (बाणसे) बिद्ध होकर तू व्याकुल हो और मेरे पास आ। तू मीठी बोली बोलनेवाली, मेरा कहा माननेवाली, मेरे अनुकूल, क्रोधसे रहित हो जा ॥ ४ ॥

तुझे, तेरे माता पिताके सामनेसे, कोड़े लगा-कर मैं यहँ आनेको वाध्य करता हूँ। ऐसा करने से तू मेरे कथनानुसार चलेगी और मैं जो चाहूँगा सो मुझे करने देगी ॥ ५ ॥

हे मित्रावरुण! इसका हृदय चञ्चल करो; इसको किंकर्तव्य विमूढ़ बनाकर मेरे सुपुर्द करो॥६॥

यदि कोई स्त्री किसी पुरुषको अपने प्रेमके वशमें करना चाहती थी तो वह भी ऐसे ही प्रयोग करती थी। वह भी अपने सम्मुख इच्छित पुरुषकी प्रतिमा रखकर उसपर बाण चलाती थी मुँहसे अथर्ववेदके छठे काण्डके १३० और १३१वें सूक्तको पढ़ती थी। उस सूक्तकी ऋचाएँ यहाँ देते हैं—

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय। अग्न
उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥

अथर्व० ६. १३०.

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्योऽनि तिरामि ते।
देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥

अथर्व० ६. १३१.

हे मरुत्! ऐसा करो जिससे यह (पुरुष) पागल हो जाय। हे अन्तरिक्ष! इसे उन्मत्त बनाओ। हे अग्नि तुम इसे इतना उत्तेजित करो कि इसे मेरी याद आते ही यह शोकाकुल हो जाय ॥ ४ ॥

सिरसे लेकर पैर तक मैं तेरे शरीरमें काम-पीड़ा उत्पन्न करती हूं। हे देवताओं! इसको इतना काम-विह्वल कीजिये कि ये मेरा स्मरण कर शोकयुक्त हो जाय ॥ १ ॥

तू तीन या पाँच योजन घोड़ेकी तरह दौड़ कर भाग गया है, तू वापस आवेगा और हम दोनोंको जो पुत्र होगा उसका तू पिता होगा ॥ ३ ॥

सपत्नी मन्त्र—बहुत हानिकारक, उग्र तथा द्वेष से पूर्ण वे मन्त्र हैं जिनके द्वारा कोई स्त्री अपने मार्ग (रास्ते) से सौतको या दूसरी ऐसी ही औरतोंको निकाल देनेमें प्रयोग करती हैं। ऐसे मन्त्रोंका एक उदाहरण निम्नलिखित है—

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥ १ ॥
एषा ते राजन् कन्या बिधूर्नि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥
एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३॥
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च।
अन्तः कोशमिव जामयोपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

अथर्व० १. १४.

फूले हुए पेड़के फूल जिस तरह तोड़ लिये जाते हैं इसी तरह मैं उसके भाग्य और तेजको (हरण कर) स्वयं धारण करती हूँ। जो पर्वत पृथ्वीमें दूर तक घुसा हुआ है उसकी तरह वह बहुत समय तक अपने मायकेमें रहे ॥ १ ॥

हे यमराज ! यह तेरी स्त्री हो और तुझे वश हो (अर्थात् मर जाय)। यह अपने मायकेमें ही सड़ती रहे ॥ २ ॥

हे राजा ! यह तेरे कुलका पालन करनेवाली स्त्री है, मैं इसे तुझे दे देती हूँ। यह बालोंके पक जाने तक (बूढ़ी होने तक) चिरकाल अपने मायकेमें ही रहे ॥ ३ ॥

असित, कश्यप, और गय मन्त्रों द्वारा जिस तरह बहनें अपना अंतःशोक सहन करती हैं उसी तरह मैं भी तेरे भाग्यको बाँध देती हूँ (तुझे भाग्यहीन करती हूँ) ॥ ४ ॥

अभिचार मन्त्र—किसी स्त्रीको बाँझ बना देने* वाले या किसी पुरुषका पुरुषत्व† हरण करनेवाले मन्त्र अत्यन्त नीचताके द्योत्तक हैं। इनकी भाषा भी संदिग्ध नहीं है, उनसे दुष्टता स्पष्ट झलकती है। इस प्रकारके काम-मन्त्र 'आंगिरस' अर्थात अभिचार मन्त्र-वर्गमें रखे जा सकते हैं।

पहले कह चुके हैं कि असुर, अभिचारी और और अमित्र (शत्रु) पर प्रयुक्त किये जानेवाले अभिशाप और अपसारसा मन्त्र 'आंगिरस' श्रेणीमें हैं। कुछ रोग निवारक मन्त्र भी इसी श्रेणीमें आ सकते हैं। सोलहवें कांडका उत्तरार्द्ध भी इसीमें सम्मिलित किया जा सकता है। क्योंकि उसमें दुःस्वप्नों पर मारक अभिचार मन्त्र हैं। जिनमें कहा गया है कि इन दुःस्वप्नोंको उत्पन्न करनेवाले भूत शत्रुकी छाती पर चढ़ बैठे हैं। ऊपर उल्लिखित अपसारण मन्त्रोंमें राक्षस, भूत अथवा दुष्ट अभिचारी स्त्रीपुरुषोंमें विशेष भेद नहीं माना गया है। अग्नि असुरोंका नाश करनेवाला समझा गया है। इसीलिये ऐसे लोगोंके विरुद्ध उसकी सहायता मांगी गयी है। इन स्थानोंमें बहुतसे अज्ञात असुरोंके नाम दिखायी देते हैं। उस समय की साधारण जनतामें जो कल्पनाएँ रूढ़ि थीं उनकी जितनी अधिकता इन सूत्रोंमें दिखाई देती है उतनी और कहीं नहीं। सब लोगोंमें एक बहुत ही प्रचलित कल्पना यह भी थी कि रोग तथा विपत्तियोंके उत्पादक केवल भूत-पिशाच आदि ही नहीं हैं किन्तु दुष्ट अभिचारी लोग भी वैसा कर सकते हैं। ये दुराचारी लोग जिन अभिचार मन्त्रोंके बलसे दुष्ट कर्म करते थे उनमेंसे बहुतसे सूक्तोंमें किसी न किसी व्यक्तिकी कल्पनाकी गयी है और उसके विरुद्ध शमन (शांत) करनेवाली वनस्पतियाँ, ताबीज (यंत्र), बभूत इत्यादिका उपयोग किया गया है। ऐसे उग्र मन्त्र और इनका प्रतिकार (सामना) करनेवाले शामक मन्त्र उनकी भिन्न भिन्न भाषाओं द्वारा पहचाने जाते हैं। अथर्ववेदके ५ वें कांडके सूक्तमें अभिशाप मन्त्रोंका प्रतिकार करनेवाली कुछ ऋचाएँ आगे देते हैं—

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दीप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि । अथो
यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥ २ ॥
रिश्यस्येव परिशासं परिकृत्य परित्वचः ॥
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३॥
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आधेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ४ ॥
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ ५ ॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥ ६ ॥
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०॥
अथर्व० ५. १४.

गरुड़ने तेरा पता लगाया है, शूकर (सूअर) ने अपनी सींगसे खोदकर तुझे बाहर निकाला है, हे औषधि ! तू दुष्टोंको कष्ट दे और जादू-टोना करनेवालेको मार डाल ॥ १ ॥

यातुधानों (राक्षसों) को मार डाल, टोना करनेवालेको साफ कर डाल, हे औषधि ! हमें जो कष्ट पहुँचाता है उसका नाश कर ॥ २ ॥

सफेद हिरनकी त्वचासे निकाले हुए टुकड़ेकी तरह हे देवताओं ! जादू करनेवालोंके शरीर पर उन्हींके जादूका प्रभाव पड़ने दो ॥ ३ ॥

पुनः उनका टोना पकड़ कर उन्हींकी ओर वापस कर दो और इस प्रकार उनके सामने रखो कि वे उसे देखकर मर जायँ ॥ ४ ॥

टोनेवालेका प्रयोग उसीपर हो, उसका श्राप उसीके नाशका कारण हो और उसका टोना पहिये की तरह घूमकर उसीके ऊपर जा कर गिर पड़े ॥ ५ ॥

जिस किसीने, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, दुष्ट बुद्धिसे प्रेरित होकर जादू किया हो, उसपर, लगामके द्वारा घोड़ा जिस तरह पीछे हटाया जाता है उसी तरह वह जादू पीछे लौटाया जायगा ॥ ६ ॥

बेटा जिस तरह बापके पास जाता है वैसे ही तू भी जा। धोखेसे दबा हुआ साँप जैसे काटता

* अथर्व ७. ३५.
† „ ६.१३८ }
७. ६० }

है वैसे ही तू भी काट; बंधनमें फँसा हुआ प्राणी जिस तरह भाग जाता है उसी प्रकार हे कृत्या (जादू) तू अपनी कर्ताकी ओर जा ॥ १० ॥

अथर्व संहिताके ६वें कांडके ३७ वें सूक्तकी ऋचाओंमें जहाँ अभिशापमन्त्र योजक (कर्ता) पर ही उलट देनेका उल्लेख है, वहाँ ऋचाओंकी भाषा बहुत जोरदार है। उनमेंसे कुछ ये हैं—

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥१॥
परि णो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः ॥ २ ॥
यो नः शपादशपतः शपतः यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ३ ॥
अथर्व० ६. ३७.

शाप क्रियाका कर्त्ता सहस्राक्ष (इंद्र) रथ लेकर इधर आया है। भेड़िया जिस प्रकार भेड़ पालनेवालेके घर आता है उसी प्रकार आकर वह हमें शाप देनेवालेको मारनेकी इच्छा करता है ॥१॥

जिस प्रकार दहन करनेवाली अग्नि सरोवर को बाधा नहीं पहुँचा सकती उसी तरह, हे शपथ ! तू हमें बाधा न पहुँचा। जिस तरह आकाशसे गिरनेवाली बिजली वृक्षोंका नाश करती है। उसी तरह तू भी हमको शाप देने-वालेका नाश कर ॥ २ ॥

जो शाप न देनेपर भी हमें शाप देता है, या जो शाप देनेपर हमें शाप देता है उसे मृत्युके सामने उसी तरह फेंक देंगे जिस तरह रोटी कुत्ते के सामने फेंकी जाती है ॥ ३ ॥

वरुण सूक्त भी (अथर्व ४. १६) इसी वर्गमें है। अर्थात् उसमें काव्य और अभिचार मन्त्रोंका मिश्रण है। सूक्तके पूर्वार्द्धमें भक्तिके साथ वरुण का वर्णन किया गया है। कहा गया है कि हे वरुण ! तू सर्वशक्तिमान है और सर्व-साक्षी है। ऐसा सुन्दर वर्णन बहुत कम स्थानोंमें मिलता है। सूक्तका उत्तरार्द्ध अनृतवादी (झूठे) लोगोंको पाशबद्ध (बेकाबू) करनेवाला जोरदार मन्त्र है। उक्त उत्तरार्द्ध इस प्रकार है—

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा
तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ
उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥ ३ ॥
उत यो द्यामतिसर्पात्त परस्तान्न
स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सह-
स्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे
यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानाम
क्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्त यः
सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं
मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा
कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥
यः समाम्यो३ वरुणो यो वाम्यो३
यः सन्देश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि
पाशैरसावामुष्यायणामुष्या पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥
अथर्व ४. १६.

तीनों लोकका बलवान राजा दुष्टोंके कार्योंको समीपसे देखता है। संसार नश्वर है इसे वरुण और सब देवता जानते हैं ॥ १ ॥

मनुष्य खड़ा हो, चल रहा हो, छिपा हो; कहीं भी हो आदमी मिलकर कोई षड्यंत्र रचते हों, वहाँ तीसरा वरुण हाज़िर रहता है ॥ २ ॥

यह पृथ्वी और आकाश सब वरुणके ही आधीन हैं। दोनों समुद्र उसकी कोख है। छोटे छोटे जलाशय वरुणके ही अन्तर्गत है।

वरुणका शत्रु यदि आकाशके परे भी चला जाय तो भी वह वरुणसे मुक्त नहीं हो सकता। वरुणको सहस्र नेत्र (चर) हैं ! ये सब दिशाओं की रखवाली किया करते हैं। पृथ्वी पर तथा उसके परे भी ये सदा घूमा करते हैं।

पृथ्वी और आकाशके मध्यमें स्थित तथा इनसे भी परे रहनेवाले प्राणियों पर वरुणकी दृष्टि रहती है। प्राणिमात्रके पलक गिरने तक का हिसाब वरुणके यहाँ रहता है। जैसे जुआरी पासों पर दृष्टि लगाये रहता है उसी भाँति सब विषयमें वरुण चौकन्ना रहता है।

हे वरुण! तुम्हारे सात सात तीन श्रेणीके पाश—उत्तम, मध्यम, निकृष्ट—सदा तय्यार रहते हैं। वे पाश असत्यवादीको बन्धनकारक हों। वह सत्यवादीको कष्ट न दे।

हे वरुण! सौ पाशोंसे बाँध। हे नृचक्ष! उस असत्यवादीको छोड़ मत! उस धूर्तका पेट बढ़ जाने दे अर्थात् जलोदर (जलंधरका रोग) हो जाने दे! पेटके कोष्ठकमें प्रवेश कर जा।

वरुण रोगको उत्पन्न करता है और नाश भी करता है। वरुण सर्वज्ञ है किन्तु स्वयं अज्ञात है! वरुण दैवी तथा मानुषिक दोनों ही शक्ति है।

इन सब पाशोंसे हम तुमको (अमुक नामवाले तथा अमुक गोत्रोत्पन्नको) बाँधते हैं। तुमको भलीभांति देखकर तुमपर पाश फेंकते हैं।

अथर्ववेदका जर्मन भाषान्तरकर्त्ता रॉथ वरुण सूक्तके विषयमें अपना मत इस भाँति प्रकट करता है इतना उच्चकोटिका वर्णन वाला गीत सम्पूर्ण वेदमें दूसरा नहीं देख पड़ता किन्तु जो साहित्यक दृष्टिसे सर्वोत्तम भाग है वह वस्तुतः अभिचार मन्त्रोंकी प्रस्तावना मात्र है। यह तर्क अनुचित होगा कि इस वेदमें और अन्य स्थानोंमें भी पुराने सूक्तोंके कुछ विशिष्ट अभिचार मन्त्रोंमें जोड़ने लायक भाग जोड़ दिये गए हैं। उपरोक्त मन्त्रमें पहलेकी ५-६ ऋचाएँ किसी सूक्तके टुकड़े हैं। डॉ० विंटरनिट्ज़ रॉथके मतका समर्थन करते हैं। वे ब्लूमफील्डके उस मतको निराधार बतलाते हैं। जिसमें वे अभिचार मन्त्रोंको सूक्त बतलाते हैं।

राजनीति और मन्त्र शास्त्र—राजाओंके लिये उपयोगी मन्त्रोंका एक वर्ग बहुत बड़ा है। इसमें शत्रुके विरुद्ध अभिचार विधि तथा कुछ पौष्टिक मंत्र है। प्राचीन समयसे ही भारतवर्षमें प्रत्येक राजाके यहाँ एक पुरोहित रहता था। वह राजाओंके उपर्युक्त मन्त्र प्रयोग तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले सूक्तोंका तथा वचनोंका जानकार होता था। अथर्ववेदसे और क्षत्रियोंके धर्मका निकट सम्बन्ध है। इसलिये इस वेदमें राज्याभिषेकके समय जिस पवित्र जल व्याघ्र चर्म आदिकी आवश्यकता होती है उनके सम्बन्धमें मन्त्र है। राजकी परिकीर्ति बढ़ने, दूसरे राजाओं पर उसका रोष रहनेके सम्बन्धमें भी मन्त्र है और शरीर पर कवच धारण करने तथा रथ पर आरूढ़ होनेके समय की जानेवाली प्रार्थनाएँ हैं (अथर्व ३.४) वरुण शब्दमें 'वर' धातु है जिसका अर्थ है 'चुनना'। इसी कारण इसी शब्दसे यह समझा जाता था कि वरुण देवता राजाके चुनावके साथ स्वयं उपस्थित रहते हैं। किसी देश-निर्वासित राजाको गद्दी पर पुनः बैठानेके समय (अथर्व ३.३) जो मन्त्र विधिका प्रयोग किया जाता है, वे मन्त्र भी उपरोक्त मन्त्रोंके समान ही बड़े रोचक तथा सुन्दर हैं। इस भाग में सबसे पहले युद्धगति तथा संग्राममन्त्र हैं। जिन सूक्तोंसे दुन्दुभिकी प्रार्थना कर वरुणको युद्ध क्षेत्रमें विजय प्राप्तिसे लिये आमन्त्रित करते हैं वे सूक्त बड़े ही मज़ेदार हैं। इसका उदाहरण पाँचवें कांडका २२ वाँ सूक्त है। इसमेंकी कुछ ऋचाएँ नीचे दी जाती हैं—

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः। वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि॥ १॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः॥ २॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित्। शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः॥ ३॥

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा। नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्॥ ४॥

अथर्व० ५.२०.

लकड़ीका बना हुआ बाधोंसे घिरा हुआ, वीरोचित आचरण करनेवाला दुंदुभि बड़ा भयानक शब्द कर रहा है। अपनी आवाज़ तेज़ करके तू सिंहकी तरह गरज और शत्रुओंकी नाकमें दम कर दे॥ १॥

बँधा हुआ दुन्दुभि सिंहकी तरह गरजा; उसने वृषभ (बैल) की तरह ज़ोरका डंकार किया। हे दुन्दुभि! तू बैल (वृषभ) है; तेरे शत्रु डरपोक हैं; शत्रुओंके जीतनेमें तू इंद्रके समान है॥ २॥

जानवरोंके गिरोहमें परम शक्ति संपन्न बैलकी तरह तू प्रसिद्ध है। तू लूट जमा करते हुए ज़ोरसे हुंकार करता जा। शत्रुओंके हृदयको दहला दे कि वे घबरा जायँ और अपने घर-बार छोड़ कर चले जायँ॥ ३॥

बहुत दूर तक दुंदुभिका शब्द सुनकर शत्रुकी स्त्री डरके मारे अपने बच्चेका हाथ पकड़ती हुई रणभूमिसे भाग जाय॥ ५॥

यह तो हो नहीं सकता था कि ब्राह्मण सदा राजा और प्रजा को भलाईके लियेही मंत्रोंका

उपयोग करें और स्वयं अपने विषयमें उदासीन रह जायँ। 'राजकर्म' संबंधी मंत्र प्रयोगोंमें कुछ मंत्र राजाके लिये प्रयुक्त न किये जाकर उसके पुरोहितके लिये प्रयुक्त होते नज़र आते हैं। यद्यपि ब्राह्मणी साहित्यमें अभिचार मंत्रोंके विरुद्ध कड़ी समालोचनाएँ की गयी हैं फिरभी मनुस्मृतिमें (११, ३३) स्पष्ट लिखा है कि विशेष मौके पर ब्राह्मण अथर्ववेदका उपयोग बिना किसी हिचकिचाहटके करें। ब्राह्मणोंकी शक्ति-वाचा" जिह्वामें है। इसका प्रयोग शत्रुको नाश करनेमें वह कर सकता है—

श्रुतिरथर्वांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शास्त्रं वैब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः॥

इसलिये अथर्ववेदमें भी ब्राह्मणोंके हितकी रक्षा करनेके लिये अभिचार और मन्त्रोंका बड़ा भारी संग्रह दिखायी देता है। ऐसे सूक्तोंमें बड़ी ज़ोरदार भाषामें हृदय पर यह अंकित करने की कोशिशकी गयो है कि ब्राह्मणकी जाति और उसकी धन-दौलतको कोईभी नुकसान न पहुँचाये। जो ब्रह्मस्व और ब्रह्मजीविका पर हाथ उठाता है उसके लिये भयंकर शाप दिये गए हैं। इसके अलावा यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी जानेवाली दक्षिणाका बहुत गूढ़ अर्थ किया गया है और गूढ़ भाषा ही में उसपर बार बार जोर दिया गया है। ब्राह्मणको कष्ट देनेके बराबर दूसरा कोई पाप नहीं है और मुक्त हाथोंसे उनको दक्षिणा देनेके बराबर कोई पुण्य भी नहीं है—इन दो कल्पनाओं को अनेक सूक्तोंमें बराबर भिन्न भिन्न रीतिसे स्पष्ट किया है। इनमें कुछ सूक्त अच्छे हैं जो अन्तर्ज्ञान प्रज्ञा, भक्ति और पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रार्थनाएँ मात्र हैं। इतना अवश्य है कि निर्विवाद कौशिकमें ब्राह्मणी-सूक्त अथर्ववेद-संहिताका सबसे बादका भाग है।

यज्ञ-कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले सूक्त और मन्त्र अथर्ववेद-संहिताके अर्वाचीन भागोंमें से ही हैं। इन सूक्तों और मन्त्रोंका समावेश इस वेदमें इसलिये किया गया कि अन्य तीन वेदोंकी तरह इस वेदका भी सम्बन्ध यज्ञोंसे बना रहे और लोगोंकी दृढ़ धारणा हो जाय कि यह भी एक 'वेद' ही है। इस वेदके दो 'आप्री' सूक्त और कुछ दूसरे सूक्त ऋग्वेदमें लिखित यज्ञसम्बन्धी सूक्तोंको तरह हैं। जब तक यह न बतलाया जाय कि यज्ञसंस्था' के इतिहासमें अथर्ववेदका स्थान क्या है, तब तक इस विषय पर अधिक लिखना उचित न होगा। इस वेदमें यजुर्वेदकी तरह गद्यमंत्र भी मिलते हैं। उदाहरणके लिये इसके १६वें काण्डके पूर्वार्द्धमें उदक-स्तुति तथा भिन्नभिन्न शांति विधियोंके सूक्त इसी तरहके हैं। १८वाँ कांडभी गद्यमय हैं। इसमें और्द्धदैहिक और श्राद्धोंके विषयमें मन्त्र हैं। ऋग्वेदके १० वें मण्डलमें वर्णित उत्तर-क्रियासम्बन्धी सूक्त शब्दशः यहाँ मिलते हैं। यदि कुछ अन्तर है तो यही कि इनमें कुछ और बढ़ा दिया गया है। यह बतलाया जा चुका है कि अथर्ववेदका २० वाँ बहुत बादमें उक्त वेदके साथ जोड़ा गया है और उसमें अधिकतर सूक्त ऋग्वेद से लिये गए हैं। इस कांडमें सोमयज्ञका उल्लेख है। नवीन भाग केवल 'कुन्ताप सूक्तों' का है। (अथर्व २०, १२७-१३६) यज्ञकर्मोंमें ये सूक्त उपासना मन्त्र माने गए हैं और इनका विषय ऋग्वेदकी दान-स्तुतिसे मिलता है। इन सूक्तोंके कुछ अंशोंमें राजाओंकी दान-वीरताकी प्रशंसा है। इनमें कुछ भाग बुझौवल और उनके उत्तरका है और कुछ भाग अश्लील है।

व्रात्यस्तोम—१५ वाँ कांड गद्यात्मक है। इसकी रचना भिन्न भिन्न विधियोंके प्रयोग करनेके सम्बन्धमें है। इसमें व्रात्य लोगों (चातुर्वर्ण्यमें घुसे हुए अन्य लोग) की रहस्यपूर्ण प्रशंसा है। त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में किसीको लेते समय जो संस्कार होता है उसमें प्रयुक्त होनेवाले ये दुर्बोध और रहस्यपूर्ण सूक्त हैं। व्रात्यस्तोम प्रथमतः एक साधारण विधि था। आगे चलकर इसका समावेश 'यज्ञ संस्था' में किया गया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे मिलेगा।

अध्यात्म—इस कांडके विषय गहन और तत्वज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। इस कांडको अथर्ववेद सूक्तोंके अंतिम वर्गमें रख सकते हैं। इस अन्तिम वर्गमें तत्वज्ञान और जगदुत्पत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले सूक्त हैं अतः अथर्ववेदका यह सबसे बादका भाग है। मन्त्रविद्या और तत्वविद्या परस्पर एकदम भिन्न हैं। परन्तु विचारणीय बात यह है कि अथर्ववेद संहितामें केवल अभिचार, भैषज्य और पुष्टिके विषयमें ही मन्त्र नहीं हैं बल्कि तत्वज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले सूक्त भी हैं। इन तत्वविद्या सम्बन्धी सूक्तोंको जरा ध्यान से देखने पर पता लगेगा कि अभिचार मन्त्रोंकी नाईं ये भी व्यवहारोपयोगी हैं। इनमें सत्यकी जिज्ञासा अथवा अन्वेषण अथवा संसारकी गहन गुत्थियोंको सुलझानेकी उत्सुकता दिखाई नहीं देती। इनमें तत्वज्ञान-प्रदर्शक जो अंश है वह उक्त तत्वज्ञानके सम्बन्धमें प्रचलित और प्रसिद्ध

कुछ वचनोंके रूपमें है। मान्त्रिक लोग अपने मन्त्रोंको रहस्यमय बनाने और उनको एक उलझी हुई गुत्थीका रूप देनेमें इन तत्वज्ञान विषयक मन्त्रोंका उपयोग करते हैं। यों ही देखनेमें जो भाग गूढ़ अर्थसे पूर्ण दिखायी देता है बारीकीसे जाँचने पर वह खोखला शब्दजाल दिखायी देता है। इस तरह अपनी साधारण कृति पर रहस्य का आवरण चढ़ा देना और उसे गूढ़ कृतिका स्वरूप दे देना मान्त्रिकोंका एक व्यवसाय ही दिखायी देता है। हाँ, इन तत्वज्ञान विषयक सूक्तोंसे इतना पता जरूर लगता है कि उस समय आध्यात्म ज्ञानकी बहुत काफी चर्चा हो चुकी थी। उपनिषद् ग्रन्थोंमें सृष्टिको उत्पन्न करनेवाला देवों का ईश प्रजापति माना गया है। उसके पश्चात् यह माना जाने लगा कि सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली कोई एक अव्यक्त शक्ति है। ये दो तरहकी कल्पनाएँ और ब्रह्म, तप, प्राण, मन आदि तत्वज्ञानके पारिभाषिक शब्द उपरोक्त सूक्त लिखनेके समय प्रचलित थे और उनका यथेष्ट ज्ञान लोगोंको उस समय था। किन्तु यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेदके जगदुत्पत्ति विषयक और तत्वज्ञान विषयक सूक्त भारतीय तत्वज्ञानके उत्कर्षकी किसी विशेष अवस्थाका पता नहीं देते। ऋग्वेदमें तत्वज्ञान विषयक जो सूक्त हैं उनमें बीजरूपसे निहित उत्तम विचारोंका उपनिषद्काल ही में संवर्धन हुआ। परन्तु यह कहाही नहीं जा सकता कि ऋग्वेद और उपनिषदोंमें तत्वज्ञानका जो विकास दिखाई देता है वह अथर्ववेदके तत्वज्ञान विषयक सूक्तोंमें भी दिखाई देता है। डायसेन* (Deussen) ठीक कहता है कि ये अथर्ववेदके सूक्त उन विचारों (ऋग्वेद तथा उपनिषद्) के विकास पथमें नहीं आ सकते बल्कि पथके आसपास हैं।

इन सूक्तोंमें इतस्ततः बहुतसे गहन तत्वोंका समावेश हुआ है। पर कहना पड़ता है कि ये चमत्कारपूर्ण तत्व इन अर्वाचीन कवियोंके सुन्दर मस्तिष्कसे नहीं निकले हैं बल्कि इन्होंने दूसरोंके परिश्रमसे अच्छा लाभ उठाया है। उदाहरणके लिये १९ वें कांडके ५३ वें सूक्तको लीजिये। काल (समय) समस्त सृष्टिका मूल कारण है। यह सिद्धान्त तत्वज्ञानीके मुखसे सुननेमें भला मालूम होता है। परन्तु उपरोक्त सूक्तको पढ़ते समय मालूम होता है कि इसकी भाषा तात्विक नहीं है बल्कि किसी गूढ़ सिद्धान्तवादीकी है।

* Deussen, Allgemeine Gerchichte philosophie I, 1, p. 209.

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः। स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

पूर्णः कुम्भोधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः। स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥

अथर्व १९. ५३.

भूरि रेत, अजर और सहस्राक्ष सात किरणोंवाला काल रूपीजो अश्व है वह (हमको) ले जा रहा है। उसपर परम निपुण कवि ही सवारी करते हैं। उसके रथके पहिये ही मानों समस्त भुवन हैं ॥ १ ॥

इस कालके सात चक्र है, सात नाभियाँ हैं, अमृत ही इसका धुरा है। समस्त भुवनोंमें यही प्रेरणा करता है और सबमें श्रेष्ठ गिना जाकर पूजित होता है ॥ २ ॥

काल पूर्ण कुम्भकी तरह है। उसे हम अनेक स्थानोंमें अनेक रीतियोंसे देखते हैं। वह समस्त भुवनोंमें व्याप्त है। वह श्रेष्ठ अंतरिक्षमें भी 'काल' ही के नामसे पुकारा जाता है।

इसी सूक्तकी पाचवीं और छठी ऋचामें इसका बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है—

कालोमूं दिवजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः। कालेही विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥६॥

अथर्व० १९. ५.

कालके द्वाराही इस पृथ्वी और आकाशका निर्माण हुआ है। कालहीमें भूत, भविष्य और वर्तमानका वास है ॥ ५ ॥

कालहीने जगको उत्पन्न किया। कालहीके कारण सूर्य चमक रहा है। समस्त भूतोंके वास कालहीके कारण है और कालहीमें चक्षु (आंख) का निरीक्षण है ॥ ६ ॥

कालके विषयमें इतना महत्त्व-पूर्ण प्रतिपादन करनेके बादही ५४वें सूक्तमें उस समयमें ज्ञात भिन्न भिन्न वस्तुओं और देवताओंका निर्मेश किया गया है और बारबार यह जताया गया है कि ये सब वस्तुएँ और देवता इसी कालसे उत्पन्न हुए हैं। अथर्ववेदके १३वें कांडके रोहित सूक्तमेंभी शुद्ध तत्त्व ज्ञान बहुतही कम है पर गूढ़ बातोंका आडंबर बहुत है। इस सूक्तमें परस्पर असम्बद्ध विषय

बहुत बेसिलसिले लिखे गए हैं। उदाहरणके लिये इसी सूक्तके आरंभमें रोहित (अर्थात् सूर्य) को सृष्टिका उत्पादक (पैदा करनेवाला) तत्व कहा गया है जिससे पृथ्वी आदि लोकोंका निर्माण हुआ। इस तत्वके प्रबल प्रतापकी काफी प्रशंसा की गयी है। किन्तु उसी स्थान पर पृथ्वीके राजा और स्वर्गस्थ राजा रोहितकी संदिग्ध भाषामें परस्पर तुलना भी की गयी है। बीच बीचमें दिखायी देता है कि उन शत्रुओंको शापभी दिये गए हैं जो गऊको पैरोंसे ठुकराते हैं या जो सूर्यकी ओर मुँह कर मूत्रोत्सर्ग करते हैं। आगे चलकर १३वें कांडके तृतीय सूक्तकी कुछ ऋचाओंमें रोहितको सर्व श्रेष्ठ देवता मानकर उनकी प्रशंसाकी गयी है। इस अंशके करुणरसपूर्ण वर्णनको पढ़कर वरुण सूक्तकी याद आ जाती है। परंतु उन सूक्तों की ऋचाओंमें बारबार जो टेक आयी है उसमें ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाले का नाश करनेकी प्रार्थना रोहितसे की गयी है।

य इमे द्यावापृथ्वी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते। यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति तस्य देवस्य। क्रुद्धस्यै तदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥१॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्य देवस्य। ०।० ॥ २ ॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा तस्य ०।०।० ॥ ३ ॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति तस्य ०।०।० ॥४॥ अथर्व० १३. ३.

जिसने इस पृथ्वीका निर्माण किया, जिसने समस्त भुवनोंको अपनी चादर बनाया, ऐसे देवताको कष्ट देनेवाला अर्थात् जो यह सब जाननेवाले ब्राह्मणको कष्ट देता है, हे रोहित, उसका पीछा कर, उसका नाश कर दे; ब्राह्मणके शत्रुको अपने पाशमें बाँध कर रख ॥ १ ॥

जिसके कारण ऋतुओंमें साफ़ वायु बहती है, जिसके कारण समुद्र सब दिशाओंमें बहते हैं उस क्रुद्ध देवताका......इ० ॥ २ ॥

जो जीवको हरण करता है और जीवनदान भी करता है, जिसके कारण समस्त भुवनोंका अस्तित्व उस क्रोधित देवताका......इ० ॥ ३ ॥

जो अपने प्राणके बलपर स्वर्ग और पृथ्वीको आनंदित करता है जो अपानके द्वारा समुद्रको भर देता है, उस क्रोधित देवताको इ० ॥ ४ ॥

इस प्रकारकी रोहित-प्रशस्ति (प्रशंसा) के साथही साथ द्रव्यस्तवः गूढ़ कल्पनाएभी भरदी गयी हैं। एक जगह लिखा है कि बृहत् और रथतंर-दो छन्दोंसे रोहितकी उत्पत्ति मानी गयी है। एक दूसरे स्थानमें गायत्री छंदको ही अमृत गर्भ लिखा है। इस प्रकार गूढ़ कल्पनाओंके अन्य उदाहरणभी दिये जा सकते हैं। ऐसी ऋचाओंके गहन अर्थको समझनेका प्रयत्न अवश्यही निष्फल होगा। इस लिये विंटर-निट्ज़का कथन है कि यह कभीभी आशा न करना चाहिये कि अथर्ववेदके चौथे कांडके ग्यारहवें सूक्तके जैसे अन्य सूक्तोंमें गहन तात्विक सत्यका पता नहीं लग सकेगा। उपरोक्त सूक्तोंमें वृषको विश्वोत्पादक और विश्व रक्षक कहा गया है और उसकी प्रार्थनाकी गई है।

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम्। अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥ १ ॥

अथर्व० ४. ११.

अनडुह (वृषभ) द्वारा पृथ्वी और स्वर्ग धारण किया गया है। अनडुहने (प्राची आदि) महा दिशा और छः उर्वियोंको धारण किया है और इसीसे समस्त विश्व व्याप्त है ॥ १ ॥

यही नहीं, इस वृषभको लाकर इंद्रादि दिग्गज देवताओंको श्रेणीमें रख दिया है। "अनवड्वान् दूहे" 'वृषभ दूध देता है'; "अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य"–'यज्ञकी दक्षिणाही उसका दोहन और उसका दूधही यज्ञ है'; "यो वेदानडुहो दोहान् सप्तानुपदस्वतः। प्रजां च लोकं चाप्नाति"–'अनडुहके इन सात दोहनको जाननेवाले संतति और स्वर्ग-सुखको पाते हैं।' आदि आदि वर्णनोंमें तो कोईभी विशेषता दिखायी नहीं देती। वृषभके इस वर्णनमें, अथर्व० ९. ४सूक्तमें वृषभका जो वर्णन है, उनमें कोई विशेष महत्व नहीं है। इस ९.४ सूक्तमें वृषभकी प्रशंसाकी गयी है। समस्त देवताओंका अस्तित्व उसीमें बतलाया गया है और यहभी कहा गया है कि सृष्टिके आरंभमें वह जल रूप था। यह वृषभ और कोई नहीं था वल्कि यज्ञमेंदी जानेवाली बलि था। कोई यह कहे कि इस झूठे तत्वज्ञान और गूढ़ आवरणकी क्या आवश्यकता थी। इसका उत्तर यही हैकि इसकी नित्य-व्यवहारमें आवश्यकता होती थी। हमारे कथनकी पुष्टि आगे दिये हुए उद्धरणोंसे होगी। इसमें गौका माहात्म्य वर्णित है।

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः॥४॥
शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा।५।

वशा माता राजन्यस्य वशामाता स्वधे तव।
वशोयायज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८॥

गऊ पृथ्वी और जल का संरक्षण करती है। इसके पीछे सौ दूधके घड़े, सौ दूध दुहने वाले और सौ ग्वाले रहते हैं। जिन देवताओंका इसके शरीर में बास होता है वेही इसको जानते हैं। यह क्षत्रियोंकी और स्वधा की माता है। इस का शस्त्र यज्ञ है। 'चित्त' की उत्पत्ति इसीके कारण होती है।

इस प्रशंसा की सीमा निम्न लिखित ऋचामें दिखायी देती है—

वशामेवामृत माहुर्वशां मृत्युमुपासते।

गौ ही को अमृत कहते हैं। इसीको मृत्यु समझ कर इसकी पूजा करते हैं।

वशेदं सर्वम भवद् देवा मनुष्या ३ असुराः पितर ऋषयः॥ २६॥

मनुष्य, असुर पितर, ऋषि—ये सब वशा (गौ) के ही रूप हैं। अब आगे लिखा गया है कि नित्य व्यवहारमें गौका क्या स्थान है—

य एवं विद्यात् सवशां प्रति गृह्णीयात्॥ २७॥

जो इस प्रकर जानता है उसीको गौका प्रतिग्रह (दान) करना चाहिये।

× × × × ×

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्वा सर्वाल्लोकान्समश्नुते।
ऋतंह्यऽस्यामर्पितमपि ब्रह्माथो तपः॥ ३३॥

ब्राह्मणको गाय देनेवाला सब लोकों को प्राप्त करता है क्योंकि गऊमें ऋत (सत्य), ब्रह्म और तप—ये सब वास करते हैं।

अन्त में—

वशांदेवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति॥३४॥
अथर्व० १०,१०

देवताओं का पेट गौपर निर्भर है, उसी प्रकार मनुष्य भी गौपर ही निर्भर है। जहांतक सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं वहाँतक सब गऊ ही की माया है।

जर्मन विद्वान डयूसन (Deussen) ने अथर्व वेदके 'तात्विक सूक्तों का अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की है और बहुत अंशोंमें वे उसका क्रम मिलानेमें सफल भी हुए हैं। उदाहरण के लिये १०वें कांड के २रे सूक्तमें ब्रह्मसिद्धिका विचार जडवाद और मीमांसाकी दृष्टिसे किया गया है। उसी का ११ वें कांडके ८ वें सूक्त में आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार किया गया है। विंटरनीट्ज़के मतानुसार इस सूक्तमें इतना आध्यात्मिक महत्व है ही नहीं। इनका कथन है कि इन सूक्तोंके लेखक झूठे तत्वज्ञानी थे। मनुष्य विराट विश्वात्माका अंश है—इस तत्वकी खोज उन्होंने स्वयं नहीं की थी बल्कि यह सिद्धांत पहले ही प्रचलित था। इन्होंने उसे गूढ़ अव्यक्त और असंगत रीतिसे लोगोंके सामने रखनेकी कोशिश की। ऋग्वेदके १० वें मंडलके १२१ वें सूक्तमें एक अच्छे तत्ववेत्ता तथा कविने विश्वके अनुपम वैभवका वर्णन बहुत ही स्पष्ट भाषामें किया है। परन्तु वह संदेहमें पड़जाता है कि ऐसे विश्वको उत्पन्न करने वाला कौन है। ठीक इसके विपरीत अथर्ववेदमें (कांड१०, सूक्त २) में एक कवि (सूक्तकर्त्ता) मनुष्य-शरीरके अवयवोंका रसीला वर्णन करता है और प्रश्न करता है कि इनको किसने बनाया।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतंकेनगुल्फौ
केनांगुली पेशनीः केन खानि ·········॥ १॥
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरो पूरुषस्य जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत॥ २॥

इस संबंध की आठ ऋचाएँ हैं और आगे दी हुई नौ ऋचाओंमें मनुष्य-रचना और उसके जीवन संबंधी समस्त बातोंकी जाँच पड़तालकी है।

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्यः।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद वहति पूरुषः॥९॥
आर्तिरवर्तिनिर्ऋतिः कुतो··········।
को अस्मिन्नापो व्य दधात्········॥ ११॥
को अस्मिन् रूपमदधात्को मह्यानं च नाम च।
गातुम्को अस्मिन् कः केतुम्कश्चरित्राणि पूरुषे१२।

× × × × × ×

को अस्मिन्सत्यं कोनृतं कुतो मृत्युः कुतोमृतम्॥१४॥

इसके पश्चात् उन्हीं कवियों (सूक्तकर्त्ताओं) ने सवाल किया है कि सृष्टिकेऊपर मनुष्यने किस प्रकार अधिकार प्राप्त किया? इस प्रकारके सब प्रश्नों का एकही उत्तर दिया गया है कि मनुष्य ब्रह्मरूप है, अतः उसे यह शक्ति प्राप्त हुई। यहाँ तक तो यह सूक्त सुन्दर न होते हुए भी शुद्ध और स्पष्ट है। किन्तु आगेकी २६ से ३३ ऋचा तक फिर वही आँखमुंदौवलका खेल शुरू हो जाता है। एकाध ऋचाएँ देखिये।

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोधि शीर्षतः॥२६॥
तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः।२७।
अथर्व० १० २.

ऐसी ऋचाओंमें गहन तत्वज्ञानकी खोज करना मानो उन्हें अनुचित महत्व देना है। डयूसनके मतानुसार अथर्व संहिताके ११ वें काण्डके ८ वें सूक्त

में यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य उत्पत्ति ब्रह्मतत्व पर पूर्णरूपेण अवलम्बित आध्यात्मिक और जड़ घटकों के संयोगसे हुई हैं। परन्तु विंटर निट्ज़की राय है कि उक्त सूक्त से कुछ महत्वपूर्ण अर्थ नहीं निकलता। जिसतरह सदा झूठ बोलने वाला मनुष्य अपनी बात पर लोगोंका विश्वास जमनेके लिये कभी कभी सच बोल देता है उसी तरह गूढ़वादी को अपने इधर उधरसे मांग कर लाए हुए तत्वज्ञानको लोगोंकी नज़रोंमें ऊँचा जँचवाने के ख्यालसे, अपनी श्रेष्ठ रचनाओंमें बैठा देना पड़ता है। इसकी बानगी ११वें काण्डके ८वें सूक्तमें मिलजाती है। इसमें अग्नि, वरुण, मित्र, विष्णु, भग, विवस्वान, सविता, धाता, पुष्पन और त्वष्टा आदि देवताओंकी सिर्फ सूची दी है और इनसे प्रार्थना की गयी है कि हमको पाप से बचावें।

अतः इस कथाकी रचना को न तो काव्य ही कह सकते हैं और तत्वज्ञान ही। इस रचनाकी अपेक्षा सुललित रचनाका एक सूक्त अथर्ववेदहीमें है। इसमें कुछ ऋचाएँ पृथ्वीके उत्पत्तिके संबंधमें हैं किन्तु इसमें कोई गूढ़ तात्विकज्ञान भरा हुआ नहीं है। अतः इसे केवल काव्यमय कह सकते हैं। इसे पृथ्वी सूक्त कहते हैं। यह अथर्व वेद के १२ वें काण्ड का पहला ही सूक्त है। इसकी ६३ ऋचाओं में पृथ्वीको समस्त ऐहिक वस्तुओंके धारण करने और उनका संरक्षण करने वाली माना है और उसकी प्रार्थना की है कि पृथ्वी समस्त संकटोंसे बचाये और कृपारखे। भारतवर्षके प्राचीन धार्मिक काव्य ग्रंथोंमें भी बहुत सुन्दर रचनाएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण स्वरूप उक्त पृथ्वी-सूक्तकी कुछ ऋचाएँ नीचे देते हैं—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः। यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। सानो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे। इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः। सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीन्द्रगुप्ताम्।
अजातोहतो अक्षतो
ध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥
त्वज्जीतास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं
बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्याजीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५॥
यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान-
सपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते-मृगाय ॥ ४८ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्६३

अथर्व. १२. १.

सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ ही पृथ्वीको धारण करते हैं। वह हमारी भूत और भविष्यकी स्त्री है। वह हमारे लिये विस्तीर्ण लोकोंकी व्यवस्था करे ॥ १ ॥

जो पहले समुद्रमें जल (रूप) थी, मनस्वियों (ऋषियों) ने जिसका भिन्न-भिन्न रूपोंसे अनुसरण किया, जिसका उन्नत हृदय आकाशमें सत्य से ढका हुआ और अमर है, वह पृथ्वी हमें तेज और उत्तम राष्ट्रीय बल प्रदान करे ॥ ८ ॥

जिसकी माप अश्विनों द्वारा हुई है, जिसपर विष्णुने पदार्पण किया है, जिसको इन्द्रने अपने लिये शत्रु रहित बना दिया है, वह पृथ्वी, माता जैसे अपने बच्चोंका दूध देती हैं, वैसे ही हमें दूध दे ॥ १० ॥

हे पृथ्वी, तेरे गिरि (पहाड़) हिमाच्छादित पर्वत, जङ्गल आदिका कल्याण हो। पीली, काली, विषरूप और ध्रुव पृथ्वी, इन्द्र द्वारा संरक्षित है, पर मैं अहत और अक्षत (बिना किसी विग्रहके) खड़ा हूँ ॥ ११ ॥

तुझसे पैदा हुए मर्त्यलोग तुझपर घूमते फिरते हैं; तू द्विपाद (दो पैरवाले) और चतुष्पाद (चार पैरवाले) का पोषण करती है। हे पृथ्वी ! तेरी ये मानव जातियाँ मर्त्य (मरणशील) हैं। इसके लिये

सूर्य उदित होता है और अपनी किरणोंसे अमर ज्योतिकी वृद्धि करता है ॥ १५ ॥

पृथ्वीपर देवताओंके प्रीत्यर्थ यज्ञ करते और उत्तम हवि देते हैं। पृथ्वीपर मर्त्य मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार अन्न ग्रहणकर जीवन बिताते हैं। वही भूमि हमें प्राण, आयु और स्वास्थ्य शरीर दे ॥ २२ ॥

हे भूमि ! तुझे जोतनेसे जल्दी ही अन्न उत्पन्न हो। हे पावक (भूमि) तेरा हृदय मुझे धारण करनेसे दुखी न हो ॥ ३५ ॥

जिस पृथ्वीपर मर्त्य मनुष्य जोरसे चिल्लाकर गाते हैं और नाचते हैं; जिसपर वे युद्ध करते समय दुन्दुभि बजाकर कठोर शब्द करते हैं वह भूमि हमारे शत्रुओंको हटादे और हमें शत्रुसे रहित रहने दे ॥ ४८ ॥

मूर्ख और विद्वान-दोनोंको धारण करनेवाली भद्र और अभद्र (पाप) के निरसनकी उपेक्षा करनेवाली पृथ्वी, मृग और शूकर-दोनों ही के लिये भ्रमण करती है ॥ ४८ ॥

हे माता पृथ्वी ! मुझे अच्छी जगहमें सुखसे रख। हे कवि ! स्वर्गसे मेरा नाता जोड़कर मुझे यश और धन दो ॥ ६३ ॥

यह सूक्त तो ऋग्वेद संहितामें सुन्दर मालूम पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद संहितामें यद्यपि ऋग्वेदकी अपेक्षा हेतुकी एकरूपता है फिर भी इसमें बीचबीचमें अनेक प्राचीन काव्योंके खण्ड नज़र आते हैं। ऋग्वेदकी तरह इसमें भी बिलकुल निकृष्ट तथा भद्दी काव्य रचनाके साथ ही साथ प्राचीन युगके भारतीय काव्योंकी नाईं कुछ अमूल्य रत्न भी दृष्टिगोचर होते हैं। भारतवासी आर्योंके पुरातन काव्यकी सुन्दर कल्पनाओं का ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ये दोनों ग्रन्थ विचारणीय तथा महत्वपूर्ण हैं।

अबतक ऋग्वेद और अथर्ववेदका साहित्यिक दृष्टिसे विवेचन किया गया है और आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे पढ़नेकी मनोरंजक सामग्री सामने रखी गयी। यजुर्वेद और सामवेदके सम्बन्धमें कुछ योंही लिखना मामूली काम नहीं है बल्कि दो स्वतंत्र शास्त्रोंका सिर-फोड़ अध्ययन है। इनमें से पहला 'यज्ञ' से सम्बन्ध रखता है और दूसरा सङ्गीतसे। सामवेदको सूक्तोंका संग्रह कहनेकी अपेक्षा रागोंका संग्रह कहना उचित होगा। यजुर्वेद 'यज्ञशास्त्र' है। हम जिसे वैदिकधर्म अथवा श्रौतधर्म कहते हैं उसका अभिप्राय यजुर्वेदात्मक धर्म है। यजुर्वेदका वर्णनकरना मानो यज्ञ आदिकी क्रियाएँ जिस ग्रन्थोंमें वर्णित हों, उनकी चर्चा करनेके बराबर है। किन्तु ऋग्वेद और सामवेद की संहिताओंमें एक तरहका साम्य है। वह यों है कि इनके सूक्तोंकी रचना किसी विशिष्ट कर्मोंके प्रयोगोंके लिये नहीं हुई है। ऋग्वेदका विषय-विभिन्नता ही इसका प्रमाण है। यद्यपि ऋग्वेदके बहुतसे सूक्तोंका उपयोग यज्ञकर्मोंके लिये किया जाता है और अथर्ववेदकी ऋचाएँ और मन्त्र विधियों और अभिचार कर्मोंमें कहे जाते हैं फिर भी यह नहीं कहा जासकता कि आरम्भमें इनकी रचना किसी विशिष्ट कर्ममें प्रयुक्त करनेके लिये हुई हो। अधिकसे अधिक हम यह कह सकते हैं कि इनदोनों वेदोंकी संहिताओंकी रचनाका उद्देश्य साहित्यिक था किसी तरह किसी मौकेपर कहने के लिये इनका मन्त्रोंके रूपमें विनियोग किया गया।

ऋग्वेद सूक्तोंकी रचना यज्ञके लिये प्रयुक्त करनेके विचारसे नहीं हुई। परन्तु अथर्ववेद अवश्य ही यज्ञकी दृष्टिसे रचित दिखाई देता है। श्रौतकर्ममें अथर्ववेदका स्थान बहुत ही मनोरंजक था। किन्तु यजुर्वेदकी साधारण जानकारीके बिना इसका ज्ञान नहीं हो सकता।

अब वेदांग भूत जो वाङ्मय (साहित्य) सूत्र है उसका विवेचन आगे दिया जाता है।

१ वैतान सूत्र

अथर्व साहित्यमें स्थान—पाँच ग्रन्थोंमें अथर्ववेद की धर्मविधि (संस्कार) कही गई है। इन ग्रन्थों को श्रुतिके समान ही महत्व दिया गया है। वे निम्नलिखित ग्रन्थ हैं - (१) कौशिक सूत्र अथवा संहिता कल्प, (२) वैतान कल्प अथवा सूत्र (३) नक्षत्र कल्प, और (५) आंगिरस कल्प अथवा अभिचार कल्प।

आरम्भ ही से अथर्ववेदकी नौ शाखायें हैं। इन नौ शाखाओंमें से चार शाखाओंके उपरोक्त पाँच ग्रन्थ हैं। उन चार शाखाओंको (१) शौनकीय, (२) अक्षण, (३) जलद, (४) ब्रह्मपद कहते हैं। (अथर्व वेदस्य नवभेदा भवन्ति। तत्र चतसृषु शाखासु शौनकादिषु कौशिकोऽयं संहिता विधिः अथर्ववेद पद्धति-उपोद्घात)।

इसकी पैप्पलाद नामकी शाखा सबसे अधिक परिचित है। कौशिक तथा वैतान सूत्र इस शाखामें नहीं हैं, क्योंकि पैप्पलादके पूरे पूरे मन्त्र उतारे हुए हैं और प्रतीकोंके अवतरण नहीं लिये गये हैं। शौनक तथा देवर्षिके मापन विषयक मतोंका विरोध किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि ८५,८६,८७ में कौशिक सूत्र शौनकीय शाखाके

हैं। अन्तमें कौशकीयोंका मत दिया हुआ है, और कौशकीय प्रथानुसार वह सदा ग्राह्य माना जाना चाहिये।

उपरोक्त पाँच श्रुतसूत्रों (५ कल्प) में से आंगिरस अथवा अभिचार कल्प अथर्ववेदका ही परिशिष्ट है। उनमें अभिचार अथवा जादू टोना ही अधिक दिया हुआ है। कौशिक सूत्रके छठवें अध्यायके स्पष्टिकरणके लिये अभिचार कल्प का थोड़ा बहुत उपयोग किया जा सकता है।

नक्षत्र कल्प अथवा शान्ति कल्प अथर्ववेदके परिशिष्ट ही हैं। यह उनके नामसे ही पता लग जाता है। (ब्रह्मवेद परिशिष्ट नक्षत्र कल्पाभिधानम्)। किसी एक स्थान पर नक्षत्रकल्पको पहला परिशिष्ट कहा है। इतना ही नहीं जहाँ पर परिशिष्टका जिक्र आया है वहाँ इसका नाम प्रथम दिया हुआ है।

कौशिक तथा वैतान सूत्रका पारस्परिक सम्बन्ध—इन सूत्रोंमें संस्कारोंका उल्लेख है। अन्य वेद-शाखाओं के जिन सूत्रोंमें संस्कार दिये हुए हैं, उन सूत्रों तथा उपरोक्त कौशिक-वैतान सूत्रोंमें अथर्वसंहिता के समान अनेक बातोंमें भिन्नता है। 'त्रैविद्य' अथवा त्रयी विद्या अन्य तीन वेदोंको कहा है। इस कथनके आधार पर तो अथर्ववेदके सूत्र वेद-संज्ञाके पात्र होनेमें भी सन्देह किया जा सकता है। श्रौत संस्कारमें तो यहाँ तक व्यक्त हो चुका है कि अथर्व वेदान्तर्गत सूक्तोंका उपयोग करने के लिये अथर्ववेदान्तर्गत सूत्र उपयुक्त नहीं है। ब्राह्मणोंमें गोपथ, ब्राह्मण तथा श्रौत सूत्रोंमें वैतान सूत्र बहुत बादके रचे हुए ग्रन्थ हैं। अथर्ववेदमें गोपथ ब्राह्मण है। अन्य वेदोंके चरणोंमें साहित्य लिखनेकी जो पद्धतियाँ थीं, उन्हींका अनुकरण गोपथ तथा वैतानमें देख पड़ता है। मन्त्र, तन्त्र, भूत प्रेत झाड़ना इत्यादि, इन क्रियाओंके करने वाले मनुष्योंकी जीवन चर्य्या, तथा ऐसे ही अनेक विषय जो अन्य वेदोंमें प्राप्य नहीं थे, उन सबका उल्लेख अथर्व वेदानुयायिओंने संसारके सन्मुख कर दिया था। इसी कारण ही से अथर्व ग्रंथमें अथर्ववेदके सबसे महत्वपूर्ण तथा उच्चतम कौशिक सूत्रको पहला स्थान दिया गया है।

गृह्यसूत्र श्रौत सूत्रों पर निर्भर है। गृह्यसूत्रमें श्रौत सूत्रका उल्लेख अनेक स्थानोंमें स्पष्ट रूपसे आया है। किन्तु जिन विधियोंका एक बार भी श्रौत सूत्रमें वर्णन आ चुका है उनका वर्णन गृह्यसूत्रमें पुनः नहीं देख पड़ता।

आपस्तम्बमें धर्म विषयक सूत्र एक ही स्थान पर एकत्रित करके दिये हुए हैं। इसके सूत्र ग्रंथ में भी गृह्यसूत्र के पूर्व ही श्रौत सूत्र आया है।

बिना श्रौतसूत्रका पूर्णरूपसे ज्ञान हुए गृह्यसूत्र ठीक ठीक समझमें आनेमें बड़ी कठिनाई होती है क्योंकि गृह्यसूत्र श्रौतसूत्रके आधार पर ही लिखे गये हैं और ऐसा विदित होता है कि लेखकने यह पहले ही समझ लिया कि गृह्यसूत्र पढ़नेवाले श्रौतसूत्रका ज्ञान पूर्णरूपसे प्राप्त करके ही इसे पढ़ेंगे।

जिस भाँति गृह्यसूत्र श्रौतसूत्र पर निर्भर है उसी भाँति कौशिकसूत्र वैतानसूत्र पर निर्भर नहीं हैं। हाँ, किसी अंश तक कौशिकसूत्र पर वैतान सूत्र अवश्य निर्भर कह सकते हैं। जहाँ पर इन दोनों सूत्रोंमें भेद हैं तथा जहाँ पर गृह्य तथा श्रौत सूत्रमें भेद देख पड़ता है वहाँ पर उपरोक्त कथन स्पष्ट हो जाता है। इसी कारण वैतान सूत्रके विषयमें यह कहा जा सकता है कि वैतानसूत्र केवल शनैः शनैः गम्भीर गतिसे प्रौढ़ताको प्राप्त करनेवाली श्रौतसंस्कारकी विधियों द्वारा ही नहीं बन गया है। बल्कि उनका निर्माण स्वतंत्र रूप से किया गया है। जिस समय अथर्व वेदानुयायिओंको अन्य वैदिक-पुरोहितोंके साथ वादा-विवाद करना पड़ता था उस समय उन्हें अपने संस्कार तथा विधिको वेदान्तर्गत करनेके लिये इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। तभी इसका सूत्रपात हुआ होगा। अथर्ववेदमें दिये हुए संस्कारोंको वैतान सूत्रके आधार पर भी बिलकुल नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें अन्य ग्रंथों से अनेक अवतरण उतार लिये गये हैं। कौशिक सूत्रमें न मिलनेवाला भाग भी बहुत कम है। यजुः संहितामें दी हुई अनेक ऋचाएँ तथा पाठ वैतान सूत्रमें मिलते हैं। संस्कारोंका वर्णन करते समय कात्यायनके श्रौतसूत्रका अनुकरण किया जाना भी इसमें स्पष्ट देख पड़ता है। वैतान सूत्र १.१८ (देवताहविर्दक्षिणायजुर्वेदात्) से यह आप ही स्पष्ट हो जाता है। इसी आधार पर यह भी अनुमान किया जाता है कि वैतान तथा कात्यायन का भी परस्पर सम्बन्ध होगा, क्योंकि जो भाष्य कात्यायन पर लिख गया है उसमें वैतानसूत्र अथर्वण अथवा अथर्वसूत्रके नामसे वैतान सूत्रसे अनेक अवतरण लिये गये हैं। वैतान तथा कौशिक सूत्रके परस्पर सम्बन्धमें कौशिक सूत्रको एक स्वतन्त्र संहिता मानकर ही कुछ कहा जा सकता है। यह पहले ही से मान लिया गया है कि कौशिक सूत्रके संस्कार तथा अथर्ववेदके मन्त्रों

को छोड़कर और सब मन्त्र इत्यादि सबको विदित होंगे ही तथा उनका अर्थ भी सबको स्पष्ट होगा।

वैतान सूत्रका उत्तम विवरण तथा अनुवाद गार्वे साहबके लिखे हुए 'वैतान सूत्र' नामक ग्रन्थ में देख पड़ता है।

अंतर्रचना-वैतान सूत्रमें दिया हुआ कुछ भाग अथर्ववेदमें लिखे हुए कुछ भागसे शब्दशः मिलता जुलता है। वैतान सूक्तमें दिया हुआ जो भाग अथर्ववेदके जिस हिस्सेसे मिलता जुलता है वह नीचे लिखा जाता है।

वैतान सूक्तके १. १६; १०. ५; ३७. २३; ३. १७; ६. ४; २८. ३२—इत्यादि सूत्र अनुक्रमसे अथर्ववेदके, १६. ६६, १-४; १२. १, २३. २५; १८. ३, ८; ६; २. ४८; १. ६१; २. ५३; ४. ४४; १. ११०, ३; ३; १०. ७; ३. १७, २ सूक्तोंसे मिलते जुलते हैं। वैतान सूक्तका वह भागजो अथर्ववेदमेंही दृष्टिगोचर होता है यदि कौशिकमें भी आए हुए उसी भागको छोड़ दिया जायतो वह बहुतही थोड़ा रह जावेगा।

वैतान सूक्तमें कहा है कि ब्राह्मण ब्रह्म वेद विद् होना चाहिए। (वै. सू. १. १.) ब्रह्मवेद शब्द कौशिकमें नहीं दिखता; परंतु इसके बदले कौशिक या वैतान सूक्तमें एक स्थान पर 'भृग्वंगिरो विद्' नामक एक पुराना शब्द दिखाई देता है (कौशिक ६३-३ तथा ६४-३ और वैतान १.५) अथर्वांगिरोविदं ब्रह्माणम्। गोपथ ब्राह्मण तथा परिशिष्टमेंभी भृग्वंगिरोविद् शब्द दिखाई देता है। ब्रह्मवेद विद् शब्द वर्तमान समयका जान पड़ता है। अथर्ववेद तथा उसके पुरोहितोंका श्रेष्ठत्व कहीं कहीं वैतानमें दर्शाया गया है। उदाहरणार्थ वै. सू. ११, २ में कहा है कि,'उद्गातर्','होतर्'तथा'अध्वर्यु,के बदले अथर्वाङ्गिरोविद् ब्राह्मण माना जाय। अथर्वण श्रेणीके पुरोहितोंको सबसे श्रेष्ठ दिखानेका प्रयत्न वै० सू० ६०-१ तथा ३७, २ में स्पष्ट रूपसे किया हुआ दिखाई देता है। ब्राह्मण, पुरोहित तथा उसके वेदकी श्रेष्ठता दिखानेके लिए अथर्व परिशिष्टोंमें अनेक प्रयत्न किये गये हैं। यहाँ तक कि दूसरोंके लिए अपशब्दोंकी योजना करने तकमें नहीं चूके हैं।

इस प्रकारका प्रयत्न केवल अथर्व साहित्यमें भी नहीं किया गया है; उसके महाभाष्यमें भी अथर्ववेदको वेदोंमें प्रथम स्थान दिया गया है। पुरोहितका अथर्वाङ्गिरसके समान मालूम होना याज्ञवल्क्यने (१. ३१२) कहा है। अथर्व ऋषि 'सुमन्तु' को तर्पणके समय ऋग्वेद गृह्य सूक्तमें प्रमुख स्थान दिया गया है। (शाखा ४-१०,३)

अथर्वण साहित्यके वैतान सूक्तके अतिरिक्त और कहींभी न मिलनेवाले वैतान सूक्तमें कोई अधिक विषय नहीं है; केवल वै० सू० ३-१० तथा ४३-२५ में अभिचार स्वतन्त्र रीतिसे लाया गया है। शौनक यज्ञके विषयका ज्ञान कहीं और नहीं दिखाई देता। शान्त्युदकका वर्णन वै० सूक्तमें जिस टिप्पणीमें आया है उस टिप्पणीमें दिए हुए संस्कारसे अथर्वण साहित्यमें एक और संस्कार की वृद्धि हुई है।

कौशिक सुत्र तथा गोपथ ब्राह्मणमें जिस तरह पैप्पलाद शाखाके सूक्त लिए गए हैं वैसेही वैतान सूक्तमेंभी स्वतन्त्र रूपसे पैप्पलादके ३ कुल सूक्त लिए गए हैं (पैप्पलाद शाखा १०, १७; १४, १; २४, १)

वैतान तथा कौशिक सूत्रोंका परस्पर सम्बन्ध अनेक प्रकारका है। वैतान सूत्रके मुख्य अध्याय आठ हैं; परन्तु इनमें प्रायश्चित सूत्रोंको जोड़कर वैतान सूत्रके कुल १४ अध्याय किए गए हैं।

कौशिक सूत्रके १४ अध्याय हैं इस कारण वैतानके भी १४ही होने चाहिये। इस हेतु वैतानके १४ अध्याय बनाए गए हैं। दोनों सूत्रों में जो साम्यता है उसके कुछ उदाहरण आगे दिए हैं—(१) दोनों सूत्रोंमें अध्यायके प्रारम्भके अनेक स्थानोंमें एक बहुत ही लम्बा मंत्र दिखाई देता है। (२) अयस स्वरूपमें जिनपें प्रथमाका अनेक वचन हुआ करता है ऐसे शब्दोंकी द्वितीयाके रूप की योजनाकी गई है। वैतानसूत्र ११.२४ तथा कौ० सूत्र ८-१६। (३) दोनों सूत्रोंमें प्रसंग विशेषमें "ब्राह्मण" का उल्लेख ब्राह्मणोकम या इति ब्राह्मणम्, इस वाक्यसे करते हैं। (वै० सू० ७, २५ तथा कौ० सू० ६. २२; ८०, २)। (४) मन्त्रोक्त शब्द दोनों सूत्रोंमें अनेक बार दिखाई देता है। (वै० सू० १, १४; कौशिक सू० २१, ११)। (५) 'सरुपवत्सा' शब्द कौशिक तथा वै० सू० में दिखाई देता है (६) शान्त्युदक शब्द कौशिक तथा वैतान सूत्रमें एक ही बार दिखाई देता है परन्तु कौशिक सूत्रमें वह अनेक बार दिखाई देता है। वैतान सू० ५, १० कौशिक सूत्र अध्याय ६)।

वैतान सूत्रमें बताए हुए ऋषि अथवा गुरु कौशिक सूत्रमें भी दिखाई देते हैं। दोनों सूक्तोंमें जहाँपर बिल्कुल एक ही स्वरूपके सूत्र दिखाई देते हैं ऐसे भी उदाहरण हैं। उदाहरणः—वै० १, १-५ कौ० ६४. ३; ६४. ३; वै० २. २, कौ० २.६;

वै० ३. २०; कौ० ६.२३; वै० ७.२०; कौ० ६.२०; वै० १२, ७; कौ० ५७. ५; वै० ३४. १२; कौ० १६. ७; वै० ४३. ७, कौ० ४. १८।

दोनों सूत्रोंमें उपरोक्त साम्य दिखाई देता है। इससे यह कल्पना करना कि कौशिक सूत्रमें से वे साम्य भाग उतार कर वैतान सूत्रमें लिख दिये गये हैं उचित नहीं होगा। यह कहना बड़ा कठिन है कि कितना भाग कौशिक सूत्रसे लेकर वैतान सूत्रमें रक्खा गया है। वैतान सूत्र तथा गोपथ ब्राह्मणके कुछ भाग एकदम मिलते जुलते हैं; परन्तु इतने ही से यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि गोपथ ब्राह्मण वैतान सूत्रके पहले रचा गया है। अथवा नहीं। उदा० वै.सूत्र.२. १५, गो. ब्रा. १.५.२१। वै.सू. ३. १०, गो. ब्रा. २. १. २।

तथापि वैतान तथा कौशिक सूत्रमें दिए हुए एक ही विषयके संबधके विवेचन को देखा जाय तो यह दिखाई देता है कि, कौशिक सूत्रमें जिस किसी विषयका विवेचन है वह बिल्कुल पूर्ण है परन्तु वैतानमें उसी बातका या उनकी मालिकाके विषय में किया हुआ विवेचन संक्षिप्त है। किसी किसी विषय का विवरण संक्षिप्त तथा तांत्रिक रूपसे दिया हुआ है। यह बात इतनी स्पष्टतासे दिखाई देती है कि छोटेसे वैतान सूत्रमें दिए हुए विषयों का ऐसा होने का कारण कुछ ध्यानमें नहीं आता। वैतानमें बीच बीचमें ऋषियोंके नाम दिए हैं। उदाहरणार्थः-कौशिक, युवन् कौशिक, भागली, माठर, शौनक। परंतु कौशिक सूत्रमें भी इनके नाम दिए हैं और इसकी एक विस्तृत सूची दी है; कौशिक सूत्रमें ऋषियोंके और दिखने वाले नाम आगे दिए हैंः—गार्ग्य, पार्थश्रवस् कांकायन, परिवभ्रव, जाति कायन, कौरूपथि, इषुफालि तथा देवदर्श।

कौशिक सूत्रके ७ वें तथा ८ वें अध्यायमें परिभाषिक सूत्र हैं; पहले ६ अध्यायोंमें दर्शपूर्ण मासविधिका वर्णन है; परन्तु यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये अध्याय पीछेसे लिखे गए हैं।

परिभाषा सूत्र वैतानमें लागू नहीं होते। तथापि वैतान सूत्रके १०. २. ३ में कौशिक सूत्रके ८-१२ तथा ८-१३ उपयोग किया है।

वैतान सूत्र कौशिक सूत्रपर निर्भर है यह दर्शानेके लिए ऊपर प्रमाण दिया गया है। उससे भी अधिक समर्थनीय आधार दिखाया जा सकता है। कौशिक सूत्रमें विस्तारसे वर्णन किए हुए विधियों अथवा संस्कारोंका उल्लेख वैतान सूत्रमें दिखाई देता है; परन्तु वैतान सूत्रमें इनका सम्पूर्ण वर्णन न देकर उन संस्कारोंके शुरू तथा आखीरी कर्मोका उल्लेख दिया हुआ है। उदाहरणार्थः—वै. सू. १. १६ तथा कौ. सू. ३. ४। वै. सू. ११. १४ और कौ. सू. २४. २६-३१। वै. सू. २४. ३ और कौ. सू. ७. १४. १४०. १७। वै. सू. २४. ७ तथा कौ. सू. ६. ११-१३।

यद्यपि उक्तप्रमाण किसी अंश तक ठीक है तौ भी पूर्ण निश्चित रूपसे सब स्थानोंके लिये यह कह देना कि वैतान सूत्रमें सब स्थानोंपर कौशिक सूत्र से ही उद्धरण किया गया है ठीक नहीं मालूम होता। याकोबी साहब भी इसको पूर्णरूपसे नहीं मानते। यह भी सम्भवनीय है कि अथर्व वेदानुयायियोंमें जो धर्मविधि या संस्कार प्रचार में थे वे कौशिक सूत्र तथा वैतान सूत्र ग्रन्थोंमें स्वतन्त्ररूपसे दिए हों; लेखन पद्धतिमें ही भेद के कारण तथा लेखन शैलीमें भेद होनेसे कौशिक सूत्रमें सस्कारोंका पूर्ण वर्णन आया है तथा वैतान में केवल उनकी रूपरेखा ही दी हुई हो, इससे अधिक कुछ नहीं कहा जासकता। वैतानमें संस्कारोंके सम्बन्धमें जो अधूरी जानकारी दी गई है वह यदि पूरी करनी हो तो कौशिक सूत्रोंकी सहायतासे वह कार्य होने लायक है, यह वैतान सूत्रमें कहीं भी नहीं कहा है। यद्यपि ऐसा ही हो तो भी यह समर्थन एकदम निरर्थक है; इस कारण हम लोग वैतान सूत्र ५. १० का समर्थन मान्य करें। गार्वे साहबने ५. १० का अनुवाद करनेमें अपनी असमर्थता स्वीकार किया है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि, 'त्रित्यादित्रिराथर्वणीभिः' शब्दको गार्वेसाहेब गलतीसे सूत्र दर्शक समझ गए हैं। परिभाषा सूत्र कौशिक ८, १६ के आधार से वै. सू. ५. १० का उत्तम प्रकार से स्पष्टिकरण हो जाता है। वैतान सूत्र ५. १० में शान्त्युदक बनानेके उपयोगमें लाई जानेवाली पवित्र वस्तुओं की (विशेषतः ये चीजें बनस्पति ही हैं) सूची दी है। वैतान सूत्रमें इन्हें आथर्वण पुकारा है और इसके बाद जो दूसरी सूची दी है उसे आङ्गिरस पुकारा है। कौशिक सूत्रमें यह दूसरी सूची नहीं दी है। कौशिक सूत्रमें पहली सूची पूर्ण दी है, इस कारण वैतान सूत्रमें यह सूची त्रोटकरूपसे दी है; और कौशिकमें दूसरी सूची नहीं दी है इस कारण वैतानमें दूसरी सूची सम्पूर्ण दी हुई दिखाई देती है। और केवल इसीएक बातसे यह कहा जासकता है कि वैतान सूत्र कौशिक सूत्रपर स्पष्ट रूपसे निर्भर है; तथा वह कौशिक सूत्रके पश्चात् रचा गया। यही बात और एक प्रकारसे-पारिभा-

षिक शब्द सम्बन्धके आधारसे-सिद्ध होती है। दोनों सूत्रोंमें उन-उन सूत्रोंके दो एक सूत्रका अवतरण लेते समय उनसूत्रोंके प्रतीक दिए हुए दिखाई देते हैं। यह रीति हमेशाकी ही है।

कौशिक सूत्रमें तो उस समयके शैलि का ही अनुकरण किया गया है। उस शैलिके अनुसार किसी वेदके दूसरी शाखामें से सूक्त अथवा पाठ तथा अन्य वेदों की शाखाओंमें से सूक्त या पाठ देते समय उनका पूर्णरूपसे विवरण देना आवश्यक था। वैतान सूत्रमें भी इसी रीतिका अनुकरण किया है; परंतु इसमें एक विशेष प्रकारसे ध्यानमें रखने योग्य अपवाद है। वह इस तरह हैः—

जो सूक्त अथवा जो पाठ कौशिक सूत्रके साथ साथ वैतान सूत्रमें भी आया होगा उन सूक्तों का या पाठ का अवतरण देते समय वैतानमें केवल प्रतीकों को ही दिया है। यद्यपि यही अन्य संहितामें दिखाई देता हो अथवा अस्तित्वमें होने वाली किसी भी संहितामें वह दिखाई न देता हो और यद्यपि वह केवल कौशिक सूत्रमें ही दिखाई देता हो तोभी वैतान सूत्रमें इस बातको महत्व नहीं दिया है। एक दो उदाहरण देनेसे वह अच्छी तरह समझमें आयगा।

(१) तैत्तिरीय संहिता ३. २. ४. ४ में जो पाठ है वह शुक्ल यजुर्वेदमें श्रौत सूत्रमें, कात्या. २. १.२२ तथा कौ. सू.३. ५. में संपूर्ण दिया है; परन्तु वै. सू. १. २० में इस पाठका 'अहेदैधिषव्य' इस तरह केवल प्रतीक ही दिया हुआ है।

(२) कौ. सू. ६. ११ में एक मन्त्र है दारिलाने इसे कल्पना नाम दिया है। याकोबी साहबको यह मन्त्र किसीभी संहितामें नहीं दिखाई दिया।

वैतान सूक्त २४७ में इस मन्त्रका 'विमुञ्चामि' नामक केवल प्रतीकही दिया है।

आगे उस कौशिक सूत्र पर विचार किया जावेगा जिस पर वैतान सूत्रके निर्भर होनेकी कल्पनाकी गई है।

कौशिक सूत्र।

कौशिक सूत्रकी रचना—कौशिक सूत्र विधियों के विस्तारकी दृष्टिसे कौशिक सूत्र अन्य सूत्रोंकी अपेक्षा भिन्न है। यह सूत्र जिस शाखाका है उस शाखाके लोगोंके उपयोगके लिए इस सूत्रमें विधियोंका विस्तार पूर्वक विवेचन है। यह कोई श्रौत सूत्र नहीं है। यह अथर्ववेदके शौनक शाखाका श्रौत सूत्र, वैतान सूत्र (वितान कल्प) है। यह बात कौशिक सूत्र १-६ तथा वैतान सूत्र १-४ के दर्श पूर्ण मासीय भाग संबन्धके विवेचनकी तुलना से तत्काल ध्यानमें आने योग्य है। श्रौत विधियोंकी जो परिभाषा है वह इस सूत्रमें नहीं है। होतर, अध्वर्यु और उद्गातर शब्द पारिभाषिक अर्थसे कुल कौशिक सूत्र ग्रंथमें कहीं भी दिखाई नहीं देते तथा श्रौताग्नीका उपयोग केवल क्वचित् तथा गौणत्वसे किया है। जैसेः-२२, १४; ६७, ६; ७०, ६-१२; ७१, १-६; ७७, २३; ८०, १८-२३; ८७, ३७-३२; ८८, २०; ८६, १५। अग्नि होत्रका दो समय उल्लेख किया है। ७२, ४३; ८०, २५

यह ग्रंथ, 'गृह्य सूत्र' शब्दके अर्थकी दृष्टिसे देखा जायतो इसे गृह्य सूत्रभी नहीं कह सकते। इस तरहके ग्रंथमें हमेशा आनेवाली महत्वकी विधि याने गर्भाधान विवाह अंत्येष्टि इत्यादि संस्कार, तथा मधुपर्क, आज्य तन्त्र इत्यादि, इस ग्रंथमें आए हैं। परन्तु उन्हें ग्रंथमें प्राधान्य नहीं दिया है। ब्लूम फिल्डके मतसे ग्रंथके मुख्य भाग में, गृह्य विषयोंको कुछ न कुछ गौण स्वरूप देकर उन्हें ग्रंथमें इधर उधर खूब भर दिया होगा। अथर्वमेंके सूक्तोंको कहते समय उनके साथ जो विधि करनी पड़ती हैं उनका यह सूत्रमय वर्णन है। प्राचीन कालसे अब तक सूत्रका पाठ तथा कुछ विधियुक्त आचार एक साथही करनेका नियम रहा है। इन्हीं आचारोंका सुधरा हुआ स्वरूप सूत्रमें दिया है। यद्यपि इन विषयोंका आधे सेभी अधिक भाग गृह्य सूत्रोंसे भरा हुआ है, तोभी यह मान लेनाकि इस ग्रंथका अथर्व सूत्रही बीज है, और दूसरे भाग बादमें इकट्ठे किए गए हैं बड़ा कठिन है! तथापि यह कैसे भीहो हमें तो यह मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है कि कौशिक सूत्र 'अथर्व' तथा 'गृह्य' इन दोनोंही स्वतंत्र सूक्तोंका मिश्रण है। नीचे किया हुआ विवेचन इन दोनों स्वतंत्र सूत्रोंके मिश्रणकी ओर ध्यान देकर किया गया है।

कौशिकसूत्रकी रचनाका काल निर्णय—इस सूत्रकी रचनाके समय तथा स्थानके विषयका साम्प्रदायिक ज्ञान उपलब्ध नहीं है। अथर्व ही के साहित्यमें सापेक्ष कालानुक्रमके सम्बन्धमें दो समयोंका उल्लेख आया है। प्रथमतः मन्त्रों तथा सूक्तोंका काल रहा होगा। आगे यह पूर्ण रीतिसे सिद्ध किया गया है कि ग्रन्थकार शौनक शाखाकी संहिताको मानता है और काश्मीर शाखासे आये हुए अथर्ववेदका भी यह अच्छा ज्ञाता था। इन सूत्रोंमें शौनक आदि अथर्ववेद की चारों शाखाओंके मुख्य आचार दिये हैं। यदि केशव तथा अथर्वणीय कहना ठीक हो तो हम

कह सकते हैं कि जिस समय ये आचार सूत्रोंमें मिलाये गये उसी समय लगभग सब शाखाओंकी अथर्वसंहिता मुख्यतः तय्यार हुई होगी। दूसरी बात यह है कि ये सूत्र वैतान सूत्र इत्यादिसे पहले का है और उन्होंने उनमेंकी बातोंको माना है। वैतानको अथर्ववेदी श्रोताकी एक छोटी सी पुस्तक कह सकते हैं। इसकी रचना ऐसे समय में हुई थी जिस समय इसको भी सर्वमान्य वेदों के प्रान्तोंमें प्रवेश करना था। इसी कारण वेद के यज्ञोंकी विवेचना करनेवाले एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की आवश्यकता हुई। यह बताना कठिन है कि कौशिक तथा वैतानके सूत्रोंके संस्करणके बीचमें कितना समय बीता। ब्लूमफील्डका कथन है कि अथर्ववेदके साम्प्रदायिक विचारोंको व्यवस्थित करना तथा सूत्र रूपमें परिवर्तित करनेका प्रयत्न अर्थात् कौशिक सूत्रका निर्माण बहुत बादके समय का है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें बताये हुए आचार भी बादके ही हैं। इस वेद की विधियोंका स्वरूप ही ऐसा है कि मन्त्रोंका पठन तथा कृतियाँ अच्छी तरहकी जाँय। बहुत से सूक्त अथर्ववेदके ऐसे हैं जो विना पूर्ण क्रियाके (उच्चारणके साथ हाथ उठाना गिराना इत्यादि) पढ़े ही नहीं जा सकते। कौशिक सूत्र एक ही साथ तय्यार किया गया होगा। आज जो ग्रन्थ का स्वरूप है वह किसी एक ही समयमें एकत्रित करके ग्रन्थरूपमें रख दिया गया होगा। ग्रन्थका इससे भी कोई प्राचीनरूप रहा होगा। ब्लूमफील्ड इस बातको माननेको तय्यार नहीं हैं कि ग्रन्थके अन्तिम संस्करणके बाद स्थान स्थान पर अन्य भाग मिलाये गये होंगे। बल्कि जो विषय इस ग्रन्थमें जोड़े गये हैं वे स्वतन्त्र रूपसे भिन्न भिन्न स्थानोंसे ही आये हुए होंगे। यह बात भी स्पष्ट ही है कि इन संस्करणकारोंने उन्हें इस भांति नहीं जोड़ा है कि विभिन्न काल तथा कर्त्ताओंका कार्य स्पष्ट न दिखाई दे।

शकुन अपशकुन-सम्बधी तेरहवाँ अध्याय पूर्ण संहिताके विषयोंसे बिल्कुल भिन्न होनेके कारण स्वतन्त्र मालूम होता है। इन अध्यायोंके सूक्त स्वतन्त्र हैं। यह अथर्ववेदके बीच व्याख्या किये हुए भागोंसे बिल्कुल विपरीत है। प्रत्येक अपशकुन को दूर करनेके लिये प्रतीकों द्वारा दिखाये हुए अथर्ववेदके मन्त्र सामान्यतः अप्रधान करके माने हुए प्रतीत होते हैं। इस अध्याय की भाषा भी कुछ इस प्रकार की है कि वह सूक्तग्रंथों में ठीक ठीक नहीं खपती। इस की लेखन शैली को लगभग गद्यपरिशिष्टोंके लेखके समान कह सकते हैं।

कपालेनांगारा भवन्ति—अङ्गारकल्प १३५. १, अथवा चतस्त्रो धेन्वा अपक्कप्ताभवन्ति, विता कृष्णा रोहिणीसुरूपा चतुर्थी १२०. १; १२६. ५, इस भाँतिके वाक्य अथर्वसूत्रोंमें नहीं देख पड़ेंगे। ९७.७ में दिये हुए वाक्य अपेत एतु निर्ऋतिर इत्य- तेनसुक्तेन, तथा उसके आगेके सम्पूर्ण पाठोंके सूक्त बहुत स्पष्ट दिये हुए है। इनकी भाषा भी बहुत अच्छी नहीं है। १०४. ३, ११३. ३. १२३.१. १३३. २, के 'एताभ्यां सूक्ताभ्याम्'; ११३.१ के एतेत्रिभिः सूक्तैः; १३६. ६ के इति एताभ्यां (ऋग्भ्याम्); ११२. १ के 'इति एताभिः चतसृभिः (ऋभिः) के विषयमें भी उपरोक्त ही धारणा की जासकती है। १३ वें अध्यायमें भाषा अधिक स्पष्ट तथा क्लिष्ट देख पड़ती है ९३ वी कंडिकामें विषयोंकी अनुक्रमाणिका अलग देकर इस अद्भुत विषयके अध्याय का आरम्भ किया है (इससे यह स्पष्ट है कि यह अध्याय अवश्य ही स्वतन्त्र रीतिसे तय्यार किया गया है। ऐसी अवस्थामें यह कहा जा सकता है कि कौशिकसूत्रके संस्करण कर्त्ताओं ने इस अध्याय को जिस रूपमें प्राप्त किया होगा उसी रूपमें अपने ग्रंथोंमें मिला लिया होगा। प्रो० बेवर का भी यही मत है ब्लूमफील्ड भी इसी मत को मनता है। कौशिक सूत्रोंके अन्तर भागोंमें जो भिन्नता देख पड़ती है तथा भिन्न भिन्न ग्रंथकारों के भिन्न भिन्न भाग मालूम पड़ते हैं उसका कारण यही है कि इन संस्करण कर्त्ताओंने उन्हें ठीक रीतिसे मिलाने का प्रयत्नही नहीं किया। तौभी उन भिन्नताओंमें बहुत सी समानता है। कहीं कहीं पर तो सूत्रकारोंने अपने भरसक ग्रंथोंमें दिये हुए विषयोंमें साम्यता लाने का प्रयत्न भी किया है। अध्याय १३ में चातन गण (१६६.९) मातृनामानि सूक्तानि (९४.१५, १५१. ९६.३, १०१ ३, ११४.३, १३६.९) तथा तिंवास्तोष्यतीयानि सूक्तानि,' (१२०. ९) आया है। इसमें यह स्पष्ट है कि उस अध्याय का लेखक अवशिष्ट ग्रंथ एवं उस शाखाके परिभाषिक शब्दोंसे पूर्ण परिचित था। यह कह कर इस सम्बन्धमें निर्णय किया जा सकता है कि क्योंकि ११८.१ में शौनक संहिता का एक मन्त्र संग्रह उसके प्रतीकके साथ दिया है इसलिये तेरहवें अध्यायके पहले—अर्थात् ९१.१के सकल पाठके पहले—इसका अवतरण कियागया होगा। इस प्रकार का दूसरा उदाहरण यह हैः- '१३३.७ में भवन्तं नः समनसौ समोकसौ का

प्रतीक सकल पाठ १०८.२ के आधार पर लिया गया है। इसी भांति ९८.३५ का प्रतीक, इदावत्सराय' सकल पाठ ४२.१७ के अधार पर है। इस ग्रंथ में केवल यही एक ऐसा उदाहरण है जहाँ संस्करण कर्त्ताने सम्पूर्ण परिचित तथा ज्ञानके विषयों का उत्तम संग्रह तथा मिश्रण किया है। अन्तिम संस्करणके समय सकल पाठ ४२, १९ का 'व्रतानि व्रतपतये' मन्त्र छोड़ कर सूत्र शैली का उपयोग करनेमें श्रूत्रकारने गलती की है। किन्तु प्रतीक पहले ही ६.१९ में आचुका है सूत्रग्रंथोंमें पूर्वापर सम्बन्ध बराबर रखनेके लिये इसके विरुद्ध क्रम आया होता। १३७. ३० में आगेके तीन २ श्लोकोंकी प्रतीकें दी हुई हैं। इनकी रचना स्वच्छ न होनेके अनेक और भी उदाहरण हैं। २.४१ में इनमें से पहले का प्रतीक 'इतिविस्रुभिः' कह कर बिल्कुल वैसेही देदिया है।

बहुत सम्भव है किसी समय अद्भुत विषयक शकुनोपशकुन शास्त्र अथर्ववेदके विषय प्रान्तोंमें कहींपर स्वतन्त्र रूपसे रहा होगा किन्तु इस प्रकार के संग्रहोंमें मिलाने योग्यहोनेके कारण वह अन्तर्भूत किया गया होगा। इसी भाँति पारस्कर गृह्य सूत्रोंमें अद्भुत विषय सम्बन्धी तीन अध्यायोंका भी अन्तर्भाव किया होगा। किन्तु न जाने क्यों प्रो० स्टेंज्लरने अपने सम्पादनसे वृथाही वे अध्याय निकाल डाले। यद्यपि १३ वें अध्याय को ग्रंथमें मिलाने का प्रयत्न बड़ी सावधानी तथा कुशलता से किया गया है किन्तु इस बात का चिन्ह बिल्कुल भी लुप्त करनेमें समर्थ नहीं हुए।

यद्यपि सरसरी तौरसे देखनेसे यह एक दम स्पष्ट न दिखाईदे किन्तु फिर भी यह बहुत सम्भव है कि चौदहवाँ अध्याय भी कौशिक सूत्र का अन्तिम स्तर होगा। अथवा मुख्यग्रंथ पूरा होनेपर संस्करण कर्त्ताओंने पहले पांच ऐसे अध्याय इनमें मिलाये होगें जो इनकेही समान तो अवश्य होगें किन्तु उनमें विषय भिन्न भिन्न रहे होंगे। फिर चौदहवें और बारहवेंके बीचमें १३ वाँ अध्याय घुसेड़ने की कोई आवश्यकता भी नहीं देख पड़ती। यदि यह कहा जाय कि १३ वाँ अध्याय परिशिष्ट और बहुत बादका है तो यह भी मानना पड़ेगा कि १४ वाँ अध्याय भी तेरहवें अध्यायके साथही साथ जोड़ा गया है। इन अध्यायों की अतस्थपूर्तिसे उपरोक्त बातें पुष्ट होती हैं। १४१ वीं कंडिकामें वेदपठनके नियम अपभ्रष्ट स्वरूपमे दिये हैं तथा उनके बीच बीचमें गद्यतथा पद्य का मिश्रण है। यह स्पष्ट है कि इनका स्वरूप बादकी बनी हुई स्मृतियोंके समान ही है और संस्करण कर्त्ताओंके मनमें इस कण्डिकाके मिलाने की इच्छा बाद की है। इसका कारण यह है कि यद्यपि विद्यार्थियों को वेद पढ़ाना आरम्भ करनेके विषयमें अच्छा विवेचन किया है तो भी इन दो भागों के बीचमें इन्द्र महोत्सव नामक राजकार्य का विवेचन व्यर्थही घुसेड़ दिया है। यद्यपि १३९ कण्डिका की भाषा सामान्यतः अन्य भागों की गृह्यविधि वर्णन की भाषा की अपेक्षा भिन्न नहीं है तौभी इस कारणसे संशय उत्पन्न होता है कि उसमें आये हुए विषय का वर्णन पहले ही ५६-८ में आचुका है। ५६. ८ में विद्यार्थियों को सावित्री पाठ का आदेश किया गया है परन्तु १३९.१० में सावित्रीके साथ साथ अथर्ववेदके ४.१.१ तथा १.१. इन दो मन्त्रोंके पाठ का भी आदेश किया गया है। इन दो मन्त्रोंके अधिक बतानेकी कल्पना निसन्देह बादकी है और बिल्कुल ही परिशिष्टके रूपमें है। इसका मुख्य कारण यही है कि किसी भी युक्तिद्वारा इस वेदको भी अन्य वेदोंकी श्रेणीमें सम्मिलित करना था और इसका स्थान अन्य धर्मग्रंथोंको दृष्टिमें महत्वपूर्ण तथा अभेद्य बनाना था इस कंडिकाका मुख्य ग्रंथके अन्तर्भाग न होनेका पारिभाषिक प्रमाण १३९-१० में आये हुए 'त्रिषप्तीय' शब्दसे मिलता है। कौशिक ७, ८ एक पारिभाषिक सूक्त है। इसमें बताया गया है कि ग्रंथके बादके भागोंमें 'पूर्वम्' अर्थात् 'सूक्तम्' शब्द त्रिषप्तीय सूक्तके लिये योग्य होनेके कारण व्यवहारमें लाया गया है। जहाँ जहाँ इस सूक्तका वर्णन आया है वहाँ वहाँ सारे ग्रंथमें इस परिभाषाका जी खोल कर प्रयोग किया गया है। देखिये १०.१, ११. १, १२. १०, १४. १, १६, ५, १८. १, १९, ३२. २८। इससे कमसे कम इतनातो कहा ही जा सकता है कि अन्य अध्यायोंमें यह ठीक रीतिसे नहीं मिलाया गया है। उपरोक्त तथा इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि यह अध्याय बादका जोड़ा हुआ है।

यही स्थिति १३८ कंडिकाकी है। इसमें 'अष्टका' विधिके लम्बे लम्बे वर्णन हैं, परन्तु यही विधि पहलेही १९-२८ में सूत्र भाषामें आचुकी है। केशव के ध्यानमें यह आया है कि तत्वतः ये दोनों वर्णन एकही विधिके हैं। उसने १९वीं कंडिकामें एक स्थान पर इन दोनोंका विवेचन किया भी है। १३८ वीं कंडिकाके बाद में जोड़ी जानेमें तो कोई सन्देह है ही नहीं। १४०वीं कंडिकाका विषय 'इंद्र महोत्सव' है और उसकी भाषा शैलि परभी

ध्यान देनेसे उपरोक्त सिद्धान्तकी ही पुष्टि होतीहै। अतः यह एक परिशिष्ट है और अथर्व परिशिष्टाङ्ग १९वें में कुछ विस्तारसे दिया गया है। इससे यहतो सिद्ध हो ही जाता है कि इस संग्रहकी भाषा तथा शब्दरचनामें कोईभी अशोभनीय बात नहीं है। कंडिका १३७ का आज्य तन्त्र दर्श पूर्ण-मास विधिके एक भागका विस्तृत वर्णन है। उसमें केवल वेदी बनानेके नियम तथा लक्षण आदि विषयोंका अधिक उल्लेख है। ६, २९-३० में इस प्रकार लिखा है, 'इमा दर्श पूर्ण मासौ व्याख्यातौ। दर्श पूर्ण मासाभ्यां पाक-यज्ञः'। इस से १३७-४३ के 'व्याख्यातं सर्व यज्ञियं तन्त्रम्' की आवश्यकताही नहीं रह जाती। केवल सूत्र भाषा की दृष्टिसे १३७-३० की २. ४१ के 'अग्निर्भूम्याम् इति विसृभिः' से तुलना करने पर यह ध्यानमें आवेगा कि १३७वीं कण्डिका १-६ के बादकी है। १३७-३० में तीनों ऋचायोंकी प्रतीक प्रारम्भसे अन्त तक हैं। यहाँ पर यह लिख देनाभी बड़ा आवश्यक है कि दर्श पूर्णमास तथा आज्य तन्त्र का वर्णन करते समय केशव, दशकर्माणि, अथर्वण पद्धति और अंत्येष्टि शैलियोंमें भिन्न भिन्न अवतरणोंको आपसमें मिला दिया है।

इससे स्पष्ट है कि १३वें तथा १४वें अध्याय ग्रंथके अन्तिम स्तर हैं।

पहले अध्यायके शुरूकी ६ कंडिकाओंकी बातही बिल्कुल निराली है। १-८ तक बिल्कुल साधारण पारिभाषिक सूत्र देनेके पश्चात् ९-२१ तक विशेष परिभाषायें हैं। १-८ तकमें ग्रंथके मूल अध्याय दिये है। ९-२१ तकमें देव तथा पितरोंकी पूजा का भेद दिया गया है। यही शैली सूत्र ग्रंथों की है। प्रथम ६ कंडिकाओंमें केवल दर्श पूर्णमास विधिकाही वर्णन है। ९-२१ तककी परिभाषाओं का प्रथमकी ६ काण्डिकाओंकी अपेक्षा अधिक विस्तृत-रूपसे वर्णन होना चाहिये। इसमें पितरों की किसीभी पूजाका उल्लेख नहीं आया है। बहुत सम्भव है कि इन परिभाषाओंका सम्बन्ध ग्रंथके अन्तिम भागको उद्देश करके हुआ होगा। इस कथनके प्रमाणमें ११ अध्याय ध्यानसे देखना चाहिये।

इस प्रकार माननेमें एक खास अड़चन यह पड़ती है कि दर्श पूर्णमास विधिके बादही विशेष विस्तृत नीतिवाली परिभाषाओंकी ३ कण्डिका आई हैं। कदाचित वह वहाँ इसी हेतुसे रक्खी गयी हैं और प्रथम कण्डिकामें ९-२१ के अधिकार का उपयोग बहुत अध्यायों तक नहीं किया गया है। जहाँ आज पहली ६ कंडिका हैं, उसी स्थान पर वे पहले नहीं थीं। यजुः संहिताके श्रौत सूत्रके ग्रंथका आरम्भ तो दर्श पूर्णमासका उल्लेख करनेके पश्चात् किया जाता था। ब्लूमफील्डका मत है कि सदाका प्रचलित नियम विचार करही वे वहाँ रक्खी गई होंगी। इस मतकी पुष्टिके लियेभी प्रमाण हैं। 'व्रतानि व्रतपतये' ऋचाका प्रतीक ६-१८ में दिया है और यह सकल पाठ ४२-१६ में है। इस से यह प्रतीत होता है कि कौशिक तथा वैतान सूत्रके सदाके नियमके अनुसार ४२·१६ और उसके बाद ६-१८ आना चाहिये। किन्तु एक दूसरा उदाहरण है जो इस प्रकार नहीं घटाया जा सकता। कौशिकके 'अच्युता द्यौरिति' का प्रतीक ३५-१२ में तथा सकल पाठ ९८-२ में है। अतः तेरहवें अध्यायके मन्त्रोंका उपयोग इस प्रकारही किया देख पड़ता है कि किसी समय वह एक स्वतन्त्र-संहिताके ही रूपमें रहे होंगे।

'प्रयच्छ परशुं इति दर्भाहाराय दात्रं प्रयच्छति' (५,२४) के पश्चात् ८,११ में इसी अर्थ का पारिभाषिक सूत्र कुछ भिन्न भाषामें दिया हुआ है। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि १-६ अध्याय अगले अध्यायके आधारपर अथवा उनसे मिलाकर नहीं रचा गया है। चाहे ये अध्याय किसी दूसरे ग्रंथके रहे हों अथवा इसी ग्रंथ का एक पृथक पाठ होगा और यह किसी पृथक ही ग्रंथकार द्वारा रचा गया होगा। कण्डिका ५२-५३ के बादही मुख्यसूत्र के अनन्तर, किन्तु गृह्य अध्यायके पहले ही उनका योग्य स्थान रहा होगा। किन्तु इस भाग की इतनी ही विशेष बातें देखकर कोई सिद्धान्त निकाल लेना ठीक नहीं मालूम होता।

कौशिक अथर्व तथा गृह्यसूत्रोंका सम्बन्ध—उपरोक्त वर्णनके अनुसार मुख्य अथर्व सूत्रोंका आरम्भ ७ वीं कंडिकासे होकर ५३ वीं कंडिकामें इनकी समाप्ति हुई है, किन्तु बीचके ४२, ५ से ४५ तक का विषय ही बिल्कुल भिन्न है। इसकी भाषा भी गृह्यसूत्रके समान है किन्तु इन अथर्व सूत्रोंमें अथर्ववेद-कालके आयुष्यक्रम की स्पष्ट देख पड़नेवाली बातें वर्त्तमान हैं। बारहवें अध्यायके अन्त तक बची हुई कंडिकाओंमें अथर्व मन्त्रोंके आधार पर अथर्वणकी दृष्टिसे सदाकी भाँति गृह्य आचरणोंका वर्णन आया है। अथर्व सूत्र बिल्कुल ही अल्पाक्षर तथा सूत्रमय भाषामें लिखा गया है। इसमेंके आचार भी बिल्कुल पुराने तथा स्वतन्त्र हैं। शब्द संग्रह तथा शब्द समृद्धि की दृष्टिसे इनकी भाषा ध्यानमें रखने योग्य हैं।

अथर्व संहिताके अर्थज्ञानके लिये इसका बहुत मूल्य है। शेष ग्रन्थोंकी अपेक्षा इसमें विशेषता यह है कि अथर्वसंहितासे परेके मन्त्रोंका अवतरण इसमें शायद ही कहीं आया हो। अथर्व सूत्रकी अपेक्षा गृह्यसूत्रकी भाषा बहुत ही अस्पष्ट है, और इन दोनोंका भेद दिखानेके लिये बहुतसे पारिभाषिक प्रमाण भी हैं। दोनोंको पढ़नेके पश्चात् पाठकोंका यह मत हो सकता है कि अन्तिम संस्करणके समय आधुनिक संस्करणके किसी एक सामान्य गृह्यसूत्रमें अथर्वसूत्र मिला दिये गये होंगे।

इन गृह्यसूत्रोंमें फौरन ही ध्यानमें आनेवाली एक विशेषता यह है कि अथर्ववेदमें स्थान न पा सकनेके कारण सकल पाठके अनेक मन्त्र इनमें अनेक बार आये हैं। बहुतसे स्थानोंमें तो एक ही मन्त्र प्रतीक तथा सकलपाठ एक साथ ही आते हैं ६'२ में प्रतीक सकल पाठके बाद आया है। ४२, १५. १७; ६२. २०. २१; ६८. ६. १०; ६८. २५. २६; ७२. १३. १४; ८०. २५; ८१.१; आदिमें प्रतीक सकल पाठके पहले आये हैं। कभी कभी सकल पाठके मन्त्र तथा अथर्वणकी प्रतीक साथ आते हैं। जैसे ६ २; ७१. ६; ७२. १३; ७८. १०; १३३. २। बहुतसे मन्त्र विषय अथर्ववेदसे बिल्कुल स्वतन्त्र भी हैं।

गृह्यसूत्रकी प्रतीकें जिस रीतिसे दी गई हैं उनके अवलोकनसे उनकी भाषाशैलीका ज्ञान हो जाता है। ६४. २७ में 'इति सूक्तेन' आया है ५३. १३ में 'इति अनेन सूक्तेन', ५४. ५ में इति एतेन सूक्तेन ६७, १५ में 'इति एतैस्त्रिभिः सूक्तैः', ६५, ६ में 'इति सूक्तेनका उल्लेख हुआ है। ८१,२० के दो प्रतीकोंके पहले 'उभयोः' शब्द व्यर्थ ही लगाया गया है। अथर्वसूत्रमें इस प्रकारके शब्द करीब करीब नहीं आये हैं। उसके विरुद्ध केवल तीन उदाहरण मिलते हैं। ६. १, ३५. १२, में 'इतिएक' (ऋक्) का अर्थ इस प्रकार दिया है कि वहाँके प्रकृत सूक्तोंकी एक ऋचा कही जाय। ६. २८ का 'इति सः सर्वेण सूक्तेन' अधिक मिलाया हुआ देख पड़ता है। किन्तु तौ भी इस विषयमें यों कहा जा सकता है कि गृह्यसूत्रोंमें बड़े सूत्रोंका उल्लेख होनेके कारण उसमें की विशिष्ट ऋचाका विस्तृतरूपसे उल्लेख करना आवश्यक है। तथापि यह बात ध्यान देनेकी है कि उपरोक्त स्थानोंमें बहुतसी जगह ऐसे बड़े सूक्तका उल्लेख नहीं आया है।

अथर्व सूत्रमें आ+चम् धातुका 'आचमयति' रूप आया है किन्तु अन्य स्थानों पर 'आचामयति' आया है। इसी प्रकार 'हु' धातुके वर्त्तमानकाल वाचक कृदन्तका पुल्लिङ्ग प्रथमा एक वचन 'जुह्वत' अथर्वसूत्रमें दिया है किन्तु गृह्यसूत्रमें 'जुह्वन' दिया हुआ है। इससे तथा अन्य प्रमाणोंसे भी यह बात स्पष्ट है कि अथर्व तथा गृह्यसूत्रोंकी भाषा भिन्न हैं। गृह्यसूत्रकी भाषा विस्तृत तथा सरल है किन्तु अथर्वकी भाषा संक्षिप्त तथा पारिभाषिक स्वरूपकी है। गृह्यसूत्रोंकी भाषा अथर्व सूत्र और तेरहवें अध्यायके बीचकी भाषाके समान है। यह पहले कहा ही जा चुका है कि तेरहवें अध्यायकी भाषा करीब करीब परिशिष्टकी भाषाके समान है।

यह सदा ध्यानमें रखने योग्य बात है कि अथर्वसूत्रमें अथर्ववेदके १६ वें कण्डिकाका बिल्कुल ही अवतरण नहीं लिया गया है क्योंकि कौशिकसूत्र और अथर्वके ६६ वे कण्डिकामें बहुत सम्बन्ध है।

ब्लूमफील्डका मत है कि उपरोक्त मत बिल्कुल ही अवाधित रहना कठिन है तथापि आगे दी हुई बातें स्पष्ट ही है। कौशिक सूत्र बादके सूत्रोंके समयके हैं। उनमें भिन्न प्रकारके स्तर हैं जो विशेष निपुणतासे नहीं मिलाये गये हैं। उन प्रत्येक स्तरका विशिष्टरूप भिन्न भिन्न लेखकोंके भिन्न भिन्न कालके कारण हो होगा। विषय, भाषाशैली, तथा परिभाषा इत्यादिमें अन्तर होनेके कारण ही यह बात सिद्ध होती है कि अथर्व तथा गृह्यसूत्रोंमें भेद हैं। तेरहवें तथा चौदहवें अध्यायोंकी रचना पूर्ण ग्रन्थके बादकी है और बहुत प्रयत्न करके भी यह बात छिप नहीं सकी। पहले अध्यायकी पहली ६ कण्डिकायें इस ग्रंथके आखिरी स्तर की होंगी।

कौशिकसूत्रका उसकी संहितासे सम्बन्ध—अथर्ववेद की नौ शाखायें थी। अथर्ववेदका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंको पहले इस दृढ़ साम्प्रदायिक विश्वासका ध्यान रखना पड़ता था। इस साम्प्रदायिक विश्वासके मूल आधार चार हैं—(१) दो चरण-व्यूह। पहला चरण-व्यूह शुक्ल यजुर्वेदका पाँचवाँ परिशिष्ट है और उसके पहले अध्यायमें अथर्ववेदकी शाखायें दी हैं। दूसरा चरण व्यूह अथर्ववेदका ४६ वाँ परिशिष्ट है और उसमें इस विषयके बारेमें थोड़ेमें विचार किया गया है। (२) पाणिनीकी अष्टाध्यायीमें, महाभाष्यमें तथा अन्य पाणिनीसे परिचित साहित्योंमें प्रसंग वश इन शाखाओंका उल्लेख आया है। (३)

अथर्ववेदके शाखा सम्बन्धी पुराणके अन्तिम किन्तु अति अधिक व्यवस्थित वर्ण तथा अन्तिम भागमें रामकृष्ण तथा गणपति आदिका वर्णन और (४) अथर्ववेदके साहित्यमें स्थान स्थान पर प्रसंग वश आए हुए उल्लेख अथर्ववेदके शाखाओंका बहुत बार विचार हो चुका है।

देखियेः—बेवर इंडिश स्टूडिएन १. १.२, २९६; ३, २७७-२ ७८; १३, ४३४-४३५; ओमिना पोरटेन्टा पृष्ठ ४१२-४१३; इंडिश लिटेरचर गोशिष्टे पृष्ठ १७० मैक्स मुल्लर 'प्राचीन संस्कृत वाङ्मय' पृष्ठ ३९१' गोपथ ब्राह्मणकी राजेन्द्रलाल मित्रकी प्रस्तावना, पृष्ठ ६; शब्द कल्पद्रुम; वेद, रॉथ, काश्मीरी अथर्ववेद पृष्ठ २४; अ० ओ० सो० गि० का पु० ११ पृष्ठ ३७७-३७८; सायमन, बैट्रागतूर केन्टिनिस डेरवेडिशेन शूलेन पृष्ठ ३१।

उपरोक्त रॉथके ग्रंथोंमें उसने शाखा विषयकी साम्प्रदायिक कल्पनाओंका बहुतही व्यवस्थित रीतिसे तथा चिकित्सक बुद्धिसे परीक्षण किया ह। उसने सिद्धान्त निकाला है कि शाखाओंके इन नौ नामों में से पांच सच्चे तथा विश्वासनीय होनेके कारण माने जाँय और बाकीके चार अविश्वासनीय होनेके कारण छोड़ दिये जाँय। ब्लूमफील्ड के मतानुसार अथर्ववेदके साहित्योंमें उसकी शाखाओंके सम्बन्धमें स्थान स्थान पर आये हुए उल्लेखोंकेही ऊपर विश्वास करनेके कारण इन विषयोंको साम्प्रदायिक कल्पनाओंकी त्रुटियाँ ठीक हो सकी हैं। साथही यह बात ध्यानमें आयेगी कि अथर्ववेदी लोग स्वयं किन किन विभिन्न शाखाओं को मानते थे। जिस प्रकार अथर्ववेदके पाँच कल्पों के सम्बन्धके साहित्योंमें वर्णित परस्पर विरुद्ध वर्णन एकत्र करनेसे एक दृढ़ सिद्धान्त निकलता है (देखिये अ० ओ० सो० का० पु० ११ पृष्ठ ३७९) उसी प्रकार यहाँभी परस्पर विरुद्ध वर्णनोंसे तत्व की बात निकालना सम्भव है, इस विषयके ऊपर दिये हुए मूल आधारोंमेंसे चौथा अर्थात् प्रत्यक्ष अथर्वणवेद सबसे महत्वका है। इसके सम्बन्धमें संशय होनेके लिये कोई स्थान नहीं हैं।

ब्लूमफील्डको छोटे चरण व्यूहकी चार हस्त लिखित प्रतियाँ मिली हैं। उसमें इस विषयके उल्लेख दिए हुए हैं—तत्रब्रह्मवेदस्य नवभेदा भवन्ति तद्यथा। पैप्पलादाः तौदाः मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शाः चारण वैद्याश्च। इस कारण उसके मतानुसार अथर्ववेदकी शाखाओंके यही नाम हैं। तत्सम्बन्धी वर्णनोंमें अनेक त्रुटियाँ होनेके यही कारण हैं कि हस्तलिखित प्रतियाँ ठीक प्रकारसे पढ़ी नहीं जाती बादके लेखकोंने जान बूझकर इन शाखाओंके नाम टेढ़ेमेढ़े रक्खे और अन्तमें इनमें नये नये भाग भी मिलाये हैं। इस बातको ब्लूमफील्ड मानता है।

(१) पैप्पलाद अथवा पैप्पलादक, पैप्पलादी, पिप्पलाद, पैप्पल, पिप्पला पैप्पलायन। इन सब शाखाओंके नाम आचार्य पिप्पलादीके नामसे बने हैं।

(२) तौद अथवा तौदायनके ही बदले हुए नाम तौत, तौत्तायन, तौत्तायनीय, आदि हैं।

(३) मौद पैप्पलादं गुरूं कुर्यात् श्रीराष्ट्रारोग्य वर्धनम्। तथाशौनकिना चाऽपिदेवमंत्रविपश्चितम्। पुरोधाजलदो यस्य मौदोवास्यात्कथचन। अब्दात्-दशभ्यो मासेभ्यो राष्ट्र भ्रंशंसगच्छति। इस प्रकार अथर्व परिशिष्ट २ ४ में लिखा है, इस शाखा का पैप्पलादायन तौदायन, जलदायन के समान 'मौदायन' भी नाम है।

(४) शौनकीय अथवा शौनकिन्। वैतानसूत्र ४३, २५ में लिखा है कि जो चेटकी विद्या जानना चाहता है, वह शौनक यज्ञ करे। पाणिनीने शौनक गणके साथ साथ देवदर्शनीया पद जोड़ दिया है।

(५) महा भाष्यमें जजलीनामक आचार्यके नाम से जाजल शाखा दी है, अथर्व परिशिष्ट ४९ में इस के बदलेमें 'जावल' आया। रॉथका मत है कि कौशिकसूत्र ९, १०; १७, २७; वैतान सू. १,३;२२,१; २८, १२; में आया हुआ भागली आचार्य इस शाखा का स्थापक होगा। परन्तु ब्लूमफील्ड का कहना है कि इसे इस मत की पुष्टिकरनेके लिये कोई प्रमाण नहीं मिला।

(६) जलद का जलदायन रूप भी आता है। रा० शंकर पांडुरङ्गके कथनानुसार कौशिक सूत्र जिस शाखाओं का है उन्हीं में से जलद भी एक है।

(७) ब्रह्मवद। चरणव्यूहके अतिरिक्त और किसी अथर्वण ग्रंथमें यह बात नहीं मिलती कि यह एक शाखा का नाम है. गौण, ग्रंथोंमें इसी नामके ब्रह्मपल, ब्रह्मबल, ब्रह्मदावबल, ब्रह्मपलाश, तथा इससे भी अधिक अशुद्ध रूप आते हैं।

(८) देवदर्श अथवा देवदर्शिन के दिवदर्श, देवर्षि, वेदर्श आदि अनेक बदले हुए रूप आते हैं।

(९) चारणवैद्य विद्या केशवके कौशिकसूत्र ६, ३७ में मिलता है।

ब्लूमफील्डके मतानुसार यह बात माननेके लिये कोई भी बाधा नहीं देखपड़ती कि यहाँतक दियेहुए अथर्ववेद की साम्प्रदायिक शाखाओं का वर्णन निश्चित स्वरूप का है। अनेक शाखाओंमेंसे शाखाओंके यही नाम क्यों पसन्द किये गये और

भार्गवके समान चारण वैद्य, मौद, जलद्के साथ ही बताये हुए नाम क्यों छोड़ दिये गये। इसके सम्बन्धमें तर्क करना कोई सामान्य बात नहीं है। उसी प्रकार शान्तिकल्पके समान अन्य परिशिष्टों को उसकी अपेक्षा योग्यतामें बहुत अधिक बढ़े चढ़े होते हुए भी अथर्वणसूत्रके बराबरीमें पञ्च-कल्पोंमें ही उसे स्थान क्यों दिया गया, इस पर अपनी बुद्धि लगाना कोई सरल काम नहीं है। हाँ ऐसा कहा जा सकता है कि भिन्न भिन्न महत्व-पूर्ण ग्रन्थोंके नाम बिना किसी विशेष प्रयोजन ही एकत्र किये गये हों।

ऊपर कहा जा चुका है कि कौशिकसूत्र चार शाखाओंकी संहिता विधि है। इससे सिद्ध होता है कि इन शाखा भेदोंकी भांति संहिताओंमें भी भेद होना अथवा कमसे कम एक ही संहिताके सूत्रोंमें भेद होना सम्भव नहीं। आजतक प्राचीन अथवा काश्मीर प्रतिके अतिरिक्त कोई दूसरी शाखा-संहिता नहीं देख पड़ी। प्रो० रॉथने अपनी पुस्तकमें काश्मीर प्रतिको 'पैप्पलाद' कहा है किन्तु अन्य स्थानके पण्डित इससे सहमत नहीं हैं। ब्लूमफील्डका कथन है कि इस विषयमें शङ्का करनेका कोई कारण ही नहीं है। कभी कभी अथर्ववेदीय ग्रन्थोंको 'पैप्पलादि' नाम बिना कारण ही देदिया जाता है किन्तु उन ग्रन्थोंके अर्थसे इस शाखाका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यही स्थिति दूसरे वेदग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी होनेके कारण इस बिषयमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं देख पड़ती। यह कहा जा सकता है कि प्राचीन प्रति शौनक शाखाकी है। यही अधिक ठीक भी मालूम होता है। अथर्वपद्धतिमें वैतान सूत्रको शौनकसूत्र कहा है और इस विधानमें संशय होनेका कोई स्थान भी नहीं देख पड़ता। यह भी पूर्ण निश्चित है कि शौनकसूत्र अथर्वसूत्र पर अवलम्बित है, अर्थात् कौशिक शौनिकके सूत्र हैं। कौशिक 'चतसृषु शाखासु शौनकादिषु संहिता विधि' है। केशवकृत अथर्वण-पद्धति तथा सायनके सिद्धान्तसे तो उपरोक्त कथन ही की पुष्टि होती है। कौशिक ८५, ७, ८; देवदर्शिन तथा शौनकिनके बीचका मतभेद दिखाया है। उसमें कौशिकने शौनकीयका पक्ष ही लिया है। इससे भी उपरोक्त कथनकी ही पुष्टि होती है (अ० ओ० सो० नि० का० पु० ११ पृष्ठ ३७७)। कौशिक तथा वैतान दोनों ही शौनक सूत्र हैं (इसमें सन्देह करनेका कोई स्थान नहीं है। ये दोनों सूत्र प्राचीन प्रतियोंके आधार पर रचे गये हैं अर्थात् प्राचीन प्रति भी इसी शौनकीय शाखाकी है। इस बातके लिये काफ़ी प्रमाण है।

अथर्वणवेदके साहित्यमें हमेशा आनेवाली एक सांप्रदायिक कल्पना यह भी है कि प्राचीन प्रतिके १, १, १ में दिये हुए 'येत्रिषप्ता' के बदलेमें अथर्वणसंहिताका आरम्भ 'शनोदेवी रभिष्टये' के मन्त्रसे हुआ है, 'शनोदेवीरभिष्टय इति एवमादि कृत्वाऽथर्वण वेद अधीयेत' यह गोपथ ब्रा० १, २९ में लिखा हुआ है। ब्रह्मयज्ञमें वेदके आरम्भके मन्त्र दिये हुए हैं, उसमें अथर्वण वेदका आरम्भ 'शनोदेवीरभिष्टये' के मन्त्रसे किया है, डॉ० हौगके कथनानुसार कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें अथर्वणवेदका आरम्भ 'शन्नोदेवीरभिष्टये' के मन्त्र से किया है। डॉ० हौग तथा भंडारकरके कथनानुसार अथर्ववेदानुयायी प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि मुँह धोते समय 'ये त्रिषप्ताः' तथा 'शंनोदेवी-रभिष्टये' के मन्त्र कहे। महाभाष्यकी प्रस्तावना में दिया है कि 'शंनोदेवीरभिष्टये' अथर्ववेदके आरम्भका मन्त्र है। पैप्पलाद संहितामें, जिसकी यूरपमें उपलब्ध केवल एक ही प्रति प्रो० रॉथके अधिकारमें है। उसका पहला पृष्ठ गल गया है परन्तु उसका भी मत है कि संहिताका पहला मन्त्र ऊपरवाला ही होना चाहिये क्योंकि वह मन्त्र प्रतिके अन्य स्थानमें कहीं नहीं आया है। यह बात करीब करीब निश्चित है इसको माननेमें कोई भी बाधा नहीं रह जाती क्योंकि अथर्व परि-शिष्ट ३४, २० में पैप्पलादि शान्तिगणका आरम्भ 'शन्नोदेवी' के प्रतीकसे किया है।

शौनक संहिताका आरम्भ। ये त्रिषप्ताः' के मन्त्रसे होता है। हौगके मतानुसार अथर्ववेदका आरम्भ 'शन्नोदेवी' के मन्त्रसे हुआ है और वह मन्त्र फिरसे अपने यथोचित स्थान पर १, ६, १, में आया है और उस हस्तलिखित प्रतिमें यह मन्त्र उपरोक्त सम्प्रदायानुसार बादमें मिलाया हुआ होगा। अथर्व परिशिष्ट ४४, ६, 'वेद व्रत-स्यादेशेन' विधिमें इस प्रकार विधान किया है कि 'ये त्रिषप्ताः' अथर्वण वेदके आरम्भका मन्त्र है, वैतान सूत्रमें 'ये त्रिषप्ताः' तथा 'शन्नोदेवी' इन दोनोंमें से एक का भी उल्लेख नहीं है। परन्तु कौशिकमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि जिस शाखाकी संहिताके आधार पर यह सूत्र रचा गया है उसका आरम्भ 'येत्रिषप्ताः' के मन्त्रसे हुआ है। परिभाषासूत्र ७, ८ 'पूर्वम् त्रिषप्तीयम्' है। जहाँ जहाँ पूर्वम् शब्दका प्रतीकके अर्थमें प्रयोग किया गया है वहाँ वहाँ पर उसका अभिप्राय त्रिषप्तीय

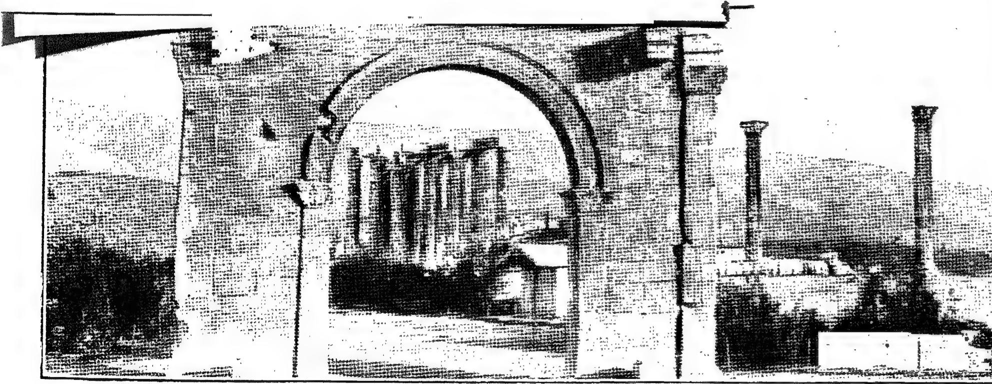
JNANA-KOSH (Encyclopaedia)

The Biggest Publication of the Hindi World.

35 VOLUMES. (12000 PAGES)
ILLUSTRATIONS. 2000

First of its type, this massive work holds a unique position in the Vernacular Literature of the country. Passing from Natural & Physical Sciences to Literature, History, Biography, Religion & Philosophy it deals with the rudest and most fragmentary records of most barbarous races, the earliest stories and traditions of every lettered people. Full justice has been done to Physics, Chemistry, Biology, Medicines, Ethics, Economics, Mathematics, Agriculture and Engineering from the ancient as well as the modern point of view. Indian Civilisation, Religion and Philosophy are the most striking features of the Book.

For smooth and efficient working of the scheme a *'Board of Editors'* has also been formed. It consists of learned persons, having a high reputation for proficiency & knowledge in their restrictive



sphere. They have very kindly acceded to look to its entire editing management. A *'Board of Patrons'* is also formed which consists of big people, who, though commanding a great reputation because of their vast and varied experience and knowledge and unfailing love for and devotion to Hindi, are unable to take very active part on some grounds or other. Such Patrons are expected to offer their sound and timely advice & to encourage and pour their best Ashirbad for the successful completion of this tremendous task.

Its Chief Characteristics

1. To make it a Book of Universal Reference and a trust worthy guide to sound learning and an instrument of culture of country-wide influence.

2. To reduce the work to the smallest compass consistant with lucidity.

3. To provide the best aid for the detailed study by means of Bibliographies and References.

4. To get the articles from the standard writers of great repute.

ज्ञानकोश

अथेन्स की ...... रमारा।

5. To deal elaborately with and throw sufficient light on ancient Indian Civilisation, Religion and Philosophy.

6. To present all the opinions and facts with an unbiassed mind and to deal with all the controvertial topics from a purely critical and Historical, rather than a dogmatic point of view.

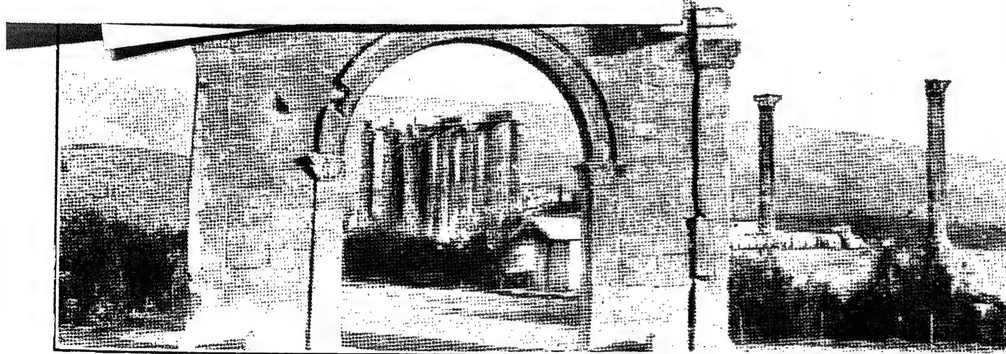
7. To illustrate fully the topics by maps and photos.

8. To promote the cause of Hindi through-out the country and to create a general interest in Art, Literature, Science, Ethics and Religion, and thus to enlist stong support for its purposes in the Hindi World,

9. Recording, as it does, the most minute history of the present age and generation in every sphere of knowledge, and thus keeping in its way irreplaceable value as the contemporary chronical of one generation; it is to provide a standard of measurement by which a later generation may take advantage of their predecessor's experience and knowledge, and most easily

ों
ि
,
र,
था
नक
किये
; पर

ज्ञा-
त्र पड़
द्धानों



सुलेमानी प्रेस, बनारस।

reckon the degree of its own further progress.

It is more than evident that no amount of individual labour and sacrifice can ever bring this massive and intricate undertaking to a successful close. For its complete success support, sympathy, co-operation and attention of the whole society are inevitable, which are expected from every corner of the country.

BHARGAVA BROS. Sulemani Press, GAIGHAT, BENARES.	**B. N. Prasad Bhargava,** B. A. *Convener.*

RULES FOR SUBSCRIBERS.

1st Class:—Subscribers of this class should advance Rs. 115/- only & they would be entitled to the complete set. Each volume would be sent to them as soon as it is out.

2nd Class:—Subscribers of this class should get their names registered as "Permanent Subscribers" by sending an entry fee of Rs. 7|- in advance. They would be entitled fo get each volume at Rs, 4|- after every publication.

ज्ञानकोश

अथेन्स की प्राचीन कला का उत्कृष्ट प्रमाण।



हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा ग्रन्थ

ज्ञानकोश।

अर्थात्

अखिल विश्वकी कला, विज्ञान तथा साहित्यका वृहद्भण्डार; पृष्ठ-संख्या लगभग १२००० (२५ भाग), चित्र-संख्या २०००.

देशकी समस्त भाषाओंमें इस असाधारण ग्रंथका प्रथम स्थान होगा। इसमें अखिल विश्वके सभी विषय विस्तृत रूपसे दिये गये हैं। प्रत्येक देश, जाति, साहित्य, कला, धर्म का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास पूर्ण ब्यौरेके साथ दिया हुआ हैं। संसारके सभी महा-पुरुषों के जीवन-चरित्र अङ्कित हैं। वेद, दर्शन धर्म, चिकित्सा, अर्थ, रसायन, समाज, गणित, ज्योतिष, भौतिक, शासन, मानव, कला, स्थापत्य, कृषि इत्यादि सम्पूर्ण विद्या तथा शास्त्रोंके अनेक गूढ़ विषयों पर प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही दृष्टिसे धुरन्धर विद्वानों द्वारा लेख संग्रह किये गये हैं। भारतीय प्राचीन सभ्यता, कला तथा संस्कृति पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इस वृहद् प्रयासकी पूर्ण सफलता तथा सुचारु सञ्चालन के लिये एक 'सम्पादकीय मंडल' की नींव पड़ चुकी है। इसमें इस समय तक देशके २३ धुरन्धर विद्वानों

र।



सुलेमानी प्रेस, बनारस।

का सहयोग प्राप्त हो चुका है। सम्पादकीय सञ्चालन तथा लेख इत्यादि का प्रबन्ध इसी मण्डलपर निर्धारित कर दिया गया है। इस मण्डलके बाहरसे भी देशके अनेक धुरन्धर विद्वानों द्वारा किसी भी भाषामें लेख प्राप्त करके अनुवादका प्रबन्ध किया गया है। देश तथा प्रान्तके ऐसे बड़े बड़े महानुभाव जो हिन्दीके विशेष प्रेमी होने पर भी समयाभावसे इस कार्यमें पूर्ण सहयोग नहीं कर सकते, किन्तु जिनके सामयिक उपदेश तथा सहानुभूति हमें पूर्णरूपसे प्राप्त हैं उनके द्वारा एक 'संरक्षक-मंडल' की योजना हो चुकी है।

इसकी विशेषतायें

(१) भारतीय जनताके सम्मुख अखिल विश्वके विविध-विषयक-ज्ञान प्राप्त करनेका एक मात्र तथा सर्वोत्कृष्ट साधन प्रस्तुत करना।

(२) गूढ़ तथा गहन लेखोंको परिमित विस्तारसे लिखने पर भी उनकी स्पष्टता तथा सरलता पर पूर्ण रूप से ध्यान रखना।

(३) प्रत्येक विषयपर विशेष ज्ञान प्राप्त करनेकेलिये लेखोंके अन्तमें सर्वमान्य सन्दर्भ ग्रंथोंकी सूची देना।

(४) अपने विषयके सर्वमान्य तथा सर्वोत्तम लेखकोंसे लेख प्राप्त करना।

(५) वैदिक तथा प्राचीन भारतीय कला, संस्कृति तथा सभ्यता पर विशेष रूप से प्रकाश डालना।

(६) लेखसम्बन्धी अनेक चित्र तथा नकशों द्वारा विषयों को अधिक सुगम तथा स्पष्ट बनाना।

अथेन्स की प्राचीन कला का उत्कृष्ट प्रमाण।



र।

(३)

इसके उद्देश्य।

(१) भारतीय जनतामें हिन्दीकी सच्ची लगन अङ्कुरित करके उनमें विद्या तथा ज्ञानकी पिपासाको उत्तेजित करना, और फिर इसी **ज्ञानकोश** की अनन्त **ज्ञान-धाराओं** द्वारा शान्त करना।

(२) विवाद-ग्रस्त विषयोंपर असीम **उदार**, सत्यपूर्ण तथा **निष्पक्ष लेखों** द्वारा समाजमें सच्ची स्थिति का ज्ञान उत्पन्न करके सङ्कुचित भावों का विनाश करना तथा परस्पर सहानुभौतिक प्रेम और रागात्मक सम्बन्धकी नींव डालना।

(३) भविष्यकेलिये आधुनिक कालकी सच्ची स्थिति जानने का अनुपम साधन छोड़ जाना—जिससे **आनेवाले युगवालों** को इहकालिक तथा तत्कालीन सभ्यताविकासकी तुलनामें तो सहायता मिलेगी ही, वरन्. वे इन अथाह-सञ्चित अनुभवोंसे लाभ उठाकर उन्नतिपथपर अधिक सुगमतासे अग्रसर हो सकेंगे।

यद्यपि सम्पादक तथा लेखकमण्डलकी योग्यता तथा परिश्रमका विचार करते हुए इस कार्यके लिये हमारा निर्धारित शुल्क अभी तक बहुत कम है, और सच तो यह है कि हमारे मण्डलके सदस्योंका उद्देश्य इस प्रयास को धनोपार्जन करने का एक-मात्र साधन बनाना नहीं है, वरन् मुख्य ध्येय तो हिन्दीकी सेवा तथा इस पुण्य-कार्यमें अपने सहयोग द्वारा मुझे उत्साहित करते रहना ही है, तौ भी जिस विपुल व्यय की इस दुस्साध्य प्रयासमें आवश्यकता है वह पाठकोंसे छिपी

नहीं है। विद्यारूपी 'सरस्वती' के गौरव तथा महिमा की रक्षा के लिये तथा समुचित सहयोग, सहानुभूति तथा आदेश प्राप्त करनेके लिये संरक्षक-मंडलसे भी किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता नहीं ली गई है। अतः हिन्दी भाषा तथा साहित्यमें खटकने वाले इस अभावको दूर करने का जो भार हमने लिया है, उसे विचारते हुए तो, हमें सदा दृढ़ निश्चय है, कि देशके प्रत्येक कोने, वरन्, समूचे राष्ट्र के प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी से समुचित सहायता, सहयोग तथा सहानुभृति प्राप्त होती रहेगी।

भार्गव ब्रदर्स,
सुलेमानी प्रेस,
बनारस।

विश्वनाथ प्रसाद भार्गव,
बी. ए.
सञ्चालक

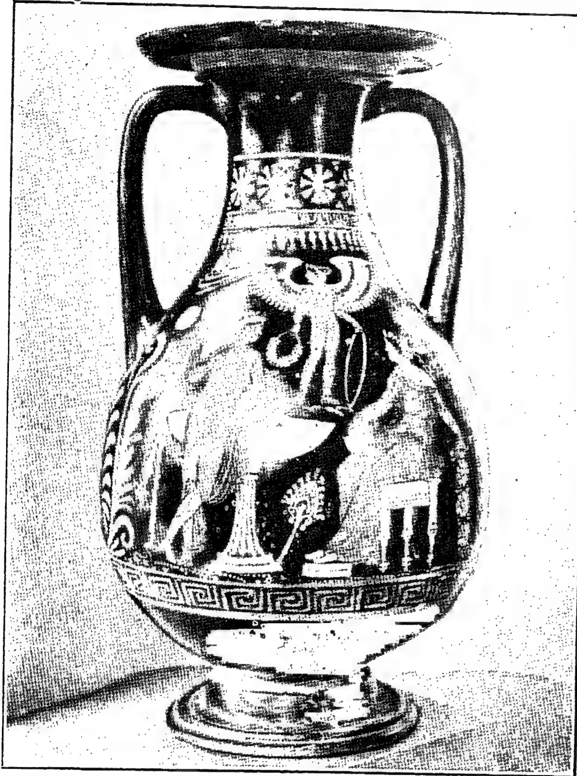
ग्राहकों के नियम

प्रथम श्रेणी—इस श्रेणी के ग्राहकों को मूल्य ११५) रुपया अग्रिम देना होगा। प्रत्येक भाग प्रकाशित होने पर उनकी सेवा में भेज दिया जायगा।

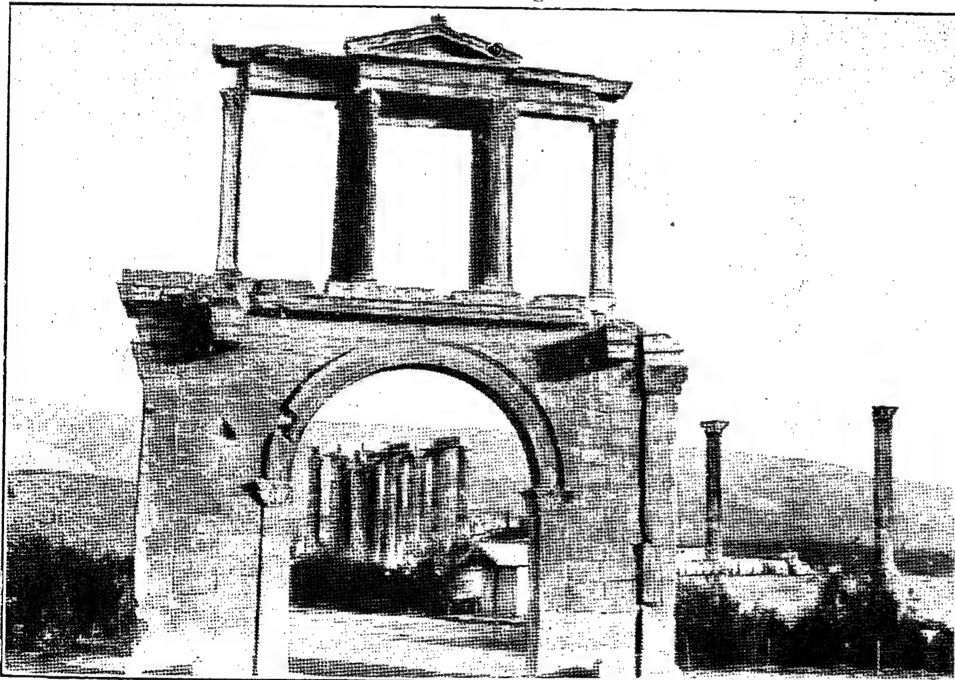
द्वितीय श्रेणी—इस श्रेणी के ग्राहकों को ७) रुपया प्रवेश शुल्क भेज कर ग्राहकों में नाम लिखा लेने पर प्रत्येक भाग ४) में दिया जावेगा।

नोट-डाक व्यय हर श्रेणी के ग्राहकों को स्वयं देना होगा।

अथेन्स की प्राचीन कला का उत्कृष्ट प्रमाण।



अथेन्स में ज़ुइस का प्रसिद्ध मन्दिर।



सुलेमानी प्रेस, बनारस।

सूत्रसे हैं. इस परिभाषानुसार सूत्रमें हर जगह सूक्तको उद्देश कर पूर्व शब्द आया है।

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कौशिक अथर्वकी प्राचीन प्रतिका सूत्र है तथा प्राचीन प्रति शौनकीय है और यह कौशिक वैतान तथा पतिशाख्य इन तीनों ही सूत्रोंकी संहिता है।

इन दोनों संहिताओंमें मुख्य साम्य यह है कि 'सम्बोधनके अन्तमें आनेवाला' ओं इत्यादि स्वरमें सन्धि नहीं की है।

यह बात स्पष्ट है कि कौशिक सूत्रवाली अथर्वण संहिताकी प्राचीन प्रति अस्तित्वमें अवश्य थी क्योंकि उसमेंके बहुतसे सूक्तोंका अवतरण प्रतीकोंमें किया है। इसके अनुसार जो यज्ञ याग आदि करे उसको संहिता पाठ आना आवश्यक है १९ वें कांडका आगे विचार किया गया है। उसे छोड़ देनेपर बाकीके वेदोंके सूत्रोंमें शुरूसे अन्त तक दी हुई ऋचायें बहुत ही थोड़ी हैं, कौशिक ६. १७ अथर्व ६. ८५. २; कौ० १०६. ७; ७५,1 अथर्व १४. १, १३ अथर्व ७, ४८, २; कौ० ६७. ६ में अथर्व ८. २. ६; कौ० इत्यादि है। अन्त के उदाहरणके अतिरिक्त पहले तीन उदाहरणोंमें मन्त्र संहितासे जान बूझकर लिया नहीं है, यह केवल आकस्मिक है कि शुरूसे अन्त तक मन्त्र अथर्ववेदकी ऋचाओंसे कुछ मिलते हैं। इस प्रकारकी स्थिति विभिन्न शाखाओंके मन्त्रोंकी तुलना करते समय हमेशा उत्पन्न होती है। कौशिक सूत्रमें १५ तथा २० वें कांड सदाके लिये निकाल दिये गये हैं उसमेंका १५ वाँ कांड तो अव्यवहार्य तथा रूपकमय स्वरूपके लिये व्रात्यग्रंथ होनेके कारण निकाला होगा; और बीसवाँ इन सूत्रोंमें रचे जानेके बाद संहितामें मिलाया गया होगा, अथवा उसका श्रौतसे स्पष्टरूपसे सम्बन्ध होनेके कारण वह निकाल दिया गया होगा। दूसरी कल्पना ही अधिक सम्भवनीय मालूम पड़ती है छोमयज्ञके सूत्रोंके लिये तथा स्तोत्रोंके लिये कुछ अपवाद छोड़कर वैतान सूत्रमें २० वें कांड का उपयोग किया है।

इस सूत्रसे १९वें कांडका जो संबंध है वह विशेष ध्यानदेने योग्य है। इसके बहुतही थोड़े मन्त्रोंका अवतरण प्रतीकोंने किया है। जैसे कौ० ६. ३७; ४५. १७; और ६८. २९.में १९। ५२. १; कौ० ६.३७ में १९.५९. १; कौ० ६६, में १९।६०. १ कौ ५७। ८६ में १९। ६४, १ कौ० १३९, १० में १९। ६८, १, बाकीके उन्नीसवें काण्डके अवतरण सकल पाठ के सूत्रोंमें दिये हुए मन्त्र हैं। इसलिये ये शौनकीय संहितामें के लिये हुए नहीं हैं। कौ० ६ ३७. में दारिलाने एक छोटे से प्रतीकके लिये (१९, ५९) सीरसूक्तों का सकल पाठ दिया है। यह एक अद्भुत बात है। ऊपर दिखाया गया है कि कौशिक के अथर्व सूत्रके नामसे संबोधित किये हुए भागमें १९ वें काण्ड को एक भी अवतरण प्रतीक में भी नहीं दिया है। इस शाखा की तैय्यार की हुई तथा मानी संहिता और स्पष्ट रूपसे अन्य स्थानसे आये हुए मन्त्र समूह के बीच का स्थान कौशिक सूत्रमें १९ वें काण्ड का होगा। रॉथके मतानुसार पिप्पलाद शाखा भरमें इस प्रकार १९ वें काण्ड का विषय फैला हुआ है यह माना जा सकता है कि इस काण्डका विषय अथर्ववेदकी सब शाखाओंके सम्प्रदायोंको मालूम था और वेद पहले संस्करणके समय निकाल दिया गया था परन्तु बादमें उचित मालूम पड़नेपर मूलवेदमें मिला लिया गया होगा।

कौशिक सूत्रके विचार संशययुक्त दिखाई देते हैं। उसकी शाखाके कुछ मन्त्र इतने परिचित हैं कि उनका निदर्शन केवल प्रतीकसे ही करनेपर काम चल जाता है, और कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनके बारेमें शुरूसे अंत तक देना पड़ता है। बादके अथर्व साहित्यमें इन मन्त्रोंका परिचय दृढ़ मालूम पड़ता है।

परिशिष्टमें १९ वाँ काँड बाकी के अथर्ववेद के समान नहीं माना गया है और उसीके अवतरण विशेषतः बार बार आते हैं, उदाहरणार्थ १९-७-नक्षत्र कल्प १० में लिया है, १९-९ नक्षत्र २६ तथा अथर्व परिशिष्टमें ४, ४, ६, २ में लिया है। इत्यादि अथर्व—परिशिष्ट ३४ की गणमालामें १९ वें काँडके बहुतसे मन्त्र अवतरण करके लिये हैं।

हिले ब्रँटने एक ऐसा प्रश्न उपस्थित किया है कि क्या इन सूत्रोंके पूर्ण निरीक्षणसे ऐसा कहा जा सकता है कि एक बार मंत्र अथवा सूत्र जिस स्वरूपमें संहितामें आये हैं उससे वे कभी भी भिन्न स्वरूपमें होंगे? इस प्रश्न पर भी विचार करना चाहिये। सामान्यतः ऋचाओंके शब्द तथा सूक्तों की ऋचाओं की संख्या अन्य अन्य क्रमकी दृष्टि से सूक्तोंमें आये हुए मंत्र तथा सूक्त संहिताके अनुसार है, पर इसके संबन्धमें आगे दिया हुआ प्रमाण भी ध्यानमें रखने योग्य है। जब कोई अथर्व सूक्त, स्पष्टरूपसे अनेकावयव घटित रूपका होता है अर्थात् संहिताकारोंने जब संहिता बनानेके समय बहुतसे सूक्तों को मिला करएक सूक्त बनाया हो तब सूक्तकारोंने ऐसे सूक्तोंके प्रत्येक अवयव ध्यानमें रखकर उसका योग्य स्थानमें

पयोग किया है। अथर्व ४, ३८ सूक्त स्पष्टरूपसे हुतसे छोटे छोटे सूक्तों का बना है। गिल द्वारा स सूक्तके ५-७ ऋचाकी जो टीका की गई उसको कौशिक सूत्रसे पुष्टि मिलती है और इस क्तके अंतस्थ प्रमाणसे यही बात सिद्ध होती है। चा १—४ में द्यूत विषयक अभिचार मंत्र है ौर कौशिकसूत्र ४१, १३ में अथर्व ७, ५०; तथा , १०६ के इसी प्रकार के दूसरे मन्त्रोंके साथ सका विचार किया है। ऋचा ५—७ कौ० २१, १ में एक जानवरके सम्बन्धमें अभिचार मन्त्र केए गए हैं। ये अन्त की ऋचायें पहली ऋचाओं ी अपेक्षा इतनी भिन्न मानी गयी हैं कि नको भिन्न परिभाषिक नाम "कर्कीप्रवादाः" या है। उसी प्रकार सूक्तकारोंके ध्यानमें यह बात ाई है कि सूक्त ७, ७४ बहुतसे विभिन्न सूक्तोंका ना है, कौशिक ३२, ८ में पहली दो ऋचामें प्रपचित' नामके घावों को मिटाने वाले तंत्रोंमें लाई हैं। तीसरी ऋचा कौ० ३६. २५ को मत्सर र करने वाला मन्त्र मानकर उचित स्थान दिया या है और चौथी ऋचा कौ० १—३४ को भी सके अनुकूल ही स्थान दिया है। अथर्ववेद संस्करणकारोंमें इसप्रकार की विभिन्न स्वरूप की चायें उपयुक्त स्थानमें एकत्र करनेमें किस बात ी न्यूनता थी अर्थात् ठीक ठीक स्थान न देने का ारण पूर्णरूपसे अर्थज्ञान न होना था अथवा कोई सरा ही कारण था, इसका निश्चिय करना कठिन । इसी प्रकार अथर्वसूक्त ७,७६ के कौशिक तथा ान दोनों ही सूत्रोंके तीन तीन भाग किये । निस्सन्देह उपरोक्त सम्पूर्ण उदाहरणोंमें हेता की परम्परा की अपेक्षा विधि तथा आचार परम्परा श्रेष्ठ मानी गई है।

[अथर्ववेदके सम्बन्धके आधार ग्रंथ तथा वाङ्मय जग ग्रंथके अन्तमें दिया है।

ऍथेन्स—यह यूनान (Greece) की धुनिक राजधानी है। यह नगर आटिका Attica) के मैदानके दक्षिणी किनारे पर बसा ा है। यह प्राचीन सभ्यताका केन्द्र माना ता है और इसके प्राचीन तथा आधुनिक हास पर इसकी भौगोलिक स्थितिका बहुत छ प्रभाव पड़ता रहा है। यहाँकी आबहवा म होनेके कारण यह नगर सदा सम्पन्न रहा इस नगरकी रचना ऐसी है कि न तो खुश्की से कोई शत्रु इसपर एकाएक आक्रमण कर कता था और समुद्रसे भी कुछ दूर होनेके रण न उस ओरसे ही किसी आकस्मिक भय की सम्भावना थी। यहाँकी आबहवा समशीतोष्ण है, किन्तु बहुत शीघ्र ही परिवर्तन-शील भी है। उत्तरीय वायुके कारण तथा समुद्रतटसे निकट होनेके कारण यहाँ कभी तेज गरमी नहीं पड़ती। इतिहासकारोंका मत है कि यहाँकी स्वच्छ तथा उत्तम आबहवा (मौसिम) के कारण ही यहाँके लोग उत्साही तथा बुद्धिमान होते रहे हैं।

ऍथेन्समें अगोरा नामक प्रसिद्ध व्यापारकी मण्डी थी। यह अपने व्यापार तथा भव्य इमारतोंके लिये दूर दूर विख्यात था।

यहाँकी ऍकेडमी भी महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध विद्वान् प्लेटो (अफलातूँ) तथा अरिस्टाटल (अरस्तु) इसमें अपनी शिक्षाका प्रचार किया करते थे। प्रयत्न करके यहाँ दो गुफाओंका भी पता लगाया गया है जो अपोलो तथा निसर्ग देवताका निवासस्थान था। ऑलम्पीयनका मन्दिर ऍथेन्सके संसार प्रसिद्ध स्थानामें रहा है।

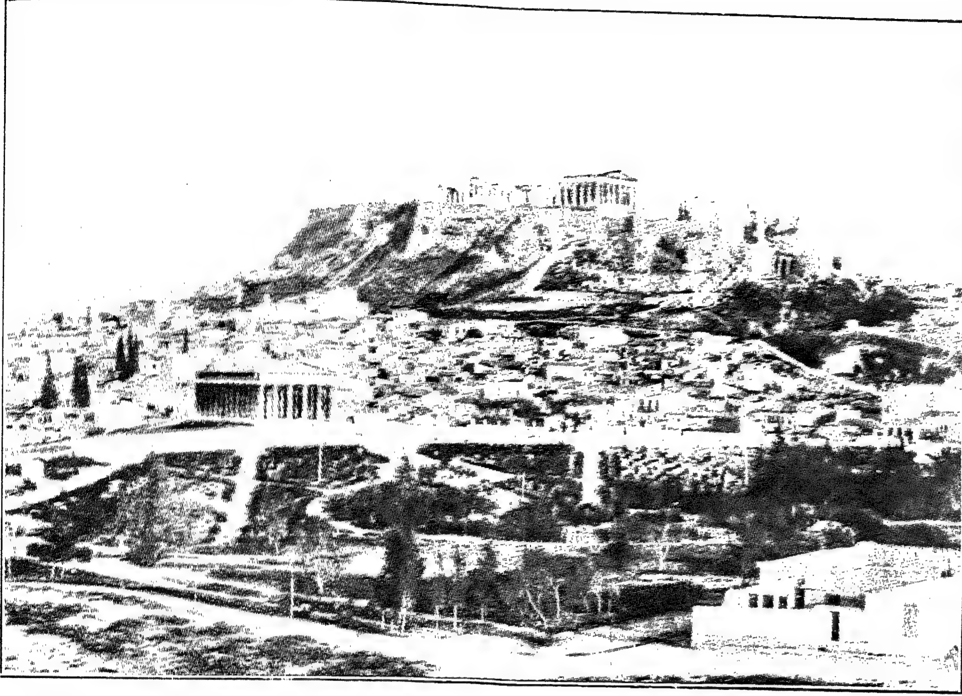
ऍथेन्सकी जनसंख्या इधर सौ वर्षों से उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। यहाँकी जनसंख्या १८३४ ई० में लगभग ५०००, १८७० ई० में ४४५१०, सन् १८७६ में ६३३७४, १८८६ में १०७२५१ और १८६६ ई० में १११४८६ थी। आजकल यहाँकी आबादी ३००७०१ के लगभग है। १६१२ ई० में यहाँ दो विश्वविद्यालय स्थापित किये गये।

इधर यहाँके व्यापारकी दशा फिर बहुत कुछ सुधर गई है। पिरियसमें कपड़ेकी आठ मिलें १५ भापसे चलनेवाली आटेकी कलें और अनेक साबुनके कारखाने हैं। जहाज़ बनानेका काम यहाँ बड़े भारी पैमानेमें होता है।

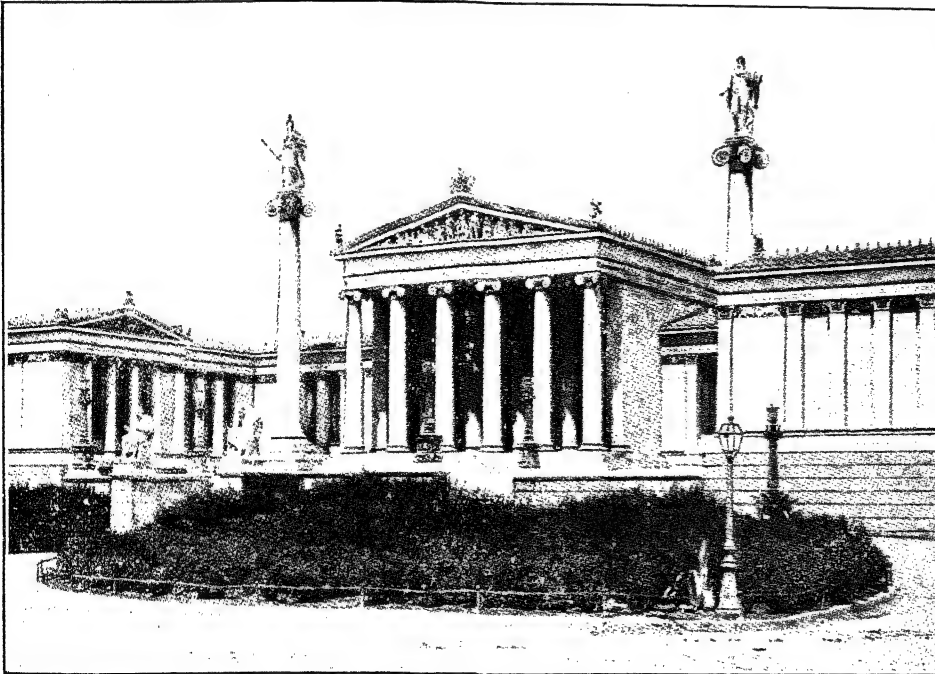
इतिहास—प्राचीन ऍथेन्सके प्रारम्भिक इतिहासके सम्बन्धमें पूर्णरूपसे विश्वासनीय ज्ञान उपलब्ध नहीं है। अनेक दन्त कथाओं तथा परम्परागत ज्ञानसे कहा जा सकता है कि 'अयोनियन' लोगोंने अथेन्समें आकर भिन्न भिन्न जातियोंका संघटन करके राजसत्ताकी स्थापनाकी थी। किन्तु इस राजतन्त्रका शीघ्रही अन्त होगया और प्रजातन्त्रका अस्तित्व देख पड़ने लगा। किन्तु पेसिस्ट्रेटसके नेतृत्वमें एक बार फिर एकतन्त्र राज्यपद्धति चमक उठी। किन्तु क्लिस्थनीज़ने शीघ्र ही इसको जड़से उखाड़ कर फेंकनेका बीड़ा उठाया, और अपने बुद्धिकौशलसे इसको समूल नाश करके प्रजातन्त्रात्मक राज्यकी नींव फिरसे डाली।

स्वतन्त्र तथा उत्साहपूर्ण वायुमण्डलमें बढ़ते

अथेन्स नगर का प्राचीन दृश्य।



अथेन्स का प्राचीन विद्या केन्द्र।



सुलेमानी प्रेस, बनारस।

हुए इस छोटेसे राज्यने ४५० ई० पू० में ईरान पर विजय पताका फहरा दिया। इस विजयका श्रेय प्रसिद्ध-राजनीतिज्ञ थेमिस्टोक्लीज़को ही अधिक है। ईरान पर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् अरिस्टिडीज़ तथा सायमन नामके प्रसिद्ध नेताओंके नेतृत्वमें अथेन्स उन्नतिके पथपर अग्रसर होता रहा। अपने पराक्रम, सुव्यवस्था तथा कर्तव्य-परायणताके कारण ॲथेंस डेलियन संघका अध्यक्ष बन बैठा और यह एक सम्राज्य माना जाने लगा। सायमनके बाद पेरीक्लीज़ नामक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ होगया है। इसने खुल्लमखुल्ला ॲथेन्सके साम्राज्यत्वका प्रसार करना आरम्भ कर दिया था।

ई० पू० ४४३-४२६ तकका समय ॲथेन्सके इतिहासमें सर्वोत्तम कहा जा सकता है। उस समय यह अपने पूर्ण वैभव तथा उन्नति पर था उस समय इसका व्यापार भी मिश्र तथा कोलचिज़से लेकर इट्रिया तथा कार्थेज तक फैला हुआ था। साहित्य तथा संस्कृतिके विषयमें तो उसके टक्करका कोई भी न था। यदि स्पार्टा अपने कठोर नियमोंके लिये प्रसिद्ध था तो ॲथेन्स अपने सौन्दर्य पूजामें अद्वितीय था। अथेन्स सदा ही ज्ञान तथा विद्या का भण्डार समझा जाता रहा है। कलाकौशलमें भी इसके सामने सभी देशोंको सिर झुकाना पड़ता था। इतना होनेपर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इसके वैभवपूर्ण उज्वल चित्र पर चन्द्रमाकी नाईं कहीं भी कालिमाका धब्बा नहीं था। सर्वगुण सपन्न पेरिक्लीज़के पश्चात् ॲथेन्समें जो मन्त्रिमण्डल हुआ वह स्वार्थ तथा भोगविलासके ऐसे भयङ्कर गड्ढेमें जा गिरा था कि सम्राज्य-प्रसारकी नीति ढीली पड़ने लगी और पोलोपोनीशियन युद्धमें अथेन्सका धीरे धीरे ह्रास होकर अध पतन होने लगा। उसके अतीत वैभवका अन्त होगया और अन्तमें मेसीडोनके राजा फिलिपका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। मेसीडोनका भी सिकन्दरकी मृत्युके बाद धीरे धीरे ह्रास हो रहा था और ई० पू० २२६ में उसके हाथसे निकल कर एक बार फिर यह स्वाधीन हुआ। इस बार यद्यपि यह अपने पूर्व वैभवको प्राप्त न कर सका था तो भी सम्पूर्ण योरपमें अपने प्रजातन्त्रात्मक राज्यपद्धतिके लिये प्रसिद्ध था।

यद्यपि ॲथेन्सका अगला इतिहास बिलकुल परतन्त्र नहीं कह सकते तो भी रोमन साम्राज्य के बहुत कुछ अन्तर्गत अवश्य था। २२८ ई० पू० में ॲथेन्सने रोमनसे मित्रता स्थापित कर ली थी। रोमन बादशाहोंकी वक्रदृष्टि ॲथेन्सके राज्य पर सदा ही लगी रहती थी। अब ॲथेन्सका राज्य युद्ध तथा राजनैतिक काट छाटोंके लिये प्रसिद्ध न होकर केवल विद्या,ज्ञान तथा लालित्यकलाके लिये ही विख्यात रह गया था। परन्तु यह वैभव भी ॲथेन्स बहुत दिनों तक न भोग सका। जस्टीनियनके नियमसे तत्त्वज्ञानका अभ्यास रोक दिया गया और अब प्राचीन ॲथेन्सका अन्त होगया।

इसके आगेका इतिहास निम्नलिखित तीन भागोंमें किया जा सकता है—(१) विज़ान्शियम का शासनकाल, (२) रोमका शासनकाल तथा (३) तुर्की शासनकाल। १४५८ ई० में यह तुर्कोंके हाथमें आगया था। १८२१ ई० में इसने एक बार फिर स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न किया था। तुर्कोंका १८३३ ई० तक अक्रोपोलिस पर अधिकार रहा। तदनन्तर आधुनिक यूनानकी यह राजधानी नियत हुई। आधुनिक ऐतिहासिक घटनायें यूनान (Greece) के लेखके अन्तर्गत दिया हुआ है क्योंकि इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण यूनान देशसे है।

अथोर—बड़ोदा राज्यके सिद्धपुर नामक एक उपभागमें लगभग ढ़ाई हजार जन संख्या का यह एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पर गणेशजी का एक प्रसिद्ध मन्दिर तथा एक धर्मशाला है।

अदन—यह अरेबिया के यमन (Yemen) का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह तथा नगर है। यह उत्तर अ० १२ ४६ तथा पू० रे० ४५ १० पर स्थित है। यह बाबलमण्डपसे १०० मील पूर्वमें लाल समुद्र (Red Sea) के दक्षिणीय मुहाने पर बसा हुआ है और अंग्रेजोंके आधीन है।

यहाँ की आबहवा को स्वास्थ्यकर ही कह सकते हैं। पानी का बहुत कुछ प्रबन्ध करने पर भी उत्तम जल की बहुत कमी है। कभी कभी बड़ी भीषण गर्मी पड़ती है।

अपने स्थानीय महत्वके कारण अदन योरप तथा एशियाके व्यापार का मुख्य केन्द्र बना हुआ है। यहाँ कोयले की बड़ी बड़ी खानें है और योरप जाने तथा आने वाला प्रत्येक जहाज़ यहाँ कोयला लेने के लिये अवश्य लङ्गर डालता है। यह नगर व्यापारके लिये भी बड़ा प्रसिद्ध है। अरेबिया की मुख्य पैदावार यहाँ ही से बाहर भेजी जाती हैं। काफी, गोंद, पर, रङ्ग, मोती तथा हाथी दांतका काम यहाँसे बाहर भेजा जाता है और रेशमा तथा सूती कपड़े तथा खाद्य पदार्थ बाहरसे यहाँ आते हैं। अंग्रेजोंने यहाँ क़िलाबन्दी कर रक्खी है और सैनिक छावनी स्थापित की है। यहाँ का विशाल तथा रमणीक ताल दर्शनीय है। अंग्रेज़ी

राज्यमें यह नगर भी बड़ा उत्तम तथा दर्शनीय होगया है। यहाँकी जनसंख्या भी उत्तरोत्तर वढ़ती जारही है। स० १८३६ ई० में केवल ४००० के लगभग थी, किन्तु अब ५४६२३ के लगभग है।

यहाँ का प्रारम्भिक इतिहास विशेष उल्लेखनीय नहीं है। सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें यह नगर पुर्तगीज़के हाथ आया। किन्तु १७३० ई० से यह नगर स्वतन्त्र होगया और लहेज़के शेखवंशीय स्वतन्त्र सुलतान होने लगे। १८३७ ई० में एक अंग्रेज़ी जहाज़ अदनके समीप टूट कर तहस नहस होगया। इसमेंके मुसाफ़िरोंके साथ अरब वालोंने बड़ी क्रूरता का परिचय दिया तथा सब समान लूट लिया। बम्बई सरकारने अदन वालों से इस धृष्टता का उत्तर चाहा और अन्तमें यह निश्चित हुआ कि अंग्रेजों को इसका हरजाना दिया जावेगा और वह बन्दरगाह भी अंग्रेजोंके हाथ वेच दिया जावेगा। किन्तु शीघ्र ही सुल्तान के पुत्रने यह सन्धीपत्र तोड़ डाला। अन्तमें १६ जनवरी १८३६ ई० में बम्बई सरकार को सेना भेजकर यह जीतना ही पड़ा। पहले यह बम्बई प्रान्तके ही आधीन था। किन्तु अब भारत सरकार (Central Government) के आधीन होगया है। यहाँके सैनिक तथा शासन प्रबन्धके लिये भारत सरकारको बहुत व्यय करना पड़ता है और यह प्रश्न असेम्बली (Assembly) में भी कई बार उठ चुका है।

अदरक—देखिये आर्द्रक

अदवनी ताल्लुका— मद्रासके बेलारी ज़िले के उत्तर की ओर का यह एक ताल्लुका है। पहले यह निज़ामके राज्यके अन्तर्गत था। यह उत्तर अ० १५°३०' तथा १५°४८ और पू० दे० ७६°५६ से ७७°३८ के बीचमें स्थित है। इसका क्षेत्रफल ८३६ वर्गमील है। जनसंख्या लगभग १ लाख ८० हजार है। इसमें तीन नगर तथा १६१ छोटे छोटे गाँव है।

इसका मुख्य स्थान अदवानी शहर है उसकी आधुनिक जनसंख्या लगभग २६५०० है। दूसरा नगर योमिगनूर है। वहाँ की जनसंख्या १४००० है। कोसिज की ८००० है। यह प्रदेश बिल्कुल चौरस है और मट्टी यहाँ की काली है। अतः कपास को उपज यहाँ मुख्य है। कहीं कहीं पर टीले देख पड़ते हैं। यहाँ की मुख्य पैदावार कपास के अतिरिक्त चोलम तथा कोरा (Cholam & Korra) है। कर यहाँ १४ आने प्रति एकड़ लगता है। सारी फसलें बरसातके पानी पर ही निर्भर रहती है। जिस साल वर्षा अच्छी नहीं होती उस साल बड़ा कष्ट होता है। १८७६-१८७८ ई० के भयंकर अकालमें तिहाई मनुष्य कालके मुँह में पड़ गये।

अदवनी शहर—इसी नामके ताल्लुकेका मुख्य स्थान। उत्तर अक्षांश १५°३८ तथा पूर्व दे० ७७°१७ में यह स्थित है। मद्राससे यह ३०७ मील की दूरी पर है। जिले भरमें मल्लारीके बाद यही सबसे बड़ा शहर है। जनसंख्या (१६२१ ई०) ३०२३२ थी, आधुनिक आबादी २६५०० है। उनमें से ६० प्रतिशत हिन्दू थे। और ३७ प्रतिशत मुसलमान हैं। ईसाई बहुत थोड़े हैं। अदवनी इस प्रांतमें कपासके व्यापारका मुख्य केन्द्र है। यहाँ कपासके गट्ठे बाँधनेके तथा बिनौला अलग करनेके अनेक कारखाने हैं। इन कारखानोंमें कपासके मौसिममें ७०० मनुष्योंके लगभग काम करते हैं, यहाँका मुख्य धन्धा सूती तथा रेशमी कपड़ोंको बुननेका है यहाँकी दरियाँ मज़बूत और पक्के रंगकी होनेके कारण प्रसिद्ध हैं। इस शहरमें १८६७ ई० में म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई। १६०३-४ ई० में यहाँपर ५६५००) आमदनी तथा ५००००) खर्च था। पानीके लिये एक तालाब बना हुआ है जिसमें ४५०००० घन फुट पानी आजाता है और उससे सिचाँईमें बड़ी सहायता मिलती है।

इतिहास—यहाँका क़िला गिरि शिखर पर निर्मित है। यह किला अपनी दृढ़ताके लिये प्रसिद्ध है। कृष्णा तथा तुंगभद्राके बीचकी उपजाऊ भूमिका यह मुख्य स्थान होनेके कारण दक्षिण हिन्दोस्तानमें होनेवाली लड़ाइयोंमें इस क़िलेसे बड़ी सहायता मिलती थी। चौदहवीं शताब्दीमें विजयनगरके राजाके आधीन यह गढ़ था। इसे लोग अभेद्य समझते थे। १५६८ ई० तक अँग्रेज़ोंके अधिकारमें आनेके पहिले वह मुसलमानों के हाथमें रहा। १६०४ ई० से १६३१ ई० तक यहाँ बीजापूरका सरदार मलिक रहमानखाँ किलेदार था। १६८६ ई० में जब औरङ्गज़ेब दक्षिण जीतने के लिये आया तो उसने यह क़िला जीत लिया। १७५४ ई० के लगभग मुसाबुसी द्वारा फ्रांससियों को इस क़िले पर अधिकार मिला होगा। क्यों कि मुसाबुसीकी इच्छानुसार शहबाजखाँने ख़्वाजा नयादुल्लाको अदवनीके मामलेका निपटारा करनेके लिये नियुक्त किया था। (पत्र ताः ५-१-१७५४ रा० ख० १०२२५६)। १७५६ ई० में निज़ामने अपने सम्बन्धी बसालतजङ्गको यह

जागीर स्वरूप दे डाला। १७६० ई०में जब सदाशिव राव भाऊने निज़ाम पर चढ़ाईकी थी तो बसालतजङ्ग निज़ामकी सहायताके लिये गया था (बाबूराव बुन्देलाका गोविन्दपन्तको भेजा हुआ पत्र २० मार्च १७६० ई० रा० सं० १६६-२७२)। १७७४ ई०में पेशवाओं तथा निजामका संग्राम आरम्भ होते ही ही बसालतजङ्गका लड़का नवाबकी सहायताके लिये युद्ध क्षेत्रमें आ डटा। राजा साहबको इस बातका पता लगते ही वह भी आ धमके (चैत्रव ॥६ शके १५६५ का पत्र रा० ख० १०,११८,७५) इस पत्रमें बसालतजङ्गको निज़ामका दामाद बताया है। इ० गॅ० १६०८ में भाई कहा है।

इ० गॅ० में लिखा हुआ है कि अदवनी क़िला जिस समय बसालतजंगके आधीन था। हैदरने उसपर तीन बार चढ़ाईकी परन्तु वह निष्फल रहा। इस चढ़ाईका कारण क्या था तथा मराठों को ही इस चढ़ाईके निष्फल करनेका श्रेय क्यों दिया जाता है, इस विषयमें यों कह सकते हैं कि १७७६ ई० के लगभग अँग्रेजोंके विरुद्ध मराठे, निज़ाम तथा हैदरका संघ तय्यार हुआ। उस संघमें निजामके मिलनेका कारण केवल अदवनी सम्बन्धी कुछ झगड़ा ही था।

१७७८ ई० में जब फ्रान्सीसियोंसे युद्ध होनेकी संभावना होने लगी तब अँग्रेजोंने अर्काटके मुहम्मदअली द्वारा अदवनीके नवाब बसालतजङ्गसे सन्धि कर डाली और निज़ामसे पूछा तक नहीं। इस सन्धिके अनुसार नवाबने कुछ भाग अपने देशका अँग्रेजोंको किराये पर देदिया और फ्रांसीसी फौज़को निकालनेका वादा भी कर लिया। इस सबके बदले अँग्रेजोंने अदवनीके क़िलेको हैदरसे बचाते रहनेका वचन दिया (हैदर तथा टीपू सुलतानका चरित्र एल० बी० बावरिङ्गऑक्सफोर्ड १८६३)। उस सन्धिके अनुसार शक स० १७०० (१७७६ ई०) में फ्रान्सीसी सरदार लाली बसालत जङ्गके यहाँ नौकर था। उसने नौकरी छोड़कर पेशवाके पास जानेकी इच्छा परशुराम पर दर्शित की किन्तु परशुराम भाऊने नौकर रखनेसे इन्कार कर दिया। तब वह निज़ामके पास चला गया (खरे० ए० एल० सं० पृ० ३४०१)।

उपरोक्त सन्धिमें निज़ामकी अवहेलनाकी जाने के कारण निज़ाम चिढ़ गया और उसने उपरोक्त षड्यन्त्रमें भाग लिया। अदवनीके रक्षणके लिये जाते समय अँग्रेजोंको हैदर अलीके प्रदेशमें होकर जाना पड़ता था। इस कारणसे हैदर तथा अंग्रेजों में युद्ध छिड़गया और हैदरने अदवनी पर्यन्त सम्पूर्ण प्रदेश अपने हस्तगत करलिया। यह देश था तो निज़ाम ही का किन्तु हैदर उसे जीत चुका था। इसकारण हैदर तथा निज़ाममें भी मनमुटाव होनेही को था कि नाना फरनवीस ने बीचमें पड़ कर स्थिति सुधार ली।

शक सं० १७०१-२ में पेशवा का वकील कृष्णजी नारायण जोशी वहाँ था और वह मरहठों की ओरसे निज़ाम, हैदर, तथा अदवनी वालेसे बात चीत कर रहा था। पत्रोंके निम्नलिखित अवतरण नाना फरनवीसके इस कर्मको स्पष्ट करेंगे।

नाना कृष्णाजी नारायण जोशी को मार्गशीर्ष शुक्ल ७। १७०१ के पत्रमें लिखते हैं कि रा०गोविन्द नारायणके पत्रसे विदित हुआ कि नवाब हैदर अलीखाँ अदवनी का घेरा उठाने वाले हैं। शीघ्र ही ऐसा काम किया जाय जिससे अदवनी का घेरा शीघ्रही उठालें। १५१८;१६१९रा०खं०१९,११,५

नवाबने वकील को उत्तरमें लिखा था कि वह अदवनीका घेरा शीघ्रही उठाकर अमिरुल उमराव से संधि कर लेंगे। परन्तु अभी तक खटपट खतम नहीं हुई। निज़ामअली खाँ को यह लिखने पर कि अदवनी का घेरा उठा लिया जायगा उन्होंने अदवनी को अधिकारमें करनेके लिये फौज़ भेजी। रास्तेमें उससे तथा बहादुर की ओर की सेनासे झगड़ा न हो, इसलिये मार्ग व० ६ शक सं० १७०१ को पत्र भेजा गया था।

(रा० खं० १९-१९-१०)

कृष्णराव नारायण जोशी का पत्र (पौषवदी ११-१७०१) उस अवसर पर संधिके संबन्धमें बोले कि राजा तथा निज़ाम अली खाँ बहादुरमें मित्रता है परन्तु हम उनसे सहमत नहीं हैं। उन्होंने अंग्रेज़ों की योजनामें आपसे बेइमानी की ....?

(रा० खं० १९-४९-३०)

कृष्णरावजोशीको भेजे हुए नाना फरनवीसके पत्रमें लिखा है कि निज़ाम अलीखाँ बहादुर लिखते हैं कि जबतक अदवनीका हंगामा बन्द नहीं होगा तबतक हम लिकाकोल की ओर नहीं जायेंगे।

(रा० खं० १९-५८-३९)

(माघ शु ॥३) के पत्रमें नानाफरनवीस लिखते हैं कि नवाब बसालतजंगके वकील भट्टण में हैं। विदितहो कि उनसे नवाब बहादुर पचास हजार होण (एक सिक्का) मांगते हैं। इसलिये जो बहादुरने नरसिंह रावको लिखा है कि राजा साहबको खुश करनेके लिये अदवनी का हंगामा

बन्द करके अमीर उमरावसे संधिही करते हैं, सो उसीके अनुसार करिये। पैसेके विषयमें कुछ न कहिये।

(रा. खं. १९-५९-४०)

कृष्णरावको भेजे हुए (ज्येष्ठ ब ॥१०-१७०२) के पत्रमें अदवनी हवेली थानोंके संबधमें उल्लेख है।

(रा. खं. १९-१६४-१०८)

भाद्रपद ब ॥२ शक सं० १७०२। रामचंद्र रिसबुडका नाना फरनवीसको भेजे हुए पत्रसे विदित होता है कि बसालत जंग अदवनीके समीप ठहरा है और सब ठीक है (रा. खं. १०.२५ १८३) यद्यपि शक संवत् १७०८ में मरहठोंने अदवनीकी रक्षाकी, तथापि वे शक सं. १७०८ (सन् १७८६ ई०) में वैसा न कर सके। उस समय टीपूने वह क़िला ले ही लिया। बालदेवशास्त्री उसके संबंधमें इस प्रकार लिखते हैं। (ऐ. ले सं. पृ०. ४०१३-५)

"बदामी पर कब्जा होनेके बाद हरिपंत ताँतिया मई महीनेके अन्तमें 'वहाँसे कूच करके गजेन्द्र गढ़की ओर गये। पैदल सिपाहियोंकी दो छोटी फ़ौजें उस किलेका मोर्चा लेनेके बाद टीपूके यहाँसे मददकेलिए आ रही थीं। किन्तु उन मरहठे सवारोंने उन्हें बीचहीमें रोक कर सबको खतम कर दिया। उसके बाद किलेदारोंने घोर पाड़ेके मार्फत बातचीत करना आरम्भ किया। आठ दिन तक वादा विवाद होनेके बाद किला स्वाधीन होनेही को था कि इतनेमें यकायक यह खबर आई कि टीपूने अदवनीको घेर लिया है। पाठकों को पहले बताई हुई यह बात यादही होगी कि अदवनी राज्य निज़ाम अलीके भाई बसालत जंग का था। बसालत जंग इस समय मर चुके थे और उनके पुत्र मुहब्बत जंग अपने बाल बच्चोंके साथ अदवनीमें थे। टीपूने उस किले पर घेरा डाल कर बहुत तंग किया। परन्तु मुहब्बत जंग जी तोड़ कर लड़ा और शत्रुओंके दो हमले रद्द किये। मुहब्बत जंगने अपने चचा याने निज़ाम अलीसे प्रार्थनाकी कि यदि वे मदद न करेंगे तो वह बाल बच्चों सहित शत्रुके हाथमें पड़ जायेगा; इसलिये यदि अपने कुलकी आबरू बचानी हो तो अथवा कमसे कम अपने घरकी स्त्रियाँ टीपूके हाथमें जानेसे बचानेके लिये तो सेना भेज कर सहायता करिये। निजाम अलीने तत्काल अपने छोटे भाई मुगल अलीके साथ पच्चीस हज़ार फ़ौज रवानाकी, और हरिपन्त ताँतियाको पत्र भेजा कि वह अपनी सेना तथा मोगल अलीके साथ शीघ्र ही अदवनीमें जाकर टीपूका घेरा हटावें। पत्र आतेही ताँतियाने गजेन्द्र गढ़ विजय करनेके लिये ⅓ सेना अपने पास रख कर करीब ⅔ सेना ६ जून को अदवनीकी तरफ रवानाकी। उस सेनाके मुख्य सरदार अप्पा बलवंतराव थे और उनके आधीन बाजीपन्त अप्पा, रघुनाथ नीलकण्ठ पटवर्धन तथा मुगल सेना सहित तहव्वर जंग सरदार नियुक्त किये गये थे। भागा नगरसे मुगल अली आये थे। उन्हें अप्पा बलवन्तने शामिल कर लिया और अदवनीको ओर तेजीसे रवाना हो गये। उनके वहाँ पहुँचतेही टीपू घेरा उठा कर तीन कोस पीछे हटा। तारीख २२ जूनको तीनों सरदार, अप्पा बलवन्त, बाजीपन्त तथा रघुनाथ राव पटवर्धन तैयार होकर टीपू पर चढ़ आये। टीपूने सेनाके आगे हजार बारह सौ सवार रक्खे थे। मरहठोंने उन्हें मार भगाया और उसके सौ डेढ़सौ घोड़े छीन लिये। इतनेमें टीपू सुलतान पैदल सिपाही तथा तोपोंको लेकर शिविरसे निकला और गोले बरसाने लगा। सूर्यास्त तक युद्ध होता रहा और अंतमें मरहठोंने टीपूका पीछा करते हुए शिवर तक हटा दिया। इतना युद्ध हुआ तो भी मुगलोंकी चालीस पचास हज़ार सेना शिविरमेंही बैठी युद्धका तमाशा देखती रही। मराठोंकी उसने तनिकभी सहायता नहीं की।

अप्पा बलवन्तके निकल जाने पर दो दिनके बाद गजेन्द्र गढ़ हरिपंत ताँतियाके हाथमें आ गया। फिर वे भी अदवनीकी ओर गई हुई सेनाका पीछा करनेके लिये वहाँसे निकल कर कवताल भानू तक गये। वे दिन अंतके थे तोभी ताँतिया विचारता था कि तुंगभद्राको उत्तरतट पर थोड़ी सेना रख कर दूसरी ओर जाँय और दूसरी ओर की सेनाके साथ टीपू पर चढ़ाई कर दें और उसके देशमें उधम मचा दें। उस साल इस प्रांतमें मृग नक्षत्रकी वर्षा नहीं हुई थी। यदि आगे एक दो नक्षत्र पानी न बरसता होता तो ताँतियाकी योजना सफल होती और शायद चार मास तक मुगल तथा मराठी सेनाओंकी छावनीभी उधरही हुई होती। परन्तु आर्द्रा नक्षत्रकी वर्षा जोरोंसे होनेके कारण ताँतियाका दूसरी ओर जानेका विचार एकही ओर रह गया और उसे इस बात की चिंता होने लगी कि जो दूसरी ओर अकेली फौज़ अदवनीकी सहायताके लिये भेजी गई थी, वह कहीं नदीमें बाढ़ आनेसे दूसरी ओरही न रह जाय। ऐसे झञ्झटके दिनोंमें टीपूने अदवनीको

शह देकर हरिपंत ताँतियाको एक प्रकारके उलझनमें ही डाल दिया और यह देखने लगा कि वे इस उलझनको किस प्रकार सुलझाते हैं, अकेली फौज लेकर यदि उस पार जायँ तो कुछ फौज इसी पार रहनेके कारण नदीमें बाढ़ आने पर काम करते न बनेगा और अंतमें अनाज तथा चारा पानी नहीं पहुँचेगा। यदि उस पार न जायँतो अदवनी शत्रुओंके सामने किस प्रकार ठहर सकता है। नरगुन्दका अनुभव ताँतियाको था ही। इन सब अड़चनोंका विचार करके उन्होंने अप्पा बलवन्त रावको लिखा कि आप मुहब्बत जंगको बाल बच्चों तथा सामानके साथ अदवनीसे निकाल कर नदीमें बाढ़ आनेके पहलेही शीघ्रही इस पारले आइये। अप्पा बलवन्त रावने इसके अनुसार किया। परन्तु अप्पा बलवन्त रावको लौटनेकी जल्दीमें यह जानते हुए भी कि थाने शत्रु लेनेहोको हैं, अदवनीकी तट बंदी तोड़ना, तोपोंको नष्ट करना, फसल नष्ट करना, आदि बातें नहीं कर सके। वे शीघ्रतासे लौटे परन्तु इतने परभी तुंगभद्रा नदीमें सर तक पानी बढ़ही गया था। इस पार पूरी सेना उतरने भी न पाई थी कि दु-तरफा पानी बह निकला।

इस प्रकार अदवनीके कठिन प्रश्नसे छुट्टीपाने पर दोनों सेनाएँ फिरसे एकत्रित होकर कनक गिरी तक आई, वहाँ मुगल अलीको बिदा करके तहुव्वर जंगको साथ लेकर हरिपंत ताँतिया बहादुरबिंडाको छाये। इतनेमें जुलाईका महीना समाप्त हो गया। सहायताके लिये आई हुई सेना नदीके पार पहुँचतेही टीपूने किले पर झंडा फहरा दिया। परशुराम पंतको हरिपंतकी अदवनीको छोड़ कर आने की योजना ठीक न जान पड़ी। एक पत्रमें उनके इस प्रकार उद्गार हैं कि अदवनी छोड़ कर चले जाना ठीक नहीं था किन्तु भावी अवश्यही होगी। परन्तु ताँतियाकी अड़चनें क्या थीं ऊपर बताईही जा चुकी हैं।

इस अवसर पर टीपूने अदवनी किला लेलिया तथा जो टीपूका प्रदेश पहले निज़ामके पास था वही फिर मिल गया। तत्पश्चात् १८०० ई० में वह अंग्रेज़ोके हाथमें आगया।

अदाना—(Adana) यह नगर एशिया माइनर के दक्षिण पूर्व किनारे पर स्थित है। अदाना प्रान्त जो प्राचीन सिलिशिया (Cilicia) के अन्तर्गत था उसकी यह राजधानी है। यह उ० अ० ३७°१ तथा पूर्व दे० ३५°१८ में स्थित है। यह ऐतिहासिक तथा सैनिक दृष्टिसे बड़े महत्वका स्थान है। यहाँ खलीफा हारूँरशीदके समय की बहुत सी पुरानी इमारतें तथा खंडहर विद्यमान हैं। किसी समयमें यह रोमनों का महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र था। यहाँ खनिज पदार्थ बहुत होते है। वहाँ की सड़कों पर स्थान स्थान पर झरने बने हुए हैं जिनमें नदीसे पानी लाया गया है। पन्द्रह मेहराव का एक शानदार पुल है। जाड़ेमें यहां की आबहवा उत्तम तथा स्वास्थ्यकर है किन्तु ग्रीष्मऋतुमें बड़ी भीषण गरमी पड़ती है। यहां की आधुनिक जनसंख्या लगभग ३१००० है।

अदाबैज़ार—यह नगर एशिया माइनरमें कुस्तुन्तुनियासे पूर्वके ओर जानेवाले सैनिक मार्गमें बसा हुआ है। यहाँ पर रेशम, अखरोट इत्यादि वस्तुओं का व्यापार बहुत होता है।

अदिकल—यह अम्बल निवासी जाति समूह का एक वर्ग है। कहा जाता है कि ये असलमें ब्राह्मण हैं परन्तु भद्रकालीके मन्दिरके पुजारी होनेके कारण मांस मदिरा का भोग लगाकर सेवन करनेसे ये भ्रष्ट समझे जाने लगे। वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं तथा क्षुद्र देवताओंके पुजारी का काम करते हैं। विवाह तथा पैतृक सम्पत्ति इत्यादिमें इनके नियम मकत्तयम लोगों के ही समान हैं। दस दिन तक सूतक तथा वृद्धि मानते हैं। ये दस गायत्री मन्त्र भी जपते हैं। इनकी स्त्रियाँ आदियम्मा कहलाती हैं। ये नम्बुद्रि स्त्रियोंके समान वस्त्रालङ्कार व्यवहार करती हैं किन्तु उनके समान बाहर निकलते समय न तो ये ताड़ का छाता लेती है न साथमें नायन अथवा कुनबिन रखती हैं (Castes and Tribes of India. Census Report 1911-Travancore.)

अदिचनल्लुर—मद्रास प्रान्त के तिन्नीवेली जिलेके श्रीवेंकटम ताल्लुके का यह एक गांव है। यह उ० अ० ८°३८ यथा पूर्व देशा० ७७°५० में स्थित है। यह श्रीवेंकटमसे ३ मील और पालमकोटासे १५ मीलकी दूरीपर बसा हुआ है। ताम्रपर्णीनदीके दक्षिण तटपर यह स्थित है। १८६६ ई० तथा १६०० ई० में संशोधन विभाग के सुपरिन्टेण्डेन्ट रीय साहबने जो खोदाई का काम किया था उससे पता चलता है कि उस समय तक दक्षिण भारतमें यह सबसे प्राचीन तथा इतिहास पूर्व कालीन (Pre-historic age) स्थान रहा होगा। यहाँ पर ताम्रपर्णी नदीके तटपर एक भागमें बहुतसे मृतकोंके अवशेष रखकर गाड़े हुए बर्त्तन मिलते हैं। इस कारण सरकारने इस स्थान के आसपास की १०० एकड़ जमीन संशोधनके

लिये नियत करदी है। यह बर्त्तन तीनसे दसफीट तक गहरे हैं और एक दूसरेसे ६ फीटके अन्तर पर गड़े हुए हैं। इन बर्त्तनोंके अवशेष तथा उसमें रक्खी हुई वस्तु अब भी अच्छी स्थितिमें मिलती है। असली सोनेके आभूषण उत्तम नकाशीदार लोहे तथा कांसेके बरतन इत्यादि कुल मिला कर अब तक १२०० वस्तुएँ मिल चुकी हैं। लोहे की चीजोंमें टाँगने की लालटेन, तलवार, भाले, चाकू, हथौड़े, कैंची, चूड़ियाँ, त्रिशूल, नकाशीदार सुराही इत्यादी अनेक वस्तु मिली हैं। काँसेके कटोरे, सुन्दर दीपक इत्यादि भी मिले हैं। यह सब यत्नपूर्वक मद्रासके अजायब घरमें रक्खी हुई हैं। कुछका कथन है कि प्राचीन कालमें यहाँ एक बड़ा विशाल नगर बसाहुआ था। रीयसाहब का मत है कि यह नगर तथा उसके अवशेष पाण्ड्य राजाओंके काल का होगा। मृतकों को गाड़ने की प्रथासे इस मत की पुष्टि भी होती है। संशोधन का काम अबभी जारी है। इससे प्राचीन इतिहास का धीरे धीरे पता लगता आवेगा। (इं० गॅ० ५)

अदिति—वेद तथा पुराण दोनों हीमें इसका उल्लेख मिलता है।

पौराणिक स्वरूपः—यह कश्यप ऋषि की तेरह पत्नियोंमें से सबसे बड़ी स्त्री थी। यह प्रचेतस दक्षकी कन्या थी। आदित्य नामक बारा देवता इसीके पुत्र थे। (महाभारत आ० ६५०) । एक बार मैनाकपर्वत पर स्थित विनशन नामक तीर्थमें अदितिने चरू (खीर समान पदार्थ) पकाया था। (महाभारत वन० १३५)। प्राज्योतिष नामक एक असुरों का नगर था। वह मनुष्यों द्वारा अगम्य तथा अभेद्य समझा जाता था। उस नगर का भूमिपुत्र नरकासुर नामक महाबलवान् दैत्य अदिति का रत्नखचित कुण्डल चुराकर भागा जारहा था। श्रीकृष्णने वह कुण्डल उससे छीन लिया और वापस लेआये (महाभारत-उ०प०४८)। कदम्ब कविद्वारा रचित 'अदिति कुण्डलापहरण नामक नाटकमें यही कथा विस्तार-पूर्वक दी हुई है।

एक कथा दी हुई है कि अदितिके पेटमें श्रीकृष्णने सात बार गर्भरूपमें वास किया था। अदितिके पृश्नि आदि जो भिन्न भिन्न अवतार है उनमें से एकमें उसके गर्भसे श्रीकृष्ण भी उत्पन्न हुए थे। एक समय देवयुगमें जब सब बड़े बड़े महात्मा ही तीनों लोकपर अनुशासन करते थे, उस समय पुत्रप्राप्तिके लिये एक पैर पर खड़े होकर अदितिने घोर तप किया था। इसी कारण विष्णुको जन्म-जन्मान्तर उसकी कोखसे जन्म लेना पड़ा।

वैदिक स्वरूपः—अदिति पर वेदमें स्वतन्त्र सूक्त नहीं मिलते किन्तु इसका उल्लेख अनेक स्थानोंमें आया है इसका कोई विशेष रूप भी निश्चित नहीं देख पड़ता। कहीं कहीं पर 'अनर्वा' विशेषण प्रयुक्त किया है। मित्रा वरुण की (ऋ० ८.२५.३; १०.३८३) तथा अर्यमा की (ऋ० ८. ४७९) इसको माता लिखा है। अतः यह राजमाता (ऋ० २०. २७. ७) कह कर सम्बोधित की गई हैं। यह बलवान् पुत्रों को उत्पन्न करने वाली कही गयी हैं। (ऋ० ३,४.११ ८.५६.११)। ऐसे आठ पुत्र कह गये हैं (ऋ० १०. ७२. ८)। उसको 'पस्त्या' भी कहा है।

पौराणिक कथाओंमें इसको दक्षकन्या तथा कश्यप-पत्नि कह कर उल्लेख किया है। किन्तु वेदोंमें इसे विष्णुपत्नि लिखा है। 'दिति' का अर्थ बन्धन किया है और 'अदिति' का अर्थ मुक्त है। जल पृथ्वी आदि की उत्पन्न करने वाली इसको माना गया है (१०, ६२, २)। आगेके सूक्तोंमें इसे इनकी माताभाव कर दूध पिलाने का वर्णन किया है। अन्य स्थानों पर (ऋ०१, ७२, ९; अ० १३,१, ३८) इसे पृथ्वी का ही रूप मानकर वर्णन किया है। ऐसा भास होता है कि इसे विश्वसृष्टि की मूर्ती का रूप दिया गया है। सूर्यकी माता होनेसे कभी कभी इसे तेजोमयी माना गया है। तेज प्राप्तिके लिये उसकी प्रार्थनाएँ की गई हैं (ऋ० ४, २५, ३; १०, ३६, ३)। इसके अक्षय तेज का वर्णन करते हुए इसके मुख की तुलना 'उषा' से की है (७, ८२, १०)। कहीं कहीं पर ऋगवेदमें (१, १५३, ३, ८, ९०, १५; १०-११, १) तथा अन्य वैदिक ग्रंथोंमें (वा, सं० १३ ४३, ४९) इसको 'गो रूप' माना गया है। भूलोकके सोमरस की तुलना अदितिके दूधसे की है।

उपरोक्त कल्पनाओंसे अदितिके दो मुख्य स्वरूप मालूम पड़ते हैं। एकतो देवमाता, दूसरे शारीरिक तथा नैतिक दोष बन्धनोंसे मुक्त करने वाली अनन्य शक्ति। इसके नाम सम्बन्धी कल्पनाओंसे इसे 'गौ' पृथ्वी, अन्तरिक्ष, विश्व, आदि संज्ञा प्राप्त होती है। किन्तु इन निराकार वस्तुओं को आकार कैसे प्राप्त हुआ तथा सूर्यकी माता कैसे हुई, इसका कारण पता नहीं। बर्गाइनके मतसे देवता को दूध देनेवाली माता अदिति 'द्यौ' (आकाश) रूप मेंही होगी (ऋ० १०, ६३, ३)। ऐसी कल्पनामें ही अदितिके मातृत्व भावको खोज निकालना होगा। दूसरे मतके अनुसार (ऋग-

वेदके अन्य स्थानोंमें) 'अदितेः पुत्रः' कह कर सूर्यको सम्बोधित किया गया है। वेद पूर्वकालमें 'सहसः पुत्रः शक्तिके पुत्र' के अनुसार वरुणादि देवताओंको स्वातन्त्र्यपुत्र कह कर प्रधानत्व दिया गया है। इसके रूपके विषयमें ओल्डनवर्ग, मॅक्समूलर, रॉथ इत्यादि लेखकोंके भिन्न भिन्न मत हैं। निघण्टुमें 'अदिति' शब्दसे पृथ्वी, वाणी, गौ, अथवा द्यावापृथ्वी, इत्यादि सूचित होता है। यॉस्क 'अदिति' को देवोंकी बलवान माता कह कर अन्तरिक्षमें स्थान देता है तथा आदित्य (सूर्य) को स्वर्गलोकमें ले जाकर छोड़ता है।

अदिलाबाद ज़िला--यह ज़िला हैदराबादके वारंगढ़ भागके उत्तरमें स्थित है। १६०५ ई० के परिवर्तनके पहले यह सिरपुर तथा ताँदूरके योगसे बना हुआ एक उपभाग था। इसके उत्तरमें बहाड़ तथा जिला चान्दा, पूर्वमें बहाड़ जिला नाँदेश तथा वाशिम तथा दक्षिणमें करीमनगर तथा निज़ामाबाद जिले हैं। पैन गंगा नदी द्वारा यह ज़िला बहाड़से विभक्त है। इसी भाँति वर्द्धा तथा प्राणहिता नदियोंसे यह ज़िला चन्दासे अलग होगया है। इसका क्षेत्रफल ७००३ वर्गमील है। सह्याद्री पर्वत इसमें दक्षिण पश्चिमसे दक्षिण पूर्वकी ओर १८५ मील तक फैला हुआ है। इसके दक्षिण भाग को गोदवरीसे पानी प्राप्त होता है। दूसरी महत्वपूर्ण नदी पैन गंगा है। यहाँ पर घना जंगल है। इसमें सागवान, आवनूस, आम, इमली तथा विजयसाल आदिके बड़े बड़े पेड़ हैं। पहाड़ी प्रदेशोंमें शिकार करने योग्य बड़े बड़े जानवर हैं। शेर, चीता, भालु, लोमड़ी, सियार, जंगली कुत्ता इत्यादि पाये जाते हैं। मैदानोंमें नीलगाय, सांभर (एक प्रकार का हिरन) और मेकर (चितकबरा हिरन) पायेजाते हैं। यहाँकी आबहवा अच्छी नहीं हैं। सारी रियासत भरमें यह सबसे अधिक रोग का घर है। मई मासमें यहाँ का तापक्रम १०५° रहता है। जाड़ेमें यही तापक्रम ५६° हो जाता है। यहाँ की औसत वर्षा ४१ इञ्च है।

सं० १६०१ की जनसंख्याके अनुसार यहाँकी आबादी ४७७८४८ थी। आजकल इसे जिलेके निम्नलिखित आठ ताल्लुके किये गये हैं:—सिरपुर राजुर, निरमल, चिन्नुर, अदिलाबाद, लक्षेटिपेट, किनवट तथा आनगांव। यहाँ पर ८० प्रतिशत हिन्दू हैं। १० प्रतिशत गोंड़ हैं। यहाँ की माल गुजारी करीब ६॥ लाख रुपये हैं। राज्यव्यवस्था तीन ताल्लुकेदारोंके हाथमें है। प्रथमश्रेणी का ताल्लुकेदार दीवानी तथा फौजदारी का काम देखता है। अन्य द्वितीय तथा तृतीय श्रेणीके मजिस्ट्रेटों का अधिकार रखता है। आजकल यहाँ लोकल बोर्ड की स्थापना हुई हैं (इ० ग० ५)

अदिलाबाद ताल्लुका—हैदराबादके इसी नामके ज़िलेका एक ताल्लुका है। इसका क्षेत्रफल २२०० वर्गमील है। १६०१ई०में यहाँ की जनसंख्या ११२३१४ थी। इस ताल्लुकेमें अदिलाबाद शहर तथा ४२० गांव हैं। अदिलाबाद ही जिले का मुख्य स्थान है। ३० गांव जागीरमें दिये हुए हैं। १६०१ ई० में यहाँ की आमदनी १३ लाख रुपये थी। यहाँ की जमीन ज़्यादातर बंजर है। आबादी भी घनी नहीं हैं।

अदिलाबाद शहर (एदलाबाद)—हैदराबाद रियासतके इसी नामके जिले तथा ताल्लुके का मुख्य यह स्थान है। उत्तर अ० १६°४ तथा पू० रे० ७८°३३ पर स्थित है। यहाँकी जनसंख्या १६२१ ई० में ८२७१ थी। यहाँ प्रथम श्रेणीके ताल्लुकेदार, पुलिस सुपरिंटेण्डेन्ट, चुंगीके इन्सपेक्टर तथा जंगल विभागके दारोग़ाके अनेक दफ्तर हैं। यहाँ दवाखाने, डाकखाना तथा पाठशाला भी है। यहाँ पर हिन्दुओंका एक मन्दिर है जहाँ पर वार्षिक मेला लगता है। यह एक अनाज की मण्डी है। (इ० ग० ५)

अद्धनकी—मद्रास प्रांतके गंटूर जिलेके ओगोल ताल्लुकेमें यह एक नगर है। ओगोल रेलवे स्टेशनसे २३ मीलकी दूरी पर यह बसा हुआ है। यह उ० अ० १५°४६ तथा पू० रे० ७६°५६ पर स्थित हैं। यहाँ १६०१ ई० में ७२५० जनसंख्या थी। यहाँ पर १४०० ई० में प्रतापरुद्रके पुत्र हरिपालुदुने एक मिट्टीका किला बनाया था। उसके खण्डहर आजभी विद्यमान हैं।

अनाज तथा मवेशियोंका यहाँ एक बड़ा बाजार लगता है। यहाँ पर नायब तहसीलदार का आफिस है।

अद्रिका—इस नामकी एक अप्सरा हो गई है। ब्रह्माके शापसे मछली होकर यमुना नदीमें यह रहती थी। राजा वसुके वीर्यसे भरा हुआ पात्र लेकर एक श्वेत पक्षी नदीके ऊपरसे जा रहा था। भाग्यवश वह पात्र उससे छूट कर नदीमें गिर पड़ा और उसे अद्रिका पी गई। दस महीने पश्चात् उसके गर्भसे एक पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई। ये दोनों 'मल्लाहों' के हाथ लगे और उन्होंने उन बच्चोंको उपरिचर राजाको लेजाकर दिया। लड़केका नाम मत्स्य तथा कन्याका नाम सत्यवती अथवा मत्स्यगन्धा पड़ा। यह कन्या एक मल्लाह

को देदी गई जिस पर आगे चल कर शान्तनु मोहित हो गये थे। इधर यह अप्सराभी श्राप मुक्त होकर स्वर्गको पधारी क्योंकि ब्रह्माका श्राप था कि दो मानवोंको उत्पन्न करके वह श्रापसे मुक्त हो जावेगी।

अद्वैत—'विश्व' (संसार) का स्पष्टरूप जताने के लिये जिस विचारधारा का अवलंब किया गया है उसीका भारतीय नामकरण अद्वैत है। इसी को शास्त्रीय (शास्त्रविद्) भाषामें 'केवलाद्वैत" कहते हैं। इसका समर्थन करनेवाले कहते हैं कि यह विचारधारा या तत्वज्ञान अन्य भारतीय तत्वज्ञानों की अपेक्षा श्रेष्ठ और पूर्ण है। एक बात यह भी है कि भारतवर्षमें इस विचार सरणी को माननेवाले भी बहुत हैं। इस विचारधाराका नाश करनेके लिये बादमें 'विशिष्टाद्वैत' 'शुद्धाद्वैत और 'द्वैत' आदि अनेक मतसांम्प्रदाय उत्पन्न हुए और कुछ समय तक बड़ा जोर बाँधे हुए थे, परन्तु अद्वैत तत्वज्ञान का प्रभाव केवल भारतवर्षही पर नहीं किन्तु संसारके सर्वमान्य विचारोंके विकासपर भी पड़ रहा है। ऋगवेद्के १०वें मण्डलमें तथा उसके उत्तरकालीन सूक्तोंमें दिखाई देनेवाले तत्वज्ञान विषयक प्रश्नोंके विचारों का उपनिषदोंमें किस प्रकार विकास हुआ, वैसेही इन ग्रंथोंमें इतस्ततः बिखरा हुआ तत्वज्ञान 'अद्वैतआदि" मतोंकी अन्तिम सीमापर किस तरह जा पहुँचा—इत्यादि प्रश्नोंका इतिहास बहुतही मनोरंजक है।

यदि संक्षिप्तमें भारतीय तत्वज्ञानका इतिहास ध्यानमें लाना हो तो यह दिखाई देगा कि 'उपनिषद्' ग्रंथही मूल (जड़) है और केवल यही ऐसे विषयों पर तात्विक ग्रंथ हैं। उपनिषदोंमें लिखित तत्वज्ञान छाँटकर एक जगह स्पष्ट दिया हुआ नहीं है इस लिये सृष्टिकी उत्पत्ति जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर भी कोई अबाधित सिद्धान्त साफ साफ नज़र नहीं आता। उपनिषद्के तत्त्व वेदांत सूत्रोंमें अधिक स्पष्ट दिखायी देते हैं। कुछ सूत्रोंका समावेश 'दर्शनोंमें हुआ है। सब 'दर्शन' उपनिषन्मूलक नहीं हैं। सूत्र-साहित्यके रचना-कालमें हरएक दर्शन को सुव्यवस्थित आकार (रूप) दिया गया होगा। इसी कालमें संख्या, वैशेषिक मीमांसक व नैयायिक आदि अनेक सांप्रदायोंके उत्पादकोंने अपने अपने मतोंके अनुसार सूत्र-ग्रंथ निर्माण किये और अपने मतों को एक निश्चित रूपमें ढाला। ऐसे सूत्रकारों में एक मुख्य सूत्रकार आचार्य बादरायणने 'शरीर सूत्र' वा 'वेदांतसूत्र' तयार किया। पाल डॉयसेनने शङ्का उपस्थित की है कि आजकल प्राप्त होने वाले बादरायण सूत्रोंमें जो बादरायण सम्बन्धी उल्लेख है उनसे पता नहीं चलता कि ये बादरायण सूत्रोंके कर्त्ता थे या नहीं। इस सूत्र-ग्रंथमें अनेक वेदांत-विरोधी मतोंका खण्डन है। फिर भी इस विषय का मत पूर्णतया आज निश्चित नहीं है। इन सूत्रों और भगवद्गीता पर बहुतसे वेदांताचार्योंने अनेक भाष्य किये और अनेक मत स्थापित किये। इनमेंसे शांकर-मत 'केवलाद्वैत' मत है।

पश्चात्य पण्डित ए० गोहने अपने 'उपनिषद्के तत्त्वज्ञान' नामक ग्रन्थमें यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि आचार्य बादरायणने वेदांत सूत्रोंमें जिस "अद्वैत" मत की स्थापना की है उसी परंपरागत प्राप्तमतका पुनरोद्घाटन शंकराचार्यने 'प्रस्थानत्रयी' पर भाष्य लिखकर किया। जर्मन पण्डित जार्ज थीबोने अपने ग्रंथ-वेदान्त सूत्रोंपर शंकर भाष्य' की प्रस्तावनामें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि शंकराचार्य द्वारा 'अद्वैत' मतकी स्थापना होनेके पूर्व अर्थात् सूत्ररचना कालसे लेकर अद्वैत मत का प्रस्थापन करनेके कालतक बौधायन आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमी, कार्ष्णाजिनि, काषकृत जैमिनी, बादरायण आदि अनेक वैदिक मार्गोंके आचार्योंमें जीव और ब्रह्मकी पूर्ण एकताके विषयमें तीव्र मतभेद था (वेदांत सूत्र अ० १, पाद ४, सूत्र २०-२२)। और भी बादरायण सूत्रोंमें दिग्दर्शित होनेवाला सत्यमत, शंकराचार्य के 'अद्वैत' मतसे नहीं मिलता बल्कि रामानुजाचार्य द्वारा बादमें प्रस्थापित 'विशिष्टाद्वैत, मतसे ही मिलता है।

आधुनिक पण्डितोंमें तो इसविषयमें भी बहुत मतभेद दिखाई देता है कि 'अद्वैत' मतका अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग 'मायावाद' मूल प्रस्थानत्रयीमें ही दिखायी देता है या शंकराचार्यने अपनी अलौकिक बुद्धिके बलसे इसको ढूँढ़ निकाला और अपने अद्वैत मतमें जोड़ दिया। कोलबुक (मायावाद को) जैसे विद्वानोंका कथन है कि 'मायावाद' मूल उपनिषद् ग्रंथोंमें नहीं दिखायी देता बल्कि इसको शंकराचार्यने जन्म दिया। किन्तु इसके विरुद्ध पाश्चात्य पण्डित ए०गोहने दिखलाया है कि 'मायावाद' का प्राथमिक रूप उपनिषद् ग्रंथमें जगह जगह दिखायी देता है, केवल उसको सिलसिलेवार रखनेका काम बादमें हुआ है। बहुतसे पण्डित यह भूलते हैं कि वेदों ही में मायावादका अस्तित्व है। द्वैत अथवा अद्वैत तत्वोंका वर्गीकरण आजकलके 'मोनिस्ट' अथवा 'ड्युअलिस्ट'

का मतभेद नहीं है। अद्वैतका केवल विश्वस्पष्टी करणके सम्बंधमें कोई मत विशेष नहीं था किंतु वह एक साम्प्रदाय था जिसमें विशिष्ट आचार और उपासनाओं का बोध होता था। इसी लिये अद्वैत की स्थापना करनेके प्रयत्नोंके साथ ही साथ और भी कुछ प्रयत्न करने पड़े, जिन विचारोंके कारण यज्ञ संस्थाका ह्रास हुआ ऐसे विचार उपनिषदोंमें बहुत जगह व्यक्त हैं। यह बात नहीं है कि संस्थाके ह्रास होनेके साथही केवल 'औपनिषद' विचारों की प्रबलता हुई बल्कि बौद्ध और जैन इत्यादि सांप्रदाय भी उत्पन्न हो गए थे। भागवत सांप्रदाय भी इसी समय उत्पन्न हुआ। यज्ञसंस्था द्वारा ब्राह्मणों का जो महत्व बढ़ गया था वह इन विचारों द्वारा कम होनेवाला था। उपनिषदोंसे जिन दर्शनोंकी उत्पत्ति हुई उनके कर्ताभी ब्राह्मण ही थे। बौद्धजैन आदि मतोंके प्रवर्तक ब्राह्मणेतर थे। ब्राह्मणोंको तो अपना 'ब्राह्मण महत्व' कायम रखना था इसलिये बौद्ध जैन इत्यादि मतोंके कारण जो 'देवता' उत्पन्न हुए और जो उपासनाएँ प्रारम्भ हुई उनका विरोध करनेके लिये या उनको कमजोर बनाने के लिये साधारण लोगोंके जो देवता थे उनका महत्व बढ़ाना ब्राह्मणोंके लिये आवश्यक था। यज्ञ प्रवर्तक और यज्ञविरोधी—केवल दो ही दल न रहकर कई दल हो गए। ये दो भागोंमें बँट गए। बौद्ध तथा जैन इत्यादि एक भागमें और दूसरे भागमें वेदांगोंके रचयिता, दर्शनोंके उत्पादक, साधारण जनताकी उपासनाके और वीरों का महत्व वर्णन करनेवाले थे। इन दो विभागोंके कारण जो तत्ववेत्ता वेदांग और दर्शनोंके प्रवर्तकोंमें से निकले वे अपने को प्रचलित उपासना करनेवालोंके वर्गसे अलग न रख सके। ऐसा करनेसे उनहीं का वर्ग बलहीन हो जाता। अद्वैतमत ब्राह्मण जातिके महत्व को स्वीकार करही नहीं सकता था, परन्तु विचार प्रवर्तक ब्राह्मणहीथे इसलिये जातिगत महत्व बनाए रखनेके मोहका संवरण शंकराचार्य भी न करसके। इसका फल यह हुआ कि तत्वतः तो अद्वैत सिद्धांत मान्य हुआ, पर आचारोंमें भिन्न रहने लगा। इस तरह के विचार रखने और आचार उनके विपरीत करनेसे एक उलझन सी पैदा हो गयी जो कि मनीषा पंचकमें स्पष्ट रूपसे व्यक्त की हुई दिखायी देती है।

शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित पंचायतन पूजा का संबन्ध अद्वैत मतसे बिलकुल नहीं है और जाति भेद तो उससे कहीं अधिक दूर है। शंकराचार्यके जीवनमें उनकी वैय्यक्तिक स्थितिके कारण विशिष्ट उपासनाओंका विरोध और केवल चातुर्वर्ण्य तत्व ही नहीं बल्कि जातिगत उच्चत्व और नीचत्व बोधक विषयता का तत्व शंकराचार्यको स्वीकार करना पड़ा। परिस्थिति यह हुई कि एक ओर लोग वेदान्त की बातें बोलते थे और दूसरी ओर ब्राह्मणेतर जातियों से छुआछूत मानने लगे थे।

अद्वैतमत यदि केवल एक सिद्धांत ही रहता तो भी इसका महत्व कायम रह जाता। किन्तु वह तो विशिष्ट उपासना और विशिष्ट आचार स्थापन करने का कारण हुआ। शंकराचार्यके प्रयत्न विविध थे। उन्हें (१) अद्वैतमत अर्थात् सकल विश्व एक द्रव्य मय है इस तत्वकी स्थापना, (२) इस तत्व का वैदिक आधार है इसलिये इस तत्व का और साथही वेदोंका समर्थन और (३) प्रचलित उपासनाओं को नया रूप देना ये तीन कार्य करने थे। बहुतसे अनुकूल उपासनासांप्रदायोंसे भिड़ना था। शंकराचार्यको बौद्धोंका अस्तित्व मिटाना नहीं था बल्कि उनके कर्म तथा उपासना मार्गकी प्रधानता को कम करना था।

बौद्धधर्मके पतनके समय बहुतसे साम्प्रदाय बढ़ गए थे। जिनमें शैव, वैष्णव और कापालिक इत्यादि थे। ये सांप्रदाय आस्तिक मतके पोषक थे। किन्तु इन सांप्रदायोंके अन्तर्गत अनाचार, जघन्यकर्म, विकट कर्मकांड आदि बातें ऐसी थीं जोकि किसीभी सात्विक अन्तःकरणके पुरुषके हृदयमें घृणा उत्पन्न कर सकती थी क्योंकि सर्वसाधारण समाजके हितकी ओर दृष्टि रखकर बिगड़ी हुई परिस्थितिको सुधारनेकी शक्ति बहुत थोड़े लोगोंमें होती है। अतिशयोक्तिका विचार न कर उस समयकी समाजिक अवस्थाका ज्ञान 'शंकर दिग्विजय' के निम्न श्लोकोंसे ठीक ठीक हो सकेगा—

वर्णाश्रम समाचारान्द्विषन्ति ब्रह्मविद्विषः
ब्रुवन्त्याम्नायवचसां जीविकामायतां प्रभो ॥३२॥
× × × ×
शिव विष्णवागम परैर्लिंगचक्रादि चिन्हितैः
पाखण्डैः कर्मसंन्यस्तं व्यारूण्यामिव दुर्जनैः॥३५॥
× × ×
सद्यःकृत्त द्विजशिरः पङ्कजार्चित भैरवैः
नध्वस्ता लोकमर्यादा कावा कापालिकाधमैः॥३७॥
× × ×
अन्येपि बहवो मार्गा सन्ति भूमौ सकण्टका
जनैर्येषु पदंदत्वा दुरंतं दुखमाप्यते ॥ ३६ ॥

इस प्रकारकी परिस्थितिमें समाजको अंतर्मुखी करनेवाले किसी समाजसुधारक की अत्यन्त

आवश्यकता थी। ठीक इसी मौकेपर आदिशंकराचार्यने 'अद्वैत' मत की स्थापना कर समस्त जनताको ज्ञानकांडकी ओर झुकाया।

अद्वैतसिद्धांतके मूल प्रमेय—(१) एकही एक आत्मतत्व है। तन्निष्ठ, तत्सजातीय अथवा तद्विजातीय दूसरा कुछ भी नहीं है। (२) यह आत्मतत्व 'निर्विशेष' है इसलिये 'यह ऐसा है या यह वैसा है' इस तरह इसके सम्बन्धमें कुछभी नहीं कहा जा सकता। अर्थात् यह 'निर्गुण' होनेकी वजहसे इसपर शुभाशुभ गुणोंका भी आरोप नहीं किया जा सकता (३) यह स्वयं ज्ञान स्वरूप है। अर्थात् ज्ञान इसका गुण नहीं है और इसीलिये ज्ञातृत्व, ज्ञेयत्व आदि गुण आत्मतत्वमें संभवनीय नहीं हैं। (४) परमात्मा स्वरूपतः कूटस्थ, नित्य और अद्वितीय है। इसीको 'ब्रह्माद्वैत' कहते हैं। (५) परब्रह्महीं "माया" रूपी उपाधिके कारण "ईश्वर" और 'अविद्या' रूपी उपाधिके कारण 'जीव' होता है और जड़-सृष्टि आभासरूप होनेसे झूठी है अर्थात् केवल एकही 'ब्रह्म' सत्य है। (६) ब्रह्म, स्वरूपतः अभिन्न किंतु देखनेमें भिन्न दिखायी देनेवाली 'त्रिगुणात्मक माया' शक्तिको साथमें लेकर जगतको उत्पन्न करता है। संक्षेपमें यों कह सकते हैं कि परब्रह्मके प्रति अज्ञान रूपी मायाके कारण संसार भ्रांतिमें पड़ जाता है, जैसे रस्सी देखकर साँपका भ्रम करना। यही 'विवर्तवाद' है। (७) परब्रह्मका विवर्तरूपी परिणाम ही यह है कि आभासात्मक जग मिथ्या है। (८) इसी झूठे जगतमें "वेदांत" शास्त्रका अन्तर्भाव होता है, इस कारण यह शास्त्र भी मिथ्या है। किंतु स्वप्नमें दिखायी देनेवाले पदार्थोंकी तरह शास्त्र तत्वज्ञान के लिये साधनी-भूत होते हैं। (९) अर्थज्ञानके साधनीभूत प्रमाण छः है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थोत्पत्ति और अनुपलब्धि। (१०) जीव परमात्मासे अभिन्न है इसलिये वह विभु और एकही है। जीवोंका अनेकत्व औपाधिक है। (११) ब्रह्मपर विचार आरंभ करनेके पूर्व (अ) नित्यानित्य वस्तु विवेक (आ) इहामुत्रार्थ फलभोग विराग, (इ) शमादि षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व, इनचार साधनोंकी प्राप्तिकी आवश्यकता और (१२) "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्त्वमसि" 'सत्यं-ज्ञान मनंतं ब्रह्म" इत्यादि वेदांतके महावाक्योंके अखण्ड अनुसन्धानसे 'आत्मसाक्षात्कार होनेपर इसी लोकमें सदेह मुक्ति प्राप्त होती है। प्रारब्धकर्मों का क्षय होनेपर शरीर त्यागके पश्चात् प्राप्त होने वाली अखंड 'विदेह मुक्ति' प्राप्त होकर उस सुख दुखके परे जो अवस्था है उसमें जीव-ब्रह्मकी पूर्ण एकता होती है।

शंकरमतकी एक प्रधान विशेषता यह है कि उसमें देवता, शास्त्र, सृष्टि रचनाशास्त्र, मानसशास्त्र, परलोक सम्बन्धी कल्पनाएँ इनमेंसे किसी पर भी विचार करनेसे उसके दो रूप दिखायी देंगे। उदाहरणके लिये परमार्थ दृष्टिसे निर्गुण, निष्क्रिय शांत और निरंजन-इसतरह का ज्ञानरूप परब्रह्म व्यावहारिक दृष्टिसे 'परमेश्वर' की संज्ञासे बोधित होता है। इस दृष्टिसे इन दोनों स्वरूपोंका सम्बन्ध केवल आभासरूप है। पारमार्थिक दृष्टिसे सृष्टि रचना का अर्थ सत् स्वरूपका ही प्रकाशन है। व्यवहारिक दृष्टिसे तो आरंभ ही से "धातायथा पूर्वमकल्पयत्" के अनुसार विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता रहता है और संसारचक्र अबाधित स्वरूपसे घूमता रहता है। परमार्थिक दृष्टिसे जीव पर ब्रह्मरूप है। और उसीके द्वारा व्यवहारार्थ स्वीकृत किये हुए अविधारूपी घटनाके कारण वह कष्टभोगता है और इसीलिये "मैं—तू" आदिभेद होजाते हैं। ब्रह्मसूत्र भाष्यके उपोद्घात (प्रस्तावना) के आरंभ ही में शंकराचार्यजी लिखते हैं—"यह नित्यके अनुभवकी बात है कि मैं या तू इन दो कल्पनाओं द्वारा व्यक्त होनेवाले विषयी और विषय ये प्रकाश और अंधकार की तरह परस्पर विरोधी हैं। इसलिये इनकी एकता कभी हो ही नहीं सकती। जब ऐसी बात है तब हर एकके धर्म एक दूसरेके साथ कैसे मेल खा सकते हैं?

और और विषयोंकी तरह मोक्ष तथा उसके साधनके भी दो रूप दिखायी देते हैं। साधनोंमें निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार करादेनेवाली 'परा' विद्या है (परा यथा तदक्षरमधिगम्यते) और, 'अपरा' विद्याके अन्तर्गत वेद-वेदांग तथा सब शास्त्रादि हैं। शांकर मतका अभिप्राय यह है कि 'अपरा' विद्याके कारण सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और 'परा' विद्या द्वारा पर ब्रह्मके साथ एकरूपता होती है। इस प्रकार एक बार ब्रह्मसाक्षात्कार हो जानेपर—

भिद्यते हृदयग्रंथिच्छिद्यंते सर्व संशयाः।
क्षीयन्तेचास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है, वह स्वतन्त्र हो जाता है और समस्त संशयका नाश हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मसाक्षात्कार होनेपर उसे कोई कर्म करना भी बाकी नहीं रह जाता।

अद्वैत साम्प्रदाय का साहित्य—श्रीमच्छंकराचार्य ने अद्वैत मतकी स्थापना की और साथही साथ

भारतवर्षकी चारों दिशाओंमें चार साम्प्रदायिक मठोंकी स्थापना की। अपने प्रधान शिष्य सुरेश्वराचार्य, 'तोटक, हस्तामलक चित्सुखाचार्य द्वारा 'अद्वैत' मतानुरूप बहुत सा साहित्य तैयार किया। इस लेखके अंतमें दी हुई ग्रंथ सूचीसे अद्वैत साम्प्रदायके ग्रंथोंका विस्तार स्पष्ट दिखाई देगा। आदिशंकराचार्यने यद्यपि मूल अद्वैतमतकी स्थापना की थी, फिर भी उसमें के बहुतसे दोषों का मार्जन बादके भाष्यकारों और स्वतंत्र ग्रंथ कर्ताओंने कर दिया और अद्वैत मतको सुन्दर तथा सुव्यवस्थित रूपमें सामने रखा।

अद्वैतमत सम्बन्धी विशाल ग्रंथ भण्डारमें चित्सुखाचार्यकी 'चित्सुखी' मधुसूदन सरस्वतीकी 'अद्वैतसिद्धि' और श्रीहर्ष पण्डितकृत 'खण्डन खाद्य'—यही तीन ग्रंथ प्रधान हैं। इसके अलावा निष्कर्मसिद्धि सिद्धांत लेख आदि ग्रंथभी प्रसिद्ध हैं। उसी प्रकार सदानन्दकृत 'वेदान्तसार' धर्मराजकृत वेदान्त परिभाषा, आद्यशंकराचार्यकृत 'उपदेश सहस्री' और अपरोक्षानूभूति, आदि सरल ग्रंथ अद्वैतमतका अभ्यास करनेवालेके लिये प्रारंभमें बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। इनसब ग्रंथोंमें जो ग्रंथ बादमें विरोधी साम्प्रदायिकों का खंडनकरने के लिये निर्माण किये गये उनमें अत्यन्त क्लिष्टता और शब्दाडंबर ही अधिक दिखायी देता है।

अद्वैतमत तात्विक विचारोंकी परमावधि हैं—इसका विचार ऊपर किया जा चुका है कि भारतीय तत्वज्ञान किस प्रकार उपनिषद् ग्रंथोंसे प्रादुर्भूत होकर उसकी परिणति प्रथमतः सांख्यके चौबीस या पचीस तत्वोंमें हुई और वैशेषिकोंके सप्तपदार्थों में से होकर क्रमशः वही तत्वज्ञान दोतीन मुख्य-तत्वोंमें कल्पित हुआ तथा अन्तमें एक अविभाज्य अवर्णनीय तत्वदशाको प्राप्त हुआ। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा कि शंकराचार्यके पश्चात् रामानुजाचार्यने 'विशिष्टाद्वैत' माधवाचार्यने द्वैत और वल्लभाचार्यने 'शुद्धाद्वैत'—ये तीन मत स्थापित किये। इन चारों मतोंमें कुछ बातें मिलती थीं और कुछमें परस्पर विरोध था।

इनमें शंकराचार्य ज्ञानमार्गके पोषक 'मायावाद' उपस्थापक और चित्तशोधनके लिये कर्मोपासना ग्रहण करनेवाले हैं। रामानुजाचार्य ज्ञानके समान ही कर्मोपासना को आवश्यक समझते हुए मायाके विरोधी तथा भक्तिके प्रतिपादक थे। पूर्ण द्वैती श्रीमन्माधवाचार्य मायाके कट्टर विरोधी थे। इन्होंने भक्तिके महात्म्य को बढ़ाकर यह निश्चित किया कि जीवको नित्य 'परेश' की सेवा करनी चाहिये। श्रीवल्लभाचार्य पूर्ण अद्वैतको मानते हैं। परन्तु मायाका सर्वथैव विरोध करते हैं। इन्होंने भी भक्तिमार्गको बहुत अधिक महत्व दिया। उनके और माधव साम्प्रदायके कारण ज्ञानमार्ग कुछ संकुचित सा होगया। 'जीव' और 'जगत' का स्पष्टीकरण करनेके लिये भी शंकराचार्यने 'विवर्त वाद' को स्वीकार किया और 'जैसा है वैसा क्यों नहीं दिखायी देता' इसका स्पष्टीकरण संसारके सन्मुख किया। रामानुजने 'परिणामवाद' को स्वीकार कर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि 'जीव' और 'जगत' ब्रह्म का (जिस प्रकार दही दूधका परिणाम है) परिणाम है। माधवाचार्यने 'आरंभवाद' को अंगीकार कर यह दिलखाने की कोशिशकी है कि विष्णुरूप ब्रह्मने जीव और जगत की उत्पत्तिकी है। वल्लभाचार्यने 'अविकृत परिणाम वाद' ही को स्वीकार किया है।

इस तरह इन विरोधी तत्वज्ञोंके मतभेदोंको देखनेपर यह सवाल पैदा होता है कि जब शंकराचार्यने परमार्थिक विचारोंको अन्तिम तत्व 'अद्वैत की स्थापना कर दी तब अन्यान्य आचार्योंने किन कारणोंसे उनके मतके विरुद्ध प्रयत्न और वाद-विवाद उपस्थित किये? किंतु इन चारों विचार धाराओंका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर यह दिखायी देगा कि रामनुजादि साम्प्रदाय-संस्थापकोंने केवल समाजकी दृष्टिसे विचारकर शंकराचार्यका विरोध किया। क्योंकि 'केवलाद्वैत' सिद्धांत यद्यपि पूर्णतः सत्य मानने योग्य हैं फिर भी यदि अद्वैत सिद्धांतोंका बोलबाला हो जाय तो अनधिकारी उन्मत और उन्मार्गगामी हो जा सकते हैं। साधारण जनता 'अद्वैत' सूक्ष्म विचारोंका मनन करनेमें असमर्थ है। इसलिये 'अहंब्रह्मास्मि' जैसे महावाक्योंका अर्थ संभव है, 'ऋणंकृत्वा घृतं पिबेत्' जैसे चार्वाकके देहात्मवाद की तरह समझ बैठे। इसी सार्वत्रिक अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले अधःपतन से डरकर जनताको बचाने के लिये बादके आचार्योंने अपने अद्वैत विरोधी मतोंको प्रस्थापित किया हो। माधवने शंकराचार्य पर 'प्रच्छन्न' बौध कहकर जो आरोप किया है उसके विषयमें कुछ लोगों का यह कथन है कि 'अद्वैतमत' थोड़ेसे परिवर्तित रूपमें विज्ञानवादी बौद्धों के मतके पास तक पहुँच जाता है। इसके सिवा 'अद्वैत' मत का विरोध करते समय उत्तरकालीन आचार्योंने उसके कुछ अंशोंको ऐसेही जानबूझ कर छोड़ दिया। क्योंकि केवल परमार्थिक दृष्टिसे ही यह कहा जा सकता

है कि 'जगत मिथ्या है, व्यावहारिक दृष्टिके अनुसार तो शंकराचार्य भी जग, जीव-परमेश्वर में भेद मानते ही हैं। शंकराचार्यके 'मायावाद' का महत्व केवल इसी बातमें स्पष्ट हो जाता है। 'अद्वैत' वादका समर्थन करनेवालोंका कहना है कि 'मायावाद' ही उपनिषद् ग्रंथों के अद्वैत सम्बन्धी वाक्योंका समन्वय कर दिखलानेवाली दुधारी तलवार है। उसी प्रकार भिन्नतामें एकता देखनेके लिये की 'मायावाद' बहुत उपयोगी है। क्योंकि माया का अस्तित्व ही व्यवहारिक होनेके कारण व्यवहारमें होनेवाली सब प्रकारकी विविधतामें गुञ्जाइश है। पारमार्थिक दृष्टिसे मायाका अस्तित्व हीन होनेके कारण पूर्ण एकता बाकी बच जाती है। अद्वैतवादका समर्थन इसी तरह होता है।

शंकराचार्यके पश्चात् स्थापित हुए वैदिक मतों का सूक्ष्म निरीक्षण करने पर दिखाई देगा कि रामानुजने अपने 'विशिष्टद्वैत' को सांख्यके परिणामवाद (Evolution theory) पर खड़ा किया। उसी तरह मध्वाचार्यने अपने 'द्वैत' का प्रतिपादन नैय्यायिकों की 'परमाणु' कल्पनाको स्वीकार करके किया और उसे आरम्भवाद की पुष्टि दी। वल्लभाचार्यका पुष्टिमार्ग प्रधान भक्ति साम्प्रदाय भले ही अद्वैत हो तौभी उसका प्रतिपादन तीव्र भावनाओंकी एकतासे हुआ दिखायी देता है। इस तरह अद्वैतमार्गी यही मानते हैं कि शङ्कराचार्यका विरोध करनेवाले बादके आचार्योंने जो मत स्वीकृत किये थे वे शङ्कराचार्यके पहलेसे प्रचलित थे। बादके आचार्योंने केवल अपनी बुद्धिकी कुशलता से उनमें थोड़े बहुत हेर फेर किये। इन सब दृष्टियोंसे देखनेपर यह मानना पड़ता है कि शङ्कराचार्य द्वारा प्रस्थापित नया मत ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यही विचार-विकास की परम सीमा है।

अद्वैत मतका अथवा भारतीय तत्वज्ञानका संसारके विचारों पर परिणाम—इस समय संसारमें जीवित इस्लामी, क्रिश्चियन आदि साम्प्रदायोंने जिस आरम्भवाद (निर्माणवाद) को स्वीकृत किया है वह उच्च तत्वज्ञानमें एकदम प्रारम्भिक अवस्था का है। इस दृष्टिसे देखनेपर यह स्पष्ट है कि माधवाचार्य द्वारा 'निर्माणवाद' के सिद्धान्त पर खड़ा किया हुआ 'द्वैत' सिद्धांत उपरोक्त परकीय साम्प्रदायोंसे मिलता जुलता है। पश्चात्य जगतकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति और संस्कृतिका उद्गम ग्रीक संस्कृतिमें है। आधुनिक शास्त्रीय अन्वेषणोंसे सिद्ध हो चुका है कि प्लेटो साक्रेटीस और पिथागोरस आदि ग्रीक तत्ववेत्ताओंके ग्रन्थों और भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थोंका तुलनात्मक दृष्टिसे विचार करनेपर आत्माको अमरत्व, पुनर्जन्म आदिक कल्पनाएँ ग्रीक तत्ववेत्ताओंने भारतीय तत्वज्ञानसे ही थोड़े बहुत विकृत रूपमें अपना ली हैं। तुलनात्मक भाषा शास्त्रका उत्पादक सर विलियम जोन्स एक जगह लिखता है—"भारतीयोंकी उच्च, स्पष्ट, विशद और व्यापक तत्वज्ञानपद्धतिका ग्रीक तत्वज्ञानपद्धतिसे मिलान करनेपर यह कहे बिना नहीं रहा जाताकि ग्रीक लोगोंको भारतवर्ष ही से वह तत्वज्ञान प्राप्त हुआ।

ऊपर उल्लिखित निर्माणवादकी अपेक्षा आजकल संसार 'विकासवाद' (परिणाम वाद) को ही अधिक मानता है। समस्त आदिभौतिक शास्त्र इसी विकासवाद पर खड़े हैं, किन्तु शास्त्रीयज्ञान को एक ऐसी तीव्र पिपासा होती है जो ऐसे शास्त्रको हस्तगत करना चाहती है जिसके बलपर इस चराचर विश्वका स्पष्टीकरण किया जा सके। पाश्चात्य शास्त्र ऐसी एकता खोजकर निकालनेमें लगे हुए हैं। परन्तु इस साम्प्रदायके अनुयायियों का कथन है कि 'अद्वैत' मत तो 'विवर्त' वाद को उत्पन्न कर आगेके मार्गको स्पष्ट कर देता है। जिन जिन लोगोंने तत्वज्ञानके सम्बन्धमें विचार किये हैं, चाहे पाश्चात्य हों या पौरस्त्य, वैदिक (वेदोंको माननेवाले) हों या अवैदिक, तत्वज्ञानके साम्राज्यमें वे केवल एक अद्वितीय वस्तुके सिवा बाकी सबको गौण समझते हैं। प्लेटो, कैन्ट या अज्ञेयवादी स्पेन्सर अथवा हक्सले आदि किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन तत्वजिज्ञासुको लीजिये तो दिखायी देगा कि उनमेंसे हरएक निःशंक, निष्कलंक एकता की खोज कर रहा है। फिर भी भारतीय अद्वैतवादी तत्वज्ञोंको विश्वास है कि पूर्ण सुखके पीछे घुड़दौड़के घोड़ेकी तरह ज़ोरसे दौड़ते दौड़ते अन्तमें पाश्चात्य शास्त्रोंको 'अद्वैत' मतके 'विवर्तवाद' के पड़ाव पर आकर ज़रा सुस्तानो पड़ेगा।

[वाङ्मय—वेदान्तसार-सदानंद; वेदान्त-परिभाषा-धर्मराज; ब्रह्मसूत्रभाष्य-शंकराचार्य; गीताभाष्य-शंकराचार्य; उपनिषद्भाष्य-शंकराचार्य; पञ्चपादिका-सुरेश्वराचार्य; चित्सुखी-चित्सुखमुनि; खण्डनखाद्य-हर्ष; अद्वैतसिद्धि-मधुसूदन-सरस्वती; पञ्चदशी-विद्यारण्य; मांडुक्योपनिषदि गौडपादकारिका-गौडपाद; सिद्धांतलेश-अप्पय्या-

दीक्षित; नैष्कर्म्यसिद्धि-सुरेश्वर; उपदेशसाहस्त्री-शंकराचार्य; अद्वैतकामधेनु-उमामहेश्वर; अद्वैतकालामृत-नारायण पण्डित; अद्वैतकौस्तुभ-भट्टोजी दीक्षित; अद्वैतचन्द्रिका-अनन्तभट्ट; अद्वैतचिंताकौस्तुभ-महादेवानंद; अद्वैतचिंतामणी-रङ्गनाथ; अद्वैतज्ञानसर्वस्व-मुकुन्दमुनि; अद्वैततत्त्वदीप-नित्यानन्द; अद्वैततरंगिणी-रामेश्वरशास्त्री; अद्वैतदर्पण-भुजराम; अद्वैतदीपिका-विद्यारण्य; अद्वैतदीपिका-नृसिंहाश्रम; अद्वैतनिर्णय-अप्पय्यादीक्षित; अद्वैतनिर्णयसंग्रह-तीर्थस्वामिन्; अद्वैतपञ्चपदी-शङ्कराचार्य; अद्वैतपरिशिष्ट-केशव; अद्वैतप्रकाश-रामानन्दतीर्थ; अद्वैतबोधदीपिका-नृसिंहभट्ट; अद्वैतब्रह्मविद्यापद्धति-नन्दीश्वराचार्य गोपालश्रम; अद्वैत ब्रह्मसिद्धी-सदानन्द काश्मिर; अद्वैतभूषण (?) अद्वैतमकरंद-लक्ष्मीधर कवि; अद्वैतमङ्गल-मधुसूदनवाचस्पति; अद्वैतमंजरी-मधुसूदनवाचस्पति; अद्वैतमतसार-मधुसूदनवाचस्पति; अद्वैतमुक्तासार-लोकनाथ; अद्वैतमुखर-रंगराज; अद्वैतरत्न-रंगराज; अद्वैतरत्नकोष-अखण्डानन्द; अद्वैतरत्नकोष-नृसिंहाश्रम; अद्वैतरत्नरक्षण-मधुसूदनसरस्वती; अद्वैतरस्य मंजरी-नल्ला पण्डित; अद्वैतरहस्य-रामानन्दतीर्थ; अद्वैतरीति-नृसिंह पञ्चाश्रमिन्; अद्वैतवाद-नृसिंहाश्रम; अद्वैतविद्याविचार-वेंकटाचार्य; अद्वैतविद्याविजय-महाचार्य; अद्वैतविवेक-आशाधरभट्ट; अद्वैतविवेक-रामकृष्ण; अद्वैत-वैदिकसिद्धांतसंग्रह-नरसिंह; अद्वैतशास्त्रसारोद्धार-रंगोजीभट्ट; अद्वैतसिद्धांतविवेचन-ब्रह्मानंद सरस्वती; अद्वैतसिद्धांत विवेचन-विद्यानंद सरस्वती, अद्वैतसिद्धि-मधुसूदन सरस्वती; अद्वैतसिद्धि-सहजानंद तीर्थ; अद्वैतसिद्धिखंडन-वनमालिन्; अद्वैतसूत्रभाष्य-शङ्कराचार्य; अद्वैतानन्द-ब्रह्मानन्द; अद्वैतानन्दलहरी-वेंकट शास्त्री; अद्वैतानन्दसागर-रघूत्तमतीर्थ; अद्वैतानुभूति-रघूत्तमतीर्थ; अद्वैतामृत-जगन्नाथसरस्वती; अद्वैतेश्वरवाद-रघुनाथ; इ०]

अद्वैतानंद—इस नामके एक प्रसिद्ध महापुरुष काशी क्षेत्रमें सन्यास ग्रहण करनेपर रहते थे। ये मूलतः महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और प्रचंड विद्वान थे। बहुतसे शिष्य इनके पास विद्याध्यायन के लिये आते थे इसलिये काशीमें इन्हें 'गुरुस्वामी' कहते थे। शांकर-वेदान्त विषयपर इनका 'ब्रह्म विद्याभरण' नामका एक अद्वितीय ग्रंथ हैं। सदानन्दकृत 'वेदान्त सार' नामका जो ग्रंथ है उसीपर उनकी संस्कृत टीका है। इनके दो शिष्य थे एक मध्व मुनीश्वर और दूसरे कटिबंधादिक कविता करने वाले अमृतराय। इनका जन्म किस शकमें हुआ तथा मृत्युके समय इनकी क्या आयु थी इसका पक्का पता नहीं है परन्तु अर्वाचीन कोशकारों का कथन है कि शक १६८७ में पार्थिव नाम संवत्सरमें ये काशीमें समाधिस्थ हुए। अमृतरायके गुरु अम्बिका सरस्वती थे यह उन्हींके 'अविनाश सन्देहहरण' नामक ग्रंथसे स्पष्ट है। एक दन्त कथा यह भी है कि मध्वमुनिने अपने गुरु अद्वैतानन्दसे राय महोदयको उपदेश दिलवाया।

[सं० क० का० सू०; अ० का०]

अधर्मसंतति—हरएक देशमें अधर्मयुक्त आचरणके कारण संतति अवश्य उत्पन्न होती है। ऐसी सन्ततिसे अनेक तरहके विकट समाजिक प्रश्न सन्मुख उपस्थित होते हैं। यह कहिये कि वेश्यागमन अथवा शरीर-विक्रयसे ही ऐसी संतति पैदा हो, सो नहीं है, और मार्गोंसे भी ऐसी सन्तति पैदा हो सकती है। कमसे कम अधर्म-संतति की संख्या बढ़ाने के कारण वेश्यागमन से अलग है। इसदेशमें अधर्म संततिके अनेक कारण हैं। देव दासी प्रथाके कारण मन्दिरोंको अर्पित दासियोंकी संतति, विधवा स्त्रियोंके साथ अनीति मय आचरण करके उत्पन्न होनेवाली संतति-यही दो प्रधान अधर्म सन्तति हैं। इस देशमें कुमारियोंसे होने वाली संतति नहीं के बराबर हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका सर्वथा अभाव है। पंढरपूरके 'अनाथबालकाश्रम' की रिपोर्ट में कुमारियोंसे उत्पन्न संततिके आँकड़ोंका उल्लेख रहता है। पश्चात्य देशोंमें 'अधर्म सन्तति' की बाढ़ बहुधा कुमारियोंके कारण ही होती है।

अधर्म संततिके भिन्न भिन्न प्रमाण, समान आचार विधियों से निमंत्रित समाजोंकी नैतिक कक्षा का कुछ कुछ दिग्दर्शन करते हैं। फिर भी जब हम भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी तुलना करेंगे तो अधर्मसन्तति केप्रमाण से उन उन राष्ट्रोंकी नैतिक सभ्यताका निर्णय नहीं किया जा सकेगा। मान लीजिये किसी देशकी अधर्म संतति का प्रमाण बहुत अधिक हो तो उसका कारण केवल यही नहीं हो सकता कि उस देशकी नैतिक अवस्था खराब हो गई है बल्कि यह हो सकता है कि उक्तदेश की आचार विधि (Moral Codes) अथवा आर्थिक अवस्था युवावस्थामें विवाह के लिये पोषक न हो। अथवा यह भी हो सकता है कि बच्चा पैदा होनेपर स्त्री-पुरुष के विवाह करनेसे संतति औरस मानली जाती हो और कानूनन कोई अड़चन न पड़ती हो

तथा अधर्म संततिका सवाल ही महत्वपूर्ण न समझा जाता हो। जिन लोगोंमें अधर्म संतति का प्रमाण कम हो, परन्तु गर्भपात अथवा गर्भधारण के लिये प्रतिबंध या रुकावटें डालनेकी प्रथाएँ चल पड़ी तो केवल अधर्म संतति का प्रमाण देख कर ऐसे लोगोंके नैतिक आचारोंको श्रेष्ठ कहना भ्रमपूर्ण होगा। ऐसी ही गलती न्यूआ होमने 'वाइल स्टैटिटिस्टिक्स' पर ग्रंथ लिखते समय की है। क्रिश्चियन देशोंकी अपेक्षा मुसलमानी देशोंमें अधर्म संतति निस्संदेह कम है; परन्तु इस से यह नहीं कहा जा सकता कि मुसलमान मनोनिग्रह करनेमें उनसे श्रेष्ठ हैं। समान संस्कृति और आचार धर्म पालन करने वाले समाजोंमें अधर्म संततिके प्रमाणमें जो अन्तर अथवा भिन्नता दिखाई देती है वह नीति-विषयक कल्पनाओं और भावनाओंको स्पष्ट करनेमें अवश्य उपयोगी होती है।

यह नहीं हो सकता कि जिन स्त्रियोंको अधर्म संतति उत्पन्न होती है वे स्त्रियाँ सर्वथैव बुरी होती हैं। 'स्त्रियोंके सम्बन्धमें विचार" (Thoughts about women) नामक ग्रंथमें मिस मुलॉक (Miss Mulock) ऐसी स्त्रियों के बारेमें लिखती हैं कि "ऐसी पतित स्त्रियाँ उसी दर्जेकी स्त्रियोंमें एकदम निकम्मी नहीं होती। उनमें से बहुत सी बहुत अच्छी यानी सुधरी-हुई, होशियार सत्यवादी और प्रेमी होती हैं। स्कॉट गेटे (Goethe), ह्यू गो, हाथार्न, टालस्टाय और जार्ज ईलियट जैसे अद्वितीय ग्रंथकारोंने भी यही दिखलाया है।

आँकड़ोंके सहारे अधर्म संततिके प्रमाणके सम्बन्धमें यदि कोई नियम स्थिर किया जाय तो ऐसा हो सकता है। प्रतिवर्ष उसी देशमें अथवा समाजमें उतनी ही बार वही प्रमाण निकलता है। उदाहरण के लिये गत पंद्रह वर्षोंसे इङ्गलैण्ड में अधर्म संतति का प्रमाण प्रति हजार ३९ से लेकर ४२ के मध्यमें रहता था। इस राष्ट्रका यह संतति प्रमाण इतना एकसा ही है कि १८९१ में अलबर्ट लेफिगंवेलने भविष्यवाणी द्वारा घोषित किया था कि "१८९३ में इङ्गलैण्ड और वेल्समें प्रत्येक पैदा होनेवाले बच्चोंमेंसे फी हजार ४२ अथवा ४३ बच्चे अनीतिसे उत्पन्न होंगे और ऐसे बालकोंकी संख्या ३८,००० होगी। जब १८९५ में १८९३ के आँकड़े प्रसिद्ध हुए तो लेफिगंवेलकी भविष्यवाणी पूर्णतः सत्य हुई। मनुष्यकी चाल चलन के लिये बने हुए कानूनों का तथा उनकी पूर्व स्थिति का भलीभांति निरीक्षण करके कहा- जा सकता है कि विकोर अथवा मूर्खतासे जनित बातोंके सम्बन्धमें भी बरसों पहले कोई निश्चित अनुमान बतला दिया जा सकता है।

अधर्म सन्ततिका प्रमाण निकालना—स्थितिशास्त्र (Statistics) का उपयोग करनेके समय अधर्म संतति के अंको की तुलना दूसरे किन अंको से की जाय और प्रमाण निकाला जाय इसकी भिन्न भिन्न रीतियाँ हैं। देशकी कुल लोक संख्या के साथ जारज संततिका जो प्रमाण(Proportion) होता है उससे या १५-१६ वर्षकी अविवाहित स्त्रियों की संख्याके साथ जारज सन्तानकी उत्पत्ति सम्बन्ध निकाल कर अधर्म सन्तति का प्रमाण निकालते हैं।

नीचे दी हुई तालिकामें दो भिन्न भिन्न समयों (१८८०-८१ और १९०१-०४) का भिन्न भिन्न देशों की जनसंख्या की फ़ी हजार अधर्म सन्ततिका प्रमाण दिखाया गया है—

देश	दोवर्ष १८८०-८१	चारवर्ष १९०१-०४	देश	दोवर्ष १८८०-८१	चारवर्ष १९०१-०४
आस्ट्रिया	६२	५७	फ्रांस	२३	२३
सेक्सनी	६४	५२	नार्वे	२५	२२
बवेरिया	५९	४८	बेलजियम	२७	२२
स्वेडन	२९	३३	स्काटलैंड	२८	१७
डेनमार्क	३६	३२	न्यूजीलैंड	१८	१२
प्रशिया	३३	३०	इग्लैंड-वेलस	१९	११
इटली	३५	२५	आयरलैंड	६	५

ऊपर के दोनों समयोंके अंको की तुलना करने से दिखाई देता है कि अधर्म सन्तति धीरे धीरे घट रही है। उससे यह नहीं कहा जा सकता कि इन देशोंका नैतिक सुधार हुआ है क्योंकि सन्तान निग्रह (Birth control) और गर्भनाशके अनेक उपायोंका बड़ा ज़ोर है। तब भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके अधार्मिक आचरणोंमें जो अन्तर दिखायी देता है है उसका कारण क्या हो सकता है ?

(१) धार्मिक श्रद्धा अर्थात् किसी सम्प्रदाय विशेषको अंगीकृत करने से ऐसा अन्तर नहीं दिखायी दे सकता। प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय वालों की प्रशंसा उनके नैतिक आचरण के कारण ही नहीं की जासकती क्यों कि पूर्ण प्रोटेस्टेंट देशोंमें जो स्वेडन, नार्वे, स्काटलैंड और डेनमार्कमें पूर्ण कैथोलिक होने पर भी आयरलैंडकी अपेक्षा अधर्म सन्ततिका प्रमाण बहुत अधिक है। इसके विपरीत

हभी नहीं कहा जा सकता कि कैथोलिक साम्प्रदाय ालों की नैतिक सभ्यता श्रेष्ठ है और वह ऐसी न्तोनोत्पत्तिको रोकती है, क्योंकि पूर्ण प्रोटेस्टेंट इंग्लैण्ड और स्काटलैंडकी अपेक्षा आस्ट्रिया, क्सनी, बवेरिया में अधर्म सन्तति का प्रमाण धिक है। दो बिल्कुल भिन्न-एक क्रिश्चियन और सरा क्रिश्चियनेतर देशोंमें इसकी तुलना करनेपर ो उस तुलनासे क्रिश्चयनदेशोंमें उससे लाभ नहीं ोता। उदाहरणके लिये जापान को लीजिये। हाँ १६०२ में कुल जनसंख्या के साथ अधर्म न्ततिका प्रमाण फी हजार ३० था। अर्थात ोरपके पांच राष्ट्रों (तीन कैथोलिक और दो ोटेस्टेंट) की अधर्म सन्तति का प्रमाण जापान ी अपेक्षा अधिक था। यह ध्यानमें रखने की ात है कि खास इङ्गलैण्डके नार्फोक और हियर ोर्ड परगनोंमें १८६६ से १६०२ यानी चार वर्षोंमें ारज सन्तति की जो संख्या थी वही जापानके त्तर और मध्य प्रांतोंकी थी।

(२) अधर्म सन्ततिके प्रमाणमें फरक डालने ें शिक्षा भी सहायक नहीं होती। जहाँ निरक्षरता अधिक है वहाँ साक्षर जनता की अपेक्षा यह प्रमाण अधिक नहीं दिखायी देता। फ्रांसमें दिखायी देगाकि पेरिसके अलावा जहाँ निरक्षरता अधिक है वहाँ अधर्म सन्तति का प्रमाण बहुत कम है।

(३) कुल जनसंख्याके साथ अधर्म सन्तति का प्रमाण बड़े शहरों की अपेक्षा अन्य भागोंमें अधिक होता है। उदाहरणके लिये इङ्गलैंडके तीन बड़े शहरों और तीन परगनोंके जारज संतानोत्पत्ति का प्रमाण प्रति दस हजार पीछे यों है—

स्थान	१६०१	१६०२	१६०३	१६०४	१६०५
शहर					
लंदन	३७	३६	३६	३८	३८
बरमिंघम	३३	४०	३५	३६	४०
मैंचेस्टर	ः७	३२	३२	३५	३०
परगना					
कंबलैंड	५	५७	६१	५६	५६
नारफोक	६	६१	६४	६२	६५
नार्थ वेल्स	५६	६०	५६	५८	६०

इग्लैंडको छोड़ कर अन्य स्थानोंमें यह नियम विपरीत दिखायी देता है। पेरिस, वाएना, बर्लिन और अन्य राजधानियों में उनके आसपास वाले जिलोंकी अपेक्षा अधर्म संततिका प्रमाण अधिक दिखायी देता है। पेरिस के सम्बन्धमें तो कारण यह है कि वहाँ मजदूर पेशा लोग अधिक हैं और उनमें होनेवाले स्त्रीपुरुषोंके संसर्गको सरकार अथवा धर्मधुरीण नहीं मानते।

(४) गरीबी अथवा बराबर अकाल पड़नेसे अधर्म सन्ततिके, प्रमाणमें बढ़ती नहीं होसकती। उत्तरी आयर्लैण्ड बहुत संपन्न है। किन्तु वहाँ प्रतिवर्ष जारज सन्तानोत्पत्तिका प्रमाण दक्षिण और पश्चिमके अकालपीड़ित भागोंसे अधिक रहता है। दिये हुए कोष्ठक से दिखायी देगा कि लंदन जैसे बड़े शहरके जिस भागमें गरीब लोग रहते हैं वहाँ यह अनीति कम दिखायी देती है। यह बात हर साल दिखायी देती है। लन्दन शहरके कुछ भागोंके आँकड़ों की तुलना निस्सदेह मनोरंजक है। इस शहरमें ऊँचे दर्जेके लोग 'वेस्टएंड' में और गरीब लोग 'ईस्टएंड' में रहते हैं। नीचे फी हजार पैदाइशमें जारजसन्तानोत्पत्तिका प्रमाण दिया जाता है।

लंदन	१६०१	१६०२	१६०३	१६०४	१६०५
ईस्टएंड					
स्टेपने	१२	११	६	१०	१८
वेथनलग्रीन	१३	१२	१५	१४	१३
माइलएंड (पुरानाशहर)	१५	११	१३	१६	१६
ह्वाइटचैपेल	२२	२०	२४	२४	१६
वेस्टएंड					
सेंटजार्ज हनोवरस्क्वायर	४०	५२	४५	४७	४५
केंसिंगटन	४८	४६	४४	४५	४६
फुलहैम	४३	४३	४२	४५	४५
सेंटमेरिलेबोन	१८२	१८१	१८५	१८।	१६८

किसी सम्पूर्ण राष्ट्रमें या उसके खास भागमें अधर्म सन्तति उत्पन्न करनेकी प्रवृत्तिमें जो अन्तर दिखायी देता है उसका सच्चा कारण वंशपरंपरागत प्रमाण है। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई अतर्कनीयशक्ति किसी समाजको दूसरे समाजकी अपेक्षा दुराचार की ओर अधिक खींच ले जाती है। मतलब केवल उतना हो है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रोंको और समाजों को-यह मानते हुए कि सबमें कुप्रवृत्ति एक ही तरह की होती है-रोकने वाली शक्ति का प्रभाव सबके ऊपर समान रूपसे नहीं रहता। दुराचार को रोकनेवाली सबसे प्रबल शक्ति है लोकापवाद। जिस समाजमें

अधर्म सन्ततिकी उत्पत्ति एक स्वाभाविक बात समझी जाती है और उसकी ओर ख्याल नहीं किया जाता और जहाँ ऐसे कुकर्मके कारण बच्चे की मां कलंकित नहीं मानी जाती वहाँ अधर्म संतति प्रमाण अवश्यमेव अधिक होगा। लोगोंकी भावनाओंका मनुष्यके व्यवहार की अन्य बातों पर कैसा परिणाम होता है यह हमलोग रोज देखते ही हैं। कार्सिका या सिसिली देशोंकी नाईं जहाँ खानगी अपराधोंके लिये चुपचाप क्षमा प्रदान किया जाता है, वहाँ कानूनकी मदद न ली जाकर खून किए जा सकते हैं। जहाँ तलाक घृणित नहीं समझा जाता वहाँ तलाक देनेकी प्रवृत्ति प्रवल रहेगी। इस तरह के सूक्ष्म लोकमत का प्रभाव, भिन्न भिन्न समाजोंपर कितना पड़ता है, मनुष्य के व्यवहार पर कई पुश्तों से होते चले आनेवाले परिणामोंके अभ्याससे ही मालूम हो सकता है।

दिये हुए उपरोक्त कोष्टकोंसे हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि साधारणतः यूरोप के सबदेशोंमें अधर्म सन्ततिका प्रमाण धीरे धीरे कम होता जा रहा है। इङ्गलैंड और वेल्स में १५ से ४५ वर्षतक की अविवाहित स्त्रियों के साथ कुल जनसंख्या की अधर्म सन्ततिका प्रमाण ३५ वर्षमें (१८७०-१८०५) प्रति सैकड़ा ५० दिखाई देता है।

इंग्लैण्ड और वेल्स				फीहजार
१८७०—७२	...	...	...	१७०
१८८०—८२	...	...	...	१४१
१८९०—९२	...	...	...	१०५
१९००—०२	...	...	...	८५
१९०३ ...	...	...	..	८४
१९०४ ...	...	...	...	८४
१९०५ ...	...	...	...	८२

अधर्म सन्तति रोकनेके विषयमें बहुत कम लिखा जासकता है। जिन देशोंमें विवाह विषयक अड़चनें कानूनन दूर कर दी गयी हों, वहाँ अवश्य ही इसमें सुधार हो रहा है; परन्तु ऐसे स्थानोंमें बहुधा दाम्पत्यजीवन दुखपूर्ण एवं कष्टमय होता हुआ अधिकाधिक देख पड़ता है और लोगोंकी प्रवृत्ति तिलाककी ओर बढ़ती जायगी। यों तो लोकापवादकी तीव्रता इस समय सब ओर कम होती जा रही है। लोकापवाद तीव्र रहते हुए भी देखा जाता है कि बालहत्याकी ओर प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। हाँ, इतना अवश्य निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि वैवाहिक जीवन और परिवारिक सुखकी लोगोंमें सच्ची कल्पनाएँ फैलने लगें तो अधर्मजननकी मात्रामें कमी होने लगेगी।

भारतवर्षमें अधर्म सन्ततिका प्रमाण बतलाना कठिन है। जहाँ विवाह दर्ज नहीं किए जाते और पैदाइशको म्युनिसिपैलटीमें दर्ज कराना भी लोगोंको अच्छा नहीं मालूम होता वहाँ अधर्म सन्ततिका पता कैसे लगे।

समाजमें अधर्मसन्ततिका स्थान—रोमनोंने अधर्म सन्ततिके दो विभाग किये थे। एक 'नोथी' कहलाती थी अर्थात् वह सन्तति जो रखेलीसे हो और दूसरी 'स्पूरी' कही जाती थी अर्थात् जो न विवाहिता स्त्रीसे और न रखेली ही से होती थी। इन दोनों वर्गोंकी सन्तति माँ की जायदादकी हकदार होती थी। परन्तु 'नोथी' सन्तति केवल बापसे सहायता ले सकती थी किन्तु उसकी सम्पत्तिकी वारिस नहीं होती थी। फिर भी इन्हें नागरिकोंके तथा दूसरे अधिकार प्राप्त थे। जर्मनकानूनका आधार इससे बिलकुल भिन्न था। इसमें समान सामाजिक कक्षाके माता पितासे उत्पन्न सन्तति 'औरस' समझी जाती थी। दूसरी तरहसे उत्पन्न सन्तति 'हीन' समझी जाती थी और माता पिता दोनोंमें जो उतरकर (नीच) होता था उस सन्तति की वही जाति समझी जाती थी। जर्मनकानून का लक्ष्य बीजको शुद्ध रखनेकी ओर था। जर्मनोंने समाजको नैतिक दृष्टिसे शुद्ध करनेकी ओर ध्यान नहीं दिया क्योंकि अनुचित सम्भोग वहाँ निन्दनीय नहीं समझा जाता था। यह कानून पुराने सरदारोंके जमानेमें वैसा ही रह गया। ऐसी सन्ततिको वारिसके हक नहीं थे। तेरहवीं शताब्दी में रोमन कानूनसे प्रभावित होकर इस कानूनमें कुछ सुधार किया गया। परन्तु राजघरानेके लोगोंके लिये इसका अमल नहीं किया जाता था। राजघरानेके किसी पुरुषसे उत्पन्न अधर्म संतति कलंकित नहीं समझी जाती थी बल्कि उसको औरस सन्ततिके हक़ भी प्राप्त थे। फ्रांक लोगों में क्लेविसका दासी पुत्र थियोडोरिक औरस सन्तानकी भाँति ही जायदादका हकदार हुआ। ८९५ ई० में अर्मोल्कने अपनी रखेलीके लड़के इंचटिबोल्डको लोरेनका राजा बनाया। विलियम दी कांकरर (विजेता) की ढालपर उसके औरस न होनेका निशान बना हुआ था क्योंकि वह नार्मण्डीके ड्यूककी रखेलीका लड़का था।

अंग्रेजी कानूनमें अब तक अधर्म सन्ततिको पूरे पूरे अधिकार प्राप्त नहीं हैं। दीवानी कानूनों के मुताबिक वह किसी तरहका वारिस नहीं हो

सकता, क्योंकि वह 'किसी' का लड़का नहीं समझा जाता। नैतिक दृष्टिसे वह न तो परिवार हीन और सम्बन्ध रहित समझा जाता है क्योंकि वह अपनी माँ या बहनके साथ बिवाह तो करही नहीं सकता। वंशगत न सही वह कोई दूसरा नाम ही धारण कर लेता है। यदि पार्लियामेन्ट चाहे तो वह उसे औरस और वारिस भी मानले सकती है।

भिखमंगोंके कानून (Beggar's Act) में औरस सन्तानकी रहनेकी जगह बापके रहने की जगहसे निश्चित करते हैं। परन्तु अधर्म संतति का स्थान माँ के रहनेके स्थानसे मानते हैं। कानूनन अधर्म सन्ततिके संरक्षणका भार बच्चेकी माँ पर है। इसी लिये उसको पालने पोसने की जिम्मेदारी माँ की है। परन्तु आरम्भ ही से अंग्रेजी कानून तत्वतः यह मानता है कि इस जिम्मेदारीमें बापका भी हिस्सा होना चाहिये। यह इस लिये नहीं माना जाता है कि माँ बच्चेके भरण पोषणके लिये कुछ माँगती है या बापको उसके कुकर्मका कुछ दण्ड मिले बल्कि जिस धर्म खातेसे उस बच्चे का पालन पोषण होता है उसपर नाजायज बोझ न पड़े इसीलिये यह तत्वतः कानूनमें संग्रहीत है। १५७६ का कानून जो कि इङ्गलैण्डमें अधर्म सन्तति विषयक कानूनका आधार माना जाता है वह न्याय कर्ताओंको अधिकार देता है कि वे बच्चे जो धर्म-खाते पाले पोसे जायँ उनकी माँ बापसे एक हफ्ते का खर्च वसूल कर सके। १६०९ और १७३३ ई० के इसी विषयके कानूनोंमें ऐसी धार्मिक संस्थाओं और बच्चेकी माँ को अधिकार दिया गया कि वे बच्चे के बापको सामनेले आवें और जब तक बाप बच्चेकी परवरिशका खर्च धार्मिक संस्थाको न दे वह कैद में रखा जाय। १८०९ और १८१० ई० के कानूनों के अनुसार ये बन्धन और भी दृढ़ किये गए। १८३२ ई० में भिखमंगोंके सम्बन्धमें जो कानून है उसकी पाबन्दी कहाँ तक होती है इसकी जाँचके लिये एक कमीशन नियुक्त हुआ। कमीशनने अपनी रिपोर्टमें अधर्मसन्ततिपर विशेष ध्यान दिया। १५७६ ई० से तब तकके इस सम्बन्धी कानूनोंपर विचार कर कमिशनने निश्चय किया कि अधर्म सन्ततिको स्वीकार करनेवाला कानून अदूरदर्शिता से भरा हुआ है। कारण यह है कि वह बहुतसे कुकर्मोंके लिये गुंजाइश रखता है। उदाहरणके लिये स्थानीय धर्म संस्थाओं द्वारा एक हफ्तेका खर्च जो बच्चेके बापसे वसूल किया जाता था वह बहुधा बच्चेकी माँको दे दिया जाता था। कई मौकोंपर तो वह रकम माँको दिलानेकी जिम्मेदारी भी धार्मिक संस्थाएँ ले लेती थीं। कमिशनने सुझाया कि बच्चेकी परिवरिशकी जिम्मेदारी माँ पर होनी चाहिये; विधवा भी तो ऐसी जिम्मेदारी सहन करती ही हैं। इसलिये व्यभिचारकी यदि गुंजाइश रखी जायगी तो कहना पड़ेगा कि विपत्ति की अपेक्षा दुराचार ही को अधिक महत्व दिया जा रहा है। १८३४ ई० में भिखमंगोंके कानूनमें संशोधन हुआ। उसके अनुसार बच्चेके माने हुए बापसे उसकी परवरिश होनेका तत्व स्वीकृत किया गया। परन्तु इसकी अवहेलना होने लगी। जनता इस अवहेलनाको अनुचित समझती थी, इसलिये १८४४ में अधर्म संतति सम्बन्धी कानूनों की जाँचके लिये एक कमिशन नियुक्त हुआ। कमीशनने रायदी कि बाप ही को बच्चेके भरण पोषणकी व्यवस्था करनी चाहिये। १८४५ ई० में अधर्म सन्ततिका कानून पास हुआ। इसके अनुसार बच्चेको माँको यह हक प्राप्त हुआ कि वह बच्चे के बापपर दीवानी अदालतमें खुले आम मुकदमा चला सके और धर्मखाता इसमें हस्तक्षेप न करे। आगे चलकर धर्म खातेको यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह बच्चेके बापसे उसकी परवरिशका खर्च वसूल करसके।

इस समय अधर्मसन्ततिको जो हक मिले नहीं हैं उनमें प्रधान यह है कि वह किसीका भी वारिस नहीं हो सकता क्योंकि वह किसीका सम्बन्धी (रिस्तेदार) नहीं होता। किसी भी पूर्वजका बीज उसमें नहीं माना जाता। इस लिये ऐसी अधर्मसन्ततिके अतिरिक्त यदि किसी जायदाद का दूसरा कोई हकदार न हो तो जो वह जायदाद जिसके अधिकार कक्षामें पड़ेगी उसको मिलेगी। जिस तरह ऐसा बालक (अधर्म सन्तति) किसीका वारिस नहीं होता उसी तरह उसका वारिसभी उसीकी और ससंततिके सिवा कोई नहीं हो सकता। इसलिये यदि ऐसा मनुष्य (अधर्म जनित) कोई जायदाद खरीदे और वह निस्संतान अथवा बिना विल (Will) किए मर जाय तो उस जमीनका वारिस जमीदार होता है। पहले अधर्म संततिको धर्मसंस्थाओंमें कोई पद या कार्य नहीं मिलता था। परंतु इस समय साधारण मनुष्य और अधर्म संततिमें भेद नहीं माना जाता। स्कॉटलैण्डमेंभी अधर्म संततिके संबंधमें ऐसेही कानून है। पहले स्काटलैण्डमें ऐसा मनुष्य (अधर्मसंतति) नि संतान होता था तो उसे मृत्युपत्र (Will) बनवानेकाभी अख्तियार नहीं था। १८३५ई०

में इसमें सुधार किया गया और वसीयतनामा बनवानेका अधिकार अधर्म संततिको दिया गया। इंग्लैडमें प्रचलित कानूनोंके अनुसार पार्लियामेंट अपने अधिकारके बलपर प्रस्ताव करा कर ऐसे व्यक्तिको अधर्म संततिके बन्धनोंसे मुक्त कर सकती है। जिन देशोंमें उस संबंधके कानून रोमन कानूनोंके आधार पर बने हैं वहाँ अधर्म संतति का वही दर्जा कायम नहीं रहता बल्कि ऐसी संतानके मां बाप विवाह कर लेते हैं तो ऐसी संतति भी औरस मानली जाती है।

भारतीय समाजमें अधर्म संततिका स्थान—हिन्दू समाज जातिबद्ध है इसलिये अधर्म संततिको किसीभी जातिमें स्थान नहीं मिल सकता है। ऐसी प्रजा अलगही रहती है और अपनी अलग जाति बना लेती है। ऐसी परिस्थिति होनेकी वजहसे यह संभव है कि अधर्म संततिके कारण कुछ छोटी छोटी जातियाँ पैदा हो गयी हों। ऐसी जातियाँ कौन हैं यह आजही कह देना संभव नहीं है। धर्म शास्त्रीय ग्रंथोंमें जिन अनेक संकर जातियोंका उल्लेख है उनमें मागध, सैरंध्र, चांडाल आदि जातियाँ हैं। महाराष्ट्रमें गोवर्धन ब्राह्मणोंको 'गोलक' मानते थे। "अमृते जारजः कुडः मृते भर्तरि गोलकः" उसी मनुस्मृतिके आधार पर वे बहिष्कृत समझे जाते थे। परंतु हम समझते हैं कि यह जाति प्रदेशविशेषमें रहनेके कारण ऐसी कहलाती होगी क्योंकि उनकी ज्योतिषी वृत्ति बहुत प्राचीन है। ब्राह्मण पुरुष और ब्राह्मण स्त्रीकी अधर्म संतति ध्यान न देनेसे ब्राह्मणोंमें मिलनेके कई उदाहरण मालूम हैं। साथमें रहनेवाले परंतु अविवाहित स्त्री पुरुषोंसे होनेवाली संतति कोशिश करके विपत्तिमें पड़ेहुए लड़के लड़कियोंका विवाह संबंध करके अपनेमें मिलाकर अपने माता पिता ही की जातिमें घुस जाती है। विधवाएँ, जिन्हें ऐसी संतति हो जाती है, ऐसे बच्चोंका कुछ इंतजाम कर देती हैं। या तो वे बच्चोंको मार डालती हैं या किसी अनाथालयमें रख देती हैं या मिशनरियोंके सुपुर्द कर देती है या साधु संतोंके हवाले कर देती है। हेमचंद्रका चरित्र-लेखक लिखता है कि पूर्वमें बहुतसे जैनी साधु ऐसीही ब्राह्मण वेश्याओंसे उत्पन्न थे।

जब पुरुष और स्त्री परस्पर भिन्न जातिके होते हैं और एक साथ रहते हैं और उन्हें संतति होती है उसका अवश्यही संरक्षण होता है। ऐसी संतति विदुर जाति की संख्या बढ़ाती है। ब्राह्मण पुरुष और ब्राह्मणही स्त्रीसे होनेवाली संततिने अपनी अलग जाति बनाली है। ये अपनेको पाराशर ब्राह्मण कहते हैं। मराठोंमें तो आरंभमें अधर्म संतति अलगही रखी जाती हैं, परंतु समय पाकर जब ये परिवार सुशिक्षित धन सम्पन्नहो जाते हैं तो कुलीन लोगभी उनसे विवाह संबंध स्थापित करने लग जाते हैं। अर्थात् अधर्म संततिके प्रति थोड़ीसी उदारता केवल मराठोंमेंही दिखायी देती है। बंबईमें कुछ अकरमासे मराठोंकी हालत बहुत अच्छी है। वे असल मराठोंमें मिल जानेके लिये तयार नहीं हैं। वे अपनी जातिमेंही विवाह संबंध कर लेते हैं। कई उदाहरण ऐसेभी मिलेंगे जिनमें इनके विवाह संबंध उच्चवर्णीय ब्राह्मणोंके यहाँ भी हुए हैं।

अधर्म संततिके रास्तेमें जो अड़चनें हैं वे सामाजिक हैं। कानून कोई बाधा नहीं देता। विषयमें तो कानून इनके अनुकूलही है। मान लीजिये कि यदि कोई हिन्दू स्त्री किसी यूरोपियन से विवाह करले तो उसकी संतानको हिंदू नहीं कहेंगे। परंतु किसी हिन्दू स्त्रीका किसी यूरोपियनके साथ अनुचित सम्बन्ध (विवाह सम्बन्ध नहीं) हो जायतो उसकी संतति हिन्दू कहलावेगी। बम्बईके 'अकरमासे' मराठोंमें एक शाखा ऐसीभी है। मलायलम जातिके तिप्पा लोगोंमें भी ऐसी जाति पाई जाती हैं। आश्चर्यतो इसी बातका है कि यह वर्ग जाति तिप्पा जातिसे अलग नहीं मानी जाती।

अधिकमास—इसे मलमास अथवा पुरुषोत्तम मास भी कहते हैं। १२वर्ष बाद चैत, जेठ या श्रावण अधिक आ जाते हैं। १८ वर्ष बाद आषाढ़ अधिक होता है; २४ वर्षोंमें भाद्रपद, १४१ वर्षोंमें आश्विन और ७०० वर्षोंमें कार्तिक मास अधिक आता है। आश्विन या कार्तिक ये दो महीने यद्यपि गणनासे मलमास होते हैं तो भी उसे अधिक मास नहीं मानते। जिसवर्षमें आश्विन बढ़ता है उस वर्ष पौषका क्षय माना जाता है। मार्गशीर्ष और पौष दोनों महीनोंके धार्मिक कार्य एक ही मासमें कर लिये जाते हैं। ऐसे संयुक्त मास को 'संसर्व' कहते हैं। कार्तिकके आगे चार महीने नहीं बढ़ते और अश्विन के पहले के महीनों का क्षय नहीं होता।

पूर्व इतिहास—चांद्र वर्ष और सौर वर्षका मेल बैठानेके लिये अपने यहाँ औसत बत्तीस तैंतीस चन्द्रमासके बाद चन्द्रवर्षमें एक महीना अधिक बढ़ा दिया जाता है जिसे अधिक मास कहते हैं। चन्द्र और सौर वर्षोंका प्रचार हमारे

यहाँ वैदिक काल से है और बारह महीनोंके एक वर्ष की काल गणना भी वैदिक काल से चली आती है। परन्तु सौरवर्ष के जहाँ ३६५ दिन होते हैं वहाँ चन्द्र महीनोंके ३५४ दिनही होते हैं। इसलिये यदि एक वर्षके केवल बारह चन्द्र मास ही मानलिये जाँय तो जो मास पहला माना जायगा और वह यदि गर्मीके दिनोंमें हुआ तो वही पहला मास कभी जाड़ेमें कभी बरसातमें हट बढ़ कर पड़ने लगेगा और वर्तमान मुसलमानोंके मुहर्रम मासकी तरह ३३ वर्षों में वह सब ऋतुओं में चक्कर लगा आवेगा। इसका दूसरा परिणाम यह होगा कि ३३ सौर वर्षोंमें चन्द्रवर्षोंकी संख्या एक वर्ष बढ़ जायगी। अर्थात् हरएक चन्द्रवर्ष में ग्यारह या बारह दिन अथवा बत्तीस तैंतीस महीनों के बाद एक अधिक चन्द्र मास माने बिना चन्द्र और सौर वर्षोंका मिलान न मिलेगा। 'ब्राह्मण और संहिता' में 'यज्ञ' और 'संवत्सर' को पर्यायवाची शब्द सिद्ध करनेवाले अनेक प्रमाण हैं (ऐ-ब्रा-२-१७; ४. २२। शत० ब्रा०११.१. ११; २. ७. १ तै० सं० २. ५. ७. ३; ७. ५. ७. ४; ७. २. १०. ३) इसी कारण स्व० लो० तिलक के मतानुसार—"यह संवत्सर का ही दूसरा रूप था और इसी कारण वह १२ चन्द्रमासोंमें पूर्ण होता था। परंतु नवीन यज्ञ वर्षारंभ ही से प्रारंभ होना चाहिये इसलिये अथर्ववेद में (४. ११. ११) में कहा गया है कि यज्ञदेवता प्रजापति बचे हुए १२ दिन यज्ञकी तयारी करने में व्यतीत करते हैं। ऋग्वेद (४. ३३. ७) में भी जो लिखा है कि वर्षभर परिश्रम करनेके कारण ऋभू (ऋतू) इस अवधि में अपनी गति धीमी कर सूर्यका आतिथ्य ग्रहण करते हैं। ऐसा विदित होता है कि यह इन अधिक दिनोंको लक्ष्यकर के लिखा है। इससे यह अनुमान निकलता है कि ऋग्वेद कालमें भी किसी समय चन्द्र और सौर वर्षका मेल बैठानेके लिये हरएक चन्द्र वर्षमें बारह दिन अधिक जोड़ देनेकी प्रथा प्रचलित थी"। (Tilok orion 1916)। इन अधिक दिनोंके सम्बन्धमें ऋग्वेद (१.२५.८) में एक जगह उल्लेख और है। वहाँ अर्थसंगति से अधिक मासका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। तैत्तिरीय संहिता (१. ४. १४) में अधिक मासको 'संसर्प' कहा है और पुनः (५-६-७) में तेरह महीनोंका उल्लेख है। 'वाजसनेयि' संहिता में अधिक मासके 'अहंसस्पति' (७-३०) और 'मलिम्लुच' नाम दिये हैं। इनमें से दूसरे नाम 'मलिम्लुच' से आजकल व्यवहार में आनेवाला 'मलमास' शब्द सिद्ध हुआ है। अधिक मासकी अपवित्रताका उल्लेख एतरेय ब्राह्मण' में भी मिलता है क्योंकि उसके ३.१. में तेरहवें महीनेको निंद्य माना है। मूहूर्त चिन्तामणि के रचयिता का कथन है कि जिस वर्षमें एक मासका क्षय हो जाता है और दो अधिक मास आते हैं उन्हीं के लिये 'अंहस्पति' और 'संसर्प' शब्द उपयुक्त होते हैं। (प्रकरण १, श्लोक ४७) इनमें क्षयमास के पहले आनेवाले अधिक मासको संसर्प और बाद आनेवाले अधिक मासको अंहस्पति कहते हैं। यूरोपियन पडितोंका कथन हैं कि जिन वेदोंमें अधिक मासका उल्लेख है उनके कुछ भाग ईसाके १५०० वर्ष पूर्व तयार हुए होंगे। परन्तु कै० शं-बा-दीक्षित के मतानुसार अधिक मास बढ़ानेकी ही प्रथा शक गणनाके ५००० वर्ष पूर्वसे इस देशमें प्रचलित है।

अधिक मास निर्णय करनेकी प्राचीन और आधुनिक पद्धति—प्राचीन समयमें इस देशमें यह प्रथा थी कि जिस नक्षत्रमें चंद्र पूर्ण होता था उसी नक्षत्रके नामसे महीनेको पुकारते थे। इस लिये सरसरी तौर पर यह मालूम होता है कि किस नक्षत्र पर चंद्र लगातार दो महीनेमें पूर्ण होताहै अथवा किन नक्षत्रोंमें वह बिलकुल पूर्ण नहीं होता यह देखकर ही शुरूमें अधिक मासको क्षयमास मानते थे। परन्तु कृत्तिकासे लेकर दो दो नक्षत्रों पर पूर्ण चन्द्र हो तो उसे कार्तिकादि नाम दिये जायँ और फाल्गुन भाद्रपद आश्विन तीन तीन नक्षत्रोंके मान लेनेसे इस नियमके अनुसार अधिक मास और क्षयमास बारबार आते हैं। स्व. शं. बा. दीक्षितके मतानुसार चन्द्रकी गतिका सूक्ष्ममान ज्ञात होनेके पूर्व कुछ समय तक यही प्रथा स्थूल रूपसे प्रचलित थी (Twelve year cicle by S.B. Dixit Indian Antiquary Jan,1888) प्रसिद्ध इतिहासकार रा. ब. चिंतामणि विनायक वैद्य लिखते हैं कि भारतीय (महाभारतीय) युद्ध कालमें पाँच वर्ष का एकयुग मान कर उसीमें दो महीने अर्थात् एक पूरे ऋतुका पूरा समय अधिक काल माननेकी प्रथा रही होगी।" वेदांग ज्योतिषमें चन्द्र मान बहुत सूक्ष्म है। वेदांग ज्योतिष पद्धतिसे ३० महीनोंमें एक अधिक मास आता है। उस समयभी पांच वर्षका एक युग मानकर तीसरे वर्ष आषाढ़ और श्रावण दो में से कोई एक अधिक मास और पांचवें वर्ष पौषके बाद दूसरा अधिक मास बढ़ा देते थे। मालूम होता है कि यह नियमभी सूक्ष्म न होनेके कारण प्रचलित न रह सका। 'पितामह सिद्धांत'

में भी ३२ महीनोंके बाद अधिक मास माननेकी पद्धति दी है। 'पंच सिद्धांतिकोक्त' के अनुसार सूर्य सिद्धांत आदि सूक्ष्म सिद्धांत तय्यार हो जाने पर अधिक मास सूक्ष्म गणितके अनुसार आने लगा। इस समय मासमानके सम्बन्धमें सामान्य नियम यह है कि जिस चन्द्र मासमें मेष संक्रमण हो उसे चैत्र मान कर आगेके महीनोंको वृषभ इत्यादि संक्रांतियोंके अनुसार वैशाख आदि नाम क्रमसे देने चाहिये और जिसमें स्पष्ट संक्रमण न हो उसे अधिक मास समझना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्धमें जो दो परिभाषाएँ उपलब्ध हैं उन के अनुसार अधिक मासका नामकरण पूर्व अथवा उत्तर मासके नामके अनुसार हो सकता है। इस विषयमें माधवाचार्य (विद्यारण्य) कृत 'कालमाधव' में ब्रह्मसिद्धांतका माना जानेवाला एक वचन है। वह यों है—"मेषादिस्थे सवितरि-यो यो मासः प्रपूर्यते चन्द्रः। चैत्राद्यः सज्ञेयः पूर्ति द्वित्वेऽधिमासोंऽत्यः॥" व्यासकृत कालतत्व विवेचन नामक धर्मशास्त्रके ग्रन्थमें एक उद्धरण और भी है- मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भ प्रथमे क्षणे। भवत्तेऽब्दे चांद्रमासाश्चैत्राद्या द्वादशस्मृताः॥" इन में पहला ग्रन्थ शक १३०० और दूसरा ग्रन्थ १५४२ का है। दोनोंके अनुसार अन्य मासोंकी एकही संज्ञा होती है पर पहिले वचनके अनुसार अधिक मासका नाम-करण पूर्वके महीनेके अनुसार और दूसरेके अनुसार पश्चात्-मासके अनुसार होता है। इस समय ऊपर कही हुई दूसरी पद्धतिही प्रचलित है। परन्तु पहली परिभाषा कुछ काल तक मानी जाती थी। इसे स्पष्ट करनेवाला चौथे धरसेनका शककी छठीं शताब्दीका एक ताम्रपत्र खेड़ा जिलेमें प्राप्त हुवा है।

मध्यम संक्रमण और स्पष्ट संक्रमणमें अधिक मास—इस समय अधिक मास अथवा क्षयमास स्पष्ट संक्रमण ही के आधार पर माना जाता है। किन्तु यह दिखायी देता है कि किसी समय मध्यम मान हीके अनुसार अधिक मास माननेकी प्रथा प्रचलित थी। मध्यम मानसे ३२ चन्द्र मास १६ तिथियाँ, ३ घड़ी और ५५ पलमें अर्थात् कभी ३२ या कभी ३३ महीनों पर अधिक मास आता था। इसी मानसे और मासका मान ३० दिन २६ घड़ी का और १८ पलका और चन्द्र मासका २६ दिन ३१ घड़ीका और ५० पल है। इस लिये एक चन्द्र मासमें दो संक्रांतियाँ कभी नहीं होती। और इसी कारण क्षयमास कभी न होगा। सूर्यकी स्पष्ट गति सदा समान नहीं होती। इसलिये स्पष्ट सौरमास कम या अधिक मानके होते हैं। एक चन्द्रमासमें कभी दो संक्रमण हो सकते हैं। इसीसे क्षयमास होता है। जब क्षयमास होता है तब एकही वर्षमें दो अधिक मास होते हैं। स्पष्ट मानके अनुसार दो अधिक मासोंमें लघुतम अन्तर २८ महीने या कभी २७ महीने होता है और महत्तम अन्तर ३५ महीने होता है। ऊपर जिस धरसेनके ताम्रपत्रका उल्लेख किया है उससे दिखायी देता है कि शक ५७० में गुजरातमें मध्यम मानके अनुसार अधिक मास माना जाता था। मुहूर्त ग्रन्थ ज्योतिष दर्पण में श्रीपति (शक ६६१) के सिद्धांत शेखर ग्रन्थका एक उद्धरण है जिससे स्पष्ट विदित होता है कि मध्यम मानके अनुसारही पहले अधिक मास माननेकी पद्धति प्रचलित थी। भास्कराचार्य क्षयमास बतलाते हैं। मध्यममानके अनुसार क्षयमास नहीं आता। इससे मालूम होता है उनके समयमें उक्त पद्धति प्रचलित नहीं थी। स्व. श. बा. दीक्षितका कथन है कि शक १००० के लगभग मध्यम मानके अनुसार क्षयमास माननेकी पद्धति का लोप हो चुका था।

स्व शं. बा. दीक्षित और रार्बट सेवेल द्वारा १८९६ में प्रकाशित 'इंडियन कैलेंडर' नामक पुस्तक में ई० ३०० से १६०० तक स्पष्ट मानके अनुसार अधिक मास और ३०० ई० से ११०० ई० तक के मध्यम मानके अनुसार अधिक मास दिये हुए हैं।

इस समय नर्मदाके उत्तरीय भागोंमें महीना पूर्णिमांत माना जाता है। वराह मिहिरके समय जिस पूर्णिमांत मासमें मेष संक्रमण होता था उसी को चैत्र मास माननेकी प्रथा थी। परन्तु अब पूर्णिमांत मानमें भी मास संज्ञा और अधिक मास अमांत मानके अनुसार ही मानते हैं। दोनों ओर के शुक्लपक्ष सदा एक ही संज्ञाके मासके होते हैं। दक्षिणकी ओर कृष्णपक्ष जिस संज्ञाके मासका होगा उसीके आगेवाली संज्ञाके मासका उत्तरकी ओर वही कृष्ण पक्ष होता है।

पूर्णिमांत और अमांत मान—अमांत मानके अनुसार जब अधिक मास होता है उसी समय पूर्णिमांत मानके अनुसार अधिक मास होता ही नहीं। कारण यह है कि अमांत मासके अनुसार जब अधिक मास होता है उस समय एक संक्रांति अधिक मासके पूर्व पड़नेवाले कृष्णपक्षके अन्तमें आती है और दूसरी अधिक मासके बाद आनेवाले शुक्लपक्षके आरम्भमें आती है। पूर्णिमांत मानके अनुसार अधिक मासका शुक्लपक्ष विगत

मासका दूसरा पक्ष होता है और कृष्णपक्ष आनेवाले महीनेका पहला पक्ष होता है। इस रीतिसे उस समय दोनों पूर्णिमांत महीनोंमें संक्रमण होने के कारण उनमेंका कोई भी वस्तुतः अधिक मास नहीं हो सकता। अमांत मानके अनुसार मास संज्ञा और अधिक मास दोनोंको पूर्णिमांत मानपर लादनेके कारण अधिक मासका नामकरण करनेमें भी बहुत अव्यवस्था होती है। मान लीजिये कि अमांत-मानके अनुसार वैशाख अधिकमास आता है। उसी समय पूर्णिमांत मानके अनुसार वैशाख महीनेका कृष्णपक्ष अर्थात् प्रथम पन्द्रह दिन गुजर ही चुके होते हैं। अमांत मानके अनुसार पूर्णिमांत मानमें अधिक मासका नाम वैशाख रखा जाय तो शुद्ध वैशाख महीनेका कृष्णपक्ष पहले, उसके पश्चात् अधिक वैशाख और तब शुद्ध वैशाखका कृष्णपक्ष—इस तरहका एक विचित्रक्रम दिखायी देगा। इस अव्यवस्थाको दूर करनेके लिये ऐसे मौकोंपर पहले और दूसरे पक्षोंको मिलाकर प्रथम वैशाख और तीसरे तथा चौथे पक्षको मिलाकर द्वितीय वैशाख मानते और लिखते हैं।

अधिकमास महात्म—वृहन्नारदीय पुराण और पद्मपुराणमें 'पुरुषोत्तम' मास महात्म्य और 'मलमास' महात्म्यमें अधिक मासके महत्वका वर्णन किया हुआ है। पहलेमें ३१ और दूसरेमें १६ अध्याय हैं। ये महात्म्य वृत्तिवान ब्राह्मणोंके अनुकूल हैं। इनमें बतलाया गया है कि अधिकमासमें किन किन व्रतोंका पालन करना चाहिये कौन कौनसे दान देने चाहिये, व्रतोंके उद्यापन किस तरह करना चाहिये किस व्रतोंसे कैसी फल प्राप्ति होती है, इत्यादि इत्यादि। इनमें अधिक मास महात्म्य श्रवण करनेकी फल श्रुति भी सम्मिलित है। 'मलमास महात्म्यमें' तो व्रतों और दानोंपर अधिक जोर दिया गया है। वृहन्नारदीय पुराणमें पुरुषोत्तममास महात्म्यमें क्या बतलाया है इसे दिखानेके लिये हम संक्षेपमें थोड़ासा वर्णन देते हैं।

पहले अध्यायमें बतलाया है कि इस महात्म्य को पहले किसने किससे कहा था और आगे वह किस परंपरा से कहा जाता था। इस अध्याय का नाम 'शुकागमन्न' है। आगे चलकर दूसरे अध्यायमें पुरुषोत्तम मासके सम्बन्धमें विष्णुभगवान और नारदजी का संवाद दिया है। अधिक मास व्रतादिकके लिये अयोग्य समझा जानेके कारण अपनी न्यूनता को पूर्ण कराने की भावना से विष्णु भगवान के पास प्रार्थना करने जाता है—यही तीसरे अध्याय में है। चौथे अध्यायमें अधिक मास द्वारा की हुई विष्णु भगवान की प्रार्थना दी है। पाँचवें अध्यायमें विष्णु भगवान का अधिक मासके साथ गोलोकमें जानेका वर्णन और अधिक मास के लिये (विष्णुभगवान द्वारा) श्रीकृष्ण की प्रार्थना है। छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण द्वारा अधिक-मासको वरदानप्राप्तिका वर्णन है। अध्याय ७ से १२ तक का वर्णन यों है-श्रीकृष्ण पांडवोंको उनकी विपत्ति का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि द्रोपदी पिछले जन्ममें मेधावी नामक ब्राह्मण की लड़की थी। मांबापके मरने पर अनाथ हो गयी। ऐसी अवस्थामें उसे दुर्वासा ऋषिका दर्शन हुआ। दुर्वासा ऋषिने उसे पुरुषोत्तम मासका महात्म बतलाया। द्रोपदी के यह पूछनेपर कि और महीनों की अपेक्षा पुरुषोत्तम मासको क्यों इतना महत्व दिया जाय, ऋषि क्रोधित होगए। उन्होंने उसे श्राप तो नहीं दिया पर यह कहा कि जिस अवस्थामें तूने पुरुषोत्तम मासका अनादर किया है उस अवस्थामें तुझे आगे चलकर दुख भोगना पड़ेगा। इसपर द्रौपदीने शिवजी की आराधना आरंभ की। शंकर प्रसन्न हुए और वरदान मांगने को कहा। वार मांगते समय द्रौपदीने 'पति' शब्द पाँच बार उच्चारण कर पति' देने की प्रर्थनाकी। इसलिये भगवान शकर ने वर दिया कि अगले जन्ममें तेरे पाँच पति होंगे। अगले जन्ममें वह यज्ञकुंडसे द्रौपदीके रूपमें उत्पन्न हुई और पांडवोंकी पत्नि हुई। पुरषोमत्त मासका अनादर करनेके करण उसे दुश्शासन द्वारा पीड़ा और पश्चात् वनवास प्राप्त हुआ। (अ-१३ से १६) यहाँ से दृढ़धन्वा नामक राजाकी कथा का आरम्भ होता है। एकवार वह शिकार करने गया। जंगलमें किसी तोते के मुँहसे एक श्लोक सुनकर वह चिंताशील हुआ। इसी मौके पर वाल्मीकि मुनि वहां आकर उसे उसकी चिंताका कारण समझाते हुए उसके पूर्वजन्मकी कथा उसे सुनाने लगे कि तुम पहले जन्ममें द्रविड़ देशमें रहते थे। तुम्हारा नाम सुदेव था। तुमने सन्तान के लिये तप आरम्भ किया। यद्यपि तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं था, परन्तु गरुड़ की प्रार्थना पर विष्णु भगवान ने एक पुत्र दिया। देवल ऋषिने तुम्हे बतलाया कि बारहवें वर्ष यह लड़का डूबकर मर जायगा। जब वह निश्चत समयपर मर गया तब तुम और तुम्हारी स्त्री विलाप करने लगी। तब श्री हरिने उस बच्चेको जिला दिया और उसे दीर्घायु दो। श्रीहरीने भी तुम्हें (सुदेव को) पूर्व वृत्तांत बतलाया। पुराने ज़माने में धनु नामके

एक ऋषि थे। उन्होंने अमरपुत्र होनेके लिये कठिन तप किया। उसे अमर पुत्र तो नहीं प्राप्त हुआ, पर भगवानने उससे कहा कि यह जो सामने पहाड़ है वह जब तक रहेगा तब तक तेरा पुत्र भी जीवित रहेगा। इस बालकने महिषि ऋषि की शालिग्राम की मूर्तिको कुएँ में फेंक दिया। ऋषिने लड़केको श्राप दिया कि तू मर जायगा। किन्तु जब वह नहीं मरा तब ऋषिने उसके न मरने का कारण तपोबल से ज्ञात कर लिया। उन्होंने हजारों महिषि (भैंसे) उत्पन्न किये जिन्होंने उस पर्वतको नष्ट कर डाला। मुनिपुत्र भी तत्काल ही मर गया। धनुऋषिने बालकके साथ चिता में प्रवेश किया। इस प्रकार पूर्व वृतान्त कहकर श्रीहरिने कहा कि तू अगले जन्ममें दृढ़धन्वा नामक राजा होगा और विष्णुको भूल जायगा। तब यही तेरा पुत्र शुक (तोता) के स्वरूपमें सामने तुझे याद दिलावेगा और वैराग्य प्राप्त होगा। (अध्याय २०) पुरुषोत्तम मास महात्म्य सुनने के कारण तुझे पुत्र प्राप्त होगा। (अ० २१) इसमें पूजनविधि वर्णित है। अध्याय २२ में व्रत नियम आदि का वर्णन है। अध्याय २३ और २४ में पुरुषोत्तम मासमें दीपदान करने का वर्णन है। उसका फल और महत्व दिखलाने के लिये अगस्त्य ऋषिद्वारा चित्रबाहु राजाको उसके पूर्वजन्मका वृतांत सुनाने की कथा वर्णित है। पूर्वजन्ममें राजा चमत्कारपुरीमें मणि ग्रीवके नामसे रहता था। वह परम नास्तिक और जीवहिंसा परायण शूद्र था। इस शूद्र मणिग्रीव ने उग्रदेव नामक ब्राह्मण की एक बार सेवा की। उग्रदेवने उसे पुरुषोत्तम मास में दीपदान करने का उपदेश दिया। उक्त दीपदान करनेके कारण ही मणिग्रीव अगले जन्ममें चित्रबाहु राजा हुआ। पचीसवें अध्यायमें वाल्मीकि मुनिने दृढ़धन्वा राजाको उद्यापन विधि बतलाया है। छब्बीसवें अध्यायमें गृहीत नियमोंके त्यागके सम्बन्धमें विवेचन किया गया है। इस तरह वाल्मीकि मुनिके कथा कहने पर दृढ़धन्वा राजगद्दी पर अपने पुत्रको बैठाकर तप करने चला गया। आगे अपनी स्त्री समेत भगवत्‌चरणमें लीन हो गया। सताईसवें अध्यायके अवशेष भागमें चित्र शर्मा नामक एक कृपण ब्राह्मण की कथा है। उसने पुण्यकार्य कुछ भी नहीं किया। वह सदा चोरी और पापधर्ममें प्रवृत्त रहता था। इस लिये मरने पर उसको पहले प्रेतयोनि प्राप्त हुई और पश्चात् वह बन्दर बनाया गया। इस अवस्थामें वह पुरुषोत्तम मासके कृष्णपक्षकी दशमी को एक कुन्डमें गिरपड़ा और पांचवे दिन मर गया। इस कारण अनायासही व्रतका आचरण हो जानेसे उसे दिव्य देह प्राप्त हुई और वैकुंठधाम में चला गया। उन्तीसवें अध्यायमें पुरुषोत्तम मासके हर एक दिनका आन्हिक कृत्य बतलाया है। तीसवें अध्यायमें पतिव्रता धर्मका निरूपण किया गया गया है। उसका अधिक मास महात्म से वस्तुतः कोई लगाव नहीं है। अन्तिम अर्थात् इकतीसवें अध्यायमें पुरुषोत्तममासमहात्म सुनने के फलका वर्णन है।

अधिरथ—चम्पाके आसपास रहने वाला एक सूत। यह धृतराष्ट्रका मित्र था। (महाभारत ३,३०८,१७१५३) इसकी स्त्रीका नाम राधा था। इसी दंपतिके द्वारा कर्णका पालन पोषण किया गया। ऐसा कहा जाता है कि यह अंग देशका राजा था, अधिरथने कर्णका वसुषेण नाम रखकर उसको हस्तिनापुरमें द्रोणाचार्यके पास अस्त्रविद्या सीखनेके लिये भेजा (म० भा० ३.३०८) इसी कारणसे महाविख्यात् कर्णके राधेय, सूतपुत्र, सूत इत्यादिनाम हैं।

अधेवाड़—भावनगरके दक्षिणमें लगभग तीन मील पर मालेश्वरी नदीके उत्तर तीरपर यह गाँव बसा हुआ है। यहाँकी जनसंख्या लगभग ५०० है। यहाँके जाजदियाका हनुमानजीका मन्दिर तथा गुरुशिष्यकी पादुका दर्शनीय तथा महत्वका स्थान हैं। यह स्थान सोमनाथके यात्रा का एक क्षेत्र है। ठाकुर रामदासने अपने पुत्र साधुलजीको यह गाँव दिया था। यह तबसे उसी के वंशजोंके पास है। (वाँ. ग. ८)

अन—यह लोअर वर्माके क्योकपा जिलेका मुख्य नगर है। यह उ० अ० १९°१६' से २०°४०' और पू० रे० ६३°४५ से ६४°२६' में स्थित है। इसका क्षेत्रफल १८६१ वर्ग मील है। सं १९०१ में इसमें ३५३ देहात थे। जनसंख्या करीब तीस हजार है। इस भागमें जंगल बहुत है। सं० १९०३-४ में केवल ३९ वर्ग मीलमें खेतीकी जाती थी। यह अन नदीपर बसा है। (इं० ग० ५)

अनकापल्ली—यह मद्रास प्रान्तके विज-गापट्टम जिलेकी नैऋत्य दिशाकी एक तहसील है। यह उ० अ० १७°२९' से १७°५१' और पू० रे० ८२°५७' से ८३°१५' में स्थित है। इसका क्षेत्रफल २९७ वर्गमील है। यहाँकी जनसंख्या लगभग एकलाख पैंसठ हजार है। इस तहसीलमें अनकापल्ली गाँव और १४३

देहात हैं। १६०३-४ ई० में कुल आमदनी १२२०००) थी। तहसीलके उत्तरका प्रदेश उपजाऊ है। चावल और ईख पैदा होती है। इस तहसीलमें केवल जमीदारियाँ हैं। गोडेघराना, कासीमकोट, विजयानगरम और चिरपुरपल्ली जमीदारियाँ मिलाकर एक तहसील बनी है। कासीमकोट जमीदारी पहले चिकेकोल सरकारको फौजदारीका स्थान था। सं० १७६४ से १८०२ ई० तक कासीम कोट जिलेका मुख्य ठिकाना था। १८०२ ई० के बाद इसका विजयनगरमें समावेश होगया (इं० ग० ५)

अनकापल्ली गाँव—यह अनकापल्ली तहसील का मुख्य ठिकाना है। यह उत्तर अक्षांश १७°४२ और पू० रे० ८३°२' में स्थित है। यह गाँव शारदा नदीके तीर पर विजगापट्टण (विशाखपट्टनम्) गाँवके पश्चिममें २० मीलपर बसा हुआ है। यह भाग उपजाऊ है। इसलिये यहाँसे अनाज और गुड़ बाहरी प्रान्तोंमें भेजा जाता है। यहाँकी जन संख्या (१६२१) २०३६० थी। यहाँ १८७८ ई० में म्युनिसीपैल्टी स्थापित हुई। १६०३-४ ई० में आय २५०००) और व्यय २१०००) था। यह गाँव सदर्नमराठा रेल्वेके वाल्टेर लाइनपर एक स्टेशन है। पानी लगभग ३४-६८" बरसता है। (अर्नोल्ड इण्डियन गाइड, इं० गं ५)

अनक्ज़गोरस—यह आयोनियन तत्वज्ञान का बड़ा अच्छा वेत्ता होगया है। इसका जन्म ई० पू० ५०० में एशिया माइनरके प्रसिद्ध नगर क्लेज़ोमॅनीमें हुआ था।

लगभग ई० पू० ४६४ में यह क्लेज़ोमॅनी छोड़कर यूनानके प्रसिद्ध नगर ॲथेन्समें चला आया था। यह ज्योतिष तथा गणित-शास्त्रका अच्छा विद्वान था। दूसरे यह साधुवृत्तिका पुरुष था और अपने उच्च विचारोंके लिये प्रसिद्ध था। फलतः ॲथेन्समें इसका अच्छा सत्कार हुआ। ॲथेन्सके प्रसिद्ध पुरुष पेरिक्लोज़के साथ ही इसका अधिक समय बीतता था। प्रसिद्ध नाटक-लेखक युरीपीडिज़का यह मुख्य शिष्य था। तत्व-ज्ञान तथा शास्त्रीय-निदर्शनकी रुचि ॲथेन्स निवासियोंमें इसी ने पैदा की। पेलोपोनिशियन युद्धके पूर्व जब पेरीक्लीज़का प्रभुत्व जाता रहा तो इसपर अधर्माचरणका दोषारोपण करके अभियोग चलाया गया। किन्तु पेरिक्लीज़के प्रसिद्ध व्याख्यान से यह निर्दोष ठहराया गया। किन्तु इसे ॲथेन्स छोड़कर भागना पड़ा। तब यह अयोनियामें आकर लमसकसमें बस गया। यहाँ भी इसका अच्छा सत्कार हुआ। वह ई० पू० ४२८ में परलोक सिधारा।

अनक्ज़गोरसने तत्वज्ञानके इतिहासमें तात्विक विचारोंका बिल्कुल एक भिन्न ही मार्ग निकाल दिया है। दूसरी बात महत्वकी यह है कि यूनान के सब उपनिवेशोंसे खसक कर ॲथेन्स ही तात्विक चर्चाओंका मुख्य केन्द्र उस समय होरहा था। उसके परमाणुविषयक विचारोंके कारण ही जगत्‌घटनाकी उत्पत्ति पर भी (यन्त्र शास्त्र विषयक तत्वोंके विचार पद्धति पर) परमाणुवादके प्रसिद्ध सिद्धान्तकी छाप लग गई। उसके बुद्धि प्रामाण्यवादका आगे चलकर अरस्तु (Aristotle) ने बहुत कुछ अनुकरण किया। वही मत अनेक टीकाकारोंने भी भविष्यमें चालू रक्खा।

[इसके ज्योतिर संबंधी ज्ञान, प्राणीशास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा परमाणुवादके विचारोंके लिये 'विज्ञान इतिहास' देखिये।]

अनक्ज़िमॅण्डर—यूनान में यह दूसरा प्रसिद्ध तत्ववेत्ता होगया है। इसका जन्म ई० पू० ६१० में होगया था। इसके पंथको 'अयोनियन तत्व-ज्ञान पंथ' कहते हैं। कुछका तो कथन है कि यह प्रसिद्ध तत्ववेत्ता थेलिसका मित्र था, किन्तु कुछका मत है कि यह उसका शिष्य रहा होगा। किन्तु इसके मत तथा विचारोंको देखते हुए इसको थेलिसका शिष्य कहना उचित नहीं जान पड़ता।

थेलिसके समान इसने भी 'विविध चमत्कारों के सहारे एक अपरिमित तत्व' को खोज निकालने का प्रयत्न किया, किन्तु इसके अन्य सिद्धान्त थेलिसके मतसे बिल्कुल भिन्न देख पड़ते हैं। थेलिसने 'जल' को एक प्रधान अथवा मूलतत्व माना है किन्तु इसने जल, पृथ्वी, अग्नि इत्यादि किसीको मूल नहीं माना। उसका मत है कि केवल 'अनन्त' ही एक सर्वव्यापी तत्व है। इस तत्वको वह 'अनन्त' अथवा 'अगणित' (Infinite) कहता था। उसका कथन है कि जल, पृथ्वी, अग्नि इत्यादि नश्वर होनेके कारण मूलतत्व नहीं कहे जा सकते। वह अपने 'अनन्त' के विषयमें कहता है कि वह 'अविनाशी' 'अगम्य' तथा 'स्वयम्भू' हैं। उसमें चालक अथवा प्रेरणाशक्ति (Directive Power) भी विद्यमान है। जिस प्रकार पतवार द्वारा एक जहाज़ घुमाया जाता है उसी प्रकार उस अनन्तरूपी पतवारसे यह संसार घूमा करता है। बिडेब्रॅडका तो कथन है कि योरप खण्डमें जो ईश्वरकी कल्पनाका विकास

हुआ, वह इसीके 'अनन्त' के आधार पर हुआ था।

इसका मत है कि पृथ्वी गोल है। जगतकी रचना तथा प्राणीमात्रकी उत्पत्तिके विषयमें इसने बहुत कुछ अनुमान किया है। उसका कथन है कि पहले तारे, फिर पृथ्वी, तदनन्तर इसी क्रमसे समुद्र तथा जीव, एकके पश्चात् एक उत्पन्न हुए। जीवमात्रमें सबसे प्रथम मछली (जलचर), उसके पश्चात् सूइस, कछवा इत्यादि उत्पन्न हुए। अन्तमें मनुष्यकी रचना हुई। अनक्ज़िमॅण्डरके मतानुसार जो जीवोत्पत्तिका वर्णन है उसमें तथा विष्णु भगवानके मत्स्य, कूर्मादि दस अवतारोंके वर्णनमें साम्य देख पड़ता है। यह एक ध्यानमें रखने योग्य विशेष बात है।

अनंगपाल—यह लाहोरका राजा था। मुहम्मद गज़नवीने अनेक बार इसका पराभव किया था जिस समय मुहम्मदने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की (१००१ ई०) उस समय इसके पिता जयपालने उसका सामना किया था। परन्तु इस लड़ाईमें जयपाल हार गया और बहुतसा धन देकर अपने को छुड़ाया। इस हारसे जयपाल इतना शरमाया कि उसने अग्निकाष्ठ भक्षण करना आरम्भ किया। उसके पुत्र अनंगपालने मुहम्मदसे कुछ दिन तक तो मित्रता रक्खी और नियत समय पर सालाना कर भेज दिया करता था। परन्तु कुछ कालके बाद मुहम्मदके भेजे हुए मुलतानके सूबेदार अब्दुल फतह लोदीको अपनी ओर मिलाकर यह स्वतन्त्रतासे रहने लगा। तब मुहम्मदने १००५ ई० में पंजाब पर चढ़ाई की और अनंगपालको काश्मीरकी ओर खदेड़ दिया। परन्तु मुहम्मदके चले जानेपर उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर इत्यादि स्थानोंके राजाओंका एक संघ स्थापित कर अनंगपालने मुहम्मद गज़नवीका सामना करनेकी तय्यारी की। पेशावरके मैदानमें ४० दिन तक दोनों ओरकी सेनाएँ केवल एक दूसरेकी ओर देखते हुए तटस्थ खड़ी रहीं। परन्तु शीघ्र ही प्रत्यक्ष युद्ध आरम्भ होगया। बहुत दिनों तक हिन्दुओंने मुसलमानोंका बड़ो वीरतासे सामना किया, परन्तु दुर्भाग्यवश विजय मुसलमानोंकी ओर ही रही, क्योंकि अनंगपालके हाथी को एक तीर लगा जिससे वह घबड़ाकर मैदानसे भाग निकला। यह देखकर हिन्दूसेना हतोत्साही होकर तितिर बितिर हो गयी। इस प्रकार मुहम्मदकी विजय हुई, और हिन्दू राज्योंका पतन आरम्भ होगया। सन् १०२१-२३ ई० में मुहम्मदने लाहोर प्रान्त भी अपने हस्तगत कर लिया। अनंगपालके मृत्युका ठीक ठीक पता नहीं लगता है। एक जगह ऐसा उल्लेख है कि वह १०१३ ई० के लगभग मरा। कुछ इतिहासकारोंका मत है कि जिस समम मुहम्मदने लाहोर प्रान्त पर कब्जा किया उस समय तक वह जीवित था।

कई स्थानों पर अनंगपाल का 'आनन्दपाल' नामसे भी उल्लेख किया गया है। कुछका अनुमान है कि दूसरा नाम ठीक होगा। जयपाल, अनङ्गपाल तथा त्रिलोचनपाल राजा क्रमसे काबुलके बहमनी राजघराने में (८८०—१०२१) हो गये हैं। इस राज्य की स्थापना लल्लो द्वारा की गई थी। १०२१ ई० में मुहम्मदने यह वंश समूल नष्टकर डाला। इन राजाओं का काल तथा नाम इत्यादि उपरोक्त जयपाल अनङ्गपाल इत्यादिके समान ही है (मध्ययुगीय भारत भाग २, रा. प्र. ११ वाँ)। इससे यह स्पष्ट है कि अनङ्गपाल अथवा आनन्दपाल काबुलके बहमनो वंशका ही होगा।

(२) देहलीके एक तोमर वंशीय राजा का नाम। तुवर अथवा तोमर वंशका यह संस्थापक था। उसका राज्याभिषेक शक सं० ७३६ में हुआ था। इसने देहली को ही अपनी राजधानी बनाया था किन्तु इसके वंशज कन्नौज चले गये थे। राठौर के प्रथम राजा चन्द्रदेवने जब इन लोगोंको वहांसे हराकर निकाल दिया तो अनङ्गपाल द्वितीयने देहली आकर उसे फिर अपनी राजधानी स्थापित किया। अनङ्गपाल का शासन काल देहली के प्रख्यात लोह स्तम्भ पर 'सं० ११०९ दिहली अनङ्गपाल बही' इस प्रकार दिया हुआ है। इससे यह ज्ञात होता है कि अनङ्गपाल सं० १०५० ई० में देहली में राज्य करता था। अगली शताब्दीमें अजमेर के चौहान वंशीय विशालदेवने तोमर वंशीय अनङ्गपालसे देहली छीनली, और उसे एक छोटासा राज्य देकर अपने राज्य का माण्डलिक (सूबेदार) बनाया। चौहान तथा तोमर घरानों में विवाह सम्बन्ध हुआ। पृथ्वीराजका इसी घरानेसे जन्म हुआ था। आगे चलकर वह देहली का राजा हुआ।

अनंगभीम—कलिंग देश का राजा। इसको लाडदेव भी कहते थे। इसने एक जगन्नाथ का मन्दिर बनवाया था। उस मन्दिरके खम्भेपर एक लेख खोदा हुआ है। अनगरंग ग्रंथका रचयिता कल्याणमल्ल इसीके आश्रयमें थे।

अनंगहर्षमात्रराज—यह नरेन्द्र वर्धनका पुत्र हो गया है। इसने 'तापस वत्सराज' चरित्र

नामक नाटक लिखा है। आनन्द वर्धनके तथा उसके टीकाकारके ग्रंथोमें इसका उल्लेख पाया जाता है (पिशेल Z. D. M. G. 39. P. 315)

आनन्द वर्धनका काल नवीं शताब्दीका उत्तरार्ध समझा जाता है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि अनङ्ग हर्ष इससे पूर्वमें अवश्य हुआ होगा। इसने रत्नावली का आधार कई जगह पर लिया है। अतः यह स्पष्ट है कि इसका नाटक ७ वीं शतब्दीसे ९ शताब्दीके मध्यमें रचा गया होगा। तापस वत्सराजकी कथा महाकवि भासके स्वप्नवासवदत्ताके समानही है। हाँ, इसके नाटक में कुछ नवीन घटनाओं का उल्लेख अवश्य है। संक्षिप्तमें उनका उल्लेख नीचे दिया जाता है।

बासवदत्ताकी मृत्युके अनन्तर उदयन तपस्वी हो जाता है। आगे चलकर यौगन्धरायणके उदयनका चित्र देखते ही पद्मावती उसपर अनुरक्त हो जाती है और उसीके प्रेममें तपस्विनी बन जाती है। वासवदत्ता तथा उदयनका संवाद इसमें नहीं दिया हुआ है। इसमें दोनोंका साक्षात् प्रयागमें मृत्युके समय होता है और तभी रूमरावत के मृत्युका समाचार भी प्राप्त होता है।

अननास—इसका वृक्ष केवड़ेके वृक्षके समान होता है। इसके पत्ते तीन, साढ़े तीन फीट लम्बे तथा दो इञ्च चौड़े होते हैं। इसके पत्ते प्रायः हलके हरे रङ्गके होते हैं। परन्तु कभी कभी रङ्ग-बिरंगे भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस पेड़का तना बहुत ही नाटा रहता है। इस वृक्षकी रचना ध्यान देने योग्य होती है। जब वृक्ष फल लगने योग्य हो जाता है तब उसमेंसे एक डंडी निकलती है। उस डंडीपर घने फूल लगते हैं। प्रत्येक फूलका स्वतन्त्र फल नहीं होता किन्तु सब फूल मिलकर एक फल होता है।

यह वृक्ष उष्ण-प्रदेशमें होता है। पहले पहल यह ब्राज़ील देशमें पाया गया था। अमेरिकाका पता लगते ही ये वृक्ष जगत भरमें फैल गये और उष्णकटिबन्धमें उनकी वृद्धी शीघ्र होने लगी। पाइनशङ्कु (Pine-cone) और इसमें बहुत कुछ साम्य होनेके कारण स्पेनके लोग इसे पिनस (Pinus) कहते थे ब्राज़ीलियन "ननस" नामसे और पुर्तगीज इसे अननस कहने लगे और आधुनिक समयके नाम इसी आधार पर पड़े हैं। हिन्दुस्थानमें इसको, अननस, अननास, अनारस, अनाशाप, नानट तथा अनस कहते हैं। अननासके बिलकुल आधुनिक नाम फॉरेन्स्क्रूपाईन (Foreign screw pine), युरोपियन जैकफ्रूट (European jackfruit) हैं। योरप, एशिया, अरब, मिश्रकी पुरानी भाषामें इसका नाम ही नहीं है। यह वृक्ष आधुनिक होनेके कारण संस्कृत भाषामें भी इसका नाम नहीं है।

इतिहास—ओह्विएडोने (Oviedo) लिखा है कि वेस्टइरडीज़ द्वीप, और अमेरिका खण्डमें वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। क्रिस्टोफर अकोस्टा (Christopher-Acosta) ने १६०५ई०में ही लिख रखा है कि हिन्दुस्थानमें अननास बहुत पैदा होता है। मार्कग्राफ (Marcgraf) और (Hernandez) हरनन्डेज़ने वर्णन किया है कि ब्राज़ील (Haity) हायटी और मेक्सिकोमें अननास पैदा होता है। १६,१७ तथा १८ वीं शताब्दी के वनस्पति शास्त्रज्ञोंने इसका वर्णन करके चित्र भी निकाले हैं। बोइम (Boym) का कथन है, कि अननास हिन्दुस्थान ही से चीनमें पहुँचा। अकोस्टाको तरह हृडिसका भी कथन है कि पुर्तगीज़ लोगोंने अननासको हिन्दुस्थानमें लगाया था। वह इतने शीघ्रतासे फैला कि रंफिअस (Rumphius) ने तो समझा कि यह एतद्देशीय ही हैं। लिन्सकोटन (Linshcotan) पिरार्ड (Pyrard), बरनिअर (Bernier) और हरबर्ट (Herbert) इत्यादि मध्यकालीन यात्रियोंने इसका उल्लेख किया है।

जहाँगीरने अपने आत्मचरित्रमें ऐसा उल्लेख किया है कि अननास हिन्दुस्थानमें परदेशसे आया, तथापि बाबरके फलकी सूचीमें अनन्नास का नाम नहीं हैं।

अननासकी खेती—ऐसा कहा जाता है कि उष्ण कटिबन्धके अननासोंकी अपेक्षा इंगलैण्डके उष्णगृहमें तैयार किये गये अननास रुचिकर होते हैं। योरपमें अननासकी खेती प्रथम लेडेन (Leyden) में १६५० ई० में हुई। इंग्लैण्डमें जो अननास पहले पहल तय्यार हुआ था वह चार्लस द्वितीयको नज़र किया गया (१६७२) था।

रेल, ज़हाज इत्यादि आधुनिक साधनोंसे व्यापार बड़ी शीघ्रतासे होता है, और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बड़ी शीघ्रतासे वस्तु पहुँच जाती है, इसलिये वेस्टइण्डीज. मदिरा और कॅनेरी टापूओंमें से जितने चाहे उतने अननास यूरोप और अमेरिका खण्डमें भेजे जाते हैं। इस कारण इँग्लैण्डके उष्णतागृहमें अननास तैयार करना बन्द होकर उसका मूल्य कम होगया है।

योरप तथा अमेरिकाके उष्ण कटिबन्धोंमें आजकल लोगोंका ध्यान अननासकी खेती तथा

उसकी खपतकी ओर बहुत है। तथा इसके व्यापारको बढ़ानेका पूरा पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। यद्यपि भारतकी भूमि भी अननासके लिये उपयुक्त है और पैदा भी यह बहुत होता है, किन्तु न तो इसकी खेतीकी ही ओर विशेष ध्यान दिया जाता है न इसका व्यापारिक दृष्टिसे ही कोई महत्व है। इसकी खेती करके इसका व्यापार करनेसे काफी लाभ उठाया जासकता है। (States Settlement) स्टेटस सेटलमेन्टमें उपरोक्त मत सिद्ध किया जाचुका है।

उपयुक्त जलवायु तथा प्रदेश—पहले पहल भारत में यह पूर्वीयतट पर लगाया गया था, किन्तु शीघ्र ही पश्चिमीय तट पर भी इसकी खेती होने लगी। बंगाल, आसाम, बर्माकी भूमि तथा आबहवा इसके उपयुक्त है। (Western-ghats) पश्चिमीघाट के किनारों पर यह बहुत पैदा होता है। खासिया की पहाड़ियोंमें तथा आसाममें यह स्वतः ही बहुत पैदा होता है. और साथ ही साथ अच्छे मेलका होता है। डॉ० हेलफरका कथन है कि तिनासरिममें रुपयेमें पूरी एक नाव भरकर खरीदी जा सकती है।

जाति अथवा किस्में—भारतीय लेखक तो केवल इसकी दो किस्में बताते हैं। फिरमिगर (Firmiger) का कथन है कि सिलहटी जाति का अननास छोटा होता है. आखें कम किन्तु वे विचित्र प्रकार की होती हैं। ढाके का अननास चिकना और सफेद आँखदार होता है। उसने सीलोन, पेनाङ्ग तथा इङ्गलैण्ड से आने वाले अननासों का भी वर्णन किया है किन्तु उसके वर्णन में भी भारतीय अननासों की भिन्न भिन्न जातियों का वर्णन कहीं भी नहीं मिलता।

भूमि तथा खाद—कुछ लोगों का मत है कि बालुकामयी तथा चिकनी मिट्टी वाली जमीन इसके लिये उत्तम होती है। ऐसा स्थान जहाँ पानी एकत्रित न हो जाता हो वहाँ इसकी खेती अधिक उपयुक्त होती है। कुछ का कथन है कि कि बालू में भी अननास पैदा होते हैं।

ज़मीनमें चूने का प्रमाण अधिक होना लाभदायक होता है। प्राणिज खाद बिना सड़े पौधे के पास नहीं डालना चाहिये क्योंकि उससे उनके वृद्धि में बाधा पड़ती है। खीड का कथन है कि जमीन जितनी उपजाऊ और खाद जितनी उत्तम हो उतना ही अननास की उपजके लिये लाभदायक है। क्षार तथा सूखी हुई मछलियों की खाद की बुडरो नामक विज्ञान-वेत्ताने बहुत स्तुतिकी है। उसका कथन है कि वर्षाके पूर्व वह खाद जमीनमें डालदेनी चाहिये। वेस्टइण्डीज़ के अनुभवसे फिरङ्गर कहता है कि अधिक खाद देने से पौधा मर जाते हैं। सड़े हुए पत्ते, छिलके, सड़े हुए गोबर से युक्त और बालू कामय पोली जमीन पर अननास पैदा होता है। छायामें पैदा हुए अननास बड़े अवश्य होते हैं किन्तु वे स्वादमें उतने अच्छे नहीं होते। फल तैयार होते समय पौधे को पानी बराबर देना चाहिये कुछ दिनोंके बाद पौधे का स्थलांतर करना लाभ दायक होता है। तीन चार वर्ष के बाद वे पौधे व्यर्थ हो जाते हैं। उस समय उनको उखाड़ कर जमीन फिरसे तैयार करके दूसरे पौधे लगाने चाहिये।

सीलोन, ट्रावनकोर, मालाबार, कोरा मांडल कनारा और बङ्गाल इत्यादि प्रान्तमें इसकी खेती होती है। अननास के वृक्ष बहुधा समुद्रके किनारे होते हैं। अर्थात् इन्हें बहुत नम हवा की आवश्यकता होती है। अननास की खेती स्वाधीन नहीं होती इसकी खेती नारियल, सुपारी अथवा आम के बगीचों में करते हैं। बम्बई शहर के आस पास जहां रेलगाड़ी आ जा सकती है वहां अननास की खेती की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है परन्तु और जगहोंमें इसकी खेती लापरवाही से की जाती है।

बहुधा निम्नलिखित रीतिसे इसकी खेतीकी जाती है। इसकी कलम भी लगायी जाती है और यह यों भी पैदा होता है। इसके छोटे छोटे पौधे उखाड़ कर दो वर्ष तक गमलोंमें लगा रखते हैं। तदनन्तर आम इत्यादिकी बाड़ीमें दो तीन फीट गहरी जमीन जोत कर पौधा लगाते हैं। इसमें फल लगनेमें दो तीन साल लगते हैं। पेड़ लगने पर इसमें अनेक शाखायें फूटती हैं, और सब जमीन अननासके वृक्ष व्याप लेते हैं। कुछ लोग पेड़ लगनेपर वर्षाऋतुमें एक एक चुल्लूभर रेड़ी के तेल की खली पौधोंमें देते हैं कोई अप्रैल या मई महीनेमें सारे बाग को पानीसे सींचते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई विषेश कष्ट इसके लिये कोई नहीं करता। फूल जनवरी अथवा फरवरीमें आता है। और जूनमें फल तैय्यार होता है। अननासके वृक्ष खुले मैदानमें अच्छे नहीं होते। फलमें धूप लगनेपर फलभी अच्छा नहीं होता। वर्षा ऋतुमें कोंकनसे अननास बाहर भेजनेकी व्यवस्था नहीं है, इस लिये सब पैदावार व्यर्थ हो जाती है।

पैदावार और फसल—फल तैय्यार होतेही तनेके आसपास अथवा जमीनमें लगेहुए तनेसे

अकुर निकलने लगते हैं। इससे पैदावार अच्छी होती है। इस सम्बन्धमें निकोलस साहबके बतलाये हुये खेतीके तरीके नीचे दिये जाते हैं:—

छः छः फुटकी दूरी पर पंक्तियां खींचनी चाहिये, और प्रत्येक पंक्तिमें कमसे कम तीन फीटके अन्तर पर पौधे लगाने चाहिये। इस प्रकार एक एकड़ जमीनमें २५०० पौधे लग सकते हैं। पहली फसल आतेही पौधेके लगभग चार अंकुर छोड़कर शेष काट डालने चाहिये। इससे दूसरी फसलमें १०००० फल उत्पन्न होगें। पौधे कँटीले होनेके कारण बीचमें काम करनेके लिये आवश्यक स्थान पंक्तिके मध्यमें रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त, दो पक्तियोंमें अधिक अन्तरके रखनेसे पुराने पौधे उखाड़कर नए पौधे दोनों पक्तियोंके बीचमें लगाये जा सकते हैं। इसतरह एकही जगह पर कई फसलें उत्पन्न हो सकती हैं।

वेस्टइण्डीज़में खेतीके आठ या नौ मास बाद फल तय्यार हो जाते हैं। फिरंगर का मत है कि भारतके दक्षिण भागमें अगस्तमें इसकी खेती करनी चाहिये। फरवरी और मार्चमें पोधोंमें फूल आ जाते हैं। जूलाई तथा अगस्तमें फल पकना आरम्भ होजाता है, तथा सितम्बर अक्तूबर में वे बढ़ कर पूर्ण तय्यार हो जाते हैं। कभी कभी जब फूल आनेमें देरी हो जाती है तो जाड़ेमें फल तय्यार होते हैं। भलीभाँति पकनेके लिये उष्णता की आवश्यकता होनेके कारण जाड़ेमें यह अच्छे नहीं पक पाते, अतः स्वादमें भी ये खट्टे तथा अप्रिय लगते हैं। बुडरोका कथन है कि उत्तम प्रकारके पौधोंकी खेती जनवरीसे मार्चतक बम्बई प्रान्तमें करनी चाहिये और अंकुर फूटने तक बराबर पानी देते रहना चाहिये।

फलपूरा परिपक्व होनेके पूर्व ही उसे तेज चाकूसे काटना चाहिये। यदि कहीं दूर फल भेजना हो तो प्रत्येक फलको घास अथवा कागज़ में लपेटना चाहिये। दो अथवा तीनसे अधिक फलोंको एकमें नहीं बाँधना चाहिये। फल दबने अथवा अधिक पकनेसे सड़नेका डर रहता है। एक फल सड़नेसे सब फल खराब हो जाते हैं।

धागा तय्यार करना—पत्तोंसे उत्तम धागा निकलता है। फिलीपाइन द्वीपमें एक (Pina) पाइना नामक कपड़ा इससे तय्यार करते हैं जो मलमल के समान होता है। उत्तर बङ्गालके रङ्गपुर ज़िले के चमार जूते सीनेके लिये इसीसे धागा तय्यार करते हैं। इसलिये धागेकी वहाँ अधिक माँग रहती है। गोवाकी ओर लोग धागेके कण्ठे (Necklace) गलेमें पहनते हैं। खासिया पहाड़ी के अननासके धागेसे तय्यारकी हुई थैलीको बाँलिच नामक एक गृहस्थने १८३६ ई० में खरीदी थी। इससे स्पष्ट है कि यहाँ के लोग धागाका उपयोग पहले भी जानते थे। सन् १८८७ ई० में (East Indian Association) ईस्ट इण्डियन असोशियेशनके सन्मुख वेन्टन साहब ने आसामके व्यापारके सम्बन्धमें भाषण देते हुए कहा था कि सिलहटमें अननास, उसके पत्तोंके धागे तथा उससे मद्यार्कका व्यापार किया जा सकता है। हाल ही में सर० जे० बकिंघमने आसामी धागेको लंदनके (Impirial Institute) इम्पीरियल इन्स्टीट्यूटमें परीक्षार्थ भेजा था। वह धागा परीक्षामें अति उत्तम ठहरा। इसके एक टन का मूल्य २० से २५ पौण्ड तक हो सकता है। अन्य देशोंकी अपेक्षा यहाँ तो अनननाससे भाँति भाँतिके लाभकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता इसका यदि पूर्ण उपयोग किया जावे तो अत्यन्त लाभ हो सकता है। इसका औषधिरूपमें अनेक उपयोग होसका है। इससे मद्यार्क और सिरका भी तय्यार होता।

औषधिगुणधर्म—अनननासके पत्तेका रस पेट की कृमियोंके नाशके लिये बड़ा लाभदायक है। दन्तविकारोंमें फलका सेवन करना चाहिये। चीनीके साथ ताजे पत्तोंका रस पिलानेसे हिचकी बन्द हो जाती है। कुछका मत है कि अनननासके रससे गर्भपात हो जाता है। कच्चे अनननासका सेवन करनेसे स्तम्भित ऋतु-स्राव ठीक समय पर होने लगता है। इसके सफेद भागके रसको चीनी मिलाकर पीनेसे पेटकी कीड़ी गिर जाती हैं। पक्के फलका रस सेवन करनेसे पीलियामें लाभ होता है। अनननासके पत्तेके धागोंसे उत्तम तथा मजबूत कपड़ा बनाया जासकता है। सिंघापुरके लिफोर्निया इत्यादि स्थानोंसे अनननासका मुरब्बा बाहर भेजा जाता है। इसी प्रकार यह व्यापार भारतके मालाबार इत्यादि प्रान्तोंसे बड़े सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

अनन्त—(१) परमेश्वरका एक नाम। (२) एक कद्रुपुत्र। (३) कभी कभी यह शब्द शेषनागके लिये भी व्यवहारमें लाते हैं। (४) अनन्त चतुर्दशीको पूजा करके हाथमें बाँधा जानेवाला १४ गाँठका एक डोरा। इसी प्रकार यह स्त्रियोंके बाँयें हाथमें भी बाँधा जाता है।

अनन्तव्रत—यह एक मुख्य भारतीय व्रत है। प्रति वर्ष भाद्रसुदी चतुर्दशीको इस व्रतका पालन

किया जाता है। अनन्त शेषशायी नारायणका अगम्यरूप है और इसको कल्पना भी सर्परूपमें दर्शाई जाती है। अनन्त पुजनके लिये भगवानकी प्रतिमा दर्भकी बनाई जाती है। नैवेद्यके लिये भी १४ प्रकारके पक्वान्न होने चाहिये। भाद्र सुदी चतुर्दशीको कुलके बड़ेको पवित्र होकर उपवास करना चाहिये और सायंकालको सपत्नीक अनन्तपूजा करके भोजन करना चाहिये। कहीं कहीं इष्ट मित्रों को भी निमन्त्रित करनेकी प्रथा है। उपरोक्त दर्भ की प्रतिमाके साथ एक उत्तम रेशमी डोरा भी रखकर पूजाकी जाती है। पूजाके पश्चात् यह डोरा हाथमें बाँध लिया जाता है। कुछ लोग तो साल भर तक इसे बाँधे रहते हैं। लोगोंका विचार है कि अनन्त पूजा तथा व्रत अत्यन्त कल्याणकारी है और नष्ट ऐश्वर्य तथा गौरवको पुनः प्राप्त करनेका अच्छा साधन है। जिस समय बारह वर्षके बनवासका असीम कष्ट पांडव लोग उठा रहे थे, उस समय उन्होंने श्रीकृष्णसे इससे मुक्तिका उपाय पूछा। श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे अनन्तव्रत करनेको कहा, और अनेक प्राचीन कथाओं द्वारा इस व्रतकी महिमा तथा प्रभावका वर्णन किया।

एक कथा इस प्रकार है कि सतयुगमें सुमन्तु नामक एक वसिष्ठगोत्रोत्पन्न ब्राह्मणने दीक्षा नामक भृगुऋषिकी कन्यासे विवाह किया था। उसको सुशीला नामक एक उदार प्रकृतिवाली सर्वगुण सम्पन्ना कन्या उत्पन्न हुई। कुछ कालके पश्चात् दीक्षाका देहान्त हो गया और सुमन्तुने एक कर्कशा स्त्रीसे विवाह कर लिया। एक समय कौण्डिण्य नामक एक ऋषि सुमन्तुके घर आये हुए थे। उनको हर प्रकारसे अपनी कन्याके उपयुक्त देखकर तथा अपनी कन्यासे सम्मति लेकर उसका पाणिग्रहण ऋषिके साथ करा दिया। कुछ समय तक ये दोनों वर-बधु सुमन्तुके घर पर ही रहे। सुमन्तु एक ओर तो अपनी कर्कशा स्त्री के व्यवहारसे दुःखी रहते थे दूसरी ओर अपनी कन्या और जामाताके वियोगके विचारसे अधीर हो उठते थे। अन्तमें वरबधूकी यात्राको १३, १४ दिन रह गये। जब यात्राका दिन आया तो सुमन्तु की स्त्रीने भोजन तक न बनाया और ये दोनों सुमन्तुसे आज्ञा लेकर रथपर रवाना हो गये। मार्गमें कुछ सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्वच्छ वस्त्रालङ्कार से सुशोभित होकर एक नदीके तीरपर अनन्त पूजाकर रही थीं। उनको देखकर सुशीला भी उन में सम्मिलित हो गई। इधर कौण्डिण्य ऋषि भी नित्य क्रिया समाप्तकर चुके थे। अतः रथपर बैठ कर प्रस्थान किया। अन्तमें अमरावती नगरीमें पहुँचते ही सुशीलाके भक्तिपूर्वक अनन्त पूजामें सम्मिलित होनेसे वहाँके नागरिकों द्वारा इनका अच्छा आदर सत्कार हुआ और अन्तमें इन्हें अपना राजा बनाया। इस भाँति अनन्तव्रत और पूजाका प्रभाव देख पड़ा।

एक दिन संयोगसे सुशीलाके हाथमें बंधे हुए अनन्तपर कौण्डिण्यकी दृष्टि पड़ी। अतः उन्होंने सुशीलासे उसके विषयमें पूछा। सुशीलाके कथन पर सहसा उनको विश्वास न हुआ और उसको नीच श्रेणीका तन्त्र मन्त्र समझकर विध्वंसकर डाला और उस डोरेको अग्निमें जला दिया। सुशीलाको इससे असीम कष्ट तथा दुःख हुआ और उस जले हुए डोरेको अग्निसे निकालकर शीघ्र ही फिरसे पूजन किया।

किन्तु कौण्डिण्यके इस निरादरसे उनको शीघ्र हो घोर दरिद्रता भोगनी पड़ी। सम्पूर्ण राजपाट हाथसे निकल गया। अब उन्हें अपने कृत्यपर घोर पश्चात्ताप होने लगा। अन्तमें ऋषिने लक्ष्मी नारायणके दर्शन होनेतक व्रत करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। इस प्रकार पतिपत्निने अनन्तव्रत फिर से करनेका संकल्प किया। उस व्रतको करनेपर उन्हें अपना पूर्व वैभव फिरसे प्राप्त हुआ।

अनन्त—इस नामके अनेक प्राचीन लेखक हो गये हैं। कुछके ग्रन्थ तो बड़े उत्तम है।

(१) कात्यायनश्रौत सूत्रके टीकाकार तथा प्रतिज्ञा परिशिष्ट भाष्यके लेखक। इनके ग्रन्थसे देवभद्र तथा याज्ञिक देवने अनेक उदाहरण लिये हैं। अनन्तने भी अपने पूर्वलेखक वसुदेव, कर्क, पितृभूति यशोगोभिन तथा भर्तृयज्ञकी पुस्तकोंसे उद्धरण लिये हैं। (ऑफ्रेक्ट-कॅट-कॅट पीटरसन-रिपोर्ट ४)

(२) हरीके पुत्र! इनका अनन्त सुधारस नामक पञ्चाङ्गगणित ग्रन्थ विख्यात है। यह लगभग शक सं० १४४७ में हुए होगें। इनका ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त पर निर्भर है। यद्यपि यह सन्देहका विषय है किन्तु कुछका मत है कि मुहुर्त मार्तण्डके रचयिता नारायण इन्हींके पुत्र थे। (शं० बा० दीक्षित-भारतीय ज्योतिष शास्त्र)

(३) शक सम्वत् १२७६ में महादेव द्वारा लिखित 'कामधेनु' नामक ग्रन्थके टीकाकार। इन्हीं अनन्तका लिखा हुआ 'जातकपद्धति' नामक ग्रन्थ है। इनका गार्ग्य गोत्र था, और निवास-स्थान था विदर्भ-देशका धर्मपुरी नगर। कुछ दिन ये काशीमें भी रहे थे। इनके पिता चिन्तामणिदहब

बड़ा विद्वान् तथा ज्योतिषी था। इनके पुत्रका नाम नीलकण्ठ था। नीलकण्ठने 'तोडरानन्द' ताजिकपर भी ग्रन्थ लिखे हैं। यह ताजिक नील-कण्ठीके नामसे प्रसिद्ध है। नीलकण्ठका पुत्र गोविन्द हुआ। उसका जहाँगीर बादशाहके दरबार में अच्छा मानथा। मुहुर्तचिन्तामणीपर पीयूषधारा नामक टीका उसीकी लिखी हुई है। ताजिक नील-कण्ठीकी टीकाका श्रेय भी इसे ही दिया जाता है।

अनंतकी वंशावली

चिन्तामणी—(गार्ग्यगोत्र)
|
अनन्त (पत्निपद्मा)
|
नीलकण्ठ (पत्निचद्रिका) शके १५०९ — राम शके १५१२-२२
|
गोविन्द (पत्निगोमती)
|
माधव

(शं० बा० दीक्षित-भारतीय ज्योतिष शास्त्र)

(४) जयराम स्वामी बडगाँवकरके दो शिष्य थे। एक गोपाल थे, दूसरेका नाम अनन्त। गोपाल की मृत्यु शक सं० १६१२ में हुई थी। कदाचित् समर्थके शिष्य दूसरे अनन्तभट्ट थे। वे सतारा प्रान्तमें मेथवड़के तीसरे स्वामी रङ्गनाथके कोई शिष्य रहे होगें। (सं १५८०-१६४५) इनके लिखे हुए ग्रन्थोंमें प्रधान ब्रह्मस्तुति, माधवगुण, द्रौपदी स्वयंबर, रुक्मिणी-स्वयंबर, गरूड़गर्व परिहार, रुद्रयामल इत्यादि हैं (सं० क० का० सू)

(५) समर्थके शिष्य जिनका ऊपर वर्णन आ चुका है। इनके रचित ग्रन्थः—रामचरित्र बभ्रु-बाहनाख्यान, सुधन्वाख्यान, सीता स्वयंबर, गोपी गीत, रामदास स्तुति, सुलोचना गहिंबर, लवकुशा-ख्यान, श्रियाल चरित्र, सिंह ध्वजाख्यान, गरुड़-गर्व-पहिहार, गजगौरीव्रत, अहिल्योद्धार, अहि-महि आख्यान (सं० क० का० सु०)

(६) रङ्गनाथके शिष्य। इनका ग्रन्थ 'पद' है। (सं० क० का० सु०)

(७) एक प्रसिद्ध लेखक। ग्रन्थ—गरुड़ाख्यान, निर्वाणषटक्, पालना, भूपाली, लवकुशाख्यान, चक्रव्यूह (सं० क० का० सु०)

(८) मंडनके पुत्र। ग्रन्थ—काम समूह (सं १४५० ई०)

(९) अनन्त अथवा अन्तू नामक एक सुनार। ग्रन्थ—कोल्हाटखेल (सं० क० का० सू०)

अनंतत्वः—शब्दार्थः—अनंतत्वके संबंधका प्रश्न बहुत कठिन तथा वादग्रस्त है। अनंतत्व (Infinity) शब्दका दो अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है। इसका पहला अर्थ "अंतरहितस्थिति" है, और दूसरा अर्थ संपूर्णता अथवा अव्यंगता (Perfectness) है। पहले अर्थका उदाहरण मूलांकोकी मालिका है। यदि हम १, २, ३,...... इस प्रकार मूलांक क्रमसे लिखते जाँय तो इस क्रमका अन्त नहीं कह सकते। हम यदि कितनी भी संख्या बढ़ावें तथापि उसमें एक और बढ़ सकती है। इसलिये यह संख्याक्रम अनंत है अर्थात् यह खतमही नहीं होता। दूसरी ओर वर्तुलका जो परिध होता है उसको अनंत अर्थात् पूर्ण (Complete) कहा जा सकता है। अनंत शब्दके ये अर्थ केवल समानही नहीं है वरन् कुछ अंशोंमें वे परस्पर विरोधी भी हैं, यह बात आगेके उदाहरणसे सिद्ध हो जायगी। $१, \frac{३}{२}, \frac{७}{४}, \frac{९}{८}$...... यह संख्या क्रम अनंत अर्थात् अन्तरहित है इसमें से प्रत्येक संख्या $\frac{२ न-१}{न}$ के सदृश स्वरूपकी है। और 'न' का मूल्य प्रत्येक समय दुगना बढ़ता है। इस जगह मूल 'न' का मूल्य कितनाभी अधिक मान लिया जाय तबभी उसका दूना होना सर्वदा शक्य है। परन्तु इस उदाहरणमें 'न' का मूल्य जब बहुत बढ़ जावेगा, तब $\frac{२ न-१}{न}$न संख्या का मूल्य $\frac{२ न}{न}$ की अपेक्षा बहुतही कम होगा। इस लिये यह कहा जा सकता है कि अन्तिम संख्या-क्रमका मूल्य दो संख्याके पास पास होता जाता है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि जब 'न' का मूल्य अनंत होता है तब ऊपरके संख्याका मूल्य दो रहता है। इस लिये यदि यह संख्याक्रम अनंत तक बढ़ाया जाय तो वह संपूर्णता तक पहुँचता है। यही अर्थ प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेनोंके दूसरे उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है। मान लिया जाय कि कोई एक पदार्थ (अ-ड-क-ब) अ से ब की ओर जा रहा है तो प्रथम वह अ-क का आधा अंतर समाप्त करेगा और इसलिये अ-क का आधा अन्तर जो अ-ड है उसे वह पदार्थ उससे पहले समाप्त करेगा इस तरह अनन्त समयकी कल्पनाकी जा सकती है। अर्थात् इस उदाहरणके संबंधमें यह कहा जा सकता है कि इस बार इतने अन्तरमें प्रवास करनेमें अनंत संख्या क्रम पूर्ण होता है। ऐसे उदा-हरणोंमें अन्त-रहित तथा संपूर्णता ये दोनोंही

परस्पर विरोधी विषय एकत्र आए हुए देख पड़ते हैं।

पारमार्थिक उदाहरण लेकर भी यही अर्थ व्यक्त किया जा सकता है। काल दृष्टिसे अस्तित्व और कार्य कर्तृत्वमें ईश्वर ही अनंत हैं. अर्थात् उसके अस्तित्व तथा कार्य कर्तृत्वकी कोई मर्यादा नहीं है। इसी लिये ईश्वरको अनंत और सर्व शक्तिमान् ये विशेषण लगाते हैं। दूसरी ओर हम लोग ईश्वरको बुद्धिमान और सर्वोत्तम कहते हैं तब उसके बुद्धिमत्ता और उत्तमताकी कोई सीमा न होनेसे वह पूर्णतया बुद्धिमान और उत्तम होता है। ईश्वरकी बुद्धिका अन्त नहीं अर्थात् विशिष्ट विषयोंमें वह जितना बुद्धिमान होता है, उससे वह अधिक बुद्धिमान है। साधारणतया ऐसे तुलनात्मक अर्थोंसे सदाही उद्देश्य नहीं रहता। सारांश यह है कि ईश्वरमें काल दृष्टिसे अनंतत्व और ज्ञान दृष्टिसे पूर्णत्व दोनोंही कल्पनाएं एकत्र वास करती हैं।

थोड़ा ही ध्यान देनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि संख्यासे गिनने योग्य जिसके भी भाग करते हैं उसीके विषयमें अनंतत्वकी कल्पनाको जा सकती है। परन्तु केवल गुणवाचक शब्दोंको जैसे, उत्तमता, सौन्दर्यको अनन्त, असीम इत्यादि विशेषण लगाना असम्भव है ऐसी स्थितिमें अनंतत्वका अर्थ सम्पूर्णता, अव्यंगताही लेना चाहिए। परन्तु 'अनंतकल्याण'' इत्यादि शब्दोंमें 'अनंत' का पूर्णता दर्शक अर्थसे उपयोग करनेकी प्रथा पड़ी है। और जब 'अनंत' मूलका अर्थ 'अन्तरहित' है और यही शब्द पूर्णता दर्शक अर्थमें उपयोग किया जाता है तो इन दोनों अर्थोंका विचार करना आवश्यक ही है।

अनंत कल्पनाका इतिहास—इस कल्पनाका मूल प्राचीन पश्चिमीय सभ्यतामें देख पड़ता है। सम्पूर्ण विश्व मर्यादा रहित है। यह कल्पना अत्यन्त प्राचीन है और यूनान देशमें (Greece) पहले पहल इसका प्रादुर्भाव हुआ देख पड़ता है। वस्तुतः यह कल्पना पूरी पूरी 'अनंतत्व' के संबंध में न होकर 'अमर्यादत्व'की ही द्योतक है। परन्तु अमर्यादत्वकी कल्पनासे अनंतत्वकी कल्पनाका उद्भव है। पथॉगोरिअन ग्रीक पद्धतिमें ऐसेही विचार देख पड़ते हैं। इसके बाद एलिअटिक (Eleatics) विचार पद्धतिमें इस अनंतत्व की कल्पनाका बहुत विकास हुआ दिखलाई देता है। यह पंथ परमाणुवादी है। इस पंथका सिद्धांत है कि अनंत सख्यामें परमाणु संचार करते हैं, परन्तु इसके पश्चात्के ग्रीक विचारोंमें सोक्रेटीज़ और उसकी पंथकी भरमार होनेसे अन्तरहितत्व की कल्पना कम महत्वकी हो गई और उसके जगह पूर्णत्वकी कल्पनाको महत्व मिलने लगा।

यूरोपीय विचारोंमें अन्तरहितत्व तथा पूर्णत्व की कल्पनाओंका कैसे प्रादुर्भाव हुआ, इसके विषयमें अधिक कुछ नहीं कहना है। इन दो कल्पनाओंका एक रूप करनेका अथवा विरोध दूर करनेका कार्य कार्टेजिअन् विचार परम्पराके लोगोंने किया। इस परम्पराका सिद्धान्त है कि कहीं कहीं पर तो अत्यन्त पूर्णतत्व अवश्यही अस्तित्वमें है। इस कार्टेजिअन् मतानुसार अन्तराल एक अनन्त पूर्णतत्व है। दूसरा सत्सरूप द्रव्यभो इसो प्रकारके हैं। स्पिनोज़ाने उपरोक्त सिद्धान्तका तार्तिक दृष्टिसे अपने तत्व ज्ञानमें स्पष्टीकरण किया है इसके बाद लाइबनिट्स (Leibnitz) ने 'प्लेटो' के 'उत्तमता' को कल्पना का पुनरुद्धार करके ज़ेनोंके कालसे जो सिद्धान्त त्याज्य समझे जाते थे, उसको फिरसे महत्व दिया। (Infinite multiplicity & divisibility) गुण और भागके अनंतत्वकी कल्पनामें जो अड़चनें पड़ती हैं उनका विस्तृत वर्णन प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कॉन्ट ने दिया है। इस कल्पनासे परिपूर्ण अनन्तत्वकी कल्पनामें विरोध पड़ता है। आजकल बहुधा अनन्तकी कल्पना गणित शास्त्रोय दृष्टिसे ही की जाती है।

परीक्षात्मक सारांश—अब 'अनन्त' शब्दमें परिपूर्णत्व और अमर्यादत्वकी जो कल्पनायें हैं उनको छोड़कर इसकी विशिष्ट कल्पना की ओर ध्यान देना चाहिये। गणित-शास्त्रकी दृष्टिसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ विशेष श्रेणियोंमें अनन्तत्व की कल्पना होती है। इसी कल्पना को सूक्ष्मरूप से देखने पर इसके विरुद्ध तीन भावनाकी जाती हैं।

(१) इस प्रकारके गणितशास्त्रीय निर्णय सदाही भावना विषयक (Subjective) होनेसे वस्तुविषयक महत्व (Objective Significance) कुछ भी नहीं रह जाता।

(२) इस प्रकारके निर्णय अस्तित्व विषयक विशीष्ट गुणधर्म दर्शाते हैं।

(३) ये निर्णय वस्तु विषयक महत्वके हैं अवश्य, किन्तु जो उदाहरण अस्तित्वके हैं उनपर लागू नहीं होते।

इन तीन सिद्धान्तों का सूक्ष्म विचार करनेसे यह स्पष्ट होजाता है कि इन सिद्धान्तोंमें कुछ दोष

अवश्य है। पहला सिद्धान्त बर्क्लेह्यूमके अन्तःसृष्टि विषयक कल्पना वाद (Subjective Idealistic) से मिलता जुलता है। किन्तु फ्रीगे इत्यादिने इसका खूब खण्डन किया है। दूसरे सिद्धान्तपर ध्यान देनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि संभवनीय विषय और सच्ची वस्तुस्थितिमें भेद होनेसे उपरोक्त सिद्धान्त भी नहीं ठहर सकता। तीसरे सिद्धान्तमें केवल यही है कि कोई भी बात किसी मानी हुई बातसे कम अथवा अधिक प्रमाणमें वाह्यसृष्टि विषयक (Objective) स्वरूपमें होती है। उदाहरणके लिये किन्नर नामक कल्पित जीवधारीको लीजिये। (किन्नर—यह एक कल्पित गन्धर्वोंकी एक जाति विशेष है जिसका शरीर मनुष्यके और मुख अश्वके समान होता है)। अतः ऐसा कोई खास नियम नहीं है कि इसी प्रकार की कल्पना वाह्य सृष्टिमें जो बातें कभी नहीं हुई हैं उन बातोंके विषयमें नहीं की जासकती हो। उदाहरणके लिये कह सकते हैं कि कोईभी संख्या विभाज्य होगी। यही विभाग पद्धति अन्य वस्तुओं के सम्बन्धमें भी लग सकती हैं। मेढ़ोंके एक झुण्ड के दो भाग किये जा सकते हैं। उस भागसे पुनः दो भाग हो सकते हैं इसी भाँति कई वार यह क्रिया की जासकती है। परन्तु शीघ्रही एक ऐसी अवस्था आवेगी कि जब मेढोंका नाश किये बिना यह भाग-क्रिया असम्भव होगा। निस्सन्देह, इस अन्तर्विभागकी कल्पनामें भी कुछ सत्यार्थकी झलक है। यद्यपि इस कल्पना का अर्थ मेढोंके विभाग में कुछ भी न हो किन्तु उनके मूल्य इत्यादिके सम्बन्धमें तो लागू हो ही सकती है। इसी भाँति गणितशास्त्रकी दृष्टिसे तो अनन्त संख्याकी कल्पना का बहुत कुछ महत्व है ही। चाहे यह एक गूढ़ समस्या ही रह जाय कि उपरोक्त सिद्धान्त किन पदार्थोंपर और कहां ठीक बैठेगा।

अनन्त-विस्तार—अनन्त-विस्तार के विषयमें सामान्य कल्पना है कि अवकाश (Space), काल (Time) और वे पदार्थ जो अस्तित्वमें हैं, अथवा जिन पर वे निर्भर हैं ऐसे पदार्थ क्रमानुसार इस कल्पनापर निर्भर हैं। यदि औपचारिक रीतिसे कहा जाय तो ऐसे क्रमका किसी विशेष स्थान पर रुकनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि इस क्रमको चाहे जहाँ तक बढ़ाया जा सकता है, किन्तु अन्तमें उससे भी अधिक विस्तार हो ही सकता है। किन्तु अस्तित्वके सभी विषय इस प्रकारके नहीं होते। उदाहरणके लिये वर्णमालाके अक्षरों को ले सकते हैं। 'अ' के पूर्व कोई वर्ण नहीं हैं। उसी भाँति क्रमसे 'आ' 'ई' इत्यादि का निश्चित स्थान है। इस प्रकार का क्रम और सीमा मनुष्यके बनाये हुए रूढ़िपर अवलम्बित है। दूसरी ओर रङ्ग का उदाहरण लीजिये। वर्णमाला की भाँति इसका आदि अन्त कहना कठिन है क्योंकि यह रूढ़िकृत नहीं है बल्कि प्रकृति-नियमित है। इस प्रकार भी कल्पना तो की जा सकती है कि कोई एक ऐसी घटना होगी जिसके पूर्व दूसरी कोई भी घटना नहीं घटी होगी। इसी भाँति आकाशमें कोई न कोई तो एक ऐसा नक्षत्र अवश्य ही होगा जिसके पश्चिम कोईभी दूसरा नक्षत्र न होगा। इस भाँति की कल्पनाओंमें भी अनेक अड़चनें पड़ती है। ल्यूकेशियसने ऐसी कई शंकायें सन्मुख उपस्थितकी हैं। उसका प्रश्न है कि यदि कोई मनुष्य विश्वके बिल्कुल सिरे पर खड़ा है और दूसरा उसे बाण मारे तो उसमें बाधा कहाँसे पड़ेगी। इसका इतना उत्तर हो सकता है कि यद्यपि इस विशाल अन्तर में बाधा उत्पन्न करने वाली कोईभी वस्तु नहीं है तथापि विश्वके एक सिरेपर जानाही मानवशक्तिसे असमम्भव है। उसी प्रकार यदि अन्तर (Distance) द्वारा रुकावट करनेका साधन न हो तो कुल विश्वकी घटनामें ही प्रतिबन्धक स्थिति होगी। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कॉन्टने कालके विषयमें इससे अधिक विचारणीय बाधायें उपस्थित की हैं। सीमा-सम्बन्धी कालकी जो कल्पनायें हैं, वे और भी अधिक जटिल हैं।

अनन्त-विभाग—अनन्त-विस्तार की कल्पनाके विरुद्ध जो आक्षेप किये गये हैं उनकी अपेक्षा अनन्त-विभागकी कल्पनाके विरुद्ध अधिक स्पष्ट आक्षेप हैं। अन्त-रहित पूर्णत्व की कल्पनामें जो बाधायें हैं, वे सब तो इसमें हैं ही, इसके अतिरिक्त इस विषयकी कल्पनामें सीमा अथवा मर्यादा मान लेनी पड़ती है। जब हम किसी वस्तु विशेषके अनन्त भाग करनेकी कल्पना करते हैं उस समय यह भी कल्पना करना आवश्यक है कि प्रत्येक भाग अनन्त अंशसे सूक्ष्म हो। इसी लिये कॉन्ट का कथन है कि कोई एक विशेषक्रम अनियमित रीति से अन्त-रहित मानना नहीं चाहिये, किन्तु पूर्णत्व सब ओर पूर्ण मानना चाहिये। कॉन्टके इस मत में केवल यही दोष देख पड़ता है कि विभाज्य द्रव्यको वह एकही रूप मान लेता है और यदि कोई पदार्थ एक रूप ही हो तो उसको वह एकही रीतिसे विभाज्य मान लेता है। किन्तु ऐसी कल्पना करनेसे यह प्रश्न उठता है कि वह पदार्थ पूर्णरूप

से अंशोंके समान है या नहीं। उदाहरणके लिये कह सकते हैं कि अत्यन्त तीव्र उष्णता बहुतसी कम कम उष्णता मिलानेसे नहीं होती। यह कहनाभी युक्ति-संगत नहीं है कि किसी दो समान वस्तु को तीव्रता का भेद किसी दूसरी दो वस्तुओं की तीव्रताके भेदसे तुलना नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ यह नहीं कहा जा सकता कि नीले और हरे रङ्गका भेद हरे और पीले रङ्गके भेदके समान ही है। इन उदाहरणोंमें समधर्मी अथवा सममूल मानाधार (Homogeneous units) अंश की अनन्त परम्पराका अस्तित्व माननेके लिये कोई भी आधार नहीं हैं। उसी भाँति यदि भिन्न भिन्न गुणधर्मोंके उदाहरण लिये जायें तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि वे संख्या मर्यादित हैं। आधि भौतिक शास्त्रोंके साम्प्रतिक विकास द्वारा इस कल्पनामें कोई तत्व ही नहीं रह जाता कि दृश्य पदार्थ अनन्त अंशोंमें विभाज्य है।

अनन्तगुण—भारतके तत्ववेत्ताओंने गुणधर्मके अनन्तत्व की कल्पना का उपयोग ईश्वर की कल्पनामें किया है। अनन्तत्व की ऐसी कल्पना प्रायः ज्ञान, शक्ति तथा दयालुता आदि गुणोंके ही विषयमें की जाती है। इस कल्पनामें यदि अनन्तत्व का अर्थ असीम लिया जाय तो अनन्तज्ञानसे तात्पर्य होगा केवल वस्तुओं की अनन्त संख्याका ज्ञान। संख्याकी घटना एकही तत्व पर होनेसे कोई भी निपुण गणितज्ञ अनन्त संख्याकी कल्पना कर सकता है। ऐसा होने पर भी यह नहीं कहा जासकता कि संख्याके सम्पूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध से वह भिन्न होगा। इससे थोड़ा बहुत अनन्त ज्ञानके विषयमें समझमें आ सकता है।

किन्तु अनन्त का अर्थ अन्तरहित लगाने पर अनन्त-शक्ति की कल्पना करना अत्यन्त कठिन है। कुछ ग्रंथकारोंने इस अनन्त शक्तिपर बड़े बड़े अनुमान दौड़ाये किन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुए। जे० एम० ई० मॅकृगॅर्टके मतानुसार अनन्त-शक्तिका अर्थ परस्पर-विरोधी घटनाओं को एकमें घटित करना है। काले रङ्गको सफेद, उत्तम को खराब, अनन्त को सान्त (अन्त-सहित), २+२ को ५ अथवा १००, इत्यादिके साथ समावेश करना। किन्तु अनन्त-शक्तिसे परिपूर्ण ईश्वरमें शक्ति का बिल्कुल अभाव भी सम्भव है। अतः अनन्त शक्ति में से लिये हुए कोई भी विशेष गुण को ही प्रकट करना सम्भव देख पड़ता है, क्योंकि ऐसे समय अशक्य अथवा अप्रिय पदार्थ अलग कर दिये जाते हैं। ऐसे ही लिये हुए विशेषगुणके अनन्त होनेके कारण अनन्तशक्ति का अर्थ अन्तरहित शक्ति भी किया जा सकता है।

अनन्त कल्याण का अर्थभी अनन्त शक्तिके समान किया जाना सम्भव है। इसी आधारपर अनन्त कल्याण का सम्पूर्णहित गुण-वाचक अर्थ लगाना चाहिये। कदाचित् ईश्वरकी मर्यादित कल्पना उपरोक्त अनन्तकल्पनाकी बाधाओंके कारण दी हुई हो!

अनन्त-विश्व—(Cosmos) यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो विश्वमें भी अनन्तत्वका समावेश होता है, क्योंकि उनमें संख्या का समावेश होता है जो अनन्त हैं ही। किन्तु इससे यह नहीं कहा जासकता कि विश्वमें अस्तित्व (Existence) अनन्त है। यदि अस्तित्व का अर्थ इतना ही लिया कि जो कल्पना करने योग्य दृष्टिसे सत्य हो, तो यह कहना पड़ेगा कि विश्वमें अनन्तत्व ही अनन्तत्व भरा पड़ा है। किन्तु यह कहना कठिन है कि विश्व ही अनन्त है। केवल सर्वव्यापी और पूर्ण होने की दृष्टिसे ही वह अनन्त अवश्य कहा जासकता है।

अनन्तदेव—(१)-यह भास्कराचार्य का वंशज था। ब्रह्मगुप्तके सिद्धान्तके २० वें अध्याय और बृहज्जातक पर इसने टीका की है। इसका शक संवत ११४४ हैं (शं० बा० दीक्षित—भारतीय ज्योतिश शास्त्र)

(२)-यह कृष्णभक्ति चंद्रिका नामक नाटक का कर्ता था। इसके पिता का नाम आपदेव था। अनन्त देव राजा बाजबहादुरके आश्रयमें रहता था। उसका पिता आपदेव पूर्वकालीन अनन्तदेव का पुत्र और पूर्वकालीन आपदेव का नाती था। (ऑफ्रेक्ट—कॅट, कॅट, पीटरसन रिपोर्ट ४)

अनन्तपद—(Myriopoda)—इस जातिमें शतपद, गोजर, वाणी इत्यादि जन्तु होते हैं। यह संधीपाद जन्तुओं का ही एक वर्ग है। इनमें तथा कीटकवर्गमें बहुत साम्य होता है। वायुनलिका के संयोगसे ही इनकी श्वांस-क्रिया चलती रहती है। अपने चीरदार शृङ्ग, युगलनेत्र, दो अथवा तीन दष्ट्रोंसे यह शीघ्रही पहचाने जासकते हैं। इनके कबन्ध प्रदेशपर अनेक वलय होते हैं और प्रत्येक वलयके साथ दो पैर जुड़े रहते हैं।

अन्य कवचधारी अथवा कीटकवर्गोंसे इनकी तुलना करने पर इनमें बहुत कमी देख पड़ती है। इस श्रेणीके जीवोंके दो मुख्य भाग किये गये हैं। पहला भाग शतपदों (Centipoda) और दूसरा युगलपदों (Diplopoda) का है। कुछ शास्त्रज्ञों

के मतानुसार (Symphyala) सिमफायला और '(Pourapoda) पोरोपोडा ऐसे दो भाग और भी किये जाते हैं। इस वर्गमें (Scholopendra) स्कोलोपेंएड्रा गोजर विषयुक्त अनन्तपद इत्यादि जन्तु कह सकते हैं।

गोजर—प्रायः इसे सब लोग जानते हैं। इसका रङ्ग काले और लालका संमिश्रण होता है। ये वर्षा ऋतु अथवा ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें निकलते हैं। गंदे स्थानों पुराने पत्थरों इत्यादिके नीचे तो यह मिलते ही हैं, बहुधा जमीन खोदनेपर भी यह पाये जाते हैं। जाड़ेके मौसिममें अपनेको यह भूमि में गाड़ लेता है। यह अत्यन्त चपल होता है। नर अण्डे खाजाता है, इसी कारणसे मादा इनको ज़मीनके अन्दर गाड़कर रखती है।

यदि किसी गोजर को लेकर ध्यानपूर्वक देखें तो पहले उसका शीर्ष तदनन्तर उसका वलययुक्त कबन्ध देख पड़ेगा। कबन्धके ऊपरी भागमें तो बिल्कुल छोटे छोटे वलय होते हैं, तदनन्तर कबन्ध के पन्द्रह अथवा सोलह स्पष्ट वलय देख पड़ते हैं। पूना, जेजुरी, बिहार, बङ्गाल इत्यादि प्रान्तों में यह बड़े बड़े दृष्टिगोचर होते हैं। कभी कभी वलय का रङ्ग भिन्न भिन्न देख पड़ता है। यदि एक वलय पीला हुआ तो दूसरा काला होता है। इसी भाँति क्रमसे वलय का रङ्ग होता है। शीर्षपर लम्बे लम्बे नोकीले सींगके समान होते हैं। इन सींगोंके पास ही नेत्र होते हैं। यदि इसको उलट कर देखा जाये तो इसके मुखकी ओर घूमी हुई तीक्ष्ण दंष्ट्रोंके समान एक जोड़ी देख पड़ती है। यह प्रथमचरण की जोड़ी होती है और इसे विष दंष्ट्रको जोड़ी भी कह सकते हैं। इस को चुभानेसे विष अन्दर प्रवेश करके भर जाता है। यदि यह जोड़ी उखाड़ कर अन्दर देखा जाय तो एक दूसरीही पार्श्वोष्ठकी जोड़ी देख पड़ेगी। यद्यपि ये साधारण चरणके ही समान होते हैं, तथापि इनमें कुछ अन्तर अवश्य होता है। कंबन्धके प्रत्येक वलयके साथ एक एक चरणोंकी जोड़ी होती है।

उस जोड़ीको उखाड़ने पर भीतरकी ओर बहुतसी बात-नलिकायें देख पड़ती हैं। शरीरके प्रत्येक अन्तर्भागको इन्हींसे वायु पहुँचती हैं। इन्हींके संयोगसे गोजरकी श्वांस क्रिया चलती रहती है।

हृदय भी नलिकारूप ही होता है। इसकी लम्बी नलिका पृष्ठ भाग पर रहती है। मल मूत्र त्याग करनेके लियेभी नलिकाओंका एक अन्य समूह रहता है। ये नलिकाओंका मुंह गुदा द्वार के पास होता है। इन नलिकाओंको माल्पिघीयन नलिका (Malpighian Tube) कहते हैं। इनकी संख्या कम ज्यादा हुआ करती है। पचनेन्द्रियकी नलिका शरीर एक कोनेसे दूसरे कोने तक सीधी फैली रहती है। इसमें दो लाल पिण्ड देख पड़ते हैं। वे उसके मुख-क्रोड़में खुलते हैं।

उपरोक्त गोजर शत पदकी ही श्रेणीमें आते हैं। उस वर्गके जन्तु चपटे होते हैं, और उनके शरीरके प्रत्येक वलयमें एक एक पैरकी जोड़ी रहती है। सबसे पहले कबन्ध पर एक विष दंष्ट्र की जोड़ी रहती हैं।

युगल पाद—इस वर्गका दूसरा जन्तु युगलपाद (Diplopoda) हैं। इस श्रेणीके जीव पहले वालोंकी अपेक्षा बहुत कुछ गोल होते हैं। कबन्ध के चौथे वलयसे आगे प्रत्येक वलयमें पैरोंकी दो दो जोड़ियाँ रहती हैं। इस श्रेणिको विष दंष्ट्र नहीं होते। जननेन्द्रियके स्रोतस कबन्धके तीसरे वलय पर खुलते हैं। सींगभी इनके छोटे छोटे होते हैं। इनके पार्श्वोष्ठकी एकही जोड़ी होती है और वही सच्चे दंष्ट्र होते हैं। पहले और दूसरे कबंधके वलय परभी एक एक जोड़ी होती है। कबन्धके तीसरे वलयमें पैर नहीं होते। बाणी इस वर्गका मुख्य उदाहरण है। वर्षारम्भमें ये झुण्डके झुण्ड देख पड़ते हैं। बनस्पति भक्षक ये होते हैं और वृक्षों को इनसे हानि पहुँचती है। इनको स्पर्श करनेसे ये अपना शरीर सिकोड़ कर पड़े रहते हैं। शरीर के पृष्ठार्धसे ये घृणित पदार्थ बाहर डालते रहते हैं।

अनंतपूर ज़िला—मद्रास प्रान्तका एक जिला। उ० अ० १३°४१' से १५°१४' और पू० रे ७६°४६' से ७८°६' में यह स्थित है। इसका क्षेत्रफल ६७२२ वर्ग मील है। इसके उत्तरमें बल्लारी और कर्नूल जिले, पश्चिममें बल्लारी और मैसूर रियासत, दक्षिणमें मैसूर रियासत, और पूर्वमें कड़ापा जिला है।

अनन्तपूर जिला मैसूर पठारके बिलकुल उत्तर की ओरका प्रदेश है। दक्षिणमें यह भाग २२०० फीट ऊंचाईपर और उत्तरमें गुत्तीकी ओर १००० फीट ऊंचा है। पूर्वकी तरफका प्रदेश पहाड़ी और समथल है। यह भाग गुत्ती ताल्लुकेका पश्चिमीय भाग छोड़कर शेष जिला उजाड़ और जङ्गल रहित है। जमीन लाल रङ्गकी ऊंची नीची है। दक्षिणकी ओर का पेनकोंडा तालुका बहुत कुछ पहाड़ी है और खेती करनेके योग्य नहीं है। उपरोक्त समतल भागकी मट्टी काली है और कपासकी खेतीके योग्य

है। मकशीर ताल्लुकेमें पानीकी व्यवस्था होनेके कारण वह ताल्लुका अधिक उपजाऊ है।

भूस्तर-पेन्नार नदी इस जिलेमें बहती है। इस जिलेका उत्तरी और पूर्वी भाग भूस्तर-संशोधन-मंडलने जांचा है। इस ताल्लुकेमें वज्रकरूरके आसपास भूपृष्ठपर कभी कभी हीरे मिलते हैं। परन्तु वह ऊपर ही क्यों मिलते हैं यह ज़रा गूढ़ प्रश्न है। यहाँके नीले रङ्गकी चट्टान अफ्रीकाके किम्बर्ले की नीली मट्टीके रङ्गके समान है परन्तु दोनोंकी उत्पत्ति बिलकुल भिन्न पदार्थसे है। बहुतसे गाँवों में कुरुन्द नामक खनिज पदार्थ मिलते हैं। ऐसा कहा जाता है कि सुलभररी और नेरिजमुपल्लीमें उत्तम प्रकारका "स्टीयहाइट" मिलता है।

वनस्पतिः—बिलकुल ऊसर जमीनमें पैदा होने वाली वनस्पतियाँ इस भागमें दृष्टि गोचर होती हैं। नागफली, बबूल और तरवड़के वृक्ष अधिक पाए जाते हैं।

जंगली जानवर—कड़ापा जिलेके सीमा प्रान्त पर सूअर, बारहसींघा इत्यादि जानवर मिलते हैं।

आबहवा-यहाँ की हवा सूखी और स्वास्थकर है। मार्च महीनेसे ग्रीष्म ऋतु आरम्भ होकर जून महीनेमें बरसात शुरू हो जाती है। इस जिलेमें दोनों मानसूनों (mansoons) में से कोई भी काफी नहीं बरसती ईशान्य दिशासे आनेवाला पानी अक्तूबर में खूब बरसता है। परन्तु आगे कुछ नहीं बरसता। सम्पूर्ण जिलेकी औसत वर्षा प्रमाण २३ इंच है। १८५१ और १८८९ ई० में यहाँ बहुत बड़े बड़े तूफान आए थे जिससे बहुत नुकसान हुआ था।

इतिहास-चौदहवीं शताब्दीमें विजयनगर राज्यमें शामिल होनेके पहलेका यहाँ का इतिहास अवगत नहीं है। इस जिलेके पेन्डकोंडा और गुत्तीके दो किले विजयनगरके राज्यके भाग थे। १५६५ ई० में दक्षिणके मुसलमानोंके विरुद्ध तालिकोटके लड़ाईमें विजय नगरका रामराजा मारा गया। उस समय नामधारी राजा सदाशिव अपने अनुयाइयों सहित पेनुकोंडा भाग गया। इस जगह विजय नगरके राजा बहुत दिनोंतक रहते थे। उस किलेपर कितने ही हमले निष्फल हुए परन्तु अन्तमें यह किला मुसलमानोंने सर किया। परन्तु इस बीचमें विजयनगरका राजवंश उत्तर अर्काटमें रहने गया था। इसके बाद मुसलमानोंने गुत्ती किला भी सर किया। मुरारराववने यह किला मुसलमानोंसे छीनकर अपना निवास स्थान बनाया था। उस समयके धूमधाममें वहाँ की स्थायी सत्ता पालीगाराके हाथमें रहती थी। परन्तु जिस सत्ताकी विजय होती थी उस सत्ता के सामने पालिगारोंको नमना पड़ता था। इन पालीगारोंमें आपसमें वैमनस्य होनेके कारण किसीमें कुछ तत्व नहीं था। तो भी अनन्तपूरके पालीगारोंका काफी जोर था। हैदरअलीके हाथ में राज्यसत्ता आते ही उसने अपने राज्यके पास के इस प्रान्तपर भी कब्जा किया। १७७५ ई० में गुत्तीका किला मुरारराववने हैदरके विरुद्ध लेने की चेष्टाकी परन्तु रसदके अभावके कारण किले के लोगोंको शरण आना पड़ा। १७९२ ई० में ब्रिटिश, मराठे और निज़ामने मिलकर टीपूको हराया। उस समय उसने जो भाग इनके सुपुर्द किया उसमें अनन्तपूरके ईशान्यका भाग ताडपत्री और ताड़ीभरी ताल्लुके निजामके हिस्सेमें आये। १७९९ ई० में श्रीरङ्गपट्टनके हमलेमें टीपूके मारे जानेपर उस समय जो हिस्से हुए उसमें इस जिलेका शेष भाग निज़ामकी ओर आया। परन्तु १८०० ई० में ब्रिटिशसेना जो उसको अपने राज्यमें रखनी थी उसके खर्चके लिये वह प्रान्त उसने ब्रिटिशोंके हवाले कर दिया। इस प्रान्तके दो हिस्से बनाये गए और आजकलका जो अनन्तपूर ज़िला है वह पहले पूवावल्लारी जिलेमें समाविष्ट था। परन्तु यह जिला बहुत बड़ा होनेके कारण इसकी व्यवस्था एक कलक्टरसे नहीं हो सकती थी। इसलिये सं० १८८२ ई० में इस जिलेके वल्लारी और अनन्तपूर दो भाग किए गये।

इस जिलेमें प्राचीन देखने योग्य पेनुकोंडा और गुत्तीके किले हैं। ताड़पत्रीके देवालयको खुदाईका काम प्रेक्षणीय है। उसी प्रकार लेपाक्षी और हेमावतीके देवालय देखने योग्य हैं। इस जिलेमें जो शिलालेख पाए जाते हैं उनमें हेमावती के लेख सबसे पुराने हैं। उसमें पल्लव राजाको वंशावली पाई गई है। नवपाषाण युगके कुछ अवशेष टेकडियोंपर मिले हैं। कुछ प्रागैतिहासिक लोगोंको बनवाई हुई कब्रें भी पाई जाती हैं।

इस जिले कि जनसंख्या किस किस तरह बढ़ती गई है उसका अनुमान निम्न लिखित अंकोंपर से हो जायगा।

सं०	जनसंख्या
१८७१	७४१२५५
१८८१	५९९८८९
१८९१	७२७७२५
१९०१	७८८२५४
१९११	९६३२२३
१९२१	९५५९१७

१८७६ ई० के अकालने यहाँ के लोगोंको बहुत कष्ट दिये थे। निम्नलिखित कोष्ठकसे कुल जिलेकी स्थिती संक्षिप्तमें अवगत हो जायगी—

(१९२१ के जनसंख्याके आधार पर)

ताल्लुका	क्षेत्रफल	संख्या गांव	देहात	जनसंख्या	प्रतिवर्गमीलजन संख्याकाप्रमाण
गुत्ती	८९६	४	१२८	१३४३५५	१५०
ताड़पत्री	६४१	२	९५	१११५१०	१७४
अनंतपुर	९२५	१	१०९	१११८२५	१२१
कल्याणद्रु	८१७	१	७३	८०१६४	९८
पेनुकोंड	६७८	२	९४	८२९१८	१३७
धर्मवरम	७३२	१	६२	८८६६८	१२१
मदकशीर	४४३	१	५७	८५५९५	१९२
हिन्दुपुर	४२८	१	७८	१००४९०	२३५
कादिरी	११६२	१	१३७	१५०३५०	१२९
कुल	६७२२	१४	८३६	९५५३१७	१४२

इस जिलेके अनन्तपूर गाँवमें ही म्युनिसीपैलटी है। इस जिलेमें जमींदारी नहीं परन्तु प्रतिशत १६ एकड़ जमीन इनाम है। जमीन बहुत हलके दर्जे की है। यहाँ की मुख्य पैदावर, ज्वार, कोरा पपीता इत्यादि है। गाय इत्यादि कम हैं परन्तु भेड़ बहुत पैदा होती हैं। प्रत्येक भेंड़से प्रति वर्ष चार पौंड ऊन निकलता है।

इस जिलेमें जंगल ५१६ वर्गमील है। जंगल में सागवान और बांसके जंगल है।

खनिज पदार्थ—यहांकी इमारतें केवल पत्थरों की है। वज्रकरूर की हीरेकी खानें आजकल बन्द पड़ी हैं। करूंद कभी कभी देशी पद्धतिसे निकाला जाता है।

उद्योग और धन्धा—यहां का मुख्य धन्धा सूती और रेशमी कपड़ा बुनना है। यहाँसे कपास, गुड़, तरवड़ की छाल इत्यादि बाहर भेजी जाती हैं। मद्रास और सदर्न मरहठा रेलवे यहांसे होकर गुजरती हैं।

अकाल—वर्षा न होनेके कारण इस जिलेमें अकाल अनेक बार पड़े हैं। १७०२-३ ई० में यहाँ अकाल पड़ा था। अनेक लेखोंसे इसका सबूत मिलता है। १८०३, १८२४, में कुछ थोड़ा अकाल पड़ा था। १८३२-३३ ई० का अकाल सबसे भयानक था। १८३८, १८४४, १८४५, १८५४, १८६५-६६, १८७६,१८७८, १८८४, १८९१, १८९६ इत्यादि सालोंमें भी अकाल पड़ा था। उनमें से १८७६-७८ के अकालके निवारणार्थ एक काम शुरू किया था उसमें १,३७३४७ अर्थात् १८ फी सदी लोग काम करते थे।

विजयनगरके राज्यके समय कर तथा लगान वसूल की क्या पद्धति थी, यह ज्ञात नहीं है। ऐसा सुना जाता है कि आधी आमदनी राजा को दी जाती थी। बीजापूरके बादशाहने कामिल (कमाल) कर लगाने का प्रयत्न किया था। किसानोंसे कर पटेल, पालीगार या जमीदार वसूल करते थे। ऐसा मालुम होता है कि औरङ्ग-ज़ेब बादशाहने बीजापूरके बादशाहकी ही पद्धति कायम रखी थी। मराठोंके समयमें क्या पद्धति थी इसको जाननेका कोई मार्ग नहीं हैं। हैदरने जो नियत लगानको जारी किया था उसे टीपूने बढ़ाने का यथासाध्य प्रयत्न किया परन्तु सब व्यर्थ हुआ। १७९२ ई० में जब यह भाग निज़ामको मिला तो फिर अकाल पड़ा, इस कारणसे कर कम वसूल होने लगा।

यह प्रदेश कम्पनी के अधिकारमें आनेपर मेजर (सर थामस) मनरो साहबने रय्यतवारी पद्धति शुरू की। १८०२ ई० और १८०६ ई० में व्यवस्थित पैमाइश होने पर लगान लगाया गया। १८२० ई० में मनरोंका लगाया लगान कम किया गया। १८९०-९७ ई० में फिर जांच होकर लगान की नई पद्धति शुरू की है।

निम्नलिखित अंक हजार के हैं।

	१८९०-९१	१९००-१	१९०३-४
जमीनमहसूल	१००९	१३३९	१३९३
कुल 'आय'	१६२४	२१७४	२१५०

अनन्तपूर विभाग—मद्रास प्रान्तके अनंतपूर जिलेका एक विभाग। इसमें अनन्तपूर और कल्याणके द्रुगका समावेश होता हैं।

अनन्तपूर ताल्लुका—मद्रासके अनन्तपूर जिले का ताल्लुका। यह उ० अ० १४ २४' से १४ ५५' और पू० रे० ७७ १७' से ७७ ५९' में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ९२५ वर्ग मील है। यहां की जन-संख्या भाग एक लाख है। इसमें १९ देहात हैं। १९०३-४ ई० में कुल आय १९००००) थी। यहाँ की जमीन ऊँची नीची, पथरीली तथा कम उप-जाऊ है। इस भागमें जङ्गल न होनेके कारण प्रदेश ऊसर देख पड़ता है। उत्तरको जमीन कुछ काली है। उत्तर और पूर्व की ओर अनुक्रम से पेन्नार, और चित्रावती नदियाँ हैं। परन्तु वे खेतीके कामकी नहीं है।

अनन्तपुर गाँव—जिले, विभाग और तालुकेका मुख्य स्थान। यह उ० अ० १४°११' और पू० रे० ७७°३७' में स्थित है। सदर्न मरहठा रेलवेके गुंटकल बंगलोर शाखापर यह स्टेशन है। यहाँकी जन-संख्या १९२१ में ११४५२ थी। विजयनगरके राजाके दीवान चिकण्णा उड़ियारने यह गाँव १३६४ ई० में बसाया था, और उसको अपनी पत्नी "अनन्ता" के नामसे विख्यात किया। इसी चिकण्णाने उसी समय अनन्तपुरमें एक बड़ा तालाब बनवाया। इस तालाबमें पंदामेरू नदी आकर मिलती है। विजयनगरके राजासे हनुमप्पा नायडूके हंडे घरानेको इस विभागकी सनद सोलहवीं शताब्दीमें मिली। इस घरानेके पास यह प्रदेश दो शताब्दी तक था। १७५७ ई० में गुत्तीके संस्थानिक मुराररावने इस गाँवपर घेरा डाला; परन्तु ५००००) मिलनेपर उसने यह घेरा उठा लिया। १७७५ ई० में हैदरने गुत्ती और बल्लारी जीतकर इन भागोंमें से ६६०००) वसूल किया, वहाँके पालेगारको यह रकम न दे सकने के कारण हैदरने उसे कैद किया और उसका प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया। इसके बाद वह वंश कभी सिर न उठा सका। १७८८ ई० में वयोवृद्ध पालेगारका देहान्त हो गया, इसके बाद टीपूने शीघ्र ही इस घरानेके कुल मनुष्योंको फाँसीकी आज्ञा सुनायी, जिससे फिर वे दुःख न पहुँचा-सकें और उनको गाँवके बाहर फाँसीपर लटकाया गया। उस बूढ़े पालेगारका तीसरा पुत्र श्रीरङ्ग-पट्टणमें था। उसने भागकर कालहस्तिके राजा का आश्रय लिया। १७९९ ई० में वह अनन्तपुर को लौट आया; परन्तु वह शीघ्र ही निजामकी शरणमें आया। निजामने उसको सिद्दनामपुर गाँव इनाममें दिया। १८०१ ई० में उसकी मृत्यु होनेके बाद मुख्य शाखाका अन्त हो गया।

१८६९ ई० में यहाँ म्युनिसीपैलिटी स्थापित हुई, १९०३-४ ई० में आय १७५००) और व्यय १६०००) था। अनन्तपुरके चारों ओर बगीचे हैं, इस कारण वहाँ की हवा स्वास्थ्यके विचार से खराब है। युरोपियन लोग अच्छी जगह बसे हैं। यहाँ लगभग २०-२९ इंच वर्षा होती है। यहाँ एक डाकबङ्गला, एक कालेज, तीन हाईस्कूल, सरकारी ट्रेनिंगस्कूल तथा और भी स्कूल हैं। एक जिनिंगका कारखाना है, अनाज लोहे और फुटकर मालका व्यापार होता है। मुख्य पुलिस. कचहरी, मेजिस्ट्रेट कोर्ट और दूसरी श्रेणीके कारागृह इत्यादि हैं, [इं० गॅ० ५ अर्नोल्ड इं० गाइड सेसंसरिपोर्ट]

अनन्तपुर —मैसूर राज्यके शिमोगा जिलेके तालुकेका एक गाँव है। यह उ० अ० १४°५ और पू० रे० ७५°१३ में स्थित है। लोक संख्या यहाँकी चार सौ है, पहल इसका नाम अन्धासुर था और यह एक महत्वकी जगह थी। अन्धासुर नामक राजाने इसे बसाया था। आगे आठवीं शताब्दीमें हुचा राज्यके संस्थापक जिनदत्तने अन्धासुरको जीता। ग्यारहवीं शताब्दीमें अन्धासुर चालुक्योंके राज्य में शामिल था। १०४२ ई० में १२०० ब्राह्मणोंको इस गाँवका अग्रहार बनाया गया। १०७९ ई० तक यह राजधानी थी. सत्रहवीं शताब्दीमें केलदी राजा वैकंटप्पा नाइकने शिवाचार मठ स्थापित किया, चंपकसर नामक तालाब बनवाया और गाँवका नाम आनन्दपुर रक्खा। आजकल उसका रूपान्तर अनन्तपुर हुआ। हैदर और टीपू के समयमें इस गाँवपर अनेक बार चढ़ाइयाँ हुई थीं। (इं० ग० ५)

अनन्त फंदी—नगर प्रान्तमें संगमनेर नामक एक बड़ा गाँव है। वहींका यह निवासी था, यह वाजसनी ब्राह्मण था और इसका गोत्र कोडिण्य था, इसके पिताका नाम कवानीबाब, माँ का नाम राजूबाई (राऊबाई महाराष्ट्र)। कविचरित्र; संत-कविकाव्य सूचीकार "गउवाई" लिखती हैं, यह कदाचित् मुद्रक दोष होगा इसका (उपनाम) घोलप था। संगमनेरमें एक मलीक फंदी नामक विलक्षण फकीर था उससे इसका बहुत स्नेह होने के कारण लोगोंने उसका फंदी उपपद इसके नाम के साथ जोड़ा और तबसे इसका यह नाम पड़ा। इसका जन्म शक १६६६ के रक्ताक्षि नामक संवत्सरमें हुआ था और मरनेके समय उसकी अवस्था ७५ वर्ष की थी। उस समय शालिवाहन शक १७४१ था। अनन्त फंदी पहले तमाशे करता फिरता था और अपनी बनाई हुई लावनी गाकर लड़केको नचाता था। एक समय अहिल्याबाई होलकर संगमनेरमें ठहरी थी। उसको इसका पता लगा और उसका बुलाकर कहा कि जो कृत्य आप करते हैं वह ब्राह्मणके लिए उचित नहीं हैं, तबसे इसने तमाशा करना छोड़कर कीर्तन करना आरम्भ किया। अनन्त फंदीके होलकर राज्यमें जानेपर बाईने तमाशेके बदले कीर्तन करनेका उपदेश दिया था। इसके बाद लोकाग्रहसे एक अवसरपर अनन्त फंदीके एक बार फिर तमाशा आरम्भ करनेपर एकाएक सगमनेरमें अहिल्याबाई की सवारी आई, और

यह निश्चय होनेपर कि फंदी तमाशा कर रहा है उस का धड़ सिरसे अलग करनेकी उन्होंने आज्ञा दी। यह समाचार तमाशेमें फंदीको मिलते ही उसने तमाशेको कीर्तनमें परिवर्तन कर दिया। तब बाई प्रसन्न होकर और फंदीको इनाम देकर आगे बढ़ीं (म० कविचरित्र)

अनन्तमूल—अनन्तमूल, अनन्तवेल, सुगंधि-वाला, सारिवा (संस्कृत) मग्रवू, उपलसरि, नन्नरि इत्यादि इस बनस्पतिको अनेक नामसे पुकारते हैं। उत्तर हिन्दुस्थान, बंगाल प्रान्त तथा दक्षिणमें ट्रावनकोरसे सिलोन तकके सब प्रदेशोंमें पाई जाती है।

अंग्रेजी सार्सापरिलाके जोड़का रक्त शुद्ध करने का गुण इस वनस्पतिमें है, इस कारण इसका एतद्देशीय औषधियोंमें उपयोग किया जाता है। बहुधा काढ़ा अथवा पाकके रूपमें अनन्तमूल देते हैं। सूजन कम करनेके लिये, स्वास्थ्यवृद्धिके लिये और मूत्ररेचक होनेके कारण इसका उपयोग होता है। अग्निमांद्य, ज्वर, रक्तदोष, उपदंशादि विकारोंपर भी अनन्तमूल देते हैं। कभी कभी अनन्त बेलकी बुकनी करके चावलके (खुद्दी) में डालते हैं या सूखे पत्तोंका काढ़ा पकाते हैं. बाजारोंमें इसको छोटी छोटी गड्डियाँ मिलती हैं। उसमें एक अथवा अधिक पेड़ोंकी जड़ें बाँधी हुई रहती हैं, अनन्त मूल १२ आना या १ रुपये सेर मिलता है। यूरोप में अनन्तमूल फी पाउंड डेढ़ या दो शिलिंगको मिलता है, [बॅट, पदे; Ayurvedic system of medicine by N. N. Sen Gupta Vol. III]

अनंतराम—इसने 'स्वानुभूति' नामक नाटक अन्योक्तिपर लिखा था।

अनंतशयन—यह ट्रावनकोरमें विष्णुका स्थान है, यहाँ पर १४ हाथ लम्बी विष्णुकी मूर्ति है जो शेष पर शयन करती है। इस कारण इसका नाम यह पड़ा है। आनंदगिरि अपने शंकर विजय में लिखते हैं कि जब भगवत्पूज्यपाद श्रीमच्छंकराचार्य दिग्विजय करते हुए यहाँ आये, और देव दर्शन कर एक महीने भर रहे थे और उनको उपनयनादि संस्कारहीन विष्णुशर्मादिक ऐसे छः प्रकारके वैष्णव मिले तब आचार्यजीने उनको उपदेश दिया और फिरसे ब्राह्मणत्वमें लाये। पेशवाके समयमें भी यह देवस्थान प्रसिद्ध था और उस समयके पत्रोंमें इसका उल्लेख है,

अनंतसुत मुद्गल—(कृष्णदास मुद्गल) महीपति बाबाका कथन है कि यह नाथ महाराजके एक वर्ष पूर्व समाधिस्थ हुए होंगे। उस समय समाधि शक १५२० था। ग्रंथ-रामायण, रुक्मिणी स्वयंवर, कालिया-मर्दन (सं. क. का. सु.)

अनंतसुत—(विट्ठल) यह कवि करीब ७० वर्ष पूर्व बड़ौदामें हुआ था। इसके पिता अनंत हांगा नदीके किनारे पिंपल गाँवमें रहते थे। वे पिंपल तथा तीन अन्य गाँवोंके जोशी और पटवारी थे। विट्ठलकी माँ का नाम राधाबाई था। उसका देहान्त होनेके पश्चात् अनंतने सन्यास ग्रहण किया। विट्ठलने पिताको ही गुरु किया था, अनंतसुतका "दत्तप्रबोध" नामक एकही ग्रंथ प्रसिद्ध है।

अनमदेश—यह पिंपल राजके दक्षिणमें (रेंवा कांठा मु. इ.) और मानसेलके बीचका स्थान है. पहिले सुलतान अहमद (१४११-१४४३) के मित्र शेख अहमदके जन्म दिवसके उपलक्ष्यमें बनायी हुई मसजिद यहां है।

अनयमलय—यह उ० अ० १०°१५' से १०°३१' और पू० रे० ७६°५७' से ७७°२०' में स्थित है। मद्रास प्रान्तके कोयमबटूर जिलेमें फैले हुए सह्याद्रि पर्वतका एक भाग है। इसे हाथीका पहाड़ भी कहते हैं। इस पहाड़की हवा नीलगिरि पहाड़की हवासे मिलती जुलती है। इस पहाड़की दो पङ्क्तियाँ हैं; एक नीचे और एक ऊपर। नीचेकी पंक्तिकी ऊंचाई ३००० से ४५०० फीट है और ऊपरकी पंक्तिकी ऊंचाई ७००० फीट तक है। नीचेके पहाड़की ढालपर १८५०० एकड़ जमीन कहवा बोनेके लिये तैयारकी गई है। पहाड़पर सुन्दर जंगल हैं। यहाँका सागवान मशहूर है। पहाड़परसे सागवान लानेका काम हाथियोंसे लिया जाता है। माल नीचे आनेपर उसको बिलकुल नीचे ले जानेकी व्यवस्था एकतार बाँधकर की है। इस पहाड़में मिलनेवाली भिन्न भिन्न वनस्पतियाँ और तंतुओंके नमूने कोयमबटूरके जंगलपदार्थसंग्रहालयमें रखे गये हैं। इस जंगल में शिकार पाये जाते हैं। नील गाय, बारहसिंघा, बाघ, रीछ, इत्यादि यहाँ बहुत मिलते हैं। कुछ जंगली जातियाँभी इस जंगलमें हैं। कादन, मुदवन, पुलैयन, मलसर इत्यादि इनमेंसे मुख्य हैं। (इं० ग० ५)

अनयमुड़ी—(हाथीका माथा) मद्रास इलाके में ट्रावनकोर राज्यके ठीक ईशान्यके कोनेको सह्यादि पर्वतकी चोटीपर यह उ० अ० १०°१०' और पू० रे० ७७°४' में स्थित है। इसकी ऊंचाई ७७३७ फीट है। दक्षिण हिन्दुस्थानमें इसके समान ऊंचा पहाड़ और कोई नहीं है। इस पहाड़से

कोयमवटूर, मदुरा, मलावार जिले और कोचीन राज्यके दृश्य बहुत ही सुन्दर देख पड़ते हैं। आकाश निर्मल होनेपर समुद्र भी देख पड़ता है। कहवा बोनेके कुछ समय पहले यहाँ शिकार पाया जाता था। नैर्ऋत्य दिशामें बरसातके शुरू होते ही हाथियोंके झुंड दिखाई पड़ते हैं। (इं० ग०५)

अनरण्य—सूर्यवंशी इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न पुरूकुत्सके लड़के सदस्युके यह द्वितीय पुत्र थे। उनके हर्यश्व और बृहदश्व नाम के दो पुत्र थे। ये अयोध्या में राज्य करते थे। इनको रावणने परास्त किया था। रणमें मरते समय अनरण्यने उसे श्राप दिया था कि मेरा ही वशंज तेरे सब परिवारका नाश करेगा। (वा० रामायण, उत्तर० स० १९)

(२) सूर्यवंशी राजा ऋतुपर्णका पौत्र। इनकी वंशावली इस भाँति मिलती है-ऋतुपर्ण; सर्वकर्मा; अनरण्य; विघ्न।

(३) जिन प्राचीन राजाओंने कार्तिक मासमें मांस निषेध किया है, उनमें से एक। महाभारत १३. ११५. ५५६१.)

(४) सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय स्मरणीय एक प्राचीन राजा (१३ १६६ ७६८४)

अनल—(१) आग्नेय दिशाका दिग्पाल वसु। इसके चार पुत्र थे। उनके नाम कुमार, शाख. विशाख, तथा नागमेय थे (महाभारत आदि० ६७)

(२) विभीषणके चार पुत्रथे। उनमें से यह यह भी एक राक्षस था।

(३) गरुड़ का पुत्र (महा० उद्यो० १७)

(४) यम सभामें एक राजा (महा० सभा०८)

अनला—(१) सुरभिकन्या रोहिणीकी द्वितीय पुत्री। इसकी कन्या शुकी थी (महा० कर्ण०)

(२) माल्यवान नामक राक्षसकी सुन्दरी नामक स्त्रीसे उत्पन्न कन्या। विश्ववसू की पत्नि।

अनवरुदिन—कर्नाटिक का एक नवाब। इसने आरम्भमें सिपाहीके पदसे आरम्भ कर अपने भाग्यकी परीक्षा की थी। पहले निज़ाम ने इसे कर्नाटिक के बालराजका दीवान नियत किया था। कुछ कालके बाद बालराजाकी हत्या कर डाली गयी। इस समय इसने विश्वासघात करके गद्दी स्वतः दख़ल कर ली।

पहले पहल यह देहलीके दरबारमें भी काम कर चुका था। कुछही कालके बाद वह कोरा जाहानावाद का सूबेदार नियत किया गया, किन्तु दुर्व्यवहार तथा अयोग्यताके कारण वह कर वसूल न कर सका और बादशाहके पास नियत समय पर रुपया न भेज सका। अतः इस नौकरी को तिलाञ्जली दे वह अहमदाबाद चला आया। यहाँ निज़ामुलमुल्क के पिता ग़ाज़ीउद्दीनने उसे सूरत नगरमें एक जिम्मेदारी की जगह दी ग़ाज़ी उद्दीन की मृत्युके बाद जब उसका लड़का दक्षिण प्रान्त का सूबेदार हुआ तो अनवरुद्दीन राजमहेन्द्री तथा कर्नाटक की देखरेखको नियत किया गया। इस प्रदेश की देख रेख वह १७२५—४१ ई तक करता रहा। तदनन्तर इसी प्रदेश का वह सूबेदार बनाया गया। तदनन्तर निज़ामुलमुल्कके पोते मुजफ्फर जंगके साथ लड़ाईमें मारा गया। कहा जाता है कि उस समय उसकी अवस्था १०७ वर्ष की थी। उसका बड़ा लड़का तो पकड़ गया किन्तु दूसरा लड़का मुहम्मदअली त्रिचनापली भाग गया। अवदी नामक कविने 'अनवर नामा' नामक उसका जीवन चरित्र लिखा है। उसमें अनवरकी बहुत प्रशंसा की है। उसमें मेजर लॉरेन्सके पराक्रम, तथा अंग्रेजों और फ्रान्सीसी युद्धों का ठीक ठीक हाल दिया है। हैदराबादके नवाब नासिर जंगने अनवरुद्दीनके पुत्र मुहम्मद अलीको कर्नाटिक का सूबेदार बनाया। (बील, ओरियन्टल, बायोग्राफिकल डिक्शनरी, इतिहास संग्रह पु० ३० पृ०६७)

अनवरी—अहद उद्दीन अली अथवा अनवरी एक प्रसिद्ध ईरानी कवि हो गया है। इसका जन्म बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें खुरासान नगरमें हुआ था। सुलतान सञ्जीर इससे अत्यन्त प्रसन्न रहता था, और हरेक चढ़ाई पर इसे साथ ले जाता था। सुलतानके हजारस्पपर घेरा डालने के समय अनवरी तथा उसके प्रतिपक्षी रशीदीमें काव्यविषयक विवाद आरम्भ होगया था। रशीदी दूसरे किलेमें था। कहा जाता है कि इनकी कवितायें बाणोंद्वारा इधरसे उधर भेजी जाती थी। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें इसकी मृत्यु बल्खमें होगई। इसकी कविताओं तथा वीणागीतों का संग्रह 'दीवान अनवरी' नामक ग्रंथमें मिलता है। 'खुरासानके आंसू' इसका सबसे बड़ा ग्रंथ है। प्रसिद्ध कवि सादीने भी कुछ कवितायें अपनी 'गुलिस्तां' में इसके अधार पर लिखी है। अपने समय का यह एक प्रख्यात ज्योतिषि भी माना जाता था।

अनवल—यह बीजापुर ज़िलेमें बहने वाली कलादगी नदीके आग्नेय तटपर पाँचमील दूरीपर एक छोटा सा गाँव है। यहाँकी जनसंख्या लगभग १००० है। गाँवमें अनन्त, हनुमान, और रामके मन्दिर हैं। यहाँके अनन्तके मन्दिरमें शेषनागपर शयन करते हुए एक विष्णु भगवान की मूर्ति

है। इस मूर्तिके चरणोंकी ओर लक्ष्मी और नाभि में से निकले हुये कमलासन ब्रह्मा दिखाये हैं। इसमें विष्णुके दशों अवतार भी दिखाये गये हैं। गोविन्दराव चिचणीकी मृत्युके अनन्तर कोई भी अधिकारी न होने के कारण अनवल जब्त कर लिया गया। (बं० गॅ०)

अनवलोभन—द्विजोंके सोलह संस्कारोंमें से यह भी एक है। गृह्यकर्मोंका वर्णन करने वाले गृह्यसूत्रोंमें इस संस्कारका उल्लेख अधिक नहीं मिलता। आश्वलायन गृह्यसूत्रों में इस संस्कार का वर्णन कुछ मिलता है। पुंसवन-संस्कारके बाद यह संस्कार करनेका उल्लेख मिलता है। स्त्रीके गर्भवती होनेके तीसरे महीने में यह करना चाहिये। गर्भरक्षाके लिये ही यह संस्कार किया जाता है। इसी कारण से इसका यह नाम रखा गया है (न अवलुप्यते गर्भोऽनेन)। बहुधा यह संस्कार भी पुंसवन के साथ ही कर लिया जाता है। पतिद्वारा अश्वगन्धाका रस गर्भिणीके दाहिने नाकके छिद्रमें छोड़नेकी क्रिया ही इस संस्कारका मुख्य भाग है। लोगोंका ऐसा विचार है कि इस रस-सिञ्चनसे गर्भनाशका भय नहीं रहता। रस सिंचनके समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है (माहं पौत्रमघं नियाम्) वह भी अर्थकी दृष्टिसे अवसरानुकूल ही है।

अनसिंग—वाशिम ताल्लुकेके अकोला जिलामें वाशिमसे १५ मीलपर आग्नेय दिशामें यह बसा हुआ है। यहाँकी जनसंख्या लगभग दो सहस्र है। पहले यह इस परगनेका मुख्य स्थान था। लोगोंका अनुमान है कि शृङ्गिऋषिके नामपर यह गाँव बसा हुआ है। इन ऋषिका एक मन्दिर गाँवके उजाड़ स्थानपर बना हुआ मिलता है। मन्दिर पुराने हेमाड़पंथी ढङ्गका बना हुआ है। इस मन्दिरकी व्यवस्थाकेलिये लोगोंने छः गाँव इसके नामसे खरीदे हैं। पास ही एक बावड़ी और नाला है जिनमें सदा पानी भरा रहता है। बावड़ीके तटपर सतीका एक हाथ गाड़ा हुआ है। इस विषयमें अनेक कथायें हैं। चूड़ियों से हाथ भरा हुआ था, इस कारणसे यह जल नहीं सका। कहा जाता है कि सतीके पिता दक्ष और उसके पति शिवमें विरोधके कारण जब उसे आत्महत्या कर लेनी पड़ी तो शिवने उसके शवके अनेक खण्ड कर डाले। वे खण्ड ५१ स्थानोंपर गिरे। इस स्थानपर हाथ गिरा था। वह वहीं गाड़ दिया गया। इसके आसपासकी भूमि ऊसर है। १८९९-१९०० ई० के अकालमें यहाँ एक पहाड़ी तालाब बनवाया गया था। इसमें बारहों महीने पानी रहता है। और भी तीन तालाब हैं। यहाँ पुलिसका थाना है और हाट लगता है (अकोला डि० गॅ०)

अनसूया—(१) देवहूतीके गर्भसे उत्पन्न नौ कन्याओंमेंसे एक कन्या। यह कर्दम ऋषिको कन्या थी। स्वायंभू मन्वन्तरके ब्रह्म-मानस पुत्र अत्रि ऋषिकी यह स्त्री थी।

(२) कहा जाता है कि वैवस्वत मन्वन्तरमें अत्रिने पुनः जन्म लिया था और उनको स्त्री यही अनसूया हुई।

अनसूया परम-पतिव्रता तथा महातपस्विनी थी। इसकी एक प्रसिद्ध कथा मिलती है कि एक बार निरन्तर दस वर्ष तक वर्षा न होनेपर भी इसने अपने तपोबलसे असीम कन्द, मूल, फल उत्पन्न करके असंख्य प्राणियोंकी रक्षाकी थी। दूसरी कथा है कि जब माण्डव्य ऋषि सूलीपर चढ़ाये गये तो अन्धकारमें एक ऋषिपत्निसे उस शूलीको धक्का लगा, तो ऋषिने क्रुद्ध होकर श्राप दिया कि सूर्योदय होते ही तू वैधव्यको प्राप्त होगी। ऋषि-पत्निने भी अपने तपोबलसे सूर्योदय ही रोक रक्खा। इससे संसारका काम बन्द हो गया। यह ऋषिपत्नि अनसूयाकी परम सखी थी। सारे संसारमें हाहाकार मच गया सब ऋषि भी बड़े चिन्तित थे। जब उन्हें यह पता लगा कि वह ऋषि पत्नि अनसूया की परमसखी है तो सब ऋषि देवताओंको साथ ले अनसूया की शरणमें गये। अनसूयाने अपने तपोबलसे अपनी सखीका वैधव्य हरण कर सूर्योदय होने दिया। चित्रकूट के दक्षिण वनप्रदेशमें इसका आश्रम था। यहाँ पर श्रीरामचन्द्रने सीता तथा लक्ष्मण सहित वनवास कालमें इसके आश्रममें निवास किया था। अनसूयाने सीताको बड़े प्रेमसे पतिव्रत धर्म का उपदेश देकर दिव्यवस्त्र तथा अँगराग भेंट किया था। उस वस्त्रके पहिननेसे तथा अंगरागके अनुलेपनसे शरीर सुन्दर, स्वच्छ और विगत-श्रम होता था। (वाल्मी० रा० अ० ११७)

एक स्थान पर इस प्रकार का उल्लेख आया है कि अत्रिसुत दत्तात्रेयकी यह माता थी। एक बार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इनके पतिव्रत धर्म की परीक्षा लेने आये। इसने अपने तपोबलसे इनको छोटे छोटे बालकोंके रूपमें परिवर्तन कर दिया। उन्हींका आगे चलकर दत्तात्रेय अवतार हुआ।

अनहद—(अथवा अनाहद) इस शब्दका उल्लेख कबीरदासकी रचनाओंमें बारम्बार आया

है। इस शब्दका प्रत्यक्ष सम्बन्ध संस्कृतके 'अनाहत' शब्दसे है जिसका अर्थ है, 'जिस पर किसी प्रकारका आघात न किया गया हो' किन्तु कबीरदासकी रचनाओंमें यह शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, इससे और मूल संस्कृत शब्दके अर्थमें किसी भी प्रकार का साम्य मालूम नहीं पड़ता। कबीरदासकी रचनाओंमें यह शब्द दो भिन्न भिन्न अर्थोंका द्योतक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कबीरदास एक उच्च कोटिके हठयोगी भी थे और स्थान स्थान पर उन्होंने अपने काव्यमें हठयोगके पारिभाषिक शब्दों और हठयोगजनित भावों की व्यञ्जना की है। अनहद उनकी रचनाओं में कहीं कहीं पर 'मूलाधार' 'स्वाधिष्ठान' मणिपुर' आदि शरीरके आभ्यन्तरिक छः चक्रोंमें से एक के लिये प्रयुक्त हुआ है, और कहीं कहीं पर यह एक प्रकार की उस मधुर ध्वनिके लिये प्रयुक्त हुआ है जो योगी को उस समय सुनाई देती है जब वह अपनी साधनामें बहुत ऊँचे उठ जाता है। कहते हैं कि इस मधुर और शान्ति-दायक स्वरका उस ध्वनि से बहुत कुछ साम्य है जो दोनों कानोंको अँगूठोंसे बन्द करने पर सुनाई देती है।

अना—यह नगर युफ्रेटीस (Euphrates) नदीके तीर पर बसा हुआ है। बैबिलोनियन लेख (ई० पू० २२०० के लगभग का) में इसका उल्लेख हनाट नामसे किया है। असुर नाजिरपाल का लेखक इसे (ई० पू० ८७९) 'अनार' नाम देता है। यूनान तथा रोमन लेखक इसे 'अनाथा'के नामसे लिखते हैं। अरब लेखोंमें इसका उल्लेख 'अना' नामसे आता है। लगभग सभी लेखकोंका यह मत है कि यह नगर एक टापूपर बसा हुआ था। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि बैबीलोनियन साम्राज्यकालमें अनाकी स्थिति कैसी थी, किन्तु फिर भी ई० पू० ३००० के पत्रमें भी इसका तथा इसके छः प्रसिद्ध नागरिकोंका उल्लेख सूही प्रदेशके विद्रोह तथा झगड़ोंमें आया है। अनाके निवासियोंने ईरानकी चढ़ाईके समय जुलियन बादशाहका सामना किया था। केम नामक खलीफाने निर्वासन काल यहीं पर व्यतीत किया था। अनेक लेखकों तथा यात्रियोंने इसका कुछ न कुछ वर्णन किया है। आधुनिक 'अना' नगर युफ्रेटीज़के दाहिने किनारे पर बसा है। अरबी कविने यहाँकी शराबका वर्णन तथा उसकी प्रशंसा की है। यहाँ मामूली मोटा कपड़ा बनता है।

अनागतवंश—(भविष्यकालको वंश परंपरा) गंधर्ववंशमें लिखा है कि भावी बुद्ध मेत्तेयके विषय में १४२ पद्य खण्डोंका एक काव्य कश्यपने लिखा था। उसके लिखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सौसन वंशदीपके चोल साम्राज्यमें रहता था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सौसन कांचिपूरमें न रहता होगा। यदि सौसन कांचिपूरमें रहता होता तो ग्रंथकर्त्ताने 'चोलख्य' नाम की जगह काँचीपूर नामका प्रयोग किया होता। यह अनुमान करना कि बुद्धवंशका भी यही कर्त्ता है सर्वथा भूल है। कश्यप के समय अथवा उसके ग्रंथके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। उपतिस्स ने अनागत वंश पर टीका की है। लोगों का कहना है कि यह उपतिस्स ६७० ई० में सिंहलद्वीपमें लिखे गये 'महाबोधिवंश'का कर्त्ता होगा। भावी बुद्ध मेत्तेय पर बौद्ध लोगोंका विश्वास होनेसे इस वंशका महत्व बहुत बढ़गया। पर इसका काल निश्चित रूपसे न मालूम होना बड़े दुखका विषय है। निकायमें लिखा है कि भावी बुद्ध उत्पन्न होंगे परन्तु एकके सिवाय और किसी निकाय या पिटकमें मेत्तेयका उल्लेख नहीं है। बुद्धवंशके अन्तमें यह नाम मिलता अवश्य है पर यह मूलग्रंथमें न होकर पीछेसे जोड़ा हुआ प्रतीत होता है। 'नेत्ती' प्रकरणमें भी मेत्तेयका नाम नहीं है। ऊपर जिस अपवादात्मक ग्रंथ का उल्लेख है वह दीर्घनिकाय है। उसके छब्बीसवें सम्वादमें बुद्धने भविष्य वाणी की है कि मेत्तेय के सहस्रों अनुयायी होंगे परन्तु मैं केवल सैकड़ों समझता हूँ। महावस्तूमें यह कथा बहुत प्रचलित है। उसमें ग्यारह बारह मेत्तेयका वर्णन आया है। दो, तीन लेखोंमें तो उसका पूर्ण वर्णन किया है। उसकी केतुमती नगरीके विस्तारका वर्णन अनागत वंशसे मिलता जुलता है (महावस्तु ३, २४०-अनागत वंश ८) पर और बातोंमें वे भिन्न हैं।

इस ग्रंथसे तीन मुख्य बातोंका पता लगता है:-(१) इस कथामें कुछ भी नवीनता नहीं है। इसकी कथा पूर्व-बुद्धकी कथाके आधारपर लिखी गई है, केवल संख्या बदल दी गई है।

(२) मेत्तेय और पश्चिमीय मसीहा (Messiha) की कल्पनाओंमें साम्य दिखाने वाली बहुत सी बातें पाई जाती हैं। यद्यपि सभी कल्पनाएँ एक सी नहीं हैं फिर भी बहुत सी बातोंमें समानता पाई जाती है। ऐसा वर्णन मिलता है कि मेत्तेयका काल सुवर्णयुग था। उस समय राजा और मंत्री जनता तथा राज्यकी ठीक व्यवस्था रखने और सत्य की सदा विजयके लिये स्पर्धा करते थे।

(३) 'मेत्तेय' नामके विषयमें जो थोड़ा सन्देह है उसे दूर करदेना आवश्यक है। मेत्तेय का अर्थ "प्रेम बुद्ध"नहीं है बल्कि यह एक गोत्रका नाम है। कदाचित् गौतम की तरह यह भी पैतृक नाम है, और इसका अर्थ 'मेत्तेय का वंशज' होगा। मेत्तेय सुत्तनियतका एक दूसरा ऐतिहासिक पुरुष था। उसका और इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। 'मेत्ता' शब्दका अर्थ 'प्रेम' है इसलिये भावी बुद्धको "मेत्तेय" नाम देनेके लिये इस शब्दका प्रयोग किया है। ऐसे शब्द श्लेष भारतीय साहित्य में प्रायः पाये जाते हैं। इसमें यह भी लिखा है कि भावी बुद्ध का नाम "अजित" होगा।

अनागोन्दी—यह नगर तुंगभद्रा नदीके उत्तरीय तटपर बसा हुआ है। तुंगभद्रा नदीके दक्षिणीय तटपर बसे हुए विजय नगरके यह ठीक सामने है। प्राचीन कालके यहाँ अनेक मन्दिर हैं। लोगोंका कथन है कि बालिकी किष्किन्धा नगरी यही रही होगी। यह एक छोटासा नगर था जिस के चारों ओर किलेबन्दी की हुई थी। यहाँ पर एक छोटा सा राजा बहुत काल तक राज्य करता था। बड़े परिश्रमके साथ एक राजाने यहाँ एक बहुत मजबूत किला बनवाया था। इस राजवंश की उत्पत्तिका ठीक ठीक पता नहीं चलता। बहुत काल तक वे द्वारसमुद्रके होयशल वल्लाल के मण्डलीक थे। फरिश्ता का कथन है कि १३५० ई० से पहले सात सौ बर्षतक यही राजवंश अनागोंदी पर राज्य करता रहा। हरिहर तथा बुक्काराय, दोनों भाई वारंगलके राजाके पास थे। १३२६ ई० में वारंगलके परास्त होनेपर उन्होंने अनागोंदीका आश्रय लिया था। इनमेंसे एक दीवान था और दूसरा खजानची। इनके कालमें अनागोंदी का काफी महत्व था। १३३४ ई० में देहली के सुलतान मुहम्मद तुगलकका भतीजा बागी होकर इसी राज्यके आश्रयमें आकर रहा था। तब सुलतानने अनागोंदी पर चढ़ाई कर दी। इस नगरको जीतकर उसने इसका तहस नहस कर डाला। तब दोनों भाइयोंने तुंगभद्राके दूसरे तट पर विजयनगर नामक एक नगर बसाया जिससे धीरे धीरे इसका महत्व और भी घटता गया।

इस स्थान पर रङ्गनाथ स्वामी और लक्ष्मी देवीके मन्दिर हैं। लक्ष्मी देवीके मन्दिरमें हनुमान जी तथा गरुड़की सुन्दर काष्ठकी मूर्त्तियाँ हैं। उत्सवके अवसरों पर इनकी सवारी निकाली जाती है। अनागोंदीसे पम्पासर केवल दो मील की दूरी पर है।

एक कथा मिलती है कि यहाँ का एक राजा पंठरपुरके विठोबाकी एक मूर्ति यहाँ उठा लाया था। भानुदास वही मूर्ति फिर पंठरपुर वापस ले गये।

एक दूसरी कथा मिलती है कि यहाँ का राजा अपनेको सार्वभौम कहता था। सम्पूर्ण पृथ्वी का राज-कर अपने बहीखातोंमें जमा करता था। इस प्रकार वह अपना दिल बहलाव किया करता था। इस क्रियाके आधार पर 'अनागोंदी जमाखर्च' तथा 'अनागोंदी कारभार' महावरे बन गये जिस के अर्थ क्रमसे 'बेकारका हिसाब किताब' और 'अन्धाधुन्धी' कारबार हो गया।

अनाज़रबस—यह एक अत्यन्त प्राचीन सिलिशियन नगर है। यह पिरेमस (जैह्वन) नदीके तटसे २० मील की दूरी पर पश्चिममें ॲलेनके मैदानमें स्थित है। रोमन साम्राज्यकाल में यह सेसेरियाके नामसे विख्यात था। जब यह भूकम्प द्वारा नष्ट हो गया तो जॅस्टियन बादशाहने इसे फिरसे बसाया था। इस कारणसे इसका नाम भी तब जस्टिनोपोलिस पड़ गया (५२५ई०)। लेसर आर्मेनियाके राजा थोरोस प्रथमने १२वीं शताब्दीमें इसे अपनी राजाधानी बनाया। तब इसका नाम 'अनाजर्बा' होगया। इस नगर के प्राकृतिक स्थितिके कारण वायजेन्टाइन सम्राज्य तथा मुसलमानोंके युद्धमें इस नगरने बहुत कुछ भाग लिया था। हारूरशीदने यह शहर ७९६ ई० में बसाया था। सैफउद्दौला हमदानी (१० वीं शताब्दी) ने इस नगरको फिर से बसाया। सैकत द्वा । इस नगरकी फिर से मरम्मतकी गई थी किन्तु धर्म योद्धाओं (Crusades) ने इसको उजाड़ डाला था। शहरकी दीवारका नीचे का भाग आधुनिक बना हुआ है किन्तु मल्लभूमि रङ्गभूमि इत्यादि अवशेष अब भी प्राचीन समय के वर्त्तमान हैं।

अनाथ—यह एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। यह हिन्दीके उच्च कोटिके विद्वान तथा कवि भी थे। इनके दोहे सर्वप्रिय हैं। विचार माला और सर्वसार उपदेश इनके लिखे हुए मुख्य ग्रंथ हैं।

अना-मलई विश्व-विद्यालय—यह मद्रास प्रान्तके चिदाम्बरम जिलेमें स्थित है। इसकी स्थापना मद्रास प्रान्तके कौंसिलकी धारा १. १९२९ई० के अनुसार हुई थी। शिक्षाके साथ ही साथ विद्यार्थियोंके रहनका भी प्रबन्ध इसीके हाथमें है। इस विद्यालयका बहुत कुछ श्रेय

सर अनामलई चेटीयरको है। बहुत से छोटे छोटे कालिज इत्यादि जो केवल इन्हींकी उदारतासे चलते थे वे सब इन्होंने विद्यालयके अधीन करदिया और २० लाख रुपये इसके सञ्चालनके लिये और प्रदान किये। उच्चशिक्षा के साथ ही साथ तामिल प्रदेशकी विशेष छान बीन करना ही इसका मुख्य उद्देश है। अन्य विश्वविद्यालयोंकी भाँति इसका भी संचालन सिण्डीकेट, सिनेट तथा एकडेमिक कौन्सिल द्वारा होता है, किन्तु सर अनामलई तथा उनके उत्तराधिकारियोंको विशेष अधिकार दिये गये हैं। इस के चैन्सलर सूबे के गवर्नर होते हैं।

अनार—एक प्रसिद्ध फल (देखिये दाड़िम)।

अनारकली—मुग़लकालकी एक प्रसिद्ध स्त्री। यह जहाँगीरके समयमें होगई है। यह नादिरा बेगमके नामसे भी प्रसिद्ध है। लाहोर में 'अनारकली' के नाम से इसका मकबरा प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्धमें अनेक दन्तकथायें प्रसिद्ध हैं। कुछ का कथन है कि जहांगीरके समयमें यह किसी राजघरानेसे थी किन्तु कुछका अनुमान है कि यह एक दासीका नाम है जिससे जहाँगीर का गुप्त प्रेम था। इसी कारण से अकबरने इसे जीवित ही गाड़ देने की आज्ञा दे दी थी। सम्भव है कि यह बात अक्षरशः सत्य न हो किन्तु इतना तो निश्चय पूर्वक ही कहा जा सकता है कि 'अनारकली' नाम की स्त्री जिसके नामसे लाहोरका मकबरा विख्यात हो रहा है वह अकबर अथवा जहांगीर के समय में अवश्य हुई है और इसका प्रेमी राजघरानेके होने के साथ ही साथ इसके प्रेममें पूर्ण रूपसे रंगा हुआ था। यह बात इसकी कब्र पर खुदे हुए पद्य ही से सिद्ध हो जाती है। उसका आशय इस भाँति है:—

"हा खेद! यदि एक बार मैं अपनी मृत-प्रिया का मुख किसी भी भाँति देख सकूँ तो मैं अपने को धन्य मानूँ और अनन्त काल तक ईश्वर का गुण गाऊँ।" (बील–ओरियण्टल बायग्रॉफिकल डिक्शनरी)

"अर्ली ट्रेवल्स इन इण्डिया सन् १५८३ १६१६ ई०" नामक ग्रंथमें विलियम फिंचने लिखा है कि यह कब्र मैंने अपनी आंखों से देखा है। उसका मत है कि 'अनारकली' अकबर की उपपत्नि और शाहजादे दानियालकी माता थी। सलीम से भी इसका कुछ अनुचित सम्बन्ध था। जब अकबरको विदित हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर इसे दीवारमें चुनवा दिया। किन्तु जब सलीम गद्दी पर बैठा तो उसने इसके स्मरणार्थ लाहोर में एक सुन्दर मकबरा बनवाया जो इसीके नामसे प्रसिद्ध हो गया। एडवर्ड टेरी नामक दूसरे यात्री (१६१६-१६१९) का भी मत है कि यह अकबरकी विशेष प्रियभाजन थी, किन्तु सलीम से इसका अनुचित सम्बन्ध था। इसी कारण से अकबर सलीमको अपने उत्तराधिकारीके पदसे अलग करना चाहता था।

अनावल—यह गुजराती खेड़ावालका एक वर्ग है। इनमें भथेला, (भ्रष्टेला) देसाई तथा मस्तान (महास्थान) आदि अनेक शाखायें हैं। कदाचित् बड़ौदाके नवसरी जिलाके महुआ ताल्लुके के अनावल नामक गाँवके नामके आधारपर इस वर्गकी उत्पत्ति हुई होगी। कुछका विचार है कि गुजरातके पहले पहल निवासीका नाम अनावल था। उसीसे यह वर्ग निकला। कुछ लोग इन का सम्बन्ध बड़ोदा राज्यमें जो गरम पानीका झरना है उससे स्थापित करते हैं। स्कन्दपुराणमें कथा है कि जब लङ्का विजयकर रामचन्द्रजी पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या जा रहे थे उस समय विंध्यपर्वतपर स्थित अगस्त्याश्रममें मुनिदर्शनार्थ नीचे उतरे थे। इसी स्थान पर मुनिकी आज्ञानुसार रावण-बधका प्रायश्चित्त किया था। आगे चल कर यही स्थान अनावलके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहाँ केवल भीलोंकी बस्ती थी। अतः हिमालय के गंगा कुलगिरिसे ब्राह्मण बुलवाये गये। ये बारह सहस्र ब्राह्मण थे जिनके बारह भिन्न भिन्न गोत्र थे। इन्होंने बारह सहस्र शेषकन्याओंसे विवाह किया था। इन्हीं ब्राह्मणोंकी सुविधाके लिये श्रीरामचन्द्रने गरम जलके सोतेका निर्माण किया था। इन ब्राह्मणोंने रामकी दी हुई दक्षिणाका निरादर करके ग्रहण करना अस्वीकार किया। फलतः रामचन्द्रने भी इन्हें श्राप दिया कि वे निम्नश्रेणीके गिने जावेंगे और वे वेदपाठ, याज्ञिक कर्म तथा दक्षिणा ग्रहण करनेके अधिकारसे च्युत हो जावेंगे और इनकी गणना वैश्यवर्गमें होने लगेगी।

दूसरी कथा इस प्रकार है कि ब्राह्मणोंके अभाव के कारण श्रीरामने भीलों ही द्वारा सब यज्ञकर्म करा डाले। किन्तु केवल इतने ही से उनकी गणना उच्च श्रेणीके ब्राह्मणोंमें नहीं होसकी।

नवसारीप्रान्तमें इनकी बस्ती बहुत है। १९११ ई० की जनसंख्याके अनुसार बड़ोदामें ८५७६ अनावल थे। इनकी गणना जमींदारों और

किसानोंमें की गई है। आधुनिक जनसंख्यासे विदित होता है कि इनकी संख्या क्रमसे घटती जा रही है। इनमें भी दो भाग होगये हैं। श्रेष्ठ वर्गको 'देसाई' और निकृष्टको 'भथेला' कहते हैं। देसाई भथेलोंके साथ रोटी बेटीका व्यवहार नहीं करते। धनके लोभसे ऐसे सम्बन्ध भी हो जाया करते हैं। इन लोगोंमें भी दहेजको रवाज पायी जाती है जिससे अनेक असुविधायें होती हैं। किन्तु अब धीरे धीरे सब कुप्रथायें दूर होती जाती हैं। (बा० गा० सेन्सस रिपोर्ट)

अनाहगढ़—पंजाब प्रान्तकी पटियाला राज्यान्तर्गत यह एक निजामत है। यह उ० अ० २६°३३' से ३०°३४' और पू० रे० ७४°४१° से ७५° ५०, में स्थित है। इसका क्षेत्रफल १८३६ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या करीब चार लाख है। इसमें ४ कस्बे और ४५४ गाँव हैं। इस निजामतके बीच बीचमें अंग्रेजी भाग भी हैं। १६०३-४ ई० में यहाँ की कुल आय ७·२ लाख रुपया थी, (इं० गॅ०)

अनाहगढ़—पटियाला राज्यके इसी नामकी निजामतकी एक तहसील है। यह उ० अ० ३०° ६ से ३०° ३४' और पू० रे० ७५° ४४' में स्थित है। क्षेत्रफल इसका ३४६ वर्गमील है। जन संख्या एकलाख है। इस तहसीलमें ३ कस्बे और ८६ गाँव हैं। १६०३-४ ई० में इसको आमदनी १·८ लाख रुपया थी, (इं० गॅ०)

अनाहित—अनाहित मज्द सम्प्रदायकी एक मुख्य देवी है। यश्त (५) और अवेस्तामें इसका बहुत कुछ वर्णन मिलता है। "आर्द्वीसुरा अनाहित" श्रेष्ठता, बल और पवित्रतामें वही स्थान रखती है जो पर्जन्य और नैसर्गिक वसन्तकी अधिष्ठात्रिका है, और वह नक्षत्र मण्डलमें बास करती है। वहांसे संसारकी सब नदियाँ निकलती हैं। मज्द अनुयायियों का मत है कि दैवी जल केवल प्रकृतिमें ही उत्पादन शक्ति उत्पन्न नहीं करता वरन प्राणीमात्र पर इसका प्रभाव पड़ता है। अवेस्ता को तरह अनाहित भी पुरुषके वीर्यकी शुद्धि करती है। स्त्रियोंके गर्भ और दुग्ध को भी पवित्र रखती है। (वोहिदाद ७-१६ यस्त ५-५) वरणके समय कन्यायें और प्रसूतिके समय स्त्रियाँ इसकी आराधना करती हैं। यस्त (५) ओले (वर्फ) के समान सफेद घोड़े वाले रथ पर बैठकर वह संग्राम में जाती हैं। (यस्त ५, २१ १३ और ५°१२०) वह योद्धाओंको जिताती और युद्धसामग्री भी देती है।

अवेस्ता सूक्तमें ज़ोरोआस्त तथा उन सब वोरोंके नाम दिये हैं, जिन्होंने अनाहित के प्रीत्यर्थ यज्ञ किया है। अन्तमें इसके रूप और बलका वर्णन दिया है। (यस्त ५, १२६ व आगे) वह ऊँची, सुन्दर और शक्तिमति कुमारिका है। उसने कमर में पेटी बाँध रक्खा है। जरीके वस्त्र पहिने हुए है। वह कर्णभूषण, कंठी और सुवर्ण मुकुट धारण किये हुए दर्शाई गई है। अनाहित सेमेटिकदेवी अनन्तके समान हैं। हिरोडोटस का कथन है कि असुर लोगोंसे इरानी लोगोंने स्वर्गीय देवताओंके प्रीत्यर्थ यज्ञ करना सीखा है।

वरोसस कहता है कि अटक्ज़र्क्सिज़ नूमोन (Artaxerxes Numon) ने ईसाके ३०० या ४०० वर्ष पूर्व ईरानके लोगोंको सगुण मूर्तिकी उपासना करना सिखाया।

उस समय अनाहित पूजा सारे ईरानमें फैली हुई देख पड़ती थी। यह देवी ईरानके बाहर आर्मेनियांमें भी पूजी जाती है। इरेज (Erez) क्षेत्रमें इसी अनाहितकी सुवर्ण मूर्ति थी और उसका मन्दिर अपनी असीम सम्पत्तिके लिये बहुत प्रसिद्ध था।

आर्मेनियाकी लड़कियाँ इस मन्दिरमें जाकर शादोके शर्तपर पुरुषोंसे संग करती थीं। धर्म के नामपर होने वाली यह अनीति मूलतः सेमेटिक है और प्राचीन असगोत्र विवाह पद्धति का एक स्वरूप है। रोमनोंके समयमें इरेजकी पुरानी परंपराको आश्रय मिलने लगा। अनाहित के पवित्र साँड़ 'अकिली' सेनामें स्वेच्छासे इधर उधर घूमने लगे और पकड़ कर यज्ञमें बलि दिये जाने लगे।

इस इरानी देवताकी पाँट्स और कँपँडोशिया में भी आराधना होती थी। मा (Ma) नामक श्रेष्ठ देवीसे समानत्वके कारण आश्रय पानेकी इच्छासे दास स्त्री पुरुषों की बड़ी भीड एकत्रित रहती थी।

प्रायः लीडियामें अनाहितके अस्तित्वका अवशेष मिलता है। यूनानी लोग वीरोचित स्वभाव के कारण एक ओर तो अथिना देवीसे और दूसरी ओर इसके समृद्धिदायक गुणोंके कारण अफ्रोडीटीसे इसको साम्य देते हैं। ईरानमें वह खाल्डियन नक्षत्रोपासनाके कारण शुक्र तारा बन गई परन्तु पश्चिममें पर्शियन अर्टिमिस या "पर्शियन डायना" कहते हैं। इसको वैल प्रिय हैं, केवल इसी धारणासे आर्मेनिया, कपडोशिया

और लीडिया प्रान्तमें इसे "अर्टेमिस टाऊरोपोलस" समझते हैं। रोम देशमें "मंग्नामेटर" (Magna Mater) (महातमा) और मिश्र देवतासे इसका सम्बन्ध बताते हैं।

अनिरुद्ध—(१) यह श्रीकृष्ण का पौत्र और प्रद्युम्नका लड़का था। राजा रुक्मिणकी कन्या इसकी स्त्री थी। इसके विवाहके समय बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। इसको रोचना नामक स्त्री से व्रज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

वाणासुरकी कन्या उषा इसकी दूसरी स्त्री थी। इसके विवाहमें वाणासुरका यादवोंसे घोर युद्ध हुआ था।

उषाहरणकी कथा मनोरंजक है। नाटक, सिनेमामें भी उषाहरण दिखाया जाता है। राजा रविवर्माका 'उषा स्वप्न' चित्र बहुत ही मनमोदक है। इस कथानकका नायक अनिरुद्ध है, तथापि श्रोता लोगोंके मनमें उसके पराक्रम अथवा दूसरे गुणोंका प्रभाव नहीं पड़ता (भाग, दश ६१, महा० आदि० २०१, महा० सभा० ६०)।

(२) इस विषयमें इतना ही पता लगता है कि वि० स० १५२० (शाक १४१५) में लिखे हुए शतानन्दकृत 'भास्वती करण' के टीकाकार तथा भावनशर्माके यह पुत्र थे। १४६४ ई० में इसका जन्म हुआ था।

ऍनीबेसेन्ट—डाक्टर—(एनीबेसेन्ट)—इस असाधारण प्रतिभाकी महिलाका जन्म स० १८४७ ई० के अक्तूबर मासमें हुआ था। यद्यपि इस अंग्रेज महिलाका जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन कट्टर तथा संकुचित ईसाई वायुमण्डलमें व्यतीत हुआ था किन्तु यह स्वयं बड़े उदार विचारकी थी, और धार्मिक बन्धनोंसे बिल्कुल मुक्त थी। आरम्भमें इसके विचार कुछ नास्तिकोंके से थे। यद्यपि इसने यह तो कभी भी कहने का साहस नहीं किया कि ईश्वरका अस्तित्व है ही नहीं तो भी कुछ समय तक इसका कथन था कि ईश्वरके अस्तित्वका कोई भी प्रमाण मैं नहीं देखती अतः मेरा उस पर विश्वास भी नहीं है। उसका वैवाहिक जीवन अत्यन्त दुःखपूर्ण था। एक बार तो उसने विषपान तक का विचार किया था किन्तु आन्तरिक प्रेरणासे शीघ्र ही अपना विचार बदल डाला और उत्साहके साथ सब दुख सहनेके लिये कमर कसली।

सामाजिक सेवा—स० १८७२ ई० से ही समाज सुधारमें यह तल्लीन होगई थी। पहले पहल इसका ध्यान दरिद्र और रोगियोंकी सेवाकी ओर ही अधिक आकृष्ट हुआ था। उस साल सिस्बे के अस्पताल और गिरजा घरमें इसने बड़े परिश्रम से काम किया था। आगे चलकर पूर्वीय लन्दन की धनहीन युवतियों के लिये भी इसकी निरन्तर सेवा विशेष प्रसंशनीय है। फेबियन सोसाइटी (Fabian Scciety) से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उसकी स्पष्टवादिता तथा सचाईके कारण उसके बहुत से शत्रु होगये थे। इसके जीवनका प्रारम्भिक भाग (अर्थात् १८९१ ई० तक) अपनी आत्माकी स्वतन्त्रता तथा ज्ञान प्राप्त करनेमें ही इसने व्यतीत किया था।

भारतमें आगमन—जब यह विलायतमें थी तभी से भारतके लिये इसके हृदयमें विशेष श्रद्धा और भक्ति थी। स० १८९३ ई० के १६वीं नवम्बर को इसने भारतमें पदार्पण किया था। इङ्गलैण्डमें जन्म होते हुए भी भारतको ही यह अपनी मातृभूमि समझती थी। प्राचीन हिन्दु-सभ्यताने इस के हृदय पर गहरी छाप लगा दी थी। एक बार एक मित्रने इससे पूछा कि तुम अपने देश कब लौटकर जाओगी। इस प्रश्न पर उत्तेजित होकर वह कहने लगी कि भारत ही मेरा देश है। सन् १८९३ से १८९७ई० तक यह घूम घूमकर हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता तथा ऐश्वर्य पर भाषण देती रही। दक्षिण भारतके पढ़े लिखे लोगोंमें इसने जागृति उत्पन्न करदी और इसके उच्च विचार, विद्वत्ता तथा असीम प्रतिभाके कारण यह विशेष श्रद्धासे देखी जाने लगी। अन्य विद्वानोंसे सहायता लेकर इसने सनातन-धर्म सम्बन्धी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। भगवत गीतामें श्रीकृष्णके उपदेशों पर इसके बहुतसे व्याख्यान हुए।

सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रमें पदार्पण—इस विदेशी महिलाने भारतके ऐसे अनेक उपकार किये हैं जिससे आधुनिक इतिहासमें इसका नाम विशेष उल्लेखनीय होगया है। भारतीय संस्कृति को जीवित रखनेके उद्देश्यसे इसने सन् १८९८ई० में काशीकी पवित्र भूमिमें हिन्दू कालिजकी स्थापना की। उस समय भारतमें केवल यही एक ऐसी संस्था थी जो संकुचित व्यक्तित्वसे बिल्कुल मुक्त थी। उसके इस महान उद्देश्यकी पूर्तिमें योरप तथा अमेरिका तक से मनुष्योंने सहायता दी थी। इसी हिन्दू कालिजसे आगे चलकर भारत की सबसे प्रसिद्ध संस्था काशीके 'हिन्दू विश्वविद्यालय' का प्रादुर्भाव हुआ। इस विद्यालयकी ओरसे यह 'डाक्टर' की पदवीसे विभूषित की गई।

भारत राजनैतिक क्षेत्रमें अधिकसे अधिक जो सम्मान किसी भी व्यक्तिको प्राप्त हो सकता है वह इन्हें प्राप्त हुआ। कांग्रेसके सभापतित्व तकके पद को इन्होंने विभूषित किया। इनको राजनैतिक क्षेत्र में कार्यकरनेसे विशेष प्रेम था, और इसी कारण से थियॉसोफिकल कन्वेन्शन (Theosophical Convention) चार साल तक कांग्रेसके साथ ही साथ होता रहा (१६१६-१७,-१८,-१६)।

१६२० ई० से राजनैतिक क्षेत्रसे इनका मान कुछ घट सा गया था क्योंकि महात्मा गांधी द्वारा चलाये हुए असहयोग आन्दोलनसे यह पूर्ण रूपसे सहमत नहीं थी और न इसमें पूर्ण रूपसे इन्होंने भाग ही लिया। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि इनके देश-प्रेम अथवा सेवा भावमें तनिक भी त्रुटि आगई थी। नैशनल कन्वेन्शन और होमरूल आन्दोलनका कुल श्रेय इन्हीं को है। इन्होंने लिबरल फेडरेशन (Liberal Federation) की भी अनेक सभाओंमें भाग लिया किन्तु 'होम रूल' ही इनका मुख्य ध्येय रहा। निष्पक्षता ही इनका प्रधान गुण था। यदि यह सरकार द्वारा देशपर अत्याचार अथवा अनुचित व्यवहार देखकर भभक उठती थीं तो जनताकी त्रुटियों पर भी सदा ध्यान रखती थीं और उसके विरूद्ध कहनेमें नहीं चूकती थीं।

सन् १६२८ ई० में जब भारतमें सर साइमनके प्रधानत्वमें से स्टेचुअरी कमीशन (Statutory Commission) ने पदार्पण किया तो इस ८१ वर्ष की एकबार फिरसे नवीन स्फूर्तिका सञ्चार वृद्धा में होगया और भारतीय दलोंमें सम्मिलित होकर इसके बहिष्कारके लिये अनेक प्रतिभापूर्ण ओजस्वी भाषण दिये। भारतमें थियोसोफिकल सोसाइटी की जन्मदाता यही थीं। अपने सतत परिश्रम, अदम्य उत्साह, असीम प्रतिभा तथा योग्यताके कारण भारतके २०वीं शताब्दीके इतिहासमें इनका नाम विशेष उल्लेखनीय हो रहा है। भारत से इनको विशेष प्रेम था और भारतकी पवित्र भूमिमें ही ८६ वर्षकी अवस्थामें २०वीं सितम्बर १६३३ ई० को इन्होंने प्राण छोड़े। इनकी मृत्युका शोक देशके कोने कोनेमें मनाया गया, और इनको वह सम्मान दिया गया जो बहुत कम भारत वासियोंको भी प्राप्त होता है।

अनीस—उर्दूके प्रतिभाशाली कवि मीर बबर अलीका यह उपनाम था और इसी नामसे प्रसिद्ध भी थे। इनके पिताका नाम मुस्तहसन खलीक था। यह लखनऊके निवासी थे। इनका जन्म सम्बत् १८५८ में हुआ था और इनकी मृत्यु सम्बत् १६३० में हुई।

अनीसको शिक्षा लखनऊमें हुई थी। इनके उस्ताद थे मौलवी हैदर अली। कविता आप की पैत्रिक सम्पत्ति थी। इनमें कविता बीज रूप से वर्त्तमान थी। अनुकूल वातावरण अथवा वही बीज अंकुरित हो धीरे धीरे खूब पल्लवित हो उठा। पहले तो इनके पिताने इन्हें इस मार्गसे हटा देनेकी पूर्ण चेष्टा की। परन्तु जब बढ़ी हुई नदीकी भाँति इनकी प्रवृत्ति अबाधित गति से बढ़ती रही तो अन्तमें उन्होंने इनके कविताक्रम मार्गमें परिवर्तन करके छोड़ दिया। इनसे उन्होंने एक दिन कहा, 'बेटा, आशिकाना गजलों को तो सलाम करो और अपनी प्रतिभाको उस मार्गमें लेजाओ जो दीन और दुनियाँ दोनों हासिल करावें।" उसी दिनसे यह 'मरसिया' लिखने लगे। इनके ये मरसिये बड़े प्रभावोत्पादक हैं। अनीसने लगभग दस हजार मरसिये कहे होगें। रुबाइयों और सलामोंकी संख्या तो बहुत हैं। सं० १६१६ में इन्हे लखनऊ छोड़ना पड़ा। सं० १६२८ में ये हैदराबाद पहुँचे। वहाँ इनकी बड़ी कदर हुई।

इनका रंगरूप भी प्रभाव-शाली था। पढ़ने का ढंग बड़ा ही आकर्षक था। इनका यह कायदा था कि एक बड़े शीशेके सम्मुख बैठकर मरसिया पढ़नेका अभ्यास किया करते थे। अनीस चरित्रवान, सन्तोषी तथा मितभाषी थे। जब बोलते तो ऐसे मोहक और जँचे हुए शब्द कि कानोंमें अमृत वर्षा करते थे। सचमुच उर्दू कवितामें अनीसके मरसिये एकही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनमेंसे कवि-प्रतिभाकी किरणें चारों ओर फूट निकली हैं। हिन्दीमें एक घनाक्षरी छन्द इनके नामसे प्रसिद्ध है जिससे ज्ञात होता है कि ये हिन्दीमें भी कविता करते थे। इनको घनाक्षरी निम्न लिखित है।

घनाक्षरी।

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं,
राखिहौ हमें तो शोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहौ हरषि कै तो विलग न मानै कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गावैंगे॥
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे फेरि,
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन विकावैंगे।
देश में रहैंगे परदेश में रहैंगे काहू,
भेष में रहैंगे तऊ राउरे कहावैंगे॥

यद्यपि अनीस आजीवन लखनऊमें ही रहे

पर अपनी बोलचालकी भाषा दिल्ली ही की रखते थे। इसका इन्हे गर्व था। इन्होंने बालक स्त्री, पुरुष, योद्धा, कायर, प्रेमी तथा सेवक आदि सभीके मनोभावोंको व्यक्त करनेमें कमाल किया है। इनकी कल्पनाशक्ति बड़ी विलक्षण थी। ख्यालकी बारीकीका तो कहना ही क्या है। इनकी कविता सात्विक भावों, शिक्षाओं तथा महत्वसे परिपूर्ण हैं। कहीं कहीं तो प्रकृतिका जीता जागता चित्र तक उतार दिया है। नीचेके चुने हुए थोड़ेसे शेर उनकी प्रतिभाकी झलक दे देते हैं।

(१) नामूदो बूद आक़िल हुबाब समझे हैं।
वो जागते हैं जो दुनियाँको ख्वाब समझे हैं॥

(२) अब गर्म खबर मौत के आने की है।
नादाँ तुझे फ़िक्र आबोदाने की है॥

(३) जब साल गिरह हुई तो उकदयःखुला।
यों गिरह से एक बरस और जाता है॥

(४) क्योंकर न लपटके तुझसे सोऊँ ऐ क़ब्र।
मैंने भी तो जान देके पाया है तुझे॥

अनु—(१) शर्मिष्ठाके गर्भसे सोमवंशी राजा ययातिका पुत्र था। पिताके कहने पर इसने उनकी बुढ़ौतीसे अपना यौवन परिवर्तन नहीं किया जिससे उन्होंने मुख्य राज्याधिकारसे इसे वञ्चित कर दिया और म्लेच्छाधिपत्य प्रदान किया। सभानर, चक्षु और परोक्ष नामके इनके तीन पुत्र थे। (मत्स्य पुराण ३४)

(सोमवंशी) यदुपुत्र क्रोष्टाके ज्यामध वंशमें इसका जन्म हुआ था। यह क्रथ कुलके कुरुवंश का एक राजपुत्र था जिसके पुरुहोत्र नामक एक पुत्र था।

(३) यह क्रथ-वंशोत्पन्न सात्वत-पुत्र अंधकुल के राजा कपोतरोमाका पुत्र था। इसे अंधक नामक एक पुत्र था।

(४) ऋग्वेदमें अनु और आनवके राज्यका उल्लेख मिलता है। यदु, पुरु, तुर्वश, द्रुह्यु इत्यादि लोगोंके साथ ये भी उत्तर हिन्दुस्थानमें परुष्णीके किनारे रहते थे। इनका इतिहास दास राज्ञ युद्धके तीसरे प्रकरणमें मिलता है।

अनुनय—इस शब्दका साधारणतया दो अर्थों में प्रयोग होता है:—एक प्रार्थना और दूसरा प्रेम याचना। दूसरे अर्थका सोपपत्तिक विचार करने के लिये उसको तीन भाग करना होगा—यतः विवाहपूर्व अनुनय, विवाहोत्तर अनुनय और विवाहनियमविरुद्ध अनुनय। जब पशु पक्षियों में भी संभोगापेक्षा अनुनय दिखायी पड़ता है तब मनुष्य जातिमें इसका प्रयोग होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। गान्धर्व विवाहके अतिरिक्त अन्य विवाहपद्धतिमें इसका प्रयोग नहीं होता अत भारत वर्षमें इसका उदाहरण यदाकदा ही प्राप्त होता है। सीता, द्रौपदी, सावित्री एवं शकुन्तला आदिके विवाहोंमें विवाहपूर्व अनुनयका आभास मिलता है फिरभी इस प्रथाका भारतवर्षमें अधिक प्रचार नहीं दृष्टि गोचर होता। हां, पाश्चात्य देशों में इसका प्रायः विकास दिखायी पड़ता है जिस का प्रधान कारण वहांकी स्त्रियोंकी स्वतंत्रताही कहा जा सकता है। उन देशोंमें औद्योगिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रताके कारण कुमारियोंको पुरुषका सहयोग एवं उनसे एकान्तवासका प्रायः अवसर मिला करता है और उसी दशामें यह संभव भी होता है। भारतवर्षमें ज्यों ज्यों पाश्चात्य सभ्यता का विकास एवं पाश्चात्य संस्कृतिका प्रचार होता जाता है त्यों त्यों इसका भी प्रचार होने लगा है और सम्भव है कि आगे चलकर यहाँ भी इसकी प्रथा चल जाये।

अनुभवजनित ज्ञानवाद—यह सुनिश्चित मत है कि सब प्रकारके ज्ञान इन्द्रियदत्त होते हैं। इस मतके अनुसार प्रारम्भमें मन बिलकुल कोरा रहता है, उसपर इन्द्रियदत्त समवेदना यान्त्रिक रीतिसे लिपिवद्ध होती है। मानसिक कार्यका उसमें कोई अंश नहीं रहता। मनके ज्ञान पूर्ण होनेकी इस क्रियामें अपरिचित व्यक्तिगत समवेदना रहती है। एकसी बातों ही के बारम्बार होने अथवा पुनरागमनसे नियमोंकी कल्पना तथा उत्पत्ति होती हैं। ये साहचर्यके अनुभवसे मिले हुये होते हैं। पर इस विधानमें यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा होना नितान्त आवश्यक हो है। इसमें केवल यह विधान होता है कि कोई विशेष परम्परा अवश्य पायी जाती है, और उसीसे कार्यकारण भावका विकास होता है। इस सम्बन्धमें आवश्यकता की कल्पना अनुभवपूर्ण रहती है। अनुभव जनित ज्ञानवादसे अनुभवका स्पष्टीकरण नहीं होता। कहा जाता है कि व्यक्तिगत भावना क्षणिक होती है; अतः इस ज्ञानवादमें भी भिन्न भिन्न मानसिक क्रियाओंके आवश्यकतानुसार फल हुआ करते हैं। प्राचीन ग्रीसमें यह मत बहुत प्रचलित था। बेकनने भी इस मतके प्रचारके लिये बहुत कुछ किया, तथा लॉक, ह्यूम, बेंथम एवं अन्य साहचर्यवादियोंने इस मतको व्यवस्थित किया।

अनुमति—(१) कर्दम कन्या श्रद्धाके गर्भसे

अंगिरा ऋषिसे उत्पन्न चार कन्याओंमें कनिष्ठ।

(२) द्वादशादित्योंमें धाता नामक आदित्यकी स्त्री

(३) शाल्मली द्वीपकी एक महानदी।

(४) एक ब्रह्मर्षि।

(५) एक देवपत्नि जो स्कन्दाभिषेकके लिये आयी थी।

(६) पूर्णिमाके पहलेका एक दिन, जिस दिन देव और पितरोंको पिण्ड देते हैं। इसे देवता मानकर राजसूय यज्ञमें इसकी पूजा भी की जाती है। (तै० सं० १८,८,१;३.४, ६, १, काठक संहिता १२, ८, वाजसनेयी संहिता २६,६०; ३४, ८५ षड्विंश ब्राह्मण ५, ६)

अनुराधपुर—ईसाके छः सौ वर्ष पूर्व उत्तर सिलोनके मध्यभागमें कदंब नदीके किनारे अनुराध (अनुराधा नक्षत्रसे यह नाम हुआ) नामक राजाने इस नगरको बसाया था। यह नगर प्रायः पन्द्रह सौ वर्ष तक सिलोन की राजधानी था। ईसासे पांच सौ वर्ष पूर्व राजा पंडुकामयने अपनी राजधानी उपतिस्साको छोड़ इसे ही राजधानी बनाया। तबसे लगातार आठवीं शताब्दीके राजा अग्रबोधिके समय तक यह नगर राजधानी रहा। उसके अनन्तर ग्यारहवीं शताब्दीमें भी कुछ दिनोंके लिये राजधानी रहनेके अनन्तर वहांसे राजधानी हटा लीगयी। सिंहल द्वीपके किसान इसे अनुराजपुर कहते हैं। यहां की जनसंख्या ३२०० है।

इस नगरके निकटही राजा पण्डुकामयने एक सरोवर बनवाया था जिसे विक्टोरिया लेक, जयवापी या अभयवापी भी कहते हैं। इसका क्षेत्र फल दो मोल है। इसके दक्षिण ओर दो मील पर एक बोधिवृक्ष है। सरोवरके चारों ओर जैन आदि विभिन्न सम्प्रदायके सन्यासियोंके रहनेकी जगह बनी थी। इसके उत्तरमें गामिनी (विलान) नामका एक तालाब है। लकड़ीका बना हुआ यह प्राचीन शहर तो नष्ट होगया है पर ये दोनों तालाब अब तक प्राचीन स्मृति बनाये हुए हैं।

इस शहर की सौन्दर्य तिस्स नामक राजाने बढ़ाया (ई० पू० ३००)। यह सम्राट अशोकका समकालीन था, और इन दोनोंमें बड़ी मित्रता थी। राजा तिस्सने अपने सरदारों एवं प्रजा सहित बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और बौद्ध सम्प्रदायकी अनेक सुन्दर इमारतें बनवायी थीं। इनमें थूपारामके भग्नावशेषसे ही ज्ञात होजाता है कि ये इमारतें कितनी सुन्दर बनी होंगी। यह इमारत स्तूपके आकारकी सत्तर फीट ऊँची है। अनुमान किया जाताहै कि इसमें बुद्धकी अस्थियां सुरक्षित थीं। इसके पास ही उसी राजा की बनवायी 'इस्सारा मुनि विहार' नामक एक दूसरी इमारत है, जिसका भी अब केवल खण्डहर ही अवशेष है। इसके पास भी एक छोटा सा तालाब है। इनके अतिरिक्त यहाँकी अन्य इमारतें नष्ट हो गयी हैं।

जिस बोधि वृक्षकी चर्चा ऊपरकी गयी है वह २२०० वर्ष पुराना बतलाया जाता है जो अभी भी हरा भरा है। गयाके मूल बोधि वृक्षकी एक शाखा सम्राट अशोकने राजा तिस्सको भेंटमें दी थी। जिसे उसने वहां लेजाकर लगाया था।

राजा तिस्सकी मृत्युके अनन्तर तामिल लोगों ने इसपर अपना अधिकार जमाया पर प्रायः एक शताब्दी बाद वे पुनः हरा दिये गये और दुत्थगामिनि अभय नामक राजाने इसपर फिर अधिकार जमा लिया। सिलोनके इतिहासमें इस राजाको बहुत महत्व दिया गया है। इसने अनेक इमारतें बनवायी थीं जिनमें काँसेका राजमहल सबसे सुन्दर है। यह डेढ़ सौ फीट ऊँचा था। इसके बनवानेमें उन दिनों तीस लाख रुपये खर्च हुए थे। इस राजाकी दूसरी 'दागवा' नामक इमारत है जो सुनहली बालूकी है जिसमें एक करोड़ रुपयेके लगभग खर्च हुए थे। बौद्ध लोग इसे अब भी आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसकी ऊँचाई १२८ फीट है। पाली भाषामें इसे महाथूप कहते हैं। महावंश नामक ग्रंथके पांच प्रकरणोंमें इसका विस्तृत वर्णन दिया हुआ है।

अनुराधपुरके इतिहासमें कुछ छोटे बड़े उपद्रवोंके बाद प्रायः शांति ही रही। ईसासे १८६ वर्ष पूर्व तामिल लोगों ने एक बार इसे अपने अधिकारमें कर लिया था। इस समय यहाँ के सिंहली जंगलोंमें भाग गये थे, पर उसके सौ वर्ष बाद सिंहली लोगोंके नेता बहगामिनीने इसपर चढ़ाई कर तामिल लोगोंको पुनः निकाल बाहर किया। इसी विजयके स्मारक स्वरूप अभयगिरि दागवा नामक एक बड़ा स्तूप बनवाया गया जो चार सौ फीट ऊँचा था। इसका भी भग्नावशेष ही बच रहा है। इसके निकट ही पण्डुकामय राजाने जैन मुनियोंके रहनेके लिये एक विहार बनवाया था। इन सुन्दर इमारतोंसे अनुराधपुर का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया था। इसके अनन्तर भी कई इमारतें बनी थीं जिनमें चौथी शताब्दी की 'जेतवन आराम' नामक इमारत अभी तक वर्तमान है।

इस नगरका उल्लेख ४११-१२ ई० में चीनी बौद्ध यात्री फाह्यानने अपने ग्रन्थमें किया है जिसमें उसने इसकी भड़कीली इमारतों, भिक्षुओंकी विद्वत्ता और राजा तथा प्रजाके पवित्र आचरण का सुन्दर वर्णन किया है। उस समय अनुराध पुरमें मगधके नालन्द विद्यापीठकी तरह ही प्रसिद्ध एक विद्यापीठ था जिसमें वैद्यक, ज्योतिष, काव्य, व्याकरण और साहित्यकी उच्च शिक्षा दी जाती थी। यहाँ प्रायः पाली भाषाके ही ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। इसमें नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा धार्मिक तत्वज्ञानकी भी शिक्षा दी जाती थी। इस विद्यापीठमें सिलोनके ही नहीं प्रत्युत उत्तर भारत एवं दूर दूर स्थानोंके विद्यार्थी अध्ययनके लिये आते थे। इन्हीं विद्यार्थियोंमें गया (विहार) का सुप्रसिद्ध भाष्यकार बुद्धघोष भी था। जिस समय बुद्धघोष सीलोनमें था उस समय जलके अभावको दूर करनेकेलिये धातुसेन नामक राजाने ४५०ई० में एक झील बनवायी जिसका घेरा पचास मील है। इसके एक ओरका बाँध चौदह मील लम्बा है। उसी झीलसे नहरोंके द्वारा शहरमें पानी लाया गया है। इन नहरोंमें से कई अभी तक वर्तमान हैं और खेतीके काममें उनका उपयोग होता है। अनुराधपुरका अंतिम मुख्य काम यही बाँध था।

इसके अनन्तर यहाँके राजपुरुषोंमें परस्पर युद्ध हुये जिनमें वे तामिल लोगोंकी भी सहायता लिया करते थे। इन तामिल लुटेरोंकी सेनाओं ने अनुराधपुरको कई बार लूटा। ७५० ई०में यहाँ से राजधानी हटाकर पुलस्त्यपुरमें ले जानी पड़ी। तब से ग्यारहवीं शताब्दीके मध्य तक इसका शासन-सूत्र कई बार कई पक्षोंमें बदलता रहा। ग्यारहवीं शताब्दीमें एक बार सिंहली पाखण्डीने इसे अपने अधिकारमें किया था पर वह भी राजच्युत कर दिया गया, यहाँ तक कि १३०० ई० में अनुराधपुरकी बस्ती प्रायः उजाड़ हो गयी और बोधि वृक्षके निकट यत्रतत्र कतिपय भिक्षुकोंके अतिरिक्त और कोई न दिखायी पड़ता था। उसके आसपास जंगल भी हो गया था। किन्तु आजकल पुनः वहाँ पर व्यवस्थित रूपसे नगर बसानेका अंग्रेजोंका विचार हो रहा है। १९०५ ई० में मटलेसे लेकर अनुराधपुर तक रेलवे लाइन भी बढ़ा दी गयी है।

अनुविन्द—(१) दुर्योधनके पक्षका एक वीर जिसे अर्जुनने मारा था। वसुदेवभगिनी राजाधिदेवी और उसके पति अवन्तीके राजा जयसेनका कनिष्ठ पुत्र। ज्येष्ठ पुत्रका नाम विन्द था। (महा० द्रो० प० ९९)

(२) विन्द और अनुविन्द नामके कैकयराजा के दो पुत्र थे। अनुविन्द महाभारतमें पाण्डवों की ओर था। उसे सात्यकीने मारा था। (महा० कर्ण पर्व० १३)

(३) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें से एक। (महा० आदि प० ५६)

अनुशाल्व—यह सौभपति शाल्व राजाका भाई था। शाल्वको श्रीकृष्णने मारा था। इसीका बदला चुकानेके लिये पाण्डवोंके अश्वमेध यज्ञके समय यह सेनाके साथ गुप्त रूपसे हस्तिनापुर आया और अवसर पाकर यज्ञका घोड़ा चुरा ले गया। भीमसेनने सेना सहित इसका पीछा किया। प्रद्युम्न और वृषकेतुने इसे पकड़नेकी प्रतिज्ञा की पर प्रद्युम्न हार गया किन्तु वृषकेतु उसे पकड़ लाया। मृत्युके भयसे इसने अश्वको लौटा दिया और मित्रता कर अश्वमेध यज्ञमें सहायता करनेका भी वचन दिया (जै० अश्वमेध अ० १२-१४) इसका महाभारतमें कहीं उल्लेख नहीं है।

अनूपगढ़—बीकानेर राज्य (राजपूताना) के सूरतगढ़ नजामतका एक मुख्य ठिकाना है। यह बीकानेरसे ८२ मील उत्तरकी ओर है। जन संख्या लगभग एक हजार है। यह उ०अ० २९° २२' और पू० रे० ७३°१२' में स्थित है। सन् १६९८ ई०में यहां एक किला बना था जिसका नाम बीकानेर के राजा अनूपसिंहके नाम पर रखा गया अनूपगढ़ विभागमें कुल ७५ गांव हैं जिनकी जन संख्या ८००० है। इनमें प्रति सैकड़े ५१ राठौर हैं इस विभागमें जलका अभाव है। खेती भी मामूली है किंतु चरागाह अच्छे अच्छे हैं। सज्जी और लाना (एक प्रकारका वृक्ष) इस भागमें बहुत पैदा होते हैं। इससे सोडा बनाया जाता है।

अनूप देश—इस प्रान्तकी राजधानी माहिष्मती थी जहाँ सहस्रार्जुन राज्य करता था। महाभारत के समय यहाँ नील नामक राजा राज्य करता था जो पाण्डवोंके पक्षमें था। (महा० भी० पर्व ९)

अनूप शहर तहसील—संयुक्तप्रांत के बुलन्द शहर ज़िलेके पूर्व दिशामें स्थित एक तहसील। इसमें अनूपशहर, अहार और डिवाई तीन परगने हैं। यह उ०अ० २८°५' से २८°३७' और पू० रे० ७७°२८' से ७८°,२८' में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ४४४ वर्गमील है। जनसंख्या लगभग दो लाख अस्सी हज़ार है।

इस तहसीलमें चार कस्बे और ३७८ गांव है। १६०३-४ ई० में यहाँ की जमीनका लगान ४६६०००) और अन्य कर ६००००) था। अपर गैंजेज कैनाल (Upper Ganges Canal) अनूपशहर शाखासे यहाँकी सिंचाई होती है। १६०३-४ ई० में जोती हुई जमीनमें से १५८ वर्गमील कछवाड़ी थी। (इं० गॅ० ५)।

अनूप शहर-संयुक्तप्रांतके बुलन्दशहर जिलेके अनूपशहर तहसीलकी मुख्य जगह। यह उ० अ० २८°,२१' और पू० रे० ७८°१६' में स्थित है। जनसंख्या लगभग आठ हजार है। मुग़ल सम्राट जहाँगीरके समयमें राजा अनूपरायने यह शहर बसाया था जो दिल्ली और रुहेलखण्डके रास्ते पर है। उस रास्तेमें होनेके कारण अट्ठारहवीं शताब्दी में इसका बड़ा महत्व था। १७२७ ई० से १७५६ ई० तक अहमद शाह अब्दाली इस प्रांतमें था। १७६१ई० में जिस दलने मराठोंको हराया था उस दलको यहीं व्यवस्थित रूप दिया गया था। १७७३ ई० में अवधके वजीर और अंग्रेज़ोंने रुहेलखण्ड पर चढ़ाई करनेवाले मराठों का सामना किया। उस समय तक बृटिश छावनी यहीं थी, पर उसके बाद वह मेरठ लायी गयी। १८६६ ई० में यहाँ म्युनिसिपैलिटी स्थापितकी गई और यहाँकी आय ११०००) और व्यय १५०००) था। पास ही ईस्ट इण्डियन रेलवेका डिबाई स्टेशन है जा १४ मीलकी दूरी पर है। यहाँ एक तहसील, स्कूल और मिशनरी ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल है। शहरके लिये यहाँ कपड़े, कम्बल और जूते बनते हैं। यहाँ नील का भी एक कारखाना है। यहाँ पानी लगभग २८·८५" बरसता है।

अनूपवायु—(मार्शगैस-मिथेल Marsh-gas Methyl) इसको दलदल वायु, मथिल इत्यादि भी कहते हैं। दलदलके सड़े हुए पानी तथा उसी प्रकारके अन्य गन्दे पदार्थोंसे इस वायु की उत्पत्ति होती है। लकड़ी अथवा अन्य ऐन्द्रिक पदार्थों (Organic) के शुष्क पतनसे यह वायु तय्यार होता है। कभी कभी मट्टीके तेलकी खानोंके पास यह वायु पाया जाता है। मनुष्यके वायुप्रसरणमें भी इसका अंश रहता है। पत्थरके कोयलेके धूवेंमें भी यह बहुत प्रमाणमें होता है।

कृति नं० १-कृत्रिम रूपसे इसको तय्यार करने के लिये कर्बद्विगन्धकिद और उज्जगन्धकिदके भाप का मिश्रण तांबे पर ले जानेसे 'अनूप' तय्यार होता है। उसका सूत्र निम्नलिखित है—कर्बन-द्वि-गन्धकिद + उज्जगन्धकिद + तांम्र = ताम्रगन्धकिद + अनूप। (क. ग २ + २ उ. २ग + ४ ता २ = ४ ता २ ग + क. उ. ४।)

कृति नं० २—दो भाग सोडियम ऍसिटेट, दो भाग दाहक पालाश अथवा सोडियम और तीन भाग बिना भुजाया हुआ चूना मिलाकर तांबे अथवा लोहेके पात्रमें गर्म करने से अनूप तय्यार होता है। उसका सूत्र इस भाँति है—सोडियम असिटेट + दाहक सोडियम = अनूप + सोडियम कर्बन। (क.उ.३क.प्र.२सो. + सो. प्रउ. = क.उ. ४ + क.'प्र.३ सो २।)

चूना केवल इतने ही के लिये मिलाया जाता है कि वह पिघलने न पावे। इस भाँति तय्यार किये हुए अनूपमें उज्ज, दारिन और ईथलिनका अंश भी रहता है।

कृति नं० ३—शुद्ध अनूप तय्यार करनेके लिये मेथिल-अदिद (Methyl Iodide) पर जस्ते और पानीका प्रयोग करना चाहिये। बहुधा केवल जस्तेका प्रयोग सफल नहीं होता; अतः तांबे पर मढ़े हुए जस्तेको उपयोगमें लाना चाहिये। इसे यशदताम्रयुग्म (Zinc Copper Couple) कहते हैं। इसको तापक-फ्लास्कमें डालकर उसमें मेथिल अदिद और उतना ही अलकहल मिलाना चाहिये। तदनन्तर जल तापसे फ्लास्कको गरम करना चाहिये। इससे धीरे धीरे अनूप-वायु तय्यार होकर निकलता है। कुछ देर तक पानी पर रहने देनेसे अदिद और अल्कहलकी भाप पानीमें विद्रुत होकर फ्लास्कमें शुद्ध अनूप रह जाता है। रसायनिक-क्रियाका सूत्र निम्न-लिखित प्रकारसे होता है—

मेथिल + अदिदयशद + पानी = अनूप + यशद + अद+उज्जित (कउ३ द + य उ२ + प्र = कउ४ + य + द + उ प्र)

धर्म—अनूप कउ४ बिना रंगका गन्धहीन वायु होता है। इसका वि० ग० ·५५६ है। यद्यपि इस पर ज्वलन-क्रियाका प्रभाव नहीं होता किन्तु हवामें स्वयं ज्वलनीय है। इसकी ज्योति फीकी रहती है। पानीमें यह नहीं घुलता किन्तु अल्कहलमें घुल जाता है। हवाके १४० गुना भारसे ०° तापमानपर अथवा -१५५° से-१६०° तापमान पर एक गुना भारके नीचे रस रूप होता है। यह रस-रूप वायु -१६२°पर उबलता है और -१८६°पर जमने लगता है। इसका स्थित्यन्तर तापमान ६६·५° है। इसमें हवा मिलनेसे आग लगातेही उड़ने लगता है। यह कोयलेके खानोंमें बराबर

तैयार होता रहता है। इसी कारण बहुधा दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। शुद्ध वायुका अंश अधिक होने पर जीवन-क्रियामें हानि नहीं होती। बिजली की चिनगारी छोड़ने अथवा नलीमें से ले जानेसे पृथक्भवनकी क्रिया होती है। कर्बन पात्रके वायु पर जमा होता है, और इसके दुगने प्रमाणमें उज्ज-वायु अलग होता है। इस क्रियामें बेंज़ीन, इथेन इत्यादि अनेक उत्कर्बन भी अल्पांशमें तयारहोते हैं।

इसकी पूर्ण ज्वलन-क्रियामें दुगुने प्रमाण में प्राण-वायुकी आवश्यकता होती है। दो अंश अनूप-वायु और चार अंश प्राण-वायुके मिश्रणको बिजलीकी चिनगारियोंसे उड़ाने पर दो अंश कर्बन-द्वि-प्राणिद (Carbon-Di-oxide) और चार अंश जलकी वाष्प तय्यार होती है। अतः यह सिद्ध है कि अनूपमें ४ अंश उज्ज और १२ अंश कर्बनका संयोग पाया जाता है।

यह अत्यन्त स्थिर पदार्थ है। क्रोमाम्ल (Chromic Acid) नत्राम्ल (Nitric Acid) अथवा गंधकाम्ल (Sulphuric Acid) के मिश्रण का इस पर कुछ रसायनिक प्रभाव नहीं होता। किन्तु हरल (Chlorine) और ब्रम (Bromine) के प्रयोगका प्रभाव इस पर होता है। अन्धेरेमें हरलका प्रभाव अनूप पर नहीं होता।। परन्तु एक अंश अनूप और दो अंश हरल वायुके मिश्रण को सूर्य-प्रकाशमें ले जाते ही उड़ जाता है, और कर्बन विलग होकर उद्धराम्ल (Hydro Chloric) तयार होता है। विकीर्ण प्रकाश (Diffused light) में हरल उज्जके स्थानपर लानेसे क. उ. ३ह, कउ२ ह२, कउ ह३ तथा कह ४ तयार होते हैं। किन्तु यदि जलका संयोग होता है तो उद्धराम्ल और कर्बन-द्वि-प्राणिद (Carbon-Di-Oxide) तयार होता है।

अनूबाई घोरपड़े—बालाजी विश्वनाथ पेशवा को यह सबसे छोटी कन्या थी। इसका जन्म १६९६ ई० में और मृत्यु १७८३ ई० में हुई। सत्रह वर्षको अवस्थामें इसका विवाह सताराके इचलं करजी घरानेके व्यंकटराव नारायण घोरपड़े से हुआ। वर्षका अधिक भाग जिसमें ये दोनों पूने में हो बिता सकें, पेशवाने १७२२ ई० में इसके लिये पूनेमें एक मकान बनवा दिया, एवं जिसमें वहाँकी गृहस्थोकी व्यवस्था सुचारु रूपसे चल सके बड़गाँव (चाकण) एवं दो बाग उपहारमें दे दिये थे। सत्ताइस वर्षकी अवस्थामें बेणूबाई नामकी एक पुत्री तथा उसके एक वर्ष बाद नारायण राव नामक एक पुत्र हुआ था।

१७४५ ई० में इसके पतिकी क्षय रोगसे मृत्यु हो गयी। फिर भी नाना साहब पेशवाकी कृपा दृष्टिसे इस कुलकी बड़ी प्रतिष्ठा एवं उन्नति हुई। बालाजी विश्वनाथकी कन्या होनेके कारण शाहू महाराज भी उसका बहुत आदर करते थे। और आजरेका पूरा महाल उसे भेंटमें दे दिया था। १७५३ ई० में करवीरके संभाजीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पेशवा कर्नाटककी लड़ाईमें करवीर गये। उस मौकेसे अनूबाईने भी लाभ उठाया और वह भी पेशवाके साथ उस लड़ाईमें गयी एवं आजरे महालके ३१ गांवोंकी नयी सनद शंभू छत्रपतिसे कापशीकराको दिलवायी। इसी समय पेशवा को भी संभाजीसे भीमगढ़,पारगढ़ और बल्लभगढ़ ये तीन किले मिले थे। सन् १७५६ ई० को सावनूर की चढ़ाईमें भी अनूबाई उपस्थित रही। इस युद्ध में सोंधाके राजाकी ओरसे मर्दनगढ़का किला एवं और भी कई गांव मिले जिसके फल स्वरूप सब मिलाकर धारवारका विस्तृत इलाका बना जो पेशवाकी ओरसे अनूबाईको मिला।

अनूबाईका पुत्र नारायण राव अब बालिग हो गया था फिर भी उसे अनुभवशून्य समझ कर वह स्वतंत्र रहने देना नहीं चाहती थी। माता और पुत्रमें कलहका यही मूल करण था। एक बार तो १७५७ई० में नारायणराव पेशवाके विपक्षमें भी मिल गया था। पर अनूबाईने स्वयं जाकर समझा बुझाकर उसे वापस बुला लिया।

सन् १७५९ ई० में मुगलों और मराठोंके युद्ध के समयसे ही अनूबाई पेशवाके साथ पूनामें ही रहती थी। फिर भी सन् १७६१ ई० की लड़ाईमें वह पेशवाके साथ इसीसे नहीं गयी कि उस समय पासकी करवीर रियासतमें राज्यक्रांति मची हुई थी। उसी वर्ष जनवरीमें शंभाजी महाराजका देहांत हो गया जिस पर उस राज्यको भी अपनेमें मिला लेनेके लिये इचलंकरजीकी ओरसे आदमी भेजे गये। शंभाजीकी विधवा जीजीबाईको जब यह मालूम हुआ तब उसका द्वेष अनूबाईसे अधिकाधिक बढ़गया। फिर भी उसने एक चाल चली और यह अफवाह उड़ादी कि उसकी सौत गर्भसे है। उसने यह अफवाह इसी लिये उड़ायी थी जिसमें उसका राज्य न जब्त होने पावे। पर पेशवाने प्रसवके समय अनूबाईको भेजकर उस अफवाहकी सत्यताकी जांच करानेका प्रबन्ध कर दिया था। किन्तु पानीपतकी हार और नाना साहबकी मृत्युके कारण वह विचार कार्य रूपमें परिणत न हो सका।

उसी वर्ष वर्षाऋतुमें अनूबाई अपने जागीर धारवारमें गयी और वहीं रहने लगी। माताके निकट रहनेसे पुत्रकी स्वतंत्रतामें फिर व्याघात हुआ और उसकी (नारायणराव) अव्यवस्था एवं अनाचार अनूबाईको सह्य न हुआ। अतः उसने पुत्रको उसकी स्त्रीके साथ नजर बन्द कर दिया। सन् १७६४ ई० में अस्वस्थ रहनेके कारण अनूबाई माधवरावके साथ हैदरकी चढ़ाईमें न जा सकी। उधर पानीपतकी लड़ाईके बाद हैदरने तुङ्गभद्राके उत्तरमें चढ़ाइयाँ कर धारवारको अपने राज्यमें मिला लिया था। पर इस चढ़ाईमें पेशवा ने उसे फिर वापस ले लिया और अनूबाईको दे दिया। अनूबाईकी उस बीमारीकी दशामें नारायण राव भी उत्पात मचाने लगा था। पर उसके शीघ्र ही स्वस्थ होजानेके कारण वह फिर प्रतिबन्धमें रख लिया गया। उधर नारायण रावकी निष्क्रियता देखकर पेशवाके भी मनमें आया था कि उस का पद छीन कर किसी अन्य को दे दिया जाय पर सन् १७६६ई०के जूनमें अनूबाईने पूना जाकर पेशवा को अपने पक्षमें कर लिया, यहां तक कि उसके राज्य पर जो बाकी लगानकी भारी रकम बसूल करनेके लिये सरकारी कारकुन भेजे गये थे उन्हें तो वापस बुलवा ही लिया उस रकममें भी काफी कमी कराली।

सन् १७७० ई० में जब पेशवाने कर्नाटक पर चढ़ाईकी तब अनूबाई भी उनके साथ ही थी किन्तु उसी समय पुत्रकी मृत्युका समाचार पाकर वह वापस चली गयी। इस वृद्धावस्थामें पुत्रशोक की दारुण व्यथा उसे असह्य थी पर पौत्र व्यंकट रावके हितको ध्यानमें रख वह फिर राजकाजमें जुट गयी। उसके तीन ही वर्ष बाद उसकी कन्या वेणूबाईके पति त्र्यम्बकराव मामा पंढरपुरके पास राघोबा दादाके पक्षमें लड़ते हुए मारे गये। विधवा कन्याको सांत्वना देने अनूबाई अपने पोतेको लिये हुए पहुँची और वहांसे वापस आये अभी वर्ष भी नहीं बीता था कि रघुनाथराव दादाके भड़कानेसे करवीर वालोंने पेशवाके राज्यमें अत्याचार करना आरंभ करदिया। इचलंकरजी पर भी चढ़ाइयाँ हुईं। अनूबाईने चढ़ाई करने वालोंको तो मार भगाया पर भविष्यमें ऐसी चढ़ाइयाँ रोकनेके लिये उसने पेशवासे जो सहायता माँगी थी, वह पेशवा के अंग्रेजों और हैदरके साथ युद्धमें व्यस्त रहनेके कारण न मिल सकी।

सन् १७६६ई० में पेशवाको सन्देह हुआ कि भाऊ साहब वास्तवमें भाऊ साहब न होकर एक बहुरूपिया था। उसने अनूबाईसे इसके सम्बन्धमें पूछ ताछकी, पर अनुबाईने भी उसे भाऊ साहब ही बतादिया। इसपर सन् १७७६ ई० में रत्न गिरि के तहसीलदारने उस बहुरूपियेको कैदसे भगा दिया जिसके लिये व्यंकट रावको लड़ाई करनी पड़ी और बहुरूपिया हरा दिया गया। उन्हीं दिनों इचलंकरजीके कई गांवों पर जब्तीका वारंट आया था पर नानाफड़नवीस और सखाराम बापूने अनूबाईकी वृद्धावस्थाका विचार कर सवा लाख रुपया दण्ड स्वरूप लेकर जब्ती लौटाली। उसके कुछ दिनों बाद वह काशी चली गयी जहां सन् १७८३ ई०में उसकी मृत्यु होगयी।

राजकाजमें वह बहुत चतुर थी। वीरता भी उसमें गजबकी भरी थी। अंतिम अवस्था तक उसने पेशवाकी लड़ाइयोंमें उसका साथ दिया और स्वयं सैन्य-संचालन करती थी। उसके धैर्य नीति, महत्वाकांक्षा आदिकी सराहना नहीं की जा सकती। वह बड़ी उदार एवं खर्चीली थी जिससे उस पर प्रायः कर्जका बोझ होजाया करता था। खर्च पूरा करनेके लिये उसने कर भी बढ़ा दिया था।

अनेकुल गाँव—बंगलोर जिले (मैसूर रियासत) के अनेकुल ताल्लुके का मुख्यनगर है जो बंगलोरसे २२ मील पर अग्निकोणमें स्थित है। यह उ०अ० १२°४३' और पू०रे० ७७°४२' में स्थित है। इसकी जनसंख्या लगभग पांच हजार है १७वीं शताब्दीमें सुगतूरके राजाने यहांपर एक किला और उसके पासही एक तालाब भी बनवाया था। इसके सौ बर्ष बाद तक वह मैसूर रियासत का माण्डलिक रहा। सन् १७६० ई० में हैदर अलीने उसे अपने राज्यमें मिला लिया। १४०० ई० में डोमिनिकानोंने यहां एक प्रार्थना मन्दिर बनवाया। १८७० ई० से म्युनिसिपैलटी भी स्थापित होगयी है। १६०३-४ ई०में यहां की आय ३१००) रु० और व्यय ४६००) था। (इ० ग०, ५)।

अनेकुल ताल्लुका—मैसूर राज्यके बंगलोर जिलेके अग्निकोण का एक ताल्लुका है। यह उ० अ० १२°४०' से १२°५५' और पू०रे० ७७°३२' से ७७°४४' तकमें स्थित है। इसका क्षेत्रफल १६० वर्गमील है। जनसंख्या साठ हजार है। इस ताल्लुकेमें तीन बड़े बड़े गांव एवं २०२ छोटे छोटे गाँव हैं। १६०३-४ ई०में यहांकी आय १२६००० रु० थी (इ०ग० ५)।

अनेवाड़ी—सतारा जिलेका एक गाँव। मराठोंके इतिहासमें इसका उल्लेख अनेक स्थान

पर मिलता है। एक साधुको दी गयी सनदमें भी इसकी चर्चा मिलती है। रा० खं-१५. १५४, १७६ खं-१५-१५५-१६२)। प्रति वर्ष अन्नदानकेलिये यहाँसे गेहूं एवं तूरी दिल्लीमे ले जानेकी भी चर्चा मराठी पत्रोंमें लिखी मिलती है। (रा० खं-१५,७६०, १२३, ६४, १२६, ६१.१४८-६, १६२, १८५),

अन्न—इस शब्दको अनेक परिभाषायें की गई हैं. किन्तु बहुमतसे अन्न उसको कह सकते जिसकी वृद्धि कृत्रिम रीतिसे होती है। इस परिभाषाके अनुसार फल, कन्द, अनाज, पशु, पक्षी तथा मछलियाँ इत्यादि सभी खाद्य पदार्थ इस श्रेणिमें आजाते हैं।

अन्नका व्यवहार भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे होता रहा है। वैद्यक दृष्टिसे ही नहीं किन्तु सामाजिक दृष्टिसे भी अन्नकी अनेक श्रेणियाँ की गई हैं। मानव समाजके चिन्तन का यह विषय सदासे ही एक मुख्य अंग रहा है। देश और कालके अनुकूल भिन्न भिन्न जातियोंने इसको बहुत कुछ आर्थिक तथा धार्मिक महत्व दे डाला है।

सामाजिक दृष्टिसे विचार—जीवनके अन्य साधनों की अपेक्षा पहले पहल कदाचित् मांसका ही प्रादुर्भाव हुआ होगा. और यह व्यवहारमें भी अपने कृत्रिम रूपमे ही (कच्चा ही) लाया जाता होगा। सदासे ही मानव जातिको यह विशेष प्रियकर भी रहा है। शतपथ ब्राह्मणमें तो कहा भी है कि सर्वोत्तम अन्न 'मांस' ही है। किन्तु उष्ण प्रदेशोंमें इसका उपयोग कम होने लगा है। इसी भाँति मदिराका भी बहुतसे पूर्वीय देशोंमें निषेध किया गया है। कदाचित् इसका कारण देशकी जल-वायु ही कहा जा सकता है किन्तु सर्वमान्य करनेके लिये इसको धार्मिक स्वरूप दे दिया गया है। मांसको जो महत्व दिया गया है उसका कारण इसका विशेष पौष्टिक गुण ही है।

प्रागैतिहासिक कालमें जब मानव-जाति अग्नि के उपयोगसे अपरिचित थी, उस समय तो अन्न का व्यवहार अपनी प्राकृतिक स्थिति में ही होता था। किन्तु ज्यों ज्यों सभ्यताका विकास होता गया अन्नके रूपान्तरमें व्यवहार किया जाने लगा। पाकक्रिया में भी अनेक भेद होने लगे। किन्तु सम्पूर्ण पाकशास्त्रका सारांश केवल तीन क्रियाओं में ही समाप्त हो जाता है—पकाना, भूजना और उबालना। भिन्न भिन्न खाद्य-पदार्थोंकी वैद्यक-दृष्टिसे अथवा स्वादके विचारसे भिन्न भिन्न पाक-क्रिया की जाती है। जिस समय चूल्हे इत्यादि तथा बर्त्तनोंका आविष्कार नहीं हुआ था उस समय तो इसका कोई विचार ही सम्भव नहीं था। किन्तु आधुनिक समयमें जब नित्य ही नये नये आविष्कार हो रहे हैं, प्रत्येक मनुष्य अपनी सुविधा, स्वास्थ्य और स्वादके अनुकूल पाक क्रिया में भी हेर फेर करता रहता है।

अन्नको जितना भी महत्व दिया जावे कम ही है क्योंकि मानवजीवन ही नहीं किन्तु उसका पूर्ण-विकास भी इसी पर निर्भर है। यही कारण है कि संसारकी अधिकतर जातियोंमें इसका बहुत कुछ धार्मिक महत्व रख दिया गया है। ज्यों ज्यों सभ्यता तथा बुद्धिका विकास होता जाता है अन्नसम्बन्धी विचारोंमें भी उलट फेर होता जाता है। अनेक जातियोंमें अन्नके विषयमें अनेक विचित्र विचित्र भावनायें तथा नियम देख पड़ते हैं। भारतवर्षमें उच्च-श्रेणिके हिन्दुओंके रसोई-घरकी पवित्रता बहुत शीघ्र ही नाश हो जाती है। बिना पूर्णरूपसे पवित्र हुये रसोई घरमें प्रवेश करनेका निषेध है। मद्रासके ब्राह्मणोंका भोजन बनते समय यदि शूद्र अन्नको देख भी ले तो वह अन्न अपवित्र हो जाता है। रजस्वला स्त्री को पाक-गृह में जाना वर्ज्य है। छोटे तथा सुकुमार बालकोंको सब के सामने भोजन करानेसे 'नज़र' लगनेका भय रहता है। जोरोस्ट्रियन लोगों में रात्रिमें उत्तर दिशामें भोजन फेकनेका निषेध है। योरोपियन किसान आज भी अग्निमें रोटी छोड़ने की हिम्मत नहीं करता। अवशिष्ट अन्नको हिन्दू सदा से अशुद्ध मानते चले आये हैं। भारतवर्ष के अनेक महर्षियोंका यह मत रहा है कि अशुद्ध अन्न तथा नीचोंका अन्न भोजन करनेसे बुद्धि तथा श्री का ह्रास होने लगता है। बहुत सी जातियोंमें भिन्न भिन्न अन्नोंको सदा के लिये त्याज्य माना है। नवहो (Navahos) लोग मछलियों को नहीं छूते। हीब्रू और मुसलमान लोग सूअर का मांस अपवित्र मानते हैं। हिन्दू लोगोंमें गो मांस का निषेध है। ब्राह्मण यज्ञके बिना मांसा-हार नहीं करते थे। भिन्न भिन्न पशुपक्षियोंके मांस का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। बहुतेरी जातियाँ तो इस सम्बन्धमें विचित्र बिचित्र भाव भावनाओंसे जकड़ी हुई हैं। अमेरिकामें स्थूल शरीरके पशुओंका मांस व्यवहार में लाने से हिचकते हैं, क्योंकि उनकी यह धारणा है कि ऐसे पशुओंके मांस के खाने से वे भी स्थूल और सुस्त हो जावेंगे। नामाक्कार (Namaquar) तथा काफिर खरगोशका मांस इस भय से नहीं खाते कि उसके खाने से वे डरपोक हो जावेंगे। मुस-

लमानोंमें भी बहुत से पशु पक्षियोंका मांस हराम माना है। ब्रेजीलके लोग अपने पाले हुए पशु-पक्षिका मांस नहीं खाते। भारतवर्षमें बहुत सी स्त्रियाँ पुत्रवती होने पर 'पेठा नहीं खाती क्योंकि 'पेठा' और 'बेटा' शब्द में बहुत कुछ साम्य है।

हिन्दू शास्त्रकारों का तो ज्ञान इस विषय पर बहुत बढ़ा चढ़ा था। उन्होंने सम्पूर्ण अन्न को तीन भागों में बाँट दिया है—(१) सात्विक, (२) राजसिक तथा (३) तामसिक। भोजन के नियम भी उन्होंने पूर्णरूप से दिये हैं। भिन्न भिन्न अवस्था का तथा भिन्न भिन्न जनसमूह के कर्त्तव्यों का ध्यान रखते हुए ही उन्होंने भोजनके नियम भी बनाये थे। उदाहरण के लिये विद्यार्थियों, ब्रह्मचारियों तथा ब्राह्मणोंके लिये जिनको केवल मस्तिष्क का ही अधिक काम करना पड़ता था और शान्त-प्रकृति ही जिनका मुख्य गुण होना चाहिये ऐसों के लिये सात्विक भोजन होना चाहिये। दूध, घृत, फल दही, शाक इत्यादि इस श्रेणिके भोजन हैं। क्षत्रियों तथा राजकर्मचारियोंकेलिये राजसिक इत्यादि पदार्थ उपयुक्त कहे हैं क्योंकि इनमें उत्तेजनाकी भी आवश्यकता अनिवार्य है। सन्यासियोंको इन्द्रिय-दमनके कारणसे रूखा सूखा स्वादहीन भोजन करना चाहिये।

भारतवर्ष ऐसे धर्म-प्रधान देश में स्वास्थ अथवा वैद्यकसम्बन्धी अन्नका जो महत्व है उसको भी धर्म-रूप दे डाला है। बहुधा हिंदुओं में मांस वर्जित है और यह भी उनके धर्मका एक अंग हो रहा है चाहे ग्रंथकारोंने यहाँकी आबहवा का ध्यान रखके ही इसको वर्ज्य माना हो। यही कारण है कि आज भी उच्चवर्गके हिन्दू मांसाहारी नहीं होते। बहुधा वे शाकाहारी होते हैं। मांस के अवगुणोंको देखकर अमेरिका तथा योरपमें भी अनेक वर्ग केवल शाकाहारी होते जाते हैं। बहुत सी जातिमें "अहिंसा परमो धर्मः" के आधार पर मांसाहारका निषेध है।

यदि भारत-धर्म-सम्बन्धी पुस्तकों में एक ओर मांसका निषेध है तो दूसरी ओर काल अवस्था अथवा प्राण-रक्षाका विचार रख कर उसका व्यवहार अधर्म-संगत भी नहीं है। मनुने ही कहा हैः—

क्रीत्वास्वयं व्याप्युत्पाद्य परोपकृत मेव च।
देवान्पितृंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति॥
(मनु ५,३२)

नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेक विंपतिम्॥
(मनु ५,३५)

अर्थः—खरीद कर अथवा स्वयं उपार्जन करके अथवा दूसरेसे भेंट किये हुए मांसको देव तथा पितरोंको अर्पण करके जो शेषका भोजन करता है वह पापको नहीं प्राप्त होता। श्राद्धमें तथा मधुपर्कका मांस शास्त्रके अनुसार नियुक्त जो मनुष्य मांसका निरादर करता है वह मरके इक्कीस जन्मों तक पशु होता है।

निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट है कि आपत्ति कालमें मनुष्यको किसी भी ग्राह्य अथवा अग्राह्य भोजनसे पाप नहीं लगता। महाभारतमें उदाहरण भी मिलता है कि अकालके समय विश्वामित्रने डोमके घर तकका श्वान-मांसका भक्षण किया था किन्तु फिर भी उनकी गणना पतितोंमें नहीं की गई।

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोनापदि द्विजः।

वेदमें कहा गया है कि अतिथि-सत्कारके लिये पशुओंके मारनेमें दोष नहीं है। गर्भवती स्त्री गर्भरक्षाके लिये त्याज्य वस्तुओंका व्यवहार कर सकती है। प्राचीन ऋत्विज मांस तो स्वयं खाते थे और रक्त राक्षसोंके लिये फेंक देते थे। शाक्तोपासनाके पाँच कर्मोंमें से मांसाशन प्रथम और मत्स्याशन दूसरा है।

जिस मनुस्मृतिके आधार पर मांसाहारका समर्थन किया गया है उसीके आधार पर मांसकी निन्दा भी की जासकती है।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥
(मनु ५,४८)

अर्थः—बिना प्राण-हिंसाके मांस प्राप्त नहीं हो सकता और प्राणियोंका नाश करना स्वर्गका बाधक है। अतः मांसको छोड़ दे।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितु मिच्छति।
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्य पुण्यकृत्॥
(मनु ५, ५२)

अर्थः—अपने शरीरकी पुष्टिके लिये जो दूसरे के शरीरके मांसको बिना देव-पितरोंको चढ़ाये हुए भोजन करता है उससे बढ़कर पापी नहीं।

अतः यह स्पष्ट है कि भोजन-सम्बन्धी नियम अवसरको देख कर ही हिन्दू-धर्ममें रखे गये हैं। बौद्ध-धर्ममें इसका निषेध तो है किन्तु साथमें यह भी कहता है कि यदि स्वयं मांस लानेमें भाग नहीं लिया हो अथवा अनजानमें मांस खा ले तो पाप नहीं होता क्योंकि ऐसी अवस्थामें हिंसाका

पाप दूसरेको होता है। इतिहाससे ऐसा पता लगता है कि मिश्र और यूनान देशमें भी अहार और धर्मका सम्बन्ध था। कुरानकी आज्ञा है कि मृत-प्राणी, सूअरका गोश्त और रक्त इत्यादि वर्ज्य है।

प्राचीन कालही से अनेक जातियोंमें भोजन-सम्बन्धी अनेक भावनायें और धारणायें पाई जाती हैं। इनमेंसे बहुतेरी का अर्थ तो समझमें आता है और बहुत सी केवल अन्धविश्वासके गहरे गढ्ढेमें गिरी हुई प्रतीत होती हैं। क्वीन्सलेंड के निवासी अपना झूठा अन्न अग्निमें जला डालते हैं। उनकी यह प्रबल धारणा है कि झूठे अन्न पर तन्त्र मन्त्र सिद्ध करके मनुष्यको असीम पीड़ा पहुँचाई जा सकती है। व्हिक्टोरियन जातिके मनुष्य अपने मारे हुए पशुओंकी हड्डीकी बड़ी खबरदारी रखते हैं क्योंकि उनका विचार है कि उस पशुकी हड्डी द्वारा शत्रु रोग उत्पन्न करके अनर्थ कर सकता है। न्यू-हेब्रीडीजके 'तना' जातिके मनुष्य अपना झूठा अन्न कभी कहीं नहीं छोड़ते। झूठे अन्नको अपने साथ साथ उस समय तक लिये रहते हैं जब तक कहीं बहता पानी नहीं मिलता। बहते पानीमें छोड़नेसे उनका ऐसा विश्वास है कि सब आपत्ति दूर होती है। कुछ जातियोंमें ऐसी भावना है कि मनुष्य-मांस ही तन्त्र-मंत्र सिद्धिके लिये विशेष उपयुक्त तथा प्रभावशाली होता है। बहुतसी जातियोंमें ऐसा माननेकी प्रथा भी चली आती है कि मनुष्यके संसर्गसे गुण-धर्म उसके अन्नमें आ जाता है, मनुष्यका गुण अथवा अवगुण उसके अन्नमें प्रविष्ट रहता है। अमेरिकाके इण्डियन लोग हत्यारे का बनाया हुआ अन्न अपवित्र तथा त्याज्य समझते हैं। समोआ (Samoah) में यह प्रथा है कि मृतकके साथ जाने वालेको विना शुद्ध हुए अन्न-स्पर्शका अधिकार नहीं है। हिन्दुओंमें भी ऐसे ही विचार कुछ और बढ़कर देख पड़ते हैं। बहुधा इनमें दस दिन तक सूतक माननेकी प्रथा है। इतने दिनों तक केवल इन्हींका अन्न अपवित्र नहीं समझा जाता बल्कि इन्हें स्वयं भी बहुतसे भोज्य पदार्थ उतने दिन तक वर्ज्य हैं।

इसी भाँति अनेक योजनाओं द्वारा अथवा उत्तम मनुष्यके संसर्ग से अन्नमें पवित्रता आती है। हिन्दुओंमें देवताओं, पितरों तथा गुरुजनोंके प्रसाद तथा भोग को पाने से बुद्धि-विकास तथा संकट दूर होने की भावना पायी जाती है। ईसाई सम्प्रदायका अन्तिम ध्येय देव-भोजन ही है। यज्ञ, श्राद्ध इत्यादि की प्रथा भी कदाचित् इसीका ज्वलन्त प्रमाण है।

हिन्दू धर्ममें अन्नकी महिमा का भी विशेष विवरण किया गया है। द्विजोंको शिक्षा दी जाती है अन्नका आदर करें और नियमपूर्वक उसका सेवन करें। अन्नका निरादर करना पाप माना गया है। इस सम्बन्ध में मनुके वचन नीचे दिये जाते हैं—

पूजये दशनं नित्य मद्याच्चै तदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितंतु तदभुक्त मुभयं नाशयेदिदम्॥
(मनु० २, ५४-५५)

अर्थ—अन्नकी सदा पूजा करे। बिना कुत्सित विचार लाये हुये अन्न ग्रहण करे और प्रसन्न हो। 'सब अन्न सदा हमको प्राप्त होता रहे' ऐसी स्तुति करते हुए भक्तिपूर्वक नमस्कार करे, क्योंकि सम्मानित तथा पूजित अन्न बल तथा वीर्य की वृद्धि करता है और निरादर किया हुआ अन्न इन दोनों का नाश करता है।

मैक्सिकोमें मनुष्यको अन्नकी महिमा का उपदेश दिया जाता है। उसका सारांश इस भाँति होता है:—संसारमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो भोजन न करता हो क्योंकि पेट तो हरेक के साथ ही बँधा हुआ रहता है .... शरीर की रक्षा से ही आत्मा और प्राणकी भी रक्षा होती है। इसीसे संसार प्रजा सम्पन्न होता है। उपनिषदों में भी अन्नकी महिमा गाई है और उसकी स्तुति अनेक स्थानों पर की है—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्, अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते
अन्नेन जातानि जीवन्ति, अन्न प्रयन्त्यभि संविशन्तीति।
(तैत्तिरीयोपनिषत)

पृथ्वी पर रहने वाले सम्पूर्ण प्राणि अन्नसे उत्पन्न हुए हैं। वे अन्न ही द्वारा जीवित रहते हैं और अन्त में अन्नमें मिल जाते हैं।

शतपथ ब्राह्मणोंका कथन है कि अन्न शरीरमें प्रवेश करनेपर शरीर ही हो जाता है। प्राण द्वारा अन्न शरीरसे सम्बन्ध रखता है। अन्नका तत्व अदृश्य रहता है। अन्न तथा प्राण एकही रूप है। वे दोनों ही देवस्वरूप है। प्रतिहार सूक्तोंका देवता अन्न ही है।

देश तथा जातिकी आर्थिक स्थितिका भी अन्नसे बहुत कुछ सम्बन्ध होता है। इसीका ध्यान रख कर अनेक प्रथाओं तथा नियमोंका

प्रादुर्भाव हुआ है। बहुत कुछ प्रभाव जातिकी सभ्यता तथा विकासका इसपर पड़ता है। रूस में आजकल चाहे नवयुवकोंको उत्तम भोजन प्राप्त न हो किन्तु बच्चोंके भोजन का ध्यान सबसे पहले किया जाता है। आस्ट्रेलियामें अनेक नियम बने हुए हैं और उनको सामाजिक रूप दे दिया गया है। यह तो सर्वमान्य है ही कि भिन्न भिन्न स्थिति तथा अवस्थाके प्राणियोंको भिन्न भिन्न अन्न विशेष आवश्यकीय है। इसीका ध्यान रखते हुए इन नियमोंका प्रादुर्भाव हुआ होगा। जो अन्न बच्चों के लिये नियत हैं वह उनके माता पिताको त्याज्य है। जो पदार्थ स्त्रियोंकेलिये है उसे पुरुषको व्यवहार में नहीं लाना चाहिये। इसी भाँति सब केलिये नियम है। फलतः सबको सबके आवश्यकतानुसार पदार्थ मिलते हैं। ऐसे ही नियमोंकी सम्भावना रूसमें भी की जाती है। जो वस्तु विशेष उपयोगी होती है उसको भी खाद्य पदार्थ में निषेध करते हैं। कदाचित् 'गौ' की महिमा को जानने के कारण ही उसका वध 'घोर पाप' कहा गया है। बहुत से देशों में 'अन्न' की चोरीकेलिये दण्ड अन्य चोरी के दण्डों से विभिन्न हैं। चीनमें क्षुधापीड़ित मनुष्य अन्न चोरी करने पर दण्ड का भागी नहीं होता। हिन्दू, हीब्रू तथा ईसाई धर्ममें भी ऐसे ही नियम हैं। इसीके विपरीत यदि डेंजर (Danger) द्वीपमें अन्न चुराता हुआ कोई मनुष्य पकड़ा जाता है तो उसे प्राण-दण्ड दिया जाता है।

त्योहार तथा उत्सवके अवसरोंका आविष्कार भी उत्तम उत्तम भोजनकेलिये ही हुआ देख पड़ता है। आर्थिक स्थितिके कारण नित्य उत्तम तथा प्रिय भोजन न मिल सकने पर भी ऐसे अवसरों पर उत्तमोत्तम भोजन बनाना अनिवार्य होजाता है। सहभोज इत्यादिके लाभ भी छिपे नहीं हैं। इनसे जो स्नेहभाव तथा आत्मीयताका प्रादुर्भाव होता है उसीको विचार कर इसकी प्रथा भी सर्वत्र पाई जाती है।

स्वास्थ्य तथा वैद्यक दृष्टिसे विचार—प्राणि-मात्रके लिये जो सबसे आवश्यक पदार्थ है वह है शक्ति, और इस शक्तिकी उत्पत्ति अन्नसे ही होती है। बिना अन्नके शरीरमें शक्ति (Energy) उत्पन्न नहीं हो सकती और बिना शक्तिके प्राणका टिकना असम्भव है! अतएव जीवनकेलिये भोजन अपरिहार्य है। यों तो हर अन्नमें कुछ न कुछ शक्ति अवश्य रहती है, किन्तु किस अवस्थाके किस मनुष्यको कितनी आवश्यकता है यह उसके परिश्रम, स्वास्थ्य तथा जीवन-चर्या पर निर्भर है।

आजसे बीस वर्ष पहले भोजनसम्बन्धी जो धारणायें थीं उनमें अब बहुत कुछ अन्तर होगया है। पहलेके वैज्ञानिकोंका विचार था कि मानव-जीवनकेलिये अन्न-द्रव्योंमें (१) नेत्रजन (Proteins) (२) मांड (Caro-hydrates) (३) स्निग्ध अथवा चर्बी (Fats) (४) क्षार (Salt) तथा (५) जल (Water) का ही रहना अनिवार्य है, किन्तु अब, हमारे भोजनपदार्थमें विटामिन (Vitamins) का होना भी आवश्यक समझा जाता है।

हमारे जीवनमें ताप (Heat) भी कम भाग नहीं लेता। मनुष्यमें वह शक्ति जिसके कारण वह जीवित रह सकता है, इसी ताप (Heat) से उत्पन्न होती है। इस तापको वैज्ञानिकरूपसे मापकर केलोरी (Calorie) के नामसे पुकारा जाता है। केलोरीसे ऊष्णताके उस प्रमाणका बोध होता है जो एक पौण्ड जलको ४ डिग्री गरम बना देतो है। केलोरीके पूर्णतया अभावमें जीवन असम्भव है। श्वाँसक्रिया तकमें तो इसकी आवश्यकता होती है। किस प्राणिको कितनी शक्ति की आवश्यकता है यह ठीक ठीक कहना तो कठिन है क्योंकि यह तो बहुत कुछ उसके परिश्रम, स्वास्थ्य, अवस्था तथा शरीर पर निर्भर रहता है। जितना ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है और जितना ही अधिक डीलडौल होता है उतने ही अधिक केलोरीकी आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया किसे कितनी केलोरीकी किस अवस्थामें आवश्यकता होती है, यह निम्नाङ्कित कोष्टकसे विदित होजावेगा—

अवस्था	केलोरी की प्रति घण्टे में आवश्यकता	
	पुरुष	स्त्री
१५ वर्ष	८३	६७
१७ ,,	७७	६१
२० ,,	७४	५८
२५ ,,	७३	५७
३५ ,,	७१	५६
४५ ,,	६९	५५
५५ ,,	६७	५४
६५ ,,	६५	५३
७५ ,,	६४	५१

केलोरीकी कमी हमारे शरीरमें न होनेके लिये ठीक ठीक प्रमाणमें ठीक ठीक अन्न ग्रहण करना आवश्यक है। भोजनमें कमी होनेपर कीटाणुओं कोही अपने प्राण देकर इसकी पूर्ति करनी पड़ती है। फल-स्वरूप मनुष्य दिन प्रतिदिन क्षीण-काय तथा दुर्बल होता जाता है। भोजन निश्चित करनेमें नीचे दी हुई तलिकासे केलोरी-सम्बन्धी ज्ञान तो अवश्य प्राप्त होजावेगा किन्तु यह प्रत्येक मनुष्य के स्वास्थ्य तथा पाचन-शक्ति पर निर्भर है कि वह किन वस्तुओंका किस प्रमाणमें व्यवहार करके आवश्यकीय केलोरीको शरीरके अन्दर प्रविष्ट करा सके—

नाम अन्न	केलोरी (आध सेर में)
गाय का दूध	२८८
मनुष्य का ,,	२८८
बकरी का ,,	३२०
भेड़ी का ,,	४८०
भैंस का ,,	४८०
दही	२८८
मक्खन	३५००
घी	३३२८
चर्बी	४०८०
मछली का तेल	४०३२
नारियल का ,,	४०३२
तीसी का ,,	४०३२
सरसों का ,,	४०३२
खस्सी का मांस	५७६
कबूतर का ,,	६७२
उबाला हुआ चावल	१८०८
दाल	१६००
सूजी	११२०
भुट्टा	१५३६
सफेद चीनी	१८०८
गुड़	१७२८
साबूदाना	१५५२
ईख	४४८
नारिकेल	२६७२
अनार	३२
सफतालू	१६२
अनन्नास	१६२
लीची	१६२
आम	३६८
अमरूद	१६२
सेब	२१५
केला	२६०
संतरा	१७०
खट्टा नीबू	१४०
अंगूर	३३०
पियाज़	२००
मूली	६०
सूत मूली	१००
बीट	१७५
गाजर	१६०
शलजम	१२५
बन्द गोभी	१२०
फूल	१४०
खीरा	७०
कुरस	७०
सलाद	७२
पालक	११०
विलायती बैंगन	१००
देशी बैंगन	१२८
सेम	५८०
आलू	३००
बादाम	१६१५
खजूर	१४१५
अंजीर	१४४०
मुरब्बे	१२६४
चाकलेट	२७७०
आटा	१६००
रोटी	११००—१३५०
मधु	१४८०
अंडा	६००
संदेश मिठाई	१६८४

केलोरीके अतिरिक्त शरीरमें ऐसे पदार्थों का प्रवेश करना आवश्यक है जिनसे हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अवयवों की पुष्टि हो तथा जो हमारे मानसिक तथा शारीरिक बृद्धिमें सहायक हो सकें। जिन पदार्थोंसे मनुष्यका शरीर बना है उनमेंसे किसी भी मुख्य पदार्थ की कमी हो जाने से मनुष्य अस्वस्थ्य होने लगता है। अतः उपरोक्त कहे हुए पांच पदार्थोंका—प्रोटीन चर्बी इत्यादि—आवश्यकतानुसार शरीरमें पहुँचना भी अत्यन्त अनिवार्य है !

उपरोक्त तलिकामें जिन अन्नोंके नाम दिये हुए है उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनमें कुछ न कुछ अँशोंमें प्रोटीन वीटामीन इत्यादि अवश्य वर्तमान हैं किन्तु किस वस्तुमें क्या किस प्रमाणमें है इसका ज्ञान भी होना नितान्त आवश्यक है।

भोजन निश्चित करनेमें निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:—

(१) जो अन्न ग्रहण किया जाय उसमें उपरोक्त पांचों प्रकार तथा वीटामिन का समावेश योग्य प्रमाणमें होना आवश्यक है। साथ ही साथ शरीरमें काफी प्रमाणमें, अन्नभी जाना चाहिये।

(२) जिस देशमें मनुष्य रहता हो वहाँ की आबहवा को ध्यानमें रखकर ही भोजन निर्धारित करना चाहिये। अवस्था, उद्योग, मानसिक तथा शारिरिक परिश्रमको ध्यानमें रखते हुए ही भोजन निश्चित करना चाहिये।

(३) कोई पदार्थ चाहे कितना ही लाभदायक क्यों न हो किन्तु रुचि और पाचन शक्तिका भी ध्यान आवश्यक है।

वैज्ञानिकों का मत है कि प्रति दिन साधारण तया मनुष्य श्वाँसोच्छ्वासके समय २५० से लेकर ८८० ग्राम तक कर्ब (कार्बन), मुख्यतः कर्व-द्वि प्राणिद (Carbon-Di-oxide) के रूपमें बाहर फेंकता है। मूत्रमें यूरीया (Uria) नामक क्षार होता है। मूत्र-त्याग द्वारा १५ से १८ ग्राम तक नत्र शरीरके बाहर फेंकता है। मलोत्सर्जन द्वारा कर्व तथा नत्र जिस प्रमाणमें शरीरके बाहर निकलते रहते हैं उसके अनुसार ही अन्न द्वारा इनको शरीरमें प्रवेश भी करना आवश्यक है।

कुछ पुराने वैज्ञानिकोंने दो प्रकारके भोजनमें निम्न-लिखित प्रमाण आवश्यक बताये हैं:—

प्रथमः—	नत्रयुक्त पदार्थ	१२०
	स्निग्ध पदार्थ	९०
	पिष्ट पदार्थ	३३३
द्वितीयः—	नत्रयुक्त पदार्थ	१००
	स्निग्ध पदार्थ	१००
	पिष्ट पदार्थ	२५०

अहार में भिन्न भिन्न पदार्थोंके गुणधर्म का विचार करना भी आवश्यक है, इसका पूरा पूरा व्यौरा देना तो यहाँ असम्भव है किन्तु मुख्य मुख्य पदार्थों पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

भारत ऐसे उष्ण-प्रधान देशमें दूधको 'उत्तमान्न' कहा गया है। छोटे बच्चोंके लिये इससे बढ़कर दूसरा अन्न कोई कदाचित् ही हो किन्तु बड़े मनुष्योंको भी यथेष्ट प्रमाणमें सेवन करने से उत्तम स्वास्थ्य तथा बल प्राप्त हो सकता है। हाँ, दूधमें लोह का अंश बहुत कम होनेके कारण शरीर हलका रहता है किन्तु लिसीथीन नामक पदार्थ होनेसे बुद्धि तथा मज्जाके लिये यह विशेष गुणकारी होता है।

जहाँ दूधमें अनेक गुण हैं वहाँ ही इसमें दोष भी हैं जो तनिक सी असावधानी होनेपर भयंकर परिणाम उत्पन्न कर देते हैं। अस्वच्छता का इसपर बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। रोग उत्पन्न करने वाले तन्तु (Germs) इसमें बड़ी शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते हैं। यह शीघ्रही विगड़ भी जाता है।

खाद्यपदार्थोंमें अण्डेका भी आजकल विशेष स्थान होरहा है। मुर्गी, बत्तक तथा अन्य पक्षियोंके अण्डे व्यवहारमें लाये जाते हैं। अण्डेमें अफेदी (Albumin) बहुत होता है। यह बड़ा पौष्टिक होता है। इसकी जर्दी भी बड़े लाभकी वस्तु है। किन्तु इसको बहुत देरतक उबालनेसे न्युक्लीन नामक पदार्थ कठिनतासे पचता है। इसी लिये लाभ की दृष्टिसे अथवा औषधोपचारमें कच्चे अण्डे खाना ही उचित है।

मांस खानेकी प्रथा थोड़ी बहुत प्रायः हरेक देशमें पाई जाती है, किन्तु हरेक पशु अथवा पक्षि का मांस खानेमें व्यवहार नहीं किया जाता। बहुत से पशुओंका मांस तो हानिके भयसे व्यवहार में नहीं लाते किन्तु बहुतसे पशुओंका मांस केवल प्रथा न होने ही से नहीं खाते। बहुत सी जातियों में इसको धर्मका अङ्ग मानकर निषेध किया है। भिन्न भिन्न पशुओंके मांसमें भिन्न भिन्न गुण-धर्म होते हैं। मांस भी बहुत पौष्टिक होता है, किन्तु पचता भी कठिनता से है। इसमें चर्बीका अंश बहुत होता है। निम्नाङ्कित कोष्टकसे कुछ पशुओं के मांसके विषयमें विशेष ज्ञान हो जावेगा।

घटक द्रव्य	बैल	बछवा	सूअर	घोड़ा	बत्तक
१—जल	७६-७	७५-६	७२-६	७४-३	७०-८
२—घन पदार्थ	२३-३	२४-४	२७-४	२५-७	२९-२
३—नत्र	२०-२	१९-४	१९-२	२१-६	२२-७
४—चरबी	१-५	२-९	६-२	२-५	४-०
५—पिष्ट पदार्थ	०-६	०-८	०-६	०-६	१-३
६—क्षार	१-२	१-३	१-१	१-०	१-१

भारतवर्ष ऐसे कृषिप्रधान देशमें तो गेहूँ, जौ, चना, चाँवल, दाल इत्यादिका ही विशेष महत्व देख पड़ता है। गेहूँ तथा जौ का आटा विशेष रूपसे व्यवहारमें लाया जाता है और होता भी है इन्हींका आटा सबसे उत्तम। चोकर सहित आटा व्यवहारमें लाना अधिक लाभदायक है। बारली अथवा जौ से 'माल्ट' नामक पौष्टिक पदार्थ उत्पन्न होता है। विशेष ज्ञानकेलिये नीचे कोष्टक दिया जाता है—

घटक पदार्थ	गेहूँ	जौ बार्ली	ओट	चावल	दालद्विदलधान्य	मटर	आलू
जल	१३·६	१३·८	१२·४	१३·१	१२·५	१४·८	७६·०
नैट्रोजनयुक्तसत्व	१२·४	११·१	१०·४	७·६	२४·८	२३·०	२·०
स्निग्ध पदार्थ	१·४	२·२	५·२	०·६	१·६	१·६	०·२
माँड	६७·६	६४·६	५०·८	७६·५	५४·८	४६·३	२०·६
(नपचनेवाला)सेल्यूलोज	२·५	५·३	११·२	०·६	३·६	७·५	०·७
क्षार	१·८	२·७	३·०	१·०	२·४	३·१	१·०

फल तथा शाक इत्यादिमें यद्यपि उतने पौष्टिक गुण नहीं हैं किन्तु उनमें फासफोरस (Phosphorus) बहुत होता है जिससे मानसिक कार्य करनेवालोंके लिये यह विशेष लाभकारी होते हैं। नाना प्रकारके क्षारोंसे युक्त होनेके कारण मानव शरीर पर तथा स्वास्थ्य दृष्टिसे इसका बड़ा उत्तम प्रभाव होता है। रक्त-पित्त दोष तथा अपच इत्यादिसे पीड़ित मनुष्योंकेलिये ये विशेष उपयोगी होते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवनकेलिये कई प्रकारके रासायनिक द्रव्योंकी आवश्यकता होती है और उनपर थोड़ा बहुत प्रकाश भी डाला गया है किन्तु आजकलके वैज्ञानिक विटामिन ही को सबसे अधिक प्रधानत्व देते हैं। यही एक ऐसी पदार्थ है जिसपर मानवस्वास्थ्य निर्भर है। यह पदार्थ नित्य व्यवहारमें लायेजाने वाले अन्नोंमें पाया जाता है। यद्यपि अभी इस विषयमें ज्ञान केवल परिमित है किन्तु जो कुछ भी विदित हो चुका है उसका उल्लेख नितान्त आवश्यक है। अब तक पाँच भागोंमें विटामिन बाटे जाते हैं—(A) 'ए' (B) 'बी' (C) 'सी' (D) डी तथा (E) ई। ये विभाग इनके विशेष गुणधर्मके अनुसार ही किये गये हैं। यदि शारीरिक आवश्यकतानुसार प्रत्येक विटामिन हमारे शरीरमें नित्य न पहुँच सके तो धीरे धीरे किसी न किसी भयानक अथवा असाध्य रोगके चंगुलमें फँस जाना अनिवार्य है, और अन्तमें बड़ा भयानक परिणाम हो सकता है।

१६१५ई० में विटामिन 'ए' का आविष्कार हुआ। प्रयोग करके देखा गया कि इसके अभाव से नेत्रोंको विशेष हानि पहुँचती है। और भी यह सभी छूतोंका प्रधान रक्षक माना गया है। साधारण सर्दी, जुकाम इत्यादि ऐसे रोग जिनमें नाक, गला और सांस नली आक्रान्त होती हैं इसके अभावसे ही उत्पन्न होते हैं। भविष्यकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये शरीर 'ए' विटामिन काफी अंशमें संचय कर सकनेकी शक्ति रखता है। जीवनके शैशवकालमें इन्हें यथेष्ट एकत्रित कर रखनेसे आगे चलकर मनुष्य इन रोगोंसे अपनी रक्षा कर सकता है, अतः बच्चोंके लिये यह विशेष रूपसे आवश्यक होता है। योंतो यह बहुतसे अन्नों में थोड़े बहुत अंशोंमें पाया जाता है किन्तु विशेष रूपसे गायके ताजा दूध, मक्खन, अण्डे इत्यादिमें होता है।

'बी' विटामिन का पता 'ए' से पहले ही लग चुका था। अबतक इसके विषयमें जो पता लगा है वह मानव जीवनकेलिये कम उपयोगी नहीं हैं। इसके प्रभाव से 'बेरी बेरी' (Beri-beri) पेलग्रा (Pellagra) स्नायुयोंके रोग (Nervous troubles) कब्ज, पाचनक्रियामें दोष इत्यादि अनेक रोग होने लगते हैं। बेरीबेरी भी प्रधानतः स्नायुयों का ही रोग है। आरम्भमें तो स्नायुयों में असह्य पीड़ा होती है और बढ़ते बढ़ते मांस पेशियाँ शिथिल होकर बेकार हो जाती हैं। अन्तमें मृत्यु तक हो जाती है। पेलग्रासे स्नायु और मस्तिष्क दोनोंही आक्रान्त हो जाते हैं, त्वचा लाल होने लगती है। अन्तमें मनुष्य उन्माद ग्रसित हो जाता है। इसका अभाव हमारे शरीर को शीघ्रही खटकने लगता है। इससे पता लगता है कि मानव शरीर इसको सञ्चित करके बहुत दिनों तक नहीं रख सकता। अतः ऐसे अन्नका निरन्तर ही सेवन आवश्यक है जिसमें विटामिन 'बी' यथेष्ट हो। यह विशेष रूपसे ताजा फलों और तरकारियों, गेहूँ तथा अन्य अन्नोंके कीटाणु, ईस्त (Yeast) सलाद (Salad) इत्यादि में पाया जाता है।

'सी' विटामिनके अभावमें चर्मरोग (Scurvy) का प्रादुर्भाव होने लगता है। यह एक प्राचीन चर्मरोग है। पहले यह रोग नाविकोंको अधिक हुआ करता था। मानव शरीर इसको सञ्चित करके बहुत थोड़ी देर रख पाता है क्योंकि गरमी (Oxidation) से यह तुरत नष्ट हो जाता है। नसों और हड्डियोंमें भी इसके अभावसे दुवलता आने लगती है। यह फलोंमें बहुत प्रमाणमें पाया जाता है। नीबू, सन्तरा, टमाटर, हरीमिर्च, शलजम इत्यादि का सेवन इसके अभाव की पूर्तिके लिये विशेष लाभप्रद हैं किन्तु उवालने, पकाने इत्यादिसे ये नाश हो जाते हैं। अतः उपरोक्त वस्तुओं को उनकी नैसर्गिकावस्थामें ही व्यवहार में लाना चाहिये।

'डी' विटामिन शारीरिक शक्तिकेलिये नितान्त अनिवार्य है। इसके अभावसे शरीरमें अनेक भयंकर रोग तक उत्पन्न हो जाते हैं। सूखा रोग (Rickets) तपेदिक (Tuberculosis) हड्डीकी बिमारी (Osteomalacia) तथा दाँतोंके रोग इनमें प्रधान हैं। केवल इसीका रासायनिक रूप मालूम होसका है, जिसे 'अर्गो-स्टेरोल' कहते हैं। यह निष्क्रिय (Inert) होता है किन्तु कुछ देर सूर्यप्रकाश अथवा तीव्र बैगनी किरणोंसे (Ultra Violet Ray) इसकी उत्पत्ति होती है ऐसे बहुत कम अन्न हैं जिनमें यह यथेष्ट प्रमाणमें और स्थायीरूपमें पाया जाता है। इसका सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध है सूर्यके प्रकाश से। यद्यपि यह दूध, अण्डे, मछलीके तेल, मक्खन इत्यादिमें पाया जाता है किन्तु उन दिनों यह अधिक प्रमाणमें पाया जाता है जिन दिनों पशुपक्षि सूर्य प्रकाशमें अधिक देरतक रहते हैं। यद्यपि अन्न पदार्थोंमें यह कम पाया जाता है किन्तु ऐसी अनेक औषधि तथा मछलियोंके तेल हैं जिनमें यह यथेष्ट प्रमाण में होता है। यह भी शरीरमें यथेष्ट समय तक सञ्चित रहता है। सूर्य प्रकाशमें नङ्गे बदन रहने से यह यथेष्ट रूपसे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।

'ई' विटामिनका अभाव भी शरीर को शीघ्र ही खटकने लगता है। सन्तानोत्पत्ति की शक्ति इसी से प्राप्त होती है। इसके अभावसे गर्भावस्थामें शिशुका ठीक ठीक पालन नहीं होने पाता जिससे प्रसवके पहले ही वह नाश होजाता है। यह किसी अंश तक शरीरमें सञ्चित रह सकती है। मांस मछली अण्डे इत्यादि में तो यह यथेष्ट प्रमाणमें होती ही है बहुतसे भूमिज अन्नोंमें और विशेष कर गेहूँ में यह बहुत पायी जाती है। लेटुस नामक फल (Lettuce) और उसकी पत्तीमें यह बहुत होती है।

पाकक्रियाका अन्नके स्वादपर तो बहुत कुछ प्रभाव पड़ता ही है वैद्यक-दृष्टिसे भी इसके अनेक लाभ और हानि है। हानि तो सबसे बड़ी यही है कि पकानेसे अन्नकी शक्ति बहुत कुछ कम हो जाती है और उपरोक्त कई प्रकारके विटामिन उनमेसे नष्ट हो जाते हैं। किन्तु निर्वल मनुष्य को वैद्यक दृष्टिसे कच्ची चीजें हानिप्रद भी हो सकती हैं। पाकक्रियासे अन्नके अनेक दोष नाश भी हो जाते हैं। नाना प्रकारके रोग वाहक कृमि (Germs) का नाश हो जाता है। दूसरे बहुतसे अन्न जो कच्चे पचना कठिन हो जाते हैं। उवालने अथवा पकाने के वाद शीघ्रही तथा सरलता से पच जाते हैं।

निम्नाङ्कित कोष्टक प्रत्येक मनुष्यके लिये विशेष हितकारी होगाः—

नाम विटामिन	प्रधान अन्न	उनके अभाव से हानि	स्थिरता
'ए'	दूध, मक्खन, हरे शाक, अण्डा, काडलिवर तेल	सर्दी, जुकाम, इत्यादि गले तथा नेत्रोंके रोग; पूर्ण-शारीरिक विकास का अभाव	बहुत अधिक ताप, आक्सिजन से लोपहोजाताहैबर्तनमें ढककरपकाने से [Canning] कम नाश होता है
'बी'	ताजाफल, गेहूँ के कीटाणु, ईस्त सालाद, हरेशाक	बेरी बेरी, पेलेग्रा, स्नायुरोग कब्ज, अपच,	किसीअंशतकस्थिर, पकाने अथवा कैनिङ्गसे कुछही नाश होता है
'सी'	नीबू, सन्तरा, टमाटर, हरीमिर्च शलजम, हरेशाक	चर्मरोग, [स्कर्वी] दन्तरोग, पूर्णविकास का अभाव	सबसे अधिक अस्थिर। किसी भी पाक क्रिया से नाश
'डी'	मक्खन, अण्डा, काड़लिवर तेल, सूर्य प्रकाश	सूखारोग, तपेदिक, हड्डी के रोग, दन्तह्रास	तापमें भी स्थिर, पाक क्रियासे सम्पूर्ण नाश नहीं होता
'ई'	मांस, मछली, अण्डा, गेहूँकी वाली, जौ चना,	सन्तानोत्पत्ति शक्ति का ह्रास, गर्भ-रक्षाकी शक्ति का ह्रास	तापमें भी स्थिर। पाक क्रिया द्वारा नाश नहीं होता

अन्नकूट—हिन्दुओंका यह एक प्रसिद्ध त्योहार है। यह उत्सव कार्तिक मास में दीपावलीके दूसरे दिन प्रतिपदा को मनाया जाता है। इसको कथा सनत्कुमार संहिताके कार्त्तिक माहात्म्य में दी हुई है। इस दिन नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पक्वान्न तथा भोजन बनते हैं। गोवर्धन पूजा ही इस उत्सवका प्रधान अङ्ग है। गोवर्धन एक पर्वत है जिसका उल्लेख कृष्णावतार में आता है। इस की कथा इस भाँति है कि एक बार कार्त्तिकीय प्रतिपदाको सहस्रों ग्वालजन भाँति भाँतिके भोजन बनाकर गोवर्धनके समीप वन में गये हुए थे। उनको देखकर श्रीकृष्णने पूछा कि वे लोग किस कारणसे इतनी सामग्री लेकर आये हैं। उन्हें उन ग्वालोंसे यह विदित हुआ कि वे सब इन्द्रकी पूजा की तय्यारियाँ हैं क्योंकि उन ग्वालोंकी ऐसी धारणा थी कि इन्द्रपूजा से सूखा अथवा अधिक वृष्टि द्वारा अकाल नहीं पड़ सकता और देश धनधान्य सम्पन्न रहता है। उन ग्वालोंने कृष्णसे भी उस पूजामें भाग लेनेका आग्रह किया। कृष्णने उनको समझा कर कहा कि ऐसे देवताकी पूजासे क्या लाभ जो साक्षात् नहीं है, न तुम्हारे अन्नको ग्रहण करता है। तुम 'गोवर्धन' की पूजा क्यों नहीं करते जो साक्षात् यहीं विराजमान हैं और जिससे लाभ भी तुम्हें अधिक होता है और जो तुम्हारी अथवा तुम्हारे पशुओंकी रक्षा तथा पालन करता है। कृष्णके समझाने पर गोवर्धन की ही पूजा की गई। जब नारद द्वारा इन्द्रको यह समाचार विदित हुआ तो क्रुद्ध हो भयंकर वर्षा करने लगा, किन्तु कृष्णने अपनी तर्जनी पर गोवर्धनको उठाकर सब ग्वालोंकी रक्षा की। अन्तमें कृष्णकी ईश्वरीय सत्ता देखकर तथा अपने कार्य पर लज्जित होकर इन्द्र क्षमायाचना करने आया। इन्द्रको क्षमा कर विदा करने पर श्रीकृष्णने उनलोगों को प्रति वर्ष गोवर्धन पूजा और अन्नकूटोत्सव मनानेका आदेश किया। कृष्ण ने यह भी कहा कि भक्तिपूर्वक प्रति वर्ष गोवर्धन पूजा करने वाले पुत्र, पौत्र, धनधान्यसे सम्पन्न रहेंगे। उनके ऐश्वर्य तथा सौख्यकी प्रतिदिन वृद्धि होती रहेगी। फलस्वरूप आज भी भारतके कोने कोनेमें अन्नकूट और गोवर्धन पूजाका उत्सव प्रत्येक हिन्दू मनाता है।

अन्नभट्ट—यह तैलङ्ग जातिका ब्राह्मण बड़ा भारी नैय्यायिक हो गया है। इसका जन्म निजामअली-शासित तैलंगणके गरिकपाद नामक गाँवमें हुआ था। इसका ठीक ठीक समय तो नहीं कहा जा सकता किन्तु शालिवाहनकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें जिस समय चालुक्य वंशके राजा राज करते थे, उस समय इसका उदय हुआ था। कौडिन्यपुर (कोंडवीडू) की संस्कृत पाठशालामें बारहवर्ष तक इसने न्यायशास्त्रका अध्ययन करके अच्छी योग्यता प्राप्त की। इसीने आजकलके सुविख्यात ग्रंथ 'तर्कसंग्रह' की रचना की थी। न्यायशास्त्रके विषय तथा सिद्धान्तोंको संक्षेप में इसने बड़ी उत्तम रीतिसे दर्शाया है। इस विषय का प्रारम्भिक-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये यह पुस्तक अद्वितीय है।

इसके पश्चात् इन्होंने अपनी स्वयं एक पाठशाला खोली जिसमें न्यायशास्त्रकी उच्च शिक्षा दी जाती थी। तर्कदीपिका, मुक्तावली तथा गदाधारी आदि ग्रंथोंको बड़े परिश्रमसे पढ़ाकर इस शास्त्रके अनेक उत्कृष्ट विद्वान् बनाये।

यह ५५ वर्षकी अवस्था में श्रीक्षेत्र मल्लिकार्जुन के दर्शनकेलिये गये थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने कदाचित् और कोई यात्रा नहीं की। यह अत्यन्त सन्तोषी थे और अपने सम्मान तथा आत्मगौरव का विशेष ध्यान रखते थे। इतने बड़े विद्वान् होते हुए भी यह कभी किसी राजासे मिलने नहीं गये, न कभी किसीसे कोई सहायताकी ही प्रार्थना की। पिताका छोड़ा हुआ थोड़ा सा ही धन ही इनके जीवनयापनके लिये पर्याप्त था। नित्य देवदर्शन तथा सायंप्रातः दो दो घण्टे स्नान सन्ध्या पूजा पाठके अतिरिक्त यह अपना सम्पूर्ण समय विद्यार्थियोंके पढ़ानेमें ही बिताते थे। कहा जाता है कि सन्तान तो इन्हें कई हुईं किन्तु इनके अन्तकालके लिये कोई भी नहीं बचा था।

अन्नय्याचारी—इनकी जाति तथा कुल का तो पूरा पूरा निश्चित रूपसे कुछ पता चलता नहीं है। कुछका मत है कि यह तैलङ्ग जातीय ब्राह्मण थे किन्तु इसके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिया जा सकता। यह धारणा केवल इसी आधार पर है कि इन्होंने तैलङ्गी भाषामें 'पितामह चरित्र' नामक पुस्तक दो भागोंमें लिखी है जिसमें सृष्टि-रचयिता ब्रह्माका वर्णन है। पुस्तक उच्च कोटिकी लिखी हुई है, और इसके रचयिताके नाते ही यह प्रसिद्ध हैं। इनका ठीक ठीक काल भी निर्णय करना कठिन है।

अन्नवस्त्र—(रोटी-कपड़ा, गुज़ारा)—जो व्यक्ति किसी कारणवश अपनी वृत्ति अर्जन करनेमें अशक्त होजाता है उसे अपने भरण पोषणके लिये दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। उस दशामें

किसी व्यक्ति अथवा सम्पत्ति विशेष द्वारा अपने निर्वाहकी व्यवस्था करनेका वह अधिकारी होजाताहै। इस अधिकारको अन्नवस्त्र अथवा गुज़ारा कहते हैं।

हिन्दुओं के नियम

इस परिपालनाधिकार का जितना महत्व हिन्दू-व्यवस्थामें है उतना किसी अन्य देशकी व्यवस्थामें नहीं, क्योंकि अन्य देशोंमें तो यह अधिकार केवल आश्रित पुत्रों तथा स्त्रियोंको ही है पर हिन्दुओंमें सम्मिलित परिवार प्रथाके कारण परिवारके प्रायः सभी व्यक्तियोंको यह अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उसके विवाह आदि समस्त धार्मिक संस्कारोंके भी व्ययका भार सम्मिलित परिवारको ही उठाना पड़ता है। यह दूसरी बात है कि सम्मिलित परिवारके किसी सदस्यको उसकी व्यक्तिगत अयोग्यता अथवा अन्य कारणोंसे उस परिवारकी सम्पत्तिमें उत्तराधिकारका अधिकार न प्राप्त हो फिर भी भरणपोषणका अधिकार तो उसे भी मिल ही जाता है। सम्मिलित परिवारके किस व्यक्तिको उत्तराधिकार प्राप्त है तथा कौन केवल अन्नवस्त्रका ही अधिकारी है उसके सम्बन्धमें याज्ञवल्क्य स्मृतिमें लिखा है—

'क्लीवोऽथ पतितस्तज्जः पंगुरुन्मत्तको जडः।
अन्धोऽचिकित्स्य रोगाद्या भर्त्तव्याःनिरंशकाः॥

अर्थ—नपुंसक, पतित, पंगु, उन्मत्त (पागल) जड़ (मूर्ख), अन्धा, असाध्य, रोगी, तथा उनकी संतानको दाय भाग न देकर केवल अन्नवस्त्र ही देना चाहिये।

हिन्दूधर्म शास्त्रानुसार अन्न वस्त्रका उत्तरदायित्व दो प्रकारका होता है—एक व्यक्तिगत और दूसरा साम्पत्तिक। परिवारके कुछ सदस्य ऐसे भी हैं जिनके अन्नवस्त्रका उत्तरदायित्व व्यक्ति विशेष पर प्रत्येक अवस्थामें रहता ही है। जैसे मनुस्मृतिमें लिखा है कि—

वृद्धौ च माता पितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः
अनाचार शतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्।

[मनु ८।३५]

अर्थ—वृद्ध मातापिता, पतिव्रता स्त्री एवं शिशु संतानका सौ दुष्कर्म करके भी पालन पोषण करना चाहिये।

यह तो हुआ व्यक्तिगत उत्तरदायित्वका उदाहरण। साम्पत्तिक उदाहरणके विषयमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सम्मिलित परिवारमें कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनके पालनका अधिकार उस सम्मिलित परिवार अथवा उस परिवारकी सम्पत्ति पर होता है। अतः बहन, बुआ, उनके लड़के, बिधवा भावज आदिका परिपालनाधिकार व्यक्ति विशेष पर न होकर उस सम्मलित परिवार की सम्पत्ति पर होता है।

पुत्र का अधिकार—पुत्रके पालनपोषणका उत्तरदायित्व उसके युवा [बालिग] होनेतक पिता पर रहता है। ऐसी ही व्यवस्था अन्य राष्ट्रोंमें है। पुत्रके युवा होनेपर इस व्यक्तिगत उत्तरदायित्वसे पिता मुक्त होजाता है। किंतु यदि पिता और पुत्र एक ही सम्मिलित परिवारमें रहते हों तो पुत्रके युवा होनेपर भी उसके भरणपोषणका भार उस सम्मिलित परिवार पर रहता है क्योंकि सम्मिलित परिवारकी पैतृक सम्पत्तिमें पुत्रके जन्म लेते ही उसका भी उत्तराधिकार वा अधिकार होजाता है। ऐसी दशामें जब तक विभक्त न होजायें तब तक पुत्रका युवा होनेके अनन्तर भी उस सम्मिलित परिवारकी सम्पत्तिसे भरण पोषणका अधिकार है। इसके अतिरिक्त जिन राज्योंको विभक्त न करनेका नियम चला आता है उनका उत्तराधिकार बड़े पुत्रको होता है। ऐसी दशामें सब छोटे पुत्रोंको युवा होनेके बाद भी उस राज्यकी ओरसे भरण पोषणका अधिकार प्राप्त होता है।

कन्याओं का अधिकार—विवाह पर्यन्त कन्याओंके भरणपोषणका उत्तरदायित्व पिता पर रहता है। पिताकी मृत्युके उपरांत वे निराश्रया होजाती हैं किंतु पिताकी सम्पत्तिसे भरणपोषणका व्यय लेने का उनका अधिकार है। विवाह होजाने पर कन्याएं पतिके कुलकी होजाती हैं और तबसे उनके अन्नवस्त्रका भार पतिको सहन करना पड़ता है। पतिकी मृत्युके उपरांत उसकी सम्पत्तिसे अन्नवस्त्र लेनेका अधिकार विधवाओंको है। पति की यदि कोई सम्पत्ति न हो तो कानूनन उनके अन्नवस्त्रका उत्तरदायी नहीं है फिर भी उसके पालनपोषणका नैतिक उत्तरदायित्व कन्याके ससुर पर पड़ता है एवं उसकी भी मृत्यु होनेपर उसकी सम्पत्तिसे अन्नवस्त्र चलानेका उसका अधिकार है। यदि ससुरकी भी कोई सम्पत्ति न हो तो फिर पितापर उसके अन्नवस्त्रका नैतिक उत्तरदायित्व पड़ता है। विवाहित एवं विधवा लड़की का उसके पिताकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार है या नहीं यह विवादास्पद विषय है।

पौत्रका अन्न वस्त्र—जन्म लेतेही उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त होनेके कारण पैत्रिक सम्पत्ति से पौत्रोंको अन्न वस्त्र लेनेका अधिकार है पर व्यक्तिशः उनके पितामहों पर इसकेलिये कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अनौरस सन्तति—हिन्दू कानूनके अनुसार अनौरस पुत्रके अन्न वस्त्रका उत्तरदायित्व उसके पिता पर एवं, उसकी मृत्युके अनन्तर उसकी पैतृक अथवा स्वतंत्र अर्जित सम्पत्ति पर होता है। पर यह अधिकार उसी तक परिमित है। उसके पुत्रका फिर उसमें से कुछ भी पानेका अधिकार नहीं है। हाँ, अनौरस पुत्रके अन्न वस्त्र का अधिकार मिताक्षराके अनुकूल युवा होनेके उपरान्त तक भी रहता है पर दायभागमें ऐसा नहीं होता। इसके साथ ही यद्यपि यह भी विधान है कि जो अनौरस पुत्र हिन्दू स्त्रीसे उत्पन्न हुए हों उन्हींको अन्नवस्त्र पानेका अधिकार होता है। तथापि अन्य धर्मावलम्बिनी स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र सिविल प्रोसीजर कोडकी धारा ४८८ के आधार पर दावा कर सकता है। पर पिताकी मृत्युके पश्चात् उसकी सम्पत्तिपर वह इसके लिये दावा नहीं कर सकता।

हिन्दू कानूनमें अनौरस पुत्रीको अन्नवस्त्र पानेका अधिकार नहीं दिया गया है, किन्तु वह भी सिविल प्रोसिजर कोडकी उपर्युक्त धाराके आधार पर उसके लिये दावा कर सकती है।

माता पिता—वृद्ध माता पिताके अन्न वस्त्रका भार प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। और पैतृक सम्पत्ति न होनेकी भी दशामें अपनी उपार्जित सम्पत्तिसे उनका पालन पोषण करनेका उत्तरदायित्व होता है। पुत्रके मरने पर उसकी सम्पत्तिसे अन्न वस्त्र पानेके वे अधिकारी होते हैं।

स्त्री—स्त्रीके भरण पोषणका उत्तरदायित्व पति पर व्यक्तिगत रूपसे रहता है; सम्पत्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु यदि किसीने अपनी स्त्रीका त्याग कर दिया हो तो उसी दशामें वह उसके सम्बन्धियोंसे अन्नवस्त्र पानेकी अधिकारिणी हो सकती है जब उसके पतिकी सम्पत्ति सम्बन्धियोंके अधिकारमें हो।

नियमतः स्त्रीको अपने पतिके साथ रहकर उसकी आज्ञाओंके अनुसार चलना चाहिये। अतः पतिसे स्वतंत्र रहनेकेलिये अन्नवस्त्र पानेका किसी स्त्रीको अधिकार नहीं है। किन्तु यदि पति स्वयं उसे अपने साथ रखना न चाहे अथवा कोई अन्य उपयुक्त कारण हो तो वह अन्नवस्त्र पानेकी अधिकारिणी हो जाती है। पतिके दूसरा विवाह कर लेने या साधारण झगड़ा-लड़ाई से यदि कोई स्त्री पतिसे अलग रहकर अन्नवस्त्र लेना चाहे तो उसे नहीं मिल सकता। किन्तु यदि पति उसके साथ अत्याचार करता हो अथवा ऐसा वर्ताव करता हो जिससे उसे प्राण जानेका भय हो तब वह स्वतंत्र रहकर पतिसे अन्न वस्त्र पानेकी अधिकारिणी हो सकती है। पतिसे अलग रहकर यदि स्त्री व्यभिचारिणी हो जाय तब उसका यह अधिकार नष्ट हो जाता है किन्तु यदि फिर वह शुद्धाचारिणी हो जाय और अपराधों पर पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त कर ले तब फिर उसे पतिके अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु यदि उसने अपनेसे किसी नीच जातिके पुरुषके साथ व्यभिचार किया हो तब उसकी शुद्धि नहीं हो सकती न उसको अन्नवस्त्र पानेका ही अधिकार होता है।

सम्पत्तिका उत्तरदायित्व—हिन्दू कानूनमें अपने आश्रितको अन्नवस्त्र देनेका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व माता, पिता, स्त्री और पुत्रों तक ही परिमित है। इसके अतिरिक्त सम्बन्धियोंके पालनपोषणका भार सम्पत्तिपर अवलम्बित है। इसका साधारण नियम यह है कि जिसकी सम्पत्ति होगी उसपर अन्नवस्त्रके लिये अवलम्बित रहनेवाले व्यक्तियोंके पालनपोषणका भार उस सम्पत्तिके उत्तराधिकारी पर रहता है। यह तो ऊपर कहा ही गया है कि सम्मिलित परिवारके सब व्यक्तियोंके पालनपोषण का भार पैत्रिक सम्पत्तिकी आयसे उस कुटुम्बके कर्त्ता पर रहता है।

बिधवा—उत्तराधिकारके अधिकारसे जिस बिधवाको उसके पतिकी सम्पत्ति नहीं प्राप्त होती उसके पालनपोषणका उत्तरदायित्व (१) उसके पतिकी स्वतंत्र सम्पत्ति पर रहता है। (२) पति की सम्पत्तिमेंसे अन्न वस्त्र मिलनेका यह अधिकार पतिकी मृत्युके समय, यदि वह पतिसे स्वतंत्र और पृथक् रहती हो तो भी नष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त पतिके जीवनपर्यंत स्वतंत्र रहकर अन्न वस्त्र माँगनेका अधिकार सामान्यतः स्त्रीको न भी हो, तो भी बिधवाके विषयमें यह नियम नहीं लागू होता। अर्थात् विधवाको पतिके ही परिवारके साथ रहना चाहिये यह कोई अनिवार्य नहीं है। ससुरालको छोड़कर यदि वह पिताके तथा अन्य किसीके घर रहे तब भी उसका अन्नवस्त्र लेनेका यह अधिकार सर्वदा बना रहता है। किन्तु यदि वह स्वतंत्र रहकर व्यभिचारिणी होजाय या कोई अयोग्य आचरण करे तो उसका अन्नवस्त्रका अधिकार नष्ट हो जाता है। मृत पतिकी सम्पत्ति यदि बहुत कम हो तब भी न्यायालय उसे अन्नवस्त्र नहीं दिला सकता। बिधवाके पुनर्विवाह करने पर उसके पहले पतिके परिवारसे मिलनेवाला अन्नवस्त्रका अधिकार नष्ट होजाता है। हिन्दू बिध-

वाविवाह कानून १८५६ धारा २]।

अन्नवस्त्रके खर्चकी रकम—बिधवाके भरणपोषण की रकम ठहराते समय (१) उसके पतिकी सम्पत्तिका मूल्य (२) समाजमें उसका स्थान और (३) बिधवाकी आवश्यकताएँ एवं उसके धार्मिक कृत्योंका विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त उस बिधवाके पास वस्त्र तथा अलंकार आदि अनुत्पादक स्त्रीधनके अतिरिक्त यदि दूसरा द्रव्योत्पादक धन अथवा जीविका चलाने योग्य दूसरा स्वतंत्र धन हो तो उस बिधवाको अन्नवस्त्र माँगनेका अधिकार नहीं होता।

अन्य व्यक्तियोंके पालनपोषणकी रकम निश्चित करते समय भी ऊपर कही तीनों बातों पर ध्यान देनेका नियम है। उसी तरह मृत व्यक्तिकी सम्पत्तिमें जो अंतर होगा उसीके परिमाणमें अन्न वस्त्रके अधिकारमें भी अंतर होगा।

मुसलमानी कानून

अन्नवस्त्र—पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंके भी मायके की सम्पत्तिमें उत्तराधिकारका अधिकार मिलनेके कारण तथा हिन्दू कानूनके समान सम्मिलित परिवार-पद्धति न होनेके कारण मुसलमानी नियमोंमें अन्न वस्त्रके अधिकारका क्षेत्र बहुत कुछ मर्यादित होता है। जिस पुरुष या स्त्रीको निजकी सम्पत्तिमेंसे अपना खर्च चलानेकी व्यवस्था हो वैसे किसी भी व्यक्तिको अपने अन्नवस्त्रका भार दूसरोंपर डालने का कोई अधिकार नहीं है, यहाँतक कि मुसलमानी कानूनके अनुसार स्त्रीको भी सदा अन्नवस्त्र का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

स्त्री—साधारण नियम यही है कि पतिको स्त्री का पालनपोषण करना चाहिये, किन्तु पतिका यह उत्तरदायित्व तभी तक बना रहता है जबतक स्त्री उसके उपयोगमें आती हो। उदाहरणके लिये यदि स्त्री वैवाहिक सम्बन्ध पूरा करनेके अयोग्य हो अर्थात् अल्पवयस्का हो, या आज्ञाकारिणी न हो या कानूनके अनुसार, कारण न होनेपर भी पतिको न चाहती हो या उसके अधिकारमें न रहती हो तो उसे अन्नवस्त्रका अधिकार नहीं प्राप्त होता। किन्तु यदि ऊपर लिखे कारणोंमें कोई भी न हो तो स्त्री चाहे निर्धन या धनी, मुसलमान धर्मकी या इतर धर्मकी, उपभुक्त या अनुपभुक्त, कैसी भी क्यों न हो उसे अन्नवस्त्र देनेके लिये पति बाध्य होता है। वह स्त्री भविष्य जीवनके लिये अन्नवस्त्रका दावा कर सकती है पर व्यतीत समयके अन्नवस्त्रका उसे कोई अधिकार, नहीं होता। साथही अन्नवस्त्रका यह अधिकार जबतक वैवाहिक सम्बन्ध बना रहे, तभी तक रहता है। इस सबन्धके विच्छेद (Divorse) होने अथवा विधवा हो जानेपर वह अधिकार नष्ट हो जाता है। किंतु, पतिपत्नीको एक दूसरे को छोड़ देनेके समय अलग रहकर जो समय व्यतीत करना पड़ता है उस समयमें भी अन्नवस्त्रका अधिकार होता है। मुसलमानी कानूनके अनुसार एक समय चार ही स्त्रियोंसे विवाह करने की आज्ञा है। अतः पाँचवीं या इससे अधिक स्त्री या स्त्रियोंको उत्तराधिकार या अन्नवस्त्रका अधिकार नहीं होता।

पुत्र—पुत्र तथा पुत्रियोंके अल्पवयस्क रहने तक [इण्डियन मेजारिटी एक्ट Indian Majority Act के अनुसार] उनके पोषणका भार पितापर होता है। पर लड़के के युवा [बालिग] होतेही यह उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। हाँ, यदि युवा पुत्र अशक्त हो और पिता धनी हो तो उसपर लड़के के पालन पोषण का भार रहता है। इसके विपरीत छोटे लड़केसे उसकी योग्यताके अनुरूप द्रव्योत्पादक काम कराकर अधिक आमदनी करानेका पिता को अधिकार है। लड़कियोंके विवाह पर्यन्त एवं वैधव्य अथवा तलाक होनेपर पालनपोषणका भार पितापर रहता है। यदि निर्धनताके कारण पिता उनका पालन करनेमें असमर्थ हो और उनके दादा या माता अच्छी स्थितिमें हों तो वे उनके पालनपोषणके जिम्मेदार हैं। उसके अनन्तर यदि पिताकी स्थिति अच्छी हो जाय तब वे उससे इसके सम्बन्धमें खर्च की हुई रकम वसूल कर सकते हैं। कोई मुसलमान यदि अपनी स्त्री अथवा औरस या अनौरस पुत्रोंका पालन करना नहीं चाहता हो तो वह स्त्री, औरस या अनौरस लड़के सिविल प्रोसीजर कोडकी धारा ४८८-४९० के अनुसार अन्नवस्त्रके खर्चकी रकम का दावा कर सकते हैं।

माता पिता—अपने श्रमसे द्रव्य उपार्जन करनेमें समर्थ होते हुए भी निर्धन माता पिताके पालनपोषणका भार उनकी योग्य संतति पर समान रूपसे रहता है। उदाहरणार्थः—एक निर्धन पिता का एक लड़का है जिसकी आय तीन हजार रुपये की है तथा एक लड़की भी है जिसकी आय पन्द्रह सौ रुपयेकी है। ऐसी दशामें कानून यही कहता है कि वह लड़का तथा लड़की दोनो ही को उचित है कि अपने माता पिताके पालनके लिये यदि पचास रुपये की आवश्यकता हो तो प्रति मास पचीस-पचीस रुपये दिया करें।

अन्य सम्बन्धी—साम्पत्तिक अनुकूलता वाले प्रत्येक मुसलमान को चाहिये कि अपने निर्धन सम्बन्धियों का [प्रोहिबिटेड डिक्रीज अर्थात् विवाह-सम्बन्धके लिये निषिद्ध] पोषण करें। किन्तु यह तभीके लिये है जब वे सम्बन्धी, यदि पुरुष हों तो, बालिग न हुए हो अथवा किसी कारणसे अशक्त हो, और यदि स्त्री हों तो या तो विधवा हों अथवा उनके पति दरिद्र हों। जितना अधिकार सम्पति पर होता है उतना ही अधिकार अन्नवस्त्रके लिये भी होता ही है।

पाश्चात्य-नियम

अन्न-वस्त्र—इसके लिये पाश्चात्य कानून में विशेष शब्द 'ॲलमॅनी' (Alimony) है। पति-पत्नीमें विवाहोच्छेद (Divorse) होनेपर अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध नष्ट होनेपर भी विवाह करनेके लिये आज्ञा न होनेपर (Judicial Seperation) पतिकी सम्पत्तिसे पत्निको अन्न-वस्त्र प्राप्त करनेका अधिकार है। यद्यपि अन्न-वस्त्रकेलिये बहुधा पतिकी ओरसे पत्नि ही को धन मिलता है किन्तु विशेष अवस्थाओं तथा परिस्थितियोंमें पति भी इसका हकदार हो सकता है। यह निश्चित धन दो प्रकारका होता है—कुछ कालके लिये परिमित (Temporary) और स्थायी (Permanent)। अस्थायी धन केवल मुकदमेंके फैसले तकके निर्वाहकेलिये होता है। बहुधा यह पतिकी आयका पांचवा भाग होता है किन्तु यदि पति निर्धन हो अथवा आपद्ग्रस्त हो तो न्यायालयको अधिकार है कि कुछ भी न दिलवावे। यदि पत्नि के जीवन-यापनका कोई उचित प्रबन्ध होता है और बहुत समय तक अपने पतिसे अलग रह कर ही वह सब कुछ करती रही है तो ऐसी अवस्थामें भी पत्नि इस धनकी अधिकारिणी नहीं होती। स्थायी रकम वह होती है जो मुकदमेंके फैसला हो जानेपर न्यायालयकी ओरसे अन्न-वस्त्रके लिये निर्धारित होती है। मैट्रिमोनियल कान्फ्रेन्स ऐक्ट स० १९०० ई० की धारा (Matrimonial Conference Act of 1907) के अनुसार विवाहोच्छेदका निर्णय सुनाते समय यदि न्यायालय उपयुक्त समझे तो पतिसे पत्निको एकबार ही आजीवनकेलिये एक बड़ी रकम अथवा कुछ वार्षिक रकम दिलवा सकता है। इस रकमका निर्णय दोनोंकी अवस्था तथा स्थितिको विचार कर ही किया जाता है। पतिकी आय घटते बढ़ते रहने पर उस वार्षिक नियत धनमें भी हेर फेर हो सकता है। न्यायालय यदि उचित समझता है तो उसके साथ कुछ शर्तें (Conditions) भी रख देता है। यह रकम पत्निके ट्रस्टियोंको भी मिल सकती है।

इङ्गलैण्डमें मैरिड विमेन ॲक्ट १९०५ ई० [Married women Act of 1905) के तात्कालिक-निर्णय (Summary Jurisdicton) के आधार पर यदि पतिने पत्निको छोड़ दिया हो अथवा पतिके छल, कपट अथवा अत्याचारके कारण पत्निको अलग रहना पड़ रहा हो तो प्रति सप्ताह दो शिलिङ्ग तक पत्निको न्यायालय दिलवा सकता है। युनाइटेड स्टेटसके छोटे छोटे बहुतेरे राज्योंमें इङ्गलैण्डके समान ही नियम देख पड़ते हैं। कहीं कहीं पर विवाहोच्छेदके दावेके बिना ही पतिके किसी भी दोषपर उससे अलग रहनेवाली पत्नी को समानता (Equity) के आधार पर पति से पूरा खर्च मिलता है। कहीं कहींपर पत्निकी सम्पत्तिमेंसे विशेष स्थितियोंमें पतिको भी खर्च दिलवानेकी प्रथा है। पतिका दूसरा विवाह होने पर भी उसको खर्च विशेष स्थितिमें मिल जा सकता है किन्तु स्त्रीका दूसरा विवाह होतेही वह पूर्व पतिसे किसी बातकी अधिकारिणी नहीं रह जाती!

पाश्चात्य देशोंमें सम्मिलित-परिवारकी प्रथा न होनेके कारण अन्न-वस्त्रका अधिकार विशेष कर पत्नियोंके ही सम्बन्धमें उठता है। अन्य आश्रित पुत्र इत्यादिको केवल बालिग होने तक ही रहता है।

अन्नोबान—यह गिनीकी खाड़ीका एक द्वीप है जो आजकल स्पेनके अधिकारमें है। यह द० अ० १°२४ और पू० रे० ५°३५ में स्थित है। इसकी लम्बाई चार मील, चौड़ाई दो मील और क्षेत्रफल ८ वर्गमील है। कहीं कहींपर इसकी ऊँचाई ३०० फीट तक है। इसमें दीवारके समान लगातार पर्वत चले गये हैं और इसकी कन्दरायें अत्यन्त मनोहर हैं। अतः यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। अधिक बस्ती नीग्रोंकी है जो लगभग ३००० के हैं। ये रोमन कैथोलिक धर्मको मानते हैं। इसका मुख्य नगर तथा गवर्नरके रहनेका स्थान सेन्ट ॲन्टोनी है। 'नागर बाड़ा' बन्दरगाह सुरक्षित तथा काम चलाऊ अच्छा है। इधरसे जानेवाले जहाज पानी इत्यादिकेलिये यहाँ लंगर डालते हैं। पहले पहल इस टापूका पता १ली जनवरी स० १४७३ ई० को पोर्तुगीज लोगोंने लगाया था। वर्षारम्भमें पता लगानेके कारण इसका नाम अन्नोबान [अर्थात् नया वर्ष] रक्खा गया था। सन् १७७८ ई० में इस टापूके

साथही साथ फर्नां डोपो भी पोर्तुगीजने स्पेन को दे डाला था। पहले तो यहाँके निवासियोंका स्पेन वालोंसे युद्ध हुआ किन्तु इसी शर्त पर शीघ्र ही सन्धि हो गई कि तद्देशीय निवासियोंमें से पाँचके द्वारा टापूका सञ्चालन होता रहे। १६वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें यहाँ स्पेनकी सत्ता फिरसे पूर्व रूपसे स्थापित हो गई।

अह्लिल वाड़—गुजरात प्रान्तमें अन्हिलवाड़ एक प्राचीन राज्य है, जिसका नामकरण उसकी राजधानीके नामपर हुआ था। प्राचीन अन्हिलवाड़, आधुनिक बड़ौदाके पट्टण या अन्हिलवाड़ पट्टण शहरके किंचित् वायव्य दिशा में स्थित था। इस राज्यका संस्थापक वनराज नामक पुरुष था। कुमार पाल चरितमें अन्हिलवाड़का वर्णन पाया जाता है। उसमें लिखा है कि उसका विस्तार १२ कोसमें था। उसमें नगरके ८४ बाजारों, चांदी सोने की टकसालों और राजमहलोंके वैभवका वर्णन मिलता है। नगरमें असंख्य न्यायालय थे, जिनका संचालन सुचारु तथा सुव्यवस्थित रूपसे होता था। सहस्त्रों मन्दिर तथा पाठशालायें थीं। वृक्षोंकी सघन छायामें वेद विषयक वाद विवाद होता था नगरमें प्रतिदिन सहस्त्रों रुपयेकी आय थी। उक्त पुस्तकमें उपर्युक्त विषयोंके वर्णनके अतिरिक्त कितनी ही दूसरी बातोंका वर्णन अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक भांतिसे हुआ है। (फोर्ब्स)

इद्रीस नामक विद्वान ने ११५३ ई० में अन्हिलवाड़का वर्णन इस प्रकार किया है, "नहरवाल (अन्हिलवाड़का मुसलमानी नाम) में बलहार नाम का एक राजा राज करता है। वह बुद्धका उपासक है। उसका मुकुट सोने का है। वह मूल्यवान वस्त्र धारण करता है। उसके पास हाथियोंका एक समूह ही है। राजाकी शक्ति हाथियों पर निर्भर है। सप्ताहमें एक बार वह वस्त्राभूषण विभूषित सौ सुन्दरियोंके साथ आखेट को निकलता है। मंत्री तथा सेनापति केवल युद्धके अवसरपर ही उसके साथ रहते हैं। अनेक मुसलमान व्यापारी भी नगरमें दिखलाई पड़ते हैं। राजा तथा उसके कर्मचारी उनको ससम्मान आश्रय प्रदान करते हैं। हिन्दू स्वभावतः न्यायप्रिय होते हैं। वे अपनी राजभक्ति तथा सत्यप्रियताके लिये प्रसिद्ध है। वे समृद्धि शाली हैं। उनकी प्रमाणिकता का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि यदि महाजन अपने ऋणीस ऋण वसूल करने की ठान ले तो ऋणी बिना ऋण चुकाये या महाजन को संतुष्ट किये अपने स्थानसे न हटेगा। लोग अन्न, शाक, या स्वयं मरे हुये जानवरों का मांस खाते हैं। वे अहिंसक हैं। वे गाय और बैलको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं।

प्रचीन अरबी ग्रंथकारोंने भी अन्हिलवाड़के बारेमें लिखा है। वे इसको भिन्न भिन्न नामों आम्हल, फाम्हल, काम्हस, कामुहुल, माम्हुल, नहलवार, नहरवाल—द्वारा सम्बोधित करते हैं।

इस्तख्री—(सन् ६५१) पहला अरबी विद्वान है जिसने इसको 'आम्हल' करके सम्बोधित किया है और इसके बारेमें लिखा है। इसके पहिले किसी भी अरबी भूगोलवेत्ता का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। कदाचित् १० वीं शताब्दीमें इस राज्यने इतनी उन्नति की हो कि दूसरों का ध्यान इसको ओर आकृष्ट हुआ हो। इस्तरखीने इसे हिन्द (गुजरात) का एक नगर कहकर इसका वर्णन किया है। इब्निहोकल (सन् ६५८—७६) लिखता है कि, 'फाम्हल' एक मजबूत तथा बड़ा नगर है। इसमें एक "जामा" है। अलबरूनीका भी ध्यान इस ओर गया था। इद्रीस इसको माम्हल कहकर पुकारता है, और लिखता है कि, "यह हिन्द (गुजरात) तथा सिंधके बीच स्थित है;—तथा घोड़े और ऊंट रखने वालों का निवास स्थान है।

११वीं शताब्दीके इतिहासकारोंने, जो महमूद के राज्यकालमें हुये थे, कई बार अन्हिलवाड़ का उल्लेख किया है। फरिश्ता लिखता है कि अन्हिलवाड़की विजयके पश्चात् जब महमूदने सोमनाथ का नाश किया तो उसका विचार था कि वह अन्हिलवाड़ को अपनी राजधानी बनावे क्योंकि यहांपर सोने की खाने थी और सिंहलद्वीपकी भांति यह भी अपने रत्नोंके लिये प्रसिद्ध था। उसकी इच्छा पूरी न हो सकी; उसके मंत्रियोंने अनेक बाधायें डालीं। किन्तु अब भी नगर की दो मसजिदें महमूदके प्रेमके स्मारक स्वरूप खड़ी हैं।

फरिश्ताके बाद नूरउद्दीन मुहम्मद उफी (सन् १२७७ ई०) ने अन्हिलवाड़ का उल्लेख किया है। उसने अन्हिलवाड़के जयराजा के समयका वर्णन किया है। उक्त इतिहासमें यह भी उल्लिखित है कि द्वितीय मूलराजने सन् ११०८ ई० में मुहम्मद गोरीको पराजित किया। ताजुल मआसिरने लिखा है कि इसी पराजय का बदला कुतुबुद्दीन ऐवकने सन् १२६७ ई० में लिया। सुल्तान नासिरुद्दीन कबाच (सन् १२४६-६६ ई०) ने देवलसे अपने

सेनापति खासखाँ को नहरवाल भेजा; जहाँसे वह अतुलित संपत्ति तथा सहस्त्रों कैदी लाया। सुल्तान अलाउद्दीनने सन् १३०० ई० में गुजरात जीतने पर, अपने सरदार उलूखखां को सोमनाथ का नाश करने को भेजा। खाँने अलाउद्दीन की आज्ञानुसार सोमनाथका नाश किया और उसकी सबसे बड़ी मूर्ति अलाउद्दीनके पास भेज दिया।

चावड़ा घराना—पंचासरका राजा जयशिखर कल्याणके सोलंकी राजासे युद्ध करते हुये मारा-गया, तब रूपसुन्दरी प्राणरक्षणार्थ अपने भाईके साथ जंगलमें भाग गई। इसके पुत्र बनराजने अनेक वीरता-सूचक कार्य किये और चंपानेर तथा अन्हिलवाड़ नामक दो नगर बसाया। अन्हिलवाड़ का नामकरण उस कर्मचारीके नाम-पर हुआ, जिसने इस स्थानको चुनकर यह नगर बसाया। यही वनराज चावड़ा घराने का मूल पुरुष है।

एक दूसरी दन्तकथा ई० अँ के स० १८७५ ई० की पुस्तकमें दी हुई है। बनराजका पूर्वज बेणीराजाका पिता बचराज था। बचराज दीव गढ़पर राज्य करता था। उसके पुत्र बेणीराजाने समुद्रकी शपथ लेकर एक व्यापारीको धोखा दिया था, इसके फल-स्वरूप समुद्रने दीवगढ़को बहा दिया। राजाकी गर्भवती स्त्री वहासे भाग गई। चांदरमें रानीने एक पुत्र प्रसव किया। जिसका बनराज नाम पड़ा। इसको अन्हिल गड़ेरियाने पट्टनमें गड़ा हुआ धन दिखलाया, जिससे उसीके नामपर बनराजने 'अन्हिलवाढ़' नामक नगर बसाया।

आईने अकबरीमें इस वंशके सात राजाओंके नाम दिये हैं—रामराज, जोगराज, खेम या भीम-राज, पिथु, विजय सिंह, रावत सिंह और साँवल सिंह। सांवलसिंहने सोलंकी घरानेके मूलराज को अपना राज्य दे दिया। स०९४२ई० में बनराज के गुरु तथा माताके प्रयत्नसे पंचासरमें पारस-नाथ का मन्दिर बना; जिसकी मूर्तिसे यह प्रगट होता है कि राजाने श्रावकोंको आश्रय दिया था। किन्तु पट्टनकी दो मूर्तियाँ—उमामहेश्वर तथा गणेशजीको देखनेसे यह ज्ञात होता है कि उसकी कृपा ब्राह्मणोंपर भी थी। इन मूर्तियोंपर बनराज तथा नगरके स्थापनाका वर्ष सं० ७०२ ई० खुदा हुआ है। फोर्ब्स कहता है कि यहांके प्राचीन राजा उदार थे। उन्होंने कभी किसी मत विशेषके प्रचा-रकोंकी हानि नहीं की। यहां शैव तथा जैन प्रचारक शान्ति पूर्वक अपने अपने मतका प्रचार करते थे।

सोलंकी वंश—चावड़ा वंशके पश्चात् सोलंकियों ने यहां अपनी राज सत्ता स्थापित की। प्रथम सोलंकी राजा मूलराज था। इस वंशका द्वितीय राजा चामुण्ड था। इसीके राजकालमें गजनीके महमूदने अन्हिलवाड़ पर धावा किया। चामुण्ड को पराजित कर वह सीधा सोमनाथ पर चढ़ दौड़ा, जहाँ वल्लभसेन तथा भीमदेव नामके दो राजपुत्रोंने उसका सामना किया, पर वे भी परा-जित हुए। सोमनाथसे लौटकर महमूदने वर्षाके चार मास अन्हिलवाड़में ही विताये। महमूदने दुलभको यहांका मांडलिक बनाया। दुलभका बन-वाया हुआ दुलभ सरोवर यहाँ वर्तमान है।

उपरोक्त लड़ाईमें वल्लभ तो महमूदका कैदी होगया था, किन्तु भीमदेव स्वतन्त्र ही रहा और इसने महमूदको अत्यन्त कष्ट पहुँचाया। भीम-देव, उसके पुत्र करणदेव तथा उसके पौत्र सिद्ध-राज तथा जयसिंहके समय सोलंकी राज्यका विस्तार बहुत बढ़गया था। इसके अन्तर्गत दक्षिण में कोल्हापूरसे लेकर मालवातक (संभवतः गंगा तट तक) की सम्पूर्ण भूमि थी, जिसमें १८ रिया-सते थीं।

सिद्धराजके बारेमें अनेक किंवदन्तियां प्रच-लित हैं। इसके पश्चात् कुमारपालने राज्यारोहण किया। यह जैन आचार्य हेमचन्द्रका शिष्य था। यह कहा जाता है कि इसने कुमारविहार नामक पारसनाथका मन्दिर बनवाया। एक बार स्वप्नमें महादेवजीने अन्हिलवाड़में आनेका विचार प्रगट किया, इसलिये उसने एक मन्दिर वहां भी बनवाया। इसीके पुत्र लवणप्रसादके वंशज बघेल वंशी नामसे गद्दीपर बैठे।

भीमदेव द्वितीयके समयमें सोलंकी वंशका अन्त हुआ। इसने ११९४ ई० में कुतुबुद्दीनको पराजित कर उसे अजमेरमें रोक रखा। किन्तु आगे चलकर कुतुबुद्दीनने नगरके समीप ही उसके सेनापति जीवनरायको पराजित किया, जिस पर भीमदेव राजधानीसे भाग गया। एक बार फिर ११९६ ई० में अपने सब साथियोंको एकत्रित करके उसने मुसलमानोंका सामना किया।

मुसलमानोंने गुजरातको नष्ट कर अन्हिल-वाड़ पर अधिकार जमाया और 'नहरवाल' नामसे उसे पुकारने लगे।

बाघेलवंश—मुसलमानोंको शीघ्र ही अन्हिल-वाड़ छोड़ना पड़ा, किन्तु इसकी शक्तिका दिन प्रति दिन ह्रास होता गया। बाघेल राजाओंकी स्वतन्त्रता (१२१४-१३०३) लगभग एक शताब्दी

रही। किसी २ के मतानुसार बाघेलोंने ११९६-१३२२ ई० तक राज्य किया। इसी बीच मूलदेव, विसलदेव, भीमदेव, अर्जुनदेव, सारंगदेव, और करण नामके ६ राजा हुए। १२९७ ई० में अलाउद्दीन के सेनापति अलफखाँने करणको पराजित किया, जिस पर वह देवगढ़के राजा रामदेवकी शरणमें गया। पर दुर्भाग्यने पीछा न छोड़ा। सुल्तानने उसकी स्त्री देवलरानीको पकड़ कर हरममें रख लिया और बादमें उसकी पुत्रीको भी पकड़वा मँगाया और अपने पुत्रका ब्याह उससे कर दिया।

बाघेलवंशके साथ ही अन्हिलवाड़ राज्य तथा नगरका भी नाश हुआ। विग्जने 'गुजराष्ट्र' में लिखा है कि तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें अन्हिलवाड़को नष्ट कर अलाउद्दीनने उसके मन्दिरोंको मिट्टीमें मिला दिया। शहर पर उसने गदहेका हल घुमाया, तब उसको शान्ति मिली। इसके पश्चात् अन्हिलवाड़का इतिहास वर्तमान पट्टन नगरका इतिहास है। अतः वह इतिहास पट्टन नामक शीर्षकके नीचे दिया जाता है।

[संदर्भग्रन्थ-वाँ. गॅ. हाँ. ७; कुमार पाल चरित, आइने अकबरी तथा अन्य ग्रंथ]

अन्होनी—यह गाँव हुशंगाबाद जिलेमें है, यहाँ पर एक गरम पानीका झरना है। यह झरना महादेव पहाड़के ठीक उत्तरमें है। इस पहाड़से धेनवा तथा नर्मदा नदी अलग अलग होकर बहती हुई गई हैं। इस गरम पानीसे शरीर परके फोड़े तथा त्वचाके रोग अच्छे होते हैं। इसी कारण यहाँ एक मेला लगता है। इस गाँवके आग्नेय दिशाकी ओर १६ मीलकी दूरी पर एक दूसरा गरम पानीका झरना है। इसका नाम महाल झील है। इसका पानी इतना गरम है कि इसमें हाथ डालना भी मुश्किल होता है।

[वॉ० गॅ० १८७० पु० ४]

अपकृत्य—(Tort)-यह कानून शास्त्रका एक पारिभाषिक शब्द है। 'अपकृत्य' उस कार्यको कह सकते हैं जिसके विरुद्ध सिविलकोर्टमें एक व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके विरुद्ध दावा करनेका अधिकार तो हो, किन्तु यह अधिकार किसी पूर्वकृत इकरारनामे (Contract) के भङ्ग करनेके आधार पर न हो। यह विधान इंगलैण्ड, उसके आधीन देशों तथा युनाइटेड स्टेटस् आफ अमेरिका इत्यादि देशोंमें पाया जाता है। मुख्यतः उन देशोंमें जहाँ इङ्गलैण्डके कामन लॉ (Common Law) के भित्ति पर विधान रचे गये हैं, वहाँ इसका विकास अधिक देख पड़ता है। किसी भी कृत्यको 'अपकृत्य' के शीर्षकके नीचे आनेके लिये केवल यही आवश्यक नहीं है, कि केवल किसी नियमका उल्लंघन किया गया हो, किन्तु यह भी नितान्त आवश्यक है कि किसी भी व्यक्ति-विशेष को अपनी व्यक्तिगत हानिके लिये न्यायालयके सम्मुख वादी बनकर आनेका अधिकार भी प्राप्त हो। यदि किसी व्यक्तिकी ऐसी हानि नहीं हुई है जो उसके व्यक्तित्वसे सम्बन्ध रखती है किन्तु कार्यकर्ता नियमानुसार दण्डभागी हो भी सकता है तो भी वह 'अपकृत्य' नहीं कहलायेगा। बहुधा आर्थिक दण्ड से ही अपकृत्यका उचित न्याय नहीं होता, अतः समानता-व्यवहार विधान (Law of Equity) भी व्यवहारमें लाया जाता है। विवाह-सम्बन्धी (Matrimonial courts) अथवा सामुद्रिक (Admirality) न्यायालयोंके अतिरिक्त 'कामन लॉ' न्यायालयोंमें आवश्यकतानुसार 'अपकृत्य' का दावा किया जा सकता है।

सभ्य राष्ट्रके प्रत्येक मनुष्यको यह अधिकार होता है कि वह अपने शरीर, संपत्ति तथा सम्मान की रक्षा करें; उसका यह भी कर्तव्य होता है कि वह अपने उन कार्योंको अत्यन्त सावधानीसे करे, जिनसे दूसरोंको किसी भी प्रकारकी हानि पहुँचनेकी संभावना हो। यदि किसीने जान-बूझ कर अथवा अनजानमें किसीको हानि पहुँचाई, तो उसे न्यायालयमें अपने कार्यके औचित्यका समर्थन करना पड़ता है और यदि न कर सका तो दंड भोगना पड़ता है। ऐसे समय यह प्रश्न नहीं उठता कि उसका अपराध किस नियमके अनुसार सिद्ध होता है। अपकृत्य विधानका सबसे अधिक उपयोग स्वामी (Employer) तथा सेवकों (Employee) के झगड़ों में हुआ है। प्रत्येक स्वामी (Employer) अपने कर्मचारियों के लिये उत्तरदायी होता है। यदि कर्मचारी द्वारा किसी व्यक्तिको क्षति पहुँचती है तो उसके लिये स्वामी पर दावा किया जा सकता है। परंतु स्वामी अपने कर्मचारियोंके कार्योंका उत्तरदायी उसी समय तक रहता है, जब तक वह उसका, उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है। इससे एक लाभ यह हुआ है कि अब प्रत्येक व्यक्ति क्षति पहुँचाने वाले कर्मचारीके स्वामीको प्रतिवादी बना सकता है, परन्तु यदि एक ही कार्यालयके एक कर्मचारीको दूसरेसे क्षति पहुँचती है तो उसके लिये स्वामी उत्तरदायी नहीं होता, यदि वह क्षति किसी ऐसे कारणसे नहीं हुई, जिसका सम्बन्ध

स्वामीसे था। पहले यह नियम दोषपूर्ण था, जिसका सुधार १८८० ई० में 'स्वामीके उत्तरदायित्वका विधान' (Employer's liability act) तथा१६०६ ई० में 'मजदूरोंको मिलने वाले हरजानेका विधान' (Work-man's Compensation act) द्वारा हुआ। इन सब कानूनोंसे कुछ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है कि बीमेको प्रथाको बाध्य होकर काममें लाना पड़ता है।

प्रत्येक मनुष्यको तथा विशेष रूपसे स्वामियोंको, अपना मकान इत्यादि इस दशामें रखना चाहिये कि जिससे उसका उपयोग करनेवालों, उसमें काम करनेवालों तथा उसके निकटसे जानेवालोंको कोई हानि न पहुँच सके। स्वामीको अत्यन्त साहसके कार्योंकेलिये विशेष रूपसे उत्तरदायी होना पड़ता है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं तथा अधिकारियोंको भी अपना उत्तरदायित्व पूर्ण रूपसे समझ लेना पड़ता है।

अपकृत्योंके वर्गीकरणमें किसी विशिष्ट तत्वों द्वारा उसका निश्चय करना सामान्य कार्य नहीं है। अतः इसका वर्गीकरण अत्यन्त कठिन कार्य है। यदि हम वादीके दृष्टिकोणसे उसपर विचार करते हैं, तो प्रतिवादीको भी नहीं भूलना चाहिए और प्रतिवादीके दृष्टिकोणसे विचार करते समय वादीको भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि प्रतिवादीकी ओरसे उसपर विचार करें तो हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने कार्योंके स्वाभाविक तथा संभवनीय परिणामका उत्तरदायी है। यदि किसी व्यक्तिको पहिलेसे अपने कार्योंका परिणाम मालूम होता है, तब तो वह और अधिक उत्तरदायी समझा जाता है। कुछ विशेष प्रकारके व्यवहारोंकी उपयुक्तता अथवा अनुपयुक्तता पर विचार करनेकेलिये कुछ विशेष प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। धोखा देना तथा फुसलाना ऐसे ही व्यवहार होते हैं। लेकिन यदि मनुष्यके शरीर, सम्मान तथा सम्पत्ति पर चोट पहुँचती है तो वहाँ पर विशेष प्रकारके ज्ञान तथा आन्तरिक भावके जानने (Motive) की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे अपराध अक्षम्य होते हैं। उसका उद्देश्य (Motive) चाहे अच्छा हो या बुरा उसपर अपराध आरोपित हो ही जाता है। लेकिन यदि कोई कार्य विधान-विरुद्ध नहीं है, तो उसके करते समयका उद्देश्य चाहे जैसा भी क्यों न हो, वह कार्य गैरक़ानूनी नहीं हो सकता। इस नियमका उपयोग सर्वसाधारणमें विशेष रूपसे होता है। यदि मनुष्य अपने कार्यों के परिणामका उत्तरदायित्व स्वीकार कर लेता है अथवा वह सिद्ध हो जाता है तो हरजानेके धनका निश्चय करते समय उसके भीतरी उद्देश्य पर विचार किया जाता है, यदि अन्तर्गत उद्देश्य बुरा है तो हरजानेका परिमाण अधिक होता है। ऐसे समय वादी तथा प्रतिवादीके व्यवहारों पर भी ध्यान रक्खा जाता है।

किन्तु देशके उचित प्रबन्ध तथा न्यायके लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि कुछ ऐसे कृत्योंको भी गणना इस श्रेणीमें नहीं करना चाहिये। ऐसे समय जिस स्थिति विशेषमें वे कार्य किया गया है उसपर भी ध्यान देना अनिवार्य है। यदि प्रतिवादीके विरुद्ध न्यायअधिकारोंको कार्यरूपमें परिणित करते समय अथवा उस कार्यके उपयुक्तताके कारण किसीको हानि पहुँचती हो तो चाहे हरजानेकी व्यवस्था हो या न हो, उसका कार्य देशके विधानके प्रतिकूल नहीं समझा जाता। लेकिन इस विधानके विविध प्रकारके अङ्गोंका ज्ञान वकीलोंको ही रहता है। सार्वजनिक अधिकारोंकी रक्षामें बहुत सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। यह निश्चय करना कि एक मनुष्यका स्वातंत्र्य, दूसरेके स्वातंत्र्यसे किस भाँति मर्यादित रहे, अत्यन्त कठिन कार्य है।

व्यापारिक प्रतियोगिताके विषयमें, जिसके कारण कितने व्यापारी डूब जाते हैं, और दूसरे करोड़ोंके स्वामी हो जाते हैं, संयुक्तराज्य अमेरिका (United States of America) के सुप्रीम कोर्टके न्यायाधीश श्री होम्सने कहा है कि प्रत्येक व्यक्तिको व्यापारिक प्रतियोगिताका पूर्ण अधिकार है। ऐसा अधिकार केवल व्यापार संचालनमें ही नहीं प्राप्त होता, बल्कि यह निश्चय करते समय भी प्राप्त होता है कि किसके साथ तथा किस परिस्थितिमें हमें प्रतियोगिता करनी चाहिये। यदि कोई मनुष्य अपने को सुखी करनेके लिये सर्वसाधारणके अधिकारोंका उपयोग करता है तथा अपने व्यवसाय के संचालनमें उन अधिकारोंका प्रयोग करता है, तो वह न्यायालयके सम्मुख दोषी नहीं ठहरता। किन्तु स्थावर सम्पत्तिके स्वामियोंको कुछ हद तक एक दूसरेके सुभीतेका ध्यान रखना चाहिये।

वादोके दृष्टिकोणसे विचार करते समय अपकृत्योंका चार प्रकारसे वर्गीकरण किया जा सकता है। कुछ अपकृत्य व्यक्तिगत होते हैं। इसमें शारीरिक चोट, मानहानि, व्यर्थका प्रतिबंध (False Imprisnment), फुसलाकर कुटुम्बके किसी

सदस्यको भगा ले जाना इत्यादि अभियोग आते हैं। दूसरे प्रकारके अपकृत्य उन्हें कह सकते हैं जब स्वामित्व तथा वैसे ही दूसरे अधिकारोंमें बाधा पड़ती है। इसमें दूसरेकी भूमि पर विना आज्ञा लिये जाना, उनपर कब्जा कर लेना, तथा सम्पत्ति सम्बन्धी दूसरे वैयक्तिक अधिकारों पर धक्का पहुँचाना इत्यादि अपराध सम्मिलित हैं। तीसरे प्रकारका अपकृत्य उसे कह सकते हैं जब किसीके इस्टेट (Estate) के विरुद्ध कार्य होता है। इस्टेटका व्यापक अर्थ यहाँ पर लिया गया है, जिसका अर्थ होता है—जीवित व्यक्तिका स्वास्थ्य, सुख तथा लाभ। इसमें कपट, वैर वश झूठा दावा करना तथा मानहानि सम्मिलित है। चौथे प्रकारके अपकृत्यमें जो अपराध आते हैं वह है शरीर, सम्पत्ति अथवा इस्टेट (Estate) को हानि पहुँचाना, चाहे उस कार्य विशेषसे इन सबको हानि पहुँचे अथवा इनमेंसे किसी एकको। असावधानीसे उन नियमोंका उल्लङ्घन करने से जो पड़ोसके तथा अन्य लोगोंके सम्बन्धमें बनाये गये हैं, शरीर, सम्पत्ति तथा इस्टेटको हानि पहुँचने से मनुष्य अपकृत्य का दोषी हो जाता है।

केवल ऐतिहासिक परिस्थितियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली परिस्थितिको छोड़कर अन्य कार्य-पद्धतियोंमें 'अपकृत्य' के विधानसे कहीं अधिक लाभदायक सम्पत्ति सम्बन्धी विधान हो सकते हैं। सम्पत्ति सम्बन्धी विधानसे अपनी स्थावर सम्पत्ति फिर मिल सकती है यदि वह अन्याय से किसी दूसरेके अधिकारमें चली गई हो। यहाँ रोमके विंडकेशियो (Vindicatio) के अनुसार खुली तौरसे सम्पत्तिका अधिकार स्थापित नहीं हो सकता। असावधानी तथा उपद्रवके विधान भी नये हैं। सबसे नया विधान 'अनुचित प्रतियोगिता विधान' (Unfair Competition) इसका महत्व बढ़ रहा है। आधुनिक 'अपकृत्य' तथा रोमके 'एक्सडेलिक्टो'(Ex-delicto) और क्वासिएक्सडेलिक्टो (Quasi exdelicto) में बहुत साम्य है। इससे प्रकट होता है कि यदि 'अपकृत्य विधान' उनसे लिया नहीं गया है, तो उनपर अवलम्बित तो अवश्य है।

अपकृत्य तथा भारतवर्ष—अपराध सम्बन्धी (Criminal) विधान तथा 'अपकृत्य विधान' में मुख्य अन्तर यह है कि 'अपकृत्य' के लिये शारीरिक दंड नहीं मिलता, केवल आर्थिक दंड ही दिया जाता है। वह धन भी सरकारको न मिलकर वादी को मिलता है। भारतके स्मृति-कारोंके विचारसे 'न शरीरो ब्राह्मणे दंडः', अर्थात् ब्राह्मणको शारीरिक दंड नहीं देना चाहिये। पर ब्राह्मणोंको आर्थिकदंड भी नहीं दिया जाता था। स्मृतिकारोंने आर्थिकदण्डसे संचित द्रव्य कभी भी, 'अपकृत्य विधान' की भाँति, वादीको नहीं देनेको कहा है; सारा धन राज्यको प्राप्त होता था। भारतमें पहिले दीवानी तथा फौजदारी दो प्रकारके न्यायालय नहीं थे। सभी प्रकारके अभियोग एक ही न्यायालयके सम्मुख आते थे। इस प्रकार भारतमें 'अपकृत्य विधान' तथा 'अपराध सम्बन्धी विधान (Criminal Code) में कभी भी ऐसा अन्तर नहीं रहा, जैसा कि वर्तमान समयमें देखा जाता है। 'अपकृत्य' के विचार दीवानी अदालतमें होते हैं।

अंग्रेज़ी राज्यमें अपकृत्यका विधान—उपरोक्त वर्णनसे प्रगट है कि 'अपकृत्य विधान' भारतमें अंग्रेज़ी क़ानूनसे लिया गया है। पर पीनल कोड (Penal Code) की भाँति यह स्वतंत्र भाँतिसे कभी 'पास' नहीं किया गया। इसका स्वरूप दीवानी अदालतोंके दिये हुये फैसलोंसे क्रमशः निर्धारित हुआ, इसलिये इसमें कुछ इंगलैण्डके नियमोंसे भिन्नता मालूम होती है। उन्हीं भेदों पर प्रकाश डालनेका यहाँ प्रयत्न किया गया है।

ऐसे कृत्य जो 'अपकृत्य' के शीर्षकमें भी लाये जा सकते हैं, उनपर यदि वादी चाहे, तो फौजदारीमें भी मामला चलाया जा सकता है। अतः ऐसे कृत्योंका फैसला दोनों प्रकारके न्यायालयोंसे करा लेना ही उचित है। प्राङ्निर्णय (रेसजुडिकेटा) अथवा अन्तर भावना (मर्जर) के तत्वानुसार दोनों न्यायालयों के निर्णयमें समानता होनी चाहिये। यद्यपि यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है किन्तु प्राङ्निर्णयके तत्वको यहाँ लागू नहीं करना चाहिये। इससे यही तात्पर्य निकलता है कि एक ही अपराध पर दोनों अदालतोंमें मामला चलाया जा सकता है। भारतसे इंगलैण्डके नियममें अब भी एक विशेष अन्तर है। वहाँका अब यह नियम हो गया है कि बिना फौजदारीमें अभियोग चलाये, केवल दिवानीमें अपनी क्षतिपूर्तिकेलिये दावा नहीं किया जा सकता। इस विषयमें मद्रास हाईकोर्टका यह स्पष्ट निर्णय है कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि वादी पहले फौजदारी करके ही दिवानी कर सकता है। प्रत्येक जिले तथा ताल्लुकेके न्यायालयोंमें भी यही नियम चला आता है। कलकत्ता हाईकोर्टने इस सम्बन्ध में अपने कुछ अलग ही नियम बना रक्खे हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात जो ध्यानमें रखने योग्य है वह यह है कि यहाँके स्थानीय न्यायालय बहुत से व्यक्तियोंके सम्बन्धमें 'अपकृत्य' का फैसला नहीं दे सकते। उनको स्वयं ही यह अधिकार प्राप्त नहीं है। एक राजाके विरुद्ध दूसरे राजाके कृत्योंका निर्णय करनेका अधिकार यहाँ की दीवानी अदालतोंको नहीं है। बृटिश सरकार का किसी राज्य विशेषके साथ जो कृत्य होता है, उसपर भी यहाँके न्यायालय विचार नहीं कर सकते। यदि किसी राजाको गवर्नर-जनरल इन कौंसिलने पदच्युत कर दिया हो तो स्थानीय न्यायालय उसपर विचार करनेका अधिकार नहीं रखते। गवर्नर-जनरल, गवर्नर, तथा कौन्सिल और असेम्बलीके सदस्योंके विरुद्ध भी, उन कृत्यों के लिये जो उन्होंने उस पदकी हैसियतसे किये हों, विचार करनेका अधिकार यहाँके न्यायालयों को नहीं है।

[मानहानि, वायु तथा प्रकाश, ग्रंथकर्त्तत्व (Copy-right) इत्यादि अपकृत्योंके विशेष उल्लेखके लिये इन्हीं शब्दों पर लिखे हुए लेख देखिये।]

अपच—यह रोग पाचनशक्तिसे अधिक अन्न पेटमें पहुँचनेसे उत्पन्न होता है। प्रत्येक मनुष्यकी पाचनशक्ति, स्वास्थ्य, स्वभाव तथा प्रकृति भिन्न भिन्न होती है। जो अन्न और जिस परिमाणमें एकको अपच कर सकता है, दूसरेको उससे और उतने ही से कोई भी हानि नहीं हो सकती, किन्तु फिर भी बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जो प्रत्येक मनुष्य की पाचनशक्तिको शिथिल करते हैं, बहुतसे ऐसे नैसर्गिक नियम हैं जिनको उलंघन करनेसे पाचन-शक्ति हीन होती जाती है। जो मनुष्य स्वभावतः बड़े स्वस्थ तथा हृष्टपुष्ट होते हैं उनको तो इसका प्रभाव बहुत धीरे धीरे पड़ता है, किन्तु होता अवश्य है। और यदि निरन्तर ही इस ओर उपेक्षा करते रहते हैं तो अन्तमें वे भी अपचसे पीड़ित हो जाते हैं। किन्तु जो मनुष्य स्वभावतः ही कमजोर होते हैं, उनको तनिक भी असाव-धानीसे हानि उठानी पड़ती है। अधिक चटपटे मसालेदार तथा दाहोत्पादक भोजन करते रहने से धीरे धीरे पाचनशक्ति शिथिल पड़ती जाती है। आमाशयकी क्रिया ठीक न होने ही से अपच हो जाता है। अधिक भोजन, बर्फ, चाय, काफी, मद्य इत्यादिका अत्याधिक सेवन इस रोगके मुख्य कारण हैं। अपच होने पर खाया हुआ अन्न नियमित समयमें पचता नहीं है और पेटमें भारीपन मालूम हुआ करता है। जिस भाँति अति शारीरिक परिश्रमसे शरीरमें थकावट आकर शिथिल हो जाता है, उसी भाँति भूखे प्यासे बहुत परिश्रम करके भोजन करनेसे भी अजीर्ण हो जाता है।

लक्षण—भोजनके थोड़ी देर पश्चात् पेट फूलने लगता है जिससे मनुष्यको बेचैनी होने लगती है। कभी कभी पेटमें पीड़ा भी होने लगती है। रात्रि के भोजनके पश्चात् ऐसे रोगीको व्यवस्थित रूप से निद्रा नहीं आती, केवल तंद्रा रहती है। थोड़ी थोड़ी देरमें नींद खुलती रहती है, बराबर स्वप्न देखा करता है। नींद खुलने पर मुख सूखा रहता है। होंठ पर पपड़ी जमी रहती है। मन्द मन्द शिरमें पीड़ाका अनुभव करता है। हृदयकी गति अनियमित रहती है। प्रातःकाल सोकर उठने पर भी आलस्य बना रहता है, मुखका स्वाद बिगड़ा रहता है। कभी वमनकी प्रवृत्ति होती है जिसमें खट्टा पित्त तथा खाया हुआ अन्न निक-लता है। कभी कभी मनुष्यको इससे दस्त आने लगते हैं।

उपचार-यदि अपचके लक्षण सदा ही वर्त्तमान रहें तो समझना चाहिये कि रोगीको मन्दाग्नि हो गयी है। आरम्भमें अपच पर ध्यान न देने ही से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसका मुख्य कारण है आजकलका अनियमित नागरिक जीवन अनियमित आहार. विहार, शोक, चिन्ता, त्रास। तथा नैसर्गिक नियमोंका उल्लंघन ही इसका मुख्य कारण हो रहा है।

प्रथम तो यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि अपचके अतिरिक्त किसी और भी रोगका समावेश तो नहीं है। तदनन्तर यह देखना चाहिये कि रोगीने क्या खाया पिया है। केवल साधारण अपच तो भोजन न करने ही से स्वाभा-विक रीतिसे ही अच्छा हो जाता है, किन्तु यदि रोगीको पेटमें अधिक पीड़ा हो, चित्त घबराता हो तो ऐसे उपाय करने चाहियें जिससे रोगीको वमन हो जावे। गरम जलमें नमक डालकर पीने से सरलता पूर्वक वमन हो जाता है। अधिक प्यास लगने पर वर्फके टुकड़े देना चाहिये। जब तक अपचके सब लक्षण शान्त न हो जावें भोजन कदापि न करना चाहिये। बिना आव-श्यता हुए ही चूरन इत्यादिका सेवन न करना चाहिये।

आयुर्वैदिक ज्ञान—बाबरके हस्त लिखित ग्रंथों में (१५०) जठराग्निके चार भेद कहे गये हैं—(१) मन्द, (२) तीक्ष्ण, (३) विषम तथा (४)

सम। सुश्रुतमें (१-३५-३) भी इन्हीं भेदोंका उल्लेख किया है। सुश्रुतमें इन चारोंका विस्तृत वर्णन भी मिलता है। विषमाग्निमें चाहे अन्न-पाचनकी क्रिया ठीक भी विदित होती हो, किन्तु इससे मेदोवृद्धि, शैत्य, मलावरोध, अतिसार, पेट में बोझ, पेट का गुड़गुड़ाना इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं। तीक्ष्णाग्निमें खाया हुआ अन्न शीघ्र ही पचता हुआ मालूम तो पड़ता है, किन्तु साथ ही जलन, दाह, होठों पर पपड़ी, सूखापन तथा पित्तविकार उत्पन्न हो जाते हैं। मन्दाग्निमें अन्नपाचनकी क्रिया बड़ी शिथिल हो जाती है, पेटपर अफार मालूम होता है. सिर सदा भारी रहता है, खाँसी, कफ, पित्त, मुहमें लारका आना, शरीर-पीड़ा तथा वमनकी ओर प्रवृत्ति सदा बनी रहती है। स्थायी रूपसे अपच रहते रहते यह रोग हो जाता है। इस रोगके लिये वृन्द सिद्ध-योगमें हिंगुल–त्रिफला–मिश्रित गोलीका सेवन बताया है। बॉवर हस्त-लेख (२-५३-५५) में एक विशेष चूर्णका इसके लिये उल्लेख किया है जिसके सेवनसे मनुष्य शतायुको प्राप्त करता हुआ निरोग रहता है।

अपच बहुत अधिक जल पीते रहनेसे, अनि-यमित समय पर भोजन करने से, क्षुधा अथवा अन्य प्राकृतिक क्रियाओंका अवरोध करनेसे, असमय सोनेसे उत्पन्न हो सकता है (माधव ६३)। इसके सामान्य लक्षण आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, मलावरोध इत्यादि हैं। कफ दोष से आमदोषका प्रादुर्भाव होता है। इससे गाल तथा पलक सूज जाती है, खानेके साथही अन्तःक्षोभ उत्पन्न होने लगता है। विदग्ध दोषसे पित्त उत्पन्न होता है। इसमें तृषाकी अधिकता, मूर्छा स्वेद, दाह आदि होते हैं। (शार्ङ्गधर ६१-३ सुश्रुत ६-५६-१)

भयंकर अपच होनेसे भी मूर्छा, उन्मत्तवात, वमन, आलस्य, सिर घूमना इत्यादि विकार होने लगते हैं। इसीसे विसूचिका, अलसक, मला-वरोध, हिंगज्वर इत्यादि भयंकर रोग तक उत्पन्न हो सकते हैं। अतः आरम्भ ही से बड़ी साव-धानीसे रहना चाहिये। इस सम्बन्धमें विशेष ब्यौरेके लिये 'अग्निमान्द्य' पर लेख देखिये।

[सुश्रुत ६-५६ माधव ९४-६ बा० १८५, १९६, भा० २-२-२४]

अपदान—इस नामका पाली भाषामें एक ग्रंथ है। इसमें बुद्धकालके बौद्ध-सम्प्रदायके ५५० पुरुष तथा ४० स्त्रियोंके जीवनचरित्र दिये हुए हैं। यद्यपि यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है, तथापि थेरी गाथाकी टीकामें (Edward Muller's Edition) इसमें की ४० जीवनी उतारी गई है। उसमें ईसाके पूर्वकी तीसरी शताब्दीके तिस्स रचित 'कथा वत्थु' ग्रंथका उल्लेख मिलता है। इससे यह कहा जा सकता है कि बौद्धके बादके ग्रंथोंमें से एक वह भी है। इसके लिये अन्य प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। दीर्घनिकायमें ऐतिहासिक बुद्ध से पहले छः बुद्धों का वर्णन मिलता है। इसके बादके ग्रंथोंमें इसकी संख्या २४ देख पड़ती है, किन्तु अपदानमें तो ३५ तक संख्या पहुँच गई है। सम्भव है इसकी भिन्न २ कथायें भिन्न २ कालकी हों, किन्तु उपरोक्त प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि अनेक अन्य ग्रंथोंकी रचनाके पश्चात् ही ये कथायें बौद्ध-धर्मके अन्त-र्गत की गई हैं।

'विशुद्ध-जन-विलासिनी' नामक अपदानकी टीका उपलब्ध है। गन्धवंशके दो अवतरणोंसे प्रतीत होता है कि इसका टीकाकार बुद्धघोष रहा होगा।

'सुमंगल विलासिनी'-ग्रंथसे पता चलता है कि दीघ वालोंका मत था कि अपदान ग्रंथ 'अभि-धम्म पिटक' में का है, किन्तु मज्झिम वालोंका कथन था कि वह 'सुतन्त पिटक' में से है। इन दोनों सम्प्रदायोंमें जो मतभेद देख पड़ता है इससे भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह ग्रंथ बादका है। अपदानका अर्थ 'शुद्धाचरण, शूरकर्म' इत्यादि होता है। बहुधा अपदानोंमें नायक तथा नायिकाके वर्णनके पहले उनके पूर्व-जन्मका इतिहास दिया देख पड़ता है. तदन्तर उनका वर्त्तमान वर्णित रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अपदान जातकके ही समान वर्त्तमान तथा पूर्वकालका पुराण होता है। भेद केवल इतना ही होता है कि जातकमें किसी बुद्धका पूर्व इतिहास दिया रहता है और अपदान में अधिकतर 'अर्हत' का वर्णन देख पड़ता है।

ईसाकी पहली शताब्दीमें जब बौद्ध संस्कृतमें ग्रंथ रचते थे तो उस समय तो ये कथायें लोक-प्रिय थी हीं, केवल 'अपदान' का संस्कृत नाम 'अवदान' पड़ गया। आधुनिक समयमें बहुतसे अपदान भिन्न भिन्न भाषाओंमें अनुवादित देख पड़ते हैं। संस्कृत, तिब्बती, चीनी भाषामें अनेक के अनुवाद हो चुके हैं। इनमें 'अवदान-शतक तथा दिव्यावदान' प्रसिद्ध हैं। इन अवदानोंमें किसी अपदानसे कोई कथा अक्षरशः नहीं उतारी

गई हैं, बल्कि इनमें उन कथाओंका वर्णन रहता है जिनमें प्रचलित तत्व तथा विचार-धाराओंका समावेश रहता है। अनेक अवदानोंमें 'अर्हत' के चरित्र वर्णित हैं। सबसे बड़े 'महावस्तु अवदान' में बुद्धके पूर्वजन्मोंका ब्योरा दिया हुआ है।

[सन्दर्भ ग्रंथ—थेरीगाथा, मूलर-दी प्रोसिडिङ्ग आफ दी ओरिअण्टल कांग्रेस एट जिनेवा, गन्धवंश, अवदान-शतक, दिव्यावदान, ओल्डेनवर्ग-कॅटलौग आफ पाली मैनुस्क्रिप्ट (इण्डिया आफिस लाइब्रेरी), सुमंगल-विलासिनी (ह्रीस डेविस तथा कार्पेन्टर), महावस्तु (सेनार्ट)]

अपराजिता—इस बनस्पतिको संस्कृत भाषा में 'विश्नुक्रान्ता' कहते हैं। इसका पौधा बिल्कुल छोटा होता है। यह पृथ्वी पर लताकी भाँति फैल जाता है, किन्तु इसका विस्तार अधिक दूर तक नहीं होता। इसके पत्ते बारीक, लम्बे तथा पाण्डु रङ्गके होते हैं। फूल इसका गहरा लाल होता है, कुछ २ नील वर्णका समावेश रहता है। इसका विशेष उपयोग औषधिमें ही होता है। कँवल (पीलिया) रोगमें इसकी जड़ छाँछके साथ पिलाई जाती है। बवासीरके रोगीको इसकी जड़का रस घीके साथ मिलाकर देते हैं।

अपरादित्य—(प्रथम) यह कोंकनका शिलाहार वंशीय राजा था। उरणके समीप ११३८ ई० (शक १०६०) का जो शिलालेख मिला था, इसमें इसका उल्लेख मिलता है। काश्मीरके मखोंके श्रीकंठचरित्रमें डा० बुल्हरको जिस अपरादित्य का वर्णन मिला है, कदाचित् वह यही अपरादित्य है। इस पुस्तकका समय, डा० बुल्हरके विचार से, ११३५-११४५ ई० तकका हो सकता है। जिस अपरादित्यका उल्लेख श्रीकंठचरित्रमें आया है उसने सोपारा (सुर्पारका) से तेजकंठ नामक पंडित को अपने देशका प्रतिनिधि नियत कर काश्मीरके पण्डितोंकी सभामें भेजा था। यह पण्डितों की सभा काश्मीर के राजा जयसिंह (११२९-११५० ई०) के समयमें हुई थी।

[संदर्भ-ग्रंथ—ब्रॉ० ब्राँ० राँ० ए० सो० विशेष अंक १२-१८७७; बॉ० ग० ह्यॉ० १ पा० २]।

अपरादित्य—(द्वितीय) यह भी कोंकनके शिलाहार वंशका दूसरा राजा हो गया है। उस ओरके भूमिदान-सम्बन्धी पाँच शिला-लेख उपलब्ध हैं। उनमेंसे भिवण्डी ताल्लुकेका प्राप्त शिला-लेख ११८४ ई० (११०६ शक) का है, परल में जो शिलालेख मिला है, सम्भवतः वह ११८७ ई० (११०९ शक) का है। वसई ताल्लुकेमें प्राप्त दो शिला-लेखोंमें से एकका तो समय ११८५ ई० निश्चित है, किन्तु दूसरेका समय दिया हुआ ही नहीं है। इन्हीं शिला-लेखोंमें १२०३ ई०के माण्डवी के समीप मिले हुए केशीदेवके शिलालेखमें अपरार्कका वर्णन आया है। कदाचित यह वही अपरार्क होगा। केशीदेव अपरार्कका पुत्र था। याज्ञवल्क स्मृतिके मिताक्षर विधान पर को गई जो अपरार्क टीका है, उसका कर्त्ता यही अपरादित्य था। इस टीकाके अन्तमें इसका उल्लेख आया है जिससे यह विदित होता है कि वह शिलाहार घरानेका राजा था और १३वीं शताब्दी के आरम्भमें हुआ होगा। ११८७ ई० के परलमें मिले हुए शिलालेखसे पता चलता है कि यह उस समय अवश्य रहा होगा, क्यों कि उस लेखमें अपरादित्य ने अपने को महाराजाधिराज तथा कोंकनका चक्रवर्ती कह कर उल्लेख किया है। अतः ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि पश्चिमीय चालुक्य वंशके नाशके पश्चात् जब सब ओर निरंकुशताका डंका बज रहा था, उसी समयकी स्थितिसे लाभ उठा कर अन्य सामन्तोंके सदृश यह अपरादित्य भी स्वतन्त्र हो गया होगा।

[सन्दर्भग्रन्थ—बाँ० ग० ह्वा० १ पा० २ बाँ० ब्र० रा० ए० सो० ज० पु० १२ तथा विशेषाङ्क इ० अ० ९]

अपरान्तक—(अपरन्तिका) पश्चिमीय प्रांत अथवा सरहद पर रहने वाली जातियोंमें से यह भी एक प्रसिद्ध जाति थी। इसका 'अपरान्त्य' नामसे भी उल्लेख होता है। नासिकमें प्राप्त शिलालेखोंमें से एकमें इसका उल्लेख आया है, किन्तु यह स्पष्ट पता नहीं लगता कि यह शब्द किसी प्रदेश विशेषके लिये व्यवहार किया गया है अथवा वहाँके निवासियोंके लिये। इसका उल्लेख रुद्रदामनके जूनागढ़के मिले हुए शिला लेखमें भी मिलता है।

अशोक द्वारा शासित जातियोंमें यवन, कम्बोज इत्यादिके साथ इनका भी उल्लेख आता है। पं० भगवान लालजी का कथन है कि ठाना जिलेका सोपारा नामक जो गाँव है, वह अपरान्त-प्रदेश अथवा जातिका एक मुख्य स्थान रहा है।

अपस्मार—आयुर्वैदिक विवेचन—यह एक रोग है। हिस्टीरिया, मृगी इत्यादि इसीका रूपान्तर है। 'स्मृति भूतार्थ विज्ञानं अपस्तत् परिवर्जने' द्वारा इसकी परिभाषाकी गई है। अर्थात् जिस रोगमें स्मृतिका नाश हो जाता है, उसे 'अपस्मार कहते हैं। जब मनुष्यका शरीर तथा मन किसी अन्य व्याधिके कारण मलीन तथा जर्जर हो जाता है, अनियमित आहार-विहार द्वारा शक्ति

क्षीण हो जाती है, अथवा जब किसी विशेष चिन्ता भय अथवा शोकसे शरीर तथा चित्त दोनों ही दूषित रहने लगते हैं, तो उसका प्रभाव मनुष्यके मस्तिष्क पर भी पड़ता है, और यदि वह उसकी सहन-शक्तिसे अधिक हुआ तो मनुष्यको यह रोग हो जाता है। ऐसी अवस्थामें मनुष्य बिलकुल मूढ़ सा हो जाता है, तथा नाना प्रकारके उपद्रव करने लगता है, चैतन्यावस्थाका बिल्कुल लोप हो जाता है। वह दांत कटकटाने लगता है, अवसर मिलने पर काट भी खाता है, मुँहसे फेन तथा लार निकलने लगती है, भूमिपर हाथ पैर जोर-जोरसे पटकता है, शरीर धुनता है, और धीरे २ उसकी आँखें तथा भौं तन जाती हैं और भयंकर दीख पड़ती हैं। कुछ समय तक यही अवस्था रहनेके पश्चात् दोषका वेग कम पड़ने पर वह शान्त हो जाता है और धीरे-धीरे चैतन्यताको प्राप्त कर लेता है। इस रोगमें मुख्य बात यह है कि रोगीको इस बातका ध्यान बिल्कुल नहीं रहता कि वह कहाँ है कौन है, और क्या कर रहा है। मूर्च्छासे यह रोग भिन्न है। क्योंकि मूर्च्छा आने पर मनुष्य संज्ञाहीन होकर निश्चेष्ट भी हो जाता है और किसी भी क्रिया करनेमें असमर्थ हो जाता है।

इसके वैद्यक शास्त्रमें चार भेद किये गये हैं—[१] वातजनित, [२] पित्त-जनित, [३] कफ जनित तथा [४] सन्निपात-जनित। बात, पित्त, कफ, किसी एकके विकारसे भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है, अथवा इन तीनोंके दोष [सन्निपातिक] से भी हो जाता है।

इस रोगके साधारण लक्षण तो पहले ही से अनुभव होने लगते हैं। हृत्कम्पन, जड़ता, भ्रम, आँखोंके सामने अँधेरा दिखाई देना, चित्तमें घबराहटका अनुभव, आँखों का ऊपरकी ओर तनते हुए मालूम होना, कानमें भनभनाहट सुनाई देना, बैठे-बैठे पसीना छूटने लगना, इत्यादि क्रियाओंसे रोगीको इसका दौरा होनेका पहले ही से अनुभव होने लगता है। अपच, अरुचि, मूर्च्छा, शक्तिह्रास नींदका न आना, शरीर सदैव टूटते रहना, होठ तथा गला सूखते रहना, निद्रामें सदैव भयंकर स्वप्न देखते रहना, इत्यादि इस रोग होनेके सूचक हैं।

जिन रोगियोंको वात-विकारसे यह रोग उत्पन्न हो जाता है, उनका शरीर और विशेषकर पैर काँपने लगता है, बारम्बार मूर्च्छा आने लगती है रोने अथवा हँसने लगता है। उसकी आँखें भयंकर हो जाती हैं, मुखसे फेन निकलता है, शिरको हिलाने लगता है, चौपाये पशुओंकी भाँति चलनेका प्रयत्न करता है, दाँत काटता है, उसकी आकृति रुक्ष तथा भयंकर हो जाती है, प्यासकी अधिकता रहती है, इत्यादि इत्यादि।

कफ विकार द्वारा रोग उत्पन्न होनेसे कुछ कालके बाद रोगी मूर्च्छित हो जाता है, और बड़ी देरके बाद वह होशमें आता है। आरम्भमें ही थोड़ा हाथ पैर पटकता है मुखसे लार तथा फेन अधिक निकलती है। आँख, नाखून तथा मुख श्वेत पड़ जाते हैं। रोगीको स्वयं भी सब सफेद देख पड़ता है।

सन्निपातिक अपस्मार सबसे भयंकर समझा जाता है। इसमें उपरोक्त सभी लक्षण देख पड़ते हैं। इसका रोगी कठिनतासे ही साध्य होता है।

अपस्मारका किसी अंश तक एपिलेप्सी(Epilepsy)से सादृश्य कह सकते हैं, यद्यपि उचित तो यही कहना होगा कि एपिलेप्सी अपस्मारका एक भेद विशेष है। इसमें बहुधा रोगी आरम्भमें थोड़ी देर तक हाथ पैर पटक कर बेहोश हो जाता है। इस रोगमें यह आवश्यक नहीं है कि शरीर के किसी भागमें कोई विकार स्थायी रूपसे हो ही। ऐसे अनेक रोग हैं जिनमें शरीरके अभ्यन्तरमें कोई विकार न होते हुए केवल क्रियामें ही दोष देख पड़ता है। उन्मादवायु इत्यादि ऐसे ही रोगोंमें इसका भी समावेश किया जा सकता है। भीतरसे कोई सम्बन्ध न रहकर केवल व्यापार ही द्वारा यह रोग देख पड़ता है।

कारण—बहुधा पुरुषोंकी अपेक्षा यह रोग स्त्रियोंको विशेष रूपसे होता हुआ देखा गया है। कुल रोगियोंके विषयमें यदि ज्ञान प्राप्त किया जाय तो यह पता लगेगा कि इस रोगका प्रादुर्भाव ७५ प्रतिशत या तो बाल्यावस्थामें अथवा युवावस्थाके आरम्भमें ही हो जाता है। इस रोगका जड़से नाश होना बड़ा कठिन है; अतः देखा गया है कि जिनको एक बार भी हो जाता है वे सम्पूर्ण आयु भर इससे पीड़ित होते रहते हैं। किन्तु इससे मृत्यु बहुत कम होती है। अन्तमें मनुष्य किसी अन्य रोगसे पीड़ित होकर ही मरता है। इस रोगका सम्बन्ध वंश अथवा माता-पितासे बहुत सम्बन्ध रखता है। बहुधा ऐसा ही देखा गया है कि जिनके माता-पिताको यह रोग था उनके वंशजोंमें भी किसी-किसी हो जाता है। माता-पिताके अनेक दोषोंसे भी उनके वंशजोंको यह रोग हो जाता है। बहुधा माता-पितामें कोई रोग न होने पर भी बाल्यावस्थाकी कुवृत्तियों द्वारा,

अतिमैथुन, सुरासेवन इत्यादिसे इसका प्रादुर्भाव हो सकता है। अत्यन्त भय, निरन्तर मानसिक चिन्ता, सिरमें गहरी चोट लगना, विषम ज्वर दांतोंमें कीड़ी लग जाना इत्यादि भी इस रोगका कभी-कभी कारण होता है। बहुधा पहले पहल इस रोगका प्रारम्भ रात्रिमें ही होता है। जब यह रोग भयंकर रूप धारण कर लेता है तो इसमें दौरे और बेहोशी दोनों ही होते हैं। पहले तो मनुष्य हाथ पैर पटकता है तथा अनेक ऐसे ही उन्मादावस्थाके से कृत्य करता है। अन्तमें वह बेहोश हो जाता है।

इस रोगके दो भेद कर सकते हैं, जिनका वर्णन नीचे क्रमशः दिया जाता है—

सूचना—इसके अनेक भेद होते हैं। कभी-कभी हाथ, पैर, मुख सुन्न पड़ जाता है, दृष्टिभ्रम अथवा आंखोंके सामने जुगनु चमकने लगते हैं, अनेक रंग दिखाई देते हैं, चक्कर अथवा दम घुटने लगता है, एकाएक पसीना छूटने लगता है या जाड़ा मालूम होने लगता है, चित्तमें असावधानी व्याप्त हो जाती है।

बेहोशी—इसमें रोगी चाहे कोई भी कार्य करता रहे, एकाएक तबियत घबराकर वह शीघ्र बेहोश हो जाता है, हाथ पैरमें ऐंठन होती है, दांत बैठ जाते हैं, आंखें पथराई हुई देख पड़ती हैं, मुँहसे फेन तथा लार चूआ करती है, चेहरा स्याह हो जाता है, नथुने फूल जाते हैं। मल मूत्र ऐसी ही अज्ञान अवस्थामें हो जाता है।

इस रोगमें थोड़ी देर तक रोगी हाथ पैर पटकता है, और कभी-कभी तो रोगीके शरीरको इससे बड़ी हानि पहुँचती है। कभी-कभी चोट तक लग जाती है। इस सतत व्यर्थके परिश्रमसे होशमें आनेके पश्चात् रोगी बड़ा थकित सा देख पड़ता है।

लघु अपस्मार—एक दम बेहोशी प्राप्त होनेके अतिरिक्त अधिकतर रोगियोंको इस भेदमें कुछ भी नहीं होता। बोलते ही बोलते एकदम उसकी नजर स्थिर हो जाती है और कनीनिकाएँ विस्तृत होती हैं, रोगी कुछ न कुछ निरर्थक बड़बड़ाने लगता है, और बेसुध हो जाता है। उसके पश्चात् अपने चारों ओर क्या हुआ था इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। यदि रोगी भोजन करता हो तो एकाएक थालीमें या कटोरीमें अपनी उँगलिया घुसड़ने लगता है और कुछ सेकंड तक बेसुध रहता है। फिर पूर्व स्थिति प्राप्त होते ही अनुभवसे उसे अपनी गलतियें तथा विस्मृतिका स्मरण होने लगता है। तब वह, मुझे अब जरा चक्कर आ रहा है अथवा, मेरा सिर दर्द कर रहा है इसलिये मैं जरा लेट जाता हूँ, यह कहकर दूसरी ओर चला जाता है। अथवा पहले जो कुछ करता हो वही फिर करना आरंभ कर देता है। कभी-कभी इन रोगियोंको केवल चक्कर आना या एकदो दौरेका आकर हाथ पैर हिलाना अथवा मूर्छावस्था प्राप्त होना आदि कष्टदायक लक्षण होने लगते हैं, इनमेंसे कुछ चिह्न और लक्षण महापस्मारकी सूचना चिह्नोंके समान ही होते हैं।

अन्वापस्मार स्थिति—विशेषतः उक्त भेदमें जिस तरहके हाथ पैरोंके पटकनेका वर्णन किया गया है वह खतम होने पर यह स्थिति प्राप्त होती है। इस स्थितिसे मानसिक अवस्थामें विलक्षण फर्क पड़ जाता है। कुछ दिन तक उसे गूंगी आती है अथवा वह पागल सा हो जाता है। कभी कभी अज्ञान-वश वह कुछ ऐसा कर्म कर बैठता है जिनका उसे बादमें कोई भी स्मरण नहीं रहता। वह इधर उधर दौड़ता है तथा जो कोई उसे मिले उसे ही चपतें लगाना शुरु करता है; स्त्री रोगीतो अपने बच्चे तकको भी मार डालती है; इस तरह के रोगी चौर्यकर्म भी करनेमें नहीं हिचकते। एक समय एक न्यायाधीशने ऐसी स्थितिमें भरी हुई अदालतमें एक कोनेमें बैठ कर पेशाब किया था। इस मानसिक स्थितिका ज्ञान वैद्य, डाक्टर तथा वकीलोंको अवश्य ही होना चाहिये। लोग यह नहीं जानते कि उस मनुष्यकी रोगके कारण ही ऐसी मानसिक स्थिति होती है। इस कारण संभव है कि उस पर जानबूझ कर मारपीट करने का अथवा खून करनेका अभियोग साबित हो जाय। कभी इस रोगके साथ पागलपन, अतिराग, भ्रम और भास होता है। कभी लड़के, लड़कियाँ तथा स्त्रियोंको पहले इस प्रकारका अपस्मार होकर पश्चात् उसका उन्मादवायुमें रुपान्तर हो जाता है। कभी कभी ये दोनों भेद एक दूसरेमें मिश्र होते हैं; याने रोगीको प्रथम लघु अपस्मार होकर फिर बड़े पनमें महापस्मार होता है। कभी केवल सूचनावस्था ही रोगीको होती है, परन्तु ऐसा प्रायः कमही होता है।

इसके रोगी की अवस्था क्रमशः बदलती रहती है। पहले पहल तो दौरे महीनों तक भी नहीं आते, किन्तु ज्यों ज्यों रोग बढ़ता जाता है, इसका दौरा भी जल्दी जल्दी आने लगता है। कभी कभी तो प्रतिदिन अथवा दिनमें कई बार

तक दौरे होने लगते हैं। यदि दौरा कड़ा हो जाता है तो कुछ दिन तकके लिये रोगीको छुट्टी मिल जाती है। मद्य सेवन, अति मैथुन, अति अहार, मानसिक तथा शारीरिक परिश्रमके अधिकतासे दौरे अधिक होने लगते हैं। बहुधा देखा गया है कि रजस्वला कालमें स्त्रियोंको अधिक दौरे होते हैं।

उग्रापस्मार—जब रोगीको निरन्तर ही दौरे होते होते ज्वर आने लगता हैं, तो रोग असाध्य सा हो जाता है। उसमें बहुधा मृत्यु भी हो जाती है। देखा गया है कि जिन दिनों दौरे नहीं आते, रोगी हृष्ट पुष्ट तथा बिल्कुल स्वस्थ देख पड़ता है। किन्तु जब दौरे जल्दी जल्दी आने लगते हैं, तो रोगीकी अवस्था भी बिगड़ने लगती है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा तथा उदास हो जाता है। उसका मन तथा हृदय अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। उसकी बुद्धि तथा स्मरण शक्तिका नाश होने लगता है, और कभी कभी तो पागल तक हो जाता हैं। उग्रापस्मारके अतिरिक्त इस रोगसे मृत्यु कठिनतासे ही होती है, किन्तु दौरेमें बहुधा अन्य कारणोंसे रोगीकी मृत्यु तक हो जाती है। अचेत होनेके कारण बहुधा पानीमें डूब कर, ऊँचेसे गिरकर, आगसे जलकर, अथवा ऐसे ही अनेक कारणोंसे रोगी मर जाता है। पहलेसे कुछ अनुभव न कर सकनेके कारण अक्सर चलते चलते, साइकिल पर घूमते घूमते, भोजन बनाते बनाते तक दौरा हो जाता है, जिससे भयंकर परिणाम हो जाता है। ऐसा अनुभव है कि अनुभवेन्द्रिय अथवा मेंदूमें कुछ बिकार हो जानेसे यह रोग हो जाता है, क्यों कि इसीके विकारसे हाथ पैर पटकना संभव हो सकता है। बेहोशी होना भी इसी मतकी पुष्टि करता है।

रोग निदान—यदि रोगीको दौरेकी अवस्थामें देखा जाय तो रोगका निदान किया जा सकता है। बिना ध्यान पूर्वक देखे उन्माद अथवा इस रोगके दौरेमें सन्देह हो सकता है। उन्मादके दौरेमें रोगी किसी एकही क्रियाको बराबर करता रहता है, दौरा भी अधिक स्थायी होता है। यदि रोगीको शारीरिक पीड़ा पहुँचाई जाती है तो बह उसका अनुभव करता है। किन्तु इस रोगके दौरे में दाँत बैठ जाते हैं, चेहरा काला हो जाता है और मनुष्य अनुभव शून्य हो जाता है। बहुधा नीच प्रकृतिके मनुष्य स्वार्थ साधनके लिये इस प्रकारके ढोंग भी रचते है, किन्तु इसका पता बड़ी सुगमतासे लग जाता है। आँख इत्यादिको देखने से, सुघनी सुघानेसे अथवा शारीरिक पीड़ा इत्यादि पहुँचानेसे ढोंगीका पता सरलतासे लग जाता है।

रोगके अनेक कारण होते हैं, और सबसे पहले इसी बातका निश्चय कर लेना आवश्यक है कि रोगका मुख्य कारण, अथवा दौरे किस प्रकारके हैं। बहुधा इसका आरम्भ रातको सोते सोते भी होने लगता है और शुरूमें इसका पता भी नहीं रहता। ऐसी अवस्थामें यह पूछना चाहिये कि रोगीको सुप्तावस्थामें बिछौने पर ही तो मूत्र-त्याग तो नहीं होता है।

साध्यासाध्य बिचार—जिसको बाल्यावस्था ही से यह रोग हो जाय और युवा होने तक अच्छा न हो तो फिर अच्छा होनेकी बहुत कम आशा रह जाती है। यदि रोग बड़े होने पर ही आरंभ हुआ तो अच्छे होनेकी आशा की जा सकती है। यदि दौरे केवल दिन अथवा रात्रिको ही अथवा नियत समय अथवा अवधि पर आते हों, तो भी साध्य हो सकते हैं। जिन रोगियोंको मिश्रित दौरे आते हैं वे दुस्साध्य समझने चाहिये। जिस प्रकारके दौरेमें अनुभवशक्तिका पूर्णतया लोप नहीं हो जाता, वे भी सुसाध्य कहे जा सकते हैं। बहुतसे रोगी केवल नियमित जीवनचर्या करते रहनेसे भी रोगसे छुटकारा पा जाते हैं। दवाई से तो रोगी जड़से बहुत कम बिल्कुल अच्छे हो पाते हैं। यदि खानपान, मैथुन इत्यादिमें तनिक भी अनाचार हुआ तो ऐसे मनुष्योंको रोग फिरसे धर पटकता है।

औषधोपचार—औषधि से बहुधा तो दौरे में तात्कालिक लाभ पहुँचता है, किन्तु बहुत काल तक नियमित रूपसे चिकित्सा करते रहनेसे कभी कभी लाभ हो जाता है। इसके रोगियोंके लिये बहुत सी नैसर्गिक बातें भी औषधिके साथ साथ अत्यन्त आवश्यक है। उनको हलका तथा पौष्टिक भोजन व्यवहारमें लाना चाहिये। ताजा फलोंका अधिक सेवन करना चाहिये। सूर्य प्रकाश तथा शुद्ध वायु उनके लिये नितान्त आवश्यक है। यदि उनके नेत्र, दाँत, पेटमें कोई विकार हो तो उनका उपाय करना चाहिये। मांस मदिरा अथवा कोई भी उत्तेजक पदार्थ व्यवहार में न लाना चाहिये। बहुत अधिक भोजन न करना चाहिये। रात्रिका भोजन सोनेसे कमसे कम तीन घण्टे पहले करना चाहिये। पेट साफ रहना चाहिये। परिश्रम भी नियमित और हलका करना चाहिये। क्रोध, चिन्ता तथा उत्तेजनासे

बचना चाहिये। बहुतसे देशोंमें तो ऐसे रोगियों के रहनेका विशेष प्रवन्ध करके उनको बस्ती ही अलग बनाई गई है। उनके कार्य, जीवनचर्य्या इत्यादि सब पर ध्यान रक्खा जाता है। उनकी सुविधाका विशेष ध्यान रक्खा जाता है। बालक रोगियों पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

इस रोगमें औषधिसे अधिक आवश्यक नियमित रहन सहन ही है। सोडियम (Scdium) पोटेशियम(Potessium)स्ट्रानशियम (Strontium) अमोनियम (Amonium) इत्यादि औषधियाँ इसके लिये विशेष हितकारी हैं। अनेक रोगियोंको इससे लाभ होते देखा गया है। पोटेशियम ब्रोमाइड २०-३० ग्रेन तक पानीमें घोलकर देना चाहिये। कुछका मत है कि उपरोक्त तीनों औषधियोंको मिश्रित करके—सोडियम, पोटेशियम तथा अमोनियम—३० ग्रेन देनेसे अधिक लाभ होता है। महीनों अथवा वर्षों तक दवाईका प्रयोग करते रहना पड़ता है। निरन्तर सेवनसे दौरोंका अन्तर कम होने लगता है। दौरेका वेग भी कम होने लगता है और रहता भी कम देर तक है। यदि कुछ दिन औषधोपसेवनसे दौरे बन्द होते हुए मालूम भी पड़ें तो भी बन्द होनेके बाद कमसे कम दो साल तक निरन्तर इसका सेवन करते रहना चाहिये। यदि ब्रोमाइड अधिक दिया जाता है तो सुस्ती अधिक होती है, ऐसी अवस्थामें इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये। यदि रोगीको इससे अन्य कोई हानि देख पड़े तो बीच-बीचमें इसको मात्रा बन्द कर देनी चाहिये। ब्रोमाइडके दोषको मारनेके लिये ग्लिसरो फासफेट २०-३० ग्रेन तक मिलाकर देना चाहिये। कुचलेका सत (Iodide) भी बहुत कम मात्रामें दिया जा जा सकता है। इसको पानीमें भलीभांति घोल लेना चाहिये। इसमें एक प्रकारका विष होता है और यह बड़ी तीव्र औषधि है। अतः इसमें २, ३ बूँद लायकर आरसनिक (Liquor Arsenic) (सोमलविष) मिला देना चाहिये। नमक न खानेसे औषधिका गुण अधिक होता है। बीच-बीचमें आवश्यकतानुसार ब्रोमाइडके साथ अन्य औषधियां मिलाकर देनी चाहिये। वेलाडोना, जिंकसल्फेट, अक्साइड कैलशियम, ब्लैसिटेट, एन्टीपायरीन इत्यादि औषधियाँ भी लाभदायक होती हैं।

दौरेकी अवस्थाके प्रयोग—यदि दौरेमें हाथ पैर सुन्न पड़ने लगते हों तो हाथ पैर मलना चाहिये। इससे अक्सर दौरा रुक जाता है अथवा जल्दी ही दूर हो जाता है। यदि रोगी बुद्धिमान है तो उसको कुछ पहलेसे इसका अनुभव होने लगता है। ऐसी अवस्थामें पहले ही से सावधान हो जानेसे अथवा उपाय करनेसे भी दौरा रुक जाता है। कुछका मत है कि मानसिक शक्ति द्वारा भी दौरा रोका जा सकता है। चित्तको सावधान करके यह दृढ़ निश्चय करके कि दौरा नहीं ही होगा, किसी दूसरे प्रसन्न होने वाले विचारोंको हृदयमें स्थान दे। अमोनिया अथवा वाइट्राइड आफ आमिल सूँघनेसे भी बहुधा दौरा रुक जाता है अथवा उसका वेग कम हो जाता है। जिस स्थान पर भी दौरा हुआ हो, वहाँ से दौरेकी अवस्थामें रोगीको हटाना नहीं चाहिये, किन्तु अग्नि अथवा जलका भी ध्यान रखना चाहिये। आरामसे रोगीको लेटा देना चाहिये। शरीरके कसे हुए कपड़ों को ढ़ीला कर देना चाहिये। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि रोगी कोई शारीरिक चोट अपनेको न पहुँचा सके। यदि रोगीसे भय हो कि अपनी जीभ काट लेगा तो उसके जबड़ोंके बीच एक काग या लकड़ीका टुकड़ा लगा देना चाहिये। रोगीके मुँहपर पानीके छींटे देना चाहिये, सिर पर हवा करते रहना चाहिये और कोई तीव्र उत्तम सुगन्धि व्यवहारमें लाना चाहिये। महापस्मारमें ब्रोमाइड साल्टकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिये, और आवश्यकतानुसार १६ ग्रेन तक उसमें क्लोरल मिला देना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो मार्फिया या क्लोरोफार्मकी पिचकारी भी दी जा सकती है।

अपामिया—इस नामके अनेक शहर हैं।

(१) ओरोन्टेस नदीके किनारे यह बसा हुआ था। सिल्यूकिडी बंशीय राजाओं का खजाना यहां रहता था। सेल्युकस नेक्टरकी स्त्री अपामाके नामपर यह नगर बसाया गया था। सातवीं शताब्दीमें बादशाह खुसरूने इस नगर का नाश कर डाला था। इसके बाद अरबोंने इसे फिरसे बसा कर इसका नाम फामिया रक्खा। इस नगर का महत्व ईसाईयोंके धर्मयुद्ध तक देख पड़ता है।

(२) फ्रीजिया का एक नगर। अँटायोकसने अपनी माता अपामाके नामपर इस नगरकी स्थापना की थी। सिल्यूकिडी सत्ता, ग्रीकोरोमन तथा ग्रीकोहीब्रू संस्कृति तथा व्यापारका यह मुख्य केन्द्र था। अँटायोकसके पश्चात् यह परगामेनियन राज्य के अन्तर्गत आगया था। इसके बाद यह रोम तथा मिथ्रीडेटिसके अधिकारमें था। तीसरी शताब्दीसे इसका पतन आरम्भ हो गया था।

१०७० ई० में तुर्कोंने इसपर अधिकार कर लिया था। १३वीं शताब्दीसे यह मुसलमानोंके ही शासनमें रहा। बहुत काल तक यह एशिया माइनरका प्रधान नगर समझा जाता था। ग्रीको-रोमन कालके अनेक शिलालेख अब तक पाये जाते हैं।

(३) युफ्रेटीस नदीके किनारे पर बसा हुआ एक नगर। असूरियन लोगोंके लेखोंमें इसका उल्लेख, 'तिलबार सिप' के नामसे आया है तथा वर्त्तमान समयमें यह विरेज़िकके नामसे वह प्रसिद्ध है।

(४) विथिनियाका पुराना नगर 'मिरलिया' का यही नाम था। पहले प्रूशियसने इसको बसाकर यही नाम रक्खा था।

(५) स्टिफेनस तथा सिन्नी द्वारा उल्लिखित एक नगर।

(६) राघीके समीप पर्थियाका एक ग्रीक नगर।

अपीनस—यह एक नाकका रोग है। इसे अंग्रेजीमें ओज़ीना (Ozaena) कहते हैं। खास नाकमें अथवा उसके समीप तनिक ऊपरकी ओर एक गड्ढा सा हो जाता है। इसमें दुर्गन्धयुक्त निरन्तर स्राव बहा करता है। इसे नाकका स्वतन्त्र रोग न कह कर यदि नाकके विकारके कारण अथवा नाकके भीतरी श्लेष्मत्वचामें के क्षतके कारण यह रोग उत्पन्न हो जाता है। कुछ लोग इसे 'पीनस' भी कहते हैं. यद्यपि पीनसका अर्थ जुकाम भी होता है। वैद्यक शास्त्रमें इसका बड़े ब्योरेसे वर्णन मिलता है।

कारण—इस रोगके अनेक कारण हो सकते हैं। उपदंश, गण्डमाला, विकारयुक्त क्षत, नाककी भीतरी हड्डीमें कीड़ा लगना या सड़ना, नाकमें कोई वाह्य विकार युक्त पदार्थका प्रवेश कर जाना अथवा अटके रहना इत्यादि ही इसके मुख्य कारण होते हैं। कभी २ उपरोक्त किसी कारणके बिना इस रोगका प्रादुर्भाव हो जाता है और इसका ठीक ठीक कारण निश्चय करना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्थामें इसे स्वतंत्र रोग मान लेते हैं। कुछका मत है कि पेटमें पारा अधिक प्रमाणमें पहुँच जानेसे इस रोगका आरम्भ हो जाता है।

लक्षण—नाकके बिलकुल ऊपरी भागमें जो क्षत होता है उसीका इस रोगसे सम्बन्ध हो सकता है। गण्डमाला वाले मनुष्यके नाकके किसी एकही छिद्रमें क्षत होकर उसमें से धीरे धीरे दुर्गन्धयुक्त स्राव बहने लगता है, किन्तु उपदंशके रोगीके दोनों नासिक-पुटिकाओंमें से क्षत होकर स्राव बहता है। उपदंश वाले रोगीकी अवस्था अन्य कारणोंसे भी ठहराई जा सकती है। छोटे बच्चोंके रोगनिदानमें विशेष कठिनताका अनुभव होता है।

स्रावका प्रमाण हरेककी प्रकृतिके अनुसार अलग अलग होता है। प्राकृतिक हेर-फेरसे भी इसपर प्रभाव पड़ता है। सर्दी, श्रमातिरेक तथा स्त्रियोंकी रजस्वलावस्थामें यह बढ़ जाता है। स्राव भी भिन्न भिन्न रोगीका भिन्न भिन्न अवस्थामें भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। यह स्राव पतला अथवा गाढ़ा, मवाद (पीप) के सदृश अथवा रेठाके समान, रङ्गहीन अथवा पीला, हरा अथवा लाल भी होता है। रक्तके विन्दु भी कभी कभी देख पड़ते हैं। कभी कभी जमा हुआ पदार्थ नाकसे निकलने लगता है। इसमें अत्यन्त दुर्गन्धि होती है। इस विकारसे नाककी हड्डी सड़ तक जाती है और जिससे मनुष्यमें अत्यन्त कुरूपता आ जाती है। उपदंशके कारणसे जिनको यह रोग होता है उनको नाक सड़कर कुरूप होनेका अधिक भय रहता है।

रोग-परीक्षा—दाँतोंके विकारके कारण, मुख अथवा गलेके क्षतके कारण, नाकमें कोई वाह्य पदार्थके अटक कर रह जानेके कारण या प्रकृति क्रियाके बिगड़ जानेसे श्वासमें दुर्गन्धि आने लगती है, और ऐसी ही दुर्गन्धियुक्त श्वास अपीनसके रोगियोंकी भी होती है। अतः पहले रोगका ठीक ठीक कारण तथा परीक्षा कर लेनी आवश्यक है।

चिकित्सा—इस रोगमें औषधिका लगाने (External) तथा खाने (Internal) दोनों ही प्रकारका प्रयोग करना चाहिये। सबसे पहले कारण निश्चय करना आवश्यक है। तदनन्तर इस कारणका ही समूल नष्ट करनेका उपाय करना चाहिये। सबसे अधिक आवश्यक बात है नाकको पूर्णरूपसे हर समय स्वच्छ रखना। ऐसा करनेसे काफी बढ़ा हुआ रोग भी साध्य हो सकता है। नाकको स्वच्छ रखनेसे तात्पर्य यह है कि बहनेवाले स्रावको नाकमें बिलकुल जमने न दिया जाय, न उसमें जमकर सूख जानेवाली खपलियोंको ही रहने देना चाहिये। नाकको साफ करते समय योग्य साधनोंकी सहायता लेते रहना चाहिये। नाकको इस प्रकार धोना चाहिये कि नाकके भीतरसे खपली निकल जाय परन्तु उसकी जगह दूसरी न जमे। यदि स्रावको भीतर ही

जमने दिया जाय तो वह अधिक सड़ जाता है और चारों ओरका स्थान गलना प्रारम्भ हो जाता है। इस कारण घाव अच्छे होनेकी परिस्थितिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। नाकके भीतर पानी खींचकर या पिचकारीसे नाकको साफ करना हानि कारक है। अतः नाक धोनेके यन्त्र (Nasal Douche) से ही उसे साफ करना चाहिये। यह यन्त्र कनिष्टका अंगुलीके समान मोटी रबरकी नली है जिसके एक ओर नाकमें लगाने योग्य एक यन्त्र लगा रहता है और दूसरी ओर धातुकी एक ऐसी नली जो पानीको भीतर खींचती है। इस नलीको आध सेर जलके पात्रमें रख देना चाहिये। फिर उस पात्रमें सादा सहने योग्य गरम, या कुछ क्षार युक्त औषधि (जिसमें कुछ नमक, सोडा और बोरिक ऐसिडके समान दवाई, मिलाकर)जल छोड़ना चाहिये। इसके पश्चात् नाकवाले यन्त्रको नासापुटमें लगाकर पानीके पात्रको ऊपर उठाकर तनिक टेढ़ा करना चाहिये। ऐसा करनेसे नली में जलप्रवाह प्रारम्भ हो जाता है और वायुमंडल के भारके कारण अबाध गतिसे प्रचलित रहता है। इस प्रकार नासापुटमें जल सञ्चरण प्रारम्भ हो जाता है। यह प्रवाह उस समय तक प्रचलित रहना चाहिये जब तक नाक पूर्णरूपसे गन्दगीसे रहित न हो जाय।

इस युक्तिके उपयोगके समय मुँह भली भांति खुला रहना चाहिये। ऐसा करनेसे मृदु तालू (Soft Palate) ऊपर उठ जाता है और नासिका के पिछले छिद्रोंका सम्बन्ध मुँह या गलेसे नहीं रह जाता है। इस कारण एक नासासे गया जल दूसरी नासासे बाहर आ जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण नासिका धुल जाती है और खपलिया निकल जाती हैं। यदि इस प्रकार धोनेसे भी सब मैल न निकल जाये या ऊपरी भागकी खपलियाँ भीगकर न निकले तो एक बारीक लम्बे तिनकेके एक सिरे पर कर रूई लपेटना चाहिये। फिर इस फायेसे शनैः शनैः बड़ी सावधानीसे खुरच कर खपलियोंको निकालना चाहिये। आलस्य या अन्य किसी कारणसे जब नाक कई दिन तक नहीं धोई जाती तब भीतर खपलियाँ तथा अन्य गन्दी चीजें जम जाती हैं। इन चीजोंको आसानीसे निकाल देनेके लिए नाकको साफ करनेके पहले, गरम पानीसे सेंकना (Fomentation) चाहिये और वाष्पको श्वास द्वारा भीतर खींचना (Inhale) चाहिये। इससे जमी हुई कड़ी कड़ी खपलियाँ भी मुलायम होकर जल प्रवाहके साथ बाहर निकल आती है। साधारणतः नाक पिचकारी द्वारा भी निर्मल की जा सकती है। नाकको चूनेके निथरे हुए पानी (Lime Water) से अथवा गरम हुए थोड़े दूधके मिश्रणसे धोनेसे भी लाभ होता है। उक्त प्रकारसे नाकको तीन या चार बार धोनेसे श्लेष्मा या मवादके गाढ़े होकर जमनेकी सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है। फिर प्रत्येक बार नाकको सफा करते समय न तो कष्ट ही होता है न अधिक समय ही बर्बाद होता है। नाक साफ़ करते समय दोनों नासामें धोनेकी क्रिया करनेसे नासिका खूब स्वच्छ होती है।

खपलियोंके निकल जानेके बाद आवश्यकतानुसार निम्नलिखित औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। ये औषधियाँ स्तम्भक तथा दुर्गन्धि नाशक हैं। इन औषधियोंके दिये हुए प्रमाणोंको दस औंस जलमें घोल देना चाहिये। इसी जलसे नासिकाको धोना चाहिये। परमैगनेट ऑफ पोटैशियम २ ग्रेन, क्लोराइड ऑफ जिन्क २ ग्रेन; सलफेट ऑफ ज़िन्क ३० ग्रेन; कारबोलिक ऐसिड १ ड्राम; नाइट्रेट ऑफ सिल्वर ४ ग्रेन; फिटकिरी ४० ग्रेन; सवागी खार ४० ग्रेन; क्लोरेट ऑफ पोटैशियम ३० ग्रेन; टिन्कचर ऑफ आयोडीन १० बूँद; रस कपूर १-२ ग्रेन इत्यादि। इनमें से किसी भी एक औषधिका प्रयोग बराबर करते रहना चाहिये। जब स्राव अधिक हो तब फिटकिरी, त्रिफलेके काढ़े; बबूरकी छालके काढ़ेके समान स्तम्भक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। और यदि स्रावमें दुर्गन्धि अधिक हो तो दुर्गन्धि नाशक औषधिओंका (कारबोलिक ऐसिड, कैन्डीज़, फ्लूइड) प्रयोग करना चाहिये।

नाकके स्वच्छ हो जानेके पश्चात् गौके घृत में ग्लीसरीन, हेयलीन, या बॉलसम ऑफ पेरू, ऐसी ही स्निग्ध किसी औषधिमें या तैलमें रुई भिगो कर उसे लोहेकी सलाई द्वारा नासा के भीतर रख देना चाहिये। इसके अतिरिक्त अनेक लोग सुँघनियोंका या दुर्गन्धिनाशक बुकनियोंका भी प्रयोग करते हैं। बोरिक ऐसिड, बिसमथ सॉलल, कपूर, माजूफलकी बुकनी, कैलोमल, कंकोल, आयडो फार्म इन्हे खरियामिट्टी, चीनी या चावल के आटे के साथ, आवश्यक प्रमाणमें मिलाकर बार बार सूँघा जाता है। परन्तु सुँघनीकी अपेक्षा पूर्व कथित उपयोग ही अधिक लाभदायक है अर्थात् स्निग्ध औषधियोंका प्रयोग करनाचाहिये।

साधारणतः नाक रोज़ धोनेसे तथा दुर्गन्धिनाशक औषधियोंके प्रयोगसे भीतरके घाव शीघ्र

ही भर जाते हैं और दुर्गन्धियुक्त स्राव बन्द हो जाता है। परन्तु यदि हड्डी कट या सड़ गई हो तो बिना उसके निकाले चिकित्सा असम्भव है। उपदंश रोगके कारण यदि अपसीनका ज्वर आजावे तो उपरोक्त चिकित्साके पश्चात् स्थानिक उपचार करना चाहिये। रस कपूर-१ भाग या (परक्लोराइड आफ मरकरी) ५,००० या १०,००० भाग पानीमें घोलकर उस मिश्रणसे नाक धोना चाहिये। जिस स्थानपर घाव हो गया हो वहाँ पर नाइट्रेट आफ सिलवर लगाना चाहिये।

प्रत्येक रोगीकी सम्पूर्ण प्रकृतिको सुधारनेके लिए उसको उत्तम पौष्टिक भोजन देना चाहिये। साथही साथ उसे स्वच्छ वायुके स्थानमें व्यायाम करना चाहिये। हो सके तो प्रारम्भसे ही स्थानिक उपचारके साथ ही साथ कॉड लिवर ऑयल, लोह सोमल, कोयनेल इत्यादि शक्तिबर्धक औषधियोंको उपयोग करना चाहिये। इस प्रकारके निरंतर कई मासके उपचारसे भी अपीनस ऐसे दुखदाई ज्वरसे छुटकारा मिल जाता है परन्तु यह बहुत कम रोगियोंसे साध्य है। अतएव लोगोंमें घातक विचार उत्पन्न हो गया है कि अपीनस किसी भी उपचारसे ठीक नहीं होता।

[भिषग्विलास (पु०१४) पृ० ५८ ६३]

अपुष्प वनस्पति—वनस्पति शास्त्रके मुख्य दो भागोंमेंसे अपुष्प वनस्पति (Cryptogam) एक भाग है। इस भागके वनस्पतियोंमें एक पेशीमय वनस्पति से लेकर, जिनमें वास्तवमें फूल नहीं होते ऐसी सब प्रकारकी वनस्पतियोंका समावेश होता है। सपुष्प वनस्पतिमें और इसमें जो बड़ा भेद दिखाई पड़ता है वह यह है कि अपुष्प वनस्पति जनन-पेशी (Spores) से उत्पन्न होती हैं और सपुष्प वनस्पतिमें भी जननपेशी तयार होती हैं परन्तु पहिलेकी तरह पेड़ उत्पन्न करनेकी शक्ति उनमें नहीं रहती। यह जनन-पेशी यदि सड़ाई जाय तो भी उनमेंसे नवीन पेड़ उत्पन्न नहीं हो सकते; वह बीजसे ही होते हैं। बीज अनेक पेशियों से मिलकर बनते हैं तथा उनमें अनेक पेशियोंका एक गर्भ पहिलेसे ही तैयार हुवा रहता है। जनन पेशी एक पेशीमय रहती है तथा अपुष्प वनस्पति में वह मूल वनस्पतिसे अलग हो जाती है। इसके पश्चात् उससे बिलकुल नवीन वनस्पति निर्माण होती है। अतः अपुष्प वनस्पतिको जननपेशी की वनस्पति तथा सपुष्प वनस्पतिको बीजकी वनस्पति नाम दिये गये हैं।

वर्गीकरण—अपुष्प वनस्पतिका वर्गीकरण भिन्न भिन्न प्रकारसे किया गया है। आगे दिया हुआ वर्गीकरण ब्राउन पद्धतिका है। उसमेंसे एन्गलर, एङ्गलर, वेट्स्टाइन इत्यादिका रद्दोबदल स्वीकार किया है। इस पद्धतिके अनुसार अपुष्प वनस्पति वनस्पति शास्त्रकी नीचेकी सीढ़ी और सपुष्प वनस्पति ऊपरकी सीढ़ी है। अपुष्प वनस्पतिके नीचे दिये अनुसार विभाग किये जाते हैं।

(१) स्थाणुवर्ग—(Thallophyta) इस भाग में बहुत प्रकारकी वनस्पतियोंका समावेश होता है किन्तु उनका वानस्पतिक भाग एक अथवा अनेक पेशियों का और प्रायः फैला हुआ तथा शाखायुक्त रहता है तथा इसको स्थाणु कहते हैं।

उत्पादनक्रिया योगसंभव (Sexual) अथवा अयोगसंभव (Asexual) ऐसे दो प्रकारकी हो सकती हैं, परन्तु दोनों प्रकारके नियम साथ २ लागू नहीं होते।

(२) लिंगकरंडक धारी—(Archigoniatae) इस भागकी वनस्पतियोंमें यह दोनों ही भाग पाये जाते हैं और दो पीढ़ियां स्पष्ट दिखाई देती हैं। अयोगसंभव अलिंगपीढ़ि (Sporophyte) से जननपेशियां होती हैं। उस जननपेशीसे योगसंभव लिंगपीढ़ि (Gamatophyte) उत्पन्न होती हैं। इस पीढ़िमें इन्द्रियां निकलती हैं तथा उनमेंके नर तथा स्त्री भागोंके संयोगसे तैयार हुवे जननपेशीने पहिलेके सदृश जननपेशी उत्पन्न होनेसे पेड़ तैयार होते हैं। लिंगकरण्डक धारी में दो भाग होते हैं। (१) शैवालवर्ग (Bryophyte) इस भागकी कुछ वनस्पतियाँ पत्तोंके समान फैलनेवाली होती हैं तथा कुछमें पत्ते तथा तना भली-भांति दिखाई देते हैं। इन वनस्पतियों में मुख्य जड़ें नहीं रहती तथा उनकी वाहिनियां जब रही होंगी उस समय बिलकुल सादी होंगी। अलिंगपीढ़ि एक छोटे फलके सदृश कवचके भागकी होती है और वह करीब २ मुख्य वनस्पति पर अवलंबित रहती हैं। किंतु लिंगपीढ़ि बहुत बड़ी होती है और वह मुख्य वनस्पति ही के सदृश दिखाई पड़ती है। (२) वाहिनीमय अपुष्प वर्ग (Pterridophyte) इस भागमेंके वनस्पतिकी लिङ्गपीढ़ि छोटी होकर स्थाणुरूपमें रहती है। लिंगपीढ़िमें (Sporophyte) तना पत्ते तथा जड़ें अच्छी तैयार हुई रहती हैं तथा इनमें उत्तम वाहिनीयां रहती हैं। इस दृष्टिसे ये वनस्पतियां सपुष्प वनस्पतिके सदृश कही जा सकती हैं।

स्थाणुवर्ग—(Thallophyte)-इसका मुख्यतः

पाणकेश (Algae), अलिंब (Fungus=बुरशी) और शिलावल्क (Lichens) ऐसे तीन विभाग किये जाते हैं। पाणकेश वनस्पतियोंमें कुछ रंगीन पदार्थ मुख्यतः—हरा द्रव्य—रहता है। इनको अपने बढ़नेके लिये जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता होती है वे उनको स्वयं तय्यार कर लेते हैं; इसलिये उनको दूसरे पर अवलंबित रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बुरशी (भूरा) मेंके वनस्पतियोंमें रंग नहीं रहता; वे अपनी रक्षा तथा वृद्धिके लिये स्वयं सामग्री उत्पन्न नहीं कर लेते, इसलिये उनको दूसरे पर अवलंबित रहना पड़ता है और वह बांडगुडकी तरह परान्नभक्षक होते हैं। यद्यपि यह भेद उनके जीवित क्रम से निकाले जा सकते हैं तब भी इनमें उनके उत्पत्तिके विषयमें कुछ बोध नहीं हो सकता। शिलावल्क ऊपर कही गई दो वनस्पतियोंसे मिलकर बनती है। उसमेंका पाणकेश पाणकेशके साथ, और भूरा भूरेके साथ, देखा जा सकता है परन्तु भिन्न-भिन्न शिलावल्कमें ही अत्यन्त समानता रहनेके कारण उनका एक अलग तीसरा भाग किया जाता है। स्थाणुवर्गके सूक्ष्म जंतु (Bacteria) तथा नीलपाणकेश (Cyanophyceae) में की वनस्पति ये सबसे सादी होती हैं। ये दोनों ही स्थाणुवर्गमेंके अन्य वनस्पतियोंसे बिलकुल भिन्न हैं। पुच्छविशिष्ट (Flagellata) भागमेंके वनस्पतियोंको प्रायः बिलकुल छोटे तथा सादे प्राणिकी श्रेणीमें देखते हैं। उनकी रहन सहन करीब २ वनस्पतियोंके सदृश ही है और प्राणिके समान भी है। "कनिष्ठ वर्गके प्राणियोंके उद्गम" में भी उनको गणनाकी जा सकती है। बुरशोमेंकी कनिष्ठ वनस्पति (Mytomycetos) से विना रंगकी वनस्पति हुई होगी। शैवालतन्तुकी जाति भी इन्हींसे उत्पन्न हुई होगी। कांडशरीरिका (Characeae) तो अन्य सब स्थाणुवर्गसे आगे बढ़ी हुई होनेके कारण स्थाणुवर्गमें सबसे उच्च अवस्था पहुँचनेवालोंमें गणनाकी जाती है।

स्थाणुवर्गमें उत्पादन प्रायः असंयोगिक जनन पेशी से (Asexual spores) होता है। ये जनन पेशियां तो भिन्न २ वनस्पतियोंमें भिन्न २ प्रकारसे तैय्यार होती हैं। कितनोंमें कुछ एक विशिष्ट प्रकारके पेशियोंके बहुतसे भाग होकर उनसे जनन पेशी होती हैं। इन पेशियों को जननपेशी गुच्छा कहते हैं। कितनोंमें स्थाणु (Thallus) के अथवा दूसरे पेशियोंके टुकड़े होते हैं; अथवा उनमें एक प्रकार की कलिकाएँ उत्पन्न होती हैं और तब ये कलिकाएं आगे चलकर जननपेशी बनती हैं। जब जनन पेशीपर छोटे २ बालके तरह तंतु रहते हैं तब वे हिलकर पानीमें तैरते हैं। जिनमें तंतु नहीं रहता और जो पानीमें रहते हैं वे वैसेही खुले रहते है लेकिन जो हवामें रहते हैं उनमें एक पेशीकवच रहता है। योगसंभव (Sexual) उत्पादन भी बहुत स्थानपर दिखाई पड़ता है। उसमे की बिलकुल साधारण किस्म है कि दो संयोगी (Sexual) पेशी एकत्र होकर उनसे एक पेशी तैय्यार होना और बादमें पेशीसे नवीन वनस्पति उत्पन्न होना। ये पेशियां ज्यादा तर बिलकुल समान होती हैं। कहीं कहीं एक पेशीके महीन तंतु रहते हैं। कहीं २ एक पेशी अत्यन्त छोटी होती है और उसके तंतु रहते हैं। इस पेशी को नरपेशी (Spermatozorid) रेत कहते हैं। रेत रेतकरंडकमे (Antheridia) उत्पन्न होता है। दूसरी रजपेशी बहुत बड़ी रहती है और वह रजकरंडक (Arclugonium) स्त्रीतत्वोत्पादक पेशीमें उत्पन्न होती है। स्थाणु वर्गमें कुछ वनस्पतियोंमें उत्पादन केवल अयोग संभव रहता है, कुछमें केवल योग संभव और कुछमें दोनों प्रकार से होता है।

सूक्ष्म जन्तु—(Bacteria) यह उसके रूढ़ि नामसे प्राणिवर्गमे का मालूम पड़ता है तो भी वस्तुतः वे एक पेशीमय, तंतुके सदृश अत्यन्त सूक्ष्म साधारण वनस्पतियां हैं। उनमें हरिद्रव्य न रहनेसे वे परोपजीवी रहते हैं। सब भूतलपर जलमें, जमीनमें, हवामें, मृत और जीवित प्राणियोंके शरीरमें एवं सब जगह यह पाये जाते हैं। इनके पेशीपर एक अत्यन्त पतली त्वचा रहती है और उसके भीतर जीवद्रव्य रहता है। इस जीवद्रव्यमें कभी कभी एक अथवा दो जड़ स्थान (Vocuoles) रहते हैं। उनमे कुछ कुछ कण ऐसे रहते हैं कि वे स्वतः रंगहीन होने पर भी यदि वे रंगमे छोड़े जायें तो उनपर रंग चढ़ता है। इन कणों को कितने लोग केन्द्र समझते हैं। सूक्ष्म जन्तु ज्ञान सब जीवित सृष्टिमे प्रायः सबसे छोटा है। जो गोल जातियाँ हैं उनमे सबसे छोटी पेशी का व्यास केवल ०·०००८ मिलिमीटर यानि ०·००००३ इञ्च रहता है। क्षयरोगके सूक्ष्म जन्तुलंबे आकारके रहते हैं। उनकी साधारणतया लम्बाई का आकार ०·००१५ से ०·००५ मिलि मीटर व चौड़ाई ०·००१ मिलिमीटर रहती है। इसीसे यह कल्पना की जा सकती है कि वे कितने छोटे हैं।

सबसे साधारण प्रकारके सूक्ष्मजन्तु गोलपेशी रहते है। उनको गोलजंतु (Cocei) कहते हैं। लम्बे सीकके सदृश आकार वालोंको ह्रस्वजन्तु अथवा यष्टिजन्तु (Bactirium or Bacillus) भी कहते हैं। ह्रस्व जन्तुके सदृश, किंतु किंचित् लाल, कुछ एंठनदार, तारके सदृश कुछ लम्बे सूत की तरह इनकी अनेक जातियाँ हैं। सूक्ष्म जन्तुमें शाखाएँ नहीं निकलती। कुछमें शाखाएँ निकली हुई देख पड़ती हैं परन्तु वे वास्तवमें शाखा नहीं हैं। एक पेशीसे जब दो पेशियाँ होती हैं तब वह दोनों पेशियाँ एक दूसरेसे चिपकी हुई रहती हैं। इस तरहसे उनकी एक माला बनती है। बहुधा ऐसी अनेक मालायें एकत्र मिलकर उनके पेशी कवचसे एक मुलायम पदार्थ तैय्यार होता है और वे शहतके सदृश पदार्थमें मिलकर रहते हैं।

बहुतसे सूक्ष्मजन्तु सचेतन रहते हैं। उनमें महीन महीन जीव द्रव्यके तन्तु रहते हैं। उनके कारण वे पानीमें इधर उधर तैर सकते हैं। जीव द्रव्यके ये तन्तु कुछ सूक्ष्मजन्तुओंके सब भाग पर रहते हैं, कुछ केवल एक सिरेपर रहते हैं और कुछमें केवल एक तन्तु रहता है। तन्तुओंके गुच्छे इतने करीब २ रहते हैं कि उन सबका मिलकर एक मोटा तन्तु दिखाई पड़ता है। इस तन्तुको सूक्ष्मजन्तु भीतर नहीं खींच सकते। परन्तु जब जरूरत नहीं रहती अथवा जनन पेशी तैय्यार होती है तब यह झड़कर गिर जाते हैं।

वानस्पतिक (Vegetative) उत्पादन एक पेशी के दो टुकड़े हो कर फिर उन पेशियोंके स्वतंत्र रूपसे होने पर होता है। उन पेशियों से फिर दूसरी पेशियाँ उत्पन्न होती हैं। अयोगसंभव (Asexual) उत्पादन जननपेशी से होता है। प्रथम तो पेशीके बिलकुल भीतरका जीवद्रव्य भाग इतर भागों से छूटता है और फिर उनका एक गोला होता है और उस गोले पर एक मोटी त्वचा आती है। पेशी की बाहरी त्वचा फिर फूलती है और भीतरी त्वचा जनन पेशीके तैयार होने पर फूटती है। सब जातियों में जनन पेशी नहीं होती।

यद्यपि सब सूक्ष्म जन्तुओंकी जीवनक्रिया बिलकुल साधारण है तो भी उनमें की भिन्न २ जातियोंमें बहुत कुछ अन्तर है। अन्न लेकर उससे जो पदार्थ वे तैयार करते हैं उनमे तो बहुत ही अन्तर है। बहुत से सूक्ष्म जन्तुओं को श्वासोच्छ्वासके लिये प्राणवायुकी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु उनमें कुछ ऐसी जातियाँ हैं कि वे उसी जगह पर बड़े वेगसे बढ़ती हैं जहाँ पर प्राण वायुका अस्तित्व भी नहीं है। कई सूक्ष्म जन्तुओं के श्वासोच्छ्वाससे उष्णता उत्पन्न होती है। इसी कारणसे गोबर और आर्द्र कपास इत्यादि किंचित् गरम मालूम होते हैं। कोई २ सूक्ष्मजन्तु विशिष्ट काम करते हैं। जिस पानीमें गंधक पिघला रहता है ऐसे पानी के झरनों में कुछ सूक्ष्म जन्तु मिलते हैं। उनके नाम गन्धकके जन्तु हैं। ये सूक्ष्म जन्तु पानीमें जितना गन्धक होता है उसे लेकर उसका अपने शरीर में संग्रह करते और अन्तमें उससे गन्धकाम्ल तैयार करते हैं। कुछ लोह सूक्ष्म जन्तु हैं। वे पानीमें के लोहेको लेकर लोहे का एक रासायनिक पदार्थ अपने शरीर में इकट्ठा करते हैं। दही मे एक प्रकार के सूक्ष्म जन्तु होते हैं उनका काम दुग्धाम्ल (Lactic acid) नामक अम्ल तैयार करना है। दूसरे प्रकारके सूक्ष्म जन्तु हैं जिनका काम नवनीताम्ल (Butyric acid) तैयार करना है। और एक प्रकारके सूक्ष्म जन्तु सिरका तैयार करते हैं। नवनीताम्ल तैयार करने वाले सूक्ष्म जन्तुओं को प्राणवायु को आवश्यकता नहीं होती। दूसरे एक प्रकारके सूक्ष्म-जन्तु जिन्हें प्राणवायुकी आवश्यकता नहीं होती वे कपास वगैरह काष्ठके (सेल्यूलोज) पदार्थों से उद्ज अथवा अनूप नामक वायु (Marsh gas) तैयार करते हैं। अभी तक कही हुई जातियाँ आधे आध परोपजीवो हैं। उनको आधे आध तैयार कियेहुए अन्न की आवश्यकता होती है। अन्न पचानेके लिये उसको योग्य बनाने का काम वे करते हैं। किन्तु ऐसी बहुत सी जातियाँ हैं जो कि इतना भी काम नहीं करतीं। उनको बिलकुल परिपक्व अन्न बना देना पड़ता है। इस प्रकार की जातियों में मुख्य वे सूक्ष्म जन्तु हैं जिनसे वनस्पतियों पर पड़ने वाले तथा प्राणियों को होनेवाले रोग उत्पन्न होते हैं। ये सूक्ष्मजन्तु प्राणियोंके रक्तोंमें जाते हैं उसपर अपनी उपजीविका करते हैं और दूसरे अनेक प्रकार के सूक्ष्म जन्तु उत्पन्न करते हैं और एक प्रकारका द्रव्य भी उत्पन्न करते हैं। यह द्रव्य ही प्राणियोंकेलिये बहुत ही कष्टप्रद है। यह द्रव्य बहुधा अत्यन्त विषैला होता है। इस कारण नाना प्रकारके रोग प्राणियोंको होते हैं। संसर्गजन्म और संक्रामक रोग प्रायः इसी प्रकार के सूक्ष्मजन्तु ओंसे होते हैं। क्षय, विषम, अंतरिया बुखार, प्लेग इत्यादि रोग इस प्रकारके सूक्ष्म जन्तुओं (Germs) से होते हैं।

जिस प्रकार कुछ सूक्ष्मजन्तु हानिकारक होते हैं उसी प्रकार प्राणियोंपर उपकार करनेवाले

सूक्ष्म जन्तु भी अनेक हैं। कुछ सूक्ष्मजन्तु दुर्गन्ध दूर करते हैं। कुछ पेड़ोंकी जड़ोंमें कुछ गाठें पाई जाती हैं। इन गाठोंमें सूक्ष्म जन्तु रहते हैं। वे वायुमें के नत्र, जो वायुरूपसे संचारण करता है व जिसका पेड़ोंके लिये कुछ भी उपयोग नहीं होता उसका वे रासायनिक पदार्थ तैयार करते हैं। इस रासायनिक पदार्थ का पेड़ोंकी उत्तम खादके समान उपयोग होता है और इस प्रकारसे पृथ्वीमें के पोषकद्रव्य कम होकर बढ़ते जाते हैं। दूसरे अनेक प्रकारके सूक्ष्म जन्तुओंका, उनके गुणोंके कारण, बहुत अध्ययन हुआ है तथा आजकल इनका व्यापारमें अत्यन्त अधिक उपयोग होरहा है।

(२) नीलपाणकेश (Cyanophy ceae)—ये वनस्पतियाँ एकपेशीमय अथवा तन्तुके सदृश होती हैं। किन्तु ये बिलकुल नीलेरंगकी होती हैं। इनके पेशीकवचसे एक प्रकारका सरेसके सदृश लसदार पदार्थ निकलता है। उसमें मिले हुये इस वनस्पति के गुच्छे कभी २ पाये जाते हैं। ये वनस्पतियाँ जलमें, गिली जमीनपर, पत्थरपर, अथवा पेड़ोंके छिलकों पर पाई जाती हैं। प्रत्येक पेशीमें हरित द्रव्यके सिवाय एक नीलद्रव्य नामका रञ्जितद्रव्य रहता है। इसीसे उनको 'नील पाणकेश' कहते हैं। उत्पादनक्रिया केवल वानस्पतिक (Vegetative) रीतिसे पेशीविभाग बनकर होता है। कुछ जातियोंमें जननपेशियाँ भी पाई जाती हैं।

इनमें की सबसे सादी प्रकारकी वनस्पतियाँ एकपेशीमय रहती हैं और वे गीली जमीनपर, पथरीली जमीनपर अथवा भीतपर पाई जाती हैं। दो दो चार २ पेशियोंके गुच्छे भी बहुधा दिखाई पड़ते हैं। तन्तु जातिकी सादी वनस्पतियाँ प्रायः जलमें अथवा गिली जमीनपर पाई जाती हैं। इनमें बहुतसी पेशियाँ रहती हैं किन्तु वे सब एक ही समान होती हैं। तन्तुको यदि मोड़ दिया गया तो उसके दोनों भाग अलग अलग होजाते हैं और दो वनस्पति तैयार होती हैं। कुछ जातियाँ लम्बे अथवा गोल गोलोंकी बनी रहती हैं। उनको नॉस्टॉक (Nostoc) कहते हैं। उनमें के एक अथवा अधिक पेशीमें रञ्जितद्रव्य नहीं रहता, बाकीमें नील तथा हरिद्द्रव्य रहते हैं। ये वनस्पतियाँ मोतियोंकी पंक्तिकी तरह दिखाई पड़ती हैं। ये पानीमें, गिली जमीनपर अथवा पानीपर बहनेवाली वनस्पतियोंके पत्तों पर अथवा उसकी नली में रहती हैं।

(३) पुच्छ विशिष्ट (Flagellata)—ये वनस्पतियाँ मुख्यतः जलमें रहती हैं। वे एक पेशीमय रहती हैं और भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं। उनका आकार जिस प्रकारका होता है उसी प्रकार के उसके प्राणि भी होते हैं। उनको स्थाणु वर्गोंमें का एकपेशीमय व आदि प्राणिका उद्गम भी कहते हैं।

उनको स्पष्ट पेशीकवच नहीं होता और वे जिस प्रकार चाहें उस प्रकार अपना आकार बदल सकते हैं। प्रत्येक पेशीमें एक या अधिक तन्तु होते हैं उनके योगसे उनमें गति प्राप्त होती है। पेशीमें एक केन्द्र और एक जड़ होती है। कुछ जातियोंमें हरा या पीला रञ्जितद्रव्य होता है। प्रायः एक लाल बिंदु पेशीमें दिखाई पड़ता है। उसे नेत्रबिन्दु कहते हैं, कुछ जातियोंमें बिलकुल ही रञ्जित द्रव्य नहीं होता। कुछ जातियाँ अन्न घनस्थितिमें भी ग्रहण कर सकती हैं। उत्पादन पेशीविभागसे होता है।

(४) कार्मिक (Myxonycetes)—इन वनस्पतियोंकी गणना स्थाणुवर्गके कनिष्ठ दर्जेके भाग में होती है। इनका भी जीवन बहुत अंश तक प्राणियोंके समान है; इसलिये प्राणिशास्त्रको जानने वाले लोग इनका समावेश प्राणिवर्गमें करते हैं। इनकी जातियाँ बहुत हैं और ये सर्व भूमण्डल पर प्राप्त होती हैं।

जीव द्रव्यके एक स्वतन्त्र गोलेसे तथा अन्य बहुतसे द्रव्योंके सम्मिश्रणसे वनस्पति का शरीर तैयार होता है। इनमें हरिद्द्रव्य बिलकुल नहीं होता। लकड़ियोंमें, सड़ी दुर्गन्धवाली जमीन में, गिरेहुए पत्तों पर और सड़ी हुई लकड़ियोंपर ये वनस्पतियाँ मिलती हैं। इनमें एक प्रकारकी गति होती हैं, और फैलते २ आगे बढ़ती हैं। शरीरका एक भाग लंबाकर आगे लेजाते हैं और पीछेके भागको संकुचित कर आगे फैलते जाते हैं। कुछ दिनों बाद इस शरीरसे जननपेशी उत्पन्न होती हैं। पहिले पहल पूर्णशरीरका एक या अधिक जनन पेशीगुच्छ (Sporangium) तैयार होते हैं। आन्तरिक जीवद्रव्यके फिर बहुत से भाग होकर उनसे जननपेशीमें एक एक केन्द्र होता है। जननपेशीके पकने पर जननपेशी गुच्छ फूटता है और भीतरी जननपेशियाँ हवाके साथ उड़ जाती हैं। योग्य स्थान प्राप्त होनेपर उनसे फिर पहिले सरीखी वनस्पति उगती है।

इनमें की कुछ जातियोंका सम्बन्ध वृक्षोंको होनेवाले रोगोंसे है। एक जाति वृक्षोंकी जड़में प्रवेश करती है, उनमेंका सब अन्न खा जाती है व

अन्न के समाप्त होनेपर जननपेशी उत्पन्न करके रखती है। दूसरी एक जातिका भक्ष्य कुछ विशिष्ट सूक्ष्म जन्तु है। इस प्रकारके सूक्ष्म जन्तु इस जाति के साथ सर्वदा मिलते हैं।

(५) पीत पाणकेश (Peridineae)—ये वनस्पतियाँ एक पेशीमय होती हैं और पुच्छविशिष्ट (Flagcllata) सदृश होती है। ये मीठे पानीमें भी मिलते हैं किन्तु खासकर समुद्रमें बहुत होती हैं।

इनमें दो तन्तु होते हैं। जीवद्रव्य जड़स्थान तथा केन्द्र प्रत्येक पेशीमें होता हैं। बहुत सो जातियों में लाल और पीले रंजित द्रव्य होते हैं। किसी २ में चौड़े पंखों के सदृश फैले हुए अवयव होते हैं। इनके कारण ये पानी में तैर सकते हैं। कुछ जातियोंमें रंजित द्रव्योंके बदले रंग हीन द्रव्य होते हैं। ये जातियां परान्न भक्षक होती हैं और उनमें से कुछ का आयुष्य क्रम बिलकुल प्राणियोंके सदृश होता है। कुछ समुद्र में उत्पन्न होने वाली जातियां स्वयं प्रकाशी होती हैं और इस कारण रातके समय समुद्रका पानी चमकता है। उत्पादन पेशी विभागसे होता है। किसी २ में जनन पेशी भी उत्पन्न होती हैं।

(६) संयोगी पाणकेश (Caniugataae)-इस जाति की वनस्पतियाँ हरी होती हैं, और मीठे पानी में मिलती हैं। ये एकपेशीमय या तन्तु सरीखी होती हैं। इनका उत्पादन वानस्पतिक या योगसंभव रीति से होता है वानस्पतिक रीति से पेशी विभाग होकर एक पेशीसे दो पेशियाँ होती हैं और ये स्वतन्त्ररूप से रहने लगती हैं। योगसंभवउत्पादन में दो पेशियोंमे के लिंगोंका संयोग होकर उनसे एक जनन पेशी उत्पन्न होती है और उससे नयी वनस्पति तैयार होती है।

एक पेशीमय जातिमें की डेस्मिड नामकी वनस्पतियाँ मीठे पानीमें सर्वत्र मिलती हैं। ये अनेक प्रकार की होती हैं तथा बहुत सुन्दर होती हैं। कुछ गोल होती हैं कुछ ऐसी होती हैं कि मानो दो अर्धवृत्त एक स्थानपर चिपकी हुई हों तो कुछ नक्षत्रोंके सदृश त कुछ चन्द्रकला के सदृश आकार में दिखाई पड़ती हैं। ये पेशियाँ स्वतंत्र रह सकती हैं या कई एक पेशियों के एक में मिलने से उनकी एक पंक्ति सी दिखाई पड़ती है।

प्रत्येक पेशी दो बराबर २ भागकी होती है और वे भाग मध्य भागमें चिपके हुए से मालूम पड़ते हैं। प्रत्येक आधे भागमें एक या अधिक हरिद्रव्य के पट्ट होते हैं उसीमें कुछ पिरनाईडके कण भी होते हैं। दोनों अर्धभागोंके जोड़पर मध्यभागमें केन्द्र होता है। कई एकके पेशी की त्वचापर सुईके समान काँटेके समान होती हैं। कुछ पेशियोंमें दो अर्ध भागोंका जोड़ मालूम नहीं पड़ता। (उदाहरणार्थ चन्द्रकला सरीखी पेशियाँ)

उत्पादन क्रियामें प्रथम केन्द्रके दो भाग होते हैं, फिर पेशीके बराबर मध्यमपर दो भाग होते हैं। प्रत्येक भागसे एक दूसरा भाग उत्पन्न होता है और दो स्वतन्त्र पेशियाँ तैयार होती हैं। योग संभव रीतिसे दो पेशियाँ पासपासमें निकलती हैं, उनसे एक लसदार पदार्थ निकलता है। उनमें वे चिपक जाती हैं और फिर दोनों पेशियाँ उनके आधेके जोड़ पर फूटती हैं और उसमें का सर्व जीवद्रव्य बाहर गिरता है। वह जीवद्रव्य फिर एक जगह पर इकट्ठा होता है तथा उससे एक जननपेशी तैयार होती है। यह जनन पेशी कभी कभी एक विशेष आकारकी दिखाई पड़ती है, क्योंकि उस पर कई समय बहुत से कांटे होते हैं। जननपेशीके समीप ही प्रायः रिक्त पेशियोंके चार भाग दिखाई पड़ते हैं। अगली दो पेशियों का केन्द्र उनसे उत्पन्न हुई जननपेशीके स्वीकृत होने तक एकत्र नहीं होते। उससे उत्पन्न हुआ केन्द्र फिर से विभक्त होता है और फिर उससे भी दो छोटे और दो बड़े चार केन्द्र होते हैं। जननपेशीसे दो पेशियाँ होती है और हरएक में एक छोटा तथा एक बड़ा केन्द्र होता है कुछ समय के उपरान्त छोटे केन्द्रका नाश हो जाता है।

तन्तुमय जातियाँ बहुत सी हैं। शैवालतन्तु और उनकी अनेक जातियाँ मीठे पानीमें प्राप्त होती हैं। नदीमें या तालाबमें हरा सेवार पानीपर दिखलाई पड़ता है। वह सेवार हाथको मुलायम मालूम पड़ता है और अच्छी तरहसे देखनेपर उसके तन्तु स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे प्रत्येक तन्तु जंजीर सरीखा अनेक पेशियोंसे बना हुआ दिखलाई पड़ता है। इस तन्तुमें सिरा और मूल अलग अलग स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ते है। दोनों सिरे समानही दिखलाई पड़ते हैं। प्रत्येक पेशीमें एक बड़ा केन्द्र और अनेक रंजितद्रव्यमय शरीर होता है। रंजित द्रव्योंके हरे पट्टे फिरकीके मल सूत्रके अनुसार भीतर लपेटे हुए होते हैं। इन पट्टोंमें बीच बीचमें कुछ गोल कण होते हैं इनको पिरनॉईड कण कहते हैं। वानस्पतिक उत्पादन पेशी विभाग से होता है। यदि एक तन्तु तोड़ा जाय तो दोनों भागसे भिन्न भिन्न वनस्पतियाँ होती हैं और

स्वतन्त्रतासे रहने लगती हैं। योगसंभवउत्पादन में दो तन्तु सामने २ बिलकुल पासमें आते हैं। उनके पेशियोंके मध्य भागसे नलीके समान रास्ते बनाकर वे सामनेकी पेशीसे जाकर मिलते हैं। इस रीतिसे नलियोंके जकड़े हुए दो तन्तुओंको 'शिड़ीका' रूप प्राप्त होता है। एक पेशीमें के सम्पूर्ण पेशीतत्त्व फिर इस नली द्वारा दूसरी पेशीमें जाते हैं और उन सबोंके मिलनेसे एक गोला तैयार होता है। इससे एक जनन पेशी होती है और उससे फिर शैवाल तन्तु होता है। कई जातियोंमें आमने सामने दो तन्तु उत्पन्न न होकर एक तन्तु ही के पडोसकी दो पेशियोंमें संयोग होता है और जनन पेशी तैयार होती है। शैवाल तन्तुमें संयोग होते समय एक पेशीमेका पेशीतत्त्व दूसरीमें जाता है। वहाँ उसका दूसरे पेशीतत्त्वके साथ संयोग होकर जननपेशी तैयार होती है और फिर नया शैवाल तन्तु होता है। यह संयोग अर्थात् लिंगका संयोग, स्त्री पुरुष संयोग है। किन्तु इसमें स्त्री तत्त्व कौनसा है और पुरुष तत्त्व कौन सा है। इसकी पहचान जब नहीं होती तो ऐसे तत्त्व को "समान तत्त्व" कहते हैं। समान तत्त्वों का संयोग उच्च प्रकारके स्पष्ट रूपसे पहिचाने जानेवाले स्त्री पुरुष तत्त्वोंके संयोगका प्रारम्भ है।

(७) द्व्यणवी—(Diatoms) ये वनस्पतियां एक पेशीमय होती हैं। इनकी तह की तह समुद्र और जलमें सर्वदा प्राप्त होती हैं। आर्द्र जमीनपर भी ये रहती हैं।

ये पेशियाँ अलग अलग मिलती है अथवा उस सबोंका एक ही वसतिस्थान होता है वे जल में स्वतंत्र रूपसे संचार करती हैं या एक 'सरसा' सदृश डंठल उत्पन्न कर उसपर लगी रहती हैं। कभी २ ये पेशियाँ एक दूसरेसे चिपक कर उनका एक बड़ा लम्बा पट्टा होता है। समुद्रमे की इस प्रकारकी एक जाति की वनस्पतियाँ 'सरसा' सदृश एक स्थाणुमें चिपकी रहती हैं।

पेशियों का आकार भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। वह प्रायः लम्बा और चौकोना होता है, किन्तु गोल, लम्बा अथवा सीधा या टेढ़ा भी हो सकता है। पेशीत्वचा की बनावट विशेष चमत्कारिक होती है। पेशीत्वचा साबुनके डिब्बेके समान दो भाग की होती है। एक भाग भीतर रहता है और दूसरा उसपर ढक्कन समान रहता है; इससे यह विदित होता है कि पेशी दो प्रकार की होती है। एक ओरसे केवल ढक्कनके इधर उधरके भाग दिखाई पड़ते हैं और ऊपरसे देखने पर कुल ढक्कन दिखाई पड़ता है। पेशीत्वचामें बहुत सा भाग बिलकुल ठण्ढे द्रव्यका होता है। अतः चाहे जितनी आँच दी जाय तो भी पेशीका आकार और उसपर की रेखायें नहीं मिटती। पेशीत्वचा पर बहुतसी टेढ़ी रेखायें और छिद्र होते हैं। पेशीमें बीचो बीच एक केन्द्र और एकसे चार तक कड़े या बहुत छोटे रंजित द्रव्यके कण जीव द्रव्यमें फैले रहते हैं। ये रंजितकण प्रायः चिपटे होते हैं और लाल तथा पीले या नारंगी रंगके होते हैं। पिरनॉइड के कण भी उसमें बहुधा पाये जाते हैं।

वानस्पतिक उत्पादन पेशी विभागसे होता है पेशियोंका विभाग सर्वदा उसकी लंबी तरफसे होता है। प्रथम पेशीमें का जीवद्रव्य बढ़ने लगता है और जैसे २ वह बढ़ता है वैसे २ वे दोनों ढक्कन बगलोंको हलका बनाकर फूलने लगता है। आखीर में जाकर भीतरका भाग इतना बड़ा होता है कि अनायास ही पेशियोंके दोनों ढक्कन बगलमें होजाते हैं। फिर प्रत्येक 'अर्ध' एक दूसरे अर्ध भागको इस तरह उत्पन्न करता है कि वह उसके भीतर रहे और इस रीतिसे दो वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं. अर्थात् प्रत्येक वनस्पतिके दोनों अर्ध भाग एक ही अवस्थाके नहीं होते। हर समय इस प्रकार से विभाग कर और हर समय नये भागको भीतर करनेके कारण पेशी हर समय आकारमें किंचित् छोटी होती जाती है और उसकी त्वचा ठण्डे-द्रव्यसे बनी हुई होनेके कारण वह फूलती भी नहीं तब सब वनस्पतियाँ प्रति दिन छोटी होती जाती हैं इस प्रकारसे छोटी होकर एक निश्चित अवधि तक पहुँचने पर दो पेशियाँ पास पासमें निकलती हैं। उसमें के जीवद्रव्यके और केन्द्रके दो विभाग होते हैं और दो २ विभागोंके सँयोगसे दो जनन पेशियाँ तैयार होती हैं। ये जनन पेशियां पूर्वकी जनन पेशियोंके दुगुनी या तिगुनी बड़ी होती हैं और उससे फिर द्व्यणवी वनस्पति उत्पन्न होती है।

(८) द्वितंतुकी (Heterocontacae)—वनस्पतियाँ एक पेशीमय या तन्तुमय होती हैं। एक पेशीमय वनस्पतिमें उस पेशीके दो महीन बालके सदृश तन्तु होते हैं; उनमेंका एक लम्बा और दूसरा नाटा होता है और एक केन्द्र तथा २—६ तोतेके समान हरेरङ्गके रञ्जित द्रव्य और एक जड़ स्थान होता है। तन्तुमय वनस्पतियोंका शरीर तन्तुओं का होता है। उनमें भी केन्द्र तथा हरे रञ्जित द्रव्य होते हैं। इस तन्तुमें विशेषता यह है कि उसकी पेशी त्वचा दोहरी होती है और उन दोनों भागोंमें

एक वलयाकृति प्रशस्त जगह होती है। जनन पेशियोंमें दो तन्तु–एक नाटा और लम्बा होता है। कई जातियोंमें दो समान लिंग तत्व पेशीमें से निकलकर संयोग पाते हैं और उससे उत्पादन होता है। वानस्पतिक उत्पादन पेशी विभागसे होता है।

हरित् पाणकेश (Chlorophyceae)—इस जातिकी वानस्पतियोंकी विशेषता अर्थात् उनके शुद्ध हरे रङ्गका होना है। इनमें बहुत सी जातियाँ मीठे जलमें और आर्द्र भूमिपर मिलती हैं। समुद्र में भी बहुत सी जातियाँ हैं। इनमें कई समय पिरनॉइट् कण प्राप्त होते हैं। इनमें पिष्ट सत्त्व (Starch) सर्वदा मिलता है। कुछ वनस्पतियाँ एक पेशीमय हैं तथा कुछ तन्तुमय हैं। तन्तुमय जातियोंमें भी कई एकमें डालियाँ निकलती हैं, इतरोंमें नहीं निकलतीं।

एक पेशीमय जातिमें प्रत्येक पेशीके महीन २ बालके समान तन्तु होते हैं। इन तन्तुओंके सम्बन्ध से वे इधर उधर घूम सकते हैं। प्रत्येक पेशीमें एक एक केन्द्र जीवद्रव्य तथा हरि द्रव्यमय शरीर होता है। इनमें की कुछ जातियोंमें पेशी स्वतंत्ररूपसे सञ्चार करती हैं और कुछमें दो दो चार चार एकत्र मिलकर संघ बनाकर रहती हैं। व्होलव्हाक्स नामकी जातियोंमें बहुत सी पेशियोंका एक पोला गोला बनता है। सर्व पेशियोंसे तन्तु निकले रहते है। अतः यह संघ पानीमें घूमता है। जहाँपर पानी किंचित् हरे रंगका दिखाई पड़ता है वहाँ पर ये वनस्पतियां मिलती हैं। महत्कारी शीशेमें से देखनेपर ये संघ सुईके छेदके गोलेके समान दिखाई पड़ते हैं। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रमें से देखनेपर इनमें बहुत सी पेशियां दिखाई पड़ेगी इनमें भिन्न भिन्न पेशियोंके जीवद्रव्य महीन महीन धागोंसे एक दूसरेमें जुड़े रहते हैं, तथा हरिद्रव्य बहुत होता है। पेशी विभागसे, या संघके टुकड़े होनेपर वानस्पतिक रीतिसे अनेक नयी वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। योगसम्भव उत्पादनमें दो तत्त्वोंके रज अथवा रेतका संयोग होकर नयी वनस्पति तैयार होती है।

संघमें कुछ विशिष्ट पेशियां इसी कामके लिये रहती हैं और कुछ रेत उत्पन्न करती हैं। यह तत्व बिलकुल सूक्ष्म, किन्तु किंचित् लम्बे आकारका होता है और उसमें बालके समान दो धागे होते हैं। कुछ रज निर्माण करनेवाली पेशियां होती हैं इन दोनोंका संयोग संघके मध्यभागके पोले हिस्से में होकर उससे एक प्रकारकी जननपेशी होती है। बाहरका संघ नष्ट होजाता है। भीतरकी ये पेशियां बाहर आती हैं और उनसे नयी वनस्पतियाँ तैयार होती हैं।

एक पेशीमयकी अन्य कई जातियोंमें उत्पादन करीब करीब ऊपरके अनुसार ही होता है, लेकिन कुछ जातियोंमें पेशियोंके संघ गोल न हो कर तिरछे होते हैं। बहुधा उनमें संघही नहीं होते। कई एकमें योगसंभव उत्पादनमें के दोनों तत्व एक ही समान होते हैं। अतः स्त्री तथा पुरुष तत्व अलग नहीं पहिचाने जा सकते।

तंतुमय वनस्पतियोंमें तीन मुख्य जातियाँ होती हैं। पहिली जाति ऊर्णिका (Ulothrix) तन्तुओं द्वारा बना हुई है। दूसरी, एंटेरो मार्फा (Enteromorpha) फीते की तरह या पट्टी के समान चौड़ी तथा पतली होती है। इनमे शाखायें नहीं फूटती। ऊर्णिकाके तन्तुमें बहुतसी पेशियाँ होती हैं। प्रत्येक पेशीमे एक एक हरिद्रव्यका पट्टा होता हैं। एक पेशीसे एक अथवा अधिक जनन उत्पन्न हो कर उनसे अयोग संभव उत्पादन होता है। इन जनन पेशियोंमें बालके समान चार २ तन्तु होते हैं उनके कारण वे तैर सकते हैं। योगसंभव रीतियोंमें 'समान तत्वों' का संयोग होता है। ये समान तत्व जनन पेशियोंके समान ही एक पेशीसे उत्पन्न होते हैं किंतु जनन पेशी की अपपेक्षा अधिक होते हैं। प्रत्येक तत्व में बालके समान दो दो तन्तु होते हैं। एक वनस्पतिमें ही दो तत्व संयोग नहीं होते। दो भिन्न२ तन्तुओंके तत्वोंका संयोग होता है तथा एक जननपेशीका निर्माण होता है। इस पेशीसे एक एक पेशीमय वनस्पति होती है और वह जननपेशी उत्पन्न करती है। इन जननपेशियों से पहिलेके समान तन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार चार छोटे तन्तुओंकी जनन पेशियाँ उत्पन्न होती है उसी प्रकार चार या दो तन्तुओं की बिलकुल छोटी समान तत्व सदृश जनन पेशी भी उत्पन्न होती हैं और कुछ समय बाद उनसे मूलके समान वनस्पति होती है। उत्पादक इन्द्रियोंकी या तत्वोंकी यह अपूर्णावस्था इस वनस्पतिकी विशेषता है।

एला डोफोरा (Eladophora) नामक तन्तुमय वनस्पति पिछली वनस्पतियोंकी अपेक्षा कुछ भिन्न होती है। इसमे शाखायें फूटती हैं। इस के प्रत्येक पेशीमे बहुत केन्द्र होते हैं तथा इसके हरिद्रव्य शरीर बहुतसे गोल धब्बोंके समान दिखलाई पड़ते हैं। इसके तंतुओंकी लम्बाई कभी २ एक फूट तक होती है। दूसरी जाति से

इसमें विशेषता दिखाई पड़नेवाली बात यह है कि इसके सिरेके पास वर्धमान अग्र दिख ई पड़ता है। इस वर्धमान अग्रके पास एक टेंगुरीके समान फूलता है और वह अलग बढ़ता है और उससे शाखा तैयार होती है। असंयोगिक उत्पादनमें सिरे के पास की पेशी में बहुत जननपेशियाँ उत्पन्न होती हैं और उनमें भी बालके समान दो दो तन्तु होते हैं। इन जनन पेशियोंके बाहर होने पर उनसे नयो वहस्पति तैयार होती है इसका योगसंभव उत्पादन ऊर्णिकाके समान ही समान तत्वोंके संयोगसे होता है।

समुद्र में मिलने वाली कुछ जातियों की पेशियों पर चूने के पुट बैठे रहते हैं और इस कारण वे बहुधा मूंगेके समान देख पड़ते हैं। इस प्रकारकी जातियोंमें योगसंभाव उत्पादन समान तत्वोंका न हो कर दो अच्छी तरह पहिचाने जाने वाले स्त्री तथा पुरुष तत्वोंके संयोगसे होता है।

सायफोनेल (Siphonales) के भेदोंमेंकी वाचेरिया (Vaucheria) नामकी जाति मीठे पानी और आर्द्र जमीनपर मिलती है। उसमें जो जननपेशियां तैयार होती हैं वे दूसरोंके सदृश सब पेशियोंमें तैयार नही होती। केवल सिरेकी पेशियोंमें ही होती हैं। सबसे पहले सिरेकी पेशी फूलती है और फिर उसमें जननपेशी तैयार होती हैं। वह पेशी इतनी बड़ी होती हैं कि बिना किसी यन्त्रकी सहायतासे ही आंखसे देखी जा सकती है। इस जातिका योगसंभव उत्पादन भी भिन्न है। प्रथम पेशीमें दो ऊँचे भाग और उनके बीचमें पेशी कवच उत्पन्न होता है और फिर उस मूल पेशीसे वे भिन्न होते हैं। वे ऊँचे भाग फिर बढ़ते हैं और उनको दो पेशियाँ होती हैं। उन दोनोंमेंसे एकमें बहुत से पुंस तत्व होते हैं और दूसरी में एकही स्त्री तत्व होता है। भीतर रहने वाली पेशीके मुखकी ओरकी त्वचा फूटकर उस पेशीमें स्त्रीतत्वके सामनेही एक खिड़कीके समान प्रशस्त जगह होती है। फिर पुंस्तत्वकी पेशी फटती है और उसमेंसे पुंस्तत्व बाहर गिरते हैं। और उनमेंका एक पुंस्तत्व खिड़कीके भीतर जाकर स्त्रीतत्वसे संयोगसे एक जननपेशी तैयार होती है और उसपर एक कवच आता है। इस पेशीसे फिर आगे एक नयी वनस्पति तैयार होती है।

(१०) पिंगी (Phaeophyceae) सुंघनी रंगकी एक वनस्पति है। यह जाति हरित पाण केशकी तरह एक पेशीमय पुच्छविशिष्ट (Flagellata) से हुई होगी। इन वनस्पतियोंके शरीरोंकी रचना हरी वनस्पतियोंकी अपेक्षा किंचित् उच्चकोटिकी होती है। अपवादात्मक कुछ वनस्पतियोंको यदि छोड़ दिया जाय तो यह जाति खारे पानीमें मिलती है, ऐसा कहनेमें कोई हरजा नहीं है। समुद्रके अधिक ठंढे पानीमें इन वनस्पियोंकी पूर्णावस्था प्राप्त होती है। इनमें की भिन्न भिन्न बनस्पतियोंके शरीरमें बहुत वैचित्र्य दिखलाई पड़ता है। सबसे सादे प्रकारकी वनस्पतियोंके शरीर पेशियोंके एकके आगे एक रहनेवाले तन्तुओंके होते हैं। किसी किसीमें डालियाँ निकलती हैं और किसी किसीमें नहीं निकलती। वहुतेरोंका स्थाणु अनेक पेशियोंका नलीके समान पोला और गोल होता हैं। उसमें बहुत सी डालियां निकली रहती हैं। कुछका स्थाणु अनेक पेशीमय, चिपटा और फैला रहता है। इस प्रकार के दोनों विभागोंमें वृद्धि एक अग्रस्थित वर्धमान पेशी (Apical growing cell) से होती है। कुछ बनस्पतियाँ गोल भी होती हैं। पेशियोंमें बहुधा एक केन्द्र होता है। रंजित द्रव्य शरीर बहुधा गोल या टेढ़ा मेढ़ा होता है उसमें सुंघनी रंगका द्रव्य होता है और इसी कारण वनस्पतियाँ भी काले तपकिरी रंगको होती हैं। अच्छी प्रकारसे पूर्णावस्थामें पहुँची हुई वनस्पतियोंकी शरीररचनामें बहुत सुधारणा दिखलाई पड़ती है। बाह्य पेशियोंकी तह सर्वदा बाह्य द्रव्योंका सात्मीकरण करती है। दो जातियोंमें चलनीके सदृश नलिकाकी तरह एक पेशीजाल देख पड़ता है और वह बहुधा ओजसद्रव्य (Albumon) मिश्रित रसको वहाकर लेजानेका काम करता होगा।

समुद्रमें रहने वाली जातियां आकारमें बहुत बड़ी होती हैं। उत्तर समुद्रमें मिलने वाली लामिनेरिया (Laminaria) नामकी वनस्पतीका आकार चिकने और फैले हुये पत्तेके सदृश रहता है। उसमें एक डण्ठल भी रहता है। यह पत्ता १० फीट लम्बा रहता है और उसका डण्ठल आधा इंचका मोटा रहता है। दक्षिण ध्रुव महासागरमें उगनेवाली ऐसी ही एक वनस्पति है। वह तहमें उगती है वहां एक जाल बनाती है और वहींसे उसकी शाखा ऊपर पृष्ठ भागपर आकर फैलती हैं। ये शाखाएं २०० से लेकर २२५ फीट तक लम्बी होती हैं। दक्षिण ध्रुव महासागर की कई जातियां वृक्षके सदृश बढ़ती है। उनके तने मोटे होते हैं और बहुत ऊंचे बढ़ते हैं। दूसरी कुछ जातियां इससे भी बड़ी होती हैं। इन सबके

अरण्य समुद्रके तलेमें, जमीनके ऊपर वाले अरण्य के समान ही होते हैं।

फयूकस (Fucus) नाम की जाति सब समुद्रों में पाई जाती है। बम्बई और कोकणमें समुद्रके किनारेपर मिट्टीके साथ आकर गिरी हुई वनस्पतियोंमें यह बहुधा पाई जाती है। सुंघनी व लाल रंगकी साधारण मोटी; और करीब करीब एक इंच चौड़ी और चिकनी यह होती है। इसपर बहुधा फोड़ेके सदृश कुछ ऊंचा ऊंचा दिखलाई पड़ने लगता है। इन फोड़ोंके नीचे चंबूके सदृश पोली जमीन होती है और उसमें उत्पादक इन्द्रियां रहती है। कुछ जातियोंमें एक ही पोली जमीनमें पुरुष और स्त्री जातियोंकी इन्द्रियाँ होती है। कुछ जातियोंमें तो एक वनस्पति पर केवल पुरुष व एकपर केवल स्त्री जातिकी इन्द्रियाँ दिखलाई पड़ती हैं। इन पोली जमीनमें इन्द्रियोत्पादक पेशीके अगल बगल कुछ लम्बे बालोंके सदृश पेशीके तन्तु रहते हैं। इसमें से कुछ उस पोली जमीनके मुखसे गुच्छोंके रूपमें बाहर निकलती हैं।

रेत करंडक (Antheridium) लम्बे रहते हैं और गुच्छेके सदृश एक छोटे डण्ठलपर निकलते हैं। उसके फूटनेपर उसमेंसे बहुत सी रेत पेशियाँ बाहर निकलती हैं। ये पेशियां उस वक्त मूल पेशीके अन्दरके आवरण में लिपटी हुई रहती हैं। तब यह भी आवरण फूटता है; और पेशियाँ अलग अलग होकर बाहर निकलती हैं। प्रत्येक पेशी आकारमें लम्बी होती है और उसमें बालके सदृश दो तन्तु रहते हैं। ये तन्तु बराबरके लम्बे होते हैं। प्रत्येक पेशीमें एक लाल बिंदू रहता है। रज करंडक (Archigonium) गोल रहता है। प्रत्येक करंडकमें आठ रजपेशियां रहती हैं। उनके चारों तरफ एक पतला वेष्टन रहता है। पेशीके फूटनेपर वह पतला वेष्टन भी फटता है और रजपेशियां बाहर निकलती हैं। उसके चारो तरफ रेतपेशियों का एक बड़ा समूह जमा होता है। और उनमें से उसका एकसे संयोग होता है। फिर उसपर त्वचा आती है और वह नीचे तलेमें चली जाती है और फिर अवसर पाकर उससे नई बनस्पति तैयार होती है। कुछ फ्यूगस की जातियोंमें रजपेशियाँ आठ न होकर केवल चार, दो या एकही रहती है। ऐसी अवस्थामें प्रथम तो उसमें आठही पेशियाँ होती है किन्तु उसमें की चार छः या सात नष्ट हो जाती हैं और शेष अच्छी रहती हैं। इस जातिकी बहुतसी वनस्पतियाँ अत्यन्त उपयोग की होती है। लामिनेरिया और फ्यूगस इत्यादि किसी किसी की राखसे अद (Iodine) नामका एक पदार्थ निकलता है। दवाइयों तथा रसायन शास्त्रमें इसकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। दूसरी भी कुछ जातियाँ औषधधर्मसंयुक्त होती है। कुछका उपयोग चीनी और जापानी लोग खाने में करते हैं।

(११) ताम्र वनस्पति—(Rhodophyceae) ये वनस्पतियाँ भी समुद्रमें मिलती हैं। इनके आकार भी कई प्रकारके होते हैं। एक वनस्पति बिलकुल सादी अर्थात् तन्तुओं की तरह पेशियों की पंक्ति होती है। यह बहुधा पट्टोकी तरह चौड़ी किन्तु चिपटी; और इसमें कई एक डालियाँ निकली हुई दिखलाई पड़ती है। कुछ बिलकुल पत्तोंके सदृश होती हैं। उनमें डण्ठल बीचमें की शिरायें इत्यादि सभी कुछ रहती हैं। इन सब जातियोंमें जड़के सदृश कुछ तन्तु होते हैं। वे जमीनमें पैठकर ऊपरी भागोंको मजबूतीसे पकड़कर रखते हैं। कुछ वनस्पतियों पर चूने की तह बैठ जाती है और वे मूंगेकी तरह दिखलाई पड़ती हैं। इसमें रंजित द्रव्य खैरके रंगका होता है इसलिये इनका रंग खैर या सुंघनी होता है। पेशियोंमें एक या अधिक केन्द्र हो सकते हैं।

अयोगसम्भव उत्पादन इतर जातियोंकी तरह जननपेशियोंसे होता है किन्तु योगसम्भव उत्पादन तो दूसरों की अपेक्षा बहुत भिन्न होता है। रेत करंडकमें केवल एक ही रेतपेशी उत्पन्न होती है। वह गोल होती है और उसमें तन्तु नहीं होते। इस कारण उसमें चञ्चलता नहीं होती। जल प्रवाहके साथही साथ उसको रज पेशी की ओर जाना पड़ता है। रज करंडक लम्बी होती है और उसके नीचेका भाग एकाध चंबूके सदृश फूला हुआ रहता है। इसमें रजपेशी होती है ऊपरी भाग रेतको पकड़नेकेलिये होता है। रेतके समीपमें आतेही ऊपरी भागका मुंह फटता है और रेत भीतर आता है। फिर उसमें का द्रव्य रजपेशियोंसे संयोग पाता है। इनसे एकदम नयी वनस्पति उत्पन्न नहीं होती, बल्कि पहले कुछ तन्तु वहीं उत्पन्न होते हैं। इन तन्तुओं पर बहुत सी जननपेशियाँ होती हैं। इन जननपेशियोंसे दूसरे तन्तु होते हैं और इन दूसरे तन्तुओं से नयी वनस्पति उत्पन्न होती है। इस प्रकार एक वनस्पतिसे दूसरी तक स्पष्ट दो पीढ़ियाँ होती हैं।

इस जातिकी वनस्पतिसे एक कड़ा किन्तु आर्द्र गोंदके समान पदार्थ तैय्यार होता है और इसका दवाइयोंमें उपयोग होता है। इससे अँगर नामका एक पदार्थ बनाते हैं। वह खाने तथा अन्य अनेक कार्यमें आता है।

(१२) अवि भाजितालिंब (Phycomycetes)- यह अलिंब (Fungi) वर्गोंमें का एक भेद है। वे वनस्पतियाँ बहुत छोटी होती हैं और परोपजीवी होती हैं। प्राणिज या वनस्पतिजन्य बड़े प्राणियोंके शरीरोंपर ये उत्पन्न होती हैं। इनका स्थाणु बहुतसे गुथे हुए तन्तुओंसे तय्यार रहता है। इसके बीचमें पेशीत्वचा आकर उसके अलग अलग भाग नहीं होते। केवल उत्पादक इन्द्रियोंके उत्पन्न होनेके समय ही भाग होते हैं, और उनकी वे इन्द्रियाँ बनती हैं। जीवद्रव्य सर्वत्र रहता है। उसमें अतिशय छोटे छोटे बहुतसे केन्द्र होते हैं। किन्तु रंजितद्रव्य शरीर तो कहीं देख नहीं पड़ते। इसलिये ये वनस्पतियां रंगहीन होती हैं।

इसका अयोगसंभव उत्पादन जननपेशीसे होता है। प्रथम एक पेशीमेंका सम्पूर्ण जीवद्रव्य विभाजित किया जाता है और उनसे बहुत सी जननपेशियाँ उत्पन्न होती हैं। जो जातियाँ पानी में होती हैं उनके जननपेशियोंमें एक या दो केश सदृश तन्तु होते हैं इस कारण वे तैर सकते हैं। जो जमीनपर हवामें रहती हैं उसमें एक पेशी कवच होता है। हवासे उड़कर इष्ट स्थल पर गिरते ही उनसे नयी वनस्पतियाँ तैयार होती हैं। योगसंभव उत्पादनमें दो रीतियाँ होती हैं। कुछ जातियोंमें रेतकरंडक से एक नली निकलती है और वह रजकरंडकसे जाकर मिलती है। इस नली द्वारा रेतमें का द्रव्य रजसे मिलता है और उससे एक जननपेशी तैयार होती है। केवल एक ही वनस्पतिमें रेत स्वतन्त्ररूपसे बाहर गिरता है। दूसरी रीति है दो समान तत्वोंका संयोग और उससे जननपेशीकी उत्पत्ति।

गोभी, नवलकोल, आलू इत्यादिको भी रोग होता है। वह इसी जातिकी सब वनस्पतियोंमें होता है। इनके स्थाणुके तन्तु पत्तोंके त्वचारंध्र से भीतर जाते हैं और अन्दर अपने जाल फैलाते हैं। बाहर निकले हुवे तन्तु ऊपरकी तरफ बढ़ते हैं और फिर उनपर जननपेशी निकलती है। ये जननपेशियां बहुत शीघ्रतासे बढ़ती हैं और बहुतायतसे होती हैं। वे वायुके साथ उड़ जाती हैं। इसी लिये यह रोग फैलता है।

गोबर, बासी अथवा अन्य खुले रखे बासी भोजनके पदार्थपर जो भूरी सी (फफून्दन) देख पड़ती है, वह भी इसी जाति की होती है। यह पिछली वनस्पतिसे बहुत ही बड़ी होती है। कुछ दिनमें यह काली पड़ती हुई देख पड़ती है। सूक्ष्म यन्त्रोंसे इसे देखने पर इसकी रचना स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कुछ तन्तु टेढ़े मेढ़े फैले रहते हैं। कुछ उस पदार्थके भीतर घुसे और कुछ ऊपर निकले हुवे देख पड़ते हैं। ऊपर निकलने वालोंमेंसे बहुतोंके सिरेमें एक गोली निकली हुई देख पड़ती है। यह जननपेशी उत्पादन करनेवाली पेशी रहती है; इसमेंका जीवद्रव्य अलग २ होकर अन्दर जननपेशियाँ उत्तम प्रकारसे तैयार होती हैं। तब ऊपर पेशीका कवच फूटता है और फिर जननपेशियाँ बाहर निकल पड़ती हैं। जनन पेशी जिन पेशियोंमें रहती हैं वे हाथमें छोटे छोटे कणोंके सदृश मालूम होती हैं। तथा आँखसे योंही दिखलाई पड़ती है। कभी कभी ये अयोगसम्भव रीतिके बदले योगसंभव रीतिसे उत्पन्न होती हैं। ऐसे अवसर पर मूल तन्तुमें अगल बगल दो शाखायें निकलती है। इन दो तन्तुओंका आकार बहुत निकट आकर उनकी नोक एक दूसरेसे चिपक जाती है। तब उस चिपके हुवे भागके निकटमें ही दोनों तन्तुओंमें दो त्वचा उत्पन्न होती हैं, और इन पूर्ण तन्तुओंसे दो छोटे छोटे भाग अलग होते हैं। चिपके हुवे भाग की त्वचा फूटनेसे इन दो भागोंके द्रव्य आपसमें संयोग पाते हैं। तत्पश्चात् उसपर एक खुरखुरी कँटीली त्वचा आती है। उसीसे एक जननपेशी तैयार होती है। इस वनस्पतिसे अन्य नई वनस्पति उत्पन्न होती है। ये जाति बड़ी वनस्पतियों पर रोग रूपसे उत्पन्न होती हैं।

[इस विषयके पूर्ण ब्यौरेके लिये "पिकोंके रोग" शीर्षक लेखमें देखिये]

(१३) विभाजितालिंब (Eumycetes)—अलिंब वर्गका यह दूसरा भेद है। इसमेंकी वनस्पतियोंका शरीर भी अविभाजित लिंबकी तरह तन्तुओंका होता है। पेशीत्वचा महीन रहती है। इसमें भी रंजित द्रव्य नहीं होता। तन्तु एक दूसरेमें उलझे हुए रहते हैं तो भी वे एक जीव नहीं हो पाते। उच्च कोटिके अलिंबमें तो बहुत से शाखा युक्त तन्तु एकत्र होकर उनका एक गोला बन जाता है, और एक किंचित् समपरिणाम पेशी जाल (Parenchymatons tissue) तैयार होता है। इनमेंके दो भीतरी भेद इनके अयोगसम्भव उत्पादनसे पहिचाने जाते हैं। पहिलेमें एक मुद्-

गलाकार पेशी होती है और उसमें जननपेशीकी निश्चित संख्या बहुधा आठ होती है। दूसरी भिन्न भिन्न आकारकी चार पेशियोंके एक ही भाग पर अथवा एक पेशीमय भागपर जनन पेशियोंकी एक निश्चित संख्या बहुधा चार होती है। अन्य जनन पेशियाँ उस भागपर कलिकाके समान निकलती हैं।

इसका प्रथम आन्तरिक भेद—इसमें संयोगिक इन्द्रियां रहती हैं। रजका रेतसे संयोग होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाली जननपेशी मूल वनस्पति से अलग न होकर वहीं रहती हैं और उससे वहीं पर तन्तु उत्पन्न होते हैं और उनमें अयोग सम्भव जननपेशी निकलती है। ये तन्तु और पहलेके तन्तु मिलकर कभी २ एक फलके समान पदार्थ तैयार होता है। इसके दो बिभाग किये जा सकते हैं—पहिला तो तन्तुसे संयोगिक इन्द्रियां उत्पन्न होना जिसे लिंग पीढ़ी (Gamatophyte) कहते हैं, तथा दूसरा इसके संयोगसे होनेवाली जननपेशीसे तन्तु उत्पन्न होकर उनमें अयोगसंभव रीतिसे जननपेशीका निकलना; जिसे अलिंग पीढ़ी (Sporophyte) कहते हैं। इस बारेमें तथा इनके संयोगके बारेमें यह जाति लाल वनस्पतिके सदृश है।

अयोगसंभव उत्पादनमें एक पेशीके केन्द्रके आठ भिन्न २ भाग होते हैं और इनकी जनन-पेशियां होती है। ये बहुधा एकके आगे एक नथे हुए पेशीमें रहते हैं। इस पेशीके टोंक फटने पर वे बाहर निकलती हैं और वायुके साथ उड़ जाती हैं। बरसातमें बूटपर, जूतेपर अथवा लकड़ीपर हरे अथवा पीले रंगका भूरा सा जो देख पड़ता है वह इसी जातिकी एक वनस्पति है। ये बहुत छोटी होती हैं। एक प्रकारका ऐसा ही भूरा सा धान्य पर आता है। यह अत्यन्त औषधोपयोगी है। इससे अरगाट (Ergot) नामकी औषधि निकलती हैं।

इसी जातिमें किण्व (Yeast) नामक वन-स्पतिका समावेश होता है। यह वनस्पति पेशि-मय है। इसका आकार गोल अथवा लम्बाई लिये गोल होता है। प्रत्येक पेशीमें एक केन्द्र रहता है। इसका उत्पादन प्रायः वानस्पतिक रीतिसे होता है। पेशीमें कलीके सदृश प्रथम एक फुँदनी निकलती है और बढ़ते २ उसीकी एक स्वतंत्र पेशी हो जाती है। ऐसी अनेक पेशियां एक दूसरेसे चिपकी रहती है और उनसे एक जंजीर तैय्यार होती है। जिस जगह ये रहती हैं वहाँ का पोषक द्रव्य जब खतम होने लगता है तब उनसे जननपेशियाँ उत्पन्न होती हैं। ये वनस्पतियाँ चीनी पर रहती हैं और उनसे मद्य व कर्बद्विप्राणिद नामका वायु तैय्यार किया जाता है द्राक्ष पर इनकी जननपेशियाँ रहती है इस लिये द्राक्षका रस निकाल कर रखनेसे वह खट्टा हो जाता है और उससे मद्य तय्यार हो जाता है। ताड़का रस प्रथम बिल्कुल मीठा रहता है और उससे गुड़ तथा शीरा तैय्यार करते हैं। किन्तु वही रस कुछ देर रह जानेसे खट्टा हो जाता है और उसको ताड़ी नामकी शराब बनती है। ऐसी दारु तय्यार करनेमें किण्व ही सहायक होता है। सब प्रकारकी पीनेकी शराब किण्वसे ही तैय्यार होती है; इस लिये उसका आजकल बहुत प्रमाणमें व्यापार सम्बन्धी उपयोग होता हैं।

द्वितीय आंतरिक भेद—इसमें योगसम्भव उत्पा-दन बिल्कुल नहीं होता। केवल एक ही वनस्पति में ये इंद्रियां अथवा इन्द्रियोंका अवशेष पाया जाता है। किन्तु इस वनस्पतिमें भी इन इन्द्रियों की संयोग-शक्ति नष्ट हुई रहती है। इनमें भी तन्तु होते हैं और इनसे प्रायः चार २ जननपेशियाँ निकलती हैं। इस जननपेशीसे फिर तन्तु उत्पन्न होते हैं। गेहूँ मक्का इत्यादि धान्य पर जो लाल रोग रहता है वह इसीसे होता है। इनके कारण फसलका बहुत नुकसान होता है। छत्री अथवा भूछत्र नामकी वनस्पति इसी जातिकी होती है। इनके अनेक भेद होते हैं और वे सब सड़ने वाले काष्ट इत्यादि पदार्थों पर उगते हैं। उसमें एक डंठल रहता है। उसपर छातेकी तरह फैलने वाला अथवा ऊपर गोलेके सदृश एक भाग रहता है। यह डंठल लम्बे २ सूतके सदृश पेशियोंसे बना हुआ रहता है। ऊपरके बड़े हिस्सेमें जनन-पेशी निकलती हैं। उस भागके अधोभाग में झालरके समान बहुतसे फुँदने होते हैं, इन फुदनों से बहुतसे अति सूक्ष्म तन्तु निकलते हैं और कई एक पर जननपेशी निकलती हैं। कुछ जातियाँ बहुत विषारी होती हैं तो कई एककी गणना उत्तम स्वादिष्ट सागोंमें होती है। बहुतसे लोग इसका साग बनाकर खाते हैं।

[विशेष व्यौरेके लिये 'पिकोके रोग' नामक लेखको देखिये।]

(१४) शिलावल्क (Lichens)—यह वन-स्पति दो वनस्पतियोंके पास २ होनेसे एक दूसरे की सहायतासे उत्पन्न हुई संयुक्त वनस्पति है। उच्च कोटिके अलिंबके (मुख्यतः विभाजितालिम्ब

के पहिले आन्तरिक भेद वालोंके) अथवा नील-पाणकेश (Cyanoppyceae) और हरित पाणकेश (Chlorophyceae) के बिल्कुल निकट सहवासके कारण दोनोंके संमिश्रणसे एक स्थाणु होता है और इसीको शिलावल्क कहते हैं। यदि ठीक २ भेद किया जाय तो अलिब और हरित् या नील पाणकेश (Algae) दोनोंका उन २ भागोंमें विचार करना चाहिये। किन्तु भिन्न २ शिलावल्कोंमें ही इतना सादृश्य है कि उनकी एक अलग जातिका बनाना ही अच्छा होगा।

प्रथम तो कुछ पाण केशों की (Algae)पेशियों के चारों तरफ बहुतसे अलिबके तन्तु जमते हैं और उनको पूर्ण रूपसे बझा देते हैं। बुरशीको इस पाण केशोंकी पेशियोंसे इन्द्रियद्रव्य मिलता है, और उसपर उनकी उपजीविका अवलंबित रहती है। कई दफे तो ये तन्तु पाणकेशकी पेशियोंमें भी प्रवेश करते हैं और उनमें का द्रव्य खा जाते हैं। इसके अतिरिक्त पाणकेशकी पेशियोंको अलिबसे भी अनेक पदार्थ मिलते हैं। इस रीति से यह जोड़ी एक दूसरे की सहायतासे अपना २ आयुष्य क्रम चलाते हैं।

इनके स्थाणुओंके बहुत से भेद हैं। बिल्कुल सादे प्रकारके अर्थात् दो प्रकारके तन्तुओंसे मिलकर एक संयुक्त तन्तु होने वाले होते हैं। तब कड़ी जगहपर काले रंगकी किंचित तह दिखाई पड़तो है। ये उसमें मिलते हैं। कुछ पत्तों के सदृश होते हैं। उनकी पेशियोंपर सरसों सरीखा एक लसदार और चिपकने वाला पदार्थ होता है। ऊपरके दोनों भेदोंमें दोनों वनस्पतियोंका मिलाप अच्छी तरह से हुआ रहता है। दूसरे अन्य भेदोंमें यह मिलाप इतना अच्छा नहीं होता उन्हें मिश्रस्थाणु कहते हैं। उसके बिल कुल मध्य भागमे पाण केशकी पेशियाँ होती हैं। उनके चारों तरफ बुरशीके तन्तु अलग २ होते हैं। इसके ऊपर और नीचे बुरशी की मोटी २ तह होती हैं। ये दोनों बाहरकी तहोंसे अधिक मोटी होती हैं और पेड़की त्वचाके समान होती हैं। ऐसे मिश्र स्थाणुके शिलावल्कके तीन विभाग किये जाते हैंः—(१) पापुद्रके सदृश। इनके तह पत्थर पर पाये जाते हैं। (२) पत्तोंके सदृश। इनका आकार फैले हुवे पत्तेकी तरह होता है और ये बहुत फैलकर पत्थरमें चिपके हुवे रहते हैं। इनके नीचेके हिस्सेमे पतले तंतु होते हैं। इसी कारण ये पत्थरमें अथवा पेड़की छालसे चिपकी रहती हैं। (३) फलके सदृश। यह तंतुमय अथवा फीते के सदृश होता है। इनके स्थाणुओंका एक छोटा सा गुच्छा होता है और वह नीचे केवल पत्थर पर अथवा पेड़में चिपका रहता है। कुछ अंश हवा में स्वतंत्र रहता है अथवा जमीनपर फैलता है।

इनमें की भुकड़ीमेंसे जनन पेशियां निकलती हैं किंतु वे अकेली प्रायः नहीं उगती। इनके जोड़ी में अगर पाणकेशी पेशियां न रहें तो ये नहीं उगती। कुछ अकेले उग सकती हैं। शिला वल्कों का वानस्पतिक उत्पादन होता है। स्थाणुके टुकड़े हो कर वे अलग होते हैं और प्रत्येक टुकड़ा बढ़ कर अपने लिये तंतु उत्पन्न कर पत्थर पर चिपकता है। मिश्रस्थाणुमें प्रायः पाणकेशियोंके चारो तरफ तंतुओंका एक मजबूत वेष्टन हो कर एक गोला तैय्यार होता है। तब स्थाणु फूटता है और यह गोला बाहर निकल कर हवाके साथ उड़ जाता है और नवीन शिलावल्क उत्पन्न होते हैं। फलके सदृश भाग केवल भुकड़ीका रहता है। पाणकेश केवल वानस्पतिक रीतिसे उगते हैं; पर लिबकी तरह तंतु जरूर आते हैं। विभाजित (Eumycetes) के पहिलेके अंतरिक भेदमें के जो तंतु शिलावल्कमें रहते हैं उनका योगसंभव उत्पादन भी होता है। दूसरे आंतरिक भेदके भी शिलावल्क होते हैं। मसाले में छोड़ा जाने वाला 'पत्थर फूल' भी एक शिलावल्क है। लिटमस नामका एक रंग जो रसायन शास्त्र में होता है वह शिलावल्कसे निकाला जाता है।

(१५) कांड शरीरिका—(Characeae) स्थाणु वर्गमें की यह अंतिम जाति है। इस वर्गकी यह बहुत ही उच्च कोटिकी वनस्पति है। यह बिलकुल हलकी तथा उच्च वनस्पतीकी अपेक्षा बहुत हो भिन्न होती है। ये मीठे जलमें पाई जाती है। इनका रंग हरा होता है और ये सींक की तरह दिखाई देती हैं। मध्य भागमें तना रहता है और उसमें करीब २ समान अन्तरपर घास के समान कांड होते हैं। प्रत्येक काण्डाग्र पर वर्तुलाकार चारों ओर मूल तने की तरह किन्तु महीन २ सींककी तरह शाखायें फूटती हैं। इन टेढ़ी शाखाओंमें भी कभी २ और डालियां फूटती हैं। शाखा और तनेके बीचके बगलके अक्षकोणमें और भी एक दो शाखायें फूटती है। यह डाल भी तने की तरह अच्छी लंबी होती है। काण्डाग्र से निकले हुए तन्तुओंसे यह वनस्पति जमीन में बिलकुल प्रवेश करती हैं। यह वनस्पति कभी २ एक फुटसे भी अधिक लंबी होती है। इसकी लंबाई उन एक अग्रस्थित वर्धमान पेशीसे

बढ़ती है। इस पेशीके विभाग होकर अधोभाग के और भी विभाग होते हुए शाखें बढ़ती हैं। ऊपरका भाग पहिलेके इतना बड़ा होकर उसके फिर दो भाग होते हैं। उसमें का ऊपरका हिस्सा फिर बढ़ता है और फिर उसके दो भाग होते हैं। कांड बांस के समान पोले होते हैं। उसकी पेशियों में एक एक केन्द्र होता है। और बहुत से गोल हरिद्रव्य शरीर होते हैं।

जननपेशीसे अयोगसंभव उत्पादन कांड शरीरिका में कभी नहीं होता। योगसंभव उत्पादन रेत व रजके सम्बन्धसे होता है। रेतकरंडक गोल और तांबेके रंगका होता है, और बिना यन्त्र के ही आंखों से देख पड़ता है। रज करंडक लंबे आकार के होते हैं। ये दोनों प्रकार के करंडक मुख्य तनेमें अथवा उसकी डालियों में निकली हुई महीन २ डालियोंके काण्डाग्र पर निकलते हैं। कुछ वनस्पतियोंमें एकमें केवल रेतपेशी और दूसरीमें केवल रजपेशी ही मिलती हैं। प्रायः शेष सभी वनस्पतियोंमें रेत व रज दोनों एक ही वनस्पति पर मिलते हैं।

रेतकी डिबिया एक थैलीसे उत्पन्न होती है। उस थैलीके आठ भाग होते हैं। फिर हर एक भागके तीन तीन विभाग होते हैं। तब बाहरी आठ कोशों के सम्मिलन से बाहरी पोला गोला तैयार होता है और बाकीसे गोलेके आठों भागों में भीतरसे डंठे उत्पन्न होते हैं और उन डंठोंमें लंबी लंबी पट्टियोंकी तरह थैलियाँ निकलती हैं। इन थैलियोंमे रेत कोश रहते हैं। रेतकोश काग (Cork) निकालने के पेंच के समान ऐंठनदार होता है और उसमें बालके समान दो तन्तु रहते हैं।

रजकोश प्रथम खाली रहता है किन्तु शीघ्र ही उसपर पाँच कोशोंका एक वेष्टन चढ़ आता है। ये कोश उसके चारो तरफ लिपट कर उनके सिरे अन्तमें कलगीके समान ऊपर उठ आते हैं। इन सब सिरोंके बीचके छिद्रोंसे रेत भीतर जाता है और फिर उसका संयोग रजसे होता है। रजकोशमें बहुतसे तेलके बिन्दु तथा पिष्टसत्व (Starch) रहता है। रजका संयोग होनेसे उसपर एक मोटी त्वचा आती है और वह वनस्पतिसे अलग होकर गलकर नीचे गिरजाता है। फिर उससे कुछ तन्तु उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् उन तन्तुओंसे नीचे जड़के समान तन्तु और ऊपर मुख्य डाल तैयार होनेसे कांड शरीरको पूर्ण रूप प्राप्त होता है।

योरपमें एक बनस्पति है जो केवल रजकोश बनाती है। इसमें बिना संयोगके स्वयं ही रजकी गर्भधारणा होती है और इससे नयी वनस्पति उत्पन्न होती है। कुछ बनस्पतियोंमें नीचेके हिस्से में छोटे २ प्याजके सदृश पदार्थ तयार होते हैं। ये प्याज कांडसे ही एक विशिष्ट प्रकारसे बने रहते हैं। उनमें पतली २ डालियाँ भी रहती हैं।

लिंग करंडक धारी—(१) शैवाल वर्गकी (Bryophyta) दो जातियाँ होती हैं—(१) सेवार-सेवार तन्तुसे भिन्न, (२) सेवारके सदृशही पत्थर तथा ईटपर उत्पन्न होने वाली और फैलने वाली बनस्पति। स्थाणुवर्ग और इस वर्गमें मुख्य भेद इनके संयोगेन्द्रिय विषयका है। इन वर्गोंमें जननकोशसे अयोगसंभव उत्पादन होता है। जननकोशोंसे तयार होने वाली वनस्पतियोंमें संयोगिक इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं. और इन इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होने वाली वनस्पतिमें जननकोश उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारसे इस वर्गमें अलिंग और लिंग दोनों प्रकारकी पीढियां उत्तम प्रकारसे दिखलाई पड़ती हैं। जननकोशके स्पर्श होते ही तत्काल बनस्पति तैयार होती है। किन्तु सेवार में उससे पहले एक तन्तुमय जाल उत्पन्न होता है और उसमें कलियाँ निकलती हैं। इन कलियोंमें सेवार उगता है। यकृतकमें की बहुत सी बनस्पतियों में द्विपाद (Dichotourous) शाखायें निकलती हैं और ये सब शाखायें नीचे तन्तुओंसे जमीनमें चिपक जाती हैं। उच्च यकृतक और सब सेवारोंमें तन्तु और पत्ते अलग २ रहते हैं। तनेमें नीचेकी ओर तन्तु होते हैं। ये तन्तु जड़ का सब काम करते हैं। इस वर्गमें असली जड़ें नहीं रहती। सेवारकी भीतरी बनावट भी बहुत ही सरल प्रकारकी होती है। जब तनेमें (शिरायें वाहिनियां) रहती हैं तब वे बिल्कुल सरल अर्थात् लम्बे कोशोंके समुदायकी तरह रहती हैं। संयोगिक इन्द्रियाँ सेवारमें पूर्ण रूपसे बढ़नेके बाद लिंग पीढ़ी पर आती हैं। जो स्थाणुरूप होते हैं उनके ऊपरी भागमें, और जो प्याजके सदृश होते हैं उनकी चोटी पर ये इन्द्रियाँ रहती हैं।

रेतकी डिबियाँ लम्बी, गोल या मुद्गलाकार रहती हैं। उनमें एक डंठल रहता है। इनमें बहुतसे कोश होते हैं और प्रत्येकसे दो दो रेतःकोश उत्पन्न होते हैं। डिबियोंका ऊपरी भाग फटकर रेतकोश बाहर निकलते हैं। इनमें किंचित् ऐंठन होती है और बालके सदृश दो २ तन्तु रहते हैं। रजकी डिबियाँ सुराहीके समान रहतीहैं।

उनमें प्रायः डंठल नहीं होता और यदि हो भी तो बहुत ही सूक्ष्म रहता है। कभी २ तो ये अगल बगल कोशोंमें कुछ कुछ घुसे रहते हैं। इनके सुराही सदृश भागमें एक कोश रहता है। वहीं रजकोश बनता है। ऊपरकी गर्दन लम्बी होती है। रज जब पूर्णावस्थामें पहुँचता है तब ऊपर के कोशका मुख खुल जाता है और उसमेंसे एक प्रकारका रस बहने लगता है। इस रसकी तरफ रेतका आकर्षण होता है और फिर दोनोंका संयोग होता है। इससे अलिंग पीढ़ी उत्पन्न होती है। सेवारमें यह पीढ़ी एक फलके सदृश रहती है और वह सर्वदा वनस्पतीपर ही चिपकी रहती है और कुछ अंशोंमें परोपजीवी होती है। इन वर्गोंकी दो जातियोंमें से यकृतकमें जननकोशसे तन्तुमयजाल विस्तृत न होकर सहसा लिंग पीढ़ी हो जाता है। इसके जननकोशमें पंखके समान अथवा पुच्छके समान कुछ अवयव रहते हैं। दूसरी जाति सेवारमें तन्तुमय भाग स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ता है। यह वनस्पति, तना और पत्तों से पूर्ण रहती है; और उसके जननकोशमें पंख नहीं रहते।

यकृतक (Hepaticeae) के चार विभाग किये गये हैं। प्रथम (Riceiaceae) जातिमें बनस्पतियाँ पत्तोंके समान रहती हैं और जमीन पर फैलती हैं। इनमें शाखायें द्विपाद पद्धतिसे निकलती हैं। इनके नीचेके अंगमें तन्तु और वल्कपर्ण (Scales) रहते हैं। इनके संयोगसे ही इनके जड़का काम निकलता है। रेत और रजकी डिबियाँ ऊपरके अंगमें रहती हैं। वे आस पासके कोशोंमें किंचित् घुसी रहती हैं। संयोग होनेपर उत्पन्न होने वाले कोशसे फलके सदृश एक अवयव तैयार होता है। इनमें जननकोश तयार होते हैं, और उसी भागको अगिल पीढ़ी कहते हैं।

दूसरी प्रकारकी (Marchantiaceae) वनस्पतिमें बहुत विकास हुआ दिखलाई पड़ता है। ये आकारमें करीब पौन इंच चौड़ी रहती हैं। इनका आकार पत्तोंके सदृश फैलकर इनमें द्विपाद शाखाएँ निकलती हैं। नीचेके भागमें तन्तु और वल्कपर्ण रहते हैं। ऊपरी भागमें कुछ छिद्र रहते हैं। इनमेंसे हवा भीतर जाती है। इसके स्थाणुपर पत्तोंके समान शिरायें रहती हैं। इन शिराओं पर बीच बीचमें एकाध फैले हुए प्यालेके समान अवयव निकलते हैं। इस प्यालेका किनारा आरी के दांतेके समान कटा हुआ रहता है। इस प्याले में बहुतसे छोटे छोटे गोल पदार्थ रहते हैं। इनमें एक डंठल रहता है। इनमें कुछ कोश बिलकुल रंग हीन रहते हैं। उनसे जड़का काम देनेवाले तन्तु उत्पन्न होते हैं। पूर्ण रीतिसे बढ़ने पर ये उस प्यालेके बाहर निकल आते हैं और उनसे नयी बनस्पति तैयार होती हैं। इस प्रकार केवल वानस्पतिक रीतिसे इन प्रकारके वनस्पतियोंकी वृद्धि बहुत अधिक होती है।

संयोगिक इन्द्रियाँ इनकी विशिष्ट शाखाओंपर उत्पन्न होती हैं। ये शाखायें तनेपर ऊँची और खड़ी निकलती है। बनस्पतियोंमें भिन्न २ वनस्पतियोंपर पुरुष और स्त्रियोंकी इन्द्रियोंकी शाखा ऊँचे डंठलपर निकलती है। इसका आकार चिपटे और फैले हुए भूछत्रकी तरह होता है। उसका घेरा भूछत्र की तरह सीधा नहीं होता, (सर्पाकार) टेढ़ामेढ़ा होता है। इसमें गढ्ढे रहते हैं और उनमें रेतकी डिबिया रहती हैं। प्रत्येक कोशमें बहुतसे रेतकोश होते हैं। स्त्रीइन्द्रियोंकी शाखा भी एक ऊँचे डंठल पर निकलती है। उसका आकार भी थोड़ा बहुत पुरुषेन्द्रियोंके समान होता है। किन्तु इसके मध्यसे व्यासकी तरफ लंबी २ रेखाओंकी तरह नौ अवयव होते हैं। हर दो रेखाओं में नीचेकी तरफ एक एक लंबी थैली रहती है और उसीमें रजकी डिबियाँ रहती हैं। संयोगसे फल सदृश एक भाग उत्पन्न होता है। रजकी डिबियामें ही यह भाग तैयार होता है और भीतरी कोशोंसे जननकोश होते हैं। फिर उस भागका डंठल लम्बा होता है और वह भाग रजकी डिबियाको फोड़कर बाहर निकलता है। उनका भी बाहरी आवरण फट जाता है और जननकोश बाहर निकल आते हैं। जननकोशोंको पंखोके सदृश पुच्छ (दुम) होती हैं। ये भीतरी कोश की ही वृद्धि होनेसे होते हैं। जननकोशोंसे नयी वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं।

तीसरे (Anthocerotaceae) भागमें तना जमीनमें बिलकुल मजबूतीसे जमा रहता है। उस पर रेत और रजकी डिबियाँ उगती हैं। उसमें डंठल नहीं होता और ये आसपासकी जमीनमें करीब २ पूर्णरीतिसे गड़े हुए रहते हैं। संयोगके बाद रजकोश पूर्णरीतिसे भीतर जाता है और उसपर बगलके कोशकी तह बैठती है। भीतर पूर्णवृद्धि होनेपर भीतरसे सेमके सदृश एक अवयव ऊपर आता है। इसीसे जननकोश तैयार होता है। उसकी फिर दो फांक होकर दो खड़े भाग होते हैं और जननकोश बाहर निकलते हैं।

सेमके मध्य भागमें एक खडा तन्तु रहता है। स्थाणुके नीचे हिस्सेमें कुछ छेद रहते हैं। उसमें नॉस्टॉक नामके नील वनस्पतिमेंके तन्तु रहते हैं।

चौथे (Taungerman Viaceac) भागमें कई एकमें पत्ते और तने अच्छी रीतिसे भिन्न भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। कई एकमें मुख्य भाग स्थाणु रूपही रहता है। इनमें स्त्री और पुरुष अवयव भिन्न भिन्न स्थानमें निकलते हैं किसीपर वे दो पत्तोंमें आते हैं, तो किसीपर अग्र भागमें आते हैं। उनके आनेके इन स्थानोंसे उनमें भेद किये हैं। संयोगसे एक फल सदृश भाग होता है और उससे पंखोंसे युक्त जननकोश तैयार होते हैं।

(२) शैवाल (Mosses)-ये बनस्पतियाँ, जहाँ सर्वदा पानीके गिरनेसे जमीन भीगी रहती है, वहाँ, या बरसातमें खुली जगहमें अथवा वृक्षों वगैरह पर उगती हैं। ये साधारणतया एक या डेढ़ इंच ऊँचाई की होती हैं। इनको उखाड़ कर देखनेसे एक तना, उसीपर पत्ते और नीचे जड़के समान तन्तु दिखलाई पड़ते हैं। पत्ते तनेके चारों तरफ करीब करीब वर्तुलाकारमें निकले रहते हैं। कभी कभी तना जमीनपर तिरछा फैलता है। तब यद्यपि पत्ते सब ओरसे निकले रहते हैं तो भी वे दो तरफ मुड़कर ऊपर आते हैं, और इस कारण उतना भाग अलग दिखाई पड़ता है।

तनों की भीतरी बनावट बिलकुल साधारण होती है। कुछ वनस्पतिनोंके मध्य भागमें स्तंभ (Stele) सदृश एक कोशजाल होता है। यह लम्बे बढ़े हुए कोशोंका एक समुदाय रहता है। इसकी अपेक्षा इसमें अधिक विकास नहीं हुआ रहता। इसमेंसे पोषक द्रव्य बहता है। किसी २ वनस्पतियोंके तनेमें कुछ छिद्र रहते हैं। इसमेंसे हवा बाहर भीतर जाती है। पत्तों की रचना भी बिलकुल सादी होती है। बहुधा उसमें कोशोंकी एक तह होती है उनमेंसे किसी किसीके मध्य भागमें एक शिरा सदृश भाग होता है। उनमें भी केवल लम्बे कोश रहते हैं। इनमेंसे पत्तों को पानी मिलता है। जड़के समान तन्तु होते हैं। वे भी सादे कोशोंके होते हैं। उनमें डालियाँ (शाखायें) निकलती है।

प्रायः संयोगिक इन्द्रियाँ अग्र भागके पास पत्तोंके गुच्छोंमें निकलती हैं। दोनों प्रकारकी इन्द्रियाँ एक ही वनस्पतिपर निकलती हैं, परन्तु किसी किसीमें अलग अलग भी निकलती हैं। फल सदृश भाग, अर्थात् अलिंग पीढ़ी, की भिन्न भिन्न वनस्पतियोंमें बहुत कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। उनके इन भेदोंसे उनकी जातियां ठहरायी गयी हैं। सरसरी तौरसे देखनेपर वह भाग कवच सदृश मोटी त्वचासे आच्छादित और आकारमें लम्बा मालूम पड़ता है। उनमें बीचो बीच खडा एक बहुकोशमय भाग रहता है। इनमें पोषक द्रव्य होते हैं और बढ़ने वाले जनन कोशों को उनसे पोषण मिलता है इनके बाहर चारों तरफ जननकोशो की थैली होती है। उनमें जननकोश तैयार होते हैं। जननकोशोंमें पुच्छके समान अवयव नहीं होते। अपरि पक्वावस्थामें जननकोशोंके थैलीके बाहर एक कोश समूह रहता है यह आवश्यक द्रव्योंका सात्मीकरण (Assimilation) करता है। इसके समीपही एक जलको इकट्ठा करने वाला कोशजाल होता है। कुछमें इस भागमें एक लम्बा डण्ठल होता है, और उसपर वह ऊँचा उठा रहता है। परिपक्क होनेपर उसके ऊपरका भाग ढक्कनकी तरह फट जाता है, और भीतरसे जननकोश बाहर निकलते हैं। कुछमें तो वह ढकनेकी तरह नहीं फूटता किन्तु पूरा ही दो भागोंमें फाँकके सदृश फट जाता है। कुछमें बिलकुलही न फटकर नष्ट हो जाता है। जनन कोशसे प्रथम तो तन्तु उत्पन्न होते हैं फिर इन तन्तुओंपर कलिकायें उत्पन्न होती हैं। उसीसे सेवार उगता है।

(३) वाहिनीमय अपुष्पवर्ग—(Pteridophyta Vas-cular cryptogams) इन वर्गोंमें स्थल (Ferns) जल (Water ferns) अश्वपुच्छ और मुद्गल, ये चार जातिकी वनस्पतियाँ होती हैं। ये सब अपुष्पवर्गमें अधिक बिकास पायी हुई हैं। सेवार वर्गकी तरह इन वर्गोंमें भी दो पीढियां उत्तम प्रकारसे दिखाई देती हैं। प्रथम लिंग पीढ़ी पर स्त्री और पुरुष दोनों इन्द्रियां निकलती हैं उनके संयोगसे अलिंग पीढ़ी उत्पन्न होती है। इस पीढ़ीपर जनन कोष निकलते हैं और उनसे फिर पहलेकी तरह लिंग पीढ़ी निकलती है।

लिंग पीढ़ीको पुरस्थाणु (Prothallus) कहते हैं। यह बिलकुल छोटा और चौथाई इंचसे लेकर आधे इंच तकका होता है। कुछ जातियोंमें यह यकृतक (Hepaticeae) बनस्पतिके सदृश दिखाई पड़ता है। यह पत्तोंको तरह चिपटा और हरा रहता है। इसका आकार करीब २ अरुईके पत्तेकी तरह रहता है और उसके नीचेके भागमें तन्तु निकलते हैं और जमीनमें घुसते हैं। इनमेंसे किसी किसीमें शाखायें निकलती हैं और किसी

किसीमें यह तन्तु रूपसे रहता है। अधिकतर यह जमीनके ऊपर रहता है परन्तु किसी किसीमें वह आधा या पूरा मिट्टीके भीतर घुसा रहता है; और किसी किसीमें तो यह जनन-कोशमें ही उगता है। पुरस्थाणुपर संयोगिक इंद्रियाँ निकलती हैं। रेतकी डिबियामें ऐंठनदार और बाल सदृश तन्तुवाले बहुतसे रेत-कोश होते हैं। रजकी डिबियामें केवल एक रज-कोश रहता है। रज-कोशसे सेवारकी भांति इसमेंसे भी कुछ रस बहता है इस कारण उस तरफ रेतका आकर्षणहोता है। इस संयोगसे सेवारकी भांति अलिंग पीढ़ी उत्पन्न होती है। ये ही इस भेदकी मुख्य वनस्पतियां हैं।

इन वर्गोंमें अलिंग पीढ़ीका अधिक विकाश हुआ देख पड़ता है। इनकी भीतरी बनावटमें अधिक विस्तार हुआ है और उनमें पत्ते, तना और जड़ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। बहुतोंमें, रजका संयोग होनेपर कोष अलग होने लगता है। इहके पहले दो विभाग होते हैं और फिर इसके आठ विभाग होते हैं। इनके विभागोंसे कोशका एक छोटासा समूह तैयार होता है। इस समूहसे तनेका अग्र भाग, पत्ता, जड़ और इसी वर्गमेंका एक विशेष अवयव पैर (Foct) उत्पन्न होता है। यह पैर अर्थात् कोशोंका एक समूह होता है। इसके योगसे यह छोटासा गर्भ पुरस्थाणुपर चिपककर रहता है और पुरस्थाणुसे कोषके पदार्थको सोख लेता है। जब गर्भसे स्वतः जड़ें फूटने लगती हैं और पोषक पदार्थ सूखने लगता है, तब पैर व्यर्थ हो जाता है और प्रायः पुरस्थाणु भी नष्ट हो जाता है।

गर्भसे उत्पन्न हुई जड़ शाखाहीन या शाखायुक्त होती हैं। वह खड़ी या जमीनपर फैली रहती है। उसमें शाखायें लगती हैं। उनका पत्तोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। पत्ते सब तरफ या केवल दो तरफ ही रहते हैं। वे वर्तुलाकार होते हैं इनमें सेवार सदृश तन्तु नहीं होता किन्तु सपुष्पकी तरह असली जड़ेंही रहती हैं। पत्तियाँ भी सपुष्पके सदृश रहती हैं। पत्तियां तनों और जड़मेंसे शिराओंका समूह स्पष्ट रूपसे जाते हुए दिखाई पड़ता है। इसी कारण इस वर्गको वाहिनीमय अपुष्प वर्ग कहा जाता है। जड़में जो उपवृद्धि होती है वह एक विशिष्ट प्रकारके संवर्धक छोरसे (Cambium) होती है। किन्तु इस समय जो वनस्पतियां अस्तित्वमें हैं उनमेंसे बहुत थोड़ी वनस्पतियोंमें यह-दिखाई पड़ती है।

वानस्पतिक रीतिसे जनन-कोश तैयार होते हैं। ये प्रायः पत्तोंपर अथवा कहीं कहीं तनोंपर पत्तोंके अक्षकोणमें निकलती हैं। जननकोशके गुच्छोंमें (Sporangium) जननकोश निकलते हैं। इनके आसपास एक मोटी त्वचा होती है। इसके भीतरी कोशसे जननकोश होते हैं। प्रत्येक परिपक्व जननकोशमें कई एक फीटका एक कवच होता है। जननकोशके आसपास जीवनतत्वका एक लसदार भाग होता है। इनमेंसे उनको पोषक द्रव्य मिलते हैं। प्रायः सब जननकोशोंसे पुरस्थाणु (Prothallus) होता है और उसपर स्त्री औरपुरुष दोनों ही इंद्रियां निकलती हैं कई एकसे ऐसा पुरस्थाणु उत्पन्न होता है कि, उसपर केवल एक प्रकारकी इंद्रियां निकलती हैं। कितने तो इतने आगे बढ़ जाते हैं कि जननकोश ही में एक स्त्री जननकोश और दूसरा पुरुष जननकोश दा अलग जातियां होती हैं। उनसे क्रमशः रज और रेत उत्पन्न करनेवाले पुरस्थाणु उत्पन्न होते हैं।

इस वर्गके वनस्पतियोंका वर्गीकरण आगे दिया जाता है।

(१) नेच (Filicinae)—इनमें तना शाखाहीन या शाखायुक्त होता है। पत्तियां अच्छी तरह पूर्णावस्थाको पहुँची रहती हैं। जननकोश का गुच्छे पत्तियोंके पृष्ठ भागमें अथवा अक्षकोणमें निकलते हैं। (२) अश्व पुच्छ (Eguisetineae) का तना शाखा रहित या शाखा सहित होता है। पत्तियां वर्तुलाकार होती हैं, और एक दूसरेसे इतनी सटी रहती हैं कि उसका एक सघन आवरण हर एक काण्डके अग्र भागके चारों तरफ हो जाता है। विशिष्ट पत्तियोंके नीचेके हिस्सोंमें जननकोश के गुच्छे निकलते हैं और उन सबकी एक कलगी सिरेपर होती है। (३) मुद्गलक (Lyeopodineae) इनका तना लम्बा और द्विपाद शाखाओंका होता है। पत्तियोंके अक्षकोण में या उनके डंठलसे कठिन कवचोंके जननकोश के गुच्छे निकलते हैं।

नेच—(१) स्थलनेचको केवल नेच भी कहते हैं वाहिनीमय अपुष्प (Pteri dophyta) वर्गमें सबसे अधिक वनस्पतियां इस जातिकी हैं। इसके दो भाग करते हैं। एक तो वह जिनकी जननकोशकी त्वचा कोशोंके अनेक तहोंकी होती हैं, प्रथम श्रेणीमें इस समय बहुत थोड़ी वनस्पतियां दिखाई पड़ती हैं; यद्यपि पूर्वकालमें बहुत होती थीं। इनमें छोटे तथा बड़े आकारकी वनस्पतियां होती हैं। इनमेंसे कुछका पुरस्थाणु जमीन में पूर्ण रूपसे गड़ा रहता है।

और कुछका ज़मीनके ऊपर रहता है। दूसरी श्रेणीमें सब प्रकारके नेचोंका समावेश होता है। इनमें की सबसे बड़ी जाति उष्ण कटिबन्धमें होती है। बहुतसी जातियां छोटे२ पौधोंके सदृश होती हैं किन्तु कुछ बड़े पेड़ोंके सदृश होती हैं। यह सिंहल द्वीपमें बहुतायतसे हैं। नीलगिरि पर्वत पर उटकमंडके प्रसिद्ध बागमें बहुत सी इसी श्रेणीकी समान जातियां हैं। सह्याद्रिके कैसलरॉक जंगलमें भी ऐसी बहुत जातियां पाई जाती हैं। ये दस बारह फीट ऊंची होती है। इनमें शाखायें नहीं लगतीं। इनके सिरेपर लम्बे२ संयुक्त पर्णों का एक गुच्छा होता है। ये पत्तियां अन्तिम कली (Terminal bud)से एकके ऊपर एक उत्पन्न होती हैं। पत्तियां सूखनेपर नीचे गिर जाती हैं और उनसे एक बड़ा व्रण तनेपर हो जाता है। जो छोटे पुच्छको तरह रहते हैं उनका मुख्य तना जमीनपर फैला हुआ अथवा कभी कभी ज़मीनके नीचेसे टेढ़ा बढ़ता है। इनके सिरेपर संयुक्त पर्णो का एक गुच्छा रहता है। पत्तियां जब छोटी रहती हैं तभीसे अग्रभागसे लेकर डंठल तक घड़ीके स्प्रिंगके सदृश लिपटी हुई रहती हैं। सब नेचोंमें और जलनेचोंमें यह बात विशेष है। कुछ बनस्पतियोंके पत्ते सादे रहते हैं और विभक्त नहीं होते किन्तु पूरेके पूरे होते हैं। उष्ण प्रदेशमें कितनी जातियां दूसरे वृक्षोंपर अर्धांश परोपजीवी वृत्तिसे रहती हैं।

उदाहरणार्थ—मर्कट वार्शिंग, नामका पौधा ऊँचे वृक्षोंपर पाया जाता है। कुछ पत्तोंपर, तनों पर या पत्तोंके डंठलोंपर एक विशेष प्रकारकी सुंघनी रंगकी वल्कें (Scales) रहती हैं।

इसमें जननकोशके गुच्छे बहुत होते हैं। वे पत्तोंके पृष्ठ भागपर निकलते हैं। जिन पत्तोंपर जननकोशके गुच्छे निकलते हैं वे इतर पत्तोंसे भिन्न नहीं होते। बहुत थोड़ी अपवादात्मक वनस्पितियों में दो प्रकारके पत्ते भिन्न रहते हैं। भिन्न भिन्न जातियोंमें उनकी रहन सहन, आकार तथा रचना में बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है। अनेक जनन-कोशके गुच्छोंका एक संघ पत्तोंके पृष्ठ भागमें एक छोटी गद्दीपर निकलता है। तदनन्तर इसपर एक महीन आवरण आता है। प्रत्येक जननकोशके गुच्छे पत्तेकी त्वचाके एक कोशसे तैयार होता है और इसमें बहुतसे जननकोश होते हैं।

जननकोशका सर्वसाधारण आकार गोल होता है। उनमें कोशके अतिरिक्त बिलकुल पतला लम्बा डंठल होता है इसपर जननकोशका गुच्छा रहता है। यह एक फूलनेवाली थैली होती है। इसके डंठलसे ऊपर सिरेतक और वहांसे दूसरी तरफ करीब२ आधे भागतक विशिष्ट कोशों की एक पंक्ति होती है। इन कोशोंकी त्वचा बहुत मोटी होती है। कितनोंमें तो इस मोटी त्वचाके कोशोंकी पंक्ति दूसरी तरफ मध्य भागपर नहीं ठहरती किन्तु सीधी नीचे आकर डंठलसे मिलती है और इस पंक्तिकी एक पूर्ण कड़ी बन जाती हैं कुछमें ये कोश नीचे डंठलसे डंठल तक नहीं रहते किन्तु केवल ऊपर सिरेपर रहते हैं। और कई एकमें यह पंक्तिमें न होकर उसके बदले मध्यमें दोनों तरफ मोटी त्वचाओंके कोशोंके दो समुदाय होते हैं। इन मोटी त्वचाओंके कोशों का उपयोग जननकोशके गुच्छोंके स्फोटनके (Dihisence) काममें आता है। कोशोंमेंका पानी कम होकर उनकी त्वचा सिकुड़ती जाती है और इस कारण जननकोशके गुच्छेके मध्य भागमें एक दरार पड़ जाती है। इस दरारमेंसे जननकोश बाहर निकलते हैं।

जननकोशके गुच्छेके आकार, और उसके ऊपरके आवरण इत्यादिसे भिन्न भिन्न नेचोंकी पहिचान होती है। बीचकी शिराके दोनों तरफ तिरछी शिराओंपर प्रायः ये उगते हैं। कई एकमें ये संघ सीधी रेखाओंके सदृश रहते हैं। कितनोंमें तो चन्द्रकलाकी तरह रहते हैं। कई एकमें पूरे वर्तुलकी तरह, तो कई एकमें अर्ध वर्तुलकी तरह होते हैं। कई एकमें पत्तोंकी ओरसे खड़े लम्बे डंठलके अग्रभाग तक दोनों तरफ दो अखंड पंक्तियां होती हैं। पत्तोंकी तरफ किंचित् मुड़कर वे ढक जाती हैं। ऊपरका आवरण कईमें एक होता है तो कुछमें नहीं भी रहता, किसी२ में आवरण सब तरफसे चिपका रहता है और कुछ में एक ही तरफसे चिपका रहता है तो कई एकमें केवल बीच ही में चिपका रहता है। इस प्रकारसे आवरणमें भिन्नताके आधारपर अनेक भेद हैं।

बहुधा पुरस्थाणु हृदयके आकारका अथवा ताशोंके पानके सदृश होता है। उसके नीचेकी तरफ स्त्री और पुरुष इन्द्रियां होती हैं। कई एक में यह तन्तुमय होता है और सेवारके जननकोशों के तन्तुओंके सदृश दिखाई देता है। उसके तिरछे भागपर दोनों इन्द्रियां निकलती हैं। तन्तुओंके बीचमें रेतकी डिबियां होती हैं और उसके ऊपर और स्कन्धोंके पास रजकी डिबियां होती हैं। रेतकी डिबिया गोल होती है और पुरस्थाणु

की त्वचाके कोशसे तैयार होता है। यह त्वचापर उभरे हुए फोड़के समान होती है। पूर्ण वृद्धिके बाद उनमें एक कोश होता है और इसमें पुरुष तत्वके जननकोश होते हैं। उनके बाहर कोशोंकी दो कड़ियां रहती हैं। बीचके कोशका विभाग होता है और उससे रेतके जननकोश बनते हैं और फिर इससे रेत होता है। रेतमें ऐंठन होनी है और उसमें बहुतसे बाल सदृश तन्तु होते हैं। किंचित् पुराने पुरस्थाणुपर रजकी डिबियां हो जाती हैं। ये भी एक कोशके समान होती हैं इनका चंबूसदृश भाग पुरस्थाणुमें धंसा हुआ रहता है और गर्दन बाहर रहती है। पूर्णावस्था पहुँचनेपर गर्दनके कोशका द्रव्य फूलता है, ऊपर का मुँह खुल जाता है और भीतरका द्रव्य बाहर गिरता है। तब रेतका आकर्षण होकर संयोग होता है।

कुछ वनस्पतियोंमें पुरस्थाणुसे संयोगके अतिरिक्त अलिंग पीढ़ीकी शाखा भी उत्पन्न होती है। और ऐसी शाखाओंसे पुरस्थाणु पैदा होता है। इस श्रेणीके वृक्षोंके तनेका तथा पत्तोंके डंठल परके तन्तुओंका औषधियोंमें उपयोग किया जाता है।

(२) पाण (Hydropterideae) ये वनस्पति पानी अथवा दलदलमें पैदा होती हैं। इनके केवल चार पांच ही भेद हैं। सबकी जनन पेशियां दो प्रकारकी रहती हैं। औरोंके समान इनकी जननपेशियां पत्तेके पीछे न आकर, इसके जननपेशोका गुच्छा एक फलके समान थैलीमें होता है। इनमें दो भेद हैं—एक स्थलवर्ती (Marsilio-ceae) और दूसरा जलवर्ती (Salvniaceae)

स्थलवर्तीमें पर्णगुच्छ (Marsilia) और तृणपर्णक (Pilularia) दो वनस्पतियाँ हैं। दोनोंका तना जमीनके सरपट बढ़ता जाता है, और उस पर खड़े पत्ते आते हैं। प्रत्येक पत्तेमें लम्बा डंठल होता है। पर्णगुच्छका पत्ता संयुक्त होता है, उसमें चार पर्ण होते हैं। ये सब एक जगहसे निकलनेके कारण इन पत्तोंका आकार चार पंखड़ियोंवाले फूलके समान होता है। जननपेशीके गुच्छेका फलके समान आकारवाला संघ पत्तेके डंठलपर तनेके पास निकलता है। ऐसेही बहुतसे संघ निकलते हैं। तृणपर्णके पत्ते लम्बे सींकके समान होते हैं। उनके पत्तोंमें चौड़ा पत्र Lamina नहीं होता। उनमें भी जननपेशीके गुच्छेके संघ डंठलके पास ही होते हैं। दोनोंके पत्ते सिरेसे डंठल तक लिपटे हुए रहते हैं। पर्णगुच्छमें जननपेशीके गुच्छोंके संघके दो खड़े भाग होते हैं। प्रत्येकमें चौदहसे अट्ठारह तक आड़ी पंक्तियां रहती हैं। प्रत्येक पंक्तिमें कई जननपेशीके गुच्छे होते हैं। स्त्री और पुरुष दो जाति की जननपेशीके गुच्छे एक ही पंक्तिमें मिलते हैं। तृणपर्णमें संघके चार भाग होते हैं और उनमें जननपेशीके गुच्छे भी होते हैं। पुरुष जननपेशी छोटी होती है। उसमें बाढ़ शुरू होकर पुरुष पुरस्थाणु उत्पन्न होता है। स्त्री जननपेशीमें भी इसी प्रकार पुरस्थाणु उत्पन्न होकर एक रज करंडक उत्पन्न होता है। दो तत्वोंका संयोग होकर वहीं अलिंग पीढ़ी उत्पन्न होती है।

जलवर्तीमें अमूल (Salvinia) और समूल (Azolla) दो वनस्पतियां हैं। ये पानीपर तैरती रहती हैं अमूल में प्रत्येक काण्डाग्रपर तीन तीन पत्ते रहते हैं। उनमेंसे दो हवामें और एक पानी में रहता है। ऊपरके पत्तोंका आकार और रूप साधारण पत्तोंका सा होता है। परन्तु पानीमेंका पत्ता तन्तु समान होता है और उसमें महीन २ बाल रहते हैं। अमूलमें जड़ नहीं होती। पानीमें के पत्ते उसके जड़का काम देते हैं। पत्तोंके डंठलोंके पास जननपेशीका गुच्छा होता है। प्रत्येक संघमें एक ही जातिके गुच्छे होते हैं। ये संघ गोल रहते हैं। समूलमें पत्ते बहुत होते हैं परन्तु छोटे छोटे होते हैं। इन पत्तोंके दो भाग हैं--एक हवामें और दूसरा पानीमें डूबा रहता है। भीतर डूबा हुआ भाग पानी शोषण करनेमें सहायता पहुँचाता है। ऊपरके भागमें कुछ नालियाँ होती हैं जिनमें नॉस्टॉक नामक नीलपाण्ड केश Cyano-phyceae के तन्तु रहते हैं। समूलमें जड़ें रहती हैं इसके जननपेशीके गुच्छों का समूह भी पत्तोंके डंठलोंके पास होता है। इसकी दोनों जातियोंकी जननपेशीके गुच्छे भिन्न भिन्न होते हैं। अमूल में पुरुष जननपेशीके गुच्छोंमें पुरुष जननपेशी उत्पन्न होती हैं और उसमें पुरस्थाणु आता है। उसके रेत करंडकमेंसे एक लम्बी नली बाहर आती है और वह जननपेशीके गुच्छेके त्वचाको फोड़कर उसमेंसे बाहर आती है इसमें चार रेत पेशी निर्माण होती है, वे इसी नली द्वारा बाहर निकलती हैं। समूलमें जननपेशीके गुच्छे फूटने पर गोंदके समान पदार्थ निकलने लगते हैं। उसी में जननपेशीका गोला होता है। उनके रेतकरंडक मेंसे आठ रेतपेशी बाहर आती हैं। स्त्री जननपेशी बहुत बड़ी होती है। यह जननपेशी, गुच्छोंमेंसे बाहर न निकलकर वहीं उत्पन्न होती है और उस

पर पुरस्थाणु आता है। उसपर तीन रज करंडक निकलते हैं। परन्तु अन्तमे उनमेंसे एक ही रह जाता है। इसमें एकका रेतसे संयोग होकर एक गर्भ तैयार होता है। उसको नेचेकी भांति 'पैर' होता है। गर्भसे नवीन अलिंग पीढ़ी उत्पन्न होती है

(२) अश्वपुच्छ (Equisetinae)—इस जाति में केवल अश्वपुच्छ नामक एक ही वनस्पति है। इसके साधारणतः २० भेद हैं। दलदलमें यह पैदा होती है। इसका तना आड़ा और जमीनके नीचेसे बढ़ता है, और ऊपर खड़ी शाखाएँ होती हैं। ये प्रतिवर्ष नयी पैदा होती हैं। शाखा अक्सर पाँच छः फीट ऊँची होती है। अमेरिकामें इसका एक भेद होता है जो सबसे ऊँचा बढ़ता है। उसकी ऊँचाई ४० फीट होती है और उसका तना एक इञ्च मोटा होता है। इसके तनेमें थोड़ी थोड़ी दूर पर कंडाग्र रहते हैं और उनके आस पास गोल पत्ते होते हैं। सब पत्ते एक दूसरेको जोड़ कर कंडाग्रके चारों ओर एक वेष्टन बन जाता है। पत्तोंके सिरोंपर कोने होते हैं। पत्तोंके अन्तकोणमें शाखा होती हैं। वे ऊपर आनेकी जगह न होनेके कारण इन पत्तोंके कंडाग्रका वेष्टन फोड़कर बाहर आती हैं। जमीनके नीचेके तनोंमें गड्ढे होते हैं। इसमें पोषक द्रव्य इकट्ठे हुए रहते हैं।

इसकी शाखाओंमें एक नली रहती है। उसके आस पासकी पेशीभोगमें गोल छिद्रोंकी एक पंक्ति देख पड़ती है, इनके बाहरी भागमें पिधानक त्वचा (Cortex) होती है। उसमें हरिद्रव्य होता है। इसके बाहरी भागमें कठिन पेशीजाल (Seleren-chyma) होता है। पत्ते बिलकुल छोटे होनेके कारण उनके सात्मी करण (Assimilation) का काम तनेको करना पड़ता है और उसके लिये उसमें हरिद्रव्य होता है। शाखाके कोनेपर तुर्रके समान एक भाग होता है। यह भाग जनन पेशी उत्पन्न करनेवाले पर्णका होता है। ये पत्ते विशिष्ट रीतिसे चपटे और नीरांजनके फूल पत्तीके समान आकारके होते हैं। उनमें डण्ठल होता है, और उसका चपटा भाग आगे निकला रहता है। ये पत्ते तनेपर गोलाकारमें आते हैं और उनका तुर्रा बनता है। प्रत्येक पत्तेके नीचे पाँचसे दस तक थैलियाँ होती हैं। उनमें जनन पेशी होती हैं। प्रत्येक जनन पेशी गोल होकर उसमें पुच्छके समान दो लम्बे पट्टे होते हैं। ये प्रथमतः उनके चारों ओर लिपटे रहते हैं। सूखनेपर वे छूटते हैं। इस कारण जननपेशी उड़ सकती हैं। थोड़ा सा पानी मिलते ही यह जनन पेशीके चारों ओर लपट जाते हैं। इससे दो भिन्न प्रकार के पुरस्थाणु उत्पन्न होते हैं। तब संयोगके लिये दोनों प्रकारके पुरस्थाणु पास पास हो जाते हैं। इस पुच्छमें जननपेशी अटककर उनका एक गोला होता है और वह एकदम ही एक जगह पड़ता है। इस प्रकार दो तरहके पुरस्थाणु उत्पन्न होते हैं। कुछ शाखाओं पर जनन पेशी नहीं आती। केवल विविक्षित शाखाओं परही आती हैं। इन शाखाओं में हरिद्रव्य नहीं रहता। जनन पेशीसे दो अलग पुरस्थाणु होते हैं। एक स्त्री और दूसरा पुरुष। स्त्री पुरस्थाणु दूसरेसे बड़ा रहता है। रेत और रज करंडक इस पुरस्थाणु पर आते हैं।

शाखाओंके बाहरी पेशीमें बालूके कण होते हैं। कई एकमें वह इतने अधिक प्रमाणमें होते हैं कि बर्तन माँजने और लकड़ी चिकनी करनेके काममें उनका उपयोग होता है। कुछ कुछमें विषैले पदार्थ भी तैयार होते हैं।

(३) मुद्गलक (Lycopodinae)—इस जातिमें तीन भेद होते हैं:—लघुपर्णक (Lycopodium) बल्कपर्णक(Selagimella)और दीर्घपर्णक(Isoetes) वाहिनिमय अपुष्प वर्गकी अन्य वनस्पतियोंसे इनको उनके रहन सहन और उनके जनन पेशी गुच्छकी वृद्धि द्वारा पहिचाना जाता है। तनों और मूलोंकी द्विपद शाखा फूटना और पत्तोंका बिल-कुल सादा होना उनकी अलिंग पीढ़ीमें विशेषता है। पहली दो वनस्पतियोंमें तना लम्बा और पत्ते छोटे होते हैं परन्तु दीर्घपर्णकमें तना छोटा गड्ढेके समान और पत्ते सूजेके समान होते हैं। नेचे अथवा अश्वपुच्छके समान इसकी जननपेशीके बहुतसे गुच्छे न होकर प्रत्येक पत्तेके अन्तकोणमें अथवा उसके शाखाके जड़के पास केवल एक एक ही जनन पेशीका गुच्छा होता है। यद्यपि कुछ वनस्पतियोंमें जनन पेशीके गुच्छे द्वारा आने वाले पत्तोंमें और अन्य पत्तोंमें फरक होता है, तथापि प्रायः उनका एक भिन्न आकार रहता है। अश्वपुच्छके समान उनके कोनेपर एक गुच्छा बनता है।

पत्तोंसे तुलना करनेसे यह प्रतीत हो जायगा कि इनकी जनन पेशीके गुच्छे दूसरोंसे बहुत बड़े होते हैं और उनपर पेशीके अनेक थरोंके कवच होते हैं। उनपर मोटी त्वचाकी पेशीका कड़ा नहीं होता। दीर्घपर्णकमें जनन पेशीके गुच्छेकी त्वचा सड़ती है और जनन पेशीके बाहर आजाती है। परन्तु अन्तमें एक खड़ी चीर होती है और

जनन पेशी एकही प्रकारकी होती हैं। वल्कपर्णक और दीर्घपर्णकके भिन्न भिन्न दो भेद होते हैं।

(१) लघुपर्णकके प्रायः सब भेद जमीन पर पैदा होते हैं। बहुत कम दूसरे पेड़ोंपर पैदा होते हैं। वे वनस्पतियाँ सह्याद्री पर्वतके कॅसलरॉकके जंगलमें पाई जाती हैं। तना बिलकुल जमीनके सरपट होता है। और ऊपर शाखाएँ निकलती हैं। शाखा और मूल द्विपाद होते हैं। तने पर घने पत्ते आते हैं और वे छोटे छोटे होते हैं। वे अधिक चौड़े और उनके सिरे बहुत लम्बे होते हैं अन्य भागोंकी अपेक्षा तुरें परके पत्ते अधिक घने होते हैं। प्रत्येक पत्तेके अक्षकोणमें ऊपरकी तरफ एक एक जनन पेशीका गुच्छा रहता है। उसका आकार मिरचाके अथवा बैंगनके बीजोंके समान होता है। उसके मध्य भागमें एक चीर पड़कर उसके दो भाग होते हैं और जनन पेशी बाहर पड़ती हैं। जनन पेशी एकही आकारकी होती हैं। पुरस्थाणु प्रायः जमीनके नीचे रहता है। कई बार उसका कुछ भाग ऊपर आता है और कई एकमें तो वह कुल ऊपर होता है। ऊपरवाले भागमें हरिद्रव्य होता है, सबमें नहीं होता। उनके नीचेकी ओर जड़में छोटे छोटे तंतु होते हैं, और ऊपरकी ओर संयोगिक इन्द्रियाँ होती हैं। पुरस्थाणुका आकार गिलासके समान होता है, और कभी कभी मूली अथवा गाजरके समान लम्बा होता है। रेतकरंडक करीब करीब बिलकुल ही बाजूकी पेटीमें गड़ा हुआ रहता है, और रज करंडक ऊपर रहता है। संयोगसे हुआ गर्भ कुछ समय तक पुरस्थाणु परही बढ़ता है और पूर्ण बढ़ जानेपर स्वतंत्र होता है।

(२) वल्कलपर्ण वनस्पतिमें अनेक भेद होते हैं। ये प्रायः जमीन पर फैलनेवाली होती हैं। परन्तु कुछ खड़ी भी होती हैं। कई एक किसीके आधार पर लताके समान ऊपर जाती हैं। इनके तनोंकी द्विपाद शाखाएँ होती हैं। इनकी वृद्धि इत्यादि करीब करीब लघुपर्णक सी ही हैं।

इनमें महीन २ बल्कोंके समान पत्ते होते हैं। ऐसे पत्तोंके सामने ही दूसरे बड़े तथा चौड़े पत्ते आते हैं। प्रत्येक पत्तेके निकलनेके स्थानके समीप एक छोटा सा बिल्कुल पतला आच्छादन होता है। यही इस जातिका विशेष लक्षण है। तनेके जहाँपर दो विभाग होते हैं, उस जगहसे एक लम्बी अंकुरोंके तन्तुके समान शाखा निकलती है और जमीनमें प्रवेश करती है। यह शाखा तनेका ही एक भेद है। इसमें पत्ते नहीं निकलते और जमीनमें प्रवेश करनेपर इसमें जड़ें फूटती हैं। मूल शाखाके तोड़नेपर इसमें पत्ते निकलते हैं।

शाखाके सिरेके पास फुनगी निकलती है। उनमेंके प्रत्येक पत्तेके अक्षकोणमे एक जननपेशी का गुच्छा रहता है। जननपेशियाँ दो प्रकारकी होती हैं। चार चार स्त्री जननपेशियाँ एक साथ मिलकर एक २ जननपेशी में होती हैं। पुरुष जननपेशियाँ बहुत सी मिलती हैं। जननपेशीके गुच्छोंमें दरार पड़ी रहती हैं। और फिर वे फूटती हैं और वे जननपेशियाँ बाहर निकलती हैं। पुरुष जननपेशियोंके गुच्छे फूटनेके पूर्व ही उसमें बढ़ने लगती हैं। उसमें पेशी विभाग होकर एक अति सूक्ष्म पुरस्थाणु निकलता है और उस पर रेतकरंडक तैयार होता है। इसमें बहुत सी रेत पेशियाँ होती हैं। उनमें बालके सदृश तन्तु होते हैं। स्त्री जननपेशी बहुधा जननपेशीके गुच्छे में ही बढ़ने लगती हैं। जननपेशी फूटकर पुरस्थाणु कुछ बाहर निकलता है। इससे तीन रजकरंडक उत्पन्न होते हैं। संयोग होनेपर गर्भ बढ़ता है। उसको पैर निकलते हैं, और लघुपर्णकके समान प्रलंबक नामक दूसरा भाग होता है। ये वनस्पतियाँ जंगलोंमें अधिकतासे पायी जाती हैं।

(३) दीर्घ पर्णक नामकी वनस्पतियाँ प्राचीन समयमें बहुत थीं। उन वनस्पतियोंमेंसे आजकल एक ही अस्तित्वमें हैं। इसका तना छोटे गड्डेके समान होता है और यह द्विपाद शाखा युक्त होता है। शाखायें तथा तने जमीनसे मिले रहते हैं। पत्तोंका एक गुच्छा ऊपर आता है। पत्ते लम्बे दर्भके समान तथा कड़े होते हैं। उसके मूलके पास भीतरकी ओर एक खाँच होती है। उसमें जननपेशी के गुच्छ होते हैं। तनेमें संवर्धक प्रदर (Cambium) रहता है और इसी कारण इसकी वृद्धि होती है। बल्कपर्णोंके समान ही इनके पत्तोंमें एक छोटा आच्छादन होता है। पुरुष जननपेशी भी वल्कपर्णकके समान पहले बढ़ने लगती है और उसमें सूक्ष्म पुरस्थाणु उत्पन्न होकर रेतकरंडक उत्पन्न होते हैं। रजकरंडक भी उसी प्रकार बढ़कर गर्भ तैयार होता है। इसको पैर होता है किन्तु लघुपर्णक और वल्कपर्णकके समान दूसरा भाग प्रलंबक नहीं होता। इस विषयमें यह वनस्पति मुद्गलक जातिसे भिन्न है।

प्रस्तरी भूत अपुष्प वनस्पति—प्राचीन समयकी कुछ वनस्पति और प्राणि इत्यादि भूकम्पसे या

और दूसरे कारणोंसे पृथ्वीमें समा गये। उनके ऊपर जमीनकी ऊपरी तहोंका दबाव पड़कर पत्थरों और कोयलों पर छाप पड़ गयी। कई एक स्वयं पत्थरोंके समान हो गये। इन सबको प्रस्तरी भूत नाम दिया जाता है। ऐसी प्रस्तरी भूत वनस्पतियाँ बहुत सी पायी गई हैं। इनसे पूर्वकालकी वनस्पतियोंका भेद, तथा इस वक्त उनका अस्तित्व है अथवा नहीं, और अगर है तो वे वैसा ही हैं अथवा उसमें कुछ भिन्नता आ गई हैं, इत्यादि विषयोंका ज्ञान होता है। ये प्रस्तरी भूत वनस्पतियाँ पृथ्वीके आवरणके कौन से तहमें पाई जाती है इससे भूस्तर-शास्त्रज्ञ इस बातका अनुमान निकाल सकते हैं कि वे किस कालकी हैं। इससे यह पता लगता है कि प्रथम कौन सी वनस्पतियाँ थी, फिर कौनसी हुई और क्या रद्दोबदल हुवा या कैसे हुवा, इत्यादि इत्यादि।

अपुष्प वर्गकी ऐसी ही प्रस्तरीभूत वनस्पतियाँ बहुतायत से उपलब्ध हैं। परन्तु स्थाणुवर्ग और वाहिनीमय अपुष्पवर्गके बीचका अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। वाहिनीमय अपुष्पवर्गमें तो बहुतसी नवीन वनस्पतियोंका समावेश हुआ है, और इस कारणसे आधुनिक वनस्पतियोंका वर्गीकरण बराबर किया जा सकता है। नेचे तथा अनावृत बीजवर्ग (Gymnospermia) अपुष्पवर्ग के भाग हैं। इनके बीचकी कुछ वनस्पतियोंके मिलजाने से अपुष्पसे सपुष्प पर्यन्तका सिलसिला बैठाया जा सकता है।

स्थाणुवर्ग—इस वर्गकी वनस्पतियाँ अत्यन्त कोमल होनेके कारण वे अश्मीभूत स्थितिमें जाने में असमर्थ हैं। इस कारण उनमेंकी कुछ जातियोंका अवशेष नहीं मिलता परन्तु इससे अनुमान नहीं किया जा सकता है कि उन वनस्पतियों का उस समय अस्तित्व ही नहीं था। बिलकुल नीचेकी सिलुरियन तहमें कुछ पाणकेश पाये जाते हैं। परन्तु ये कौनसे प्रकारके हैं, इनका औरों से क्या सम्बन्ध है, इत्यादि पहिचाना नही जाता। सायफोनेल हरी वनस्पतियोंका एक भेद है। उसमेंकी कुछ वनस्पतियाँ पहिलेसेही मिलती हैं। उसके बादके समय में लाल पाणकेशमेंकी मिलती हैं। एकपेशीमय वनस्पतिमें द्रवणोके ऊपर बालू के कणकी त्वचा रहती है इस कारणसे वे उत्तम होते हैं। उसमेंकी कुछ तो इस वक्त भी उपलब्ध हैं। इसके अनन्तर कांडशरीरिका बहुतायतसे मिलती है। सूक्ष्म जंतु वनस्पतियाँ बहुधा पूर्वकालसे ही कुजनेवाले सेन्द्रिय पदार्थ पर रहती हैं। कर्बजनक (Carboni ferous) कालसे तो दूसरे वनस्पतियोंके अविशेषमें रहते हुवे मिलती हैं। अविभाजितालिब तथा विभाजितालिब वनस्पतियोंमें की कुछ भी उस समय थीं, किन्तु शिला वल्कका अवशेष भी इसी समय मिलता है।

शैवालवर्ग—इसमेंके अवशेष बहुतकम मिलते हैं। जो कुछ मिलते हैं, वे सब कर्बजनिक कालसे आगे के हैं।

वाहिनीमय अपुष्पवर्ग—इनमेंका अवशेष बिलकुल आरम्भ कालसे मिलता है। किन्तु कर्बजनकाल में सब पृथ्वीपर मानो इन्हीका साम्राज्य था उस वक्त जितनी वनस्पतियाँ अस्तित्वमें थीं उनमें इनकी संख्या सबसे अधिक थी तथा इनका पूर्ण विकास भी उसी समय हुआ था। जैसे २ अनावृत तथा प्रच्छन्न बीजवर्ग (Gymnosperms and Angiosperms) अस्तित्वमें आने लगे वैसे २ इनका महत्व कम २ होने लगा।

(१) अश्व पुच्छ—इस समय इनकी एक ही जाति है परन्तु उस समय इनकी अनेक जातियाँ थी। प्राणि पूर्वकालसे ही ये मिलती हैं। इनकी रचना साधारणतया आजकलके सदृश हो थी। परन्तु उनका आकार बहुत बड़ा था। कितनी तो १०० फीट तक लंबी होती थी। कांडाग्रपर लम्बी २ गोल शाखायें उत्पन्न होती हैं तथा तनेके ऊपर एक त्वचा रहती है और उसीसे उपवाढ़ होती थी। पत्ते लम्बे होते थे और मूलमें एक दूसरेसे चिपककर उनका तने पर आच्छादन होता था। बिलकुल प्राचीन समयमें उनके द्विपाद विभाग होते थे। तुरेंकी रचना कुछ कुछ आजकलके सदृश ही होती थी किन्तु अधिकों में बहुत कठिन होती थी और हर दो पत्तोंमें एक वल्कपर्ण (Scale) होता था। कमसे कम कुछमें तो जननपेशियाँ दो ही प्रकारकी होती थी।

(२) मुद्गलक—इनमेंके बहुतसे भेद प्राणिपूर्वकालसे थे। इनमें शाखायें न फूटकर उनके तने खम्भोंके समान ऊँचे तथा मोटे होते थे। ये वनस्पतियाँ कर्बजनक समयमें होती थीं। इनके पत्ते लम्बे होते थे और उनके झड़ जाने पर तनेपर उनके निशान पड़े रहते थे। दूसरे भेद द्विपाद शाखयेंकी फूटती थी। उनकी ऊँचाई १०० फीट तक होती थीं। इनमें दो प्रकारकी जननपेशियाँ होती थीं। इसके सिवाय मुद्गलक और अश्वपुच्छके बीजकी एक जातिका पता लगता है। कुछमें बीज सदृश एक अवयव मिलता है।

(२) नेचे—कोयलेके कालमें इनका पूर्ण विकास हुआ था। पानीके नेचेमेंको अमूलक जलवर्ती और पर्णगुच्छक स्थलवर्ती जातियाँ खड़ियोंके समयसे दिखाई पड़ती हैं।

मुद्गलक और अश्वपुच्छ—ये वाहिनीमय अपुष्पके भेद हैं; किन्तु उसमें उनका अधिक विकास नहीं हुआ था। हाँ, नेचेमें हुआ कह सकते हैं। उनसे बीज उत्पन्न करनेवाली वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई। बिलकुल पूर्वकालीन अनावृत बीजवर्ग और नेचे के बीजकी भी एक जाति थी। यह कबंजनक समयमें बड़े महत्व की थीं। उसकी साधारण रचना नेचेके सदृश थी किन्तु उसमें दो प्रकारकी जननपेशी निकलती थी। स्त्री जननपेशी अनावृत बीजकी सायडासी (Cyeadaceae) जातिके बीजके सदृश होती हैं, किन्तु वे सायडीसीके समान बिशिष्ठ फूलमें नहीं आती थी। इस प्रकार अपुष्प और सपुष्प वर्गके भेद प्राचीन समयके वनस्पतियोंमें भी मिलते हैं।

अपेनाइन्स—यह एक पर्वत श्रेणी है जो इटली के मध्यभाग में स्थित है। पहले अपेनाइन्स से केवल उत्तर श्रेणीका बोध होता था किन्तु अब यह नाम पूरी श्रेणीको दे दिया गया है। आधुनिक भूगोलवेत्ताओं ने इसे तीन भाग में विभाजित किया है:—(१) उत्तरी, (२) मध्य तथा (३) दक्षिणी

उत्तरी अपेनाइन्स फिर तीन भागों में बँटा हुआ है जो लिग्युरियन, टस्कन तथा अंब्रियन के नामसे प्रसिद्ध है। लिग्युरियन लासिसा घाट तक, टस्कन उससे आगे टाइबरके उद्गम स्थान तक, तथा अंब्रियन कागली की घाटी तक फैला हुआ है। इस भाँति इस पवतकी श्रेणी इटली के एक कोनेसे लेकर दूसरे कोने तक फली हुई है। उत्तरमें लिग्यूरियन श्रेणीसे निकल कर अनेक नदियाँ 'पो' नदीमें मिलती हैं। टाइबर नदीका उद्गम अंब्रियन श्रेणीमें है। लिग्युरियन की माँउन्टव्यू नामक चोटी ५६१५ फीट ऊँची है, टस्कनकी चोटी माउन्ट सिमोन ७१०३ फीट है, तथा अंब्रियनकी चोटी माउन्ट नीरोनकी ऊँचाई ५०१० फीट है। इन पर्वतोंसे अनेक रेलवे लाइन हो कर जाती हैं। जिनोवा-हाङ्को-लाइन को ५ मील लम्बी एक सुरंग है। टस्कन श्रेणीके पश्चिमीय भागके अतिरिक्त और कहीं भी खनिज अथवा रासायनिक पदार्थ नहीं प्राप्त होते।

मध्य अपेनाइन्स ही इन श्रेणियों में प्रधान समझा जाता है। यह बहुत दूर तक फैला हुआ है और इसकी अनेक चोटियाँ हैं:—माउन्ट वेटोर (८१२८ फीट), माउन्ट वलिनो (८१६० फीट) तथा माउन्ट अमरो (९१७० फीट)। पश्चिमीय नदियों में नीरा ही मुख्य है। टाइबर नदी द्वारा, रोमके समीप जो ज्वालामुखी पर्वत हैं वे मध्यश्रेणि से अलग हो गये हैं।

दक्षिण अपेनाइन्समें अनेक दर्रे हैं जिससे इसकी तीन समानान्तर श्रेणियाँ देख पड़ती हैं। पूर्वमें जो माउन्ट गरगानोंकी चोटी है वह नेपल्स के समीपके ज्वालामुखी पवर्तोंसे काफी अलग मालूम होती हैं। माउन्ट बोलिनो (७३२५ फीट) इसकी सबसे ऊँची श्रेणी है। इसका खड़िया का भाग 'सीबारी' के मैदानके पास पहुँचते पहुँचते समाप्त हो जाता है और वहाँसे ग्रेनाइटका भाग आरम्भ होता है। इसका नाम कैलिबिया पर्वत है।

अपेनाइन्स पर्वतपर अनेक जङ्गल हैं। प्राचीन कालमें तो अनेक थे और वे बहुत घने भी थे। इनमें चीड़, शाहबलूत, इत्यादिके वृक्ष बहुतायतसे पायेजाते थे। सियार इन जङ्गलोंमें बहुत हैं। खरगोश बिलकुल नहीं देख पड़ते। जो बहुत ऊँचे शिखर हैं वे सदा बर्फसे ढके रहतेहैं। यद्यपि खनिज पदार्थ यहाँ नहीं देख पड़ते, किन्तु खनिज पदार्थ मिश्रित तथा गरम पानीके अनेक सोते यहाँ पाये जाते हैं। यद्यपि अपेनाइन्स और आॅल्पसकी श्रेणियाँ आपसमें मिली हुई हैं, किन्तु उनकी बनावट बिलकुल भिन्न भिन्न है। बेनकॉनकी बनावट जिनोआकी खाड़ी तक एक ही सी चलीगई है।

आॅल्पसमें ऐसी अनेक चट्टानें हैं जिनके स्तर अलग अलग किये जा सकते हैं। अपेनाइन्समें थोड़ी बहुत जो इस प्रकारकी चट्टानें हैं, वे केवल दक्षिणी छोर पर मिलती हैं।

अपेनाइन्समें अधिकतर जो स्तर मिलते हैं, वे मध्ययुगीन अथवा द्वितीयकाल मे 'सोजोइक' के हैं, या वे तृतीय कालके हैं। अल्पसकी प्राचीन चट्टानोंके स्तरोंका अवशेष टस्कन समुद्रतटके द्वीप तथा सिसरोके अन्तरीपमें मिलता है। अपेनाइन्स में इनका बिलकुल, अभाव देख पड़ता है। किन्तु दक्षिणीय अपेनाइन्सके नवप्रभात (एओसीन) नामक स्तरोंके देखनेसे विदित होता है कि तृतीयकालीन पहलदार चट्टाने वहाँ काफी रही होगी। ऐसा भी अनुभव होता है कि तृतीयकाल में टी हेनियन समुद्रके स्थानपर ऐसी चट्टानोंवाला पहाड़ी प्रदेश रहा होगा।

कलेबियाके अतिरिक्त सम्पूर्ण अपेनाइन्स

पर्वतमें निम्नलिखित स्तरोंका समावेश होता है—(१) त्रिस्तर (ट्रयासिक), (२) जुरीन (ज्यूरासिक), (३) सीतोपल (केटेसियस), (४) नव प्रभात (एओसोन) तथा (५) नवपूर्व (मिओसीन)! नवप्रभात कालमें एक स्तरपर दूसरे स्तरके चढ़ने से पर्वत श्रेणि तय्यार हुई, समुद्र छिछला हो गया, और काङ्गो मेटेटिक भूपटलके कारण उनकी रचना ऐसी हुई। इस प्रकार स्तरपर स्तर होते जानेसे इनकी ऊँचाई अधिक हो गई और अनेक तालाबों का प्रादुर्भाव हुआ, द्वितीय तथा तृतीय कालीन स्तर समुद्रमें डूबगये। इसपर बरफ नहीं जम पाती।

इन प्रदेशों की उन्नतिमें मुख्य दो अड़चने हैं। एक तो इसकी प्राकृतिक रचना दूसरे व्यापारिक साधनोंका अभाव इसकी उन्नतिमें बाधक हो रहे हैं। योरोपीय महायुद्धके पश्चात् अदनकी खाड़ी से ऑडिसअबाबा तक रेलवेलाइन बनजाने से, ऐसा विचार किया जाता है कि सम्भवतः व्यापार में कुछ उन्नति हो। सं० १८२० ई० तक तो कुल व्यापार तीस चालीस लाख पौण्डसे अधिक का नही हो सका। यहाँ से बाहर भेजीजाने वाली मुख्य वस्तुओंमें केवल चमड़ा, कहवा और मक्खियों का मोम ही था। सूती वस्त्र यहाँ अन्य देशोंसे बहुत आता था। यहाँ का अधिकाँश व्यापार यूनानी, सीरीयन और अरबी लोगोंके हाथमें है। कृषिमें भी अभी तक विशेष उन्नति नहीं देख पड़ती। खनिज सम्पति भी अभी बेकार पड़ी हुई हैं। जलप्रपातकी असीम शक्ति का, जिसका उपयोग यहाँ बड़ी सरलतासे सम्भव है, उसतक का कोई विशेष लाभ इन प्रदेशोंने नहीं उठाया।

अपोलो—ग्रीस (यूनान) देशमें इस नाम के देवताका किसी समय बड़ा महत्व था। जिस भाँति अपनी प्राकृतिक स्थितिके कारण भारतवर्षमें सूर्यको देवता मानकर उसको पूजनेकी प्रथा चली आती है उसी भाँति अपनी विशेष प्राकृतिक स्थिति के कारण ही ग्रीसमें भी सूर्यका विशेष स्थान होना कोई आश्चर्य नहीं है। अतः उन भावों को व्यक्त करने के लिये ही 'अपोलो' का प्रादुर्भाव हुआ और नाना प्रकारसे उसकी पूजा होने लगी। 'अपोलो' का दो अर्थ हो सकता है; एक तो 'नाश करनेवाला' और दूसरा 'दुःखोंको हरण करनेवाला' दोनो ही अर्थ ग्रीस ऐसे देशमें सूर्यके लिये लागू होते हैं। सूर्यप्रकाशके कारण उत्तम फसल, उत्तम आबहवा तथा हृदयोंमें सदा उमंगों का उठना और उसी सूर्यप्रकाशके कारण कभी कभी भयंकर रोगोंका होना है। अतः 'अपोलो' के रूपमें ही सूर्यपूजा होती रही। उनका विश्वास था कि भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करनेसे तथा नियत समय पर उसका उत्सव मनाते रहने से उसकी कभी कोपदृष्टि नहीं होगी। इसकी उत्पत्ति ग्रीसके उत्तम तथा सुहावने समयमें हुई थी और उसके कुछ समय बादही उसे रथमें रखकर 'हाईपरबोरियन' प्रदेश (Hy perborian) में लेगये जिसके कारण शीतकाल का प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि सूर्य भी उसके साथही साथ शीतकालमें चलाजाता है। ओलम्पियस (Olympius) की देवसभामें उसको मुख्यस्थान दियाजाता था क्योंकि अपनी भविष्यवाणी द्वारा सब वह कुछ सूचित कर सकता था तथा सब विषयोंपर 'प्रकाश' डालता था। अपनी शक्तिद्वारा दुःख, शोक तथा अज्ञानका अन्धकार दूर करता था।

बहुतसे नगर इसी नामसे बस गये। इन सब का कहना यही है कि उसकी उत्पत्ति उसी नगरमें हुई थी। 'लीशिया' देशमें भी इसकी पूजा अति प्राचीन कालसे होती चली आती है। जैन्थस तथा डेलस द्वीपमें इसकी उत्पत्ति बताई जाती है। इस विषयमें अनेक किम्वदन्तियाँ हैं। लेटो (Leto) इसकी माता थी। जब वह जूनो द्वारा पीड़ित होकर भटक रही थी तो उसे 'डेलस' में शरण मिली, और वहाँ जुइस द्वारा (जूपिटर) उसे पुत्र प्राप्त हुआ, जो आजतक 'अपोलो'के नामसे प्रसिद्ध है। इसकी जन्मकथा भी बड़ी मनोरञ्जक है। नौ दिन तक इसकी माता प्रसवपीड़ासे व्याकुल थी। अन्तमें इसका जन्म हुआ जिससे सारा द्वीप प्रकाशित होउठा। देव प्रिय हंस पक्षि उस द्वीपके चारों ओर सात बार मंडराते रहे। मई मास का ७वाँ ही दिवस भी था। अतः आज भी ७वाँ अंक इस नाते पवित्र तथा शुभ समझा जाता है। उत्पन्न होते ही इसने एक धनुष उठाया और ग्रीसके देवताओं (Oracles) में अपना सिक्का जमानेका निश्चय करलिया। उसकी इच्छापूर्तिके लिये उसके पिताने बाल बांधनेकेलिये अभिमन्त्रित 'मुञ्ज मन्त्रोपदेश तथा गानविद्यामें प्रवीणता का आशीर्वाद दे, सफेद हंसपक्षि द्वारा खींचे जानेवाले रथपर बैठाकर डेलफी (Delphi) केलिये विदा किया। वे हंस उसे पहले हाइपरबोरियनकी ओर लेगये, जिसका फल यह हुआ कि शीतकाल का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँसे वह डेलफी पहुँचा। वहाँ पर पहले दूसरे देवोंका महत्व था किन्तु इसका शीघ्रही प्रधानत्व स्थापित हो गया। उस समय उसने असीम साहसके अनेक कार्य किये। इसको असीम

शक्ति प्रदर्शित करनेके लिये अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित है। भविष्य उद्घाटनकी शक्तिके साथ ही साथ गानविद्याके भी प्रमुख देवका स्थान भी उसे ही प्राप्त हुआ था। इसकी पूजा अनेक देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे हुआ करती थी किन्तु डेलफी के ओरेकलके कारण जो महत्व इसे प्राप्त हुआ वह सर्वोपरि था। इसकी स्थान स्थानपर अनेक मूर्तियाँ बनाई गई, और कुछ तो उस समयकी हैं जिस समय ग्रीस विकासकी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था।

अपोलोनिया—इस नामसे अनेक प्राचीन नगर विख्यात हैं। कदाचित् इस नामकी उत्पत्ति ग्रीस देवता अपोलोके ही आधार पर हुई होगी। इन सबमें विख्यात नगर इलीरिया प्रदेशका इसी नामका नगर है। यह नगर ऑस (The Auos) के दक्षिण तट पर बसा हुआ है। ग्रीस निवासी कोरिन्थियन जातिवालोंने इसकी नींव डाली थी। जिस समय मैसिडन तथा इससे युद्ध छिड़ा हुआ था उस समय यह नगर एक प्रसिद्ध सैनिक केन्द्र होरहा था। यह नगर धीरे धीरे अपनी विद्याओं के लिये बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। सांख्य, काव्य तथा तत्वज्ञानका तो यह केन्द्र गिना जाता था। रोमके प्रसिद्ध अगस्टसने यहींपर विद्याध्ययन किया था।

इसी नामका दूसरा नगर काले सागरके तट पर बसा हुआ है और थ्रेशियाँ प्रान्तमें उसका समावेश होता है। यहाँ एक अपोलोकी दिव्य मूर्ति है। इस मूर्तिको ल्यूकोलस रोमसे लाया था

इसी नामका तीसरा स्थान सिरीन(Cyrene) का मुख्य बन्दरगाह है। किसी समय यह भी एक दर्शनीय नगर रहा होगा। इसका पूर्वकालीन महत्व इसकी प्राचीन इमारतों तथा खण्डहरोंके देखने ही से स्पष्ट हो जाता है।

अप्पय्या दीक्षित—द्रविड़ जातिके ब्राह्मण थे। ये काञ्ची नगरके समीप रहते थे। इनके पिताका नाम नारायण दीक्षित था। इनका समय शालिवाहनकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें विजय नगरके राजा कृष्णदेवका शासनकाल निश्चित किया जाता है।

कहा जाता है कि बारह वर्षकी अवस्थामें ही वेद समाप्त करके इन्होंने शास्त्रका अभ्यास आरम्भ कर दिया था। ये वेदशास्त्र पारंगत, सदाचारी, धर्मात्मा तथा विशाल हृदयके मनुष्य थे। यही कारण था कि ये शैव तथा वैष्णव दोनों ही में आदरकी दृष्टिसे देखे जाते थे। ये बड़े बड़े पण्डितों से मिले थे। अनेक सभाओंमें शास्त्रार्थ कर अच्छे अच्छे पण्डितों पर अपना सिक्का जमा दिया था। इनकी विद्वत्ता तथा सदाचार देखकर चन्द्रगिरिके राजाको इनके प्रति विशेष श्रद्धा तथा भक्ति उत्पन्न हुई। उसने इन्हें बहुत सी भूमि पारितोषिक रूप से दे डाली जिससे इनके कुल तथा विद्यार्थियों का भली भाँति निर्वाह होता था। इनके लिखे हुए अनेक ग्रन्थ हैं। शिवस्कन्द चन्द्रिका, शिव मणि दीपिका, शिवकर्णामृत, पञ्चरात्रागम मतखण्डन, रामायण सारस्वत, शब्दप्रकाश तथा दो कोष इनके लिखे हुए मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें से प्रथमके तीन ग्रन्थ इन्होंने अनेक यज्ञ करनेके बाद लिखे थे। 'आत्मार्पण' ग्रन्थके विषयमें तो इनका कहना था कि बहुत समय तक धतूरेके बीज खा चुकने पर वह ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया था। उनका विश्वास तथा धारणा थी कि धार्मिक ग्रन्थ लिखनेके पहले आत्मशुद्धिकी विशेष आवश्यकता होती है, और धतूरेमें यह शक्ति वर्त्तमान है। इनका यह ग्रन्थ ऐसा अपूर्व समझा जाता है कि आज भी दक्षिण भारतमें इसका बड़ा मान है।

ये त्रिचनापली, तंजोर तथा मदुरा आदि स्थानोंके राजाओंसे मिले थे। उन्होंने इनकी विद्वत्ता तथा साधुता पर मुग्ध होकर अनेक पारितोषिक दिये। इससे प्रोत्साहित होकर न्याय, वेदान्त आदि विषयों पर ४ ग्रन्थ इन्होंने लिखे थे। इनमें से आज भी कुवलयानन्द व चित्र मीमांसा नामक ग्रन्थ पाये जाते हैं। आफ्रेक्ट आदि आधुनिक पण्डितोंका कथन हैं कि 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक ग्रंथ इनका लिखा हुआ नहीं है। नीलकण्ठ विजय नामक चम्पुकाव्य भी इनके पौत्र नीलकण्ठने लिखा है। (डा॰ हुल्टजेस रिपोर्ट ऑन संस्कृत मैन्युस्क्रप्ट न॰ २ पृ॰ ८)। वृत्तिवार्त्तिक, रत्न परीक्षा तथा सिद्धान्त लेश वेदान्त विषयक ग्रंथ इनके प्रसिद्ध है। मध्वमुख कपोल चपेटिका, रामानुजमतविध्वंस, दशकुमार चरित्र संक्षेप, इनके अनेक प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

ये अत्यन्त निष्ठावान् तथा स्वधर्म तत्पर थे। इन्होंने कावेरीके तट पर अनेक यज्ञ किये। जो कोई भी इनसे मिलता उसे शिवस्तुति जरूर सुनाते। निम्न लिखित श्लोक ये बहुधा सुनाया करते थे:—

मुरारौ च पुरारौ च न भेदः पारमार्थिकः।
तथापि मामको भक्ति चन्द्रचूड़े प्रधावति॥

अर्थ—वास्तवमें शिव और विष्णुमें कोई भी

भेद नहीं है, किन्तु फिर भी मेरी भक्ति चन्द्र चूड़ शिवपर ही जमती है।

इनके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है कि एक बार यह एक विष्णुके मन्दिरमें दर्शनार्थ गये थे, किन्तु भूलकर विष्णु-स्तुतिके बदले इन्होंने शिव-स्तुतिमें ही निम्नांकित श्लोक पढ़ाः—

ज्ञातं पद्मासनस्थं, शशिधर मुकुटं, पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रशूलम्
वज्रं च खड्ग परशु मभयदं, दक्ष भागे व हन्तम्।
नागं पाशं च घंटां प्रलयहुतवहं सांकुशं वाम भागे ॥
नानालंकारयुक्तं स्फटिकमणि-निभं पार्वतीशं नमामि।

इस श्लोकसे विष्णुकी मूर्ति अदृश्य होकर वहाँपर शिवकी मूर्ति प्रकट हो गई। ये अपने ध्यानमें इतने मस्त थे कि इन्हें इसकी खबर भी नहीं थी, किन्तु जब लोगोंने इन्हें चैतन्यकर इससे सूचित किया तो इन्होंने निम्नलिखित श्लोकसे विष्णु-स्तुति करके वहाँपर फिरसे विष्णु-मूर्ति प्रकट कर दीः—

शान्ताकारं भुजग शयनं पद्म नाभं सुरेशम्,
विश्वाधारं गगन-सदृशं, मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं, कमल नयनं योगिभिर्ध्यान गम्यम्,
वन्दे विष्णुं भवभय हरं सर्व लोकैक नाथम् ॥

इनके विषयमें ऐसी ही एक और अद्भुत कथा है कि एक बार ताताचार्यसे और इनसे शास्त्रार्थ छिड़ा। ताताचार्यकी विद्वताका डंका सर्वत्र बज रहा था, किन्तु इन्होंने वादाविवादमें उन्हें बड़ी सुगमतासे ही परास्त कर दिया। इसपर ताताचार्य बड़े क्रुद्ध हुए और जब यह शास्त्रार्थके उपरान्त व्यंकटपतिरायके दरबारसे अपने घर लौट रहे थे तो मार्गही में इन्हे मार डालनेके लिए उन्होंने कुछ आदमी नियुक्त किये। किन्तु इसके पूर्व कि वे मनुष्य इन तक पहुँचे एक असाधारण शक्तिने प्रकट होकर उनको मार्ग ही में नाश कर डाला, और ये सकुशल अपने स्थानपर पहुँच गये। अन्तमें राजाको भी यह बात विदित हुई। उसने इन्हें अनेक परितोषिक प्रदान किये और ताताचार्यको बहुत फटकारा। कुछ समयके पश्चात् इन्होंने काशी प्रयाग तथा गयाकी यात्रा भी की थी। वहांपर इनसे जगन्नाथरायकी भेंट हुई। इस यात्रासे लौटकर उन्होंने अनेक पारमार्थिक विषयपर रचनायें कीं। उनमेंसे एक नीचे दी जाती हैः—

ब्रह्मैवाहं किल सद्गुरोः कृपया ॥ धृ ॥ ब्रह्मैवाहं, ब्रह्मैवाहं ॥ सत्य ज्ञानानन्दधनोहं। दृश्यादृश्य मायातीतं। हेतु-विहीनं सुगम-स्वरूपं ॥ ब्रह्मै० ॥ १ ॥ मायाऽविद्या जीवेश्वरयोः ॥ सर्वाधारं चाधिष्ठानं ॥ सर्वातीतं सर्वांतरयोः ॥ सच्चित सुखमय पूर्णस्वरूपं ॥ ब्रह्मै० ॥ ॥ २ ॥ भेदाभेदो भय विवर्जितम् ॥ सर्व-द्रष्टा साक्षिमयोहं ॥ भगवत् पादीय मिदं ज्ञानं, सूनोर्गत अज्ञानं ॥ ब्रह्मैवाहं किल सद्गुरोः कृपया ॥ ३ ॥

इस पदसे यह स्पष्ट देख पड़ता है कि भगवत्पूज्य-पाद शंकराचार्यके सिद्धान्तोंपर इन्हें अटल विश्वास था। अन्तिम समयमें इन्होंने काशी-आकर रहनेका विचार किया था किन्तु ग्रामवासियोंके आग्रहके कारण ये ऐसा न कर सके और गाँव ही में रहकर भगवत भजनमें अपना समय व्यतीत करने लगे। इनके पास पांच शिवलिंग स्फटिकके थे। उसमेंसे इन्होंने दो तो ब्राह्मणोंको, एक अपने भतीजे को. एक अपने पुत्रको दे दिया और पांचवींकी स्थापना इन्होंने चिदाम्बरम्में कर डाली। कुछ ही समय वाद इन्होंने ९० वर्षकी अवस्थामें परलोक गमन किया। (आधार-ग्रन्थ कविचरित्र, अर्वाचीनकोष, आफेक्टका कैटलाग)

अप्पर—सातवीं शताब्दीमें ये एक विख्यात गूढ़वादी तामिल कवि होगये हैं। इनका पूरा नाम मरुलनी कियर था। मरुलनी कियर का जन्म बल्लाल वंशमें कुड़लोर जिलेके थिरु अमूर नामक ग्राममें हुआ था। इनकी एक बड़ी बहन थी। उसका विवाह एक प्रसिद्ध सूबेदारके साथ होनेवाला था, किन्तु वह विवाह होनेके पूर्व ही एक युद्धमें मारा गया। माता पिताका भी देहान्त अब तक हो चुका था, अतः उसने भी अग्निमें प्रवेश कर आत्मसमर्पण का निश्चय कर डाला, किन्तु फिर अपने छोटे भाईका लालन-पालनका ध्यान आते ही अपना विचार बदल डाला। इस भांति इनका लालन-पालन इनकी बहन ही द्वारा हुआ था।

इस समय जैन धर्मका बड़ा जोर था। बड़े होने पर इनके मनमें भी आध्यात्मिक विचारोंकी उत्पत्ति होने लगी। यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि स्वयं ही अथवा किसी जैन भिक्षुके फेर में पड़नेसे, किन्तु इन्होंने भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया और इस पर इतना गम्भीर तथा गहन अध्ययन किया कि पाटलीपुत्रके मुख्य जैनसंघने भी इन्हें अपना गुरु मान लिया। इनके अन्य धर्म में प्रवेश करनेसे इनकी भगिनीके हृदयको बड़ा धक्का लगा। इधर इनका जीवन पाटलीपुत्रमें बड़े आनन्दसे कट रहा था जिससे इन्हें अपनी बहन अथवा घरकी याद भी नहीं आती थी। एक बार इनको पेटमें बड़ा सांघातिक दर्द उठा। अनेक उपचार किये गये किन्तु रोग क्रमशः बढ़ता ही गया। अन्तमें इन्हें अपनी बहनकी याद आई।

उसे बुलानेका प्रयत्न किया, किन्तु उस अभिमानिनी वल्लालकुमारीने जैन मन्दिरमें प्रवेश करनेसे इन्कार किया अन्तमें ये जैनवस्त्र, वेश तथा चिन्हका त्याग कर अपने गाँव पहुँचे और अपनी बहनसे क्षमा याचना की। थोड़े ही दिनोंमें ये फिर भले चंगे होगये। अब ये शिवके अनन्य भक्त होगये।

जैनी राजा पल्लवको यह मालूम होनेपर उसने अप्परको अनेक कष्ट दिया किन्तु वह अपने धर्ममें दृढ़ बना रहा। अन्तमें भयभीत होकर राजाने स्वयं शिवदीक्षा इनसे ग्रहण की। तदनन्तर इन्होंने अनेक यात्रा की और अनेक समकालीन प्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानों से भेंट की। उन सबोंने इनका उचित सम्मान किया। तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् संबन्दर जिसने पाण्ड्यके राजाको जैन धर्मसे फिर स्वधर्ममें प्रवेश कराया था, वह इन्हें 'अप्पर' अर्थात् 'पिता' कह कर सम्बोधित करता था। इसी नामसे आगे चलकर यह प्रसिद्ध होगये। इन्होंने अपने भ्रमण कालमें अनेक स्तुति तथा स्तोत्रकी रचना की। अन्तमें यह पुंपुंकलूरमें जाकर बस गये। यह अपने पास मन्दिरोंकी घास खोदनेके लिये एक कुदाली सदा रखते थे। इसी कारण आज भी दक्षिण भारतमें पाई जानेवाली इनकी मूर्त्तियोंमें 'कुदाली' का चिह्न अंकित देख पड़ता है। यह एक किसान कुलके थे. अतः इनके काव्य तथा लेखोंमें साधारण किसानोंके चरित्रका सुन्दर चित्रण देख पड़ता है। इनकी लिखी हुई लगभग तीन सौ कवितायें अब तक मिलती हैं। अन्य तामिल कवियोंकी भाँति इनकी कवितामें स्थान स्थान पर शिवनृत्यका वर्णन आता है। उस समय दक्षिण भारतमें 'आस्तिक्यवाद' नाम से एक नये ही पंथका प्रादुर्भाव होरहा था। इस पंथमें इनकी कविताओंसे बड़ी सहायता मिलती थी। इनकी कविताओंमें धर्मकी अनेक सुगम तथा रहस्यमय बातें भरी हुई हैं। अपने गम्भीर और व्यापक भाव इन्होंने अपनी कविताओं द्वारा ही जनसाधारणमें फैलाया था।

अप्पा शास्त्री—इनके विषयमें विशेष कुछ निश्चयपूर्वक पता नहीं हैं। ये एक उत्तम लेखक थे और इनकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें आज भी सर्वमान्य समझी जाती हैं। इन्होंने 'लवलीपरिणय' तथा 'सारस्वतादर्श' नामक नाटक लिखे। 'अप्पाशास्त्री वादार्थ' तथा 'चिल्लुर वादार्थ' भी इन्हींके लिखे हुए समझे जाते हैं। (Rice. P. 264-268 Oppert. Vol. II. 3492; Burnell. 1209).

अप्पिया-वाया—(Appia Via) यह प्राचीन रोमकी सबसे बड़ी और मुख्य सड़क थी। रोम नगरसे यह ब्रांडिज़ियम तक चली गई है। यह ३५० मील लम्बी है। इसको पहले पहल ई० पू० ३१२ में अप्पियस क्लाडियसने बनवाना आरम्भ किया था। किस किस समय इसमें वृद्धि होती गई यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जासकता किन्तु यह निश्चय अवश्य है कि ई० पू० ३० में यह पूरी होगई। यह पक्की और बड़े बड़े पत्थरोंसे बैठाई हुई है। पटरियोंको छोड़कर यह १४ से १८ फीट तक चौड़ी है। इसका वर्णन अनेक प्रसिद्ध लेखकोंने किया है। इसको सबसे उत्तम सड़क मानी है और 'सड़कोंकी रानी' (queen of road) कह कर सम्बोधित किया है। लेखोंसे पता चलता है कि यह ५०० से ५६५ ई० तक पूर्णरूपसे अच्छी स्थितिमें थी।

अप्पियस क्लॉडियस—इसको क्लॉडियसके अन्तर्गत लेखमें देखिये।

अप्सरा—अत्यन्त प्राचीन कालसे ही, और प्रायः सभी धर्मों तथा जातियोंमें ऐसी भावनायें रही हैं कि स्वर्ग में अत्यन्त सुन्दर सुन्दर स्त्रियाँ हैं जो मृत्युके उपरान्त धर्मात्माओंके भोग विलास के लिये वहाँ पर उपस्थित रहती हैं। इस कल्पना का प्रादुर्भाव क्यों और कैसे हुआ अथवा कहाँसे इसकी उत्पत्ति हुई यह कहना तो कठिन है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह कल्पना सुखलोलुप मनुष्योंको संसार में स्वधर्म तथा कर्त्तव्यपरायण बनाये रखनेके लिये ही की गई होगी। अर्थात् जिस आधार पर स्वर्ग की कल्पना की गई होगी उसी पर यह कल्पना भी स्थित होगी। आज भी बहुत से मनुष्य स्वर्ग तथा नर्क के सुख तथा दुःखके भय से ही कितने पुण्य करते हैं, और पाप कर्मोंसे भय खाते हैं। अतः समाज के सुचारु सञ्चालनके लिये ही स्वर्गका निर्माण हुआ होगा, और अप्सरा स्वर्गीय सुखकी पूर्त्तिके लिये आवश्यक समझी गई होगी। अस्तु, कारण-मिमांसा अथवा इनके अस्तित्व तथा तथ्यता पर विचार करना इस लेखसे परे का और व्यक्तिगत विषय है। अतः, यहाँ पर भारतीय अथवा अन्य देशोंमें जो अप्सरा-सम्बन्धी कल्पना हैं उनका उल्लेख किया जाता है।

भारतीय—इस शब्दका प्रयोग वैदिक साहित्य में भी देख पड़ता है। इसीके साथ साथ गान्धर्व

शब्द भी है। ये अप्सरायें गान-विद्यामें कुशल तथा देवताओंके उपभोगके लिये हैं। इनका कोई स्थायी पति नहीं होता।

ऋग्वेदमें इनका वर्णन मिलता है। उसमें इन्हें 'हँसती हुई अपने जारके पास जाने वाली' बताया है। अथर्ववेदमें इनका विशेष वर्णन मिलता है। सायनने अपने भाष्यमें इन्हें 'जलमें विहार करने वाली' लिखा है। ये काम उत्पन्न करके दूसरोंको मोहित करने वाली होती हैं (अ० ६; १३, १)। ये नृत्य करने वाली होती हैं (अ० ४; ३७, ७) ऋग्वेदमें जिस एक अप्सराका नाम मिलता है वह 'उर्वशी' है। दसवें मण्डलमें (१०.९५ १०-१७) में पुरुरवा तथा उर्वशीका प्रेम प्रलाप दिया हुआ है।

महाभारतमें भी इनका उल्लेख अनेक स्थानोंमें आता है। एक जगह मिलता है कि देवर्षि कश्यप द्वारा प्राधाको रम्भा नामक अप्सरा उत्पन्न हुई। महाभारत तथा अन्य पुराणोंमें इनका इन्द्रसभामें नाचते गाते हुए तथा उत्कृष्ट ऋषि मुनियोंकी तपस्या भंग करनेके लिये प्रयत्न करते हुए, उल्लेख मिलता है। अप्सराओंके दो भेद हैं—(१) दैविक तथा (२) लौकिक। एक स्थानमें उल्लेख मिलता है कि दैविकमें १० तथा लौकिकमें ३४ अप्सरायें हैं। उर्वशी, घृताची, रम्भा, तिलोत्तमा तथा मेनका इनमें मुख्य हैं और इन्हींका उल्लेख स्थान स्थान पर आता है। अतः इन्हींका उल्लेख नीचे दिया भी जाता है।

एक बार इन्द्रसभामें नारदने पुरुरवाके रूप यौवनका ऐसा उत्कृष्ट वर्णन किया कि उसे सुनकर उर्वषी उसपर मोहित हो गई, और पुरुरवाके साथ ही रहने लगी। इन्द्र इसके वियोगसे अति विह्वल हो उठा। अतः गन्धर्वोंकी सहायतासे कपट करके उर्वशीको फिर इन्द्रसभामें बुलवा लिया। इस कथाका विशेष वर्णन बड़े सुन्दर रूपसे विक्रमोर्वशी नामक कालीदास कृत-नाटकमें दिया गया है। उर्वशीको ही मित्रावरूण द्वारा वसिष्ठ उत्पन्न हुए थे।

एक बार भारद्वाज ऋषि नदीके तटपर स्नानार्थ गये थे। वहाँ पर घृताचीके रूपलावण्यको देखा, जिससे वह कामातुर हो उठे। वहीं पर इनका वीर्य स्खलित हो गया। इन्होंने उसे दोनेमें रोप लिया। आगे चल कर उसीसे द्रोणाचार्यकी उत्पत्ति हुई।

जिस समय समुद्र मथा गया उस समय उस में से चौदह रत्न प्राप्त हुए। उन्हींमें से रंभा नामकी एक अप्सरा भी थी। यह भी बड़ी सुन्दर थी। इन्द्रने इसे विश्वामित्रकी तपश्चर्या भंग करनेके लिये भेजा था। इस पर विश्वामित्र ने इसे श्राप दे दिया था कि वह एक सहस्र वर्ष पर्यन्त पत्थरकी शिला होकर रहे। रामायणमें इसके सम्बन्धमें मिलता है कि एक बार कैलास पर्वत पर विचरण करते हुए रावणसे इसकी भेंट हो गई और वह इस पर मोहित हो गया। यद्यपि उसने अनेक प्रार्थना की कि वह उसके भाई कुवेर के पुत्र नलकूबरकी पत्नि है, अतः उसे वर्ज्य है, किन्तु उसने इसके साथ बलात्कार कर ही डाला।

शुम्भ निशुम्भ नामक असुरों द्वारा इहलोक तथा देवलोकको अनेक कष्ट पहुँचने लगा। तब इसका उपाय पूछने ब्रह्मदेवके पास गये। तब ब्रह्मदेवने विश्वकर्माको अनेक रत्नोंके अंश लेकर एक असाधारण सुन्दरी बनानेकी आज्ञा दी, और उसने तिलोत्तमा नामक अप्सरा बनाई। ब्रह्माने इसे उन्हीं असुरोंके पास भेजा। इसे देख कर दोनों ही अत्यन्त मोहित हो गये और इसे अपनी अपनी स्त्री बनानेके इच्छुक हुए। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ और आपस ही में लड़ कर मर गये।

पुत्रप्राप्तिके लिये पाञ्चाल देशके राजा एक बार घोर तप कर रहे थे। जिस जंगलमें वह तप कर रहे थे वहीं पर सब शृङ्गारोंसे युक्त मेनका पहुँची। वे उसके रूप लावण्य पर मुग्ध हो उठे, और उनका वीर्य स्खलित हो गया। इससे वे अत्यन्त लज्जित हो उठे और उसे पैरोंके नीचे दबा दिया, किन्तु उसीसे इन्हें द्रुपद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यही द्रौपदीके पिता थे। एक बार विश्वामित्र घोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें तप करते देखकर इन्द्रको अपने पदच्युत होनेकी आशंका होने लगी। अतः इन्द्रने उनका तप नाश करने के लिये मेनकाको भेजा। मेनकाको विश्वामित्रके क्रोधका भय था, अतः अपनी सहायताके लिये कामदेवको भी साथ भेजनेकी इन्द्रसे प्रार्थना की। अतः इन दोनोंने जाकर उन्हें कामविह्वल कर डाला जिससे उनका तप नष्ट हुआ। मेनकाको विश्वामित्र ही द्वारा शकुन्तला उत्पन्न हुई थी।

स्कन्दपुराणमें अप्सराकुण्डका उल्लेख मिलता है। ब्रह्मदेवने सब देवताओंके थोड़े थोड़े उत्तमोत्तम अंश लेकर एक अप्सराका निर्माण किया था। जब वह कैलास पवंत पर गई तो उसे देखकर शंकर भी मोहित हो गये। किन्तु समीप ही पार्वती थीं, जिसके भयसे वह उसे खुल कर देख नहीं सकते थे। जब वह शंकरकी प्रदक्षिणा करने लगी तो शंकरने उसे निरन्तर अपने

दृष्टिकोणमें रखनेके लिये चारों ओर चार मुख बना लिये। नारदने इस भेदको पार्वतीसे कह दिया, जिससे उसने क्रुद्ध होकर उनकी सब आँखोंको बन्द कर दिया। इससे संसारमें हाहाकार मच उठा। नारदने पार्वतीसे प्रार्थना की कि शिवकी आँखें खोल दें, किन्तु पार्वतीने इस पर ध्यान न दिया, तब शिवने ललाटमें तीसरा नेत्र उत्पन्न किया। इसपर पार्वतीने उस अप्सरा को श्राप दिया कि वह कुरूप हो जावे। किन्तु ब्रह्माने उसे अप्सराकुण्डमें स्नान करनेका आदेश दिया जिससे वह फिर अपने पूर्व रूपको प्राप्त हो गई।

एक समय नरनारायण ऋषि बद्रिकाश्रममें कठोर तप कर रहे थे। उनके तपमें विघ्न डालने के लिये इन्द्रने अनेक अप्सराओंको भेजा। नरनारायणने इनका आगमन सुन आम्रच्यूतसे एक अलौकिक अप्सरा तैय्यार करी जो इन अप्सराओं से बहुत अधिक सुन्दर थी। इसपर वे लज्जित होकर इन्द्रके पास लौट गई और सब समाचार कह सुनाया। उस ऋषि-निर्माणित अप्सराको इन्द्रने अपने पास लाकर रख लिया। इसीका नाम उर्वशी हुआ। (अवन्ती खण्ड अध्याय ८)

इस भाँति देशके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें इनकी भिन्न भिन्न कल्पनायें देख पड़ती हैं। ऐसी कल्पना भी है कि समयका प्रभाव इनके रूप यौवन पर कुछ भी नहीं होता। ये सदा ही तरुणी तथा लावण्य मयी बनी रहती हैं। इनमें भी भोग विलासकी लिप्सा होती है। क्रोध और हर्षका समावेश होता है। क्रुद्ध होने पर श्राप देनेकी शक्ति भी इनमें होती है। ये सर्वगामिनी होने पर भी अपवित्र नहीं होतीं। बहुधा इनके पति गन्धर्व भी हुआ करते हैं। महाभारतमें कथा मिलती है कि जब इन्द्रलोकमें अस्त्र विद्याके हेतु अर्जुन आये हुये थे और वहाँ रह रहे थे तो उनके रूप पर उर्वशी मोहित हो गई थी। उसने अर्जुनसे अपनी काम तृप्तिके लिये अनेक प्रार्थनायें कीं किन्तु अर्जुन सहमत नहीं हुआ क्योंकि वह उसे अपने पूर्वजों द्वारा भोगी जानेके कारण माता रूपमें देखता था, इसपर उसने क्रुद्ध होकर अर्जुनको श्राप दिया था कि वह नपुंसकत्वको प्राप्त हो। अज्ञातवास में इसी श्रापके कारण अर्जुनको बड़ी सहायता मिली।

भारत के अनेक प्रान्तों में आज भी अनेक ऐसी ही धारणायें चली आती हैं। गावोंमें परियों, वनदेवियों इत्यादि की अनेक कथायें प्रचलित हैं। नाग कन्याओंके समान जलमें भी ऐसी ही अप्सराओंके रहनेकी धारणा अभी तक प्रचलित है। पूर्वकालमें तो ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं। दूसरी बार पुरूरवाका संयोग उर्वशी से जल विहार करती हुई ही हुआ था। ऐसे ही महाभारतमें गन्धर्वराज चित्राङ्गदका उल्लेख जल में विहार करते हुए मिलता है। इन्हीं सब कारणों से आज भी गाँव इत्यादिमें नदीतट पर कोई बड़ा पत्थर मिलजाता है तो उसे पूर्वकालीन अप्सरा मान कर उसकी सेन्दुर, चुन्दड़ी तथा चूड़ियाँ चढ़ाकर पूजा करते हैं। अनेक ग्रामीण कथाओं में मिलता है कि ये आकाशमें उड़नेवाली होतीं थीं, समुद्रमें रहती थीं तथा सर्वत्र जासकती थीं। बहुधा सुन्दर राजकुमारों इत्यादि को ये चुराले जाती थीं। (आधारग्रंथ—वेद, संहिता, ब्राह्मण, पुराण, वैदिक माइथोलोजी आफ मैकडानल, हिन्दु क्लैसिकल डिक्शनरी बाई डासन, महाभारत इत्यादि)

मुसलमानी कल्पना—इन धर्ममें भी इन्हें स्वर्गमें रहने वाली सुन्दरियाँ माना है। ये गान विद्यामें चतुर तथा सदा युवति बनी रहती हैं। मृत्युके उपरान्त जो धर्मात्मा स्वर्गमें जाते हैं उनके भोग विलासके लिये ये होती हैं। इन्हें ये लोग 'हूर' कहते हैं। इसीसे मिलती जुलती इनके यहाँ भी 'परी' इत्यादि को मानते हैं। इन परियों का उल्लेख अनेक फारसी पुस्तकोंमें मिलता है। सहस्त्ररजनीचरित्र (अलिफ लैला) (Arabian Nights) किस्सा हातिमताई, इत्यादि इनकी घटनाओंसे परिपूर्ण हैं।

पाश्चात्य कल्पना—यूनान देशके इतिहास तथा पुराणोंमें इनका उल्लेख बहुत आता है। पाश्चात्य कल्पनामें विशेषता यह है कि इनका सम्बन्ध प्रकृतिसे अत्यन्त घनिष्ट रक्खा गया है। इन्हें 'निम्फ' (Nymph) फेयरी (Fairy) इत्यादि नामोंसे सम्बोधित करते हैं। इनमें दो जातियाँ मानी हैं—एक तो जलमें रहने वाली और दूसरी स्थल पर विचरण करने वाली। ये बन, पर्वत, घाटियोंमें रहती हैं और इन्हीं की ये अधिष्ठात्री समझी जाती थी। उसी भाँति जलमें रहने वाली जलस्वामिनी समझी जाती थीं। ये सदा एक सी रहती हैं। वृद्धावस्था तथा रोग इन्हें नहीं ग्रसता। कुछके मतानुसार तो ये अमर होती हैं और कुछ इन्हें अत्यन्त दीर्घजीवी मानते हैं। इनकी संख्या लगभग ३००० के हैं। ये असाधारण शक्तिसे सम्पन्न होती हैं। इनकी गणना

उपदेवताओंमें होती थी। इनकी पूजा की जाती थी। इनका निरादर करनेका साहस कोई नहीं करता था। इन्हें नग्न देखनेसे ये पीड़ा पहुँचाती थीं, और देखने वाला उन्मादग्रस्त हो जाता था। ये अद्वीतीय सुन्दरी, तरूणी तथा फूलों और वल्कलोंसे विभूषित अथवा एक वस्त्रसे आच्छादित वर्णित की गई हैं। स्थान स्थान पर रहनेवाली अप्सराओं का नाम भी उनके निवास-स्थानसे ही निर्धारित किया जाता था। (आधार ग्रंथ—बलेन,टाइन--सम फेजेजं आफ दी कल्ट आफ दी निम्फ। क्लासिकल, डिक्शनरी। रिलीजन एण्ड एथिक्स। नेचर वरशिप)

अफगानिस्तान—यह मध्य एशियाका एक पहाड़ी प्रदेश है। यह देश भारत और फारसके मध्यमें बसा हुआ है। इसका महत्व रूस और बृटिश भारतके मध्यमे स्थित होनेके कारण गत शताब्दीसे बहुत बढ़ गया है। यह उ० अ० ३०° से ३५° और पू० रे० ६२° से ७०° तक में स्थित है। इसका क्षेत्रफल २४१००० वर्गमील है और आधुनिक आबादी ६३८०५०० के लगभग है।

भौगोलिक वर्णन—इस नामसे इस प्रदेश का बहुत पुराना इतिहास नहीं देख पड़ता। पहले यह छोटे छोटे कई भागोंमें विभक्त था। आजकल इस नामसे जिस प्रान्त का बोध होता है वह प्राचीन हेरात (Herat), सेसिस्तान, काबुल, कन्दहार आदि प्रदेशोंसे बना हुआ है। इस लेखमें हजारा प्रान्तके पहाड़ी प्रदेश तो अवश्य सम्मिलित किये गये हैं, किन्तु अफगान तुर्किस्तान, अफगान, राज्यके अन्तर्गत होते हुए भी, इस लेखमें सम्मिलित नहीं किया गया है। इस पर स्वाधीन लेख अन्यत्र ही लिखा गया है।

इसके उत्तर में रूसी तुर्किस्तान कह सकते हैं, यद्यपि बहुत कुछ उत्तरी सीमा का भाग हिन्दू कुश पर्वत, हेरात तथा मुरगाव नदियों द्वारा घिरा हुआ है। इसके पश्चिममें ईरान है और इसकी पश्चिमीय सीमा सेसिस्तान की झीलसे आरम्भ होती है। इसके पूर्वमें सुलेमान पर्वत की श्रेणियाँ सिन्धुनदके तटतक चली आई हैं। इसके दक्षिण में बेलुचिस्तान है। इसकी उपरोक्त सीमा बहुत पुरानी नहीं है। यह १९वीं शताब्दी के अन्तिम २५ वर्षोंमें ही बनी थी। आजकल जो अफगानिस्तान के नामसे विख्यात है उसका बहुत कुछ ज्ञान द्वितीय अफगान युद्धके बाद ही प्राप्त होता है। १८८४ ई० में रूसो-अफगान कमीशनने इसकी उत्तरी सरहद निश्चित की थी, और १९०४—१९०५ ई० में ईरानीबलूची कमीशन द्वारा इसकी पश्चीमीय सरहद निश्चित हुई।

प्रान्तीय-विभाग—यह चार भागोंमें विभाजित किया गया है:—(१) काबुल अथवा उत्तरीय अफगानिस्तान, (२) कन्दहार अथवा दक्षिणी अफगानिस्तान (३) हेरात प्रदेश तथा (४) क़लात ए-ख़िलज़ई अथवा अफ़ग़ानी तुर्किस्तान।

नदी—यहाँ की नदियोंमें काबुल नदी सबसे मुख्य समझी जाती है। उसके बाद हेलमण्डकी गणना की जासकती है, यद्यपि विस्तारमें यह काबुलसे भी बड़ी है। इसका उद्गम कोह अबावा के उच्चतम शिखरसे होताहै, और यह अफगानिस्तान के सबसे अधिक अज्ञात प्रदेशमें होकर बहती है। इस प्रदेशमें 'हज़ारों' की अधिक बस्ती है। अन्य मुख्य नदी हरिरुद है जो हेरात प्रदेशमें होकर बहती है। लोरा, आक्सस तथा गोमल यहाँ की अन्य उपयोगी और मुख्य नदियाँ हैं। कुछ प्रदेश ऐसे है जहाँ बाँधों तथा नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है। इन नदियों से देश की पैदावारमें बड़ी सहायता मिलती है।

पर्वत—यह देश अनेक पर्वतोंसे परिपूर्ण है। हिन्दूकुश यहाँ का सबसे मुख्य पर्वत है जो देशके अधिकांश भागमें फैला हुआ है। कोह अवावा दूसरा मुख्य पर्वत है। फीरोज पठार यहाँका विख्यात है। सफेद कोहकी सबसे ऊँची चोटी शिकरम लगभग १५६०० फीट ऊँची है। इस पर्वत पर जङ्गल पाये जाते हैं। यह सम्पूर्ण देश पहाड़ी तथा पथरीला है।

रास्ते तथा दर्रे—अफगानिस्तानसे भारतमें आनेके लिये पहाड़ोंमें अनेक मुख्य दर्रे हैं। खैबर, कुर्रम, टोची इनमें से प्रधान हैं काबुल और जलालाबादके बीचमें दो रास्ते हैं। लाराबन्द दर्रा तथा काबुल दर्रा। काबुल और पेशावरके बीच में खैबर दर्रा है। बोलन दर्रेसे अफगानिस्तान और भारतका मुख्य व्यापार होता है। इन दर्रों का ऐतिहासिक महत्व बहुत कुछ है। भारत का इतिहास आज बिल्कुल ही भिन्न होता यदि ये दर्रे न होते। आजकल भी इन दर्रों का राजनैतिक महत्व कम नहीं है। व्यापार भी इन्हीं दर्रों द्वारा होता है।

धरातल—सम्भव है कि सीतोपल (क्रेटसियस) कालमें जब भारत वर्ष और दक्षिण अफ्रीका स्थल द्वारा एक ही में मिला हुआ था, उस समय सपूर्ण अफगानिस्तान चाहे जलमें डुबा हुआ न हो किन्तु कुछ भाग तो अवश्य ही जलमें था। सीतोपल

कालके अन्तिम दिवसमें सृष्टिमें अनेक उत्कृष्ट परिवर्तन हुए। ऐसा अनुमान है कि उसी समय हिमालय पर्वत ऊपर उठ आया। अफगानिस्तान का तो कुछ भाग तृतीय कालके बीतने पर समुद्र के ऊपर आया था।

पैदावार—यद्यपि यहाँ खनिज पदार्थ बहुत है किन्तु उनका उपयोग अभीतक बहुत कम हुआ है। सोना यहाँ बहुत कम पाया जाता है। हिंदूकुश के पञ्जशीर की घाटियोंमें चाँदी की कुछ खानें अवश्य हैं। उत्तम प्रकार का लोहा काबुल के उत्तर पश्चिममें बाजौर प्रान्तमें पाया जाता है। गोमल और कुर्रमके समीप इसकी बहुताय है। हज़ारा और हेरातमें गन्धक पायाजाता है। शिनवारी प्रान्तमें लेड मिलता है। गोमल और कुर्रमके बीचके प्रदेश जुरमटमें कोयला मिल जाता है। बहुधा इन सबकी खानें यों हीं पड़ी हुई हैं। पर्वत-प्रधान देश होनेसे यहाँ की कृषिमें अभी तक अधिक उन्नति नहीं देख पड़ती। भारतके समान ही यहाँ भी दो फस्लें होती हैं। एक तो शिशिरमें बोई जाती है और गरमीमें काटी जाती है इस फसलमें अधिकतर गेहूँ जौ इत्यादि होते हैं। दूसरी वसन्तमें बोई जाती है और जाड़े के आरम्भ में काटी जाती है। इसमें चाँवल, चुकन्दर, तम्बाकू, फली इत्यादि होती हैं।

सफेद कोह पर भी जङ्गल है। ६००० फीटसे लेकर १०००० फीट की ऊँचाई तक केवल सेवार इत्यादि देख पड़ती है। ३००० फीट की ऊँचाई पर जैतूनके वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते हैं। शाह-बलूत.. फर., यू., सिडर इत्यादि के पेड़ देश भरमें होते हैं। यह देश फलों तथा मेवों की तो खान हैं। अखरोट, बादाम, पिस्ता, अप्रिकट, सफर-कन्द, पीच, सेव, नाक, नासपाती, शफ्तालू खुब्बानी, अँगूर तो यहाँ बेहद होते हैं। यहाँ के निवासी इसका सेवन भी जी खोलकर खूब करते हैं। यहाँ से फल और मेवे अन्य देशोंमें भी बहुत परिमाणमें भेजे जाते हैं।

जीवजन्तु—जंगली जन्तु यहाँ अधिक नहीं हैं। बन्दर यहाँ कुछ पाये जाते हैं। यूसुफजाई तथा काबुलके उत्तरमें ये अधिक हैं, किन्तु इनके भेद इत्यादिके विषयमें अधिक ज्ञान नहीं हो सका है। चीता भी कहीं कहीं पाया जाता है। जङ्गली कुत्ते भी देख पड़ते हैं। भारतके समान लोमड़ी, नेवले यहाँ भी होते हैं। एक तो काले रङ्गका और दूसरे मटमैले रङ्ग का भालू यहाँ बहुत होता है। उत्तरीय पूर्वी प्रदेशमें हिरन, बारहसिंघे, तथा भेड़े होती हैं। चिम गादड़ यहाँ बहुत होते हैं। जंगली गदहे, खच्चर, तथा दरयाई घोड़े भी यहाँ पाये जाते हैं। सर्प बहुधा हरे रङ्गके तथा डेढ़ फीट लम्बे देख पड़ते हैं। ये हानि नहीं पहुँचाते। हाँ, रेगिस्तानी प्रदेशोंमें काले साँप भी होते हैं जो अत्यन्त विषैले होते हैं। कन्दहार की गौ विख्यात हैं। ये बहुत दूध देने वाली होती हैं। ऊँट भी यहाँ देख पड़ते हैं किन्तु दो कूबड़ वाले ऊँठ शायद यहाँ के असली नहीं होते। खोरासान, कुर्रम, तुर्कमानके घोड़े विख्यात हैं। ये बड़े मजबूत और मेहनती होते हैं, चाहे तेजीमें उतने अच्छे भले ही न हों। बकरे यहाँ बड़े बड़े तथा सुन्दर, काले तथा चितकबरे रङ्गके होते हैं। यहाँ पक्षि होते तो अनेक प्रकारके हैं, और वर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके देख पड़ते हैं। कप्तान हटनने इन पक्षियोंके १२४ भेद बताये हैं। इनमें से ६५ तो यूरेशियाके मालूम होते हैं, १७ भारतीय और १० इन दोनोंके बीचके विदित होते हैं। थोड़ी सी चिड़िया यहाँ की ही हैं। गरमीके आरम्भमें तो यहाँ भारत तथा अफ्रीका के अनेक पक्षि देख पड़ते हैं, और जाड़ेमें यूरेशिया की ओर से बहुतसे आजाते हैं।

कच्चामाल—यहाँ उद्योग और धन्धे बहुत नहीं हैं, क्योंकि कच्चा माल यहाँ बहुत कम पैदा होता है। काबुल, कन्दहार हेरात, जलालाबादमें रेशम पैदा होता है, किन्तु ज्यादातर उनका प्रयोग देश-ही में हो जाता है। बहुत अच्छे मेलका रेशम पञ्जाब और बम्बईमें अवश्य भेजा जाता है। यहाँ की दरियाँ और कम्बल विख्यात हैं। ये सुन्दर मजबूत और टिकाऊ होते हैं। ऊँठ, भेड़ तथा बकरोंके ऊनका कपड़ा (Felt) बनाया जाता है। इस उद्योगमें यहाँ वालोंने बड़ी अच्छी सफलता प्राप्त की है। यहाँसे मालाके दाने मक्के तक भेजे जाते हैं।

जलवायु—यहाँके भिन्न भिन्न प्रदेशोंकी जल-वायुमें बहुत अन्तर देख पड़ता है, क्योंकि समुद्र की सतहसे हरेक भाग की ऊँचाई नीचाई (Sea level) में भी बहुत भेद है। कुछ प्रदेश यदि बिल्कुल समतल तथा मैदान हैं तो कुछ बहुत ऊँचाई पर स्थित हैं। ५०० फीट की ऊँचाई पर शरद ऋतुमें अत्यन्त शीत पड़ती है। गजनीमें तीन महीने तक बराबर बर्फ पड़ा करती है, तथा तापमान (Temperature) १०°-१५° तक हो जाता है। हज़ारा प्रान्त भी अपने जाड़े के लिये प्रसिद्ध है। काबुल में उतनी सर्दी नहीं पड़ती।

गर्मी में काफी गर्मी पड़ती है। ५७८° फीटकी ऊँचाई पर स्थित होते हुए भी ९०° से १००° तक ताप मान हो जाता है। वर्षा यहाँ अप्रेल मई मासमें हो बहुधा होती है। अधिक तर भागोंमें जनवरी में ३१°४, मई में ६७°७, जुलाई में ७२°२ तथा नवम्बरमें ५१°२ डिग्री तापमान का औसत आता है।

निवासी—आधुनिक अफगानिस्तान भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे बना है। एरिया, बैकट्रिया, आराकोशिया इत्यादि अनेक प्रान्त हैं। इनमें ईरानी सूबेदार भी हैं। अफगानिस्तान में भिन्न भिन्न जाति तथा राष्ट्रोंके मनुष्य देख पड़ते हैं। इनके विचार इत्यादिमें भी भिन्नता देख पड़ती है। हाँ, धार्मिक दृष्टिसे ये सब एक ही कहे जा सकते हैं क्योंकि सभी अपनेको मुसलमान कहते हैं। मुसलमानों के मुख्य दो भेद हैं—(१) शीया और (२) सुन्नी। इनके पूर्वज कदाचित् तुर्की इरानी रहे होंगे। अब तो इनमें सेमेटिक रक्तका भी सञ्चार देख पड़ता है। यहाँके निवासियोंके दो भाग किये जा सकते हैं—(१) अफगानी और (२) अफगानीसे अन्य। अफगानी गिनती तथा शक्ति दोनों ही में प्रबल देख पड़ते हैं। बेलोके मतानुसार बहुतसे निवासियों को भी ये अपने में शामिल नहीं करते। इस श्रेणीमें पठान, वरदाफ, तुर्री, हिन्दुस्तानी, ताजिक इत्यादि की गणना की जा सकती है। अफगानोंकी लगभग १२ मुख्य जातियां हैं। उनमेंसे दुर्रानी, गिलजई, यूसुफज़ई तथा ककर इत्यादि मुख्य हैं। दुर्रानी अहमदशाह के वंशज है। अफगानिस्तान के दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम प्रदेशोंमें ये बसे हुए हैं। ये बड़े बड़े राज्यकर्मचारी हैं। इनकी संख्या भी बहुत है। गिलज़ई अफगान-निवासियोंमें सबसे अधिक वीर शक्तिमान जाति कही जा सकती है। पिछली शताब्दीमें तो इनका बड़ा बोलबाला था। इनकी बस्ती कन्दहारके उत्तरीय पहाड़ों में ही अधिक है। अंग्रेजोसे युद्धमें इन्होंने दोस्त मुहम्मद का बड़ी वीरतासे साथ दिया था। दुर्रानी और ये मिलाकर देशमें १५ लाखसे अधिक होंगे। यूसुफज़ई पहाड़ी प्रदेशोंमें और मुख्यतः पेशावर की उत्तरीय घाटियोंमें रहते हैं। ये अपने झगड़े फिसाद के लिये प्रसिद्ध हैं। अफगानिस्तानके पूर्वी-दक्षिणी भागमें ककर जातिके लोग रहते हैं। इनके विषय में इनके देशकी भाँति बहुत कम ज्ञान प्राप्त हो सका है।

अन्य बाहरी जातियोंमें ताजिकोंका सबसे अधिक महत्व है। ये पश्चिमीय प्रान्तोंमें बसे हुए हैं। ये बहुधा सुन्नी हैं! अन्य जातियों की भाँति ये उतने लड़ाके और झगड़ालू नहीं हैं। ये शान्ति प्रिय है, और खेती बारीका काम करते हैं। शहर में जो बस गये हैं वे अन्य औद्योगिक धन्धे करते हैं। अफगानों को ये अपनेसे श्रेष्ठ मानते हैं और अपनेको उनकी प्रजा ही समझने में सन्तुष्ट हैं। दूसरी ऐसी ही मुख्यजाति कज़लबाशोंकी है। मूलतः ये भले ही तुर्क रहे हों, किन्तु अब ये पूर्णतया फारसी समझे जाते हैं। ये फारसी ही बोलते हैं। ये नादिरशाहके समय में आकर बसे थे। लगभग ५०००० के हैं और प्रायः बड़े बड़े नगरोंमें ये बसे हुए हैं। ये शान्त, सभ्य और विद्वान होते हैं। तिजारत, डाक्टरी, वैद्यगी, कारीगरीके कार्योंमें ये कुशल होते हैं। काबुलमें ये अमीरकी फौजमें भी बहुतसे भर्ती हैं। बहुधा ये शिया होते हैं। ये बुद्धिमान, कार्यपटु तथा चतुर होते हैं।

हजारा पहाड़ी प्रदेशों में रहते हैं। इनकी आकृति मङ्गोलियन लोगोंसे मिलती जुलती होती है। प्रधानतः चङ्गेजखाँके साथ आई हुई सेनाके ये वंशज होंगे। ये फारसी ज़बान बोलते हैं। गज़नीके समीपके थोड़ेसे निवासियोंको छोड़कर बहुधा ये दरिद्र होते हैं। जाड़ेमें घरबार छोड़कर कारबार की खोजमें मारे मारे फिरते हुए ये पञ्जाब तक में देख पड़ते हैं। ये बन्दूक चलाने में सिद्धहस्त होते हैं। बिलूचो जाति यद्यपि अपने को मानते तो मुसलमान ही हैं, किन्तु इस्लाम-धर्मके सदुपदेशों का वे बिल्कुल पालन नहीं करते। ये भयङ्कर तथा जंगली होते हैं। सभ्यता, आचार, विचार, व्यवहारमें भी ये बहुत गिरे हुए हैं। जादू टोनेमें इनका विश्वास बहुत होता है। मूर्खता तथा अन्धविश्वासके घोरतम गढ्ढेमें ये गिरे हुए हैं। भूख प्यासकी सहन शक्ति इनमें असीम होती है। अश्लीलताका इन्हें ध्यान भी नहीं होता। हिन्दुस्तानी, सिन्धी, काश्मीरी, अरबी इत्यादि अनेक जातियाँ भी यहाँ आकर थोड़ी बहुत बस गई हैं। इन सबके अतिरिक्त यहाँ अनेक जातियाँ ऐसी हैं जो सदा घूमा ही करती हैं। इनके घरबार नहीं होता है। ये खेती इत्यादि नहीं करते। अपने मवेशियोंको साथ लिये लिये फिरते हैं, और वही इनके जीवननिर्वाहका साधन होता है। ये पक्के चोर तथा डाकू होते हैं। इनपर राज्य का भी पूरी अधिकार नहीं रह पाता। क्रय-विक्रयके हेतुके अतिरिक्त ये नगरमें कभी नहीं देख पड़ते। इनके भी नेता होते हैं।

जिनसे आपसके झगड़ोंका निपटारा ये कराते हैं।

जो जातियाँ भली भाँति बस गई हैं, उनके गाँव बसे हुए हैं। बहुतसे नगरोंमें भी बसे हुए हैं। खेती बारी और सिपहसालारी ही इनका मुख्य धन्धा है। हरेक अपनी अपनी भूमिके स्वामी है। अफगान जाति सुन्दर, सुडौल, हृष्टपुष्ट तथा आखेटप्रिय होती है। इनका रङ्गरूप साफ होता है, दाढ़ियाँ रखते हैं और आगे का बाल मुड़ाये रहते हैं, किन्तु पीछे का बढ़कर कन्धोंपर लटकता रहता है। ये दृढ़, कठोर, तथा गौरव पूर्ण होते हैं। व्यवहारमें ये रूखे विदित होते हैं। मृत्युसे ये बिल्कुल नहीं डरते। ये बड़े साहसी तथा धैर्यवान् होते हैं, किन्तु अपयश अथवा इच्छा विरुद्ध होने पर शीघ्र ही विचलित हो उठते हैं। उस समय ये फिर वशमें नहीं आते। अतिथि सत्कारके लिये ये सब कुछ कर सकते हैं और सह सकते हैं। शत्रु भी यदि अतिथि रूपमें आवे तो उसका सत्कार करते हैं। शरणागत की रक्षाके लिये ये अपनी तथा अपने कुल तक की जान लड़ा सकते हैं। छोटी छोटी बातोंके लिये हत्या कर डालना इनके लिये मामूली बात है। इनकी दृष्टिमें जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं होता। यों तो मित्रता का नाता भी ये खूब निवाहना जानते हैं, किन्तु किस बातपर ये बिगड़ उठेंगे नहीं कहा जा सकता।

इनकी स्त्रियाँ सुन्दर, गौरवर्ण की हृष्टपुष्ट होती हैं। इनकी आकृति यहूदी लोगोंसे मिलती जुलती होती है। बाल्य कालसे यौवनमें पदार्पण करते समय इनका चेहरा गुलाबी तथा स्वास्थ्यकर विदित होता है, किन्तु इनके एकान्तवास परदे की प्रथा तथा निरस जीवनके कारण ये शीघ्र ही रोगी सी देख पड़ने लगती हैं, चेहरा पीला हो जाता है, और आँखे धँसी हुई जान पड़ती हैं। ये बालों को बीचमें से मांग काढ़कर दो चोटियों में विभक्त कर लेती हैं।

ये इस्लाम-धर्मको मानने वाले होते हैं, किन्तु धर्मके विषयमें बहुत कम ज्ञान इन्हें स्वयमोपार्जित होता है। बहुधा वे अपने मुल्लाओंके कथन पर ही अन्धविश्वास कर लेते हैं। जादू, टोना, शकुन तथा ज्योतिष पर इनका अटल विश्वास होता है। मृतकों को ये भी गाड़ते हैं। यद्यपि ये मूर्ति पूजक नहीं होते, किन्तु 'ज़ियारत' करने जाते हैं। और ऐसी ज़ियारत और दरगाहे यहाँ कमसे कम १६३ हैं। ये बहुधा क़ट्टर सुन्नी जातिके होते हैं। थोड़े बहुत शीया भी देख पड़ते हैं। सुन्नी तथा शियों में सदा वैमनस्य बना रहता है। अन्य धर्मावलम्बियों से बिना कारण ये छेड़छाड़ नहीं करते।

इन लोगोंमें अनेक विवाह की प्रथा है। प्रत्येक मनुष्य चार तक विवाह कर सकता है। इन लोगोंमें स्त्रियोंके खरीदने की भी प्रथा थी। इस रीतिका यह प्रभाव पड़ा कि स्त्रियाँ भी अपने पति की जंगम सम्पतिके समान समझी जाने लगी थीं। पुरुष इच्छा होने पर बिना किसी कारणके भी अपनी पत्निको तिलाक दे सकता है, किन्तु स्त्री को यह अधिकार नहीं है। वह केवल क़ाज़ी से आज्ञा पाने पर ही ऐसा कर सकती है। विधवा-विवाह प्रचलित है। विधवा सबसे पहले अपने पतिके भाईसे विवाह कर सकती है। उसके रहते हुए अथवा बिना उसकी अनुमतिके वह दूसरे से विवाह नहीं कर सकती। विवाह कर लेने पर विधवाका अपने पतिकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रह जाता। विधवा किसी व्यक्ति-विशेषसे ही विवाह करनेके लिये बाध्य नहीं की जाती, उसे पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है कि जिस पुरुषसे उसकी इच्छा हो विवाह करे। बहुत सी ऐसी विधवायें जिन्हें सन्तान होती हैं, फिर विवाह करना पसन्द नहीं करतीं। ऐसी विधवा अधिक आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं।

बिल्कुल ठीक ठीक तो सम्पूर्ण देशके लिये विवाह की कोई खास अवस्था कह देना कठिन है किन्तु बहुधा तथा साधारण परिस्थितमें लड़कों की विवाहावस्था २० वर्ष और कन्याओं की १५, १६ वर्ष होती है। जो निर्धन हैं उनका विवाह अधिक अवस्थामें भी बड़ी कठिनतासे हो पाता है। इसी भाँति विशेष परिस्थितियोंमें पड़ जानेके कारण २५, ३० वर्ष तककी कुमारी (बेगम) देखी जाती हैं। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि सम्पन्न कुलके लड़के तथा लड़कियों का विवाह बहुत छोटी ही अवस्थामें हो जाता है। १५ वर्षके लड़के और १२ वर्ष की कन्यायें धनी कुलोंमें अनेक विवाहित मिलेंगे। अफगानिस्तानके पश्चिमीय प्रान्तोंमें तो ऐसी प्रथा देख पड़ती है कि जब तक दाढ़ी नहीं निकल आती, तब तक विवाह नहीं करते। गिलजी लोग तो और अधिक अवस्थामें विवाह करते हैं। यों तो बहुधा इन लोगों के सम्बन्ध अपनी अपनी जातिमें ही करना अच्छा समझते हैं, किन्तु परजाति अथवा परदेशोंमें भी विवाह सम्बन्ध स्थापित करनेमें कोई अड़-

चन नहीं है। ये अन्य जाति की कन्याओंसे तो विवाह सहर्ष कर लेते हैं, किन्तु अपनी कन्या अन्य जातिमें देनेसे अपनी मान मर्यादा पर आघात हुआ समझते हैं। परदेकी प्रथा यहां भी फली होने के कारण बहुधा युवक युवति स्वयं अपना विवाह निश्चय नहीं कर पाते। उनके माता पिताका ही ये कर्त्तव्य होता है कि भली भाँति देख भाल कर अपने पुत्र पुत्रियोंका विवाह करें। कन्याको देखनेके लिये किसी स्त्रीको भेज दिया जाता है। जब सब भाँति सन्तोष हो जाता है तब विवाहनिश्चय अर्थात् सगाई (मँगनी) तै की जाती है। इसके बाद दहेज इत्यादिका दोनों ओर प्रबन्ध हो जानेपर तथा गृहस्थी सम्हालने का पूरा इन्तजाम हो जानेपर इस्लाम धर्मानुसार एक दिन काजी मुल्लाओंके सामने धूमधामसे विवाह सम्पन्न हो जाता है। अमीर तो चार चार तक विवाह करनेके बाद भी घरमें अनेक रखेलियाँ डाले रहते हैं, किन्तु सभ्यताके विकासके साथ साथ यह प्रथा भी कम होती जा रही है।

इन लोगों का रहन सहन सीधा सादा होता है। धनके अभावसे इन्हे पर्याप्त अन्न भी प्राप्त नहीं होता। साल का अधिक भाग तो केवल ये फल और मेवों पर ही काट देते हैं। धनी लोग गेहूं तथा चावलका प्रयोग करते हैं किन्तु निर्धन तो बहुधा कूटू पर ही निर्वाह करते हैं। ये मांसाहारी होते हैं और बकरे का मांस अधिक व्यवहार में लाते हैं। इन लोगोंकी पोशाक भी सीधी सादी एक सी देख पड़ती है। चौड़ा पैजामा, कमीज या कुरता और चोगा पहनते हैं, और सिर पर साफा लपेटे रहते हैं। आजकल कुछ धनी लोग पाश्चात्य पोशाक भी पहनने लगे हैं। इन लोगोंके घर अभी भी बहुधा वैसे ही पुराने ढङ्गके कच्चे ईंटोंके देख पड़ते हैं। ये एक मञ्जिलके बने रहते हैं और मकानके चारों ओर चहार दीवारी खीचीं रहती है। ये आखेटप्रिय तो होते ही हैं साथ ही और भी ताकतके खेलोंमें भाग लेते हैं। ये कुश्ती और दंगलके बड़े प्रेमी होते हैं। गाँवमें छोटे बड़े सभी गोली खेलते हैं। यहाँ अभी भी बड़े बड़े नगरों को छोड़कर पाश्चात्य खेल टेनिस क्रिकेट इत्यादि-का अधिक विकास नहीं देख पड़ता। शतरञ्ज का खेल यहाँ घर घर प्रचलित है। यों तो यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य अति उत्तम होता है, शारिरिक बल भी पर्याप्त होता है, वृद्धत्व को भी शीघ्र ही नहीं प्राप्त होते, किन्तु स्वास्थ्य तथा स्वच्छता (Hygine) के नियमोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण तथा सभ्यता, विज्ञान इत्यादिमें बहुत पिछड़े होने के कारण अनेक प्रकारके रोग इस देशको सदा ग्रसे रहते हैं। गत बीस वर्षोंमें तीन बार महामारी का भयंकर प्रकोप हो चुका है। चर्मरोग, आँखों का रोग, गण्डमाला, गरमी इत्यादि यहाँके मुख्य रोग हैं।

इस देशकी मुख्य भाषा तो पुश्तो ही मालूम पड़ती है जो कदाचित इण्डो-आर्यन (Indo Aryan) भाषा की एक शाख होगी किन्तु आज कल फारसीका ही अधिक महत्व देख पड़ता है। विदेशियोंके अतिरिक्त वहाँके भी धनी तथा सभ्य कुलोंमें इसीका अधिक व्यवहार देख पड़ता है और यही राज-भाषा भी समझी जाने लगी है। जलालाबादमें लगमानी भाषा बोली जाती है। सरहदी देशों तथा बेलुचिस्तानमें बलूची भाषा बोलते हैं। पुश्तो हेरात अथवा हेलमण्डसे पश्चिम में नहीं देख पड़ती।

अफगान देशका प्राचीन काव्य तथा साहित्य पुश्तो भाषामें ही मिलता है। इनमें से कुछ पुस्तके विशेष उल्लेखनीय हैं। पुश्तो भाषाका जो आज कल सबसे पुराना ग्रन्थ मिलता है वह एक इतिहास है। यह (सन् १४१३-१४ ई०) यूसुफ-जई लोगोंके एक सरदार शेखअली द्वारा लिखा हुआ है। इसमें इसने अपनी विजय का वर्णन किया है। इसके बाद उसी कुलमें काजूखाँ हो गये थे। उन्होंने भी अपना इतिहास लिखा है। अकबरके शासन कालमें भी बायजद अन्सारी उपनाम पोरे-रोशन तथा प्रसिद्ध अफगानी साधु अखुन्द दर्वेजा ने पुश्तोमें पुस्तकें लिखी थीं।

इनके साहित्यमें कविताका प्रधानत्व देख पड़ता है। थोड़ी बहुत उच्चकोटि की भी कवितायें देख पड़ती हैं। इनमें अबदुर्रहमान नामक एक बहुत उच्चकोटि का कवि होगया है। दूसरा प्रसिद्ध कवि खुशहालखाँ था। यह औरंगजेब के समय में होगया था। इसके वंश में अनेक अन्य कवि भी हो गये हैं। राज्यसंस्थापक अहमदशाह ने भी अनेक कवितायें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त देशीय गाने भी बहुतसे मिलते हैं।

प्रधान जातियों तथा स्थानों का इतिहास—यद्यपि भारतवर्षमें सभी अफगानीको 'पठान' के नामसे सम्बोधित किया जाता है, किन्तु अफगानिस्तान में 'पठान' से उन्हीं का बोध होता है जो 'पुश्तो' भाषा बोलते हैं। 'पठान' का सम्बन्ध 'पक्टियन' शब्दसे बहुत घनिष्ठ मालूम होता है। सम्भव है

कि जिस 'पक्थ' जातिका उल्लेख ऋग्वेदमें आया है, वे ही इनके पूर्वज हों। प्रसिद्ध इतिहासकार हीरोडोटस का कथन है कि 'पक्टिया' नामका एक स्थान आर्मेनिया प्रान्तमें था। उसने जो कुछ इसका वर्णन किया है उससे पता चलता है कि यह प्रान्त सिंधुनदके सरहद पर था। इसका क्षेत्रफल आधुनिक पुक्तुनखवाके क्षेत्रफलके बराबर ही था। इसको रोह भी कहते हैं और यहाँ के रहने वाले रोहिलों के नामसे प्रसिद्ध हैं। आजकल जो बैक्ट्रियाके नामसे प्रसिद्ध है वह पूर्वकालीन हिन्दू इतिहासका बाहुलीक रहा होगा क्योंकि सिन्धुनद और ऑक्ससके उत्तरी भागको ही बाह्लीक कहा जाता था। पक्टिया प्रान्तसे आजकल जो बोध होता है वह भाग सुलेमान पर्वतकी श्रेणियों तथा सफेद कोहके बीचमें स्थित हैं और यही पठानोंका मुख्य स्थान है।

कन्दहार प्राचीन गान्धार देशका ही रूपान्तर है। यह काबुल तथा सिन्धुनदके बीचमें स्थित है। इस देशका भी बहुत पुराना इतिहास देख पड़ता है। महाभारत इत्यादिमें अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख मिलता है, और भारतवर्षसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पूर्वकालमें यहाँ हिन्दुओं का राज्य था। यहाँपर अन्य अनेक जातियाँ भी रहती थीं। पर्शियन, शक तथा तैमनी इनमें मुख्य थीं।

इस्लाम धर्मका प्रचार बढ़ने पर तथा अफगानिस्तान द्वारा जीते जानेपर यहाँके निवासियों ने भी इस्लाम धर्म धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया जिससे उनके राष्ट्रीयत्व पर गहरा धक्का लगा, केवल नाम ही नाम रह गया। अफगानी प्रबल थे। अतः उनकी रीति रस्म तथा सभ्यता का इस देशपर पूरा प्रभाव पड़ा। शादी विवाह होने लगे। अन्तमें इनका कोई अलग अस्तित्व ही नही रह गया; और ये भी पक्के मुसलमान हो गये। अब इनकी गणना 'अफगानियों' में ही की जाती है।

अन्य मुख्य जाति 'दलाज़क' है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये लोग सीथियन जातिके होंगे। कदाचित ये पाँचवीं तथा छठीं शताब्दी में यहाँ आये होंगे। उसी समय जाटोंसे सम्मिलित होकर इन्होंने कन्दहार पर आक्रमण किया था और वहीं पर बस गये। ये पेशावर तक फैले हुए थे। वहाँके जाट, गूजर' के नामसे प्रसिद्ध थे। उनका मुख्य धन्धा जानवरों का पालना तथा खेती करना ही था। पहले ये भी काफिर समझे जाते थे। इससे यह स्पष्ट है कि ये इस्लाम धर्म को नहीं मानते थे। ये लोग मुहम्मद गजनवीके समयमें ही मुसलमान हुए थे। इन्होंने धीरे धीरे पेशावरपर अधिकार कर लिया था। किन्तु थोड़े ही दिनोंमें इनसे अफगानोंसे युद्ध हुआ।

अन्तमें मिर्जा उलुख बेगके समयमें यूसुफजई तथा महमन्द लोगोंने मिलकर इन्हें पूरा पूरा परास्त कर डाला और पेशावर से भगा दिया। जहाँगीर बादशाह के समयमें भी इनका अस्तित्व पेशावर, पाकली, कच्छ तथा धौलपुर इत्यादि में मिलता है।

इसी समय धीरे धीरे यूसुफजई लोगों का प्रभुत्व बढ़ने लगा था। देशपर देश जीतते जाते थे खाना देशके निवासियोंने इनसे अच्छा मुकाबिला किया। किन्तु अकालके कारण इन लोगों को भी शरण आना पड़ा। धीरे धीरे इन्होंने भी मुसलमानी धर्म ग्रहण किया। इसी समय महमन्द लोगोंने कन्दहार (गान्धार) पर भी आक्रमण कर दिया था। कन्दहार इनके सामने टिक न सका और अन्तमें उसकी पराजय हुई। जेताओंने देशको सत्यानाश कर डाला और बड़ी क्रूरता तथा बर्बरता का बर्ताव किया। फल ये हुआ कि बहुतेरे देश छोड़कर काफिरिस्तान इत्यादि प्रदेशों में जाकर बसे। कुछ काल तक तो इन्होने अपना धर्म नहीं छोड़ा और विजयी इनको 'काफिर' ही कहकर सम्बोधित करते रहे। शनैः शनैः इस्लाम धर्म फैलने लगा और अधिकांश कट्टर मुसलमान हो गये। किन्तु अभी भी यहाँ हिन्दू जाति देख पड़ती है। स्वात का प्रसिद्ध राजा तथा साधु (दरवेश) आखुंद गान्धारी जातिका ही था। अनेक बार इन्होंने अपने खोये हुए अस्तित्वको प्राप्त करनेका प्रयत्न किया किन्तु कभी भी इन्हे पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई। विजयी जातियोंको यह स्थान बड़ा उत्तम जँचा और वे स्थायी रूपसे यहीं बस गये। किन्तु इससे वहाँकी सभ्यताका पूरा पूरा नाश हो गया। बौद्ध कालमें इस देशकी अवस्था बड़ी उत्तम थी तथा यहाँकी सभ्यता तथा विकास प्रख्यात था। बड़े बड़े नगर बसे हुए थे। सर्वत्र सुख शान्ति का साम्राज्य था। जनता उच्च भावों से परिपूर्ण थी। पुराने लेख, स्मारक तथा खण्डहर जो अब भी पाये जाते हैं इसकी तथ्यताका उत्कृष्ट प्रमाण है। स्वात, वाजावर, बुनर इत्यादि स्थानोंमें आज भी अनेक चिन्ह पाये जाते हैं।

यूसुफजई अपने को अफगानी ही कहते हैं किन्तु यह जोसेफके वंशज मालूम होते हैं। धीरे धीरे इनकी संख्या बहुत बढ़ गई। १६वीं शताब्दीके आरम्भमें जब पञ्जाब अँग्रेजोंने जीत लिया तो ये भी उनके वशमें आ गये। तबसे इनके देशोंमें भी अनेक सुधार हुए। अब ये लोग सुख शान्तिसे रहते हैं।

'अफ्रीदी' जातिके विषयमें अनेक कल्पनायें हैं। हिरोडोटसके मतानुसार यह अपारीटी जातिके हैं किन्तु आजकलके अफ्रीदी तथा उनमें बड़ा अन्तर देख पड़ता है। अफगानियोंके मतानुसार ये धुरघुष्ट जातिके हैं। बहुत सम्भव है कि पहले चाहे ये बौद्ध धर्मावलम्बी रहे हों चाहे अग्निपूजक, किन्तु अब तो ये अपनेको मुसलमान ही कहते हैं। इस समय इनकी गणना असभ्य तथा जंगली जातिके लोगोंमें ही की जाती हैं। आज कल इनकी अनेक उप-जातियां देख पड़ती हैं। खैबरके पास इनकी बहुत बस्ती है।

इतिहास—अफगानी अपने को बानीये-इस्माइल अर्थात् 'इस्माईलके वंशज' कहते हैं। 'साल' बादशाह (जिसे यह तालूत कहते थे) को ये अपना पूर्वज मानते हैं। आगे चलकर इसी राजा का वंशज 'अफगाना' था जिससे इनके आधुनिक नामकी उत्पत्ति हुई। इस्लामके विख्यात पैगम्बर मुहम्मदके धर्मप्रचारके नवें ही वर्ष कैसके नेतृत्वमें इनलोगों का एक दल मदीना भेजा गया। इस दलके लौटनेपर धीरे २ सबोंने इस्लाम धर्मकी दीक्षा ग्रहण की। आधुनिक अफगानी कैस तथा उसके तीन पुत्रों ही से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। इस कथाका वर्णन देशकी अनेक पुस्तकोंमें मिलता है। सबसे पुरानी पुस्तक जो इस विषय की मिलती है वह सोलहवीं शताब्दीकी है। मेजर रेवर्टीने लिखा है कि बादशाह सुलेमान इन लोगोंके बीचमें आकर आधुनिक सुलेमान पर्वत पर स्वयं बसा था। फरिश्ता नामक प्रसिद्ध इतिहासकार का मत है कि परोआह जातिके काप्टस लोगोंसे अफगानोंकी उत्पत्ति हुई। बेलोका कथन है कि बिलुचिसका पिता बिलो जो कैसके समयसे पहले का है, वह उजबक तथा अफगाना भाई भाई थे।

ईसासे ३२० वर्ष पूर्व सेल्युकसने चन्द्रगुप्तको सिन्धुनदके पश्चिमका कुछ भाग दहेजके रूपमें दिया था। इस भागमें भारतवर्षके ही लोग बसे हुए थे। यह काबुलके तरेटी तक फैला हुआ था। लगभग साठ वर्ष बाद इन प्रान्तोंपर ग्रीस का फिर प्रभुत्व देख पड़ता है। इस विषयमें कुछ निश्चयपूर्वक कहना तो कठिन है किन्तु इतना अवश्य कहा जासकता है कि काश्मीर तक किसी समय यूनानका प्रभुत्व रहा होगा। अब भी ऐसे अनेक चिन्ह तथा अवशेष प्राप्त होते हैं जो ग्रीक सत्ताका प्रमाण हैं।

ईसाके समयके लगभग कुशन लोगोंने (यूनान निवासी इन्हें इण्डोसीथियनके नामसे पुकारते थे) हिन्दूकुशके दक्षिण तक अपना राज्य फैला लिया था। इनलोगों की सत्ता केवल अफगानिस्तान ही तक नहीं थी, भारतवर्षमें सिन्ध इत्यादि तक इनका प्रभुत्व था। चाहे भारतवर्षका शासन तथा अधिकार इन प्रदेशोंपर पूर्णरूपसे कभी भी न रहा हो किन्तु इतना तो निश्चय है कि बौद्ध धर्म तथा सभ्यताका यहाँ किसी समय पूर्ण विकास रहा होगा। जलालाबाद, पेशावर तथा काबुलके आसपास आज दिन भी ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे इस विषयमें कोई भी सन्देहका स्थान नहीं रह जाता।

समयके साथ साथ इन प्रदेशोंपर भी बाहरी दलोंके अनेक आक्रमण हुए। इन सबमें प्रसिद्ध कनिष्क ही हुआ है। यह भी ईसाके समयके लगभगका ही है। इसका राज्य भारतवर्ष तक फैला हुआ था। इसका वर्णन ६०० वर्ष बाद आनेवाले चीनी यात्री ह्यूनस्टाँगने विस्तारपूर्वक किया है। इसकी ख्याति अबुरिहानुलबरूनी नामक प्रसिद्ध मुसलमान भूगोलवेत्ता, तत्वज्ञानी तथा यात्रीने ११०० ई० में अपनी पुस्तकोंमें वर्णन की है।

ह्यूनस्टांगके समयमें (६३०-६४५ ई०) तथा उसके बहुत दिनों बाद तक काबुलमें हिन्दू तथा तुर्क दोनों ही का प्रभुत्व देख पड़ता है। दसवीं शताब्दीके अन्त तक काबुलमें हिन्दू राज्य ही का प्रमाण मिलता है। उसी समय सुबुक्तगीन नामक तुर्कने काबुलको जीता था। इसने ग़ज़नीको अपनी राजधानी नियत की। बारहवीं शताब्दी तक उसीके वंशज राज्य करते रहे। इनके समय में ग़ज़नीकी गणना संसारके मुख्य नगरोंमें की जाती थी। कुछका मत है कि ये अफगान थे। यदि यह सच है तो कह सकते हैं कि ये पहले बादशाह थे जिनको अफगान कह सकते हैं। किन्तु कुछ इतिहासकारोंका मत है कि ये ज़ोहक वंशके थे। इसके बाद शाहबुद्दीनगोरी देख पड़ता है। इसने तो भारतवर्षपर भी अनेक आक्रमण किये। कुछ समय तक अफगानिस्तानपर खारिज़मके बादशाहका अधिकार था। इसी वंशके जलालु-

द्दीन नामक बादशाहने चिङ्गेजखाँसे मुठभेड़ की थी। मंगोल आक्रमणके लगभग १०० वर्ष बाद तक अफगानिस्तान इन्हीं लोगोंके हाथमें रहा। मंगोल शासनकालका इतिहास ठीक ठीक नहीं मिलता, किन्तु देशपर इसका प्रभाव अवश्य ही पड़ा। अब भी बहुतसे स्थानोंके नाम तथा भाषाके शब्द मङ्गोल व्युत्पतिके ही बिदित होते हैं। चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें कुर्त जातिका प्रभुत्व पश्चिमीय अफगानिस्तानमें देख पड़ता है। इसके शासनमें गोर, हेरात तथा कन्दहार इत्यादि सभी स्थान थे।

इसके पश्चात् इन सब प्रदेशोंको तैमूरने जीत लिया था और १५०१ ई० तक ये उसीके वंशजों के हाथमें रहा। इसके पश्चात् बाबर गद्दी पर बैठा और १५२२ ई० में उसने अरगुणोंसे कन्दहार छीन लिया। तदनन्तर यह मुगलद्वारा स्थापित राज्यका हो भाग रहा। कन्दहार कभी तो मुगलों के हाथमें रहता था कभी ईरानके सूफीवंशके आधीन होजाता था। १७३७-३८ ई० में नादिर-शाहने कन्दहार और काबुल जीत लिया था। इसने अफगानोंके साथ बड़ा अच्छा सलूक किया और बहुतोंको अपनी फौजमें भर्ती कर लिया। अब्दाली वंशका अहमदखाँनामक एक नवयुवक इसकी फौजमें था। नादिरशाहके बधके उपरांत अफगान लोगोंने इसीको अपना राजा चुना। नादिरशाहके राज्यका उत्तरी भाग इसके हाथ आया। इसने दुर्रानीको उपाधी ग्रहण की जिसका अर्थ 'अपने समयका रत्न' होता है। अफगानि-स्तानका इसे पहला राजा कह सकते हैं। इसने २६ वर्ष तक बड़ी तत्परता तथा सावधानीसे राज्य किया। इसने अपने राज्यका बहुत विस्तार किया। उसने पानीपतके मैदानमें मराठोंको १७६१ ई० में बड़ी वीरताके साथ हराया, किन्तु इससे इसका विशेष लाभ नहीं हुआ। १७७३ ई० में बहुत दिनों तक रोगशय्या पर पड़े रह कर इसने शरीर त्याग किया। इसकी मृत्युके पश्चात् इसके पुत्रने कन्दहारसे काबुलको अपनी राजधानी बदल डाली। इसने बीस वर्ष राज्य किया और बड़ी तत्परतासे बिद्रोहियोंको दबाये रक्खा। इसके तेइस पुत्र थे। इनमेंसे पाचवाँ ज़मानएमिर्ज़ा अब्दाली वंशके पियादाखाँकी सहायतासे राज्यका मालिक बन बैठा। बहुत दिनों तक भाई भाइयोंमें घोर युद्ध होता रहा। इसके पश्चात् शुजाउलमुल्क तथा महमूद गद्दी पर बैठे। महमूदकी सफलताका मुख्य कारण फतेहखाँ था। अपनी योग्यताके कारण इसका सिक्का जम गया और अपने अन्य भाइयोंको अच्छे अच्छे पदपर दूर दूर नियत करा दिया। महमूद का पुत्र कामरान बड़ी नीच प्रकृतिका था। इसीके कारण महमूदने अपने मन्त्रीके साथ बड़े अत्या-चार किये और अन्तमें उसे मरवा डाला। अपने भाई फतेहखाँका बदला चुकानेके लिये सब भाइयों ने उसपर हमला करदिया। किसी भाँति काम-रानकी मृत्यु तक (१८४२ ई०) हेरात बचा रहा, किन्तु उसकी मृत्यु होते ही उसके मन्त्री यार मुहम्मदने उसपर कब्जा कर लिया। यह बड़ा ही चतुर तथा धूर्त था। बाकी देश उन सब भाइयोंने आपसमें बाँट लिया। इनसबोंमें चतुर बुद्धिमान् तथा योग्य दोस्त मुहम्मद ही था। उसके भागमें काबुल आया। १७२३ ई० में नौशेराके विजयके बाद पेशावर तथा सिन्धुनदको दक्षिणीय भाग सिक्खोंके हाथ लगा। अफगानोंका प्रभुत्व पञ्जाबसे पहले ही उठ चुका था। सिन्धने १८०८ ई० से ही स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। १८१६ ई० से काश्मीर स्वतन्त्र होगया था। सूबा तुर्किस्तान तो तिमूरशाहकी मृत्युके उपरांतसे ही स्वाधीन होरहा था।

१८०६ ई० में नैपोलियन ईरानमें गड़बड़ कर रहा था। इसी कारण आनरेबल माउन्ट स्टुवर्ट एलफिन्सस्टन शाह शूजाके पास राजदूत बनाकर भेजे गये क्योंकि इस समय उन प्रदेशों पर उसीका प्रभुत्व था। इस अंग्रेज राजदूत का पेशावरमें अच्छा स्वागत हुआ। अफगानियों से अंग्रेजों का सम्बन्ध होनेका यह पहला ही अवसर था। १८३२ ई० में बुखारासे लौटते समय लेफटेनेण्ट अलेक्स वर्नस काबुल भी ठहर चुके थे। अतः जब १८३७ ई० में ईरान वालोंने हेरात पर घेरा डाला और रूस अपनी कारवाई अलगही कर रहा था तो अंग्रेजोंको बड़ी चिन्ता होने लगी और अन्तमें गवर्नर जन-रलने वर्नस्को अमीर अफगानिस्तानके दरबारमें राजदूत बनाकर रहनेके लिये भेजा। दोस्त मुहम्मदने जो शर्तें पेश की वह अंग्रेजोंको स्वीकार नहीं थी। इधर शाह शूजा बहुत दिनोंसे अंग्रेजी राज्यमें पड़ा था। अतः अंग्रेजोंने उसे ही गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया। यहीं से प्रथम अफगान युद्धका प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन पञ्जाब नरेश रञ्जीतसिंहने अपने राज्यसे अंग्रेजी फौज पार होने देनेमें आनाकानी की। किन्तु १८३८ ई० के मार्च महीनेमें २३००० फौज सिन्ध

में एकत्रित होकर सर जॉन कीन (Sir John Keane) के सेनापतित्वमें बोलनके दर्रेसे आगे बढ़ी। मार्गमें कठिनाई तो अनेक पड़ी किन्तु सन्मुख कोई भी न आया। कन्दहारका शासक कोहनदिल खाँ ईरान भाग गया। १८३६ ई० के अप्रैल मासमें वह नगर जीत लिया गया और शाहशूजाको राजगद्दी दी गई। उसी साल २१ जुलाईको ग़ज़नी पर हमला करके वह भी जीत लिया गया। दोस्त मुहम्मदकी सेना तितिर बितिर हो गई और वह निराश होकर हिन्दू कुश पर्वतकी ओर भाग गया। कीन थोड़ी बहुत सेना शूजाकी सहायताके लिये छोड़कर भारत लौट आया। आगामी दो वर्ष तक शाह शूजा काबुल और कन्दहार पर शासन करता रहा। अब आक्ससकी तरेटोंमें सैघन तक और सेसिस्तानके मैदानमें मुल्लाखाँ तक अंग्रेजोंका कब्जा हो गया था। अन्तमें १८४० ई० के नवम्बरमें दोस्त मुहम्मद भी अंग्रेजोंकी शरणमें आ गया और वह भारतमें भेज दिया गया। यहाँ इसके साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया। इन सब परिवर्तनोंसे देशमें अशान्तिके बीज पड़ चुके थे। किन्तु उस ओर शासकोंका समुचित ध्यान नहीं था। फलतः १८४१ ई० की दूसरी नवम्बर को काबुलमें भयंकर विद्रोहकी अग्नि भड़क उठी। बर्नस तथा अन्य अंग्रेज अफसर मार डाले गये। उन लोगोंकी छावनी नाश कर दी गयी; रसद अथवा समाचार आने जानेका कोई उपाय नहीं छोड़ा। इससे इन लोगोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। उसी सालके २३ दिसम्बर को दोस्तमुहम्मदके पुत्र तथा अफगान सेनाके अधिपति अकबरखाँ ने एक सभा समझौतेके लिये की जिसमें उसने सर डब्लू मैकनेघटनको अपने हाथोंसे मार डाला। अन्तमें ६ जनवरी १८४२ ई० में एक समझौतेके आधार पर अंग्रेजी सेना अफगानिस्तानके बाहर होने लगी। उस समय बड़ी तीव्र सर्दी पड़ रही थी, मार्ग भी बीहड़ था। ऊपरसे अंग्रेजी सेना पर वहाँके निवासियोंका आक्रमण होता था जिससे इन लोगोंको बहुत हानि होती थी। सब कठिनाइयों को सहन करते हुये इनमेंसे बचे हुए थोड़ेसे अंग्रेज जलालाबाद पहुँचे। जो सेना गजनीमें थी वह भी आत्म समर्पण करनेके लिये १० दिसम्बरको बाध्य की गई। इतना सब होने पर भी जनरल नॉट कन्दहार पर अधिकार किये ही रहे। इधर काबुलसे आकर जलालाबाद में अंग्रेजी फौज जनरल सेलके आधीनतामें बड़ी वीरतासे डटी रही।

इन सबका प्रतिकार करनेके लिये भारतमें बड़ी सावधानीसे तय्यारी हो रही थी। अन्तमें १८४२ ई० १६वीं अप्रेलको खैबर दर्रेसे होते हुए जनरल पोलक जलालाबाद पहुँचे। २० वीं अगस्त तक वहीं डेरा डाले रहे। तदन्तर सेना सहित आगे बढ़ते बढ़ते १५वीं सितम्बरको काबुल पहुँचे। इसी समय गजनीको विजय करके नॉट साहब उनसे काबुलमें आ मिले। अंग्रेज बन्दी मुक्त किये गए। अब अफगानिस्तान एक बार फिर अंग्रेजोंके हाथ आ चुका था।

अंग्रेजी सेनाके जाते ही शाहशूजाकी हत्या कर डाली गयी। अतः एक बार फिर काबुल पर दोस्तमुहम्मदका शासन हुआ। अकबरखाँ वजीर बनाया गया, किन्तु १८४८ ई० में ही उसकी मृत्यु हो गई। दोस्तमुहम्मद १८६३ ई० तक राज्य करता रहा। अन्तमें उसकी भी मृत्यु हो गई।

दोस्तमुहम्मदने अपने शासनकालमें अनेक प्रान्त जीते। जिस समय भारतमें शेरसिंह अंग्रेजोंसे युद्ध कर रहा था उस समय (२१ फरवरी १८४६ ई०) यह अटक जीतकर गुजरात में उपस्थित था। सर वाल्टर रेले गिलबर्टने अफगानोंका बहुत तत्परतासे पीछा किया। दोस्त मुहम्मदकी जान बड़ी कठिनाईसे बची। वह एक अत्यन्त तीव्रगामी घोड़े पर सवार होकर भाग निकला। तदन्तर १८५० ई० में अफगानों ने बल्ख पर फिरसे विजय पाई। अब अंग्रेजोंसे इनसे फिरसे मित्रताका नाता जोड़ा गया और १८५५ ई०में पेशावरमें एक सन्धिपत्र लिखा गया। इसी साल नवम्बर मासमें इसके भाई कोहनदिल खाँ का देहान्त हो गया था। अब कन्दहार प्रान्त भी इसीके हाथ आ गया। हेरात पर ईरानियोंने कब्जा कर लिया था। अतः १८६३ ई० में उसने उस पर आक्रमण किया और दस मास तक घेरा डाले पड़ा रहा। अन्तमें इसको विजय हुई, किन्तु इसके तेरह दिन बाद ही वह भी परलोक गामी हुआ।

दोस्त मुहम्मदकी मृत्युके पश्चात् इसका पुत्र शेरअलीखाँ गद्दी पर बैठा। शेरअली खाँको अपने भाइयों तथा भतीजोंसे बराबर लड़ते रहना पड़ा। १८६७ ई० में तो इसकी यह दशा हो गई थी कि केवल बल्ख और हेरात पर ही इसका शासन रह गया था। बाकी सम्पूर्ण राज्य इसके

हाथसे निकल गया था। बड़ा प्रयत्न करने पर आगामी वर्षके शरद ऋतुमें किसी भाँति काबुल पर यह फिरसे अधिकार जमा सका। १८६६ ई० के आरम्भमें यह अम्बाला आया और अर्ल मेयो (Earl Mayo) ने बड़ी तत्परता से इसका स्वागत किया। यद्यपि इसकी आशानुकूल सहायता तो इसे प्राप्त नहीं हुई किन्तु इससे बड़ा उत्तम व्यवहार किया गया। इसको १२०००० पौण्ड सर जॉन लारेन्सके समयमें ही निश्चित हुआ था। उसमेंका जो भाग अब तक इसको नहीं दिया गया था वह दे दिया गया। इसकी सेना तथा शस्त्रसे पूरी पूरी सहायता की गई। आधुनिक अफगानिस्तान तथा अफगानी तुर्कीस्तान भरमें इसका शासन था।

इधर सन् १८७३ ई० में रूसियों ने खीवा लेलिया। इसपर अमीर ने अंग्रेजों से सहायता करने को कहा किन्तु ठीक ठीक सहायता न प्राप्त होनेसे वह क्रुद्ध होगया और रूसियोंसे मित्रता करने का निश्चय किया। १८७२ ई० में अफगान के वायव्य दिशाकी सीमा रूस तथा अंग्रेजोंने निश्चित की थी, और रूसी सरहदपर अपना राज्य बढ़ा रहे थे। इससे अंग्रेजोंको बड़ी चिन्ता हो रही थी और उन्होंने अमीरसे सन्धि करनेका प्रयत्न किया किन्तु अमीरने उसपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यहीं से द्वितीय अफगान युद्ध की नींव पड़ी। १८७८ ई० में रूसी सरकार कुस्तुनतुनियाँ पर हमला करना चाहती थी तथा उनके राजदूत काबुल तक आते जाते थे। जब यह समाचार भारतमें अंग्रेजोंको विदित हुआ तो उन्होंने अपना राजदूत अमीरके पास भेजने का निश्चय किया किन्तु इनका राजदूत सरहद पर ही से लौटा दिया गया। इस कारणसे भारतके गवर्नर जनरलने अमीरके विरुद्ध युद्धको घोषणा कर दी। डोनल्ड स्टुअर्टके आधिपत्यमें अंग्रेजोंने कन्दहार पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करली। दूसरी सेनाने जलालाबाद इत्यादिके बहुतसे क़िले अपने आधीन कर लिये। अंग्रेजोंकी एक सेना सर-फ्रेड्रिक रावर्टसके आधिपत्यमें पैवार कोटालमें अमीरका मुकाबला कर रही थी। अन्तमें अमीर हार कर उत्तर की ओर भागा। १८७६ ई० में वह मजारे शरीफमें पहुँचकर मर गया। इसकी मृत्युसे राज्याधिकारीके विषयमें फिरसे प्रश्न उठा। पोलिटिकल एजन्ट मेजर कव्हग्नीको सूचित करके याकूबखाँ गद्दी पर बैठ गया। इसने अंग्रेजोंसे एक सन्धि की। इस सन्धिके आधार पर अमीरका पर-राष्ट्रीय-सम्बन्धी विभाग अंग्रेजों की देख रेखमें आगया किन्तु विद्रोह तथा अशान्ति चारों ओर फैली हुई थी, कव्हग्नी इत्यादि अंग्रेजों की हत्या कर डाली गयी। इसपर रॉबर्टके आधिपत्यमें अंग्रेजोंने चौरेशियामें अफगानोंसे युद्ध किया। इस युद्धमें अंग्रेजोंको पूर्ण विजय प्राप्त हुई और काबुल उनके हाथ आ गया। याकूबखाँ अंग्रेजोंकी शरणमें आया और वह भारत भेज दिया गया। इस समय अफगानिस्तान की दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही थी।

अब्दुलरहमानका राज्यारोहण तथा उसका शासनकाल— अमीर शेरअलीके बड़े भाईका पुत्र अब्दुलरहमान शेरअलीके विरुद्ध लड़ा था। इसी कारण वह रूसियोंके हाथ दस वर्ष तक आक्सस नदीके पार बन्दी रह चुका था। १८८० ई० में वहाँसे छुटकारा पाकर वह स्वदेश लौटा और धीरे धीरे उत्तरी भागमें वह अपनी सत्ता स्थापित करने लगा। इस समय भारतमें लार्ड लिटन वाइसराय थे। इनके आज्ञानुसार काबुलके अधिकारी ने इससे मिलकर सन्धि का प्रस्ताव किया। बड़े कौशलसे अंग्रेजोंने उसे पर-राष्ट्रोंसे सम्बन्ध विच्छेद करनेको वाध्य किया। इसके फल स्वरूप उन्होंने उसे अफगानिस्तान का 'अमीर' मानना स्वीकार कर लिया। काबुलसे कन्दहार तक का प्रान्त अभी स्वाधीन ही रक्खा गया और उसका शासक शेरअली नामक एक सरदार नियत किया गया। अब यह आशा होने लगी थी कि अफगानिस्तानमें शान्ति विराजने लगेगी, किन्तु १८८०ई० में शेर अलीके पुत्र अयूबखाँने फिर सिर उठाया। वह हेरात से निकल कर कन्दहार पर चढ़ दौड़ा और काबुल पर आकर उसने घेरा डाला। सर फ्रेडरिकने उसे शीघ्र ही परास्त किया। अब शेर-अली भारत भेज दिया गया और कन्दहार अमीर को सौंपा गया। किन्तु जब अयूब खाँको बिदित हुआ कि अंग्रेजी सेनाने कूच कर दिया है तो एक बार उसने फिर सिर उठाया। किन्तु अमीरने उसे शीघ्रही पूर्ण रूपसे परास्त कर डाला और वह ईरानकी ओर भाग गया।

सन् १८८० ई०से आगामी दस वर्ष अमीरको अपनी सत्ता स्थापित करने तथा देशमें पूर्ण शान्ति स्थापित करनेमें ही लग गये। बीच बीचमें अमीरके विरुद्ध अनेक विद्रोह रचे गये। इसके चचेरे भाई इसहाक खाँ ने भी बहुत सिर उठाया किन्तु अमीरने बड़ी कठोरतासे सबका दमन किया। इसी बीचमें १८८४ ई० में अंग्रेज तथा

रूसियोंका एक संयुक्त कमीशन नियत हुआ। इसने बड़े परिश्रमके बाद अफगानिस्तानकी उत्तरी सीमा, जो आज तक चली आती है निश्चित की। १८९१ ई० तक सम्पूर्ण देशमें शान्ति स्थापित हो गई थी और अमीरकी सत्ता सर्वत्र मानी जाने लगी थी। १८९५ ई०में अमीरने अपनी सेनाकी सहायतासे काफिरिस्तान पर विजय प्राप्त की। अफगानिस्तानका एक नकशा बनाया गया जिससे उसकी चौहद्दी निर्धारित होगई। अंग्रेजोंकी ओरसे अमीरको एक बहुत बड़ा कर दिया जाता था। अमीरको भारतसे युद्ध सामग्री तथा हथियार इत्यादि खरीदनेका भी अधिकार था। अब अमीरने अपने देशके भिन्न भिन्न दलोंको अलग अलग करके शक्ति हीन बना डाला था। सेनाकी ओर भी इसका विशेष ध्यान था। युरोपियन ढङ्गके अस्त्र शस्त्र एकत्रित किये। सेनाकी शिक्षाके लिये भी युरोपियन नियत किये। नये नये कर लगाये गये तथा सेना बढ़ाई जाने लगीं उनको उचित वेतन दिया जाने लगा। जिन दलों से अमीरको भय था उनका पूर्ण रूपसे विध्वंस कर डाला गया। इस भाँति अनियन्त्रित सत्ता स्थापित होगई। उसने दण्डका विधान अत्यन्त कठोर रक्खा था। यही कारण था कि वह देशमें पूर्ण रूपसे शान्ति स्थापित कर सका था। वह राज्यके भीतरी व्यवस्थामें किसी परराष्ट्र का हस्तक्षेप नहीं चाहता था। सत्य तो यह है कि वह अंग्रेजों पर भी पूर्ण विश्वास नहीं करता था, न वह देशके भीतर उनको अधिक हस्तक्षेप हो करने देना चाहता था। यही कारण था कि व्यापारिक सुविधा इत्यादि होजाने की सम्भावना होनेपर भी उसने अपने देशमें अंग्रेजोंको रेल तार इत्यादि नहीं लगाने दिया। इतना सब होने पर भी वह रूसियोंके मुकाबलेमें अंग्रेजोंको अधिक विश्वास की दृष्टिसे देखता था।

हबीबुल्लाखाँका राज्यारोहण तथा शासन काल— १९०१ ई० में अब्दुलरहमानकी मृत्युके तीसरे दिवस इसका बड़ा तथा सुयोग्य पुत्र हबीबुल्ला खाँ गद्दी पर बैठा। सम्पूर्ण सरदारों धार्मिक-संस्थाओं तथा सेनाने इसे अपना 'अमीर' मानने में कोई आपत्ति नहीं की। लोगोंकी धारणा थी कि जिस सुव्यवस्थाका आरम्भ अब्दुलरहमानने किया था इसका अन्त भी उसीके मृत्युके साथ हो जावेगा क्योंकि इसके सुचारु सञ्चालनकी योग्यता तथा क्षमता किसीमें नहीं देख पड़ती थी किन्तु वास्तवमें यह लोगोंका भ्रम ही रहा। अपने पितासे भी अधिक योग्यतासे इसने कार्य आरम्भ किया। लोकप्रियता प्राप्त करनेमें इसने पूर्ण सफलता प्राप्त की। देशमें उसने और भी अनेक सुधार किये। परराष्ट्रोंके सम्बन्धमें उसकी नीति भी उसके पिताके ही समान थी। १९०७ ई० में उसने भारतकी यात्रा की जिससे उसे अंग्रेजोंकी असीम शक्ति देखनेका अवसर मिला। भविष्यमें चलकर युरोपीय युद्धके समय इसका प्रभाव अत्यन्त हितकर हुआ। अंग्रेजोंसे उसकी गहरी मित्रता होगई थी। १९०७ ई० के अगस्त मासमें जो एङ्गलोरशियन सन्धि पत्र लिखा गया था। उसके आधार पर अंग्रेजोंको अफगानिस्तानके भीतरी कार्योंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं रहा। इसी भाँति रूसियोंने भी अफगानिस्तानको अपने प्रभुत्वकी कक्षाके बाहर मान लिया। १९०८-१४ ई० का समय अफगानिस्तान के लिये पूर्ण शान्ति तथा उन्नतिका था। उसी समय अनेक आर्थिक, सैनिक तथा सामाजिक सुधार देशमें हुए। प्रजाको अनेक सुविधायें दी गईं। स्कूल, दवाखाने, तार, टेलीफोन, रेल इत्यादि अनेक उपयोगी कार्य देशमें किये गये। सड़कों इत्यादि का उत्तम प्रबन्ध किया गया। अनेक सड़कें बनवाई गईं। हेलमण्ड, काबुल इत्यादि अनेक नदियोंमें नहरें बनवाकर कृषि विभाग को अनेक सुविधा दी गई।

१९११ ई० में जब इटली और टर्कीमें युद्ध आरम्भ हुआ तो एक ही धर्मवाले होनेके नाते उन्होंने टर्कीको धनसे समुचित सहायता की। १९१४ ई० में जब योरपमें महासमर आरम्भ हुआ तो भारत सरकारने अमीरसे भी सहायताकी प्रार्थना की। अमीरने भी वचन देदिया था कि जब तक अफगानिस्तानकी स्वतन्त्रता पर कोई बाधा नहीं देख पड़ेगी तबतक वह अँग्रेजोंका ही साथ देगा। जब टर्की जर्मनके साथ सम्मिलित होकर अँग्रेजोंके विरुद्ध युद्ध करने पर तत्पर हुआ तो कुछ कुछ आशंका होने लगी थी। किन्तु अँग्रेजोंके समझाने पर कि इस युद्धसे कोई भी धार्मिक सम्बन्ध नहीं है न कोई दल किसीके भी धार्मिक संस्थाओं अथवा पवित्र स्थानोंको ही हानि पहुचावेगा, तब कहीं जाकर अमीरने युद्ध में टर्कीकी सहायता देनेसे हाथ खींचा। सत्य तो यह है कि अमीरकी स्थिति स्वयं ही अत्यन्त विकट होरही थी। एक ओर तो अपने देशवासियों द्वारा टर्की की सहायता करनेके लिये वाध्य किये जाना, दूसरी ओर रूस जर्मन इत्यादि राजदूतों

का बारम्बार आना इसके लिये बड़ी कठिन समस्या होरही थी। इस अवसर पर इसने भी बड़ी कूटनीतिसे सब कार्यौंको सुचारु रूपसे किया। गुप्त रूपसे अँग्रेजोंको बराबर आश्वासन देता रहा तथा निश्चय कराता रहा कि उसकी हार्दिक सहानुभूति उन्हींके साथ है, किन्तु दिखाने के लिये जर्मन इत्यादि देशोंके राजदूतोंका भी अच्छा स्वागत किया। उन दलोंको देशमें रहने भी दिया किन्तु उनपर बड़ी सतर्क दृष्टि रखता था। अन्तमें जब उसे अपने देशवासियों अथवा उन्हींसे कोई विशेष भय नहीं रह गया तो बड़ी बुद्धिमानी से धीरे धीरे उन्हें अपने देशके बाहर कर दिया। निःसन्देह महायुद्धके समय उसकी नीति प्रशंसनीय रही। युद्धमें स्वयं न तो शामिल हुआ और न किसीसे भी शत्रुता ही मोल ली और वास्तवमें विजेताका ही साथ दिया। इस युद्धके बाद अपने देश ही में नहीं किन्तु सारे मध्य एशियामें उसका सिक्का जम गया था। जिस समय वह उन्नतिके शिखर पर पहुँच रहा था तथा युद्धके समाप्त हो जानेसे अनेक सुधारकी धुनमें लगा हुआ था ऐसे ही अनुपयुक्त अवसर पर (२०वीं फरवरी १९१९ ई० को) रात्रिको सोते हुए उसकी हत्या कर डाली गई।

इसकी मृत्युसे देशमें फिर अशान्ति मच गई उसके भाई नसरूल्लाखाँने अपनेको जलालाबादमें अमीर घोषित कर दिया। किन्तु अफगानी उसको राजा मानने को तय्यार नहीं हुए। उसका तृतीय पुत्र अमानुल्लाह खाँ इस समय काबुल में था। खजाने तथा शस्त्रागार पर उसी का प्रभुत्व था। जनता भी उसीके साथ थी। अतः उसीको अमीर बनाया गया। जब नसरुल्लाने देखा कि सफलताकी कोई आशा नहीं है तो वह भी उसके शरणमें आगया। अतः अन्तमें अमानुल्लाह ही राज्याधिकारी हुआ।

पहले अमानुल्लाखाँने भारत सरकारसे मित्रता रखने का ही आश्वासन दिया, किन्तु शीघ्र ही उसके विचार बदल गये। पूर्ण स्वतन्त्रताकी घोषणा करके उसने सोवियट (Soviet) सरकारसे मित्रता स्थापित करनेके लिये अपना एक कमीशन मास्को भेजा। केवल इतने ही से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। भारत, मेसोपोटामिया इत्यादि स्थानोंमें अंग्रेजोंके विरुद्ध अनेक झूठीझूठी किंवदन्तियाँ उड़ाना आरम्भ कर दीं और साथ ही साथ भारत पर आक्रमण करनेका भी निश्चय किया। १९१९ ई० में भारत पर आक्रमण करनेके लिये एक अफगानी फौजने कूच भी कर दिया किन्तु अंग्रेजी फौजके सामने ठहर न सकी। उसे पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजोंने भी आगे बढ़ कर डक्का और स्पिनबदलकका किला जीत लिया। अबतो अमीरको चिन्ता होने लगी और सन्धि की बातचीत चलाई। ८वीं अगस्तको रावलपिण्डीमें एक अस्थायी (तात्कालिक) सन्धि-पत्र लिखा गया, जिसके आधार पर युद्ध तत्काल ही बन्द हो गया। स्थायी सन्धि सुविधाके साथ होना निश्चित हुआ। १९१९ ई० के मई माससे अगस्त तक सीमाप्रान्तमें बराबर हमले तथा लूटपाट होती रही। इस सन्धिके बाद ६ मास तक कोई भी बात ठीक ठीक निश्चित न हो सकी। १९२० ई० के गर्मीमें मसूरीमें अफगान प्रतिनिधियों तथा सर हेनरी डाँबस में ६ मास तक सन्धिकी बात चीत होती रही। यद्यपि वे निजी तौर पर ही होती रहीं किन्तु अन्तमें उससे समझौतेकी सूरत निकल आई। इसीके आधार पर १९२१ ई० के जनवरी मासमें भारत सरकारकी ओरसे कुछ प्रतिनिधि स्थायी सन्धिके लिये भेजे गये। काबुल पहुँच कर एक सन्धिपत्र लिखा गया। इस सन्धिके आधार पर ही अफगानिस्तानको स्वदेशीय तथा परदेशीय विषयों पर पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। अब तक जो परराष्ट्रीय विषयक बृटिश नियन्त्रण था वह हटा लिया गया। भारत सरकार जो वार्षिक कर देती थी वह भी बन्द कर दिया गया। अब तक भारतसे युद्धसामग्री खरीदनेका जो अधिकार अफगानिस्तान को दे रक्खा था उसको भी स्थगित कर दिया गया।

इधर १९२० ई० के जनवरीमें सोवियट सरकारने अपना कमीशन काबुल भेजा और उसी साल अक्तूबर मासमें सोवियट सरकार द्वारा हस्ताक्षर किया हुआ एक सन्धिपत्र अमीरके पास आया। यह १९२१ ई० के नवम्बर मास तक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसीके आधार पर सोवियट सरकारने अफगानिस्तान को वार्षिक कर और योग्य अधिकारी देना स्वीकार किया था। उधर १९२० ई० के नवम्बरमें तुर्की जनरल कमालपाशा भी अफगानिस्तान आया था। अतः इन सब कारणोंसे अफगानिस्तानमें दो वर्ष तक विविध प्रकारके आन्दोलन होते रहे।

यों तो युरोपीय महासमरके बादसे भारत सरकार तथा अफगानिस्तान का पारस्परिक व्यवहार उत्तम तथा सन्तोषजनक ही रहा है किन्तु बीच-बीचमें थोड़ा बहुत झंझट अनेक बार

होता रहा है। १९२३ ई० में सरहदी डाकुओंने बड़ा उत्पात मचाया था। भारतके सरहदपर ये निरन्तर आक्रमण करते रहते थे और वहाँ पर रहनेवाले अंग्रेजोंकी हत्या करते थे, लूट मार करते थे तथा स्त्री लड़कोंको उठा ले जाते थे। किन्तु इनके दलोंका शीघ्र ही नाश कर डाला गया। उधर अमीरको अपने ही आन्तरिक झगड़ोंसे छुटकारा नहीं देख पड़ता था। इस कारणसे भारत सरकारकी सहायताके अमीर स्वयं इच्छुक थे। धीरे धीरे अमीरने अनेक सुधार भी करना चाहा, किन्तु अफगानिस्तान अज्ञान तथा अन्धविश्वासके घोर तम गड्ढेमें गिरा हुआ है, अतः इसका फल बड़ा भयंकर हुआ। दक्षिणी प्रान्तोंमें मङ्गल तथा जदरान लोगोंने भयंकर विद्रोह मचा दिया। देशकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होरही थी किन्तु भारत सरकारने हवाई जहाज इत्यादि की सहायता देकर विद्रोह पूर्ण रूपसे दबा दिया। अमीरने अब नवीन सुधारोंको स्थगित कर दिया और पुराने ढङ्गके मुसलमानी नियमोंका ही पालन करता रहा।

इसी समय दूसरी ओर अफगानिस्तानमें बालशेविक अपना ही सिक्का जमानेका अलग ही प्रयत्न कर रहे थे। उनकी आन्तरिक इच्छा ईरान, चीन तथा अफगानिस्तानके सरहदी प्रान्तों पर अधिकार प्राप्त कर लेनी ही थी। अन्य स्थानोंमें तो इन्हें थोड़ी बहुत जो कुछ भी सफलता प्राप्त हुई सो तो हुई ही, अफगानिस्तानमें भी इन्हें निराश नहीं होना पड़ा। इन्होंने अपना कदम जमानेके लिये पहले अनेक सुधार किये। तार, रेल इत्यादि देश भरमें फैला दिये। शस्त्र इत्यादि बराबर देते रहे। हवाई जहाजका भी प्रबन्ध किया जाने लगा जिसका सम्पूर्ण सञ्चालन रूसियोंके ही हाथमें था। इन सबके बदले मुख्य मुख्य स्थानोंपर व्यापारिक केन्द्र नियत करने की आज्ञा रूसियोंको मिल गई। कदाचित इन सब का भीतरी अभिप्राय भारतपर आक्रमण हो करना रहा होगा। इस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जासकता कि अमीर रूसियोंका भीतरी तात्पर्य समझता भी था या नहीं, किन्तु इतना तो अवश्य है कि जिस सुगमतासे उसने एक बार रूसियोंको अपने देशमें आने दिया था उसी सरलतासे उनका बाहर करना असम्भव था। सत्य तो यह था कि अमीर रूसियोंके रूपमें अपने आस्तीनमें साँप पाल रहा था। १९२५ ई० के अन्तमें तथा १९२६ ई०के आरम्भमें इन्होंने गड़बड़ मचा दी। अफगान राज्यके दर्केबाद किलेको बोलशेविकोंने अपने अधिकारमें करलिया। इसले अफगानोंमें अशान्ति होने लगी, तथा अमीर भी बड़ा क्रुद्ध हुआ। इस घटनाके बाद इनलोगों की आँखें खुलीं। यद्यपि देखनेवालोंको दृष्टिमें इन दोनों राज्योंमें खुला वैमनस्य नहीं दृष्टिगोचर होता था, किन्तु १९२६ ई०के दिसम्बर मासमें इनलोगोंमें एक नया सन्धिपत्र प्रकाशित हुआ जिसपर ३१ वीं अगस्त १९२६ ई०को हस्ताक्षर होचुके थे। इस सन्धिपत्रसे १९२१ ई० वाले मास्कोके सन्धिपत्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह ज्यों का त्यों ही स्थिर रहा। अफगान पत्रोंके आधार पर इस सन्धिका सारांश भी नीचे दिया जाता है—

(१) किसी तीसरे ही राज्यकी सहायताके लिये इन दोनों राज्योंको एक दूसरेके विरुद्ध लड़नेका अधिकार नहीं होगा।

(२) दोनों ही राज्य आपसमें न तो एक दूसरे पर आक्रमण करेंगे न उनके राज्यके भीतर उत्पात करेंगे। अपने देशके भीतर भी ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे दूसरेको हानिकी सम्भावना हो। एक दूसरेके विरुद्ध किसी अन्य राज्यसे राजनैतिक अथवा सैनिक किसी भी प्रकारका कोई एकरारनामा करनेका अधिकार न होगा। यदि किसी देशमें इनदोनोंमें से एकके विरुद्ध किसी प्रकारके वहिष्कार अथवा आर्थिक तथा व्यापारिक नियन्त्रणकी आयोजना होती हो तो दूसरेको उसमें भाग लेनेका अधिकार नहीं होगा। यदि कोई तीसरा राज्य ऐसा आचरण करता है अथवा नीतिका प्रयोग करता है जिससे इनदोनोंमें से एकको हानि होनेकी सम्भावना हो अथवा शत्रुता सूचित करती हो तो यह दूसरेका धर्म होगा कि उसमें कोई भाग न ले और न अपने देशमें ऐसे आन्दोलन उठने दें।

(३) दोनों राज्य एक दूसरे से बिल्कुल स्वाधीन होंगे। एकके राज्यके अन्तर्गत विषयोंमें दूसरेको हस्ताक्षेप करनेका अधिकार न होगा। किसी भी दशामें एक दूसरेके शत्रुको सहायता नहीं देंगे। ऐसा किसीको भी अधिकार न होगा कि अपने देशमें ऐसे दल स्थापित होने दें जो दूसरे के लिये हानिकर हो। साथ ही साथ किसी ऐसी सेना शस्त्र अथवा रसदको अपने देशसे न जाने देंगे जो दूसरेके विरुद्ध काममें लाई जानेवाली होगी।

(४) यह सन्धिपत्र हस्ताक्षर होनेके तीन

मास बादसे लागू होगा। इसकी अवधि तीन वर्ष तक रहेगी। यदि समाप्त होनेके ६ मास पहले इन दोनोंमें से कोई भी राज्य इसका तोड़ने की सूचना न दे तो ऐसी अवस्थामें यह एक वर्ष तक और लागू रहेगा।

काबुलमें अँग्रेजोंका एक राजदूत रहने लग गया था। उसी भाँति काबुलकी ओरसे भी भारत, इङ्गलैण्ड तथा अन्य युरोपियन देशोंमें प्रतिनिधि भेजे गये।

इन सबसे निश्चिन्त होकर १९२७ ई०में अमीर अमानुल्लाखाँने भारत तथा योरपकी यात्रा आरम्भ कर दी। इनके साथ इनका परिवार तथा अनेक राज्य कर्मचारी भी थे। यह अभिलाषा थी तो इनके पिताकी भी, किन्तु हत्या हो जानेके कारण पूरी न होसकी। इनका भारतमें बड़ा अच्छा स्वागत किया गया। यहाँसे यह योरपको गये। लन्दनमें यह राज-अतिथि होकर रहे थे। इन्होंने योरपके मुख्य मुख्य सभी स्थानों को भलीभाँति देखा। अन्तमें टर्कीसे सोवियट राज्य तथा ईरान होतेहुए यह अफगानिस्तानको लौट आये। जिन जिन देशोंमें गये थे वहाँके राजाओंसे इन्होंने अनेक समझौते किये थे। वे सब घोषित करदिये गये तथा १९२८ ई०की गर्मी में यह स्वदेश लौटे। इनके अनुपस्थितिमें देशमें पूर्णरूपमें शान्ति रही। इस यात्रासे अमानुल्लाखाँके विचारोंमें घोर परिवर्तन होचुका था। योरपकी सभ्यता तथा विकासका इनके हृदय पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा था। अपने देशकी हीन अवस्था पर इन्हें बड़ा दुःख होता था। राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारोंके लिये इनका हृदय व्याकुल था। इन सबमें इनकी रानीको भी अत्यन्त सहानुभूति थी। अपने देशमें स्त्रियोंकी गिरी हुई हीन अवस्था देखकर उस विदुषीका हृदय आर्द्र हो उठता था। सम्भव है यह इतनी शीघ्रतासे इस कार्य्यमें हाथ न डाल देते, किन्तु टर्कीमें कमालपाशा द्वारा जो जो सुधार इन्होंने देखे थे तथा जिस जागृतिका अनुभव उन्होंने वहाँ किया था उसके लिये इनका हृदय लालायित हो रहा था। अतः इन्होंने पुराने आचार विचारों की शृङ्खला तोड़कर बड़ी तीव्रतासे परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। फरमान पर फरमान जारी होने लगे। बिना देशकी सहानुभूति प्राप्त किये अथवा स्थितिको भलीभाँति समझे ही इनके सुधार जनता पर बलात् लागू किये जाने लगे। नये नये नियम बनाये जाने लगे। अभाग्यवश देश इन सबके लिये अभी प्रस्तुत नहीं था। जनता इनके विरुद्ध हो उठी। उधर सेनाका वेतन भी धनके अभावके कारण समय पर नहीं दिया जा रहा था।

इसमें सन्देह नहीं कि ये सब सुधार देशके हितके लिये ही किये जा रहे थे, किन्तु अभी इन सुधारों के लिये उपयुक्त अवसर न होनेके कारण अमीरके मित्रोंने उनको स्थगित करने अथवा शनैः शनैः उनका उपयोग करनेकी अनुमति दी। इतनाही नहीं अमीरको १९२३ ई० का भी ध्यान दिलाया गया। इसका शतांश भी नहीं किया गया था किन्तु कितना भयंकर परिणाम हुआ था। सब देखते सुनते हुए भी अमीरने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह अपनी ही धुनसे मस्त था। धर्मके नाम पर मुल्ला इत्यादि जो ढोंग तथा अत्याचार करते थे वे इसे असह्य हो उठे थे। अन्तमें चारों ओर फिर घोर अशान्ति मच उठी। इसी वर्ष मई मासमें गिलजई तथा खोस्तके मंगल जातिमें लाम मुल्लाने विद्रोहकी अग्नि भड़का दी। मुल्लाओंका इस देशमें बड़ा प्रभाक है। अज्ञान तथा अन्धकारके गड्ढेमें गिरी हुई जनता धर्मके नाम पर इन मुल्लाओंके लिये सब कुछ अर्पण कर सकती है। इन सुधारोंसे मुल्लाओंकी झूठी सत्ता पर ही सबसे बड़ा धक्का लगता। इन्होंकी पोल सबसे अधिक खुलती। यही कारण था कि वे सब अमीरके सबसे बड़े बड़े शत्रु होगये और जनता को उसके विरुद्ध उभाड़ने लगे। अमीर भी इनका मर्दन करनेके लिये तुला बैठाथा।

अन्तमें १९२९ ई०में देशमें भयंकर क्रान्ति मच उठी। बचा-ए-सक्का नामक एक नीच कुलके अफगानीने देशमें विद्रोहकी अग्नि भड़का दी। सेनामें एक तो पहले ही से वेतन बाकी होनेसे अशान्ति थी, इसके विद्रोहसे वे सब भी बिगड़ उठे। फल ये हुआ कि बचा-ए-सक्काकी एकत्रित की हुई फौजने सरकारी फौजको कई बार हराया। विद्रोह दबानेके प्रयत्नमें अमीर पूर्ण असफल रहा। संसारके अन्य भागोंमें समाचार तथा संवाद इत्यादि भेजनेके साधनोंका नाश कर दिया गया था। अन्तमें लाचार होकर अमीर तथा उसके कुलके लोगोंको काबुल भागकर कन्दहार आना पड़ा। वहाँ भी सन्देह लगा हुआ था। अतः अमीर वहाँसे भी केटा होते हुए बम्बई भाग कर आया। बम्बईसे वह योरप चल दिया। कुछ मास तक बचा-ए-सक्काके ही हाथ में शासनकी बागडोर रही। इस देशद्रोहीके

पास न तो धन था, न बुद्धि थी न अनुभव था न थे सच्चे साथी ही। इससे शासनकी बागडोर सम्हल न सको। बारबार आक्रमण होते रहे। जो भारतीय अथवा अँग्रेज सरहद अथवा अफगानिस्तानमें थे उनके रक्षाके लिये भारतसे अनेक हवाई जहाज भेजे गये। वे सब कुशलतासे देश में लौट आये। इधर नादिरखाँ जो अमीर ही के वंशका था तथा जिसे संसारका बड़ा अच्छा ज्ञान था, बच्चा-ए-सक्काके मुकाबले आडटा। कई बार युद्ध हुए। कभी तो नादिरकी विजय देख पड़ती थी कभी बच्चा-ए-सक्काके सिर विजयका सेहरा देख पड़ता था। दोनों ही का भाग्य अनिश्चित् सा होरहा था। एक बार तो नादिरखाँने सब आशा छोड़ दी। विजय बच्चा-ए-सक्काके साथ देख पड़ने लगी। किन्तु एकाएकी नादिरखाँके भाग्यने पलटा खाया। सरहदके इस पारसे वज़ीरोंकी एक फौज नादिरखाँकी सहायताके लिये पहुँच गई। यद्यपि इनका हार्दिक तात्पर्य तो केवल लूटका माल ही प्राप्त करना था, किन्तु नादिरखाँके नाम पर इन्होंने काबुल पर हमला करके उसे जोत लिया। इस भाँति नादिरखाँ विजयी हुआ। कुछ ही समयके बाद, अफगानों की ही अनुमतिसे बच्चा-ए-सक्काका बध कर डाला गया। उसके साथ साथ अन्य राजद्रोहियोंको भी मारडाला गया। साल समाप्त होते होते नादिरखाँ सम्पूर्ण अफगानिस्तानका पूर्णरूपसे स्वामी बन बैठा। १६वीं अक्तूबर १६२६ ई० को इसका राज्याभिषेक हुआ। उसने अपने परिबारको योरप भेज दिया और जमकर राज्यके कार्यमें लग गया। खैबरके समीप शिनवरियोंने १६३० ई०के फरवरी मासमें एकबार फिर सिर उठाया, किन्तु नादिरखाँने बड़ी तत्परतासे उनका दमन कर दिया। कोह-ए-दमाँ जो बच्चा-ए-सक्काका प्रान्त था, वहाँपर फिरसे विद्रोहको भयंकर अग्नि प्रज्वलित हो उठी। किन्तु बड़े साहस तथा कौशलसे नादिरखाँने यहाँ भी शान्ति स्थापित की। अब इसके अमीर होनेमें कोई भी सन्देहका स्थान नहीं रहा, और बिना किसी अड़चनके वह राज्य करने लगा। उसने फौजकी देखरेख आरम्भ कर दी। भारतकी ओर भी उसका मित्रताका ही भाव रहा। १६३० ई० की गर्मीमें भारतमें जो असहयोगका आन्दोलन उठा हुआ था, उसमें इसने अपने सरहद पर रहनेवालोंको अँग्रेजोंके विरुद्ध उभड़नेसे रोकनेमें बराबर सहायता दी थी। व्यापारके लिये इसने अनेक सुविधायें की। अमानुल्लाखाँके उठाये हुए सुधारोंका धीरे धीरे इसने भी प्रचार करना आरम्भ कर दिया था किन्तु इस कामको यह बड़ी सावधानीसे कर रहा था। मुल्लाओंको साथ लिये हुए इसने सुधारोंका प्रचार आरम्भ किया था। इसके समयमें देशने अच्छी उन्नति की। योरपमें बहुत दिनों तक रहनेके कारण इसे वहाँका भी अच्छा ज्ञान था। अतः इसने अच्छी सफलता प्राप्तकी थी। भारत सरकार भी इसकी आवश्यकतानुसार सहायता करनेको तत्पर थी। गतवर्ष अपने राज्यके एक प्रतिष्ठित मनुष्यको राज्यके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेके अभियोगमें इसने बध करवाडाला था। उसके साथ ही अन्य अभियुक्तोंको भी इसने मरवाडाला था। यद्यपि देशके हित, धर्म तथा कर्त्तव्यपालन की दृष्टिसे उसका कार्य उचित ही था किन्तु वही उसके नाशका कारण हुआ। जैसा अन्धकारमय तथा हत्याओंसे परिपूर्ण अफगानिस्तानका गत इतिहास रहा है, उसीका फिरसे अनुसरण हुआ। जो कितने ही गत अमीरोंके भाग्यका विधान हुआ था वही दशा इसकी भी हुई। ८वीं नवम्बर १६३३ ई० को इनके ही सभापतित्वमें दिलकुशा महलके मैदानमें पारितोषिक बाँटनेके लिये एक सभा होनेवाली थी। इसमें राज्यके उच्च उच्च कर्मचारियों तथा पदाधिकारियोंके साथ ही साथ बहुतसे उच्च श्रेणीके विद्यार्थी भी थे। लगभग तीन बजे सायंकालको जब यह सभामें उपस्थित हुए तो एक ओरसे इनपर पिस्तौलकी दनादन तीन गोलियाँ छूटीं। अमीर वहींपर लड़खड़ा कर गिर गया। तत्काल ही उछलकर उसका प्रिय पुत्र, पिता तथा घातकके बीचमें आडटा। अमीरको शीघ्र ही महलमें पहुँचाया गया किन्तु गोलीकी चोट घातक थी। दस मिनटके भीतर ही अपने परिवारके मध्यमें उसके प्राणपखेरू उड़ गये।

इसका हत्यारा अब्दुलखलीक नामक बाइस वर्षका एक नवयुवक है। हत्या करनेके बाद वह तत्काल ही पकड़ लिया गया। गत वर्ष राज्यके विरुद्ध गुलाम नबी वाले षड्यन्त्रमें यह भी अपने पिताके साथ पकड़ा गया था। किन्तु फुटबालका बड़ा उत्तम खिलाड़ी होनेके कारण तथा इसकी युवावस्था पर तरस खाकर अमीरने इसे छोड़ दिया था, किन्तु अपने स्वामी तथा पिताका बदला चुकानेके लिये यह उसी समयसे अवसर ढूंढ रहा था। पकड़े जाने पर इसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और हत्या

करनेका भी उपरोक्त कारण ही बताया है।

इस बातका बड़ा भय था कि इनकी मृत्युसे देशमें फिरसे बड़ी खलबली मच उठेगी, किन्तु सब शान्ति ही रही।

अमीरकी मृत्युके बाद तत्काल ही कौन्सिल की एक आवश्यक बैठक की गई। पार्लियामेन्ट के जितने स्थानीय सभासद थे वे सब तत्काल ही एकत्रित किये गये। इस सभामें सेना विभागके मन्त्री जनरलशाह महमूदने युवराज जहीरके राज्यारोहणके लिये प्रस्ताव किया। सायंकाल ४ बजे सर्व सम्मतिसे उसे 'अमीर' मानना स्वीकार हुआ। तदन्तर प्रत्येक पदाधिकारी तथा कर्मचारीने राज्य तथा अमीरके प्रति सत्यनिष्ठ रहनेकी शपथ ली।

गत इतिहास पर ध्यान देते हुए नादिरखाँ की हत्याके समाचारसे देशमें अशान्ति तथा विद्रोह की बड़ी प्रबल आशंका होने लगी थी। कुछका मत था कि कदाचित् पूर्व अमीर अमानुल्लाखाँ इटलीसे फिर स्वदेशको लौटे। कुछका मत था कि देशके भीतर ही कुछ गड़बड़ उठ खड़ी होगी। किन्तु ये सब आशंका निर्मूल रहीं। इस सबका मुख्य कारण यही विदित होता है कि नादिरखाँ की हत्या चाहे एक दुष्टने भले ही कर डाली हो किन्तु वह बड़ा लोक प्रिय था, उसकी प्रजा उस पर विश्वास रखती थी। देशवासियोंका जो अगाध प्रेम उसके प्रति था वह तो यों ही प्रकट है। उसके शवके साथ लाखो आदमी गये, बाजार इत्यादि सब बन्द हो गये तथा सबके हृदय से दुःखकी ध्वनि निकली पड़ती थी। उसकी कब्र पर नित्य सहस्त्रों मनुष्य जियारत करने आते हैं। देशवासियोंने इसे शहीद' मानना स्वीकार किया है। पिताके गुणों पर मुग्ध प्रजा युवा पुत्र जहीरके प्रति भी वही सम्मान तथा प्रेमके भाव रखती है। यही कारण है कि बिना किसी झगड़े फिसादके इतनी सरलतासे जहीर अमीर बन बैठा। राज्यके प्रत्येक भागसे नये अमीरके प्रति सत्यनिष्ठा की शपथ लेनेके लिये सहस्त्रो मनुष्य नित्य चले आते हैं। देशके कोने कोनेने इस युवाका अपना अमीर मानना स्वीकार किया है। अपने मृत पिताकी भाँति इससे भी देशवासियोंका बड़ी आशा है।

इन सबके उत्तरमें नये अमीरने भी एक शाही फरमान निकाल दिया है जिससे इसके हृदयका भी पता चलता है।

यह फरमान राज्यके पदाधिकारी, कर्मचारी, तथा प्रजाके नाम है। इस फरमानका सारांश निम्नलिखित है:-जिस तत्परता तथा सहानुभूति के साथ देशके प्रत्येक व्यक्ति तथा पदाधिकारीने जहीरशाहको अमीर मानना स्वीकार किया है इसके लिये वह हृदयसे अनुगृहीत है। उसे इस बातसे बड़ा सन्तोष है कि देशमें जागृति उत्पन्न हो गई है और देश अपने सच्चे मित्र तथा सहायक को पहचान सकता है। उसे पूर्ण आशा है कि ईश्वर की कृपासे देशमें एकता रहेगी और उन्नतिके पथ पर देश अग्रसर होता रहेगा। यद्यपि उसे अपने प्रति देशका असीम प्रेम देखकर पूर्ण सन्तोष है तो भी उसकी परमात्मासे सच्चे हृदयसे यही प्रार्थना है कि उसे शक्ति तथा साहस दे कि जिस कार्यको उसके पिताने आरम्भ किया था तथा जिसके कारण उसके प्राण तक गये उसी आदर्शका वह पूर्ण रूपसे पालन करनेमें समर्थ हो।

अन्य राष्ट्रोंके सम्बन्धमें भी उसने निम्नलिखित घोषणा की है:—जो नीति स्वराष्ट्र तथा पर-राष्ट्रके विषयमें उसके पिता की थी उसीका पालन पूर्णरूपसे वह भी करेगा। जितने सन्धिपत्र इत्यादि उसके पिताके समयके हैं तथा जितने काल तकके लिये वे हैं, उनमें भी वह किसी प्रकार का कोई रद्दोबदल नहीं कर रहा है। देशके प्रतिनिधियोंकी सम्मतिके आधार पर ही उसका कार्यक्रम रहेगा।

नादिरखाँ की मृत्युके बाद देशमें अशान्ति होनेकी बहुत कुछ आशंका थी। कुछका तो मत था कि कदाचित् अपनी खोई हुई सत्ताको फिरसे प्राप्त करनेके लिये इटलीसे अमानुल्लाखाँ स्वदेशमें फिरसे पदार्पण करें। ऐसा होने पर एक बार फिर चारों ओर विद्रोहकी अग्नि भड़क उठती। देश उनको अपनानेके लिये तय्यार नहीं था। कदाचित् इन्हीं सब कारणों को विचार कर अमानुल्ला खाँने अपना विचार स्थगित कर दिया हो।

अतः जहीरखाँका ही अमीर होना देशके लिये इस समय कदाचित् सबसे उपयुक्त था। इसके गुणोंको देख कर पूर्ण आशा की जाती है कि देश इसके शासनमें अच्छी उन्नति करेगा।

शासन प्रणाली—अफगानिस्तान की शासन प्रणाली आजकलके अधिकांश देशोंसे भिन्न है। यहाँ अमीरका ही निरंकुश शासन है और उसको सब विषयोंमें पूर्ण अधिकार है। इस देशके अनेक भाग किये गये हैं। काबुल, तुर्किस्तान, हेरात, कन्दहार तथा बदकशानमें अलग अलग

सूबेदार नियत किये हुए हैं। इन सूबोंके शासन का पूर्ण भार इन्हीं लोगों पर होता है। इन सूबेदारोंके आधीन अनेक कर्मचारी होते हैं, जो भिन्न भिन्न विभागोंकी देख रेख करते हैं। काजी न्याय करते हैं। कौन्सिल अथवा राजदरबारमें तीन श्रेणीके सभासद होते हैं:—(१) सरदार, (२) खाँ तथा (३) मुल्ला। सरदारी वंश परम्परासे चली आती है, अथवा अमीर द्वारा किसी विशेष कार्यसम्पादनके उपलक्षमें प्रदान की जाती है। मुल्ला धर्मके प्रतिनिधि होते हैं। धार्मिक कार्योंमें इनसे सहायता ली जाती है। खाँ जनता के प्रतिनिधि होते हैं। कौन्सिल दो प्रकारकी होती हैं। एकको तो दरबार शाही कहते हैं। इसमें केवल चुने हुए लोग रहते हैं। प्रत्येक उसमें भाग नहीं ले सकता। दूसरी साधारण सभा होती है। इसके अतिरिक्त एक और सभा होती है। उसे ये 'खिलवात' कहते हैं। इसमें केवल बड़े बड़े पदाधिकारी रहते हैं। उसको प्रधान मण्डल कह सकते हैं। इसमें अमीर प्रत्येक विभागके मन्त्रिसे उसके कार्यके विषयमें सलाह लेता है। बिना अमीरकी इच्छाके सम्मति प्रकट करनेका अधिकार किसीको भी नहीं होता। प्रत्येक मन्त्रि केवल अपने विभागके विषयमें सम्मति दे सकता है। दूसरे विभागोंके कार्यमें हस्तात्तेप करना अथवा अपनी सम्मति प्रकट करना उनके अधिकारके बाहरको बात है। अमीर सब विभागोंका सबसे प्रधान समझा जाता है। उसको सब विषयोंमें पूर्ण अधिकार है। उसके पास किसी भी विषयकी अपील की जा सकती है। अमीरका ही निश्चय अन्तिम होता है। पंचायतें तथा काजी इत्यादि भी न्याय सम्पादन के लिये होते हैं। राजनैतिक, चुङ्गी, डाक, सेना, कर इत्यादि अनेक अलग अलग विभाग हैं। इस्लाम धर्मके आधार पर ही यहाँ के कानून बने हुए हैं। किसी समय अमीर केवल काबुल तथा उसके समीपके प्रान्तोंका ही स्वामी समझा जाता था। अन्य अन्य प्रान्तोंके सूबेदार राजघरानेके होते थे और वे स्वतन्त्र समझे जाते थे, किन्तु यह प्रथा अब्दुल-रहमानने उठा दी। राज्यके मुख्य मुख्य दफ्तर इत्यादि काबुल ही में हैं।

यहाँकी आय निम्नलिखित करों द्वारा होती है—(१) भूकर (२) आने तथा जानेवाले माल पर चुंगी, (३) ४० जानवरोंकी चराई पर १ जानवर (४) बगीचों पर कर (५) दस्तावेज इत्यादि पर टिकट (६) प्रत्येक व्यक्ति पर लगनेवाला कर। इसके अतिरिक्त अब तो और भी अनेक प्रकारके कर लगाकर आमदनी बढ़ानेका प्रयत्न किया जारहा है। किसी समय भारत सरकारकी ओरसे १८ लाख कर प्रतिवर्ष दिया जाता था। सन् १८५६ ई०में राज्यकी आय केवल तीस लाख रुपया थी। इस समय पहलेसे आमदनी बहुत बढ़ गई है। लगभग १३० लाखसे भी अधिककी होगी। सरकारी व्यय बहुत अधिक नहीं रक्खा गया है। जमीनका लगान उसकी उपज में से ही देना पड़ता है। यह लगान सालभर की आय देखकर ही निश्चित की जाती है। सिचाईकी सुबिधाको देखकर ही लगान लगायी जाती है। जहाँपर सिचाईके लिये नदियाँ हैं वहाँ १/३ भाग कर लगा दिया गया है। जहाँ सिचाईमें कठिनाई होती है तथा झरने इत्यादिसे सिचाईकी जाती है वहाँ १/४ भाग कर रक्खा गया है। वर्षा से सींची जानेवाली जमीनों पर १/१० भाग लगान निश्चित किया गया है। वह जमीन जो गैर-सरकारी नहरों द्वारा सींची जाती हैं उसपर भी १/१० भाग लिया जाता है। बड़े बड़े नगरोंके समीप बाग तथा उपवन हैं। उनपर प्रति ३६०० वर्ग गज जमीन पर लगभग ८) के कर देना पड़ता है। लगान वसूलीमें मध्यस्थ अलग ही लाभ उठाना चाहते हैं जिस कारणसे किसानोंको बड़ा कष्ट होता है।

देशमें सोनेका सिक्का प्रचलित नहीं है। कुछ काल पूर्व एक टकसाल सरकारी खुली है। उसमें पुराने सिक्केको लेकर नया ढाल देती है। इस विभागमें अभी अनेक सुधारोंकी आवश्यकता है।

अफगानिस्तानमें पहले तो सेनाका प्रवन्ध बड़ा खराब था। अमीरके पास बहुत कम सेना रहती थी। प्रत्येक सूबेदारको सेना रखनी पड़ती थी। इसका व्यय उसे स्वयं ही करना पड़ता था। आवश्यकता पड़ने पर वही अमीरकी सहायताको भेज दी जाती थी। किन्तु इधर कुछ गत वर्षों से यह प्रथा उठा दी गई है। अमीरके कोशसे ही उन्हें वेतन दिया जाता है और वे सब अमीर के ही संरक्षणमें रहती है। पहलेसे आजकल सेना बढ़ा भी बहुत ली है। अब तो अमीरकी सेना युरोपियन पद्धतिके अनुसार शिक्षा प्राप्त कर रही है, शस्त्र इत्यादि भी पर्याप्त हैं। अमानुल्लाखाँने इस ओर विशेष ध्यान दिया था।

अफगानी फौज लगभग ५०००० के होगी। ये हेरात, कन्दहार, काबुल, मजारशरीफ जलालाबाद तथा भारतके सीमाप्रान्त पर ही अधिक

रहती हैं। यद्यपि अब तो अनेक सुविधायें की जा रही हैं किन्तु पहले धनकी कमी तथा एक स्थानसे दूसरे स्थान पर फौज लेजानेके साधनोंका अभाव बड़ा कष्टकर होता था। अब्दुलरहमान कहा करता था कि एक सप्ताहके अन्दर एक लाख सैनिक तय्यार हो सकते हैं किन्तु किसी एक स्थान पर उन्हें एकत्रित करना कठिन है। १८६६ ई० में उसने नियम बना दिया था कि १८ वर्षसे ७० वर्ष तककी अवस्थावालोंमें से आठ मनुष्यों पीछे एक मनुष्यको सेनामें भर्ती होना अनिवार्य है। काबुलमें अब तो अनेक अस्त्रागार खुल गये हैं। गोला, बारूद, कारतूस, इत्यादि सभी बनने लगे हैं। यहाँ पर हेरात तथा देहडाड़ीमें मुख्य तथा दृढ़ किले बने हुए हैं। इस किलेकी मुख्य छावनी बल्खसे १२ मील मज़ारशरीफमें है।

दण्डका विधान अब भी यहाँ पाश्चात्य देशों से बहुत अधिक कठोर है। पुलिस विभाग भी अब सुचारू रूपसे कार्य कर रहा है। हरेक नगर में एक कोतवाल रहता है। उसीके आधीन पुलिस रहती है। नगरकी रक्षा तथा शान्ति रखनेका भार उसीपर रहता है।

शिक्षाका यहाँ बड़ा अभाव है। आधुनिक समयमें तो इस ओर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। स्त्रीशिक्षा तो नाम मात्रको ही है। शिक्षा का भार बहुधा मुल्लाओं पर ही था। शिक्षा केवल प्राथमिक हो होकर रह जाती थी। अक्षर बोध तथा थोड़ी बहुत गणितके अतिरिक्त उच्च शिक्षाका यहाँ बिल्कुल अभाव था। कुरानका प्रचार पर्याप्त था किन्तु यह भी केवल रटाया जाता था। यहाँके मनुष्योंको शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक विकासका बिल्कुल ही अवसर नहीं प्राप्त होता था। देशमें अज्ञान तथा अन्धकार फैला हुआ था। बुद्धिविकास तथा विज्ञानसे ये लोग बिलकुल अनभिज्ञ थे। किन्तु अमानुल्लाखाँ के समयसे इस ओर विशेष ध्यान दिया जारहा है। स्थान स्थान पर अब उच्चशिक्षाका प्रबन्ध किया जा रहा है। हरेक प्रकारकी विद्याका प्रचार धीरे धीरे बढ़ रहा है। नादिरखाँका भी इस ओर पूर्ण ध्यान था।

आधुनिक नवयुवक अमीरसे भी देशमें अनेक सुधारों तथा विद्या प्रचारको पूर्ण आशा की जाती है।

[संदर्भ ग्रंथ.—इंपीरियल गज़िटियर ऑफ इंडिया, अफगानिस्तान और नेपाल १९०८; अकाउँटस रिलेटिंग टु दि ट्रेड बाइ लैण्ड ऑफ दि ब्रिटिश इंडिया विथ फॉरेन कंट्रीज, एनुअल कलकत्ता—पार्लियामेण्टरी पेपर्स, अफगानिस्तान १८७३—१८९९, ट्रेड बिटवीन दि ब्रिटिश गवर्नमेंट एँड दि अमीर ऑफअफगानिस्तान, डेटेडमाच १९०५ लंडन १९०५—दि सेकण्ड अफगान वार १८७८—८० प्रिपेअर्ड इन दि इंटेलिजेन्स ब्रँच ऑफ दि इंडियन आर्मी हेड क्वार्टर्स, लंडन १९०८—बेल्यू (एच–डब्ल्यू) अफगानिस्तान एँड दि अफगानस्, लंडन, १८७९ एँड दि रेसिस आफ अफगानिस्तान १८८०–कर्जन (ऑ. जी. एन्.); रशिया इन सेंट्रल एशिया (केटेन्स बिब्लिआग्रफि) लंडन १८८९—डाली (मिसेस केट) एट इयर्स अमंग दि अफगानस, लंडन १९०५—एल्फिन्स्टन (ओ. एम्.) एन अकाउन्ट आफ दि किंग्डम ऑफ काबूल अँड इट्स डिपेन्डन्सीज़, लंडन १८१५—काबेज (ए) दि अफगान वार्स, १८३९—४२ अँड १८७८—८० लंडन १८९२—ग्रे. (टी.) अट दि कोर्ट आफ दि अमीर. न्यू. एडि. लंडन १९०७—हैमिल्टन (अंगस) अफगानिस्तान लंडन १९०६—हेना (कर्नल एच बी.) दि सेकेंड अफगान वार वेस्टमिनिस्टर १८९९; होल्डिच (कर्नल सर टो. एच्.) दि इंडियन बार्डर लैंड १८८०—१९००; लंडन १९९७—ला कोस्ट (बी. डे.) अराउंड अफगानिस्तान, लंडन १९०९—मैकमहन (ए. एच्.)—दि सदर्न बॉडर लैंडस् आफ आफगानिस्तान, लंडन १८९७. मेलेसन (जी. बी) हिस्टरी ऑफ अफगानिस्तान, सेकेंड एडि. १८७९. नोई (एफ) इंग्लैंड, इंडिया एंड अफगानिस्तान; लंडन १९०२ पेनेल (पी. एल) अमंग दि वाईल्ड ट्राईब्स ऑफ अफगान फ्रँटिअर; लंडन १९११.—रॉबर्टस (फील्ड मार्शल लार्ड) फार्टीनाइन इअर्स इन इंडिया; लंडन १८९७—रॉबर्टसन (सर जी. एस.) दि काफिर आफ दी हिंन्दूकुश; लंडन १८९६—सेल (जी) जर्नल ऑफ दि डिजैस्टर्स इन आफगानिस्तान, इन १८४७—४२; लंडन १८४३.—सुलतान मुहम्मदखाँ (मीर मुनशी) (एडिटर) दि लाईफ ऑफ अब्दुलरहमान, अमीर ऑफ आफगानिस्तान २० हा, लंडन १९००—कान्स्टिट्यूशन एंड लाज ऑफ अफगानिस्तान, लंडन १९१०—टेट (जी पी.) दिकिंगडम ऑफ आफगानिस्तान. बांम्बे १९७७—थार्नटन (मि. और मिसेस) लीव्ज फ्राम एन आफगान स्क्रिष्ट बुक, लंडन १९१०—व्हीलर (एस. ई.) दि अमीर अबदुल रहमान; लंडन १८९५—मेट (मेजर सी. ई.) नार्दन अफगानिस्तान, लण्डन १८८८ इंडियन ईयर बुक (टाइम्स आफ इंडिया.) स्टेट्समैन्स ईयर बुक, ए. बि. आदि]

अफगान तुर्किस्तान-आक्सस नदीके उद्गम से लेकर जहाँ तक यह नदी बहती है, प्रायः उस सम्पूर्ण भागको अफगान तुर्किस्तान कह सकते हैं। यह प्रदेश भी अमीर काबुल अथवा अफ-

गान राज्यके ही आधीन हैं। इस प्रदेशका यह नाम बहुत पुराना नहीं है। यहाँके रहनेवाले अब भी इसको तुर्किस्तान कहते हैं। यहाँके मुख्य मुख्य प्रान्त हैं—हैबकमजार, शरीफअकया, शिवरघान, सोरीपुल, महमन, अएडकुई, दारा यूसुफ, बलखआब तथा सानजचरक।

सीमा—इसके उत्तरमें बुखारा है, पूरबमें बदकशाँ पर्वत है। दक्षिणकी ओर भी इसी पर्वत की श्रेणियों द्वारा यह काबुलसे अलग किया हुआ है। नैऋत्य तथा पश्चिममें काबुलका अमिआन प्रदेश तथा हिरातका कुछ भाग है।

नगर—इस प्रदेशमें नगर बहुत कम हैं। उनमें से मुख्य नीचे दिये जाते हैं—अकया, मेमन, मजार शरीफ़, हैबक, शिबरधन, सार-ए-बुल, अएडकुई तथा खानबाद। ये सब नगर बड़ी दूर तक चारों ओर फैले हुए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ पर फलोंके बड़े बड़े बगीचे हैं जो दूर दूर पर हैं।

इस प्रदेशके दो भाग किये जा सकते हैं—(१) पहाड़ी प्रदेश तथा (२) पर्वतके नीचेके वे भाग जो आक्सस नदी तक समतल रूपसे चला गया है। दक्षिणकी सीमा परके सब प्रदेश पहाड़ी ही हैं। पूरबमें हिन्दूकुश पर्वतकी बहुत ऊँची ऊँची चोटियाँ फैली हुई हैं। चडूर कोह जो इसी पर्वतकी एक श्रेणी है, उसीके द्वारा यह प्रदेश बदकशाँसे विभक्त किया गया है। इसी शाखाके समीपसे एक बहुत बड़ा पठार चला गया है। यह पठार १४० मील लम्बा ८० मील चौड़ा तथा ७००० से १०००० फीट ऊँचा है। बलखके दक्षिणमें हिन्दूकुश पर्वत फैला हुआ है। याकबलंगसे इसकी तीन शाखायें निकलती हैं। इन पहाड़ोंके विषयमें बिल्कुल पता नहीं लग सका है। फेरियरने अपनी १८४५ ई० की यात्रा में थोड़ा बहुत इनका वर्णन किया है। इन तीनों में बीच वाली श्रेणी ही सबसे ऊँची है। उसकी चोटियाँ बर्फसे ढकी रहती हैं। अन्य दो चोटियाँ साधारण ऊँची हैं।

नदी—यहाँकी सबसे मुख्य नदी आक्सस ही है। कुन्दुज इसकी सबसे मुख्य शाखा है। यह नदी जिन प्रदेशोंसे बहती है उसके विषयमें बहुत कम ज्ञान अब तक प्राप्त हो सका है। बलख और खुलम नदी भी देशसे होकर बहती है। अन्य प्रसिद्ध नदी मुर्गाब है जो कोहअबावासे निकल कर बहती है।

जनसंख्या—यहाँकी जनसंख्या बदकशान को मिलाकर लगभग ७ लाखके होगी। किन्तु बदकशानको निकाल देने पर भी ६ लाखसे कम नहीं होगी। यहाँ के सबसे पुराने निवासी ताजिक ही विदित होते हैं। कदाचित् ये ईरानके पूर्व निवासी होंगे। खोस्त और कुन्दुजमें इनकी बस्ती अधिक देख पड़ती है। उज़बकोंकी संख्या भी यहाँ पर्याप्त है। उजबकोंके अतिरिक्त अन्य तुर्क जातिके लोग भी यहाँ देख पड़ते हैं। यहाँ के कुछ निवासी अपनेको अरबके रहने वाले बताते हैं। थोड़े बहुत यहूदी तथा हिन्दुस्तानी भी हैं।

पैदावार तथा व्यापार—पहाड़ी प्रदेश अधिक होने के कारण यहाँकी पैदावार बहुत कम है। खनिज पदार्थोंका भी अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लगता। व्यापार उद्योग भी यहाँ कोई विशेष नहीं है। बदकशानको सीमापर छाल (Chal) के समीप नमक पाया जाता है। थोड़ा बहुत उसका ही कारबार भी होता है। बदकशानके समीप पिस्ता बहुत होता है। यहाँसे पिस्ता सारे भारत, मध्य एशिया तथा योरप तक भेजा जाता है। फलों की यहाँ बहुतायत है, तथा सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं। बलख और कुन्दुजसे फल बड़ी दूर दूर भेजे जाते हैं। अब तो उस उच्चकोटिकी काली भेड़ी की खाल अन्धकुईमें नहीं देख पड़ती, किन्तु जिस समय वह उन्नतिके शिखर पर था यह उन्हीं खालोंके लिये जिसे 'अस्तरखाँ' भी कहते हैं, सारे जगतमें विख्यात था। यहाँके ऊँठ भी विख्यात हैं। कुन्दुजके घोड़े जिन्हें काबुल 'कतघान' कहते हैं, बड़े उत्तम होते हैं। मैमना भी घोड़ोंके लिये प्रसिद्ध है। वहाँसे घोड़े भारत तक भेजे जाते हैं। यहाँके ऊनी कपड़े, कम्बल, कालीन दूर दूर भेजो जाती हैं। इसका व्यापार तुर्की तथा जमशेदी स्त्रियोंके हाथमें है। पूर्वकाल में यहाँ दास क्रय-विक्रयकी भी प्रथा बहुत थी, किन्तु सभ्यताके विकासके साथ साथ इसका लोप होता जारहा है।

आबहवा—समुद्रकी सतहसे (Sea level) भिन्न भिन्न भागोंकी ऊँचाईमें बहुत अन्तर होनेसे तथा पहाड़ी देश होनेसे यहाँकी आबहवामें भी स्थान स्थान पर बहुत अन्तर देख पड़ता है। केवल इतना ही नहीं समुद्रसे दूर होनेके कारण उसी कक्षामें बसे हुए अनेक देशोंसे यहाँकी आबहवामें बहुत भेद देख पड़ता है। वर्षा यहाँ बहुधा बसन्त ऋतुमें ही अधिक होती है। शीतकालमें यहाँ बड़ी तीव्र सरदी पड़ती है। समधरातल

प्रदेशोंमें ग्रीष्मऋतुमें भारतके ही समान गर्मी भी पड़ती है। ग्रीष्म ऋतुमें यहाँ एक प्रकारकी मक्खियाँ होती हैं। जिनसे बड़ा कष्ट पहुँचता है। इनके दाँतोंमें विष होता है। कभी कभी तो इनके काटनेसे घोड़े तक मर जाते हैं। ऊँटों को भी ये हानि पहुँचाती हैं। बहुधा ये सेस्तितान में ही होती हैं। पहाड़ी प्रदेशोंमें शीतकालमें बड़ी तीव्र सरदी पड़ती है किन्तु ग्रीष्मऋतुमें यहाँकी आबहवा बड़ी रोचक तथा उत्तम होती है। सदा शीतल वायु बहा करती है।

प्राचीन इतिहास—ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्राचीन बल्ख अथवा बैक्ट्रिया मध्यएशियाकी सबसे प्राचीन राजधानी रही होगी, और जरतुष्ट्र (Zoroaster) ने यहीं धर्मोपदेश किया था। बैक्ट्रिया अकेमीनियन साम्राज्य का एक मुख्य प्रान्त था और ईरानी वंशके लोग यहाँ पहले रहते थे। ईसासे लगभग २५० वर्ष पूर्व बैक्ट्रिया सिल्युकिड (Seleucidae) के आधीन था। इस समय इस प्रान्तका अधिकारी थियोडोटस था। उसने स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी। इसी से ग्रीको-बैक्ट्रियन (Greco-Bactrian) नामक राजघरानेकी नींव पड़ी। चाहे यह जक्सीस का समकालीन रहा हो किन्तु किसी समयमें इस वंशका राज्य कच्छकी खाड़ी तथा जरक्सीसके राज्यकी सीमा तक फैला हुआ था। लगभग १२६ वर्ष ईसाके पूर्व पार्थिया तथा अन्य अनेक मध्य एशियाकी जातियों ने इस पर आक्रमण आरम्भ कर दिये, जिससे यूनानी शासनका अन्त हो गया। उस समय आक्सस नदीकी तरेटीमें अनेक राज्योंका प्रादुर्भाव हुआ। इनमेंसे मुख्य युएची केशवंग, येथा, तुखारा, कुशन, हैथाला, हुण इत्यादि थे। इस समय यहाँ पर बौद्ध-धर्म का सबसे अधिक प्रचार था। बल्खमें एक बहुत बड़ा बौद्ध-मठ था जो नव-विहार के नाम से विख्यात है। इस समय वहाँ पर केवल एक छोटा सा देहात है। इस्लाम-विजयका वर्णन करने वाले अरब इतिहासकारोंने भी इसका वर्णन किया है। आज भी यह हिन्दू-धर्मकी उन्नति का स्मारक है। ह्यूनस्टाङ्ग नामक प्रसिद्ध चीनी यात्रीने कितने ही स्थानोंका वर्णन किया है और बुद्ध-धर्मका प्रचार सर्वत्र सबसे अधिक बतलाता है। हैथाला अथवा तुखारिस्तान जिससे मुसलमान भली भाँति परिचित थे, चिङ्गेजके आक्रमणके समयमें अनेक अन्य छोटे मोटे राज्योंकी भाँति सत्यानाश कर डाला गया। उसके बाद भी इसपर अनेक आक्रमण समय समय पर होते रहे। इन आक्रमणोंके बाद यह कभी भी उन्नति न कर सका, क्योंकि इन आक्रमण-कारियोंने केवल देशको विजय करके ही नहीं छोड़ दिया था किन्तु उसे पूरी तौर से लूट करके स्थान स्थान पर आग लगा देते थे। अतः प्राचीन सभ्यताका कोई भी चिन्ह आज नहीं देख पड़ता। लगभग एक शताब्दी तक यह प्रान्त देहलीके मुगल सम्राटोंके हाथमें भी रहा। तदनन्तर इसपर उजबकोंका फिर प्रभुत्व हो गया। ईसा की १८ वीं शताब्दीमें यह प्रान्त अहमदशाह दुर्रानीके हाथ आ गया था किन्तु इसकी मृत्युके पश्चात् इसका पुत्र तैमूर इसे सम्हाल न सका, और यह फिरसे उजबक सरदारोंके हाथमें आ गया। इन सबोंमें कुन्दुजके कठगान बहुत दिनों तक प्रधानत्व प्राप्त किये रहे। इनका सरदार मुरादबेग (१८१५-१८४२ ई० तक) आक्सस नदी के पार काबुल तक तथा दक्षिणमें बल्खसे पामीर तक शासन करता रहा।

किन्तु १८५० ई० से अफगानिस्तानने इन प्रदेशों पर विजय प्राप्त करना आरम्भ कर दी और धीरे धीरे दस वर्षमें (१८५९ ई० तक) इस पर पूर्णरूपसे अधिकार प्राप्त कर लिया। १८७२ व ७३ ई० में जो अफगानिस्तान तथा रूसमें पत्र व्यवहार चल रहा था उससे आक्सस नदी तक अफगान राज्य समझा जाने लगा था।

प्राचीन स्मारक—यद्यपि यहाँ प्राचीन सभ्यता बहुत दिनों तक थी तथा बौद्ध-कालमें यह उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था किन्तु चिङ्गेजखाँ तथा उसके बादके आततायियोंने इस प्रदेशको बिल्कुल नाश कर डाला जिससे उस समयके कोई स्मारक नहीं देख पड़ते। जो कुछ थोड़े बहुत उस समयके चिन्ह अथवा अवशेष देख पड़ते हैं उनमें सबसे मुख्य तथा महत्वकी बेनियम की गुफायें हैं। सयदाबादके किलेका भी अवशेष मिलता है। हैवकमें भी अनेक प्राचीन गुफायें हैं। यद्यपि बल्खमें अभी तक तो कुछ भी नहीं मिला है किन्तु उसके इतिहास पर ध्यान देनेसे आशा की जाती है कि खुदाई होने पर यहाँ भी पुरानी सभ्यताके अनेक चिन्ह प्राप्त होंगे। जनरल फेरियरने हजारा प्रान्तमें बड़ी कारीगरीके पत्थर के नमूने देखे थे। इन्हीं चट्टानों पर अनेक अन्य महत्वकी चीजें भी देख पड़ती हैं। सारांश यह कि यद्यपि अभी तक विशेष चिन्ह तथा स्मारक नहीं प्राप्त हो सके हैं किन्तु आशाकी जाती है कि

भविष्यमें खुदाई करने पर अनेक लाभकारी वस्तु प्राप्त हो सकेगीं।

अफ़जलखाँ—इसका पूरा नाम अब्दुल्ला भटारी अफ़जलखाँ था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वह आदिलशाहका दासीपुत्र होगा। कदाचित यह अनुमान बाँई नगरमें मिलने वाले फरमानके ही आधार पर होगा। किन्तु किंकेड तथा पारसनीसके इतिहासमें कहा गया है कि वह आदिलशाहके सालेका पुत्र था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसका पिता कदाचित् शाही बावर्ची खानेका दारोगा था। इसी कारण से इसके नामके आगे यह उपाधि लगा दी गई होगी। यह अत्यन्त हृष्टपुष्ट और बलिष्ट था। इसका भाग्य मुहम्मद आदिलशाहके समयमें चमक उठा। उसके अन्तिम समयमें ही प्रथम कोटिके सरदारोंमें इसकी गणना की जाने लगी थी। १६४४ ई० में रणदूल्हाखाँ की मृत्यु हो गई। अब तक रणदूल्हा बांईका सूबेदार था। उसकी मृत्युके पश्चात् बांईकी सूबेदारी इसके हाथ आई, और उसकी मृत्यु पर्यन्त यह उसीके हाथमें रही। अपने समकालीन मुसलमानोंकी भाँति इसका भी व्यवहार हिन्दुओं तथा उनके देवमन्दिरों के प्रति अन्यन्त कठोरता तथा वर्बरता का था। अफ़जलखाँ की आज्ञानुसार निम्बके हिन्दुमठोंसे बड़ी कठोरताके साथ कर वसूल किया जाता था। उनके ऊपर और भी अनेक अत्याचार किये जाते थे। उस समयके कुछ पत्र मिलते हैं। उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिवाजी तथा अफ़जलखाँ दोनों ही तत्कालीन देशमुखपाँड़ेको अपनी अपनी ओर मिलानेका प्रयत्न कर रहे थे। बीजापुर वालोंने कर्नाटकका कनकगिरि नामक किला शाहजी को दे दिया था। अफ़जलखाँने मुस्तफाखाँको बहुत बहकाया तथा शाहजीके विरुद्ध कहा सुना। इसका फल यह हुआ कि मुस्तफाखाँ ने वह किला फिरसे ले लिया। अफ़जलखाँने प्रत्यक्ष रूपसे भी मुस्तफाखाँ की इस कार्यमें सहायता दी थी। १६५३ ई० में आदिलशाहकी कैदसे शाहजीको छुटकारा मिला। इसने छुटकारा पानेपर अपने ज्येष्ट पुत्र सम्भाजीको मुस्तफाखाँसे कनकगिरी वापस लेनेको भेजा। मुस्तफाखाँने बड़ी चालाकी और विश्वासघात करके उसका बधकर डाला था। इस कारणसे भी वीर शिरोमणि शिवाजी तथा अफ़जलखाँमें वैमनस्यकी गाँठ पड़ चुकी थी

इसके अतिरिक्त औरङ्गजेब भी इन दोनोंमें शत्रुताका कारण था। अफ़जलखाँ की गणना उस समयके सर्वश्रेष्ठ वीर तथा योद्धाओंमें की जाती थी। सैनिक-कार्योंमें उसकी अच्छी ख्याति थी। वह बहलोलखाँ तथा रणदूल्हाखाँ इत्यादि प्रसिद्ध वीर सरदारोंकी कोटिमें गिना जाने लगा था। १६५७ ई० में जब दक्षिणमें औरङ्गजेबने बीजापुर पर चढ़ाई की थी, उस समय उससे युद्ध करनेके लिये जिन दो प्रसिद्ध सरदारोंको चुना गया था उनमेंसे एक यह भी था। इस युद्धमें इसकी वीरता तथा बुद्धिका सिक्का सब पर जम गया था। इसने बड़े कौशलसे औरङ्गजेबका सामना किया था। अभाग्यसे उसी समय औरङ्गजेबको अपने पिताकी बीमारीका समाचार प्राप्त हुआ। अतः बिना युद्धका कुछ निर्णय हुए ही वह उत्तरकी ओर लौट गया था। वहाँ जाकर तो वह समयके फेरसे देहलीका सम्राट बन बैठा था।

इसी समय शिवाजी भी धीरे धीरे देश पर देश जीतता हुआ अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। बांई प्रान्तमें शिवाजी का कार्य बड़े अच्छे रूपमें चल रहा था। ईर्षा तथा द्वेषके वश यह समाचार अफ़जलखाँ ने मुगल दरबारमें पहुंचाया। शिवाजी के पराक्रमका समाचार देहली यों भी पहुँच चुका था। अतः इस प्रश्न पर विचार करनेके लिये देहली दरबारमें सबलोग एकत्रित किये गये। बहुत वादा-विवाद होता रहा। उस समय अफ़जलखाँ भी राजदरबार में उपस्थित था। उसको अपने बल तथा शक्ति पर बड़ा घमण्ड था। उसने सम्राटसे प्रार्थना की कि शिवाजी को परास्त करनेमें वह पूर्ण समर्थ है। यदि सम्राटकी आज्ञा हो तो उसे वह जीवित ही पकड़ सकता है, अथवा युद्धमें उसे परास्त करके मार सकता है। सम्राटकी आज्ञा पाकर वह शिवाजी को परास्त करनेकी इच्छासे बीजापुर की ओर चला। ग्रान्डडफके मतानुसार वह ५००० सवार, १२००० पैदल सैनिक तथा अनेक तोपों इत्यादिसे सुसज्जित होकर १६५६ ई० के सितम्बर मासमें शिवाजी का सामना करने बीजापुरसे चल पड़ा। किन्तु आरम्भ ही से अफ़जलखाँको यह निश्चय नहीं था कि वह खुले मैदानमें युद्ध करके शिवाजी को परास्त कर सकेगा। बीजापुर वालोंका अनुमान था कि शिवाजीके पास बहुत अधिक सेना है। १६५६ ई० के अक्तूबर मासमें राजापुर की अंग्रेजी कोठीके एक पत्रसे यह भी पता लगता है कि अफ़जलखाँ

के फूफाने उसे इस बातके लिये पूर्णरूपसे सचेत कर दिया था कि वह शिवाजी से प्रकटमें मित्रता का ही व्यवहार रक्खे। अवसर आने पर छल कपटसे उसे पराजित करे। कदाचित् अफजलखाँ इन सब ध्यान देते हुए शिवाजी से एकदमसे खुले मैदान में युद्ध नहीं करना चाहता था। अपने फूफाकी सलाहके अनुसार ही वह कोई उपयुक्त अवसरकी ताकमें लगा हुआ था। इन्हीं सब कारणोंसे पहले वह तुलजापुरकी ओर गया। कदाचित् उसने निश्चय किया था कि स्थान-स्थान पर देव-मन्दिरोंको भ्रष्ट करता रहेगा। शिवाजी इससे उत्तेजित होकर उसके सामने स्वयं ही आ जावेगा। अतः सबसे पहले भवानीके मन्दिर को भ्रष्ट करनेका उसने निश्चय किया। वहाँके पुजारियोंको इसके आगमनकी पहले ही से सूचना मिल चुकी थी। अतः उन्होंने देवीकी प्रतिमाको अन्यत्र छिपा कर रख दी। इस पर वह बहुत झुँझलाया, और एक गौकी हत्या करके उसके रुधिरको मन्दिरमें सर्वत्र छिड़क कर अपना क्रोध शान्त किया। तदनन्तर वह नैऋत्य दिशाकी ओर मुड़ा और पंढ़रपुरके समीप आ धमका। जिस भाँति इसने तुलजापुरमें आचरण किया था वैसा ही उसने घृणित कार्य यहाँ भी किया। भीमा नदी पार करके उसने पुण्डरीक के मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँकी प्रतिमा इसने उठाकर जलमें फेंक दी। तदनन्तर वह माणकेश्वर, करकम, भोंसे, शंभुमहादेव, मलवड़ी तथा रहमतपुरके मार्गसे होता हुआ तथा अनेक मन्दिरोंको नष्ट भ्रष्ट करता हुआ बाँई आया।

हृदयमें चाहे सदा ही डरता हो किन्तु दिखलानेके लिये अफजलखाँ सदा ही शिवाजीको बन्दी बनानेकी डींग हाँका करता था। बाँई पहुँच कर उसने एक दिन बातही बातमें एक पिंजड़ा बनवानेकी आज्ञा दी और कहा कि शिवाजी को जीवित ही पकड़ कर बादशाहके सम्मुख इसी पिंजड़ेमें बन्द करके उपस्थित करूँगा। शिवाजी इसके प्रत्येक कार्यका बड़ी सावधानीसे पता लगाये रहते थे। जब शिवाजी राजगढ़में थे तभी उन्हें पता चल गया था कि अफजलखाँ उन पर चढ़ाई करने आ रहा है। उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि अफजलखाँ इधर उधर ही भटकता रहे और पूना न पहुँच पाये। इसमें उन्हें सफलता भी हुई और वे अवसर पाकर पुरन्दरगढ़से प्रतापगढ़ चल दिये।

राजवाड़ेने लिखा है (ख १५, लेख ३०२) कि जिस समय अफजलखाँ छत्रपति शिवाजी पर चढ़ाई करनेके विचारसे बढ़ा आ रहा था, उस समय रोहिडखोरा देखमुख खण्डोजी खोपड़ेने विदेशीका भेष बदल कर अफजलखाँसे भेंट की और कहा कि वह शिवाजीको पकड़वा देगा। इधर शिवाजीका सरदार विश्वासराव नानाजी मुसेखोरेकर फकीरके भेषमें बराबर अफजलखाँ की छावनीमें जाया करता था तथा उसको हरएक कारवाईका पता रखता था। अतः शिवाजीको अफजलकी इच्छाका पूरा पूरा पता था। बाँई पहुँच कर अफजलने वहाँके पटवारी कृष्णाजी भास्करको मिलनेके लिये अपने पास बुलवाया और कहा कि वह मित्रभावसे शिवाजीसे मिलनेके लिये उत्सुक है। कृष्णाजी भास्कर शिवाजीसे मिला और उसने खाँका आदेश शिवाजीसे कह सुनाया। उसने अफजलखाँकी ओरसे यह भी सन्देशा कहा कि अफजलखाँ शिवाजीको बीजापुर के दरबारसे उसके पूर्व अपराधोंके लिये क्षमा दिलवा देगा और जिस देश पर अब तक उसका आधिपत्य है वे सब भी नियमानुसार उसके आधीन करा देगा। शिवाजी भी बड़ा भारी कूटनीतिज्ञ था। उसने भी चटसे अजफलखाँ से मुलाकात करना स्वीकार कर लिया, किन्तु बाँई तक जानेका उसे साहस नहीं होता अतः यदि अफजलखाँ जाबली तक आनेका कष्ट करे तो वह भेंट करने आ सकता है।

कृष्णाजी भास्करको शपथ दिलाकर शिवाजी ने पूछा कि अफजलखाँका भीतरी अभिप्राय क्या है और क्या वह शिवाजीके साथ छल कपटका व्यवहार नहीं कर रहा है क्योंकि शिवाजीको अपने दूतों द्वारा ऐसा ही समाचार मिला है। कृष्णाजीने भी तब सब हाल कह दिया और कहा कि अफजलसे बड़ी सतर्कतासे ही मिलना उचित है। अफजलखाँ अवश्य कोई न कोई छल करेगा। शिवाजीको जब अफजलखाँके नीच विचारोंका पूर्ण रूपसे विश्वास हो गया तो उसने भी दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह भी खाँको उसीके बिछाये हुए जालमें फँसाकर नाश करेगा। अतः पणतोजी गोपीनाथ नामक अपने एक नायकको शिवाजीने अफजलखाँके पास दूत बनाकर भेजा और कहला दिया कि वह खाँसे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक १५ दिन बाद प्रतापगढ़में भेंट करनेको प्रस्तुत है, उसी समय समझौतेकी भी बातचीत हो जावेगी।

इधर शिवाजीने अपने आदमियोंसे जंगल

कटवाया और अफजलखाँकी सेनाके आनेके लिये प्रतापगढ़ तकका मार्ग साफ करवा दिया। मार्गमें भी अफजलकी सेनाके लिये रसद इत्यादि का पूरा-पूरा प्रबन्ध करा दिया तथा हर प्रकारकी सुविधाका प्रबन्ध कर दिया। किन्तु साथही मार्गमें शिवाजीके सैकड़ों गुप्तचर छूटे हुए थे जिससे खाँके प्रत्येक कार्यका उन्हें समाचार मिलता रहे।

इधर कृष्णाजी भास्कर शिवाजीसे विदा होकर पणतोजी गोपीनाथको साथ लिये हुए अफजलके पास बाँई आया, और शिवाजीका सब सन्देशा कह सुनाया और अपनी ओरसे यह भी कह दिया कि खाँके ऐश्वर्य तथा बलसे शिवा जी बड़ा भयभीत हो चुका है और वह समझौता करनेके लिये बड़ा उत्सुक है। अतः खाँको भी इस अवसरसे लाभ उठाना चाहिये। प्रतापगढ़ जाकर वह शिवाजीसे मिलकर तथा उसे फंसाकर बीजापुर लेकर चल दे। अफजलखाँको यह विचार बहुत पसन्द आया और उसने शिवाजीके पास समाचार भेजवा दिया कि वह शिवाजीसे मित्रभावसे मिलनेको प्रस्तुत है और शीघ्र ही प्रतापगढ़ आकर उससे भेंट करेगा। इधर अफजलखाँको अपने शारीरिक बलका बड़ा घमंड था, अतः उसे किसी प्रकारकी भी शंका नहीं थी।

इसके अनुसार अफजलखाँने बाँईसे अपनी छावनी उठायी। शिवाजीने जो मार्ग तैयार कर रखा था, उससे होते हुए रडतोंडीका घाट पार कर कोयना खोरामें प्रतापगढ़के नीचे पार नामक एक छोटेसे गाँवमें उसने अपना डेरा जमाया। गढ़की दीवारसे करीब चौथाई मील पर एक स्थान था। वही स्थान मुलाकातके लिये निश्चित किया गया और दूसरे दिन संध्या समय दोनोंका वहीं आकर मिलना निश्चित हुआ। जिस स्थान पर भेंट होना निश्चित हुआ था वहाँ पर शिवाजी ने एक कीमती झालरका शामियाना खड़ा किया। वह भली भाँति सजाया हुआ था। नित्यके अनुसार स्नान भोजनादि करनेके उपरान्त शिवाजी दोपहरमें थोड़ी देर सोये, तत्पश्चात् वह भवानी माताके मन्दिरमें गये और वहाँ पर उन्होंने संकट पड़नेपर सहायता करनेके लिये सच्चे हृदयसे प्रार्थना की। फिर उन्होंने तानाजी, मालुसरे, मोरोपंत पिंगले और नेताजी पालकर नामक अपने विश्वास पात्र सरदारोंका बुलाया और कहा कि यदि खाँ ने धोखा देने का प्रयत्न किया हो तो ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि वह वापस न जा सके। इस लिये उसके सेनाके पीछे और अगल बगल अपने आदमियोंको तैयार रक्खो, गढ़परसे सिंघा बजते ही ये लोग बीजापुरके लोगों पर हमला कर दें। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी प्रजा, सरदार तथा नायकोंको इकट्ठा करके कहा कि यदि वह युद्धमें काम आवे तो वे लोग संभाजीको गद्दी पर बैठा कर नेताजी पालकरकी अनुमतिसे राज्य चलावें। अन्तमें वह अपनी माताजीसे बिदा माँगने गये। तदनन्तर वह खाँके साथ मुलाकात करने की तैयारी करने लगे। उन्होंने नीचे जिरह बख्तर पहना और ऊपर एक अंगरखा पहना और सिर पर शिरस्त्राण पहन कर उस पर एक फेंटा बाँध लिया। बाँएँ हाथमें उन्होंने बिछुआ बगनहा पहना और दाहिने हाथकी आस्तीनमें एक खंजर छिपाया। इस प्रकार आत्मरक्षाका पूरा प्रबन्ध कर शिवाजी जिवबा महाल, संभाजी कावजी और एक तीसरे मनुष्यके साथ गढ़से नीचे उतरने लगे। इधर अफजलखाँ भी पालकीमें बैठकर गढ़पर चढ़ रहा था। पालकीके साथ कृष्णाजी भास्कर और पीछे अनेक सशस्त्र लोग थे। कृष्णा जी भास्करने खाँसे कहा कि यदि आप शिवाजी को पकड़ना चाहते हों तो अपने साथके लोगोंको पीछे ही छोड़ देना उचित होगा। खाँको यह बात उचित जान पड़ी और उसने यह बात स्वीकार कर ली, और शिवाजीके साथ जितने आदमी थे उतने ही आदमी अपने साथ भी लिये। खाँके साथ सैयदबन्दा नामक एक मोटा ताजा और बहादुर सिपाही था। उसे देख कर शिवजीने खाँसे कहला भेजा कि शिवाजीको उस मनुष्यसे भय लगता है, इस लिये खाँ उसे साथ न लावें। यह बात यदि अफजलको स्वीकार हो तो वह भी अपने साथका एक आदमी कम कर देगें, खाँने यह बात भी स्वीकार कर ली। शिवाजीने भी अपने साथका तीसरा आदमी पीछे छोड़ा। खाँ शामियानेमें आ रहा था। उसका स्वागत करनेके लिये शिवाजी आगे बढ़े वे ऊपरसे देखनेसे निःशस्त्र मालुम देते थे, परन्तु खाँको कमरमें एक तलवार लटक रही थी। यह देखकर खाँने समझा कि शिवाजी को पकड़नेके लिये यह समय ठीक है। उसने शिवाजीसे असभ्यता पूर्वक हंस कर पूछा कि तुम गँवार देहाती आदमीके पास यह शामियाना और उसमें दिखाई पड़ने वाला यह सब ऐश्वर्य कहाँसे आया? इस पर शिवाजीने क्रुद्ध होकर कहा कि यह सब वैभव अगर हम लोगोंके पास न रहेगा तो क्या तुम्हारे जैसे भठि-

बारेके बच्चेके पास रहेगा ? शिवाजीका यह उत्तर खाँके दिलमें चुभ गया।

अफजलखाँने बाएँ हाथसे शिवाजीका सिर अपनी बगलमें जोरसे दबा लिया और दाहिने हाथसे तलवार निकाल कर उनके पेटमें भौंकनेका प्रयत्न किया। किन्तु शिवाजी तो पहले ही से सुरक्षित होकर गये थे। उनके शरीर पर कवच तथा सिर पर शिरस्त्राण था। इस कारण खाँका प्रयत्न निष्फल रहा और शिवाजीको कोई हानि न हुई। खाँ दूसरा वार करनेके लिए अपना हाथ ऊपर उठा रहा था कि इतने ही में उपयुक्त अवसर देखकर शिवाजीने बाएँ हाथसे खाँकी कमर कसकर पकड़ ली और उस हाथके बिछुए को खाँके पेटमें घुसेड़ दिया। अफजलको स्वप्नमें भी ऐसी शंका नहीं थी। इस वेदनासे वह चिल्ला उठा। वेदनासे वह हतबुद्धि सा हो गया था। शिवाजीका सिर जो उसने कसकर अपने बगलमें दबा रक्खा था जरा ढीला पड़ गया। शिवाजीने इस अवसरसे पूर्ण लाभ उठाया। उन्होंने झट अपना दाहिना हाथ भी छुड़ा लिया और खाँकी पीठमें अपना खंजर भोंक दिया। तब अफजलखाँने दूर हट कर शिवाजीके सिरपर अपनी तलवारका भरपूर वार किया। खाँकी तलवारने शिवाजीका शिरस्त्राण तो अवश्य चूर-चूर कर दिया, परन्तु विशेष चोट सिर पर नहीं आई और शिवाजी सुरक्षित ही रहे। जिवबा महालकी कमरमें दो तलवारें लटक रही थीं। उनमेंसे एक तलवार लेकर शिवाजीने खाँके कंधे पर वार किया। इस चोटको अफजलखाँ सम्हाल न सका। वह तुरन्त ही नीचे गिर पड़ा और सहायताके लिये चिल्लाने लगा। खाँकी चिल्लाहट सुनते ही सैयदबन्दा और खाँके दूसरे नौकर सहायताके लिये दौड़कर आए। उन्होंने खाँको पालकीमें रखकर किसी तरह भागनेका पूरा यत्न किया, परन्तु शिवाजी और जिवबा महालके सामनेसे अफजलखाँको ले भागना आसान नहीं था। इन दोनोंने मिलकर सैयदबन्देकी पूरी खबर ले डाली। शंभाजी कावजी पालकीके पीछे दौड़ता हुआ गया और अफजलखाँका सिर काट ही डाला। इसके बाद शंभाजी कावजीने सिंघा बजाया। उसकी आवाज सुनते ही चारों ओरके जंगल से मराठोंका दलका दल बाहर निकल आया। खाँके आदमी अभी घोड़ों पर चढ़ने भी न पाये थे कि मराठोंकी सेनाने पहुँच कर उन लोगों पर छापा मार दिया। इस युद्ध में अफलजकी सम्पूर्ण सेना काम आ गई। बड़ी कठिनतासे अफजलखाँका पुत्र फज़ल मुहम्मद खण्डोजी खोपड़ेकी सहायतासे जान बचाकर भाग गया। इसके बाद जब पन्हालगढ़के घेरेमें से शिवाजी निकल भागे तब इसने उनका पीछा करके अपने पिताका बदला लेनेका विचार किया था किन्तु शिवाजी उसके हाथ न आये। अफजलखाँका सिर शिवाजीने गढ़के ऊपर गड़वा दिया था, और वहीं पर एक बुर्ज बनवा दी थी। इस बुर्जका नाम "अफजल बुर्ज" रख दिया था। अफजलखाँकी जो तलवार शिवाजीके हाथ लग गई थी, वह आज दिन भी शिवाजीके वंशजोंके पास सुरक्षित रक्खी हुई है। विजय होनेके बाद अफजलखाँ के डेरेमें से सोनेका काम किया हुआ एक अत्यन्त सुन्दर सोनेका खम्भा शिवाजीके हाथ लगा था। वह उन्होंने महाबालेश्वरके मन्दिरमें दे दिया था। यह अभी तक वहाँ वर्त्तमान है। शिवाजीने अफजलखाँके शवका पूर्ण संस्कार करा कर बड़े सम्मानके साथ गड़वा दिया था, और उसी स्थानपर एक कब्र भी बनवा दी थी। अफजलखाँका मकबरा गाँवमें गढ़से उतर कर आज तक वर्त्तमान है।

अफजलखाँ अपने समय का बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था। वह बीजापुर दरबारका तो एक प्रसिद्ध सरदार था ही, अपने साहस तथा बलके कारण उसका सम्मान मुगल दरबार तकमें यथेष्ट था। अतः शिवाजी द्वारा जो उसपर मराठोंने विजय प्राप्त की थी, इससे उन्हें बड़ा गौरव था तथा अनेक दन्त कथाओं तथा किंबदन्तियों द्वारा इस घटनाको बड़ा महत्व दे डाला है। निश्चय पूर्वक तो नहीं कहा जा सकता कि इसमें कहाँ तक तथ्यका अंश है किन्तु एक दन्तकथा इस प्रकार है कि अफजल खाँका इस विषयका पहले ही से पूर्णाभास हो चुका था कि शिवाजीसे युद्ध छिड़ जाने पर उसकी मृत्यु अवश्य होगी। ऐसी अवस्थामें उसे यह भी भय था कि उसकी मृत्युके पश्चात् उसकी स्त्रियोंका सतीत्व भ्रष्ट हो जावेगा। अतः उसने युद्ध पर जानेके पहिले ही अपनी सब स्त्रियोंका बध कर डाला था। कहा जाता है कि इसके ६३ स्त्रियाँ थीं, और उन सब को इसने एक पहाड़परसे एक खड्डमें ढकेलवा दिया था। युद्धमें विजय होनेके बाद शिवाजीने उनके शव वहाँसे निकलवा कर उनकी कब्रे बनवा दी थीं। अफजलपुर नामक गाँवके निवासी अब तक उन कब्रोंके चिन्ह वहाँ बताते हैं। सम्भव

है इस कथामें बहुत कुछ अत्युक्ति हो, किन्तु अफजलखाँके अन्य व्यवहारोंको देखते हुए इतना तो निश्चय पूर्वक कहा ही जा सकता है कि वह बड़ा कठोर तथा निर्दयी था।

महाराष्ट्र देशमें अफजलखाँके विषयमें और भी अनेक कथायें प्रचलित हैं। जिस समय वह शिवाजीसे युद्ध करनेके लिये निकला था, उस समय बराबर अपशकुन हो रहे थे। बीजापुर दरबारमें 'फतह लश्कर' नामक एक हाथी था। उसके विषयमें यह भावना थी कि जिस युद्धमें वह जाता था वहाँ विजय अवश्य होती थी किन्तु जब अफजलखाँ युद्धके लिये जानेको था तो उसकी अकस्मात् मृत्यु ही हो गई। जब अभागा अफजल काजीसे युद्धमें जानेके लिये विदा माँगने गया तो काजीको अफजलखाँका शरीर बराबर बिना सिरका ही देख पड़ता रहा। यह भी आपत्तिसूचक था। इन सबके अतिरिक्त जब शिवाजीसे भेंट करने वह रडतोंडीकी घाटीमें से जा रहा था, उस समय भी अचानक उसका वह हाथी, जिसपर उसका झण्डा फहरा रहा था, अड़कर खड़ा हो गया और किसी भाँति आगे बढ़ता ही नहीं था। इसी भाँति अफजलखाँको ऐसी ही अनेक दैविक सूचना मिल रही थीं, जिससे उसकी पराजय निश्चित सी देख पड़ती थी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन सब का क्या प्रभाव अफजलके हृदय पर पड़ा, किन्तु इतना तो निश्चय ही है कि इन सबके होते हुए भी वह अपने निश्चय पर दृढ़ था और अन्त तक उसने आशा तथा साहसको हाथसे जाने नहीं दिया। यद्यपि उपरोक्त दन्त-कथाओंका ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष कुछ भी महत्व नहीं है, किन्तु इतना तो परिणाम निकाला ही जा सकता है कि अफजल अपने समयका सामान्य पुरुष नहीं था और महाराष्ट्र देशमें इसका पर्याप्त प्रभाव था। यह शिवाजीका ही साहस तथा कौशल था कि अफजल ऐसे वीर, धूर्त तथा प्रभावशाली व्यक्तिका इतनी सरलतासे नाश कर डाला।

[संदर्भग्रन्थः—शेड़गाँव का बखर, चिटणीसबखर, अफजलखाँका पाँवाड़ा, शिवाजी दिग्विजय, अफजलखाँ का बध]।

अफजलगढ़—यह संयुक्तप्रान्तमें एक छोटा सा गाँव है। यह बिजनौर जिलेकी नगीना तहसीलमें है। बिजनौर शहरसे पूर्वकी ओर ३४ मीलकी दूरी पर यह बसा हुआ है। यह उत्तर अक्षांश २९° २४' और पूर्व रेखांश ७८° ४७ के बीचमें स्थित है। यहाँकी जनसंख्या लगभग आठ हजार है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १८वीं शताब्दीके मध्यमें अफजलखाँ नामक एक व्यक्तिने इस नगरको बसाया था। यह गाँव बहुत नीचे एक गड्ढेमें बसा हुआ है। चारों ओर दलदल होनेके कारण यहाँकी आबहवा स्वास्थ्यके लिये बड़ी हानिकर है। यहाँकी आय लगभग १२००) के है। इसका शासन प्रबन्ध १८५६ ई० के २०वें नियम (Act) के अनुसार किया जाता है। यहाँ एक स्कूल है। यहाँके मुसलमान जुलाहे सूती कपड़ा बुनकर तय्यार करते हैं।

अफराडीटी—जिस भाँति भारतमें अनेक देवी देवता माने जाते हैं, उसी भाँति यह भी पश्चिमीय देशों को एक प्रसिद्ध देवी है। इसका दूसरा नाम वीनस भी है। भिन्न भिन्न पाश्चात्य देशोंमें इसके भिन्न भिन्न नाम हैं, तथा इसके विषयमें भिन्न भिन्न कल्पनायें तथा कथायें हैं। 'अफराडीटी' नामके अर्थ पर यदि ध्यान दिया जाये तो इसकी उत्पत्ति 'समुद्रके फेन' से कह सकते हैं। यदि हेलिअडके वर्णन पर भी ध्यान दिया जाय तो भी इसकी उत्पत्ति जलसे ही सम्बन्ध रखती है। उसके वर्णनके अनुसार यह सिथिराके चारों ओरके जल में पहले पहले देख पड़ती है, तदन्तर यह साइप्रस द्वीपमें प्रवेश करती है।

अफराडीटीके विषयमें निम्नलिखित कल्पनायें बहुत अंश तक निश्चित सी हैं—(१) यूनानके देवताओंमें पहले इसका स्थान नहीं देख पड़ता। इसके विषयकी अनेक कल्पनाओंका जन्म एशिया में ही देख पड़ता है, क्योंकि जिन भी देवी देवताओंका इसके साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता है वे सब एशियाके ही हैं। (२) हेरोडेटसके मतानुसार आस्कोलनसे इसकी पूजा साइप्रस इत्यादि स्थानोंमें फैली है, क्योंकि वहाँ ही एक देवीका सबसे प्राचीन मन्दिर मिलता है। इसीको यूनानवाले 'अफ्राडीटी युरेनिया' अरब वाले 'अलिट्टा' असीरिया वाले 'मिलिट्टा' और फोनेशियन 'अस्ट्राटे' नाम देकर पूजा करने लगे थे। इसका सम्बन्ध नैसर्गिक सुन्दरता, आकाशके ग्रह इत्यादि तथा मानव प्रेमसे जोड़ा जाता है। अर्थात् भारतकी उषादेवीकी भाँति प्रकृति, रतिकी भाँति 'प्रेम' तथा ग्रहोंका सञ्चालन इसीके प्रभाव से होता है। फोनेशियामें इसको सामुद्रिक व्यापारकी भी देवी माना है। बहुत सम्भव है कि जिस भाँति सभ्यताके अनेक अंश यूनान

वालोंने फोनेशियासे ही उधृत किये हैं उसी भाँति इसकी कल्पना भी वहींसे यूनानमें आई हो। जैसा कि अनुमान किया जाता है कि ईसासे १५०० वर्ष पूर्व यूनानमें फोनेशियन सभ्यताने विकास पाया था तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं रह जाता कि होमरका काल आते आते इस देवीका यूनान में पूरा प्रचार हो गया हो और इसको ऑलिम्पियाके देवताओंमें प्रधानत्व प्राप्त हो गया हो। यूनान ऐसे सुन्दरता तथा प्रेमप्रधान देशमें यदि इसका सबसे अधिक महत्व देख पड़ता है तो आश्चर्य हो क्या। यूनानके प्राचीन तत्वज्ञानी तो समस्त ब्रह्माण्डमें केवल प्रेम ही का प्रधानत्व मानते थे। इस देवीके साथ अनेक गुणोंका समावेश होने लगा था। यह युद्धमें विजय देने वाली, प्रकृतिको बसन्तकी सुन्दरता तथा फल फूल प्रदान करने वाली, मानवमात्रमें प्रेमका बीज उत्पन्न करने वाली, सारांश सब प्रकारकी सफलता देनेवाली समझी जाती थी। यह स्वयं भी सुन्दरताका उत्कृष्ट उदाहरण समझी जाती थी। जिस समय यूनानमें शिल्प तथा कला पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी उस समय इसकी अनेक उत्तम उत्तम प्रतिमायें बनाई गई थीं। उनमेंसे कुछ आज भी वर्त्तमान हैं।

ट्रोजनके युद्धमें वह यूनानसे क्रुद्ध हो रही थी और उसीने ऐनिस, हेक्टर, पेरी इत्यादिकी रक्षा की थी। विनोमेलुआ इत्यादिमें आज भी इसकी प्रतिमा दर्शनीय हैं। आगे चलकर जब रोममें सभ्यताका विकास हुआ तो भिन्न भिन्न नामोंसे इसकी यहाँ भी पूजा की जाने लगी, तथा अनेक मूर्तियाँ स्थापित की गयीं।

साइप्रस, सिथिरा, निडस, कौरिन्थ, थीरा, सिसिली और ॲथेन्समें इसका सबसे अधिक प्रचार था तथा वहाँके निवासी इसकी भिन्न भिन्न प्रकारसे पूजा किया करते थे। कछुआ, बत्तख, हंस, खरगोश, तथा बकरे भिन्न भिन्न अवस्थामें इसके बाहन होते थे।

सारांश, प्राचीन पाश्चात्य सभ्यतामें इसका सबसे अधिक महत्व था।

अफरानियस लूसियस—यह एक प्रसिद्ध रोमन हो गया है। इसके प्रारम्भिक जीवनके इतिहासके विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। पॉम्पे पर इसकी विशेष श्रद्धा और भक्ति थी। उसीके समयमें यह भी विख्यात हो गया। सौरोटोरियन तथा मिथ्रेडेटिक युद्धमें इसने बड़ी तत्परतासे पॉम्पे का साथ दिया था और इन्हीं युद्धोंके बाद से यह प्रसिद्ध हो उठा। ईसा से ६० वर्ष पूर्व पॉम्पेकी सहायता से ही यह रोमन साम्राज्यका कोउन्सल (Consul) तक बन बैठा था। चाहे सैनिक ज्ञान इसे कितना ही क्यों न रहा हो, किन्तु राज्यप्रबन्धमें यह निपट असफल ही रहा। केवल यह दोष इसीमें नहीं था। बहुधा जितने भी चतुर सैनिक ऐसे पद पर पहुँचे थे अथवा इसके पश्चात् पहुँचे, राज्य प्रबन्ध को सम्हालनेमें नितान्त असमर्थ रहे। अगले वर्ष वह किसलपाइन गाँव का सूबेदार नियुक्त किया गया और वहाँ पर भी उसने एक युद्ध जीता था। ईसासे ५५ वर्ष पूर्व जब पाम्पेके हाथ स्पेन का राज्य आया तो इस प्रदेशके राज्यसञ्चालन का भार इसके और पेटरियस के हाथ सौंपा गया। ईसासे ४६ वर्ष पूर्व जब पॉम्पे तथा सीजरमें अनबन होगई थी तो इन दोनोंने सीजरके विरुद्ध हथियार उठाया था। पहले तो सफलता इन्हींके हाथ विदित होती थी किन्तु शीघ्र ही अलरदाके मैदानमें सीजरके सम्मुख इन्हें हथियार डालदेना पड़ा था। सीजरने केवल इतना वचन लेकर कि वह सीजरके विरूद्ध भविष्यमें कभी हथियार न उठावेगा, उसे छोड़ दिया। अफरानियस अपने बचन पर दृढ़ न रहा। ईसासे ४८ बर्ष पूर्व जब पॉम्पे डिरोशियमके समीप पड़ा हुआ था तो यह उससे जाकर फिर मिल गया और सीजरके विरूद्ध फारसेलियाके मैदानमें एक बार फिर पॉम्पे का साथ दिया। इस युद्धमें जब पॉम्पे की पूर्वरूप से पराजय हो गई और इसे सीजर से भी क्षमा प्राप्त होने की कोई आशा न रही तो वह अफ्रीका चल दिया। इसने वहाँ पहुँच कर ईसासे ४६ वर्ष पूर्व थेपसस् (Thapsus) के युद्धमें फिर भागलिया। भाग्यने इसका वहाँ भी साथ नहीं दिया और इस युद्धमें पराजय होनेके पश्चात् पॉम्पेके अनुयायिओं को कोई भी आशा नहीं रह गई। वहाँ से भी यह घुड़सवारों के एक दलके साथ भाग निकला, किन्तु सिटियस की सेनाके हाथ से बच न पाया। उसने पकड़ कर इसे सीजरके हवाले करदिया। सीजरके सैनिक इसके वधकी आज्ञाके लिये अधीर हो रहे थे, उधर सीजर आज्ञा देनेमें ढील डाले हुए था। अतः वे सब बिगड़ उठे और बिना उसकी आज्ञाके ही उसकी हत्या कर डाली।

अफरिकेनस जूलियस—यह तीसरी शताब्दी का एक इतिहास लेखक होगया है यह ईसाई धर्म का था। कुछके मतानुसार तो इसका जन्म

अफ्रीकामें हुआ था किन्तु दूसरे पक्ष का कथन है कि यह उत्पन्न तो पलेस्ताइनमें हुआ था किन्तु इसके माता पिता अफ्रीका के निवासी थे। इसके व्यक्तिगत विषयमें तो विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है; केवल इतना पता लगता है कि यह एमाँस नगरमें रहता था। एमाँस नगर उजड़ गया था। उसी को बसानेके लिये यह शाहनशाह हेलियोगेबलसके पास गया था। शाहनशाहने इसकी प्रार्थना स्वीकार करली। उसीके बाद निकोपोलिस नामसे इन नगर की फिरसे उन्नति हुई। इस विषयमें निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि इसका धार्मिक संस्थाओंसे भी कुछ सम्बन्ध था या नहीं। उसने संसारका एक इतिहास लिखा है। उसने जबसे संसारकी उत्पति हुई उस समयसे लेकर २२१ ई० तकका इतिहास लिखा है। उसके विचारसे उस समय तक संसारको उत्पति हुए ५७२३ ही वर्ष हुए थे। अभाग्यवश उसका लिखा हुआ इतिहास अब पूरा पूरा नहीं देख पड़ता किन्तु तो भी उसका कुछ कुछ अंश अन्य अनेक लेखोंमें पाया जाता है। कुछका कथन है कि इसने और भी विज्ञान कृषि, सेना इत्यादि सम्बन्धी अनेक पुस्तकें लिखी हैं किन्तु यदि यह सच है तो इसकी इन पुस्तकों तथा संसारके इतिहासमें विरोध देख पड़ता है। जिन लोगोंका यह मत है कि इसने अन्य विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखी है उनका कथन है कि धार्मिक क्षेत्रमें पदार्पण करनेके बहुत पूर्व इसने वे सब पुस्तकें लिख डाली थीं।

अफलातून—यूनान का यह एक प्रसिद्ध तत्वज्ञानी होगया है। विशेष ब्यौरेके लिये 'प्लेटो' के अन्तर्गत लेख देखिये।

अफसर—इस गाँवका दूसरा नाम जफ़रपुर है। यह बिहारके गया जिलेमें नवडासुओं विभाग में एक छोटा सा देहात है। यह उत्तर अक्षांश २५°४' और पूर्व रेखांश ८५°४०' में स्थित है। यहाँ की जनसंख्या एक हजारसे अधिक है। यहाँ पर गुप्त राजाओंके समयके अवशेष मिलते रहे हैं। यहाँ बाराह अवतारकी एक विष्णुकी मूर्ति मिली है। यह धातुकी बनी हुई है; और उस कालकी उत्तम कारीगरीका एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ पर एक शिलालेख मिला था जिसमें गुप्त राजाओं का वर्णन है। इसी भाँति गुप्तराजाओंके समय का जमीनमें गड़ा हुआ एक मंदिर भी मिला है। प्राचीन अवशेष होनेकी दृष्टि से इसको बड़ा महत्व दिया जा सकता है। कारीगरीकी दृष्टि से तो इसकी गणना अत्यन्त उच्चकोटिमें की जा सकती है। यह बुद्धगयाके प्रसिद्ध मंदिरसे कारीगरी तथा सुन्दरतामें टक्कर ले सकता है। इस गाँवका प्राचीन अवशेषोंके कारण ही इतना महत्व है। (इ० ग० ५)



Printed by Kashi Prasad Bhargava, at the Sulemani Press, Gaighat, Benares City.